

Publishers :

Shree A. B. S. Sthanakwasi
Jain Shastiroddhar Samiti

Near Green Lodge

Rajkot (Saurashtra)

卐

Printers :

Shri M. Lal. Shri Sthanakwasi
Jain Shastiroddhar Samiti

Jain Samiti

Rajkot (Saurashtra)

FIRST Edition Copies 1000

Vir Samvat

2485

Vikram Samvat

2015

A D

1959

પહેલી આવૃત્તિ : ૧૦૦૦

વિર સમવત : ૨૪૮૫

વિક્રમ સમવત : ૨૦૧૫

ખ્રીસ્તીકાળ : ૧૯૫૯

卐

ક્રમક્રમે પ્રકાશ કરવામાં

આવેલું સંસ્કૃત-સાહિત્ય

સંસ્કૃત-સાહિત્ય

પ્રકાશન સંસ્થા

અમદાવાદ

Printer

Jadavji Mohanlal Shah

at Nilkamal Printery

Ghee Kantha Nagarseth Vanda Road

Ahmedabad.

卐

એ બોલ

આ અપૂર્વ કલ્પસૂત્ર આપ શ્રી સંઘોના કરકમળમાં મુકાય છે. તેનો પ્રથમ ભાગ અગાઉ બહાર પડેલ છે. અને આ બીજો ભાગ પૂર્ણ થાય છે જેને અનેક સૂત્રો અને ગ્રંથોના આધારે પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ તૈયાર કરી સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કર્યો છે. તેથી આપણો સમાજ તેઓશ્રીનો મહા ઋણી છે. તે ઋણથી આપણે કદી મુક્ત થઈ ન શકીએ.

પ્રથમ ભાગ ઘાટકોપરના રહીશ સમાજ બૂધણ મહાન સેવાભાવી, ધર્મનિષ્ઠ, પરમ ઉદાર, સંઘ આગેવાન શેઠ શ્રી માણિકલાલભાઈ અસુલખરાય મહેતા તરફથી-રૂા. ૩૦ પુ મળતા તેઓશ્રીના વતી બહાર પડેલ છે. તેવી રીતે આ બીજો ભાગ પણ શેઠ શ્રી માણિકલાલભાઈએ સમિતિને મોટી રકમ આપી પોતાના જ વતી કલ્પસૂત્રનો બીજો ભાગ પ્રકાશિત કરાવવામાં જે સહયોગ આપેલ છે તે બદલ સમિતિ તેઓશ્રીનો ધન્યવાદ સાથે આભાર માને છે. જેમ શેઠ માણિકલાલભાઈએ ઉદારતા પ્રતાવી, તેજ પ્રમાણે જો આપણા સમાજના દરેક ભાઈ-બહેનો આ સમાજોત્થાનના પવિત્ર આગમ કાર્યને વેગ પાવવા જરા ઉદાર ભાવે ગુણાનુરાગી બની હાથ લંબાવે તો આ મહાન ભાગી-રથ કાર્ય વહેલામાં વહેલી તકે પાર કરી શકાય. આ પરમ પવિત્ર અપૂર્વ કલ્પસૂત્રનું વાંચન કરી સમાજના દરેક આત્માઓ આત્મોત્થાન કરે તેવી આશા છે.

એજ લિ: મંત્રી

- रत्नकर अपने भयने स्थान पर जाना
 ११ सिद्धार्थने मनाया हुआ भगवान् के मम महोत्सव का वर्णन १७-७२
 १२ त्रिवेणी द्वारा की गई पुष की प्रवृत्ता का वर्णन ७३-८३
 १३ भगवान् के नामकरण का वर्णन ८४-९०
 १४ भगवान् की बाल्यावस्था का वर्णन ९१-९६
 १५ भगवान् के कलाचार्य के समीप प्रस्थानका वर्णन और कलाचार्य का भगवान् के आगतनकी प्रतीक्षा करना ९२-१०१

- १६ भगवान् का कलाचार्य के समीप अल्प यज्ञ करने की प्रवृत्तिका का प्रतिपादन करना १०२

- १७ भगवान् का कलाचार्य के पास जाना जानकर शक्रेन्द्र का आसन कल्पपाथमान होना, शक्रेन्द्र का प्रामाण्य रूप से आरुद्र प्रश्न करके भगवान् के सर्वशक्तिशाली होने का प्रकटन करना १०१-१०४

- १८ भगवान् को सर्वशक्तिसिद्धि जानकर कलाचार्यकी का परम आनन्दित होना १०५-१०६
 १९ इन्द्र द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर सुनकर शोभा का और कलापाथ का आनन्दित होना १०७-१०८

- १ भगवान् के जन्मकाल का वर्णन १-१४
 २ मेघदूतदि विषयमार्तियों का भागदान १५-२०
 ३ शक्रेन्द्र के आसन का कथित होना और भगवान् के ईर्ष्यार्ष उसका जाना २१-२५
 ४ भगवान् के दर्शनार्थ आते हुए देवों का वर्णन २६-३१
 ५ भगवान् के जन्ममहोत्सव के लिये भगवान् को लेकर शक्रेन्द्र का मेघ पर जाना ३२-४०
 ६ भगवान् को उत्सव में लूका भविष्यक सिंहासन पर शक्रेन्द्र का बैठना ४१
 ७ भगवान् का जन्ममहोत्सव करने की इच्छा पाठे देवों के आनन्द, भाठ प्रकार के कलश, शक्रेन्द्र की विंठा और मेघदान का वर्णन ४५-५०
 ९ मेघ के रूपत से सुव्रतप्रथमें रहे हुए जीवों को मम होना, शक्रेन्द्र की चिन्ता, कल्पन के कारण को जानना, मह से समापाचना ११-५६

- १० ऋष्युतेन्द्रादिकों से किये हुये भगवान् के भविष्यक का वर्णन, सर्व देवों का शत्रु के साथ त्रिवेणी मठारानी के पास भगवान् को

विषयार्थकः-

३३	भगवान् की शिविका (पालखी) का वर्णन	१३२-१३३
३४	भगवान् की शिविका को वहन करने का प्रकार का वर्णन	१३४
३५	सुरेन्द्रादि देवों का पूर्वादि दिशाओं का क्रम से वहन करने का वर्णन	१३५
३६	देवेन्द्रादि द्वारा शिविका में भगवान् को ज्ञातखण्डोद्यान में लाना	१३६
३७	शिविका द्वारा भगवान् का ज्ञातखण्डोद्यान में आगमन	१३७
३८	भगवान् का सर्व अलङ्कार का त्याग करना और सामायिक चारित्र का एवं मनःपर्यवसान की प्राप्ति का वर्णन	१३८-१४०
३९	भगवान् का शक्रादि देवेन्द्रकृत अभिनन्दन और भगवान् का अभिग्रह धारण करने का वर्णन	१४१
४०	भगवान् का पञ्चसुष्टिक लुंचन करना और सामायिक चारित्र अंगीकार करने का वर्णन	१४२
४१	भगवान् को मनःपर्यवसानप्राप्ति का वर्णन	१४३
४२	शक्रादि देव और मित्र स्वजन ज्ञात्यादि जाने के पीछे भगवान् का अभिग्रह ग्रहण करना	१४४-१४५

विषयार्थकः-

२०	इन्द्र द्वारा भगवान् को चरमतीर्थकर रूप से प्रकाशित करना	१०९
२१	भगवान् का अपने प्रासाद में आना और मातापिता का आनन्दित होना	११०
२२	भगवान् के विवाह का वर्णन	१११
२३	भगवान् के स्वप्नो का वर्णन	११२-११५
२४	भगवान् के मातापिता विप्रेरहका वर्णन	११६
२५	दीक्षित होनेके लिये भगवान् का नन्दिर्वर्धन के साथ का संवाद का वर्णन	११७-१२१
२६	निश्चय ज्ञानवान् भगवान् का दो वर्ष गृहस्थावास में स्थित होना	१२२
२७	भगवान् को दीक्षा के लिये लोकान्तिक देवों की प्रार्थना	१२३
२८	भगवान् का वार्षिक दान, अभिनिष्क्रमण और शक्रादि देवों का आगमन	१२४
२९	दीक्षा के लिये लोकान्तिक देवों की भगवान् से प्रार्थना	१२५-१२६
३०	भगवान् ने वर्षीदान में दान दी हुई सुवर्णसुव्राकी संख्या का वर्णन	१२७
३१	भगवान् के अभिनिष्क्रमण में आये हुवे इन्द्रादि देवों का वर्णन	१२८
३२	भगवान् का दीक्षामहोत्सव का वर्णन	१२९-१३१

विषयांक:-

४३ समाचार के विरुद्ध स नदिस्पर्शन भादि के विनाय का वर्णन

१४६-१६०

४४ गोप द्वारा किय हुए समाचार के उपसर्ग का वर्णन

१६१-१६३

४५ गोपकृत उपसर्ग के निवारण के लिये इन्द्र का आगमन

१६४

४६ सहायता के लिये इन्द्रकृत प्रायना का अस्वीकार करना

१६५

४७ इन्द्रदूष येवदृष्यत्व से भी समाचार ने कमी करीर आच्छादित नहीं किया

१६६

४८ समाचार के उपसर्ग का वर्णन

१६७-१६९

४९ इन्द्र द्वारा गोपका विरस्कार करना

१७०

५० गोप को मारने के लिये उद्यत इन्द्र को भगवत्कृतनिषेध

१७१

५१ सहायता के लिये इन्द्रकी मार्चना का अस्वीकार

१७२

५२ बल के पालमें समाचार का बहुत नामक प्राणण के घर में पधारना

१७३-१७४

५३ समाचार की भिन्ना देने से बहुत प्राणण के घर में केवल पांच दिव्यों का पगल होना

१७५

विषयांक:-

५५ समाचार से यज्ञकी समामार्चना

१८०

५६ श्वेताश्विका नगरी प्रति समाचार के विचार का वर्णन

१८३-१८७

५७ विद्वत् मार्ग में चढकौशिकसर्प के शर्षी के पास समाचार के कायो

१८८

५८ त्सर्ग करने का वर्णन

१८९-१९०

५९ श्वेताश्विका नगरी के मार्गस्थित चढकौशिकसर्प का वर्णन

१९१

६० समाचार को गोपाद्वारा निषेध करना

१९२-१९५

६१ चढकौशिक सर्पकी शर्षी क पास

१९६

६२ समाचार का कायात्सग में स्थित होना

१९७-२०३

६३ विषमयाग और समाचार के चढकौशिक को प्रतिबोध करने का वर्णन

२०४-२०६

६४ समाचार के प्रतिस्मिन्त होने से

नागसेन के घर में पांच दिव्यों ने

विषयांक:-	पृष्ठाङ्क:
७८ भगवान् के विहारस्थान का वर्णन	२४०
७९ भगवान् के उपसर्गों का वर्णन	२४१-२५३
८० भगवान् की आचारपरिपालन विधिका वर्णन	२५४-२६१
८१ भगवान् के अभिग्रह का वर्णन	२६२-२६७
८२ अभिग्रह की पूर्ति के लिये फिरते हुवे भगवान् के विषय में लोगों के तर्क वितर्क का वर्णन	२६८-२७३
८३ अभिग्रह की पूर्ति के लिये फिरते हुवे भगवान् के चन्दनवाला के समीप पहुँचने का वर्णन	२७४
८४ भगवान् को आहार ग्रहण के लिये चन्दनवाला की प्रार्थना	२७५
८५ भगवान् को भिक्षा ग्रहण किये बिना ही पीछे फिरते देखकर चन्दनवाला के अश्रुपात का वर्णन	२७६
८६ धनवाह श्रेष्ठ के घर में पांच दिव्य प्रगट होने का वर्णन	२७७
८७ चन्दनवाला के चरित्र का वर्णन	२७८-२९२
८८ अन्तिम उपसर्ग का वर्णन	२९३-३००
८९ भगवान् के विहार का वर्णन	३०१-३०३
९० भगवान् के दश प्रकार के महा-स्वप्नदर्शन का वर्णन	३०४-३०५

विषयांक:-	पृष्ठाङ्क:
६५ गंगा नदी में सुदंष्ट्रदेवकृत भगवान् के उपसर्ग का वर्णन	२०८-२१५
६६ उपकारक और अपकारक के प्रति भगवान् के समभाव का वर्णन	२१६
६७ भगवान् के संगमदेवकृत उपसर्ग का वर्णन	२१७-२१९
६८ भगवान् के चातुर्मास का और तप का वर्णन	२२०-२२१
६९ भगवान् को संगमदेवकृत उपसर्ग का और भगवान् के चातुर्मास का वर्णन	२२२-२२६
७० भगवान् के अनार्य देश में प्राप्त परी-पह एवं उपसर्ग का वर्णन	२२७-२२८
७१ घोर परीपह एवं उपसर्ग प्राप्त होने पर भी भगवान् के मन के अविकृत स्थिति का वर्णन	२२९
७२ भगवान् की आचारविधि का वर्णन	२३०
७३ भगवान् के समभाव का वर्णन	२३१-२३५
७४ भगवान् की आचारविधि का वर्णन	२३६
७५ भगवान् के अनार्यदेश में उपस्थित परीपह एवं उपसर्ग का वर्णन	२३७
७६ भगवान् के विहारस्थानों का वर्णन	२३८
७७ भगवान् के समभाव का वर्णन	२३९

- १०८ इन्द्रभूति का दीक्षाग्रहण और उनका समयारोपण का वर्णन ३७७
- १०९ अग्निभूति ब्राह्मण का कर्म के विषय का संक्षेप निवारण और उन की दीक्षाग्रहण का वर्णन ३७८-३८९
- ११० वायुभूति ब्राह्मण का 'वज्जीवतच्छरीर' के विषय में संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहणवर्णन ३९०-३९५
- १११ व्यक्त नामक ब्राह्मण का पंचभूत के अस्तित्व विषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ३९६-४००
- ११२ सुषर्मा नामक ब्राह्मण का 'समानभव' विषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ४०१-४०७
- ११३ 'मण्डिक' नामक पंडित का 'वन्धमोक्ष' के विषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ४०८-४१०
- ११४ मौर्यपुत्र पंडित का वेदों के अस्तित्व विषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ४१०-४११
- ११५ मण्डिक पंडित का 'वन्धमोक्ष' के विषय में संक्षेप का निवारण और उनकी

- ९१ ईर्षादि पांच समिति के लक्षण का वर्णन ३०६
- ९२ मनोगुप्ति का वर्णन ३०७
- ९३ एतोगुप्ति का वर्णन ३०८
- ९४ कायगुप्ति का वर्णन ३०९-३१०
- ९५ भगवान् की अवस्था का वर्णन ३११-३१४
- ९६ भगवान् का विहार वर्णन ३१५
- ९७ दृग् महात्मन दर्शन का वर्णन ३१६-३१८
- ९८ दत्त महात्मन फल का वर्णन ३१९-३२४
- ९९ भगवान् का फेबलमानदर्शन प्राप्ति का वर्णन ३२५-३२८
- १०० केशवस्त्ययि का वर्णन ३२९-३३०
- १०१ पुरुषभाष्य (अच्छेरा ४) का वर्णन ३३१-३३४
- १०२ भाष्यप्रश्नक (अच्छेरा १०) का वर्णन ३३४
- १०३ पाचपुरी और वाराणसी का वर्णन ३३५-३३६
- १०४ पाचपुरी में सोमिह ब्राह्मण का यज्ञ का वर्णन ३३७-३३९
- १०५ भगवान् का समयसरण और उनकी शोभा का वर्णन ३४०-३४८
- १०६ यज्ञ के शब्दों में उपस्थित ब्राह्मणों का वर्णन ३४९-३६३
- १०७ इन्द्रभूति ब्राह्मण का आत्मविषयक संक्षेप का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहण का वर्णन ३६४-३७६

विषयांक:-

- ११६ मौर्यपुत्रका देवों के अस्तित्व के विषय में संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४१५-४१६
- ११६ अचलभ्राता नामक पंडितका पुण्यपाप के विषयमें संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहणका वर्णन ४१७-४२०
- ११७ अकम्पित नामक पंडित का 'परमव' में नारक नहीं है' इस विषयके संशयका निवारण और उनके दीक्षाग्रहणका वर्णन ४२०-४२१
- ११८ अचल भ्रातानामक पंडित का पापपुण्यविषयक संशय का निवारण और उनकी दीक्षाग्रहणका वर्णन ४२२-४२४
- ११९ मेतार्य पंडितका परलोकविषयक संशयका निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४२४
- १२० प्रभास पंडितका निर्वाणविषयक संशय का निवारण ४२५
- १२१ मेतार्य का परलोक विषयक संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४२६-४२७
- १२२ प्रभास पंडित के दीक्षाग्रहण का वर्णन ४२८

विषयांक:-

- १२४ गणधरों के शिष्यसंख्या का वर्णन ४३०
- १२५ मेतार्य पंडित का परलोकविषयक संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४३१-४३२
- १२६ प्रभास नामक पंडितका निर्वाण विषयक संशय का निवारण और उनके दीक्षाग्रहण का वर्णन ४३२-४३३
- १२७ गणधरों के संदेह का संग्रह ४३५
- १२८ गणधरों के शिष्यसंख्या का वर्णन और चतुर्विधसंघ की स्थापना ४३६
- १२९ चतुर्माससंख्या कथन ४३७
- १३० गणधरों को त्रिपदीप्रदान का वर्णन ४३८
- १३१ नवप्रकार के गणों के भेदका वर्णन और भगवानकी धर्मदेशना का वर्णन ४३९
- १३२ भगवान के चतुर्मास संख्या का कथन ४४०
- १३३ चन्दनवाला के दीक्षाग्रहण का वर्णन ४४१
- १३४ चतुर्विधसंघ की स्थापना और गणधरोंको त्रिपदीप्रदान का वर्णन ४४२
- १३५ नवप्रकार के गणों का भेदप्रदर्शन ४४३
- १३६ भगवान् की धर्मदेशना का वर्णन ४४४-४४५
- १३७ गौतमस्वामीको देवशर्म ब्राह्मण को प्रतिबोधित करने के लिये नजदीक के गांवमें भेजने का वर्णन ४४६-४४७

पृष्ठांक:

प्रथमपाठः—

१३८ मगवान् कं निर्वाणं का वर्णन	४४८-४५३
१३९ गौतमस्वामी के विषय का वर्णन	४५४-४५५
१४० गौतमस्वामी के भवपिज्ञानप्रयोग का रत्न का रत्न	४५६
४४१ गौतमस्वामी क केवलज्ञानप्राप्ति का वर्णन	४५७
४४२ दीपावली आदि की प्रसिद्धि के कारण का वर्णन	४५८
४४३ गौतमस्वामी के विषय का वर्णन	४५९
४४४ गौतमस्वामी क प्रतिज्ञानप्रयोग का वर्णन	४६०
१४५ गौतमस्वामी क केवलज्ञानप्राप्ति का वर्णन	४६१

१४६ गौतमस्वामी के केवलज्ञानप्राप्ति से देवता के उसका महोत्सव मनाने का वर्णन	४६२
१४७ दीपावल्यादिकी प्रसिद्धि के कारण का वर्णन	४६३
१४८ मगवान् के परिवार का वर्णन	४६४-४६९
१४९ अन्तर्कृतमूर्ति का वर्णन	४७०-४७१
१५० मगवान् के पाद का वर्णन	४७२
५५१ सुषुप्तस्वामी के परिचय का वर्णन	४७३-४७४
१५२ अशुप्तस्वामी क परिचय का वर्णन	४७५-४८१
१५३ ममवस्वामी के परिचय का वर्णन	४८२-४८५
१५४ उपसंगर और ग्रन्थसमाप्ति	४८६-४९०
१५५ भी महावीरस्वामीकृत उप का कोष्ठक	४९१



जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-यूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज विरचितस्य श्रीकल्पसूत्रस्य

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनगमनिष्ठात-प्रियव्याख्यानिपण्डितसुनिश्री-

कन्हैयालालजी-महाराज-विरचितयां कल्पमञ्जरी-व्याख्याया

पञ्चमवाचनादि-नवमवाचनान्तो

द्वितीयो भागः ।

मूलम्—जं समयं च णं तिसला खच्चियाणी दारयं पम्या तं समयं च णं दिव्वुज्जोएणं तेलुक्कं
पयासियं, आगासे देवदुंदुहीओ आहयाओ, अंतोमुहुचं णारयजीवाणपि दसविह-खित्त-वेयणा परिक्खीणा,
अन्नोन्नवेरं च तेसि उवसमिय, अघणा संचदणा कलिय-ललिय-कमल-सिद्धी बुद्धी जाया । फारा वसुहारा बुद्धा,
पवणा य मुहफासणा मंजुला अणुकूला मलयज-उण्णल-सीयला मंदमंदा सोरुभणंदंदा तं दारग फासिउं चियं
पवाया । देवेहिं दसद्धवणाइं कुसुमाइ निवाइयाइं, चेलुक्खेवे कए, अंतरा य आगासे 'अहो जम्मं अहो जम्मं' ति वुट्ठं ।
उज्जाणाणि य अकालम्मि चैव सब्वोउय-कुसुम-निहाणाणि सजायाणि । वावी-कूवतडागइ-जलासएसु जलानि
विमलानि जायाणि । जणवए य जणमणा हरिस-परिस-वसेण पवनवेगेण सरसि वणरसानिव विसप्पमणा
संजाया । वणवासिणो जंतुणो जम्मजायाणि वेराणि विहुणिय सहाहारिणो सहविहारिणो य जाया । अवर-
मंडलं धाराहरा-डंवर-विहुरं अमलं चक्किकंचियं जायं । कोइलाइपविलणो साल-रसाल-तमालपमुह-साहि-
साहासिहा-वलंविणो सहयार-सरस-मंजरीरसस्ताय-मायो-दंचियंपंचमस्सरा मुहरा अणंतगुण-गाम-धाम-पहु-
ललाम-जस-गायग-सूय-भागह-चारण-विडंविणो महरं परं कूडुमारभित्था ॥३०५५॥

छाया—यस्मिन् समये च लल्ल प्रियत्वा सप्तियासी शारङ्ग माधव, ठस्मिन् समये च लल्ल प्रियत्वा-
 द्योतेन प्रेमोपय प्रकाशिस्य, माकाते देवदुन्दुसपो बाधिया, अन्वर्धुर्च नारकजीवानामसि दशविष-क्षेप-
 वेनाः परिशीला, अन्योऽन्यैरे च वेपथ्म उपशमितम् । कथना सपन्दना कस्ति-सखि-स्मल-द्युष्टिदिनवा ।
 स्फारा कसुपारा दृष्टा । पन्नाम सुसस्यर्धेना मञ्जुला मस्यजो-लाल-शीतला मन्वमन्वाः सौर-

पञ्चमवाचना पर्यन्त

द्वितीय भाग

मूढ का बर्ष—'अं समय' इत्यादि । जिस समय प्रियत्वा सप्तियाणी ने पुत्र को जन्म दिया,
 उस समय दिव्य उपपोत से तीनों लोक प्रकाशित हो गये । आकाश में देवदुन्दुमिया बमने 'लगी । अन्व
 धुर्च के लिए नरक के बीतों की भी दस प्रकार की क्षेत्र वेदनाएँ शान्त हो गईं । उन्होंने आपस का
 पैर त्याग दिया । मेघों के अयाव में भी, चन्द्र की गन्ध से युक्त, सुन्दर कमलों से युक्त वर्षा हुई ।
 सोने की मञ्जु बरपा हुई । सुख स्पर्श वाला, मनोरंज, अनुकूल, मलयज चन्द्रन और कमल के समान
 शीतल, सुगन्ध से आन्वर्धेने रागा मन्व-मन्व पवन चलने लगा, मानो बाल्य भवत्स्या में स्थित मगवान

पञ्चमवाचनाथी नवमवाचना पर्यन्त

षोडश भाग

भूगने अथ— अं समय' इत्यादि ने समये निरुधवा शोषीके पुत्रने जन्म आये। ते समये, त्रवे
 दोकभं प्रकाश बर्ये। आकाशमं देवदुन्दुषी बासवा छाजं। अतदुद्धत सुधी, नारकीन्वा लोवानी इय प्रकारनी क्षेत्र-
 वेदना शान्त बल्ल अल्ल नारकीला आकर कइनेमे वेर आन लूबी अथ।

बरसातनी वेरकावरीभां पल्लु, बइतनी सुअधवाणा सुइर कभतोना पक्षराइ बरस्ये। सोना शोइशोनी
 पण वृषि कर्इ

सुपण्ड स्पथ कस्यवायो, मनोहर, अनुकूल, मल्लकात्रिस्त्रिअइन लेनी शीतलता आप्पवावोली, कभज लेवो
 इये, अने सुअधित तेमल आनइकारी पवन भइ भइ रीते बइवा छाजे। बासि आ पवन ते पणकणेमे स्पथ

भ्यानन्दास्तं स्पष्टुमिव प्रवाताः। देवैः दशार्द्धवर्षाणि कुसुमानि निपातितानि, चेलोत्क्षेपः कृतः। अन्तरा च आकाशे 'अहो जन्म अहो जन्म' इति घृषितम्। उद्यानानि च अकाले एव सर्वतृक-कुसुम-निधानानि संजातानि। वापी-रूप-तडागादि-जलानि च विमलानि जातानि। जनपदे च जनमनांसि हर्ष-प्रकर्षवशेन पवन-वेगेन सरसि घनरसा इव विसर्पन्ति संजातानि। वनवासिनो जन्तवो जन्मजातानि वैराणि विधूय सहाऽऽहारिणः सहविहारिणश्च जाताः। अम्बरमण्डलं धाराधरा-ऽऽ-इम्बर-विधुरम् अमलं चाकचक्यचञ्चितं जातम्।

कोकिलादिपक्षिणः साल-रसाल-तमालप्रमुख-शालि-शाखा-शिला-बलम्बिनः सहकार-सरस-मञ्जरीरसा-ऽऽ-का स्पर्श करने के लिए चला हो ! देवों ने पाँच वर्षों के पुष्पों की वर्षा की, वस्त्रों की वर्षा की। 'अहो जन्म, अहो जन्म' का आकाश में घोष हुआ। उद्यान असमय में ही सब ऋतुओं के फूलों के भंडार बन गये। 'अहो जन्म, अहो जन्म' का आकाश में घोष हुआ। जैसे वायु के वेग से तालाब का जल बावड़ी, कूप, तालाब आदि जलाशयों का जल विमल हो गया। जैसे वायु से चंचल हो उठे। जंगली चंचल हो उठता है, उसी प्रकार जनपद की जनता के मन हर्ष के प्रकर्ष से चंचल हो उठे। नम-मण्डल मेघों की जानवर जन्मजात वैर को त्याग कर एक साथ आहार और विहार करने लगे। नम-मण्डल मेघों की घटाओं से विहीन, विमल और विमानों की चमक से चमकने लगा। साल, रसाल (आम्र) तथा तमाल आदि वृक्षों की चोटियों पर चढ़े हुए कोकिल आदि पक्षी आम की रसीली मजरियों के रसास्वादन से

करवा आवतो न होय ! देवोऽप्ये पंचवर्षा युषोऽप्येनो वरसाह वरसाव्ये, तेभ्य वस्त्रोनी यषु वर्षां कुरी
'अहो जन्म ! अहो जन्म !' अयेम आकाशवाणी यथ। उद्यानमा अक्षमथे यषु, सर्वं ऋतुभ्योना कृतोना
कुरीर उभराथं गथा वापरी, कुवातलाव विगेरे जलाशयोना पाणी, निर्भद थर्धं गथा नेवी रीते पाथुना संचारथी,
तलावपुं पाणी, हेली उठे छे, तेम जन्मपदना हृदथे, भगवानना जन्मना करथे, हलहली उठया, ने हर्षना आवेशथी
समस्त राष्ट्रमा न्ययणता न्यापी रथी

अंगही जन्मवरो यषु, अन्योन्यना वरं भावोना त्याग कुरी, अेकी साथे करवा काथ्यां. तेभ्य अेकथ
स्थाने रहेवा लाया नलम'उण यषु, मेध-धटाअेथी रक्षित थयु' विमल अने प्रकाशित विमाने। वठे, आयु'
भाकाश अमकंवा लायु'.

आम्र रसाल (आंभा) तथा तमाल बिगेरेना. वृक्षोनी उणीअे पर लठेली हाथवो, भीडि टहुंकार करवा

स्वाद-मादो-वञ्चित-पञ्चमस्वरा सुलरा अमन्त-गुणग्राम-धाम-ग्रह-स्लाम-यज्ञोगायक-सूत-भागध-चारण-
 विरम्भितो मधुरं परं हृदितुमारोमिरे ।। ४०५५ ।।

टीका—‘वं समयं ष बं’ इत्यादि । यस्मिन् समये ष मन्तु त्रिभला सत्रियाणी द्वारक=गुप्त प्रायत=
 अन्तपय, यस्मिन् समये ष लहृदितुमारोमेन=देवमहासेन अद्भुतमकारेण वा त्रैलोक्य=योक्तव्यं प्रकाशितममृत ।

जन्तु आनन्द त पंचम स्वर में बोलने लग और अन्त गुणग्राम क धाम भगवान क लयाम यत्र का
 गान करने वाले सूत, मागध और धारणों को भी मात करत हुए कूजन लग ।। ४०५५ ।।

टीकाकार्थ—‘वं समयं’ इत्यादि । त्रिस समयमें त्रिभला सत्रियाणी ने गुप्त को जन्म लिया, उस समय दिव्य-अमृत
 प्रकाश से तीनों लोक प्रकाशित हो गये । आकाश में दबदबुमियाँ करने लगीं । अन्तर्गृह्यं क लिए नरक

बायीं ते वज्रते तेजो आश्रनी भस्त्रिशेनो रशारबाड देवी छेवाथी, बधारे धानद्विन ज्युती छनी. आ
 शारबाडो पञ्चम स्वरमां कवाक करवा छानी

अनंत श्रेयाना धाम जेवा लजवानत सुकुआम अने बय जावावाणा जद्विजेतो व्याजु अने जाशेटने
 पणु सुपु जावामां टपी कर्ता न होब ! तेम ज्युपु ठठु अनेक विविध पक्षिज्योतो कुआरव व्याजु आटनी जायत
 छयाने पणु बटाबी अय तेवा छते (४०५५)

टीकाते आर्थ—‘वं समयं’ छन्वादि. अजवान महावीरने अ भयतांकर, स्वर्गं श्यु अने पाताड जेटदलीय होक-अपेठोड
 अने त्रिभलाहोकरमां प्रकाश छन्वाउं रको. देवाज्ये, पीतान्य दिव्य वाछुते वठे छर्वाड छेते तजु होकरा छिन्नवडवा
 व्यापी रकी सुनंन आनड भ अठ अथाउं रकां देवदुष्पीना नाहो शरत थया. देवा पीतानेो छर्वा अछा उरवा,
 ‘अठे अन्म ! अठे अ म !’ ने दिव्य ध्वनि करवा छामां समकिति देवाने तो अठि जोगना आं अनाभासे
 मही अर्था तेवा छर्वात तेजो जनी अर्थां भिभ्यात्पी देवा पणु समकिति देवान आनडमा कुतुडव छिज्ये, आग
 देवा छामां. इवांअनाज्ये पणु अजवानने अ ज्येत्सव भनाववा छामां. नेने अेवा शरते वेवा छरव भाखवा छामां
 पीतानी यदु शक्तिज्योने जहार हाकी तेना पक्षिअणुा करी पीतानेो दुइअत छर्वा अथत करवा छामां.

आकाशे=देवपथे देवदुन्दुभयः आहताः=ताडिताः=बादिताः । नारकजीवानामपि अन्तर्दुर्तं दशविधक्षेत्रवेदनाः=दश-
 विधाः=चीती? -आर-सुधार-पिपासा-कण्डू-परतन्त्रता-मय-शोक-जरा-व्याधि? -रूपा दश विधाः=
 प्रकाराः यासां तास्तथाभूता याः क्षेत्रवेदनाः=स्वामात्रिकयोऽन्तता नरकक्षेत्रवेदनास्ताः परिक्षीणाः=विनष्टाः ।
 तथा-तेषां नारकजीवानाम् अन्योऽन्यैरै=परस्परशत्रुमात्रश्च उपशान्तम् । तथा-अयना=मेघवर्जिता-मेघं विना,

के जीवों की भी (१) शीत, (२) उष्ण, (३) भूख, (४) प्यास, (५) खुजली, (६) पराधीनता, (७) भय, (८) शोक,
 (९) जरा, (१०) व्याधि यह दश प्रकार की नरक क्षेत्र में स्वभावतः होने वाली अन्तरहित वेदनाएँ मिट
 गईं । नारकी जीवों का पारस्परिक वैरभाव भी शान्त हो गया ।

नारकीना एवोने अन्योन्यनी वेदना होय छे अने परमाधर्मीओ। तरक्षथी पथु तीव त्रास आपवामा
 आवे छे आबु तो इ थ अनतु छे. ते उपरांत स्थानाधीन दु.ओ कायभी रहेला छे, जेतु वखुंन वयन द्वारा थरु
 थके तेम नथी तेमज साकारिक दु.ओनी साथे तेनी सरथामणी थरु थके तेम नथी.

नारकीना एवोने ढडी-गरभी युष्ण बाजे छे त्याना नारकीना एवने, आपषु। हिंमालयना ढरेला थरु
 उपर कहाय सुवाडवामा आवे तो, तेने घसघसाट उंघ आवी लय । आथी कइपी ह्यो के त्यांनी स्थानिक ढंड़ी डेटवी
 कुशे । आवी रीते गरमीना प्रमाथुतुं पथु नमलु देवु

शीत १, अने गरमी २. उपरात, नारकीना एवोने, कुधा ३, तरस ४, पराधीनता ५, दाड ६, भुजवी
 ७, लय ८, शोक ९, जरा १०, आ प्रकारनी क्षेत्र वेदना होय ज छे, आ दश वेदनाओतुं निवारण, नेम भुल्यु
 लोकमा थरु थके छे ने राहत भजे छे, तेम नरकमां भनतुं नथी. कारणु के, त्या ओकला पापतु न परिणाम
 बोगवतुं होय छे, अरि पाप अने युष्य भन्नेना परिणामो बोगवाय छे

नारकीमा, कुधा-तरसतु निवारणु करवाना डेरु साधन प्रत्यक्ष नथी शारीरिक रोग क्षापी नीकरोला होय छे
 पथु डोह तेनी शक्ति माटे जेनार पथु नथी. पराधीन पणाने तो डोह आरो तारो नथी ! क्षण ओक पथु,
 परमाधर्मीओ, नारकीना एवोने छटा भूकता नथी, तेमज मार-पीठथी, निरंतर भययुक्त राणे छे
 डोह दया भानार होतुं नथी एवे, जे नारकीना पापोना भंघो भांध्या होय ते सर्वे, बोगवीनेज छटा
 थवतुं होय छे. तेमां रज जेटलो पथु इरक पडतो नथी, आ छे त्यांनी स्थानिक-निरंतर वर्तती क्षेत्र वेदना !

आवी वेदनाओथी तरकुटां नारकीना एवोने, बगवान भहावीरनो जन्म थतां, अंतमुंहुत्तं सुधा सर्व

मानन्दना=चन्दनपङ्कसहिता कलित-चलित-कमल-सृष्टिः-कसिता=शुवा कञ्जिचानां=सुन्दराणां कमलानां सृष्टिः= सर्गा-उत्सविवर्यया तयारिषया सृष्टि जाता। स्फारः=मधुरा वधुधारा श्या। पकनाभ-सुलस्यक्षना=सुलस्यर्षक्षन्तो मधुका=अनेकपुण्यपुण्यवहस्तेन सुन्दराः शतकुलाः=सकलजनानन्दजनकाः, मस्यजो-स्पृह-श्रीतला-मर यज=चन्दनम्, उत्पलं=कमलं, तदुभयवत् श्रीतला=श्रीतल्यर्षा, पुनः मन्दमन्दा=अतिमन्दा, सौरध्याऽऽनन्दाः= धृगनेनाऽऽमोदका, तं=दूर्गोकं वारुहं=वाल्क्य स्मदुमिष प्रवाता=वचसिवाः। तथा वैशैः दशार्द्धवर्षानि=

तथा-येषां के चिना ही, चन्दनमिषिष्ठ, सुन्दर-कमल-युक्त जलसृष्टि होने लगी। मधुर सम्पत्ति (स्पर्श) ही सर्वां हुई। सुलदायी स्पर्श वाला, अनेक पुष्पों के सौरभ को वान करने के कारण सुन्दर, समी माणियों का आनन्द देने वाला, चन्दन एवं कमल के समान श्रीतल, अतिस्वय मन्त्र, सुगंध से आमोद प्रदान करन वाला एवन वसने लगा।

सिन्धवेकनाभो यात पद्मि अर्ध तेभज, नरश्रीभिः सङ्ग नर परपरनेो वेस्माव यक्ष क्वी गभां, ने यांतचित्ते ठभां रकालं नन्म आशेन डेटडी अङ्गुशुत धटनाभोतु सुचन यमु।

विशेष दोह (अथदोह-युतुदोह)भां अत्रवान न भर्तानी आशे, जेवा भेधेथी वृष्टि यष्ट डे येक ज्वावता न, पृथ्वी उपर सुडर कभदोनी सृष्टि ठेकी कष्ट अर्ध न्यां न्यां क्वी त्वां धमधजती श्रीभ ऋतुभा वीष्टुपछम देवावा वाभ्यु। ने पृथ्वीके अखे वीडी आदीनु ज्वाभ्याडन कभुं न दोभ। तेभ ज्येवाभां ज्वाभ्यु

सोना-भक्षेरीनी वृष्टि यरु यष्ट धननी तो हांठ अखे क्रिमत न न डोय तेभ तेने धोधभार प्रवाक, सुषर्षु हरे ठेपरधी पम्मा वाग्ने आ सुवल्लु प्रवाक अखे पृथ्वीने योवाभधन ज्वावतो होभ। तेभ तेनी धाराभो ज्वाटपखे पडवा वाग्ने

महबत्रिहिभां छपाड रहेक पवन पक्ष शीतल म ड सुअधरे येवा वाग्ने। अखे ज्वावान्ता इयन कस्वा भाटे ठेकी न रहेते। होव तेभ वागतेो डते। आ पवनने सुगंध यक्षा आठ सुधी प्रधरित यष्ट, अनेक छोवोने रूप्य करी तेभने युग्ध ज्वावतो। आ पवन पक्ष जेटवो भडिा अने मधुर मङ्गभ पडतो डते। डे भूज अने वरुष छपाड ज्वाक अने शेरिशेम वृत्ति ज्वावी ज्वाटी, सादा वरुष कशेड शोभशधो करेवी मया सर्वांजे वाठ अने प्रमुदितवत यष्ट ज्वाटी

पञ्चवर्णानि कुसुमानि=पुष्पाणि निपातितानि=आकाशाद् वर्षितानि, पुनर्द्वैः चेलोत्क्षेपः कृतः=वस्त्रच्छाष्टिः कृता । अन्तरा च आकाशो=आकाशमध्ये देवैः 'अहो! जन्म अहो जन्म' इति द्युषितम्=उच्चैस्त्वारितम्, उद्यानानि च अकाले एव=स्वपुष्पण समयाभावेऽपि सार्वर्तुक-कुसुम-निधानानि=सार्वर्तुककुसुमानां=सकलऋतुसम्भविपुष्पाणां निधानानि संजातानि । तथा-वापी-ऋप-तडागादि-जलाशयेषु-वापी=दीर्घिका, कूपः=प्रतीतः, तडागः=सरः, तदादिपु=तत्प्र-

तथा-देवों ने पाँचों वर्णों के पुष्पों की आकाश से वर्षा की और वस्त्रों की भी वर्षा की । आकाश के बीच 'अहो जन्म, अहो जन्म' का उद्घोष किया । अर्थात् अहो-आश्चर्यकारी तीनों लोकों को अपूर्व आनन्द देने वाला भगवान का जन्म हुआ ।

तथा-उद्यान, असमय में फूलने का समय न होने पर भी, सभी ऋतुओं के फूलों से समृद्ध बन गये । वापी, कूप, सरोवर आदि जलाशय निर्मल पानी से भर गये । देश भर में जन-जन के मन हर्ष की अधिकता से ऐसे चंचल हो उठे, जैसे वायु के वेग से सरोवर का वारि चंचल हो उठता है ।

दृव्योऽपि, उपरोक्त उत्सव उपरान्त सोना-मोहरेशे अने हिव्य वस्त्रो यषु वर्षाव्या. छत्रो ऋतुयोऽना 'हृवी पञ्चरंगी कृदो यषु वर्षाव्या

आग-अग्नीयात्रो, जे ग्रीष्म ऋतुमा सुकल गथां इता, ते यषु नमपददवित थया. तेज्योमां चेतन अने ज्वत आण्युं. रज-परागरज, र ग अने सुगंधथी, सर्व प्रकारना कृदो। भीदी उठया सर्व प्रकारनी वनस्पति कृटी नीकदी, अनेकना अंकुरेशे कृटवा लाग्या, ने अनेक गाठमा आवेदा उधाने, मनोहर अने आंभने ठंडक आये तेवा उभारावा लाग्यां. करमाई गयेद कणीत्र्यो, जषु इसती इसती गडार आवती होय तेम गथावा लागी कृदोनी दुनियाने यषु, आ त्र्यो अनेगो अने अनेदेशे उत्सव उज्वयाने होय, तेम गथावा लाग्युं. आ कृदोऽपि पोतानी सौरभ, सर्वशक्ति द्वारा, भिदववा माडी. ने गगत ने पोताने परिचय आपवा तैथार थया होय तेम तेज्यो देभावा लाग्यु.

याषीना सुकला अने भादी गदाशये यषु वगर वरसादे उभारावा लाग्यां. पृथ्वीऽपि पोतानामा संय्यकरी राषेळु' अने सधरी राषेळु' पाषी, अरणा अने घोध द्वारा, वडेतुं सुकवां माड्यु. जेना परिष्ठापि, ठेर ठेर कृवा, नदी, वावडी विगेरे पाषीथी लराइ गया ने ग्रीष्म ऋतुने वर्षा ऋतु तेमज वसंत ऋतु जेवी जनानी दीधी.

दृष्टिपु असाद्येयु कलानिःशान्तिपानि च विमलानिःसञ्चानि जातानि, अनपदेःवेदो च जनमनामि इयं-परुषं
 पदेन-अमोदापिषपदेना पनवेनेः-वायुवेगेन सरसिःकृषिमपपाकरे पनरसाः=जलानि इव विसर्पितः=विशेषेण
 पसन्ति सजातानि । तथा-नवासिनो अन्ववः=आमिन जन्मजातानि=जन्मना सौत्वस्मानिः=सहजानि वैराणि=
 शत्रुभावान् विषयः=विषयुच्य च सहाऽऽहारिणः=सहयोगिनः, सहाविहारिणः=यागगामिनश्च जाताः ।
 तथा-अन्वरणस्मृः=आक्रान्तमवेद्यः धारापरऽऽ-ठन्वरविपुः=मेघघटारहितम्, अमर्कः=स्वच्छ चाकचक्य
 चञ्चितं=विमानादिसकाशुक्तं जातम् । तथा-क्रोडिसापिपणिण सास-सास-तमाकममुण-द्वारि-

तथा-जगली वन्दु सृज-जन्म से ही उत्पन्न होने जाछे-चैर का त्पण पर साय-साय चलने
 सगे और साय-साय चलने सगे और साय साय रहने सगे ।

तथा-आक्रान्त-मंठल मेघ-पटाओं से विरिन, स्वच्छ तथा देखीं क विमानों आदि से चमकमान लगा ।

आ शार्ङ्गी पक्ष इरक, निमण अने रणाष्ट छत्ता शार्ङ्गी पक्ष ओराठनी अरक आरे तेवा छ्वा. ने तुषातुरने
 हीवहवा आरे तेवा भीडा अने अशुभ्त छ्वा.

जेम पवनना कृमवाशी पाक्षी दिहादे कडे ने ओष्वकोण ताडपनृत्थ शरु थाथ तेम देथ अने राष्ट
 कशना दोराेना उत्साकनेप सुवक, इमे इमे वधवा भाडओ.

अरथना प्राणीकोये पोताना वैर सुधत स्वकारनु विशभरखु करवा मांठु ओठ वीजने प्रेमधी आडवा
 बाअं ने आकार-विहार आदिभा, क्वापणु सोस अणुमन्था विना, ओठक प्रदेथे, अरवा तेमअ छर-इर करवा
 बाअं अथे प्रेमअणु कृदुण छेय.

अरथे सब प्राणीको आठे उत्पन्न यथेबा छि, जेम, अरथी प्राणीकोना भनभा काव प्रअट कर्ये. इरेकने
 सुअवृष अने सकारक अणुपु तेम, तेमनी भनोवृत्ति कवा बाअी अतिवेगनी कापना अरुस्य कवा बाअी.
 पोतपोतानी बाषाको द्राश, प्रेमसुखक बिन्धे जताकवा बाअं. पोत पोतानी रीते आनड व्यधत कर्त्ता क्वावा
 बाअं. इधपि आवे आनड, लुचनभा नदि आओ छेय । तेमअ नदि भापये छेय । तेम तेकोने क्वावा बाअु
 ने आवा कृणवेका आनडने खोत्रपठे इरी देवे, जेम मानी, तेमा अरथाव यका छेय तेम तेको क्वावा बाअं,
 आशय भावे पक्ष, यथकचित विमानोशी कसक अरेबां क्तां तेम क्वापु छ्वां तेम विमानोनी कारणाको
 धरथान कवी कवी. देवविमानोशी आशय भाव क्वापु तेम क्वापु विमानोना अरु क्तां नाडथ

शाखा-शिखा-बलम्बिनः-तत्र-सालाः=दृक्षविशेषाः, रसालाः=आत्राः, तमालाः=दृक्षविशेषाः, तत्प्रमुखाः-तत्प्रभृतयो
 ने शाखिनो=दृक्षास्तेषां याः शाखाः तासां याः शिखाः=शिरःप्रदेशाः तदबलम्बिनः=तदाश्रयिणः-तद-
 धिष्ठायिनः सन्तः सहकार-सरस-मञ्जरी-रसाऽऽ-स्वादमादो-दञ्चित-पञ्चमस्वराः-सहकाराणाम्=आत्राणां
 याः सरसाः=रसयुक्ता मञ्जर्यः, तासां यो रसास्वादस्तेन यो मादः=हर्षस्तेन उदञ्चितः=उद्गतः पञ्चमस्वरः=स्वर-
 विशेषो येषां तथाभूताः, अत एव-एल्वराः=शब्दं कुर्वन्तः, अनन्त-गुण-ग्राम-धाम-प्रभु-ललास-यशो-नायक-
 सूत-मागध-चारण-विडम्बिनः-अनन्ता=अन्तरहिता ये गुणाः=ज्ञानादयः तेषां यो ग्रामः=समूहः, तद्धाम यः
 प्रभुः=वीरः तस्य यल्लाम=शोभन यशः तद्गायकाः=तद्गानकर्तारो ये मृताः=यन्दिनः-स्तुतिपाठकाः, मागधाः=
 वंशपरम्परावर्णकाः, चारणाः=वन्दिद्विशेषाश्च, तद्विडम्बिनः=तत्सादृश्यं भजन्तः सन्तो मधुरं=मिष्टं परं=प्रकृत्यं
 कृजितुमारेभिरै=अव्यक्त शब्दं कर्तुमारब्धवन्तः ॥सू०५५॥

तथा-साल, रसाल, तमाल आदि दृक्षों की चोटियों पर चहे हुए कोकिल आदि पक्षी-आत्रों की
 सरस मंजरियों के रसास्वादन के आनन्द से निकले हुए पंचम स्वर में मुखरित हो उठे-शब्द करने लगे
 तथा अनन्त गुणों के आधार प्रभु के सुन्दर यश के गायक मृतो-वन्दी जनों मागधी-वंशपरम्परा का
 बखान करने वालों, तथा चारणों को भी मात करते हुए मधुर और उत्तम रूप से कुजने लगे ॥सू०५५॥

रलोनेो द्विध्वनि, पृथ्वी उपरना ढोके सालणी शके तेये तीव्र अने उच्च श्रेणीना इतो. क्रिश्चेशे-गधयों योतानी
 गायनकणा अने तृत्यो उच्चश्रेणीना देवोने अतावी रह्या इतां विधाधरे, योताना पडाडे परनी सान्धानीञ्जोने,
 शशुगारी तेजेभय भनावी रह्या इता ने योतानी पुत्रीञ्जोने, ते सभारवोना उत्सवो भाषवा, प्रेन्गुा करी रधां इता.
 डेयल-केडिला-योपट विगेरे ज्ञानवरे। यल्लु कही नखि लोगवेल ज्येयो आभरस पाध रह्या इता प्रकृनि
 (कुदरत) यल्लु तृथायमान थध रह्यी होय तेम ज्यल्लुतुं इतुं. डारलु के, आडयान परना इणो। लर्यी रधा इतां ने
 मिडाशथी लरय्यक भनी रह्या इता. जगलना अने वनवगडाना पक्षीञ्जोने, भगवानना जन्म समगे, मिष्ट लोअने
 आपवाना धरडाथी, प्रकृतिञ्जे कुदरते यल्लु इण-कुजोनी आडे वगडे, देलभछेव करी भुडी इती. अने आ इणोभा
 भादोभा- साकर लरी डीधी होय तेम ज्यल्लुतुं.

आअमंजरीना रसनी मिडाशथी, धराध गयेल डेयलो, पंचम स्वरधी, गीतो गाध रवी इती. ने छवनना
 अलुपम भोज, सर्व पक्षीञ्जो माण्डी रधां इता (सू०५५)

सूक्त—अं रयणिं च ऋं तिसला सप्रियाणी द्वारां पद्यया, त रयणिं च ऋं भवत्पत्रं—आत्ममंतर—
 ओसिसि—विमानवासि—देवेरि य देवीरि य उपपतेरि य उपपतेरि य एग मरं दिग्बे देवुजोए देवसणिजाए
 देवसकषरे उणिनकमपूर याचि होत्या।

आर य देवा य देवीभो य एगं मरं भस्यवासं च गंधवासं च सुणवासं च पुणवासं च शिरणा
 वासं च रणवासं च पासिस्तु ।।सू०५६।।

छाया—यस्यां रजन्यां च लच्छ त्रिशला सप्रियाणी दारकं प्रासुत्, तस्यां रजन्यां च लच्छ मवन
 पति—एन्तर—अयौतिपिक—विमानवासि—देवेषु च देवीषु च उपपस्तु उत्पत्सु च एको मगान दिग्बो द्बोव्
 पोठो देवसनिपाव' देवकककस तसिअककसुसचापि बसूव।

अप य देवा देव्यप एकां महतीम् अमृतचर्पां च गन्धचर्पां च जूर्णचर्पां च पुणचर्पां च शिरण्य
 चर्पां च रचचर्पां च अपर्पन ।।सू०५६।।

टीका—'अं रयणिं च ऋं' इत्यादि। यस्यां रजन्यां=रात्री च लच्छ त्रिशला सप्रियाणी दारकं=पुत्रं
 मासुत्=भजनयत्, तस्यां रजन्यां च लच्छ मवनपति—एन्तर अयौतिपिक—विमानवासि—देवेषु द्बोवु च उपपस्तु=

मूल का अर्थ—'अं रयणिं' इत्यादि। जिस रात्रि में त्रिशला सप्रियाणी ने पुत्र को जन्म दिया,
 उस रात्रि में मवनपति, एन्तर, अयौतिपिक और वैमानिक देवों और देवियों के मगान के समीप आते
 और ऊपर जाते समय एक मगान दिग्ब देव-शकास हुआ, देवों का आपस में मिलन हुआ, देवों का
 'कस-कस' कस हुआ—अस्तु सामूहिक शार हुआ, तथा देवों की अत्यन्त मीठ हुई।

इस के पभाव देवों और देवियों ने एक बहुत बड़ी अमृतकीचर्पां की, सुगन्धलकीचर्पा की,
 पुष्पोंकीचर्पां की, सोन-बाँदी की चर्पां की और रत्नों की चर्पां की ।।सू०५६।।

टीका का अर्थ 'अं रयणिं' इत्यादि। जिस रात में त्रिशला सप्रियाणी ने पुत्र को जन्म दिया उसी
 रात में मवनपति, एन्तर, अयौतिपिक और विमानवासी देव और देवियों का आना-जाना हुआ। उनके

भूण अने यीशनेो अरु— अं रयणिं' धत्यादि. ले अमभे अत्रचाननेो एन्अ धये। ते धमभे अने ते शक्ति
 अवनपति—अ तर—अथेतिथि अने वैमानिक देवे अने देविको, अत्रचान अमीप आवातां अने उपर अतां तेअ अने
 मदीन अदुत प्रअथ हेहाध अथे। अने ते प्रहास शिन्म केष तेनी अदीन.तेअमभे अत्रचानतां पुष्पी पर देवचर्पां आवाते।

समीपमागच्छत्सु, उत्पत्तसु=उपरि गच्छत्सु च सत्सु, सति सप्तम्यर्थे प्राकृतत्वात् वृतीया, एको महान् दिव्यः= अद्भुतः देवोद्द्योतः=देवप्रकाशः, देवसंनिपातः= देवसम्मिलनं, देवकलकलः=देवानामागतानां सामूहिकशब्दः, उत्पिञ्जलकभूतः=देवानामत्यन्तसंवाधश्रापि बभूव ।

अथ=अनन्तरं देवा देव्यश्च एकां महतीममृतवर्षां=सुधावृष्टिं, गन्धवर्षां=गन्धद्रव्यवृष्टिं, चूर्णवर्षां=सुगन्धि-चूर्णवृष्टिं, पुष्पवर्षां च हिरण्यवर्षां=स्वर्णवृष्टिं रजतवृष्टिं वा रत्नवर्षां=रत्नवृष्टिं च अवर्षन्=कृतवन्तः ॥सू०५६॥
मूलम्—तए णं आसणेसु कंपमाणेसु छप्पन्नं दिसाकुमारीओ ओहिनाणोवओणेण भगवओ सिरिमहा-वीरस्स संसारताव्हारं जम्मं जाणिय सोकरिसहरिसा सिग्घं सिग्घं पम्सुघरं समागया, त जहा— भोगंकरा १, भोगवई २, सुभोगा ३, भोगमालिणी ४, सुवच्छा ५ वच्छमिता ६ वारिसेणा ७ बल्लहगा ८; एयाओ अट्टदिसाकुमारीओ अहोलोगाओ आगया तित्थयरं तित्थयरमायरं च कमणिज्जभावभरिय-चेयसा अभिवंदिज्जण पम्सुघरं संवट्टगवाएण विसोहिता सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं किच्चा भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य अदूरसामंते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठिसु ॥सू०५७॥

आने-जाने से लोगों में एक महान् अद्भुत प्रकाश फैल गया । देवों का सम्मिलन हुआ । आये हुए देवों का कल-कल शब्द हुआ । तथा देवों की खूब मीड़ हुई, अर्थात् इतने बहुत देवों और देवियों का आगमन हुआ कि राजभवन विशाल होने पर भी उसमें समाना कठिन हो गया ।

इसके पश्चात् देवों और देवियों ने एक बड़ी सुधा की वर्षा की, सुगंधित द्रव्यों की वर्षा की, सुगंधित चूर्ण की वर्षा की, पुष्पों की वर्षा की, सोने-चाँदी की वर्षा की और रत्नों की वर्षा की ॥सू०५६॥

देवो अहंशे अहर मणता शुंदता इता, तेशी 'कल-कल' शब्दो शोर भक्षोर पथु थो। इतो. आ शोर अरकुट रछेतो आने देव-देवीओनी पूथ लीड नभनी इती.
त्थारच्छी देवो आने देवीओओ ज्येक धष्ठी ओटी अभृतवर्षा इरी, सुगंधवर्षा इरी, चूर्णवर्षा इरी, पुष्पवर्षा इरी, सोनाचाँदी आने रत्नोनी पथु वर्षा इरी (सू०५६)

छाप्या—ततः तदु आसनेषु कल्पमानेषु पदद्वयानुसृत्य विष्णुमार्गः अत्रिधिमनोपयोगेन मगगत श्री महावीरस्य समारतापहारं जन्म त्रायथा सातर्हारीषां त्रीधं प्रवृत्तिरुह समागताः। तद्यथा—
 भोगद्वारा १, भोगवती २, सुभोगा ३, भोगमालिनी ४, सुवत्सा ५, वत्समिया ६ वारिसना ७
 वनारना ८। एता अष्टविष्णुमार्गोऽयंमोहादागताः, तीर्थंकर तीर्थंकरमातरं च कर्मनीयमावधुतचेतसाऽभि-
 नन्द प्रवृत्तिरुहं संतर्तक्यावेन विद्याय सुगन्धरगन्धित गन्धर्वविभूत कृत्वा मगवत्स्तीर्थंकरस्य तीर्थंकरमातुष
 भरुत्सामानं प्रागायन्त्याः परिगायन्त्योऽतिष्ठन् ।।सू०५७।।

मूत्र का अर्थ—‘तृप ग’ इत्यादि। तत्पश्चात् आसनों के काँपने पर छप्पन दिशाकुमारी दक्षिणा,
 अग्निदान का उपयोग समा कर मगवात् श्रीमहावीर का संसार कं ताप को हरने वाला जन्म जान कर,
 अत्यधिक हर्षित होकर जन्वी-जन्वी प्रवृत्तिरुह में आयी। वे इस प्रकार थीं—

(१) भोगंकरा (२) भोगवती (३) सुभोगा (४) भोगमालिनी (५) सुवत्सा (६) वत्समिया (७)
 वारिसना (८) वनारना; यह आठ दिक्कुमारियाँ अथोलोक से आयीं। य तीर्थंकर को और तीर्थंकर की माता
 को, प्रमत्त माताँ स भर हुए बिना स नमस्कार करके, प्रवृत्तिरुह को सर्वक वषु से शुद्ध करके, भेद
 सुगर्षा स सुगर्षित करके, गंध ही बची जैसा बना कर, मगवात् तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता से
 न अधिक दूर न अधिक समीप अर्थात् थोड़ी दूरी पर लक्ष्मी २ मगान और परिगान करने लगीं ।।सू०५७।।

भूतना अर्थ—‘तृप व’ इत्यादि। आसन क पश्चात् यदा, छापन दिशाकुमारीको, अवधिमानने
 उपयोग भूरी को, तेमने व्यजुवभा आन्सु के सदाशा ताप कस्यावाणा अनवान भदावीर देवने। अन्य
 यके छे आधी, तेको वही हर्षित यदने, उतावणी-उतावली प्रवृत्तिरुहमां आपी पछे-नी
 सु सु मगं होव छे तेनी इपरेथा पखु जताववमां आवे छे।

विद्याकुमारिणी केटवी अने कथा प्रशानी कवी त नीधि सुजल वषुववाभा आवे छे, ने तेको
 (६) वत्समिया (७) वारिसना (८) वनारना आ आठ दिशाकुमारिणी अथोलोकाधी आनी
 आ कुमारीको पौतानी इत्य अमुया, तीर्थंकर अने तेमनी भावने, भाव अनु पदन करे छे
 त्वास्याइ प्रसुति अकने स वत्स वषु दास आसुइ करी शुद्ध करे छे के क सुगंधि पदाधी दास तेने सुगंधित
 दे इर उनी कवी तीर्थंकरने दासवदां भाव छे (६०-५७)

टीका—‘तए णं आसणेसु’ इत्यादि । ततः खलु स्वस्वासनेषु कम्पमानेषु सत्सु पट्टपञ्चागदु दिवकु-
 मार्यः=पूर्वादिषु दिशु स्थिताः कुमारिकाः अवधिज्ञानोपयोगेन भगवतः श्रीमहावीरस्य संसारतापहारं=भवन-
 जनितसन्तापहारकं जन्म ज्ञात्वा सोत्कर्षहर्षाः=सोत्कर्षः=उत्कर्षसन्ति हर्षः=प्रसोदो यासा तथाभूताः सत्यः
 शीघ्र शीघ्रम्=अतिशीघ्रं प्रसूतियुह=प्रसवभवनं समागताः । तद्यथा—
 भोगङ्करा १, भोगवती २, सुभोगा ३ भोगमालिनी ४, सुवत्सा ५ वत्समित्रा ६, वारिसेना ७
 वलाहका ८; एता अष्टदिवकुमार्योऽधोलोकाद्=अधोलोकै गजदन्तगिरिचतुष्टयस्य अग्रस्ताद् स्थितेभ्यः स्वस्व-

टोका का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । अने-अपने आसनों के कम्पायमान होने पर छापन दिशाकुमा-
 रियों अर्थात् पूर्व आदि दिशाओं में स्थित कुमारियों, अवधिज्ञान के उपयोग (व्यापार) से भगवान् श्रीमहा-
 वीर का, भवजनित संताप को हरण करने वाला जन्म जान कर, अत्यधिक हर्षयुक्त होकर अत्यन्त शीघ्र
 ही प्रसूतियुह में आ पहुँचीं । वे इस प्रकार थीं—

(१) भोगकरा (२) भोगवती (३) सुभोगा (४) भोगमालिनी (५) मुवत्सा (६) वत्समित्रा
 (७) वारिसेना और (८) वलाहका; ये आठ दिशाकुमारियों अधोलोक से अर्थात् अधोलोक के चार गजदन्त

टीकाने अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । परम वीतरागी युरुधने जन्म यथा, कुदन्ती जानून अहुआर, छापन दिशाकुमारियोना
 आसन ह्यमथयी उडे छे अने अस्थिर मालुम पडे छे आवा आसनेो कदापि पशु यदायमान यतां नथी ।
 छता तेमसु यद्वितपशु नेध, धडी ओध लर विचारभग्न भनी नय छे । विचारभग्न यता, कोण सभनशु
 नडि पडवार्थी, पोताना अवधिसाननेो उपयोग करे छे आ ज्ञानदारा, धशे हर हर भनता भनयो नेध,
 काधक निरुथं पर आवी नय छे तहनुसार, उपयोग द्वारा, नेतां गशुअुं के, लरतक्षेत्रमा आ योवीशीना
 अ तिम तीर्थं करनेो जन्म, त्रिशणा राषोनी कूणथी थयो छे ।
 आ नालु थतानी साधेण, तमास काम पडता भूकी, उतावकी-उतावकी होडती आवी, प्रसूति गृहमा हाजर

थध गध । भगवानने नेतां, तेमनेो देह-भन अने वाणी प्रकुल्लित थयां ।

आ आठ कुमारियो, नीचे अधोलोकाभा वास करीने रहे छे तेयोनेो वास, हाथीना हंत्शजना आकारे
 रहेलां परतानी नीचे अनेलां लवनोमा डोय छे ।

मवनेभ्य आगता' सत्य' तीर्थकरं=आषिठीयद्वाराधे बुद्धिविषयीकृत्य प्रयोगात् सम्मत्यपि तीर्थकरं, च=पुनः तीर्थकरमातरं कृमनीयमाश्रुतचेतसा=यक्षसनीयमाश्रुणमनसा अभिवन्द्य=मगम्य मधुविष्टं=मसशृणुं सवतकवातेन=संवर्तकनामकवायुना विशेष्य=संसार्यं सुगन्धबरागिपठम्=उषमाग्न्धुगन्धित तथा-गन्धवर्धितभूतम्=मनेकविषगन्ध-गुणिकायां यथा सौरभ्य जाहससौरभ्यस्यैव तत्सदृशं=नानागन्धान्वितं कृत्वा मगभवतः तीर्थकरस्य तीर्थकरमातुष्य अदूर सामन्वे=नातिदूरे नाविसमीपे आगायन्त्यः=गीतमारम्भकाळे मन्द्रस्वरेण गायन्त्य परिगायन्त्यः=गीतमारम्भा नन्तर तारस्वरेण गायन्त्य अविष्ठित=स्थितवत्यः । सू० ५५।

पूर्वों के नीचे रहे हुए अपने-अपने मतों स आयीं। उन्होंने तीर्थकर को (भावी तीर्थकरत्व का आशयण कर वर्षमान में मी 'तीर्थकर' शब्द का प्रयोग किया गया है) तथा तीर्थकर की माणा को, मंडसनीय मतों से परिपूर्ण मन स बन्दन किया। बन्दन करके मधुविष्ट को सर्वक नामक वायु से स्वच्छ किया। उत्तम गंध से सुगंधित किया। मनेक गंधों वाली बची में जैसा सौरभ होता है, वैसे ही सौरभ स युक्त होने के कारण गंधवर्षी के समान किया अर्थात् नाना प्रकार की सुगंधों से युक्त किया। फिर तीर्थकर और तीर्थकर की माता से न ज्यादा दूर न ज्यादा समीप में के आगान तथा परिगान करने लगीं। अर्थात् गीत प्रारंभ करते समय मन्द्र (धीमे) स्वर से तथा प्रारंभ करने के बाद तार (तेजे) स्वर से गाती हुई लड़ी रहीं । सू० ५५।

तेजो परिशु आवासी, आश वीतरागी पुरुषने तथा तेभनी आत्माने, पवन-नभस्कार करे छिने
 पेतानी इरर उरर अदी बर छि आ इभारिज्जिनी इरर प्रथम अथते प्रभुतिगुरुदु येछ उपादी, हेही छु
 तेने आइइर करवायु छेक छि आ काकाले, अचटागं, निशेषमात्रमा साइ करी नाथे तेवा य्छर आछर इरता
 अचर्यक नामना वायुने उपशेज करे छि त्थारणाइ सुत्रधि पदाशेना छटाका करी प्रभुति गुरुने, मर-अधवाभान
 अनावी भूरे छि ने आता तेभर आणकने अते साइ करी अणकने पारस्वामं सुपादी पछेछि वावरदु आय छि
 अने अना इर उणी रहे छि. (सु० ५५)

मूलम्—पेहंकरा १, मेहवई २, सुमेहा ३, मेघमालिनी ४, तीयधरा ५, त्रिचिता ६, पुष्पमाला ७
अर्णदिया ८; एयाओ अट्ट एड्डल्लोगाओ आगया, पंचवण्णपुष्पबुड्हि किच्चा भगवओ महावीरस्स तम्मज्जए य
अद्रसामते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिह्हिंसु । १६ ।

नंदोत्तरा १, नंदा २, आणंदा ३, नंदिवद्धणा ४, विजया ५, वेजयंती ६, जयती ७, अपरा-
जिता ८; एयाओ अट्ट पुरत्थिमाओ ख्यगपव्वयाओ आगया आयसहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य पुरत्थियेणं
चिह्हिंसु । २४ ।

समाहारा १, सुप्पइण्णा २, सुप्पबुद्धा ३, जसोहरा ४, लच्छीवई ५, सेसवई ६, चित्तगुत्ता ७,
वसंधरा ८; एयाओ दाहिणाओ ख्यगपव्वयाओ आगया भिंगारहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य दाहिणेणं
आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिह्हिंसु । ३२ ।

इलादेवी १, सुरादेवी २, पुढवी ३, पउमवई ४, एगणासा ५, णवमिया ६, सीया ७, मद्दा ८;
एयाओ अट्ट पच्चत्थिमाओ ख्यगपव्वयाओ आगया तालियंटहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य आगायमाणीओ
परिगायमाणीओ चिह्हिंसु । ४० ।

अलंबुसा १, मियकेसी २, पुडरीगिणी ३, वारूणी ४, हासा ५, सव्वगा ६, सिरी ७, हिरी ८;
एयाओ अट्ट उत्तरिच्छाओ ख्यगपव्वयाओ आगया चामरहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य उत्तरेण आगाय-
माणीओ परिगायमाणीओ चिह्हिंसु । ४८ ।

चित्ता १, चित्तकगगा २, सएरा ३, सोयामिणी ४; एयाओ चउरो विदिसिख्यगाओ आगया
दीवियाहत्थगयाओ भगवओ तिसलाए य चउसु विदिसासु आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिह्हिंसु । ५२ ।

रूवा १, रूवंसा २, सुरुत्ता ३, रूववई ४; एयाओ चउरो ख्यगमज्झाओ आगया भगवओ तित्थ-
यरस्स चउरंगुलावसिहं नाभिनालं कप्पित्ता भूमीए निहर्णिंसु । ५६ ।

तए णं छप्पन्नं दिसाकुमारीओ तित्थयरं 'भवउ भगवं पव्वयाउए'—त्ति वइत्ता आगायमाणीओ परिगाय-
माणीओ चिह्हिंसु ॥सु०५८॥

छाया—मेघकृता १, मेघवती २, सुमेधा ३, मेघमासिनी ४, तोषघरा ५, विवित्रा ६, पुष्पमाला, ७, अनिन्दिता ८; एता अष्ट ऊर्ध्वलोकान् आगताः पञ्चवर्णपुष्पवृष्टिं कृत्वा मगवतो महावीरस्य तन्मातुष्वभद्रमात्मने आगायन्त्यः परिगायन्त्यः अविष्टान् । १६।

नन्दोषरा १, नन्दा २, आनन्दा ३, नन्दिवर्दना ४, विजया ५, वैजयन्ती ६, नयन्ती ७, अपराजिता ८, एता अष्ट वीरस्यैव रुच्यर्षवतात् भागता आदर्शस्तगता मगवतस्त्रिललायाश्च वीरस्येन आगायन्त्यः परिगायन्त्योविष्टान् । २४।

समाहारा १, सुमविद्या २, सुमपुद्गा ३, यक्षोषरा ४, सस्मीवती ५, शेषवती ६, विजगृप्ता ७,

मूल का अर्थ—'मेघकृता' इत्यादि । (१) मेघकृता (२) मेघवती (३) सुमेधा (४) मेघमासिनी (५) तोषघरा (६) विवित्रा (७) पुष्पमाला और (८) अनिन्दिता; ये आठ विशाकुमारियाँ ऊर्ध्वलोक से आयीं । व वीर वर्ण के लूकों की पूर्णा करके मगवान महावीर और उनकी माता स कुछ दूर, आगान—परिगान कृतो हुई लड़ी रहीं (१६)

(१) नन्दोषरा (२) नन्दा (३) आनन्दा (४) नन्दिवर्दना (५) विजया (६) वैजयन्ती (७) नयन्ती और (८) अपराजिता; ये आठ पूर्व विशाके दिशाकुमारियाँ रुचक पर्वत से आयीं और आयना शय में लिये मगवान तथा त्रिलला के पूर्व दिशा में आगान तथा परिगान करती हुई लड़ी रहीं । (२४)

(१) समाहारा (२) सुमविद्या (३) सुमपुद्गा (४) यक्षोषरा (५) सस्मीवती (६) विजगृप्ता और

भूताने आर्ध—'मेघकृता' अर्थात् (१) मेघकृता (२) मेघवती (३) सुमेधा (४) मेघमासिनी (५) तोषघरा (६) विवित्रा (७) पुष्पमाला (८) अनिन्दिता आ आठ दिशाकुमारिकाओं। उर्ध्वलोकभाषी उत्तरी आची आ गवा जोके पश्चिमी इंदोनी वृष्टि करी अगवान अने तेनी भावाने बाहिरां स ललावती, अरा इर उषी रकी (१६)

(१) नन्दोषरा (२) नन्दा (३) आनन्दा (४) नन्दिवर्दना (५) विजया (६) वैजयन्ती (७) नयन्ती (८) अपराजिता, जे आठ पूर्व विशाके रसेवा दिशाकुमारिकाओं, रुचक पर्वत उपरशी उत्तरी आची तेकोना दाहभा इप लुकीं अगवान अने तेभनी भावाने विधिशुभ्त बडन करी, अरा इर उषी रकी, बाहिरां आवा लागी ने अगवानने दिविगतवा वागी (२४)

(१) समाहारा (२) सुमविद्या (३) सुमपुद्गा (४) यक्षोषरा (५) सस्मीवती (६) विजगृप्ता (७) अपराजिता

वसुन्धरा ८; एता अष्ट दक्षिणस्मात् रुचकपर्वतात् आगता भृङ्गारहस्तगता भगवतः त्रिशलायाश्च दक्षिणेन
 आगायन्त्यः परिगायन्त्यः अतिष्ठन् । ३२ ।
 इलादेवी १, सुरादेवी २, पृथ्वी ३, पद्मावती ४, एकनासा ५, नवमिका ६, सीता ७, भद्रा ८;
 एता अष्ट पाश्चात्यात् रुचकपर्वतात् आगतास्तालवृन्तहस्तगता भगवतः त्रिशलायाश्च
 यन्त्यः परिगायन्त्यः अतिष्ठन् । ४० ।
 अलम्बुषा १, मितकेशी २, पुण्डरीकिणी ३, वारुणी ४, हासा ५, सर्वगा ६, श्रीः ७, ह्रीः ८;
 एता अष्ट उत्तरीयाद् रुचकपर्वतात् आगताः चामरहस्तगताः भगवत्त्रिशलायाश्च उत्तरेण आगायन्त्यः परिगा-

यन्त्यः अतिष्ठन् । ४८ ।

वसुन्धरा; ये आठ दिशाकुमारियाँ दक्षिण दिशा के रुचक पर्वत से आईं। इनके हाथों में भृंगार (झारी)
 था। ये भगवान् और त्रिशला के दक्षिण भाग में आगान-परिगान करती हुई खड़ी रहीं (३२)।
 (१) इलादेवी (२) सुरादेवी (३) पृथ्वी (४) पद्मावती (५) एकनासा (६) नवमिका (७) सीता
 और (८) भद्रा; ये आठ दिशाकुमारियाँ पश्चिम दिशा के रुचक पर्वत से आईं। इनके हाथ में पंखे थे।
 ये भगवान् और त्रिशला के पश्चिम भाग में आगान-परिगान करती हुई खड़ी रहीं। (४०)
 (१) अलम्बुषा (२) मितकेशी (३) पुण्डरीकिणी (४) वारुणी (५) हासा (६) सर्वगा (७) श्री
 और ह्री; (८) ये आठ दिशाकुमारियाँ उत्तर के रुचक पर्वतसे आईं। इनके हाथमें चमर थे। ये भगवान् और

चिपा १, चिक्कनका २, इतेरा ३, सौदाभिनी ४; एताभवत्सः विदिगुरुचक्रात् आगताः द्वीपिका-
इत्तगताः मगभवत्सिवायाम् वल्लय्य विष्णु आगायन्त्यः परिगायन्त्यः अविष्णुन् । ५२ ।

रूपा १, स्वांशा २, मुरुसा ३, रूपावती ४; एताभवत्सः रुक्ममण्यात् आगता मगभवत्स्तीर्यकरस्य
चतुःसुक्मशक्तिं नामिनां कस्मिन्वा भूम्यां न्यलनन् । ५६ ।

उतः सल्ल पट्टपद्याञ्चद् विद्याकुमार्यः तीर्थकरं 'मन्सु मगवान् पर्वतायुष्कः' इति उदित्वा आगायन्त्यः
परिगायन्त्योऽविष्णुन् ॥मृ०५८॥

(१) चिपा (२) चिक्कनका (३) इतेरा (४) सौदाभिनी; ये चार विद्याकुमारिया विदिवायों
(विष्णुकोळों) से आँ । इनके हाथ में छोटे-छोटे द्वीपक थे । ये मगवान और सिद्धला के चारों विदिवायों
में आगत-परिगत करती हुई लट्टी रहीं । (५२)

(१) रूपा (२) स्वांशा (३) मुरुसा और (४) रूपावती; ये चार विद्याकुमारियों रुक्म पर्वत के
मध्यभाग से आईं । इन्होंने मगवान तीर्थकर के चार अंगुल श्रेण नाम का काट कर भूमि में गाड़ दिया । (५६)
ये छपन दिशाकुमारियों 'मगवान पर्वत के समान चिरायु हों' इस प्रकार के आशीर्वाद वचन
बोल करके मागत-परिगत करती हुई लट्टी रहीं ॥मृ०५७॥

आठ दिग्भूतरीजो उतरना रुक्मप्रदेश परकी आयी तेजोना बाधमा 'अभर' इत्तां तेज्ये आयन इरती, नल्लुभमां
उत्पी रती. (४८)

(१) चिपा (२) चिक्कनका (३) इतेरा (४) सौदाभिनी; आ चार कुमारिजो विदिवाजो (डोवो) भांभी
उतरी आयी तेजोना बाधमां नाना नांना बीपडो' इत्तां आ चारे रज्जुजो पृथ्वीजोभा उकी रती दावरां
आध रती (५२)

(१) रूपा (२) स्वांशा (३) मुरुसा (४) रूपावती) जे चार कुमारिजो रुक्म पर्वतना मध्य भागभांभी
आयी रती आ कुमारिजोको, मगवानना चार अंगुल प्रभाव न्गणने भापी अग्निभा हाटी बीधा (५६)
आ छपन दिशाकुमारिजो मगवान पर्वतनी समान चिरायु यज्जो' आ प्रकारे रती आजां जाती
जेक आसु उकी रती. (५७८)

पञ्चशतयोजनोच्चनन्दन-
टीका—'मेहंकरा' इत्यादि । स्पष्टम्, ऊर्ध्वलोकात्=भद्रशालवनस्य समभूतलात्
वनगतपञ्चशतयोजनप्रमाणाऽष्टकूरूपस्थानात् । अदूरसामन्ते=नातिदूरे नातिसमीपे । १६ ।
'नंदोत्तरा' इत्यादि । स्पष्टम्, नवरम्-आदर्शहस्तगताः-हस्तगतः=हस्तस्थः आदर्शो=दर्पणो नासां ताः=
हस्तगृहीतदर्पणा इत्यर्थः । 'हस्तगत' शब्दस्य परनिपातः प्राकृतत्वात् । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । २४ ।
'समाहारा' इत्यादि । स्पष्टम्, भृङ्गारहस्तगताः-भृङ्गारः='क्षारी' इति भाषामसिद्धः, स हस्तगतो
यासां ताः ॥ ३२ ॥ नवरम्-तालवृन्तहस्तगताः-तालवृन्तानि=व्यजनानि हस्तगतानि
'इलादेवी' इत्यादि । स्पष्टम्,
यासां ताः-तालव्यजनधारिण्य इत्यर्थः । ४० ।

टीका का अर्थ—'मेहंकरा' इत्यादि । 'मेहंकरा' इत्यादिका अर्थ स्पष्ट है । केवल विशेष इतना ही है
कि ये ऊर्ध्व लोक से आईं अर्थात् भद्रशाल वन के सम भूभाग से पाँच सौ योजन ऊँचा नन्दन वन है,
उसमें पाँच सौ योजन प्रमाणवाले आठ कूटों से आईं । 'अदूरसामन्ते' का अर्थ है—न अधिक
दूर, न अधिक समीप । इन्होंने पाँच वर्ण के फूलों की वर्षा की ।
'नंदोत्तरा' आदिका अर्थ स्पष्ट है । केवल 'आदर्शहस्तगताः' का अर्थ है—उनके हाथों में दर्पण थे । २४ ।
समाहारा इत्यादि स्पष्ट है । 'भृङ्गारहस्तगताः' अर्थात् इनके हाथों में क्षारी थी । ३२ । इलादेवी आदि स्पष्ट है ।
केवल इनके हाथों में ताड़-पंखे थे, इतना समझना चाहिए । ४० ।

टीकानो अर्थ—'मेघकरा' इत्यादि. सूत्रनो अर्थ स्पष्ट छि. इक्षत लेह आटुंज छि छे उर्ध्वलोकाथी आवी
अटवे बद्रशाण वतन्ती समलूमिथी पांथशो लेजन ठी'यु' नंदनवन छि. त्यां पाथसो पांथसो योजन प्रमाथुवाणा
आठ इठो आवेक्षा छि ते इठोथी आवी. अदूरसामन्ते नो अर्थ-नछि हर नछि' नञ्छ, तेवो थाय छि. (१६)
'नंदोत्तरा' विगेरेनो अर्थ स्पष्ट छि. केवण-आदर्शहस्तगता नो अर्थ अवेवा थाय छि छे तेजोना हाथमां
दरपथु इतां (२४) समाहारा इत्यादि स्पष्ट छि भृङ्गारहस्तगता नो अर्थ अवेवा थाय छि छे हाथमां 'आरी'
इती. (३२) इलादेवी विगेरेनो अर्थ स्पष्ट छि. इक्षत तेजोना हाथमा ताडना पंथा इतां, तेवो अर्थ अछि' इराय छे. (४०)

‘बर्लबुसा’ इत्यादि। स्पष्टम्, नवरम्-चामरस्वगताः=चामरधारिण्यः । ४८।

‘विषा’ इत्यादि। स्पष्टम्, नवरम्-दिपिकाहस्वगताः=दीपधारिण्यभतस्रः । ५२।

‘स्वा’ इत्यादि। स्पष्टम्, नवरम्-स्वाह्वयप्रथसौ नामिनालच्छेदित्यम् । ५६।

स्वक्प्रवृत्तौ हि जम्बूद्वीपत्वमेकवर्तस्य माकाररूपेण वर्तते इति बोध्यम् ॥

‘वृएर्ण’ इत्यादि। तत्र ललुटाः एवौक्ताः पदप्रआच्छपि दिक्कर्मार्थः ‘हे मगवन! मवान् पर्यव्यापुष्कः= पर्यवत् विरायुष्को मवत्’ इति=इत्सम् आर्द्धीर्चनं तीर्थेकारम्-उचित्वा=उक्त्वा आगायन्त्यः परिगायन्त्योऽविष्टुन् ॥ सु० ५८ ॥

अर्लबुषा आशि स्पष्ट है। सिर्फ़ यह विशेषता है कि ये चामरधारिणी थीं । ४८।

विषा आदि स्पष्ट है। सिर्फ़-यह विशेषता है कि ये चार दीपक लिये थीं । ५२।

स्वा आदि स्पष्ट है। सिर्फ़-यह विशेषता है कि ये चार नाक छेदन करने वाली थीं । ५६।

स्वक पर्यंत जम्बूद्वीप के माकार (परकोट) के रूप में अवस्थित है, ऐसा समझना चाहिए।

यह सब छप्यन दिशाङ्कमारियों ‘हे मगवन! आप पर्यंत के समान विरायु हों’ इस प्रकार तीर्थेकार को आर्द्धीप के कवन कर कर आगान और परिगन करती हुई स्थित हुईं । सु० ५८ ॥

अर्लबुषा आदिने आर्लं भुवु ३५४ छे विशेषता जेटकी है आ दिशाङ्कभारिणिना हाथमा, ‘व्याभर’ रकेलं इतं। (४८)

विषा आदि स्पष्ट छे दिशिप्रभा ते आरेना हाथमा ‘दीवा’ इतं। (५२)

स्वा आदि स्पष्ट छे विशेषता जे है-ते आर दिशाङ्कभारिणिना नाण छे ४ हवावाणी इतं। (५६) २-अड पकीस, अ वृ द्वीपना आकार समान दोषाव छे

आ सब छप्यन दिशाङ्कभारिणिना कारवानेने, छे मगवन! तमो पर्यंतनी समान विरायु माजो’ जेवा आशिप्रवर्तनेने जेदी, आतां आतां छकी रही (५०५८)

मित्रप्रेरिताः, क्रियन्तश्च देवीप्रेरिताः=सद्देव्या प्रेरिताः, क्रियन्तश्च कौतुकाऽऽ-लोकनो-त्कण्ठिताः-कौतुकं=कुतूहलं तस्याऽऽलोकनं=निरीक्षणं तत्रोत्कण्ठिताः=उत्सुकाः, क्रियन्तश्च अद्भुतम्=आश्चर्यं द्रष्टुम्, क्रियन्तश्च देवाः तीर्थंकरजन्मसहोत्सवं द्रष्टुम्, क्रियन्तश्च भगवन्तं द्रष्टुम्, क्रियन्तश्च 'अयं भगवान् मुक्तिमार्गस्य=मोक्षमार्गस्य दर्शको भविष्यति' इति कृत्वा=इति बुद्ध्वा, क्रियन्तश्च 'अस्यामवसर्पिण्याम् अस्मिन् भारते वर्षे अयं चरमः=अन्तिमः तीर्थंकरः' इति कृत्या, क्रियन्तश्च आत्मीयभावेन, क्रियन्तश्च देवा भक्तिभावेन अचलन् ॥३०५९॥

मूलम्—जं समयं च णं देवा चलिया तं समयं च णं तस्य पचट्टमाणेहिं नाणाविह-दिव्व-दुडिय-सद्-संनिनाएहिं घटाणिणाएहिं तप्यडिज्जुणीहिं देवदेवीकलकलेहिं च अहंढं आगासमडलं गुंजियं आसि ।

तसि समयंसि कोडिसो देवविमाणेहिं विमलमवि आगासं संकिणं जायं ।

तस्य सीहागिइविमाणवासिणो देवा गयागिइविमाणारूढे देवे कहिसु—“भो भो अगे सरतो देवा ! सये सये हत्थिणो एगच्चो करेमाणा चलंसु, अब्बहा दुद्धरो मम केसरी तुम्हाणं हत्थिणो हणिस्सड । एवं महि-सागिइविमाणारूढा आसागिइविमाणारूढे गरुलागिइविमाणारूढा भुयंगागिइविमाणारूढे, चित्तगागिइविमाणारूढा मेसागिइविमाणारूढे देवे य कहिसु ।

देवी के आग्रह से चले, कितनेक कुतूहल देखने की उत्कंठा से चले, कितनेक आश्चर्य देखने के लिए चले, कितनेक तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव देखने के लिये चले और कितनेक भगवान् का दर्शन करने के लिए रवाना हुए । कोई-कोई यह समझ कर गये कि यह भगवान् मोक्षमार्ग के दर्शक होंगे, और कोई-कोई यह सोच कर कि इस अवसर्पिणी काल में, इस भरतक्षेत्र में यही अन्तिम तीर्थंकर हैं । कुछ देव आत्मीयभाव से चले तो कुछ भक्तिभाव से प्रेरित होकर चले ॥३०५९॥

आग्रहणी उपडया, डेटलाक डुवुडल नेवान्नी उत्तंठाथी उपडया, डेटलाक आश्चर्यं नेवाने माटे उपडया, डेटलाक तीर्थंकरतो जन्ममहोत्सव नेवाने माटे उपडया, अने डेटलाक भगवानना दर्शन करवाने माटे रवाना थयां डेड डेड जेम जेम समलने गया डे आ भगवान मोक्षमार्गना दर्शक थशे, अने डेड डेड जेम जेम धारीने गया डे आ अवसर्पिणी डाणगा, आ भरतक्षेत्रमा आ ज अन्तिम तीर्थंकर छि. डेटलाक डेयो आत्मीयभावणी गया तो डेटलाक भाडितभावथी प्रेराने गया. (सू०५८)

केवराया देवा उत्सुपणेन मिते मोचन भगो वसिष्ठु। केवराया कर्षिष्ठु-भो मापरा। चिह्नं चिह्नं भग्नेवि आगच्छामो। केवराया भगो वसिष्ठे विचार्य कुम्भमाणे कर्षिष्ठु-भं अज्ज पञ्चदिण पट्टर, भग्गे सुव्णीं वेच आगच्छंठु।

एवं गणपतबळे गमणेय देवाणं सिरसि आसंनिरीए वंदकिरणपढणेण निजारा अवि देवा नरामंतोमिव सोमिष्ठु। देवसुदेसु टिया तारा घढासारा सखिलसिद्धि, गळेसु य ता रयणगेवेज्जगारं पिव दीसिष्ठु, देवसरीरेसु य ता सेयविदुणोव्व भासिष्ठु ॥२०६०॥

छाया—यस्मिन् समये च लखु देवाभ्यखिलास्तस्मिन् समये च लखु तत्र प्रवर्तमानैः नानाविध-विष्य-श्रुतित-श्रुत-संनिनादैः पश्यानिनादैः तत्प्रतिध्वनिभिर्देवदेवीकसकलैश्च अलप्युमाकानामण्डलं गुञ्जितमासीत्। तस्मिन् समये कोटिशा देवविमानैर्विशालमप्याकाशं सफीर्णं जातम्।

तत्र लखु सिंहाऽऽतिविमानवासिनो देवा गनाऽऽकृतिविमानास्त्वन देवान् अक्षयन्-“भो भो

मूल का अर्थ—‘न समये च षं’ इत्यादि। जिस समय देव स्वाना हुए, उस समय वहाँ होने वाले विविध दिव्य वायों क श्रुतों की ध्वनि से, पटाओं की ध्वनि से, और उस ध्वनि की प्रतिध्वनि से तथा देवों और देवियों के कसकल-नाद से सम्पूर्ण आकाशमंडल गुंज उठा। उस समय कोटि-कोटि देवविमानों स विशाल आकाश भी सँकड़ा जान पड़ने लगा।

वहाँ सिंहाकार (सिंह के समान आकृति वाले) विमानके वासी देव गजाकर-विमानों पर आरुढ़ देवों से कहने लगे-‘अजी आगे-आगे चलने वाले देवों! अपने-अपने हाथियों को जरा एक किनारे

भूदने। अध-‘अं समये च षं’ इत्यादि से अर्थसे देवे। स्वाना वयां ते अर्थसे, स्वयं-दोहाडभां, विविध दिव्य वायोना ध्वनि यत् शब्दो. पटाञ्जोनी ध्वनिपठे, ध्वनिञ्जोना प्रतिध्वनिञ्जो वठे देव-देवीञ्जोना ‘कसकल’ना नाडवठे, सप्लु आकाशमंडल आऽऽकृत् तं अर्थसे कठोरो। देव-विमानोशी आकाश स कयात् अयु ङोभ। तेभ अक्षुवा वाऽऽगु शिंहाकार वाऽऽ विमानभां खठेवा देवे। अज्जकार निमानोना देवाने कठेवा वाऽऽ दे देवे। तसे

अग्रेसरन्तो देवाः ! स्वकान् स्वकान् हस्तिन एकतः कुर्वन्तश्चलन्तु, अन्यथा दुर्द्वेरो मम केसरी युष्माकं हस्तिनो हनिष्यति । एवं महिषाऽऽकृतिविमानारूढा अश्वाकृतिविमानारूढान्, गरुडाकृतिविमानारूढान् शुभ्रकृतिविमानारूढान्, चित्रकाकृतिविमानारूढान् मेपाकृतिविमानारूढान् देवाश्च अरुथयन् ।

कियन्तो देवा उत्सुकत्वेन मित्राणि मुक्त्वाऽग्रश्चलन् । कियन्तोऽरुथयन्-भो भो भ्रातरः ! तिष्ठन्तु तिष्ठन्तु, वयमपि आपच्छामः । कियन्तोऽग्रेश्चै चलिहं विवादं कुर्वणान् अरुथयन्-यद् अद्य पर्वदिनं वर्तते, अतस्तूष्णीयेव आगच्छन्तु ।

एवं गगनमण्डले गमनेन देवानां शिरसि अतिसन्निधेः चन्द्ररिणपतनेन निर्जरा अपि देवा जरायन्त करके चलिष्ये, नहीं तो हमारा पराक्रमी सिंह आपके हाथी की हत्या कर देगा !' इसी प्रकार महिषाकार-विमान-वालों ने अश्वाकार-विमानके वासियों से, गरुडाकार विमान वालों ने शुभ्रकाकार विमानके वासी देवों से कहा ।

कितने ही देव उत्कंठा के कारण अपने मित्रों को छोड़ कर आगे चल दिये । कोई-कोई कहने लगे—“भाइयो, ठहरो ठहरो, हम भी आ रहे हैं ।” कोई-कोई आगे चलने के लिए विवाद करने वालों से बोले—‘आज उत्सव का दिन है, अतः चुपचाप चले आओ ।’

इस प्रकार आकाश-मंडल में चलने से देवों के मस्तक पर अत्यन्त निकटता से चन्द्रमा की

आगण आगण बाल्या ज्यो धी पशु तमारा डालिथियोने ज्येक तरक्ष तारवी अभने आगण ज्वाधे, नडितर अभारा पराकभी सिडे तमारा डालिथियोनी डल्या करी मेसशे !” आ प्रकार लेसना आकारवादा देवातेमनी आगण नीकणी चुडेवा अश्वाकार विमानना देवोने परकारता, गरुडाकार विमानियो, सभंकार विमानियोने ज्येदेज डेकता, श्रिताना आकारवाणा विमानियो, घेटाना आकारवाणा विमानियो ने धमकावता

डेकटाक देवा उल्लंघारी अने डोथना कारणे चेताना मित्रोने पशु छोडी आगण-आगण नीकणी जतां. डेध डेध ते ज्येक भीजने कडी पशु देता डे “बाधियो ! जरा शेभी जव, अमे पशु तमारी साथे आवीज्ये छीज्ये” डेध डेध ते, आगण मार्गं काठवा वातोडिया अने हवीदथाज देवोने साक्ष शब्दोभा संलणावी पशु देता डेता डेता डे “आज उरसवनेो दिवस छे माटे थुपथाप रही, वणतसर पडोथी जव, नडितर रही ज्यो !

आकाशमण्डलमां चद्रलु स्थान जथा आवी रहेलु छे ते स्थाननी नलुक देवा प्रथाथु करी रथां डतां.

इवाऽशामन्त । देवमूर्धसु सिवास्तारा घटाकारा अब्रह्मन्त, गलेषु च ता रत्नप्रैवेयसानि इव शरश्यन्त, देवदरीषु च ता स्वैवपिन्त्र इव अभ्रमासन्त ॥सू०६०॥

टीका—‘अं समयं चै’—स्पादि । यस्मिन् समये च लक्ष्म, प्राकृतत्वात्प्रय सप्तम्यर्थे द्वितीया, देवाम्ब सिवाः, यस्मिन् समये च लक्ष्म तपःदेवसमोर्त्तमानैः=जायमानैः नानाविधदिव्यश्रुतितन्त्रसंनिनादै—नाना विधानि=अनेकरूपकाराणि यानि दिव्यानि श्रुतितानि=वादिनामि तेषां श्रुतसन्निनादै—श्रुतैः=सामान्यश्रुतैः सनि नादैः=सम्यक् श्रुतैः, तथा—श्रुतानिनादै, तत्प्रतिधनिभिः=दिव्यवाप्यप्यप्यप्रतिश्रुतैः देवदेवीकृतश्रुतैः= देवानां देवीनां कृतश्रुतश्रुतैश्च अल्पश्रुतं आकाशमण्डलं गुञ्जित=मधुराभ्यन्तसन्दर्याप्तम् भासीव ।

कित्ने पठ रही थीं । इस कारण वे देव निर्जर (जरा-मुद्रापे से रहित) होकर भी जरावान्-(श्रुत) जैसे दिव्यायो विदे । देवीं के सिर पर स्थित तारे घट जैसे दिव्याईं देते प । गले मं वे रत्नमय आभूषण सरीखे नजर आते थे और देवीं के शरीर पर पसीने की बुंदों की तरह चमक रहे थे ॥सू०६०॥

टीका का अर्थ—‘अं समयं चै’ इत्यादि । जिस समय देव स्वाना हुए, उस समय देवां के मार्गमें होने वाले नाना प्रकार के दिव्य धारों के सामान्य श्रुतों से तथा सम्यक् प्रकार से ज्ञात हो जाने वाले श्रुतोंके-निनादां से, धंयामों की ध्वनि से, दिव्य वायों एव पंटाओं की प्रतिध्वनि से, देवां तथा

व इभ्यनां श्वेत शिखि, देवीना भाषा पर यदवासी ते देवे निरंश-श्वेतश्वेत-वचरना होषा छता वश- वात्रा कोटहै वृद्ध देवा देवावा वाभ्यां

देवोत्प भाषा पर आवेका ताराको धरा लेवा दीधना छना ने गजभां आवेका ताराको अत्रभाग अत्रभाज धता होवाने कोले देवीना रत्नमय आभूषणो सभान शिखिश्चर धनां छतां आ उभशत, देवीना शरीरपर आवेता ताराको परसेवाना दीपां बलि आभनां न होषा तेम द्यूता, शरणु के देवा आ तागम श्योनी वधभा यधनेन परशर धता छतां (सू० ६०)

टीका का अर्थ—‘अं समयं चै’ इत्यादि ने समये देवो श्वाना यथा, त्वादे देवीना भाभं भां धता निबिध प्रभारना दिव्य वाऽश्रुताना आभान्य अत्राश्रमी तथा शरी शिते प्रधरी श्रुता अत्राश्रमी शरीना अत्राश्रमी शिख वायो छने धटाना प्रतिधनिमी

मूलम्--तए णं आसणंसि कंमाणंसि सके देविदे देवराया ओहिणाणेण चरमतित्थयरस्स जरुमणं जाणिऊण सिद्धाणं तित्थयरस्स य 'नमोत्थु णं' दल्लड, दल्लित्वा हरिणेणभेसिणं देवं पायत्ताणीयाहिचइं जोयणपरिमंडलं सुयोसं घंटं घोसिउं आणवेइ। तए णं हरिणेगमेसिणा देवेणं सुघोसाए घटाए घोसियाए समाणीए सोहम्ममे कण्णे अणोसु वत्तोसविमाणसयसहस्सेसु अण्णाइं एगुणं वत्तीसघंटासयसहस्साइं जसगसमणं कणकणरावं काउं पवचाइं। तए णं अकम्हा आसाइयाए सपयाए दीणा विव तम्मि समयम्मि सब्बे देवा य देवीओ य दिव्वं आणंदं अणुहंथिसु।

तए णं हरिणेगमेसिदेवेणं घोसियं सक्किदस्स आणं सोचा सब्बे देवा हहट्टुद्दा हरिसवस-विसप्पमाण-हियया समयसयविमाणमारुहिय चल्या। तथ केवइया इंदस्स आणाए, केवइया भिचपेरिया, केवइया देवीपेरिया, केवइया कोउपालोणुकंठिया, केवइया अब्भुयं दंहुं, केवइया तित्थयरजम्ममहोच्छवं दंहुं, केवइया भगवंतं दंहुं, केवइया इमो भयवं भुत्तिमगस्स दरिसगो भविस्सइ-त्ति कट्टु, केवइया इमाए ओसप्पिणीए अस्सि मारहवासे इमो चरिमो तित्थयरो-त्ति कट्टु, केवइया अप्पणिज्जभावेण, केवइया भत्तिभावेण चल्लियु ॥सू० ५९॥

छाया--ततः खलु आसने कम्पमाने शक्रो देवेन्द्रो देवराजः अत्रधिज्ञानेन चरमतीर्थकरस्य जन्म ज्ञात्वा सिद्धेभ्यः तीर्थकराय च नमोत्थु ण-(नमोऽस्तु खलु) ददाति, दत्त्वा हरिणेगमेपिणं देवं पदात्यनीकाधिपतिं

मूलका अर्थ--'तए णं' इत्यादि। तत्पश्चात् आसन कोपने पर शक्र देवेन्द्र देवराज ने अत्रधिज्ञान से चरम तीर्थकर का जन्म जान कर सिद्धों को तथा तीर्थकर को 'नमोत्थु णं' दिया, देकर पदात्यनीकाधिपति (पैदल सेना के सेनापति) हरिणेगमेषी देव को एक योजन घेरा वाली सुघोषा नाम की घंटा बजाने की आज्ञा दी। हरिणेगमेषी देव ने जब सुघोषा घंटा बजाई तो सौधर्म देवलोक के एक कम बत्तीस लाख

भूणोना अर्थ--'तए णं' इत्यादि. थकेन्द्रु पथु सि हासन अदित थता ते (वथार ऊश्वा दाग्था. अवधिमानना उपयोग वडे दृष्टि ई कता, तेने तीर्थ करनेो जन्म थयेो ज्थुयेो सिद्ध लगवान अने तीर्थे करने नमोत्थु णं ने। याड जोली नभस्कार कथी

त्यार थाड पायदण सेनाना अधिपति हरिणेगमेषी हेवने, 'सुघोषा' नामनेो घंट थाजववा लूकम कथी आ घंट जोक जेजन्तना घेरावावाणेो अनेदो। इतेो.

योगनपरिसङ्ख्यां घृषोपां पट्यां घोषयितुम् आह्रापयति । ततः सखु हरिणैर्गमयिष्या देवेन घृषोषायार्थं घट्यायां घोषितायां सत्यां सीपैर्मै क्लृये मन्थेषु एकोनश्रापिष्वधिविमानश्रवसश्शेषु अन्यानि एकोनानि श्रापिष्वधृष्या नवसहस्राणि गुणपद्मनकरायां कुरुं शृष्यानि । ततः सखु अकस्मादासाद्वितया सम्पदा दीना इव तस्मिन् समये सर्वे देवाश्च देव्याश्च दिव्यमानन्दमन्त्रपूजन ।

तत्र सखु हरिणैर्गमोषिणा देवेन घोषितां शुक्रेन्द्रस्य आज्ञां मुक्त्वा सर्वे देवा इष्टदृष्टा हर्यवस-वि सर्पद-शृङ्गाः सस्तविमानमास्त्रं चलिता । सत्र क्रियन्त इन्द्रस्य आश्रया, क्रियन्तो मिश्रभेरिवाः, क्रियन्तो देवीभेरिवाः, क्रियन्त कौटुका-सोकनो-त्कण्ठिणा, क्रियन्तोऽश्वहवं द्रुपुं, क्रियन्तः तीर्थकरजममहासात्ववं द्रुपुं,

विमानों में अन्यान्य एक कम पचीस साल पंटापे सनसलनान स्मार्ति । उस समय जैसे दीनोंको मवानक ही सम्पत्ति मिल गई हो, इस प्रकार समस्त देवों और देवियों को दिव्य आनन्दका अनुभव हुआ ।

तत्पश्चात् हरिणैर्गमयी देव द्वारा घोषित की हुई शुक्रेन्द्रकी आज्ञा को सुनकर सब देव हुए हुए हुए । सबके हृदय एवं से तिल गये । सब अपने-अपने विमानों पर सवार होकर चल पड़े । उनमें से कोई कोई इन्द्र की आज्ञा से, काश-काई मिश्रों की प्रेरणा से, कोई-कोई अपनी देवी के अनुरोध से, काश-कोई कौटुक देलने की उत्पत्त्या से, कोई कोई अश्वसुत इश्य देलने को, कोई-कोई तीर्थकर का जन्म

पद वाश्रतानी सावे सौभम देवदोहनना श्रेष्ठ श्रोत्रो जन्तोस वाश्र विमानोना श्रेष्ठ श्रोत्रो जन्तोस वाश्र पट्याकोना प्रवृषजव्याद श्रवा वाश्रोः । नेम गरीज भाषुश्रे ने, भाश्रिमिश्र सपत्ति भगी वाश्र ने नेवे। आनन्द श्रापी रहे, तेवे। जे कानुसन्धे।

इसलिएमिथी देव द्राघ, शेषिन मयेही शुक्रेन्द्रनी आज्ञाने श्रांजणी सर्व देवे, पुश्र-पुश्राण मयां । जथा इथे-भच मयां । इहेक जन्म, पौतपौताना विमान पर जेशी, आहतां श्रायां ।

होप देवे। ईन्द्रनी आज्ञा श्रायायी श्रवाना मयां होप देवे। मिश्रानी प्रेरणाकी प्रेरणा होप पौतानी देवीना आश्रकने कीषि जेवाश्रा होप होतुक देजश्रानी कःकःहापी आश्रवाया होप आश्रयकारक मदनश्री होश्रावा होप वीथीश्रनेना जन्म भवे।श्राधर जेवानी आश्रवाकी होज्य होप अश्रवानना इश्रन श्रवाना कलिवापी श्रुत उपदम्य,

क्रियन्ती भगवन्तं द्रष्टुं, कियन्तः 'अयं भगवान् मुक्तिमार्गस्य दर्शको भविष्यति' इति कृत्वा, कियन्तः—'अस्या-
मवसर्पिण्याम् अस्मिन् भारतवर्षे अयं चरमस्तीर्थकरः' इति कृत्वा, कियन्त आत्मीयभावेन, कियन्तो भक्ति-
भावेनावलन् ॥सू०५९॥

टीका—'तए गं' इत्यादि । ततः खलु आसने कम्पमाने सति शक्रः=तदाख्यो देवेन्द्रः=सुरपतिः,
देवराजः=देवनायकः अधिज्ञानेन=अधिज्ञानोपयोगेन चरमतीर्थकारस्य=अन्तिमचतुर्विंशतितमतीर्थकरस्य जन्म
ज्ञात्वा सिद्धेभ्यः तीर्थकराय च 'नमोस्तु गं' ददाति, दत्त्वा पदाल्यनीकाधिपति=पद्चारिसैन्यनायकं हरि-
जैगमेषिणं देवं योजनपरिमण्डलां सुघोषां=सुन्दरघोषवतीत्यन्वर्थसंज्ञां घण्टां घोषयितुं=वादयितुम्, आज्ञा-
पयति=आज्ञां ददाति ।

महोत्सव देखने को, कोई भगवान् का दर्शन करने के लिए, कोई यह समझ कर कि यह भगवान् मोक्ष-
मार्ग के दर्शक होंगे, कोई यह जानकर कि इस अवसर्पिणी काल में, इस भारत क्षेत्र में यही अंतिम तीर्थ-
कर है, कोई आत्मीयभाव से और कोई भक्तिभाव से खाना हुए ॥सू०५९॥

टीका का अर्थ—'तए गं' इत्यादि । तदनन्तर आसन कौपने पर शक्र नामक देवाधिपति देवनायक
ने अधिज्ञान द्वारा अन्तिम चौबीसवें तीर्थकर का जन्म जान कर सिद्ध भगवान् को तथा तीर्थकर को
'नमोस्तु गं' दिया, अर्थात् 'नमोस्तु गं' का पाठ पढ़ कर नमस्कार किया । फिर पैदल सेना के नायक हरिजै-
गमेषी देव को एक योजन के घेरे वाली सुघोषा-मनोहरध्वनिवाली इस यथानाम तथागुण वाली घंटा को
बजाने की आज्ञा दी ।

कोई आ भगवान् मोक्षमार्गना दृशकं यथे अम ण्णुने रवाना थया. आ अवनसर्पिणी क्राणमां, अर्द्धिं भरतक्षेत्रे,
भगवान् अतिम तीर्थंकर छे अम समल्ल डोछ देवे, प्रयाणु क्युं; कोछ भक्तिभावथो जे आछ याही नीकण्थं.
अम विविध द्रष्टोकाणु राणीने सोधमं देवदोडना देवोअे, भरतण्डमा आववा रवानगी वीधी (सू०५९)
टीकाते अर्थ—'तए गं' इत्यादि. त्याख्याद आसन धुजता थके नामना देवाधिपति देवनायके अधिज्ञानद्वारा अन्तिम
चौबीसमा तीर्थंकरने जन्म थयातु ण्णुने सिद्ध भगवानने तथा तीर्थंकरने "नमोस्तु गं" दीधु, अेटवे के "नमोस्तु गं"
ने. पाठ ण्णुने नमस्कार क्युं पधी पाथण्ण सेनाना नाथक हरिजैगमेषी देवने अेक योजनना घेरावावाणी
सुघोषा-मनोहर अवाज वाणी, यथानाम तथा. शुणुवाणी. घंटा—वगाडध्वनि-ध्वनि ॥ अर्थात्. अर्थात् मूजादे

उतः=उदन्तरं=सह इरिगैमेणिषा देवेन सुयोपाया पट्याणां पोपितायो=आदिवाया सत्यां सौषर्म
 कल्पे भन्तेषु एकोनद्वामिषद्विमानशतसहस्रेषु भन्त्यानि एकोनानि=एकन्यूनानि द्वात्रिंशद्व्यष्टाशतसहस्राणि=अष्टानां
 द्वात्रिंशत्सहस्राणि युगपत्=एककालावच्छेदेन 'जगत्समाप्तं' इति युगपदर्थे देशीयशब्दः, कनकनारवं=कनकनेति
 शब्दं कर्तुं प्रवृत्तानि=उद्यतानि । उतः=उदन्तरं=सहस्रकस्मात्=सहस्रा आसादितयो=आप्तया सम्पदा दीनाः=रुद्धा
 इव सर्वे तेषा देवेषु दिव्येषु=भवद्गुणेषु आनन्देषु=युगन्मन्त्रसम्पन्नानि प्रमोदेषु अन्यमन्त्र=अनुभूतवन्त ।
 उतः सह इरिगैमेणियेवेन पोपिताः=सृचितां शक्रेन्द्रस्य आह्वाणेषु=आह्वावचने श्रुत्वा सर्वे देवा इष्ट-
 कृष्णः=भक्तिप्रसन्ना ईष्यन्-विसर्पवृ-शूद्र्याः=इर्षोःकुलमानसाः स्वस्त्विमानम् आरूढः=आभित्य चक्रित्वाः=प्रस्थिताः ।
 तपःचलितेषु देवेषु सर्वे क्रियन्तो देवा इन्द्रस्य आह्वाया अचलश्रिति परेषान्यय । एवमप्रोचपि । क्रियन्तव

उत्पत्त्यात् इरिगैमेणी देव के सुयोपा पंटा वजाने पर सौषर्म कल्प में एक कम वचीस लाल
 विमानों में, एक कम वचीस लाल पंटाएँ एक ही साथ बनने लगें।

उस समय समस्त देवों और देवियों को प्रभु के जन्म का समाचार सुनकर ऐसे भव्य
 आनन्द का अनुभव हुआ, जैसे दरिद्र को अचानक ही सम्पदा की प्राप्ति स होता है।

उत्पत्त्यात् इरिगैमेणी देव द्वारा सृचित शक्रेन्द्र की आह्वा सुनकर सभी देव इष्ट और तुष्ट
 भयात् भयन्त प्रसन्न हुए । ईर्ष से उनका हृदय फुल उठा। सब अपने-विमानों पर चढ़ कर चले।
 उन देवों में क्रितनेक इन्द्र की आह्वा से चले, क्रितनेक मित्रों की प्रेरणा से चले, क्रितनेक अपनी

दरिद्रीभमेणी देवे सुयोषा नाभतो घट भवत्वा ए सौषर्म इत्यथा जत्रीस बाभ्रभां जिक्रि कोठा विभानोभां, जत्रीस बाभ्रभां
 जिक्रि कोठा घट जिक्रि सांके ए वाशवा बाज्वा ते वपते सभस्त देवे। अने देवीजने प्रभुना ए भना उभावाए सांकेगीने
 जिक्रि कोठा अद्भुतान् आनइने। अनुभाव वयो हे नेटो। इतिदने ज्वाणक य पत्त प्र. २२८ सवाधी याव छि
 त्याश्याह इरिगैमेणी देव द्वारा सृचित शक्रेन्द्रनी आह्वा सांकेगीने जथा देवे देव अने सतीष पाठया
 नीकण्यां ते देवेषां हेटवाह भुंइती ज्वाणधी उपरथां हेटवाह ितोनी प्रशवाधी उपरथां हेटवाह शोतानी इरिनी

तस्मिन् समये कोटिशो देवविमानैः विशालमपि आकाश संकीर्णं=देवगणभृत्त्रात मृत्या अपि प्रवेशशून्यं जातम्।
तत्र=विमानचारिणु देवेषु खलु सिंहाऽऽकृतिविमानवासिनः=सिंहाऽऽकारविमानस्था देवा गजाऽऽकृति-
विमानारूढान्=हस्याकारविमानासीनान् देवान् अकथयन्=उक्तवन्तः, किम्? इत्याह- भौ भौ अग्रे सरन्तः=
चलन्तो देवाः! स्वकान् स्वकान्=निजान् निजान् हस्तिन एकतः=एकपार्श्वे कुर्वन्तः चलन्तु=गच्छन्तु, अन्यथा= एकतः
करणभावे दुर्द्धरः=वली मम केसरी=सिंहः युष्माकं हस्तिनो हनिष्यति। एवम्=अनेन प्रकारेण महिषाऽऽकृति-
विमानाऽऽरूढाः=महिषाऽऽकारविमानाऽसीना देवा अश्वाकृतिविमानाऽऽरूढान् देवान्, गरुडाऽऽकृतिविमानाऽऽरू-
ढाः=गरुडाकारविमानाऽसीना देवा भुजङ्गाऽऽकृतिविमानाऽऽरूढान् देवान्, चित्रकाऽऽकृतिविमानाऽऽरूढाः=चित्रको=

देवियों के कलकल नाद से, समस्त आकाश गूँजने लगा-मधुर एवं अस्फुट शब्दों से व्याप्त हो गया। उस
समय करोड़ों विमानों से विस्तीर्ण आकाश भी, देवसमूह से भर जाने के कारण संकीर्ण हो गया-सुई
भी न समा सके, इस प्रकार का हो गया।

उन विमानचारी देवों में जो सिंह की आकृति वाले विमानों में आरूढ़ थे, उन्होंने हाथी के
आकार के विमानों पर चढ़े देवों से कहा-‘अरे आगे २ चलने वाले देवो! अपने-अपने हाथियों को एक
वगल में करके चलो, अन्यथा-एक वगल में न करने पर हमारा वली सिंह तुम्हारे हाथियों का हनन
कर देगा। इसी प्रकार महिषाकार (भैंसे के आकार वाले) विमान में बैठे देवोंने अश्वाकृतिवाले विमान
के वासियों से कहा। गरुडाकार विमान पर आरूढ़ देवों ने भुजगाकृति के विमान वालों से कहा।

देवो तथा देवीयोनो अदकलनदधी आणुं आकाश शुंलु उड्युं, मधुर अने अस्फुट शब्दोथी धवाध गयुं। ते समये
अरोडो विमानोथी विस्तीर्णुं आकाश यषु देव-समूहधी बराध बवाने अरषु सार्कडुं थध गयुं-अेक सोथ यषु समाध
न शके अेषु थध गयु। ते विमानचारी देवोमां जेअो सिंङनी आकृतिवाणां विमानोमां जेडेढा इता तेमषु ङाथीना
आकारना विमानोमा जेडेढा देवोने अड्यु-“अरे आगण यादनारा देवो! पोत-पोताना ङाथीयोनोने अेक आणु
अरीने यादो, नडि तो-अेक आणु न अरवाथी अमारा अणवान सिंङ तमारा ङाथीयोनोनी इत्या अरी नाअशे।
अेअ प्रमाषु मडिषाकार (बेंसना आकारवाणां) विमानमां जेडेढा देवोअे अश्वाकृतिवाणां विमानमा रहेढाअोने अड्यु।
गरुडाकार विमानमां जेडेढा देवोअे अुजङ्गाकृतिना विमानवाषाअोने अड्यु। यित्ताना आकारना विमानमां जेअो
नागा ..

वन्धयुगाति, तदाकृति यद् विमान तदास्था देवाः मेपाऽऽकृतिविमानाऽऽस्थान् देवांश्च अकृपयन्=कथितवन्त ।
 क्रियन्तो देवा उत्युक्त्वेन=सोऽकृष्टयया मित्राणि युक्त्वा=स्यस्यवा अग्रे अषलन्, क्रियन्तो देवा अकृप
 यन्=मा आहार' । विच्छन्तु विच्छन्तु, वयमपि आगाच्छाम =युष्माभिः सह गन्तु य सहवत्तया वयमपि त्रिशला
 नन्दनभोत्सवविरहस्या आयास, क्रियन्तो देवा आसहमिकया अग्रेऽग्रे चलिदु=यान्तु विवाहं कुर्वाणान् अकृप
 यन्=कथितवन्तो, यद् अथ पूर्वदिन वर्तते, अतो मतवत् तृष्णी=समीनम् आगच्छन्तु ।
 अथ देवानामागमनसमयस्वरूपमाह—

पूर्व=पूर्वोक्तप्रकारेण गगनप्रच्छेद=आकाशप्रदशो गमनेन देवानां शिरसि=मस्तकं श्रतिसन्निधित -
 शरन्वसमीपात् चन्द्रकिरणपतनेन=चन्द्रकिरणामेतेन निर्जरा=दृढस्वरहिता अपि श्वेतवर्णकरपातजनितवाक्रचक्य

चीटाके आकार के विमान पर जो आरूढ़ य, उन्हींने मेघ (मधु) के आकार के विमान वाक्नों स कहा।

चित्ने ही देव उत्युक्त्वा के कारण मिनो को छोड़ कर आगेर वस दिये। चित्ने ही वरने
 सगे-रे माण्यो। तरो उररा, हम मी आते हैं। हम मी त्रिशलानन्दन का जन्मोत्सव देखने की इच्छा
 स तुम्हार साथी बन कर साथ र चघते हैं। चित्ने ही देवों ने, 'मैं आगे वरुं, मैं आगे चरूं' इस प्रकार
 कर कर विवाद करने वाले देवों से कहा—आस उत्सव का दिन है, अतः आप लोग शुरुवात आरूप।

अब देवों के आगमन के समय का स्वरूप कहते हैं—

पूर्वोक्त प्रकार से आकाश में गमन करने से देवों के मस्तक पर भस्पन्त समीप से चन्द्रमा की

वेडेंडा क्वा तंभे मेघ (पेटा)ना आकारना विमानवाजाब्धोने ठहल, डेटबाय देवा उत्युक्त्वाते डारखे भिन्योने भूडीने
 आत्रण स्याती नीडन्वा डेटबाय ठडेवा वाग्वा—“हे बाण्डो! वरा दोसो, दोसो, असे पयु आनीजे छीजे असे
 पय त्रिशलान इन्ते अ=मेरसव दोबानी छिछथी तमारा वाधीडार वनीने साथे आनीये छीजे. डेटबाय देवाजे
 'हु आत्रण आहु हु आत्रण वाहु' आभ भडीने विवाह करारा देवोने ठहु 'आह उत्सवने दिवस छे, भा? तसे
 दोडो यान्तिपूठ क्वावो”

हे दे देवीना आत्रभनना सुभनना इवइपने इहे छे—पूर्वोक्त प्रकार देवा आकाशमा
 अत्रण ही पहा कर्त्त त्वारे तेमन भस्पन्ते वा-इमानी वनी नउठ डेटबायो अत्रभनना प्रकटित जिये। तेमन

धवलमिना पलितायमानतया जरावन्तः=दृढ़ा इव अशोभन्त=शोभितवन्तः; तथा-अतिसन्निधितः देवसूर्यसु=देव-
शिरस्तु स्थिताः तारा घटाऽऽकारा अलक्ष्यन्त। गलेषु=देवानां कण्ठेषु च ताः=ताराः रत्नत्रैवेयकानि=रत्नविरचित-
कण्ठभूषणानि इव अदीप्यन्त=शोभितवन्तः। तथा-ता देवशरीरेषु च स्वेदविन्दवः=मार्गचलनजनन्यश्रमजलकणा
इव अभासन्त=शोभितवन्तः ॥ सू० ६०॥

मूलम्—तए ण सक्के देविदे देवराया पालयजाणविमाणमारुहिय दिव्वाए देविड्ढीए दिव्वाए देवजुडंए
दिव्वेणं देवाणुभावेणं मयसयविमाणारुढेहिं सयलपरिचारेहि य परिडुडो नंदीसरदीवे दाहिणपुरत्थिमे रउगर-
पवए तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुडं दिव्वं देवाणुभावं सयसयविमाणारुढे सयलपरिचारे य पडिसाहरिय
जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणनगरे जेणेव जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तित्थयरजम्मण-
भवणं तेण दिव्वेण जाणविमाणेण तिव्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-
भवणस्स उच्चरपुरत्थिमे दिसीभाए चउरंगुलमसपत्ते धरणिगयले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवेइ, ठवित्ता जेणेव
भव्वं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तिव्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता

श्वेत किरणें गिरने से निर्जर (जरा-रहित) भी देव जरावान्-बूढ़े के समान शोभायमान हुए, क्यों कि
श्वेतवर्णा की चन्द्रमा की किरणों के गिरने से उनका मस्तक चमकने लगा था; जिससे ऐसा प्रतीत
होता था कि उनके बाल धौले हो गये हैं। बहुत पास में देवों के सिर पर स्थित तारे मस्तक पर घट
की तरह प्रतीत होते थे। वही तारे देवों के कंठ में रत्नमय आभूषण सरीखे शोभित होते थे और वही
तारे देवों के शरीर पर मार्ग चलने के परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूंदों के समान प्रतीत होते थे ॥ सू० ६०॥

पर अक्षयकित पथे प्रकाशित थता होवाने शरथे तेभना भस्तडोनां वाण, अत्यंत श्वेत अने तेलेभय दागता हुता,
तेथी नेनारने अेभ दागलुं डे डुवान देवे पथु धृद अनी गयां छे। अक्षयकित ताराओनां भूभूभाओ। पथु तेभनां
माथा पर आवी रडेवां डोड, माथा उपर भूडेवा धडाओ। नेवां दागता हुता, गणापर आवेदा ताराओ। सोतीना
डाशेनी गरज सारता हुता. परसेवा पर सूथेने प्रकाश पडवाथी नेभ परसेवाना भिडुओ अणडाट भारे छे तेभ
नाना ताराओ देवानां शरीर पर भिडुओ अणडाट भारतां हुतां. (सू० ६०)

आनीए चव पयसं करे, करिणा करयळपिगिगारियं सिरसावच मर्याए अजन्दि कट्टु एच वयासी-नमोरुणुं
 त रयणाकृच्छिचरिए ! जगण्णइदीविए ! सवजनगमगळस सवन्-नीष-वषसुपुयस मुषस सवन्-जगनीव-वच्छ
 सव्म विपकारगमा-दसिय-वागिदिह-विह-पुसुस जिणस गणिस्स नायास बुद्धस बोरास सवन्गोग
 नादस निम्ममस पव-कुम-समु-मवस जाइए लपियस जं सि भोगुचमस जणणी, पणाडसि ठ, कयत्यासि।
 आसावयि निरं वन्द, इल्लिषा पंच सक्खवे विउवाइ मय एगे सके मयव तिस्यपरं कोमळेण करयळसुणेणं
 गिण्ण १, एगे सके पिट्ठया पबन्निमा-जिय-मराळवणं आयवष घरेइ ३, दुवे सखा उमभो पासि सिय-
 धामरुखेवं करेते ४, एगे सके वजजणी पुदरे मगवभो तिस्यपरस रत्तह सुरओ पट्टए ॥ सु०६१॥

ज्ञाना-उत खनु शको देवराज पाळक्यालविमानमाख दिव्यया दवमदया दिव्यया दव-
 पुत्या दिव्यन दवानुमावन स्वस्विमानाखे सारुपरिवारैव परिवृती नन्दीशरीये दक्षिणपूर्वे रतिकारपूर्व
 तां दिव्यां देवदिं दिव्यां दवपुतिं दिव्यं दवानुमात्र स्वस्विमानाखान् सक्षयपरिवाराश्च प्रतिसंश्लस्य यत्रैव
 भगवणस्तीर्थेकस्य जन्मनगरं यत्रैव जन्मवचन तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तीर्थकरजन्मवचनं तेन दिव्यन

मूम का मयं—'तए जं' इत्यादि। तस्यैवाह देवेन्द्र देवराज शक, पात्ररुपान विमान पर आरु-
 रोकर दिव्य देवकृदि, दिव्य देवपुति और दिव्य दवममात्र के साथ अपने-अपने विमानों पर आरुह
 सक्त परिवार से थिरे हुए, नन्दीशर द्वीप में, आग्नेय कोण में, रतिकार पर्वत पर उस दिव्य देवकृदि,
 दिव्य देवपुति दिव्य देवममात्र तथा अपने-अपने विमान पर आरुह सकृद परिवार को स्थापित करके,
 जहाँ भगवान् तीर्थकर का जन्मनगर था और जहाँ जन्म-मचन था, वही आय। आकर तीर्थकर के जन्म

भूकतो आर्षे—तए ष ङन्वादि. त्यास्ताइ देवेन्द्र देवराज शक पात्ररुपान विमान पर आरुह यथ दिव्य
 देवकृदि दिव्य देवपुति अने दिव्य देवममात्र वडे अखर यथ सर्व परिवारने पोटयेत्ताना विमान पर जेसाही
 नन्दीशर द्वीप मध्ये आन्वा. आ द्वीपना व्जिदिहाकुम्भ, रतिकार पर्वतपर अथ दिव्य कृदि, देवपुति देवममात्र तथा
 वपकृदुं च परिवारने विमाने अक्षित त्यां भूषां.
 त्याशी रवाना यथ ज्वां तीर्थकर जन्मनगरं जन्मनगरं कट्टु ज्वां च भगवचनं कट्टु त्यां आनी पोटयेत्तां।

यानविमानेन त्रिकुत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा भगवत्तस्तीर्थकरस्य जन्मभवनस्य उत्तरपूर्वे दिग्भागे चतुरङ्गलमसम्प्राप्ते धरणितले तत् दिव्यं यानविमानं स्थापयति, स्थापयित्वा यत्रैव भगवोस्तीर्थकरः तीर्थकरमाता च तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य त्रिकुत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा आलोक्ये एव प्रणामं करोति, कृत्वा कस्त-
 लपरिगृहीतं शिरस्याऽऽव्रतं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत-नमोऽस्तु खलु ते रत्नकुशियारिके ! जगत्प्रदीप-
 दीपिके ! सर्वजगन्मङ्गलस्य सर्वजीवचक्षुर्भूतस्य सर्व-जगज्जीव-वत्सलस्य हितकारक-मार्ग-दैगिक-विशुभायुद्धि-प्रभो-
 जिनस्य ज्ञानिनो नायकस्य बुद्धस्य बोधकस्य सर्वलोकनाथस्य निर्ममस्य प्रवर-कुल-समुद्भवस्य जात्या क्षत्रियस्य

भवन की उस दिव्य यानविमान से तीनवार दक्षिण से आरंभ करके प्रदक्षिणा की, और भगवान् तीर्थकर के जन्मभवन के उत्तरपूर्वे-ईशान कोण-में पृथ्वीसे चार अंगुल की ऊँचाई पर अपने यान-विमान को ठहरा दिया। ठहरा कर जहाँ भगवान् तीर्थकर थे और तीर्थकर की माता थी, वहाँ आये। आकर तीन बार आदक्षिणप्रदक्षिण किया और दृष्टि पड़ते ही प्रणाम किया। प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर आवर्त्त एवं अंजलि करके इस प्रकार बोले-हे उदर में रत्न को धारण करने वाली ! हे जगत् के प्रदीप की जतनी ! तुम्हें नमस्कार हो। क्यों कि तुम समस्त जगत् के हितकारी, प्राणीमात्र के लिए नेत्र के समान, अखिल संसारी जीवों के वत्सल, मोक्षमार्ग का प्रकाश करने वाले, विशाल वचन-वृद्धि के स्वामी, जिन, ज्ञानी, नायक, बुद्ध, बोधक, सर्वलोक के नाथ, अनासक्त, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, जाति से क्षत्रिय और लोक

पोतानुं दिव्ययान-विमानधी तीर्थंकरना जन्मभवनना ध्यानङ्गेषुभां पृथ्वीथी थार आंगणनी उन्थाधये पोतानुं विमान स्थपित कथुं।

आ कथं पतावीने, नथां तीर्थंकर लगवान् अने तेनी माता हुतां त्यां आवी त्रषु वार प्रदक्षिणा करी, ने तेमनी दृष्टि पडे तेम, त्रषु वथत प्रथाम कथां. प्रथाम भाद भस्तकपर अंजली करी जोदथा 'हे उदरमां रत्न धारषु करवावाणी, हे जगतना हीपकने प्रगट करवावाणी, तमने नमस्कार कइं धुं; हेमडे समस्त जगतना हित करवावाणा, आर्षुभावनना नेत्र समान, अणिल संसारना लुवोने वत्सलसम्पु, मोक्षमार्गना प्रकाशक, विशाल-वचनइपी वृद्धिना स्वामी, लन, ज्ञानी, नायक, बुद्ध, बोधक, सर्वलोकना नाथ, अनासक्त, श्रेष्ठकुलमा उत्पन्न, सातिथी,

यदसि लोकोपमस्य जननी धन्याऽसि तव, कृतायाऽसि । आरं सखु देवानुमिये ! मगधतस्तीर्यैकरस्य शन्यमभिमान
 करिष्यामि, तव सखु युष्माभिर्नो भवव्यमिति कृत्या भवस्वापनीं निद्रां दशरि, दश्या पञ्च शकुरुपाणि
 विकरोति । तत्र एकः शका मगधन्तं फोमथेन कालसम्पुटेन युद्धाति १, एकः शकः पृष्ठतः पशुलिम-जित
 मराल-पद्ममातपत्र धरति, द्वौ शकौ उभयोः पाम्बयो वामरोतस्रपं कुल्लः ४, एकः शकः वक्रपाणिः पुरन्दरः
 मगधतस्तीर्यैकरस्य रसाधं पुरतः प्रवर्तते ॥ सू० ६१ ॥

मैं उसम मगधान् की अन्ती हो, धन्य हो, कृतार्थ हो। हे देवानुमिये ! मैं मगधान तीर्यैकर के जन्म की
 महिमा करूँगा, तो आप मयभीत नहीं होना।

इस प्रकार शर कर इन्द्र माता को गात्री नीद में सुजा देते हैं और फिर त्रैकिय शक्ति से पाँच
 शक-रूप बनाते हैं। एक शक मगधान् तीर्यैकर का कोमल कर-तलों में छेते हैं, एक शक पीछे की तरफ
 अपनी पत्रवत्ता से इस क पत्र (पाल) का नीतने शाला आतपत्र-छत्र धारण करते हैं, दो शक दोनों पाण्डों में
 चामर भीते हैं, एक इन्द्र वक्र हाथ में लेकर मगधान् तीर्यैकर की रसा के लिए आगे चलते हैं ॥ सू० ६१ ॥

क्षत्रिय, अने नवश्रेष्ठ अश्वाननी व मगधनी छ। तेथी तथो धन्यवाहना पात्र छि तमाइ लुभन हृत्पायं छ।
 हे देवानुमिये ! तु अश्वान तीर करेना व मभक्रेत्तव उन्वीश, तो तथो द्विभ नभाधी ननपथु अश्वनीत
 श्रेयो नदि ॥

आभ कहीने, ईन्द्र माताने आहनिद्राभां सुवायी दीधा अने स्वशक्तिना अणे हे ले शक्तिने "वेदिक" शक्ति
 शक्ति शके छे ते वरे, पोताना लेवा पात्र ईन्द्रो (अश्रेन्द्रो) नानावी दीधा।

आ वेदिकद्वय धात्तु करवावहा पात्र शक्रेन्द्रोभांश्री, अहे तीर्यकर अश्वानने पोताना रोमल करनी
 कशेजीभां उन्वी दीधा वीन्व ईन्द्रे अश्वाननी पीठ पछवाडे उभा रही अश्वान उपर छत्र धारण हयु आ छत्र
 कसनी पात्र करवा पत्र अधिक धवल कसु वीला ले ईन्द्रो लेइ आणु आभर नी शवा कतां कवे पांथभा
 शक्रेन्द्रे कौशभां वक्र वक्र अश्वाननी रसा शक्या आरे आरण आशवा भांशु (सू० ६१)

करोति, कृत्वा मगधतस्तीर्थकरस्य अन्वमवनस्य उषरपरिस्त्ये = उषरपूर्वान्वराळे दिग्भागे=ईशानकोणे
 पुरुरूप्युत्सम्=अङ्गुलिचिह्नपटुयय् भसम्भाते=आसृष्टे परभित्ते=भूतळे, तद् दिव्यं यानचिमानं स्थापयित्वा
 यौव मगधोत्तीर्थकरस्तीर्थकरमाता ष तत्रैव उपगम्य भिक्षुत्वः आवस्तिणमवसिणं
 करोति, कृत्वा आलोके एक=वर्द्धनमात्रे सति प्रणाम=वन्दनं करोति, कृत्वा कारतलपरिष्टीहीतं=
 इस्तलपरिपृष्ट शिरस्याऽऽवर्षे मस्तकेऽङ्गुलिं कृत्वा बैरमवादीव-रे रत्नकुसिधारिके !-रत्न=मगधद्वयं कुशौ
 परतीति उत्संभुदौ, तथा-रे मगधप्रदीपदीपिके-मगधप्रदीपः=जगत्प्रकाशको मगवान्-तस्य दीपिके=
 मन्वदत्तेन प्रकाशिके ! ते=दुर्म्यं नमो=नमस्कारः भस्तु=ममस्तु, त्वं यत्=यस्माद् हेतोः सर्वजगन्मङ्गलस्य=सर्वेषां
 जगतां=जगत्सु लोकाणां मङ्गलस्य=मङ्गलस्वरूपस्य, पुनः सर्वजीवचतुर्धुतस्य=सकलजीवनेमस्तस्वरूपस्य=चतुष्टो

बलिपात्र से द्युना आरंभ करके वसिष्ठाचार्य में ही जाकर उठरे। इस प्रकार प्रवसिष्ठा फरके मगवान्
 तीर्थकर के जन्ममन्त्र के ईशानकाय में युमितल से चार आंगुल ऊपर उस यानचिमान को ठहराया।
 ठहरा कर जहाँ मगवान् तीर्थकर और तीर्थकर की माता थीं, वहाँ आये। आकर तीन बार प्रवसिष्ठा की
 और वर्द्धन होते ही प्रणाम किया। प्रणाम करके दोनों हाथों को ओढ़ कर सिर पर आवर्ष और अंजलि
 करके इस प्रकार कहा—

'हे रत्नकुसिधारिके ! अर्थात् कूल में मगवान्-रूपी रत्न को पाण करने वाली ! हे मगव-
 प्रदीपदीपिके ! अर्थात् जगत् के प्रकाशक मगवान् को अन्य देकर प्रकाश में जाने वाली ! तुम्हें नमस्कार
 हो, क्यों कि तुम तीनों लोकों के लिए मगलस्वरूप, सब जीनों के नेत्र के समान, अर्थात्-जैसे नेत्र घटपट आवि

ञ्-अभवन्ना भंगान देवभुमां भ्रमितयो आर आंजलिं च ते विभानने उचु शशु चही त्वां अथा भगवान् तीर्थकर
 अने तेभ्यः आवा वतां त्वां ते आन्धा आदीने त्बु वार प्रक्षिप्वा हरी अने इशानं वतां च प्रक्षाम भवो,
 प्रक्षाम हरीने अन्ने दक्षिणेऽग्निने मस्तके पर आवत अने अङ्गुलिं हरीने आ प्रभावे उचु—

"हे रत्नकुसिधारिके ! जेहठे हे दूअर्षां अमवान् इपी रत्नने धारु अन्वशी ! हे अजतप्रदीपदीपिके !
 जेहठे हे अजतनां प्रकाशक अमवानानो अन्धे आधीने प्रकाशभां आवन्वरी ! तमने नमस्कारं च, धारु हे तमे त्बु
 देहने भटे भजस्तत्र च. अथवा इतिनां नेत्रं अमान. नेत्रं नेत्रं घट-पट आदिना प्रकाशकं च जेच इति जिनहेन

यथा घटपटादिप्रकाशकत्वं तथा जिनस्य सदसद्वस्तुप्रकाशकत्वाद् नेत्ररूपत्वम्, तथा-सर्वजगज्जीववत्सत्वस्य=
 सकलव्युत्पन्नवर्तिप्राणिनां पुत्रवत् परिपालकस्य, तथा-हितकारक-मार्ग-देशिक-विशु-याटुद्धिमभोः-हितकारको
 मार्गो=मोक्षमार्गः-सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपः; तस्य देशिका=उपदेशिका, तथा-विभ्यो=सर्वभाषास्वरूपेण परि-
 णमनात् सर्वव्यापिनी-सकलश्रोतृजनहृदयसंकात्तात्पर्यायी, एवंविधा या वायुद्धिः=भावसंपत्. तस्याः
 प्रभुः=स्वामी तस्य, सातिशयवचनलब्धिकस्येत्यर्थः; 'विशु' शब्दस्य मूले परनिपातः प्राकृतत्वात्; तथा
 जिनस्य=रागद्वेषजयिनः, ज्ञानिनः=सातिगयज्ञानवतः, नायकस्य=धर्मवरचक्रवर्तिनः, बुद्धस्य=ज्ञातत्वस्य,
 बोधकस्य=भविजनबोधदायकस्य, तथा- सर्वलोकनाथस्य=सर्वलोकस्वामिनः-बोधिवीजाऽऽधान-संरक्षणाभ्यां
 योगक्षेमकारित्वात्, तथा-निर्मसस्य=ममतारहितस्य, तथा-प्रवरकुलसमुद्भयस्य-प्रवरं=श्रेष्ठं यत् कुलं=सिद्धार्थक्षत्रियवंशः;
 तत्र समुद्भवस्य=उत्पन्नस्य, ज्ञात्या क्षत्रियस्य=क्षत्रियवर्णस्य, पुनः लोकोत्तमस्य-लोकैषु=सर्वजनेषु मध्ये उत्तमस्य=
 श्रेष्ठस्य जनन्यसि, तत्=तस्माद्धेतोः धन्याऽसि, तथा-कृतार्थाऽसि=कृतकृत्याऽसि, इत्येव भगवन्मातरं त्रिशला

का प्रकाशक है, उसी प्रकार जिनदेव सत्-असत् वस्तु के प्रकाशक हैं, अतएव चक्षु के सदृश, समस्त-
 संसारवर्ती जीवों का पुत्र के समान पालन करने वाले, सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूप हितकारक मोक्षमार्ग
 का प्रकाश करने वाली तथा समस्त भाषाओं के रूप में परिणत होनेवाली होने से सर्वव्यापिनी वचन-
 लब्धि के स्वामी, अर्थात् अतिशय-युक्त वचन-ऋद्धि के धारक, राग-द्वेष के विजेता, सातिगय ज्ञान के
 धारक, धर्मवरचक्रवर्ती, तत्त्वों के ज्ञाता, भव्य जनों को बोध देने वाले, बोधिवीज (सम्यक्चक्र) को देने
 और रक्षण करने वाले, अतः योगक्षेमकर होने से समस्त लोक के नाथ, ममत्त्व से रहित, सिद्धार्थ
 क्षत्रिय के श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने वाले, जाति (वर्ण) से क्षत्रिय और समस्त जनों में उत्तम (भगवान्)
 की माता हो! इस कारण तुम धन्य हो, कृतार्थ हो!

सत्-असत् वस्तुना प्रकाशक छे, तेशी चक्षुना जेवां, सभस्त संसारवर्तीं श्रेयोणं पुत्रनी जेम पालन करनार, स
 म्यथ् ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप हितकारी मोक्षमार्गोः प्रकाश करनारी तथा सभस्त भाषाभ्योना इये परिशुत थनारी
 होवाधी सर्वव्यापी वचनलब्धिना रक्षणी, ओटवे के अतिशय युक्त वचन-लब्धिना धारक, रागद्वेषना विजेता,
 अतिशय ज्ञानना धारक, धर्मवरचक्रवर्ती, तत्त्वोना लक्षणर, लव्य बनेने ज्यो धेनार. बोधिबीज (सम्यक्त्व) नां
 हेनार अने रक्षक, क्षेमकर होवाधी सभस्त होकना नाथ, सभत्वथी रहित, सिद्धार्थ क्षत्रियना श्रेष्ठ कुलमां उत्पन्न
 बनार, जाति (वर्ण) थी क्षत्रिय, अने सभस्त युरोधोभा उत्तम (भगवान) नी माता छे तेथी धन्य छे, कृतार्थ छे.

चन्द्रिता सुता च स्वामिमायमिन्द्रं प्रकटयति-“अर्णव” इत्यादिना, अहं लच्छ देवानुमिये। मगधसत्तीर्यक-
 रस्य जन्मपरिमानं=जमोत्सर्ग करिव्यामि, तव=तस्मात् इतोः युष्माभिः नो भेतव्यम्=मयं न कर्तव्यम्, इति
 कृत्वा=ति उक्त्वा भवत्सापनी=स्वपनकारणीं निद्रां ददाति, इषा पञ्चपञ्चसस्पकानि शकस्पाणि विक्रोति=
 वैक्रियदत्तयातादयति, तत्र=तेषु पञ्चसु शकस्वरूपे मध्ये एकः शक्रः=न्द्रो मगधत्वं तीर्थकरं कोमलेन=युदुना
 करतमसन्पुटेन=स्वतलस्वरूपसन्पुटेन शुद्धाति=चारयति १, तथा एकः=अस्यो द्वितीयः शक्रः पृष्ठः=पृष्ठमयेनो
 पबल्मिगितमराम्पत्रं=पबल्मिना=भवेत्वेन मितं मराम्पत्रं=संपन्नो येन तादृशम् भातपत्र=छत्र परति २, द्वौ शक्रौ
 उमयोः=मगधतो इयोर्वाग्दक्षिणयो पार्श्वयो चामरोत्थेर्षं=चामरोद्धीर्षनं कुरुत ४, एकः=अस्यश्चम पुरन्दरः
 शक्रः वज्रपाणिः=वज्रहस्तः तन् मगधसत्तीर्यकरस्य रसायं पुरतः=मगधतोऽग्रे मवर्तते=मचलति ॥सू०६१॥

इस प्रकार मगधान् की माता त्रिशला को बन्धना करके तथा स्तुति करके इन्द्र अपने अन्तिम
 अभिप्राय को प्रकट करते हैं—‘हे देवानुमिय! मैं मगधान् तीर्थकर का जन्ममहात्सव कर्हूंगा, अत आप
 मय न करें।

इस प्रकार यह कर इन्द्रने उन्हें अवत्सापनी निद्रा में डूला दिया। फिर पाँच शक्र क स्पर्शों की
 विक्रिया की, अर्थात् वैक्रिय शक्ति से अपने पाँच रूप बनाय। उन पाच इन्द्रो में स एक ने मगधान् तीर्थकर को
 अपने युद्ध करसन्पुट में ग्रहण किया, एकने अपनी भवेतवा से इस के पव को भी जीतने वाला छत्र
 धारण किया। दो इन्द्र मगधान् के बानों पसवाढों में चामर धीमिने लगे। एक पुरन्दर इन्द्र हाथ में वज्र
 लेकर मगधान् तीर्थकर की रसा के लिए आगे-भागो चले ॥सू०६१॥

आ प्रभाषि भगवाननी माता त्रिशलाते पन्धना तथा स्तुति करीने धन्द्रं योत्तानो अन्तिम आशय कहे छि—
 ‘हे देवानुमिये! छं भगवान वीर्य’करने व म=महोत्सव करीश, तो आप दर्शो भा”
 आ प्रभाषि कर्होने धन्द्रं तेभने अवत्सापनी निद्राभां पैदाकी हीथ। पञ्ची वैक्रियशक्तिशी योत्वानां पाँच
 रूप बनाव्वा ते पाँच धन्द्रोभांकी कोई भगवान वीर्य’करने योत्तानां टोमण करशरपुटभां धारणी वीथ, कोहे योत्तानां
 कक्षनी पंजने पञ्च महात् करनार छत्र धारणु कर्हू; व धन्द्रं भगवानने भन्ने पक्षे चामर धारणवां वार्यां। कोहे
 पुरन्दर धन्द्रं वज्रपाणिं वज्र हस्तेने भगवान वीर्य’करनी शकलने भाटे आशय=आशय व्याख्या कालो। (सू०६१)

मूलम्--तए णं से सके देविदे देवराया नंदीसरदीवे पुव्वमाएहिं सयसयरइगरपव्वए साहरिय-
 सय-सय-इइहि-जाण-विमाणेहिं सयसयपरिवारपरिवुडेहिं तिसइहिंदेहिं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव मेरुपव्वए
 वलयागारेण ठियस्स चउण्णवइहियचउस्सयजोयणपरिमियविविखंभस्स चउत्थयंडगवणस्स चउमु विसासु
 सेयसुवण्णमया अद्धचंदगारा पुव्व-दक्खिण-यच्छिसु-त्तर-कमेण ठिया पंडुकंवल-अइपंडुकंवल-एत्तकं-
 वल-अइरत्तकंवल-भिहाणाओ चउरो अभिसेयसिलाओ वट्ठति, तासु जेणेव अइपंडुकंवलसिला जेणेव य
 अभिसेयसीहासणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तसि सीहासणंसि सब्बलोगसहायगं तिहुयणनायगं सयंसि
 अंकपण्डंगंसि अहियासिय पुरत्थासिमुहे संनिसण्णे ॥सु०६२॥

छाया--ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजो नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वमागतैः स्वक-स्वक-रतिकरपर्वते
 संहृत-स्वक-स्वक-ऋद्धि-यानविमानैः स्वक-स्वक-परिवारपरिवृतैः त्रिपट्टीन्द्रैः सार्द्धं सपरिवृतः यत्रैव मेरु-
 पर्वते वलयाकारेण स्थितस्य चतुर्नवत्यधिकचतुःशतयोजनपरिमितविष्कम्भस्य चतुर्थपण्डकवनस्य चतसृषु
 दिक्षु श्वेतसुवर्णमय्यः अर्द्धचन्द्राकाराः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरक्रमेण स्थिताः पाण्डुकम्बला-तिपाण्डुकम्बल-रक्त-

मूल का अर्थ--'तए णं' इत्यादि। तत्पश्चात् नन्दीश्वर द्वीप में पहले से आये हुए, अपने अपने
 रतिकर पर्वत पर अपनी-अपनी ऋद्धि एवं यान-विमानों को छोड़ देने वाले, तथा अपने-अपने परिवार
 से युक्त तिरसठ इन्द्रों के साथ, वह शक्र देवेन्द्र देवराज जहाँ अभिषेक-सिंहासन था, वहाँ आये। मेरु पर्वत
 पर वलयाकार (चूड़ी की तरह गोलाकार) स्थित तथा चार सौ चौरानवे योजन विस्तार वाला जो चौथा पण्ड-
 कवन है उसके चारों तरफ, श्वेतसुवर्णमयी अर्धचन्द्र के आकार की, क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और
 उत्तर में स्थित जो पाण्डुकम्बला, अतिपाण्डुकम्बला और अतिरक्तम्बला नामक चार अभिषेक-शिलाएँ

भूणो अर्थ--'तए णं' इत्यादि त्पश्चात् नन्दीश्वर द्वीपमा पडेथी आवेला पेत्तपोताना रतिकर पर्वत
 पर पोतानी ऋद्धि अने यानविमानोने भूंकवावाणा, अने पोत्तपोताना परिवारथी युक्त ओवा नेसठ धन्द्रोने।
 साथ नेदवी, ते शक देवेन्द्र देवराज नथां अलिषेक-सिंहासन हत्तुं त्यां आन्था।

मेरु पर्वत उपर थारसो थोराणुं (४८४) जेजन्ना विस्तारवाडुं युडीना आकारे रडेडुं थोथु पंडकवन छे.
 आ वननी थारे आण्णु, श्वेतसुवर्णमय, अर्धचंद्राकारवाणी, पूर्व-दक्षिण-पश्चिम अने उत्तर दिशाओमां
 अउकंभे आवेदी पाण्डुकंभला, अतिपाण्डुकंभला, रक्तकंभला अने अतिरक्तकंभला नामवादी थार शिलाओ छे. आ

पश्यन्-निराश्रयस्याभिपाना चतस्रोऽभिपक्षयिषा वर्तन्ते, तामु यत्रैव भविष्यत्कम्बलत्रिणा यत्रैव प
 प्रमिष्यन्ति तामत नत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तस्मिन् सिंहासने सर्वलोकास्त्रायकं भिक्षुजननायक स्वके अङ्क-
 पर्यन्ते भ्रष्टास्य वृत्ताभिमुन्य संनिपन्ना ॥मु०१२॥

टीका—'तप' यं से सके' इत्यादि। ततः तच्छु नाम्नी देवेन्द्रो देवराजो नन्दीश्वरीप पूर्वम्-पाक
 आगते सकराश्रयविकारपर्यन्ते निम्ननिम्नरिक्तगिरी सद्भवत्कस्यश्चद्विद्यानविमानैः-स्यापितनिजनिज
 कृदियानविमानैः सकस्यकपतिवारणोच्छ्रितैः-निगनिगपरिजनपरिवेष्टितैः त्रिपट्टीन्त्र सार्द्धैः-सठ संयति-
 वृत-नयक परिचष्टिः नन् मेरुपर्यन्ते यत्रश्च-यस्मिन्नेव स्थाने नमयाकारेण्य-चतुःश्लोकारेण
 स्थितम्ब-विद्यमानस्य चतुनवयधिकचतुःश्रतयोजनपरिमितविक्रमस्त्व-चतुर्न-न्यपिचतुःश्रतसस्ययाजनपरिमितवि
 न्नासत्' चतुष्षष्टिकृतस्य चतुष्टय विश्व श्वेतसुवर्गमय्य' श्रद्धेचन्द्राकाराः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरक्रमेण

है। इन चारों में न जहाँ अधिपान्कृतमन्त्रिणा यी और जहाँ अभियेक-सिंहासन था, वहाँ (शक्र) आये।
 आश्चर्य उस सिंहासन पर समस्त शौरु के सहायक और त्रिमुञ्ज के नायक तीर्थंकर भगवान् को
 अपनी गान्धरुपी पत्नी में गिठला कर, पूर्व दिशा की आर श्रद्धे करके बैठे ॥मु०६२॥

टीका का अर्थ—'तप' यं इत्यादि। तदनन्तर शक्र देवेन्द्र देवराज नन्दीश्वरीप में परछे से आय हुए, अपने-
 अपने रविकर गिरिपर चिढ़ने अपनी-अपनी श्रद्धि और अपना-अपना परिचार छोड़ दिया था और जो
 अपने-अपने परिचार से बृष्टि प एस तिरसठ इन्द्रों के साथ, उनस चिर हुए, मरु पर्वत के ऊपर जिस
 स्थान पर गान्धाकार स्थित तथा चार सौ कीरानवे योजन विस्तार वाना पण्डक नामक चौथा वन है,
 उस वन की चारों दिशाओं में श्रवत मोने की बनी हुई, श्रद्धेचन्द्राकार, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में

दिशाओं अभियेक-दिशाओं के साथ छे ने स्थाने अतिपाण्डुकभगशिष्ठा छे अने तथा अभियेक निष्ठासन छे,
 त्नां देवेन्द्र आ च त्नां आधी पर्वोद्गीवर्णी जेहा पछी, भगवानने योगाम्ना बोध, ने पूव दिशा तरश्च जेा हरी
 जेते रविकर आञ्जन अङ्गु' (स०६२)

टीकाने अर्थ—'तप' यं इत्यादि-त्वार पछी शक्र देवेन्द्र देवराज नन्दीश्वरीप में परछे से आय हुए, अपने-
 अपने रविकर गिरिपर चिढ़ने अपनी-अपनी श्रद्धि और अपना-अपना परिचार छोड़ दिया था और जो
 अपने-अपने परिचार से बृष्टि प एस तिरसठ इन्द्रों के साथ, उनस चिर हुए, मरु पर्वत के ऊपर जिस
 स्थान पर गान्धाकार स्थित तथा चार सौ कीरानवे योजन विस्तार वाना पण्डक नामक चौथा वन है,
 उस वन की चारों दिशाओं में श्रवत मोने की बनी हुई, श्रद्धेचन्द्राकार, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में

स्थिताः=वर्तमानाः पाण्डुकम्बला-तिपाण्डुकम्बला-रक्तकम्बला-तिरक्तकम्बलाभिधानाः-पूर्वदिशि पाण्डुकम्बला, दक्षिणदिशि अतिपाण्डुकम्बला, पश्चिमदिशि रक्तकम्बला, उत्तरदिशि अतिरक्तकम्बला चेति चतस्रोऽभिषेकशिला वर्तन्ते, तासुन्तासां मध्ये यत्रैव=दक्षिणदिशि अतिपाण्डुकम्बलशिला, तथा यत्रैव च अभिषेकसिंहासनं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तस्मिन् आभिषेकिके सिंहासने सर्वलोकसहायकं=सकललोकोपकारकं त्रियुवननायकं=त्रिलोकीनाथं स्वके=निजे अङ्कपर्यङ्के=कोडरूपे पत्यङ्के अध्यास्य=उपवेश्य पूर्वाभिमुखः संनिपण्णः=उपनिष्यः

॥सू० ६२॥

मूलम्--तए णं तेसद्धीवि इंदा नियनिय-परिवार-परिखुडा तत्थ सयसयथासणे ठिया। तए णं सव्वे देवा य देवीओ य एगओ मिलित्ता सयसयकज्जपत्ता सव्विड्डीए सव्वज्जुईए सव्ववलेण सव्वसमुदएणं सव्वसंभमेणं सव्वारोहेहिं सव्व-पुण्-गंध-मल्ला-लंकार-विभूसाए सव्व-दिव्व-दुडिय-निनादेणं महयाए इड्डीए महया हिययोल्लासेणं महया रवेणं एणं महं तित्थयरज्जमाभिसेयं काउं इंदस्स आणं अभिकंखेति।

जं समयं च णं भगवओ तित्थयरस्स जम्माभिसेओ भविस्सइ-त्ति णायं, तं समयं च णं देवगणो तिसिओ जलं पाउमिव, जम्मदीणो इट्टिसिद्धिं लद्धुमिव, रोगी आरोगं पटुमिव, निराधरो आधारमवतुमिव, असरणो सरणं पटुमिव विमलं पहुमुहकमलं लोयणगोयीरीकाउं नित्तुंकंठियंसतो आसि ॥सू० ६३॥

क्रम से विद्यमान चार अभिषेक शिलाएँ हैं--अर्थात् १-पूर्व में पाण्डुकम्बला, २-दक्षिण में अतिपाण्डुकम्बला, ३-पश्चिम में रक्तकम्बला, और ४-उत्तर में अतिरक्तकम्बला शिला है। इन चारों में से जहाँ अभिषेक-सिंहासन है वहाँ पहुँच कर उस अभिषेक-सिंहासन पर सकल लोक के उपकारक और त्रिलोकी के नाथ तीर्थंकर को अपनी गोदरूप पलंग में विठला कर स्वयं पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गये ॥सू० ६२॥

भनेदी, अर्धचन्द्राकारनी पूर्व, दक्षिण, पश्चिम अने उत्तरमां अनुक्रमे विद्यमान चार अभिषेकशिलाओ छे, ओटवे छे (१) पूर्वमां पांडुकम्बला, (२) दक्षिणमां अतिपांडुकम्बला, (३) पश्चिममां रक्तकम्बला, अने (४) उत्तरमां अतिरक्तकम्बला शिला छे. ओ आरेमांथी न्या दक्षिण दिशानी अतिपांडुकम्बला शिला छे अने न्यां अलिषेक-सिंहासन छे, त्यां पडोऽन्यां. त्यां पडोऽनीने ते अलिषेक-सिंहासन पर सकल लोकना उपकारक, अने त्रिलोकना नाथ तीर्थंकरने योताना भोगा रयी पदंगमां जसाडीने पोते पूर्व-दिशानी तरफ सुभ करीने जेसी गथां. (सू० ६२)

प्राया—उत ललु प्रियाष्टरपीन्द्राः निमनिनपरिवारपरिवृताः तत्र स्वस्वासने स्थिता । उतः ललु सर्वे देवाय देव्यय एकतो मिलित्वा स्वहस्तकार्यमवृषा सर्वदण्यै सर्वपुत्या सर्वबलेन सर्वसमुदयेन सर्वत्रैरेण सर्वविपत्या सर्वसम्भोगे सर्वोऽस्तौ सर्वे-पुण्य-गन्ध-मान्या-लङ्कार-विभूषया सर्वे-दिन्य-शुटित निनायेन मासया ऋद्धया महाता इदयोच्छासेन महाता रवेण महान्तं वीर्यकरगन्धामियिकं ऋदुम् इन्द्रस्य आत्मानमभि हाइसन्ति ।

पसिन्त समये च ललु 'मगतवत्वीर्यकरस्य जन्मानियेको मयिव्यती'—ति ज्ञात, उस्मिन् समये च ललु देवगणः वृषितो बलं पातुमिन्, जन्मशीन इष्टमिद्धि लब्धुमिन्, रोगी आरोग्यं प्राप्नुमिन्, निराधार भाषार

मूच का अर्थ— 'वप यं' इत्यादि । तत्पश्चात् विरसठ इन्द्र भी अपने-अपने परिवार के साथ, अपने-अपने आसन पर स्थित हुए । उस समय सभी देव और सभी देवियों, एक साथ मिल कर अपने-अपने काम में जुट गये और सम्पूर्ण ऋद्धिसे, सम्पूर्ण युति से, सम्पूर्ण बल से, सम्पूर्ण समुदय से, सम्पूर्ण आदर से, सम्पूर्ण विभूति से, सम्पूर्ण संचम से, सम्पूर्ण समारोह से, पुण्य, गण, मासा, अलंकार एवं विभूषा के साथ, समस्त दिव्य वारों की ध्वनि के साथ, बड़े ठाठ से, बड़े इदयोच्छास से और महान् शब्दोंसे एक महान् वीर्यकर का जन्मानियेक करने के लिए इन्द्र की आज्ञा की अभिलाषा-व्यतीसा करने लगे ।

निस समय देवगण ने जाना कि मगतान् वीर्यकर का जन्मानियेक होगा, उस समय जैसे प्यासा जल पीने को, जन्म का इष्टि इष्टसिद्धि पाने को, रोगी आरोग्य प्राप्त करने को, निराधार भाषार पाने

भूजने, अर्थ- तप यं धत्वादि त्वाश्रयणी धृष्टान आदि त्रेधाऽर्धो योतयिताना इन्द्र व आद्ये योतयिताना आश्रयो पर वेधी नभा ते अमरे अय देव-देवीन्वि ज्येष्ठीनाथे भक्तोने योत-योताना इभभं भरीवापठ मभा अ'पुषु' विद्धि, पुति, बण, अयुद्ध, आश्र, विभूति, जैश्वर्य, अक्षय्य अने अमाराऽक्षयी अने पुण्य, गंध, भाजा, अलंकार अने इहैवना उहवाऽक्षयी अने महान् अणुगोधी ज्येष्ठ महान् वीर्य'कस्ता जन्मानियेक इस्वा माटे तेषार रक्षीने, ध'द्वती-ज्याश्रानी राक्ष नेवा उभा उवती ।

उपरिशेपत तेषारी पूरी कतां सर्व देवो, अजयानपु युज्याविह नेवा तलथापक यष्ट रकां कतां नेभ गारम्भा पाणीनी प्रतीक्षा कश्वा उभा केष उ नेभ इति उ'दपपु मजयवानी बावले पाद जेष्ठ रको जेभ उ

मवाचुमिन्, अशरणः शरण प्राप्नुोस्व, विनये । प्रभुमुलकमलं लोचनगोचरीकर्तुं नितान्तो-रुच्छ्रित-स्वान्त आसीत् ॥सू० ६३॥

टीका—'तए णं सक्किद्वज्जा' इत्यादि । ततः खलु त्रिपष्टिसख्यका अपि इन्द्राः=ईशानादयो निज-निजपरिवारपरिहृताः=स्वरूपरिजनपरिवेष्टिताः सन्तः, तत्र=अतिपाण्डुकम्बलशिलासमीपे मत्सासने स्थिताः । ततः खलु सर्वे देवा देव्यश्च एकतः=एकत्र मिलित्वा स्वरूपकार्यप्रवृत्ताः सन्तः सर्वैर्द्वय्या=सकलसम्पत्त्या, सर्वद्वय्या=सर्वप्रकाशेन, सर्वधलेन=सर्वपराक्रमेण सर्वसैन्येन वा, सर्वसमुदयेन=सर्वपां=स्वपरिवाराणां समुदयेन=समूहेन सर्वेण सम्यगुद्भयेन वा, सर्वाऽऽदरेण=सर्वप्रकारेण आदरेण, सर्वविभूत्या=सर्वश्वयेण, सर्वसंप्रमेण=सर्वप्रकारया त्वरया, सर्वाऽऽरोहैः=सर्वसंनद्धीकरणैः, सर्व-पुष्प-गन्ध-मालया-लङ्कार-विभूषया, तत्र सर्वैत्यस्य पुष्पा-

को, शरणहीन शरण प्राप्त करने को उत्कंठित होता है, उसी प्रकार देवगण भी भगवान् का निर्मल मुल-कमल देखने के लिए उत्कंठितचिन्त हो गये ॥सू० ६३॥

टीका का अर्थ—'तए णं' इत्यादि । तत्पश्चात् ईशान आदि तिरसठ इन्द्र भी अपने-अपने परिवार से वेष्टित होकर अतिपाण्डुकम्बलशिला के समीप अपने-अपने आसन पर बैठ गये । तत्र सत्र देव और देवियों एक साथ मिल कर अपने-अपने कार्य में लग गये । समस्त सम्पत्ति से, समस्त प्रकाश से, समस्त पराक्रम से या समस्त सेना से, अपने-अपने समस्त परिवार से या सम्यक् उदय से, सब प्रकार के आदर से, समस्त ऐश्वर्य से, समस्त त्वरा से, समस्त समारोह-तैयारी से, पुष्पों से, समस्त गंधों, समस्त मालाओं, समस्त अलंकारों

नेत्र शोभा निवारणकी राह ढोइ रह्यो छे, नेत्र निराधार आधारने वणगवानुं विचारी रह्यो छेय छे, नेत्र शंरक्षणीन शरथु प्राप्त करवाने अंभी रह्यो छेय छे, तेम सर्व देव-देवांगनाओ, भगवाननुं निर्भण अने सौरभ अथ ढोवानी तादावेली सेवी रह्यां छता. (सू० ६३)

टीकाके अर्थ—'तए णं' इत्यादि. त्पार भाह ध्यान आदि त्रेसठ ईन्द्र पशु पेतयेताना परिवारथी वटिणाधने अतिपांडुकम्बलशिलानी यासे पेतयेताना आसन पर जेसी गया. त्पारे सधणा देव अने देवीओ जोइ साथे भणीने पेतयेताना कामे वणगी गयां. समस्त संपत्तिथी, समस्त प्रकाशथी, समस्त पराक्रमथी, समस्त सेनाथी, पेतयेताना समस्त परिवारथी अथवा सम्यक् उदयथी, अधी भतना आदरथी, समस्त ऐश्वर्यथी, पुरी त्वरथी; पुष्प समारोह-तैयारीथी, पुष्पे थी, समस्त गंधे, समस्त भाणाओ, समस्त आभूषणो, अने

विभिः प्रत्येकं सम्बन्धाः, तेन सर्वपुण्येण, सर्वगर्भेण, सर्वमात्म्येन, सर्वाच्छुद्धारेण, सर्वविभूषणाय=सर्वै-
 शोभया सर्वविशिष्टाऽऽसूत्रेण वा, तथा सर्व-दिग्ग-मुद्रित-निगदेन-सर्वेषां विभ्यानां=विभि भवानाम् अब्रह्मदानां
 वा, मुद्रितानां=वापानां निगदेन=अन्देन, महत्या=विशालया ऋद्धया=सम्पण्या महता=अधिकेन इवयोद्धासेन=
 विधानन्देन, महता रसेण=अन्देन एकस्य=अद्वितीयं महान्तं=विशाल तीर्थकारन्त्यामिपेकस्य=तीर्थकारणमाभियेकस्य=
 उत्सवं इत्थम् इन्द्रस्य=अक्रोद्धस्य भाग्याम् अमिकाकूलान्वि=अभिलषन्ति। यस्मिन् समये च लब्ध भगवत्स्वीर्यकरस्य
 जन्माभियेको भवित्यतीति देवगणेन श्रावं, तस्मिन् समये च लब्ध देवगणः, वृषितः पानीयं पादुमिव, जन्म
 दीनः=अन्मदधि शृणुमिद्विद्यु=अभिलषितवस्तुसिद्धिं लभ्युमिव, रोगी आरोग्ये=नैरुज्यं प्राप्नुमिव, निराधारः=
 निरवलम्बी जनः आधारः=अवलम्बनम् अवाप्तुम् इव, अक्षरणः=अक्षरारहितः क्षरण प्राप्नुमिव, निमलः=स्रच्छं
 मशुद्धलक्ष्मणं लोचनगोचरीकृतं=शुद्धं निवान्तोत्कृष्टस्वान्तं=अत्यन्तोत्कृष्टमता आसीत्। इहैकदेवगणस्यो
 पमेयस्य वृषिणाविभूषणमानसत्त्वात् मालोपमाऽऽङ्कारः ॥७०६३॥

और समस्त शोभाओं के साथ या समस्त विशिष्ट आयुषणों से, तथा सब दिव्य बानों की छानि से, विशाल
 कृद्धि से, महान् विष के उच्छस (आनन्द) से, महान् श्रद्धों से तीर्थकार का जन्माभियेक रूप एक-अद्वि-
 तीय उत्सव मनाने के लिए इन्द्र की आज्ञा की अभिलाषा करने लगे।

वर्ष देवगण को श्राव हुआ कि भगवान तीर्थकार का जन्माभियेक होने वाला है तो वह भगवान्
 का निर्मल मूल-रमल देसने के लिए अत्यन्त ही उत्कंठितविष हो गये, जैसे प्यासा पानी पीने के
 लिए, नम का दृष्टि मन चारी वस्तु की प्राप्ति के लिए, रोगी आरोग्य पाने के लिए, निराधार जन
 आधार पाने के लिए और अक्षरण क्षरण पाने के लिए उत्कंठित होता है।

अमरुत् शोभानो धावे जेटडे हे विशिष्ट जाशुखोधी, तथा सपणा दिव्य पाशिनोना ध्वनिदी, विशाल ऊर्दधी,
 विपत्ता अत्युत्कंठस्य (अ.न.इ)धी, महान् श्रद्धोधी तीर्थकरान् अ-आभियेकनो ज्येष्ठ अयुषम उन्मत्त
 भाटे इन्द्रनी आग्रानी अन्निवाषा इव वा वाप्यं न्भारे देवशक्तुने अक्षु श्रुत् हे भगवान तीर्थकरणे व आभियेके
 शयानो छे त्वारे तेज्या भगवानना निर्भण वहन-कमला इत्यनने भाटे जेटडा अथ आदुर श्रुत् जवा जेटडा
 वरस्य पाशुनी भाटे, अ-अभरिद्र उच्छित वस्तुनी प्राप्तिने भाटे, शमी आदेश्य भिजववाने भाटे, निवाधार
 आक्षुस आधार भिजववाने भाटे अने अक्षरुषु शरुषु भिजववाने भाटे आदुर जेव छे।

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं देवपमोओ अईव अलोइओ जाओ।

“ तयायणं देवगणप्पमोयं, वागीसरी नत्थि अलं पवत्तुं।

अच्चंतसंता य हविसु देवा, सदायई जत्थ पडंतसूई ॥१॥”

तए णं ते देवा य देवीओ य हरिसुक्करिसेण तहा एकताणमाणसा जाया जहा तंसि समयंसि गिरिवरपडणेणावि तेसिं दिट्ठीओ लेसमित्तमवि चळिया न भविज्जा। तए णं सुवणमया १, रययमया २, रयणमया ३, सुवणरययमया ४, सुवणरयणमया ५, रयययणमया ६, सुवणरयययणमया ७, मट्टिया-मया ८ जे कलसा, तेसिं कलसाणं ईक्किक्काए जाईए अट्टुत्तरसहस्सं अट्टुत्तरसहस्सं ईक्किक्कस्स इदस्स आसी। एवं चउसट्ठीए इंदाणं छण्णावइ-अहिय-सोलससहस्स-संजुयाइं पंचलक्खाइं कलसाणं दट्ठण मक्कस्स देविदस्स देव-रत्तो इमेयारूवे अञ्जत्थिए पत्थिए चित्तिए कप्पिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—“जं इमा वालो सिरीस-कुसुम-सुउमालो प्हू एवइयाणं जलसंभियाणं महाकलसाणं महइमहालयं जलथारं कहं सहिस्सइ”—त्ति। एवंविहं सक्कस्स अञ्जत्थियं ५ ओहिणा आमोइय तस्संसयनिवारणं अउलवलपरक्कमो भयवं सयपादंगुट्टणेणं सीहासणस्स एगदेसं फुसइ। तए णं भगवओ तित्थयरस्स अंगुट्टण्णाफासमेचेणं मेरु ‘महापुरिसाणं चरणफासेण अइं पावणो जाओम्हि’-त्ति कट्टु हरिसिओ विव कंप्पिउमारद्धो ॥सू०६४॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये देवपमोदोऽतीवालौकिको जातः।

यहाँ एक देवगण उपमेय है और प्यासे आदि बहुत-से उपमान हैं। इस कारण मालोपमा अलंकार है ॥सू०६३॥

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि। उस काल और उस समय में देवों को अतीव अलौकिक

अधीं ओक देवगणु उपमेय छे अने तस्स्या आदि थीणं अथा उपमान छे. ते कारणे भादोपमा अलंकार छे. (सू०६३)

भूणने। अर्थ—“ तेणं कालेणं ” इत्यादि. ते कारे अने ते समये देवोने अतिथय अतीकिक छुषं थयो.

“ तद्वातं देवगणप्रमोद, वागीश्वरी नास्ति अल प्रवक्षुम् ।
 अस्यन्तशान्ताश्च वसुदेवा, शब्दायते यत्र पतत्सूची ॥ १ ॥ ”

उतः लक्ष वे वेषाभ देव्याभ इषोक्तयेष तथा एकवानामास्ता जावाः, यथा तस्मिन् समये गिरिरापरतने नापि तेषां इष्टयो छेदमात्रमपि चक्षिवा न भवेयुः । ततः लक्ष सुवर्णमयाः १, रजतमयाः २, रत्नमयाः ३, सुवर्णरत्नमयाः ४, सुवर्णरत्नमया ५, रजतरत्नमयाः ६, सुवर्णरत्नरत्नमयाः ७, सुविक्रामयाः ८ ये कलशाः, तेषां कल्पशानाम् एकैकस्य मात्या शृष्टाचत्सत्सम् शृष्टाचत्सत्सम् एकैकस्य इन्द्रस्य प्रासीव । एवं चतुष्पट्टेन्द्रिणां इषं हुआ ।

उस समय के देव-गण के आनन्द को सरसरी भी करने में समय नहीं है । उस समय देव एकदम इतने शीत हो गये कि गिरवी डूरे डूरे का भी शब्द सुनाई दे ॥ १ ॥

उष देवीं और देवियों का मन इष के उत्कर्ष से एकत्र हो गया । उनकी दृष्टि ऐसी निश्चल हो गई कि बड़े पर्वत के गिरने से भी छेड़मात्र चलायमान न हो ।

वत्समाव (१) स्वर्ण के, (२) चादी के, (३) रत्नों के, (४) सोने-चांदी के, (५) सोने-रत्नों के (६) चांदी-रत्नों के, (७) सोने-चांदी-रत्नों के तथा (८) सुविक्राम के, इन आठ प्रकार के कलशों में से एक-एक जाति के, मत्स्येक इन्द्र के पास एक हजार आठ कलश थे । इस तरह वसिष्ठ इन्द्रों के कुल पाँच साल, सोलह हजार, उपानवे कलश हुए । इतने कलशों को देख कर देवेन्द्र देवान काक को ऐसा

“ ये सभयना देवजघना आन इवु वषु न शयाने सरसवती पशु शठितमान नशो ज्ये बभते इवो ज्येठवा अथा शान्त यथ अथां ठे नीज पटती सं यतो आनाच पशु सात्रात्री शुद्धय ॥ १ ॥

त्यारि इवो अने देवीज्योना भन क्षयना अतिदेवधी ज्येठाय यथ अथा तेभनी पवठो ज्येठवी अधी निक्षेध यथ अथ ठे मोटे पत्रत पठे तो पशु अशाये यथासभान न यथा । त्यार वाड (१) सुवर्णना (२) चादीना (३) रत्नोना (४) सोना-चादीना (५) सोना-रत्नोना (६) चांदी-रत्नोना (७) सोना-चांदी अने रत्नोना तथा (८) चादीना; को आठ प्रकारना कलशोमांशी ज्येठ ज्येठ प्रकारना अनेक छन्दर अथाठ कलश अना । अथा प्रमांजे योयस छन्दोना कुव पाज बाध सोण अनार छन्दु (५१६०६६) कथय यथां आटवा अथा कण्ठोना

पणवत्य-धिक-षोडशसहस्र-संयुतानि पञ्च लक्षानि कलशानां दृष्ट्वा शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अयमेतद्रूपः
 आध्यात्मिकः १, प्रार्थितः २, चिन्तितः ३, कल्पितः ४, मनोगतः ५ संकल्पः समुद्पद्यत—“यद्यं बाल-
 शिशुरीपकुसुमसुकुमारः प्रभुः एतावतां जलसंघतानां महाकलशानां महामहतीं जलधारां कथं सहिष्यते”
 इति। एवंविध शक्रस्य आध्यात्मिकम् ५ अवधिना आशुज्य तत्संशयनिवारणार्थम् अतुलवलपराक्रमो
 भगवान् तीर्थकरः सकपाद्ब्रह्मघ्राणेण सिंहासनस्यैकदेशं स्पृशति। ततः त्वच्छ भगवत्स्तीर्थकरस्य अङ्गुष्ठाग्रस्पर्श-
 मात्रेण मेरुः ‘महापुरुषाणां चरणस्पर्शेन अहं पावनो जातोऽस्मि’ इति कृत्वा हर्षित इव कम्पितुमारब्धः ॥सू० ६४॥

टीका—‘तेजं कालेण’ इत्यादि। तस्मिन् काले तस्मिन् समये देवप्रसोदः=देवानां हर्षः अतीव=

आध्यात्मिक, प्रार्थित, चिन्तित, कल्पित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि शिरीष के कुसुम के समान सुकुमार
 यह शिशु भगवान् इतने जलपूर्ण महाकलशों की अत्यन्त विशाल जलधारा को किस प्रकार सहेंगे ?

शक्र के इस प्रकार पाँचों प्रकार के विचार अवधिज्ञान से जान कर, उनकी शंकाको दूर करने
 के लिए, अतुल बल और पराक्रम वाले तीर्थकर भगवान् ने अपने पैर के अंगूठे के अग्रभाग से सिंहासन
 के एक भाग का स्पर्श किया, तब भगवान् तीर्थकरके अंगूठे के स्पर्शमात्र से मेरु पर्वत काँपने लगा,
 मानो ‘महापुरुषों के चरणस्पर्श से मैं पावन हो गया’ ऐसा सोचकर हर्ष से हिलने लगा हो ॥सू० ६४॥

टीका का अर्थ—‘तएणं’ इत्यादि। उस काल और उस समय में देवों को अतीव लोकोत्तर आनन्द

लब्धने देवेन्द्र देवराज शक्रने ज्येवो आध्यात्मिक, प्रार्थित, चिन्तित, कल्पित, मनोगत संकल्प उत्पन्न थये। ऊँ
 शिरीषना इव ज्येवो सुकुमार आ आणक (सगवान) आटला अधां, जगथी बरेदां महाकणशोनी अत्यंत विशाल
 जलधाराने डेवी शीते सहन करी शकथे ? शक्रना आ प्रकाशना पांचे विचाराने अवधिज्ञानथी ज्ञानिने तेनी शंकाजं
 निवारण करवा भाटे, अपार अण अने पराक्रमवाणा तीर्थकर सगवाने पोताना पगना अंशुधाना अत्रबागथी
 सिंहासनना ज्येक बागनेो स्पर्श कथे थ्यारे भगवान तीर्थकरना अंशुधाना स्पर्श मात्रथी ज भेदु पर्वत कंपवा
 बाथे। जणु “महापुरुषेणानां वरसु स्पर्शथी हुं पावन थई गथे”-ज्येभ धारीने हर्षथी डालवा लाग्ये। (सू० ६४)

टीकानेो अर्थ—‘तेण कालेणं’ थत्यादि, ते काले अने ते समये देवने अत्यंत लोकोत्तर आनंद थये। ते

अविश्रयितः भौतिक-सोकोपरो नावः। तस्मिन् समये नितरां शान्तिरासीदिति दर्शयितुमार—'तयायनं' इत्यादि।

वदार्त्न-वदा-वस्मिन् काष्ठे सर्व-माद्य, देवगणमोक्ष-देवानां गणस्य-समूहस्य प्रमोक्ष-संपन्नं, वागीश्री-सारसरी अपि षड्-वर्षाभ्युत्थं अल-समर्पा नास्ति-न विद्यते। देवास्तत्र मत्तन्वशान्वाः-अविश्रयि-तनिभस्मनसो षड्भ्यः। यत्र-यस्मिन् देवगणशान्तिस्थले पतन्वीची-पतन्वी सूची श्रव्यायते-शब्दे करोति-शब्दे कुर्यादित्यर्थो। ततः सद्य ते-शान्त्वचिषा देवाम देव्यम् इति-करण-आनन्द-विषयेन तथा-तेन प्रकारेण एकतामानसता-एकाग्रमनसो नावाः, यथा-येन प्रकारेण तस्मिन् समये वेदा-शान्त्वचिषात्तां देवानां श्रव्यः-नेत्राणि गिरिवरपतनेनापि-आह-वर्तनियतनेनापि छेदनाप्रमपि-किञ्चिदपि चमिताः-वक्ष्यामि न भवेयुः।

हुथा। उच्यते अस्मात् पर एकदम शान्ति यी, यद् वतमाने के लिप्य करते हैं—

“तयायण देवगणप्यमोय, वागीसरी नतिय अल पवतु।

अचतसता य हर्विसु देवा, सदायई जतय पढतसुई ॥१॥” इति।

अर्थात् उस समय देवों के समूह को जो प्रमोद हुआ, उसका वर्णन करने में सरस्वती भी समर्प नहीं है। वहाँ देव अत्यन्त ही शान्त एकाग्रचित्त हो गये, इतने शान्त हो गये कि गिाती हुई हुई की भी आवाज भाये बिना न रहे।

अब हमें वरुण शान्ति की ती ते श्रवणवा भादे श्रुते छे—

“तयायण देवगणप्यमोय, वागीसरी नतिय अल पवतु।

अचतसता य हर्विसु देवा, सदायई जतय पढतसुई ॥१॥ इति।

कोट्टे है ते यमने देवोना समुद्रने के शर्ष-भ्रमे। तेजु वरुण-भ्रवाने सरस्वती यषु समर्थ-नशी तथा देवो के-दरुल-अर्थां शान्त-अने-शेका-अचित्त-अध-वथा है नीच-शेक-पडे तो-तेना-अवध-यषु-स-कला-ग-विना-र-हे-न-ही

ततः खलु सुवर्णमयाः १, रजतमयाः २, रत्नमयाः ३, सुवर्णरजतमयाः ४, सुवर्णरत्नमयाः ५, रजतरत्नमयाः ६, सुवर्णरजतरत्नमयाः ७, श्रुक्तिकामयाः ८ ये कलशा भवन्ति, तेषां कलशानाम् एकैकया जात्या अष्टोत्तरसहस्रम् अष्टोत्तरसहस्रम् एकैकस्य इन्द्रस्य आसीत्। एवम्=एकैकजातीयघटानाम् एकैकस्य इन्द्रस्य अष्टोत्तरसहस्रसत्त्वेन चतुष्षष्टेः=चतुष्षष्टिसंख्यानाम् इन्द्राणाम्=इन्द्रसम्बन्धिनां कलशानाम् पण्णवत्यधिक-षोडशसहस्रसंयुतानि=षण्णवत्यधिकषोडशसहस्राधिकानि पञ्च लक्षाणि ५१६०९६ दृष्ट्वा शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अयमेतद्रूपो=वक्ष्यमाणप्रकार आध्यात्मिकः प्रार्थितः चिन्तितः कल्पितः मनोगतः संकल्पः समुद्रपथतः=जातः—

उसके बाद शांतचिच वे देव और देवियाँ आनन्द की अधिकता से इतने एकाग्रचिच हो गये कि बड़ा भारी पर्वत गिर पड़े तो भी उन देव-देवियों की दृष्टि लेशमात्र भी चलायमान न हो ।

उसके बाद (१) सोने के, (२) चांदी के, (३) रत्नों के, (४) मिछे हुए सोने-चांदी के (५) सोने-रत्नों के, (६) चांदी-रत्नों के, (७) सोने-चांदी-रत्नों के और (८) मिछी के, ये आठ प्रकार के कलश थे। इन में एक एक प्रकार के कलश प्रत्येक इन्द्र के पास एक हजार आठ-एक हजार आठ थे, सभी प्रकार के कलश एक २ इन्द्र के पास आठ हजार चौंसठ-आठ हजार चौंसठ थे, अतः चौंसठ इन्द्रों के सब मिल कर पाँच लाख, सोलह हजार, छयानवे कलश हुए। कलशों की इतनी बड़ी संख्या देखकर शक्र देवेन्द्र देवराज के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, प्रार्थित, चिन्तित, कल्पित, मनोगत संकल्प अर्थात् विचार उत्पन्न

होया कि आठ शांतचित्त ते देव-देवीओ आनंदना अतिरेकथी ओटवां अधां ओकाग्रचित्त थछ गथा के धथे। आरे पर्वत पडे तो पथु ते देव-देवीओनी दृष्टि रडेज पथु बलायमान थाय नही।

होया कि आठ (१) सोनानां, (२) चांदीना, (३) रत्नानां, (४) मिश्रित सोना-चांदीना, (५) सोना-रत्नानां (६) चांदी-रत्नानां, (७) सोना-चांदी-रत्नाना, अने (८) माटीनां, ओम आठ प्रकारनां कलशा इता। तेभां प्रत्येक इन्द्रनी पास इरेक प्रकारना ओक इन्ड्रेना आठ कलश इतां। अधा प्रकारना कलशा भणीने प्रत्येक इन्द्रनी पास आठ इन्ड्रेना आठ कलशा इता। तेथी चांसठ इन्द्रेना अधां भणीने ओकंडर पाय वाप, सोण इन्ड्रे, छन्दुं कलश इतां। कलशांनी आटवी अधी माटीसं=आनेछने थक देवेन्द्र देवराजना मनभां आ प्रकारने आध्यात्मिक, प्रार्थित, चिन्तित, कल्पित,

यद्य मया प्राप्तः, पुनः शिरीषकुमुदमुकुमारः=शिरीषाख्यपुण्यवत् भविकोमलाशोऽस्ति, कथमयम् एतावतो
 (५१६०९६) जलघटानो=जलपूर्णां महाकम्भानां महाभारतीयः=अग्निविद्यायां अलभारो सधियति ? इति। एवं
 विषयः=एतत्प्रकारकं शक्रस्य=इन्द्रस्य आध्यात्मिकं मार्गितं चिन्तित कल्पितं मनोगत सङ्कल्पम् अमृतशस्त्रपराक्रमः=
 अनुसमशस्त्रपराक्रमो भगवांस्तीर्थकरः भवधिना=अभयिज्ञानोपयोगेन आधुर्यः=आत्मा, तत्संश्रयनिवारणाय=इन्द्र
 संश्रयवृत्तिहरणाय स्वभयादाभ्युद्योगेन=निजचरभाः=प्रमाणेन सिद्धासनस्य=सिद्धासनकारपरिपतमेरुपर्यवतावचस्य
 एकदेशम्=एकमार्गं स्पृशति। तत्र=स्पर्शनानंतरं ललु भगवत्तीर्थकरस्य अह्युद्योगप्रसंगमात्रेण 'महाशुभपाणां=
 अष्टशुभपाणां चरत्प्रसंगेन अं पावनः= पवित्र संभावोऽसि' इति कृत्वा=इति ज्ञात्वा यत्र इषित इव कस्मि
 तुम् आख्यः। अत्र क्लृप्तसंख्यायां पातकीलच्छादिव्यौतिप्रेन्द्राद्विकलश्राविवसा शान्येति ॥सू०६४॥

हुआ कि मनु साहक है, शिरीष पुण्य के समान अविश्रय कोमल है। यह पांच साल सोलह हजार छयानवे
 (५१६०९६) जल-मरे महाकम्भों की अस्पन्द विद्याल जलभाषा को कैसे सह सकेगे।

इस प्रकारके शक्र के आध्यात्मिक, मार्भित, चिन्तित, एस्वित, मनोगत सङ्कल्प को अमृत फल और अनुसम
 पराक्रम से सम्पन्न भगवान् तीर्थकर ने भवधिज्ञान से जान करके, उनके संश्रय को दूर करने के लिए, अपने
 पैर के अंगूठे के अग्रभाग से अपने आभारसूत (जिस पर वह विराजमान थे) मेरुवृत्त के अग्रवत्क्य सिंहा
 सन के एक भाग का सरो किया। भगवान् तीर्थकर के अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करते ही 'महाशुभ'ों
 के चरत्-पर्ये से मैं पावन हो गया' ऐसा जान कर मानों एवं के कारण मेरुवृत्त कोपने लगा। यहाँ
 पातकीलच्छ आदिके श्योतिषी वेवन्द्र आदि देशोंके कलशाकी विषसा नहीं की गयी है ॥सू०६४॥

मनोजत सङ्कप (विचार) कल्पन शयो है मनु आकाश छे, शिरीष-पुष्पना लेवा अतिशय ठामण छे तेजो आ
 पांच लाख जेजु कम्बर छन्द (५१६०९६) क्लृप्तु महाकम्भोनी अत्यत विद्याण एतमभारतेने इन्दी
 शीते सकन करी शयो?

आ प्रहारना शक्रना आध्यात्मिक, मार्भित, चिन्तित इस्वित, मनोजत सङ्कपने, अनुसम भण अने
 अनुसम परशुभचणा कनवान तीर्थकरे अवविशानही अश्रीने तेनी शक्रने इरे करवा भाटे, येताना पजना
 अशुभाना अजलाअर्थी येताना आधात्सूत (नेना पर तेजो विशान्मान केवा) मेरुवृत्तना अत्यवत्तुप सिद्धासनना
 ओठे आनेने इयथा कर्ये। अत्रवान तीर्थकरना अशुभाना अजलाअने इयथा शर्ता अ "महाशुभोना अत्य-इयथा शी
 छे पावन करी शयो" जेम गान्दीने ज्ये उभने तीर्थे अने मेरु पर्वत क पया शयो। अकि धातकीअ इ आदिना
 अशुभतपी देवेअ आदि देवेना क्लृप्तोनी विवक्षा करेक नथी (सू०६४)

मूलम्—जं समयं च णं मेरु कं पिउमारद्धो, तं समयं च णं पुहवी कं पिया, समुहो खुदो, सिहराणि पडिउमारद्धाणि । तेसिं समय्ज-जगजीवजाय-दियय-विदारगो भयभेत्तो महासदो समुब्भूओ । तिहुयणंसि महं कोलाहलो जाओ । लोगा भयभीया जाया । सब्वजंतुणो भयाउला समययट्टाणाओ निस्सरिय 'को अम्हाणं तायगो' भविस्सइ-त्ति ऋट्टु सरणमवेसिउं विव जत्थ तत्थ पलाइउमारद्ध । सब्वे देवा देवीओ यावि भउब्बि-ग्गमाणसा जाया ।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया एवं चित्तेइ-जणं अयं विसालो मेरु इमस्स कमलाओवि कोमल-स्स वालगस्स पहुणो उवरि पडिस्सइ, तो अस्स वालगस्स का दसा भविस्सइ?, इमस्स वालगस्स अम्मापि-ज्जणं समीवे कहं गप्पिस्सामि? किं कहिस्सामि?—त्ति कट्टु सक्किदो अट्टञ्जाणोवगओ झियायइ । तओ 'केण एवं कडं'-त्ति कट्टु सक्के देविंदे देवराया आसुहत्ते मिसिमिसंते कोवग्गिणा संजलिए ओहिं पडंजइ । तए णं ओहिणा नियदोस विण्णाय भगवओ तित्थयरस्स पायमूले करयपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-णायमेयं अरहा ! विण्णायमेयं अरहा ! सुयमेयं अरहा ! अणुहूयमेयं अरहा ! जे अईया जे य पडुप्पन्ना जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो ते सब्वेडवि अणंतवलिया अणंतवीरिया अणंत-पुरिसक्कारपरक्कमा हवंति-त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नियअवराहं खमावेइ ॥सू०६५॥

छाया—यस्मिन् समये च खलु मेरुः कम्पितुमारब्धः, तस्मिन् समये च खलु पृथ्वी कम्पिता, समुद्रः क्षुब्धः, शिखराणि पतितुमारब्धानि । तेषां सकलजगज्जीवजातहृदयविदारको भयभैरवो महान् शब्दः

मूल का अर्थ—'जं समयं च णं' इत्यादि । जिस समय मेरु पर्वत कांपने लगा, उस समय निश्चय ही सारी पृथ्वी कांप उठी, समुद्र क्षुब्ध हो गया, शिखर गिरने लगे, समस्त संसार के जीवों के हृदय को विदारण करने वाला महान् भयंकर नाद हुआ । तीनों लोक में बड़ा कोलाहल हो

भूणने। अर्थ—'जं समयं च णं' इत्यादि । जे समये सुभेउ पर्वते कं'पन शरु कथुं' ते समये आग्गी पृथ्वी कं'पवा लागी । समुद्रो अणभणी उठ्यां । शि'खरो उपरि पडवा भ उथां । समस्त सं'सारी उथेना उदयने लेदी नाथे तेवा हाउथु अवाण थये । नञ्जे दोकभां डेलाहल भयी गथे । दोडे । उरता भाथा लथलीत थवा लाग्यां ।

सहृदयता! निश्चयने महान् कोशारलो जाताः। लोका मयमीठा जाताः। सर्वानन्वयो मयाऽऽकुलाः स्फुर-
 तस्त्वानात् निःसृत्य 'कोऽस्माकं प्रायको मरिच्यति'-इति कृत्वा अरणमन्वेपयित्स्मिन् यत्र तत्र पञ्चायित्-
 मारम्भाः। सर्वे देवाश्च देवेष्वपि मयोद्दिग्मानना जाताः।

तदा स शक्रो देवेन्द्रो देवराज एव चिन्तयति—यत् लल्लु अयं विशालो मेरुस्य कपलादपि कोमलस्य
 बालकस्य प्रमोक्षरि पठिव्यति, ततोऽस्य बालकस्य का दक्षा मरिच्यति, अस्य बालकस्य अम्बापित्रोः समीपे रूप
 गमिष्यामि? किं कथयिष्यामि? इति कृत्वा शक्रन्द्रः आर्षेयानोपगतो द्वापयति। तदा 'केन एव कुत'-मिति कृत्वा
 शक्रो देवेन्द्रो देवराज आशुक्रो मिसमिसायमानः कोषामिना संञ्चलितः अक्षरि मयुङ्क्ते। तदाः लल्लु अत्रपिना

गया। लोग हर मये। सब प्राणी मयसे ब्याकुल होकर, अपने-अपने स्थान से निकल कर 'कौन हमारा
 बाब करेगा?' ऐसा सोच कर शरण लोजने के लिए इधर-उधर भागने लगे, और सभी देवी-देवताओं
 का चिन्त मी मय से कौपने लगा।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने इस प्रकार विचार किया—'अगर यह विशाल मेरु पर्वत, फल से
 मी कोमल, बालक-वाछे इन पद के ऊपर गिर जायगा तो इनकी क्या दशा होगी? कैसे मैं इनके
 मातापिता के पास जाऊँगा! क्या जाँगा?'। इस तरह विचार करके शक्रन्द्र आर्षेयान से युक्त होकर
 चिन्ता करने लगे।

फिर 'किसने ऐसा किया है?—यह सोच कर शक्र देवेन्द्र देवराज को क्रोध आगया। क्रोध की

प्राणीको आम तेम होइधाम इरवा लाज्जा। अब एवजतु अपथी आशुक्र-व्यापुस बधु रथा 'नाहि नाहि' ना
 पाइशे। इया लाज्जा रासु शोधवा आम तेम भयासुषु हरी रथ्मा। सर्व देव-देवीलोनान अन पक्षु अपथी इच्छु ठामं।
 येरु पर्वत, आ होमब हरीस्थाणा लण प्रक्षु उधर जल्दी रह्ये तो। तेननी शु दया यशेई, इ तेमनी भावा
 पाये शु शिदु लठने जर्शेई, तेमने लठु लीठवकी वाडेइ हरीशई, आवा प्रधारना विचारोनी पर पथाने बापे
 तेषु अन उक्थाने रासु ने ते आर्षेयान इरवा लाज्जे।
 आवा आवो मनमां आक्थल, तेमनमां तीम होथानि सगनी लडिसे। होथनी न-पाथानिने बीपे आशु

॥

निजदोषं विज्ञाय भगवत्स्तीर्थकस्य पादमूले कारतलपरिग्रहीतं शिरस्याऽव्रतं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत-ज्ञातमेतत् अर्हन् ! विज्ञातमेतत् अर्हन् ! परिज्ञातमेतत् अर्हन् ! श्रुतमेतत् अर्हन् ! अनुश्रुतमेतत् अर्हन् ! ये अतीताः, ये च प्रत्युपन्नाः, ये च आगमिष्यन्त्वोऽर्हन्तो भगवन्तस्ते सर्वेऽपि अनन्तवल्किना अनन्तवीर्या अनन्तपुरुषकारपराक्रमा भवन्ति' इति कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा निजापराधं क्षमयति ॥सू० ६५॥

टीका—'जं समयं च णं' इत्यादि। यस्मिन् समये च खलु मेरुः कम्पितुम् आरब्धः, तस्मिन् समये

अग्नि से वह प्रज्वलित हो गये। उनने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। तब अवधिज्ञान से अपना ही दोष जान कर भगवान् तीर्थकर के चरण-मूल में दोनों हाथ जोड़ कर और मस्तक पर आवृत्त एवं अंजलि करके वह इस प्रकार बोले—'हे भगवन् ! मैंने जाना है, हे भगवन् ! मैंने अच्छी तरह जाना है, हे भगवन् ! मैंने खूब अच्छी तरह जाना है, हे भगवन् ! मैंने सुना है, हे भगवन् ! मैंने अनुभव भी कर लिया है, कि जो अर्हन्त भगवान् अतीत काल में हो चुके हैं, जो अर्हन्त भगवान् वर्तमान में हैं, और जो अर्हन्त भगवान् भविष्य में होंगे, वे सभी अनन्तवली, अनन्तवीर्यवान्, अनन्त पुरुषकार-पराक्रम के धनी होते हैं।' इस प्रकार बोल कर उनने वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके अपने अपराध को खमाया ॥सू० ६५॥

टीका का अर्थ—'ज समय च णं' इत्यादि। जिस समय सुमेरु पर्वत कम्पायमान हुआ, उस समय सारी की सारी पृथ्वी काँप उठी। समुद्र ध्रुव्य हो गया। पर्वतों के शिखर गिरने लगे। काँपती पृथ्वी,

शरीर भगवा लाग्यु. भगवतरा थता तेष्णे अवधिज्ञानेन। उपयोग भूशेथे, तेभा तेभने सर्वं हकीकत विदित थध, ने योतानो दोष णथातां, ये हाथ नेडी, साथे अंजली धरी, भगवान थोसे गणगणा-हृदये योलवा लाग्या हे " हे भगवन्त ! हुं सर्वं लखी चुकथे, सारी रीते भने सर्वं समगथुं, मे' सांभण्युं छि अने अत्यारे अनुभव पषु करी लीथे छि हे अतीत, वर्तमान अने भावी कालना अर्हन्त भगवानो, अनन्त वीर्यवान, अनन्त पुरुषकारना भषु, अने अनन्तपराकथी होय छि. आवा प्रधारुं थथन नअभावे प्रगट करी, थकेन्द्रे भगवानेने वंदन-नमस्कार करी, थयेव अपराधनी साक्षी भागी (सू० ६५)

टीकानो अर्थ—'जं समयं च णं' इत्यादि. येरुपर्वत त्रष्णे होकने आवरी हेतेवा होवार्थ, ते लंभाध, पक्षोणध अने उंचाधभां, थ पृथ्वी रीते विस्तृत छि, साथी तेना कंपनो थथथं त्रष्णे होकभां अनुभवथे. कंपनना लीधे, धरती पषु थषु-

વ નમ્મ પૃથિવી કામિયાડપૂત, સમુદ્રઃ સુષ્કોડપૂત, ચિત્તરાવિન્નિરિયુદ્ધાભિ પવિત્રુમ્ આરભ્યાનિ । તેયાન્કમ્મો
 ધુમ્વપૃથિવી-સોમોન્મલસમુદ્ર-પવનોન્મલ્લચિત્તરાણી સકલનગજીવનાતદ્દરપવિદારકઃ=સર્વસુખનસ્યમાગિગણદ્દર્ય-
 મેદનકારકઃ મયૈરસઃ=મયકુદ્ધરઃ મરાન=દિગ્ધ્યાપકઃ શબ્દ સમુદ્પૂતઃ=સમુત્પન્નઃ । ત્રિસુવને મરાન=ઉચ્ચે કોભા
 શ્બ=સલકલ્લો જાત' । લોકા મયમીતાઃ=મયપુષ્કા નાતાઃ । સર્વમન્ત્રઃ=સકલમાગિનઃ મયાકુજા=મયયોદ્ધિનાઃ
 સતઃ સ્કલસહસ્થાનાદ=નિગ્નિનિસ્થાનાત નિઃસૂત્ય=નિર્ગર્ય "કઃ=હો જન અસ્માકં પ્રાયકઃ=સકલમાગિનઃ ।
 રિવિ કુસ્વા=રિવેતોઃ શરણ્=રત્નસમ્ અન્વેપવિત્રુમ્ રવ યત્ર વત્ર=વતસ્તતઃ પલાયિતુમ્ આરભ્યા' । સર્વે દેવા દેવ્ય
 યાપિ મયોદ્ધિન્માનસા=મયત્રસ્તપિષા નાતાઃ ।

તતઃ સદ્ધ સ શ્લોકો દેવેન્દ્રો દેવરાજ પૂર્વ=રુપમામયકાર વિન્ત્યપતિ=વિચારયતિ । શક્રવિન્ત્યનીયમાર-

દુષ્પ સમુદ્ર ધૌર પવનોન્મુત નિરિ-કિલ્તરો કા, તીન ત્રોક કે સમસ્ત માગિયો કે દુવ્ય કો મેદને યાગા,
 ત્રયંકર ધૌર સઘ વિશાભો મેં ધ્યાપી શબ્દ હુઆ । તીનોં લોકોં મેં તીત્ર કોલારહ ફેલ ગયા । લોગ મયમીત
 રો ઠટે । સમસ્ત નીઘ મય સે ક્ષ્યાકુલ ઠોતે દુપ અપને-અપને સ્થાન સે યાહર નિકુમ્ કર 'ક્રોન' હમારા
 રસક રોગા' પેસા સોવકર શ્રામ લોજને કે લિપ્ રૂપ-ઉપર માગને લગે । તયા સમી દેવી-દેવતાઓં કા
 ષિષ મી મય સે ક્ષ્યાકુલ રો ગયા ।

તત્ત શક્ર દેવેન્દ્ર દેવરાજમે રૂપ મહાર સોયા-ઓં યા મહાન મેરુપર્વત કમલ સે મી કોમત્ત રૂન

ખણી થી, ખરતી ખણખણવાં, સદુદ્ધ ધાણી ઉછળી આબુ, તે આ ઉછાગાને લીધે, યારે જાણુ જનજ્ઞાકાર યહ રહ
 ઉદ્ધાપવશી, ખરતીના આધારે રહેલા નાના-ચોટા શિખરો પશુ સ્વસ્થાનેથી ચુત યતાં જણાવા
 થોડા-સવારને ધમિ છે, યારણ અને આશ્વ વિનાનુ થઇ જવાથી, ઠોઠાડલ ઠરી મૂઠે છે માનવોના આશ્વ
 સ્થાને તે, જલ અને અસ્થિર છે, તે તેા ક પ જાગતા પડી જાય છે પણ દેવોના આશ્વ સ્થાને-દેવાભયે,
 વિમાને, કીધાંચલે સર્વે અચલ અને સ્થિર છે, છતાં તેમને પણ કશોયે સ્પદ થતાં, પદવાને જય ઉપસ્થિત થશે
 ને યાદી-યેહ થઇ રહ્યાં ।

આવી ચિત્રકૃતિએ ઠોઠોમાં આપી રહી હતી. આ કા મુદ્દે-રૂના મનમાં પણ ચિત્ર-ચિત્રિત તરંગી ઉદયા લાગ્યા.

“यत् खल्वप्यम् विशालो=महान् मेरुः अस्य=पुरोवर्तिनः कमलादपि=कमलपुष्पापेक्षयाऽपि कोमलस्य=सुकुमारस्य बालकस्य=बालवयोवर्त्तिनः प्रभोरुपरि पतिष्यति, ततः अस्य बालकस्य का दशा=परिस्थितिर्भविष्यति ?, अहं च अस्य बालकस्य अस्वापित्रोः समीपे कथं=केन प्रकारेण गमिष्यामि ? तथा किं कथयिष्यामि ? इति कृत्वा=इति चिन्तयित्वा शक्रन्द्र आर्तैऽध्यानोपगतः=आर्तैऽध्यानावस्थितः सन् ध्यायति=चिन्तयति। ततः ‘केन एवं कृतम्=ईदम् उत्पातः कृतः’ इति कृत्वा=इति मनसि चिन्तयित्वा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः आशुस्मः=अतिकुपितः मिसमिसायमानः =जाज्वल्यमानः कोपाग्निना=क्रोधरूपवह्निना संज्वलितः=आतः सन् अवधिम्=अवधिज्ञानं प्रयुङ्क्ते। ततः=अवधि-ज्ञानोपयोगानन्तरं खलु अवधिना=अवधिज्ञानद्वारा निजदीपं विज्ञाय भगवतः तीर्थंकरस्य पादमूले=चरणतले कर-तलपरियुहीतं=हस्ततलयुतं शिरस्यावर्चं=शिरसि आवर्तः=प्रदक्षिणतया भ्राम्यं यस्य तं तथाविधम् अञ्जलिं=हस्त-द्वयस्फुटं मस्तके=शीर्षे कृत्वा=संस्थाप्य एवं=वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत=उक्तवान्, तद्वक्तव्यमाह—‘णायमेयं’

बालवयवाले प्रभु के ऊपर गिरे तो इनकी क्या दशा होगी ?, मैं इनके माता-पिता के समीप किस प्रकार जाऊँगा और क्या कहूँगा ?। इस प्रकार विचार करके शक्रन्द्र आर्त्तध्यान-युक्त होकर चिन्ता में पड़ गये। तदनन्तर ‘किसने ऐसा किया है—इस प्रकार का उत्पात मचाने वाला कौन है ?’ यह सोचकर शक्र देवेन्द्र देवराज अतिकुपित हुए, क्रोध की आग से प्रज्वलित हो गये। ‘यह उत्पात करने वाला कौन है’—यह जानने के लिये उन्होंने अवधिज्ञान में उपयोग लगाया, और अवधिज्ञान से अपना ही दीप जानकर भगवान् तीर्थंकर के चरणों में शिर झुका कर, दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर आवत्तयुक्त अंजलि करके, आगे कहे अनुसार कहा—हे भगवान् ! सुमेरु के

कक्षाय मेरु पर्वतना शिखराने तो हु आडे छाय दध, भगवानना डोभण-भाणशरीर पर पडतां, अटकावी दधय, पथु मेरु पर्वत गजडी पडतां हुं; भगवानने डेवी रीते भयावी शकीथ?, ने तेभनी भाताने विवाभोअंजि नध शुं नवाथ आपीश ?

आवा विथाशेथी तेभनुं भन घेराध गयुं; खुद्धि अने विथाशक्ति कुंठित थध गर्ध, ने मूढ नेवा थध गथ। अथानक पेतानी द्विव्यशक्ति ‘अवधिज्ञान’ने विथार रशुरी आव्थे, ने ते शक्तिनेा दधु अेकभां उपयोग करतां नथायुं डे, आ सर्वना ड-अनेा कर्ता हुं धुं; धारथु डे, अरिडिंतोनी अनंत शक्तिमा भाशे विथास उगभगी उडथे, तेथीन भगवाननी सडनशक्तिभां भने अपूषुंता बासी. भने विथास पूषुं करवा सारुं भगवाने स्वयं त्रेरित

रप्रादिना। हे अहम् ! हे नित ! एतत्=मेरुक्रमनादिनिमित्तं ज्ञातं मया, हे अहम् ! एतत् विज्ञात=विज्ञोपेण
 ज्ञातम्, हे अहम् ! एतत् परिज्ञातम्-परिज्ञा=सर्वथा ज्ञातम्, हे अहम् ! एतत् ध्रुतम्=आकर्मितम्, हे अहम् !
 एतत् अदृष्टतन्मत्त्वेन अनुभवपरिपरीकृतं, यद् ये अहम् ! अतीता=भूतकालीनाः, ये च अहम् !
 अत्युत्तमा=वर्तमानाः, ये च अहम् ! आगमिष्यन्तः=भविष्यन्तस्ते अहम् ! भगवन् सर्वेऽपि भनन्तबलिहाराः=भनन्त-
 बलिहाराः भनन्तवीर्याः=भनन्तशक्तिसम्पन्ना भनन्तबला वा, तथा-अनन्तपुरुषकारपराक्रमा मरन्ति-इति
 कृत्वा=इत्युक्त्वा अहम् ! भगवन्तं धारमवीर्यं शक्तो बन्धते नमस्यति च, चन्द्रित्वा नमस्यित्वा च निमापरायं=
 स्थापरायं समयति । सू० ६५॥

सूक्तम्—उप-पं सन्धे इदा हरित्-जम-विसप्यमाण-दियया सम्बिद्भीए जाष माहया त्रेणं अयुइराह
 कमेण भगर वित्यपरं वित्ययराभिसेणं अभिसिर्विचु ।

उप-पं सन्धिदेण अयुजमसाहीरायाचवियसणेज कंपियमेरुसणेज 'भीमयमेरेव उरालं अवेनयार्ये

कौपने आदि का कारण मैं जान गया, हे भगवान् ! अच्छी तरह जान गया, और हे भगवान् ! पूरी
 तरह जान गया। हे भगवान् ! मैंने सुना है, हे भगवान् ! मैंने अनुभव मी किया है कि जो अहम् ! पूरी
 बन्त सुदृक्काल में हो चुके हैं, जो अहम् ! भगवन्त चर्चमान कालमें हैं, और जो अहम् ! भगवन्त भविष्य में
 होंगे, ये सभी अहम् ! भगवान् स्त्रीरसम्बन्धी अनन्त बल से सम्पन्न होते हैं, आत्मसम्पत्ती अनन्त शक्ति
 से युक्त होते हैं, तथा अनन्त पुरुषकारपराक्रम से युक्त होते हैं। ऐसा सब कर कर अहम् ! भगवान् को
 पन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं, बन्दना और नमस्कार करके अपना भपराय समारते हैं ॥६५॥

अथि आ बदीभरना वांभवन्तुत्तमां योवानो वीरत्वा दाप्यवी.

योवाना च दोषदु आदोषवु इमी, अगजवे येये अगवान आयु न्नेछ, वयेछ अयथाधनी भाही भाजी,
 दोषयुध्व इया आभा सोइ-त्रेने विद्यारदोष नयी तेमअ तेनी यदाभां अयुवता इती तेम ययु न इदु; परदु
 अज्युइयो, आयाच दोषण येयाना बदायेकां दोष छ, तेसी योवानो अयोशाले, अयवानना दुःअनी अयुवी इरे छ,
 अने ते इ अने इ य अने अजुअवे छ ने अजुअवतां प्रतिहार इरयाना इत्वा ययु योणी इरे छ आ छ
 अगवानना वरअवकापवपणा अयोान यु-इयो। (सू० ६५)

परिसहं सहस्सिह'—ति कद्दु य भगवओ गिवाणगणसमखं अत्थयामं सिस्मिहानीरेति नामं कयं ।

तए णं सके देविदे देवराया पंच सकखे विउवइ । तत्थ एगे सके भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिणइइ, एगे सके पिट्ठओ आयवचं धरेइ, दुवे सका उभओ पालिं चामखखेवं करेति, एगे सके वज्जपाणी पुरंदरे पुरओ पवइइ ।

तए णं से सके देविदे देवराया चउरासीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं भगवइ—याणमंतर— जोइसिय—वेमाणिएहि देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिखुडे सव्विड्डीए जाव महया रवेणं ताए उकिट्टाए जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरे जेणेन जम्मणभवणे जेणेव य तित्थयरमाया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता भगवं तित्थयरं माऊए पासे ठवेइ, उवित्ता तित्थयरमाऊए आसावणिं निइ पडिसाहइ । एवं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहोच्छवं करिय सव्वे इंदा सव्वे देवा य देवीओ य जामेव दिस्सि पाउअया तामेव दिस्सि पडिगया ॥सं ६६॥

छाया—ततः खलु सर्वे इन्द्राः हर्षवशविसर्पद्दृदयाः सर्वद्वर्षा यात्र महता रवेण अच्युतेन्द्रादिक्रमेण भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकराभिषेकेण अभ्यपिञ्चन् ।

ततः खलु शक्रेन्द्रेण अनुपममहावीरताचञ्चितत्वेन कम्पितमेरुत्वेन ' भीमभयभैरवम् उदारम् अचेल-

मूल का अर्थ—'तए णं' इत्यादि । तत्पश्चात् हर्ष से विक्रसित चित्तवाले होकर सब इन्द्रोंने पूरे ठाठ के साथ यात्रा महात्र घोष करते हुए, अच्युतेन्द्र आदि के क्रमसे भगवान् तीर्थकर का अभिषेक किया ।

तत्पश्चात् शक्रेन्द्रेने, अनुपम महावीरता से युक्त होने के कारण, मेरु पर्वत को कम्पित कर देने

सूत्रने। अर्थ—'तए णं' धत्यादि । इधंथी विकसित थधने तमाम धन्द्रोब्बे, पूरा ढाढमाड सक्षित, महान घोषणा करी, ने भगवानने अबिषेक कर्ये। आ अबिषेकनी क्रिया अच्युतेन्द्रे थरु करी, अने कंसप्रभबि उतरनी श्रेष्ठीना धन्द्रो वडे, पूरी करवामां आवी।

भगवाननुं अनुपम गण जेधने, अबिष्यमां पषु धारुषु हुंजेनि। ते सखनशीलतापूर्वक सामने। करशे, तेभव उपसर्गोनी अवगच्छना करीने पषु, पैतातुं ध्येय खसस करशे, जेथी नीउरता अने मच्छभता भाणपथथी न

गादिक परिणत सपिण्ड' इति कृत्वा च मगततो गीर्वाणगणसमसम् अर्थेषाम श्रीमहावीरिरेति नाम कृतम् ।

ततः सद्यु शक्रा देवन्द्रो देवराजः पञ्च शक्ररूपाणि विक्रोरिति । तत्र एकः शक्रः शीर्यकरं कराल-सम्पुन युष्मति, एकः शक्रः शतपत्रं पति, द्वौ शक्रौ उमयपाणौ चामरोरक्षेपं कुलतः, एकः शक्रो नक्षपाणिः पुलन्दः पुरतः प्रवर्तते । तत्र सद्यु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः चतुरशीत्या सामानिकसाहस्रीभिः यावत् प्रन्यैः मत्नपति-ब्यन्तर-य्योतिषिक-वमानिकैः येषैश्च देवीभिश्च सन्दे सपरिहृतः सर्वदुर्षां यावत् मरुता रेषेण तया उत्कृष्टया यावत् यत्रैव मगतस्त्रीर्षिकस्य नगनगरं यत्रैव जन्ममत्न यत्रैव च शीर्यकरमाता

के कारण, तथा 'यह सगवान्, सपितृत्व-काल में घोर भय से मयानक अपेक्षता यदि बड़े-बड़े परीयों को सतन करने' यह सोचकर, देवों के समूह के सामने सगवान् का गुणनिष्पन्न 'श्रीमहावीर' ऐसा नाम रखला ।

तत्प्रायः शक्र देवेन्द्र देवराजने पाँच शक्र के रूपों की विकृतिशा की । एक शक्रने सगवान् शीर्य कर को दोनों हाथों में लिया, एक शक्रने पीछे से छत्र किया, दो शक्र दोनों तरफ से चामर बीजने लगे, और एक पुलन्द शक्र हाथ में त्रिशूल लेकर आगे-आगे चलने लगे । तब वह शक्र देवेन्द्र देवराज पौराणी इमार सामानिक देवों के साथ, यावत् अन्य मत्नपति, ब्यन्तर, य्योतिष्क तथा वैमानिक देवों और देवियों के साथ, उन सब से घिरे हुए, सब प्रकारकी कृष्टि सहित, यावत् मगत पोष के साथ, उत्कृष्ट

प्राणी लधने, शक्र-रु, तेभ्यु नाम देवाना अत्रस्थित समुद्धनी वच्चे, शुष्मनिषत्त 'महावीर' कोष्ठ राष्ट्र्यु
दसवनी क्रिा स पूषं' तथा आद, योकेन्द्र, पोताना देवशरीरिणी विभुक्छा करीने पांय योकेन्द्रो सन्ध्या
कोष्ठ योकेन्द्रे, मगवानने पोतानी इक्षणीमा उपाशया वीकाले मगवानना मस्तक उपर छत्र भासवु कर्तुं" त्रीकाले
अने शोभाशे लन्ने जला उपर काभर वीकवा मांशया पांजभ्य योकेन्द्र दाधमां वज्ज लधं, मगवाननी काजण
याकवा लाञ्छा

आ प्रभादेना समस्य आशे योकेन्द्रनी सेधमां, शीशानी कभर साध्यानिष्ठ देवा कृता तथा मपनपति
बन्तर, य्योतिषिक अने वैमानिक देवा पोतानी युवोत्तम सिद्धि साधे काशर लता. ते सबे आ मभारकमां
साधे काकवा कना.

तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य भगवन्तं तीर्थं करं मातुः पार्श्वे स्थापयति, स्थापयित्वा तीर्थं करमातुः अवस्थापनीं निद्रां प्रविशंहरति । एव भगवत्तस्तीर्थं करस्य जन्ममहोत्सवं कृत्वा सर्वे इन्द्राः सर्वे देवाश्च देव्यश्च यस्यामेव दिशि प्रादुर्भूताः तामेव दिशं प्रतिगताः ॥सू० ६६॥

टीका—‘तएणं सव्वे इंदा’ इत्यादि । ततः=शक्रेन्द्रस्य निजापराधक्षमणान्तरं खलु, सर्वे इन्द्राः हर्षवशविसर्पदृष्टयाः=आनन्दोत्फुल्लमनसः सन्तः सर्वद्वयीं यावत्पदेन ‘सर्वद्युत्या सर्वत्रलेन सर्वसमुदयेन सर्वादरेण सर्वविभूत्या सर्वसंभ्रमेण सर्वाऽऽरोहैः सर्वपुष्पगन्धमाल्यालङ्कारविभूषया सर्वदिव्यव्यवृटितनिनादेन महत्या ऋद्धया

दिव्य गति से यावत् जहाँ भगवान् तीर्थं कर का जन्म नगर था, जहाँ जन्म-भजन था, और जहाँ तीर्थं कर की माता थी, वहीं आये । आरु भगवान् तीर्थं कर को माता के पास स्थापित कर दिया । स्थापित करके तीर्थं कर की माता की अवस्थापनी निद्रा को दूर कर दिया ।

इस प्रकार भगवान् तीर्थं कर का जन्ममहोत्सव करके सभी इन्द्र, सभी देव, और सभी देवियों जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में चले गये ॥सू० ६६॥

टीका का अर्थ—‘तएणं’ इत्यादि । इन्द्र के अपना अपराध खमा लेने के बाद, सभी इन्द्रोंने, हर्षवश-विकसित-चित्त वाले होकर, सब ऋद्धि से, सब द्युति से, सब बल से, सब समुद्रय से, सब आरु से, सर्व विभूति से, संभ्रम (त्वरा) से, समस्त अद्भुत-दिव्य वाद्यों के घोष से, अच्युतेन्द्र आदि के क्रम से भगवान् तीर्थं कर का अभिषेक किया ।

घोषणा अने हिन्यनाह करता करता, न्या जन्मनगर हतुं, न्या जन्मभजन हतुं, न्या माता निद्राधीन थयेदां हता ते स्थाने तेजो अधा आनी यछोरन्या, ने लगवानने भातानी गोहमां भूक्या. त्पारथाह भाताने आव-रथु करी रहेदा अवस्थापनी निद्राने हर करी सर्व देव-हेवीजो ने स्थानेथी आन्या हता, ते स्थाने जवा स्वाना थया. (सू० ६६)

टीकाने अर्थ—‘तएणं’ इत्यादि न्यारे शक्रेन्द्र, आ दुःप्रभय घटनाज्योथी विसुक्त थया, ने थयेव आथातनानी भाटे प्रभुनी भाशी भागी, त्पारे नेम हेबुहार भाबुभांथी सुक्त थाय त्पारे छेव्हे। शांतिने श्वास जेचे छे, तेम तेतुं हृदय हृणवुं कृद थर्ध गयु, ने अगाठनी भाक्षक प्रकुद्विदात-वहने उला रहा.

मरता हवयोद्यासेन"-इत्येतां सङ्ग्रहं, तथा-मरता रवेण, 'सर्वदुर्षा' इत्यारभ्य 'रवेणे'-त्यन्तानां व्याख्या पूर्वं गता। इत्ययं मन्वुवेत्त्राधिक्रमेण मगवन्ते रीर्यकरं तीर्थकारामिषेकेण मन्वयिञ्चन=ल्लपितवन्तः।

तथा=वीर्यकारामिषेकानन्तरं शक्रेन्द्रेण अनुपममरात्रीतावधितत्वेन, सर्वाविश्यापिपाराक्रमयुक्तत्वेन, कर्मिणोऽस्त्वेन=स्वाङ्गुष्ठस्पर्शेन मेघपर्शस्य कम्पनया च, तथा-मीममयमेरव=योरमयेन मयङ्कुरसु, उदारयु=विशाम्भु, अघेसत्वादिहं परिपरं सपित्यवे=इति कृत्वा=इति शाल्वा मगवत्स्तीर्थकरस्य गीर्वाणगणसमस्तं=देव-

वीर्यकारामिषेक के पश्चात् शक्रेन्द्र ने, मगवान् को असामाधारण महावीरता से युक्त जान कर, सर्वोत्कृष्ट पराक्रम से युक्त होने के कारण तथा अपने मण्डे के सर्वसाम्य से मेघ पर्वत को रौंया देने के कारण और मरिच्य में यह पौर मय से मयंकर, विशाल अघेसत्वा आदि परीपहों को सहन करेंगे, ऐसा जान

या मयु क्षणवधरमां जनी गयु, ने क प विदेशे जलस्य सभा, त्पारे देव देवज्जोत्वे पञ्च पुथीने। इम भेष्यो अने अजे अज तेजोने थावा वणी धरी अर पहेबां तो अवेना एव ताणवे बोटी अभा उवा, ने 'शु जयु ने शु जन्ते' तेनी शामाशेण करी रखा उवा, ने 'ज म-भरखुनी पय्ये जेबा जाड रखा उवा इरैठने उमर्का अथां के जयु' जेवेज्ज अथ व्यापी रखो उवा, त्थां तो सपुगमां, अजगु अजगुगोम अङ्कर करी गयु सर्व वेडनाज्जो नाथ पायी। जाइइने ठेकावे सतोप अने ज्ञान उ छयाड अथां अथपु अजगु सदाभयीना उपमा हेरपयु ने बोधना विषे एव-अनुज्जोत्वे निरांत अनुभवयी

अथ इर कतां देव-देवज्जोत्वे ज्ञान इतो उकारो उल्लेखो इरैठ उकारनी ने ने सामञ्जीजो, जुडे सुडे इव योज्जेथी, खेयी करी उवी ते अवेनी उपयोअ, अजवानना अजियेकमां भयो।
नेम आर्येअ युनिज्जे, अर्थत शब्दने "समको पत्तिया हुम्भ"-डे सजन्। उ अथयुत छि-अथम उहं अभाव जाल्लो ने आ अजवाननी वीस्वा अट्ट छे वेड तेभने ज्ञान ययु जाडु अण, वीर्य अने पराक्रम पञ्च मानव देहोमां कोअ छि-तेम अभाव ज्ञापवां तेजोने अज अणवा भांठयो ने पूज्जे अठित प्रार्थित करीने, अज वानने अजियेक भयो।

अथ देवी शीते उरसत भयो। तेनु ज्ञान अयाए शकन्ते जाप्यु त्पारे देवदेवीज्जो। आ.अ.अ.भां अरशाव अड

दृन्दसमक्षे अर्थधाम=सार्थकं श्रीमहावीरेति नाम कृतम् ।

ततः=चरमतीर्थकरस्य श्रीमहावीरेतिनामकरणानन्तरं, शक्रो देवेन्द्रो देवराजः पञ्च शक्ररूपाणि त्रि-
करोति=वैक्रियशक्तयोत्पादयति, तत्र=पञ्चानां शक्ररूपाणाम्मध्ये एकः शक्रो भगवन्तं तीर्थकरं=चरमतीर्थकरं श्री-
महावीरं करतलसम्पुटेन शुक्लति, एकः शक्रः पृष्ठत आतपत्रं=छत्रं धरति, द्वौ शक्रौ उभयपार्श्वे=वामदक्षिण-
पार्श्वद्वये चामरोत्क्षेपं=चामरवीजनं कुरुतः । एकः=अपरः-पञ्चमः शक्रो वज्रपाणिः=वज्रहस्तः पुरन्दर इन्द्रः
पुरतः=अग्रे प्रवर्तते=प्रचलति ।

ततः शक्रो देवेन्द्रो देवराजः चतुरशीत्या=चतुरशीतिसंख्यभिः सामानिकसाहस्रीभिः=सामानिकानां

कर भगवान् का देवगणों के सामने 'श्रीमहावीर' ऐसा सार्थक नाम रखवा ।

चरम तीर्थकर का 'श्रीमहावीर' ऐसा नाम रखने के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजने शक्र के पाँच रूपों की विकृर्बणा की-पाँच रूप बनाये । उन पाँच शक्र के रूपों में से एक शक्रने भगवान् को अपने करसंपुट में लिया, दूसरे शक्रने पीछे से छत्र धारण किया, दो शक्रों ने दाहिनी और बाँई ओर चामर बीजना आरंभ किया । एक-पाँचवाँ पुरन्दर इन्द्र हाथ में वज्र लेकर आगे-आगे चले ।

तप देवेन्द्र देवराज शक्र चौरासी हजार सामानिक देवों के साथ, तैत्तिस त्रायस्त्रिंश देवों के

गया. अभिषेकनी क्रिया पूरी थता, मोटा समुहायनी वन्द्ये 'भगवाननुं' नाम 'महावीर' राधवामां आवे छे'-
ज्येवी हिन्य धोषष्ठा करी शक्रेन्द्रे सर्वने न्यष्ठा करी, अने आ न्यष्ठा करतांनी साथे, भगवानना अतुल्यगणनुं विवरष्ठा करता
गया, अने 'क'प' थवाता कारष्ठा। पुढवा करी, हरेकने समन्यु आपता गया.

"व्याणयष्ठांनं चेताना पराकभने, आपष्ठांने परथे अतांथे, ने आ न् भवभा, चेताना पूरे' करेत्त शुभा-
शुभ कथेनि, वीरतापूर्वक सामना करी, पुढवा करी नाथे, ने ते कर्म' यक्षुर करवामां अनंत सडनशक्ति
धारष्ठा करी, अने प्रगट करी, साथे आवेला उपसर्गा अने परीषडने, आनंथी वधावी देखे, भाटेन आ प्रभुनुं
नाम वास्तबिकरीते शुष्ठासंपन्न 'महावीर' छे।" -ज्येभ हदतापूर्वक गहिरात थतां ते 'नाम' ने सर्व देवाज्ये
वधावी तीधुं.

थकेन्द्रनी पासे डेटेवा देवसमुहाय हतो तेनुं वष्ठांन करतां टीकाकार कहे छे डे चौरासी हज्जर सामान्य

देवतां सार्वभौ, 'यावत्'-पदेन "अप्राकृतवा आयासिद्धकौ, चतुर्मिलौक्यासैः, अष्टमिप्रमरिपीभिः सपरिवारमिं ;
 विद्युमि परिपत्रिः, सप्तमिनीचपियमिभिः, षट्ठमिः चतुर्धीत्याऽऽत्तरभ्रदेवसारासीभिः (पट्टत्रिसप्तसप्तसप्त-
 पिक्तसप्तसप्तसप्त)-इत्येषां सप्तसप्तः, अन्वैः=वदितैः मन्वणतिष्यन्तरलघोतिषिचैमानीकैः यवैः देवीभिश्च
 सार्वैः=सप्त संप्रतिष्ठाः=युक्तं, सर्वैषां 'यावत्'-पदेन-'सर्वपुत्र्ये'-स्यादि 'मराता इदयोच्छासेने'-त्यन्तानां सप्तसप्तः,
 स चापैच दशैः पूर्वकृतोऽवसेया। मराता=उभै रवेण=नेयांदिचन्दनेन, तयान्पूर्वोकया मसिद्वया वा उत्कृष्टया=
 उत्तमया, 'यावत्'-पदेन स्वरितया=उत्कृष्टावद्याच्छीघ्रया, आन्तरामिमायतोऽप्येया मवतीत्याह-व्यस्यया=काय-
 दोऽपि बलस्य, चञ्चलया=उत्प्रायाऽऽसुक्ष्मकर्मयोगेन, सिंघया=सिंहरसस्यया तत्राहर्षत्यैकेय, उद्धतया=दर्पातिष्ठनेन

साय, चार छोरूपलौ के साय, नाठ सपरिवार अष्टमरिपियो (पटरानियो) के साय, तीनों परिपदों के
 साय, सात अनीकों के साय, सात अनीकापियतियों के साय, चार बीरासी हजार आत्मरसक देवों के
 साय (अर्थात् तीन लाख छपीस हजार आत्मरसक देवों के साय), और इनके अतिरिक्त मन्वणति, न्यन्तर,
 ख्योविष्क एवं वैमानिक देवों तथा देवियों के साय, सर्वैकृष्टिसहित, सर्वेषुनिसहित सर्वैकलसहित, सर्वैसमुद्रय
 सहित, सर्वैदरसहित, सर्वैसन्नसहित, सर्वैसमारोहसहित, सुव्यसहित, ममी मकरके
 गंध, माल्य और गजद्वार की शोभा से युक्त होकर, तथा दिव्य चापों की ध्वनि से, मधवी ऋद्धि से, मरान्
 मानसिक उच्छास से और मेरी भादि राजों के मराध्वनि से युक्त होकर, उत्कृष्ट, स्वरित-उत्कृष्टा के कारण
 शीघ्रगामी, आन्तरिक अभिमाय से मी यह होती है इस कारण कहा है-चपला, अर्थात् काय से मी

इष्टाना देवो इत्य, देवीय तानस्त्रिय देवो इत्य, चार दोषथाठ देवो इत्य, आऽ अष्टमद्विषीको तेभना परिवार
 आऽ इत्य, यद्य परिपत्रो इत्य, सात अनीकपियतिया (सिवायतिया) अने चारपत्नी इत्यर आऽपरसक देवो इत्य"

आ अत्रत परिवार छपरंत, मूल अर्थ या इत्यांया मुख्य, चार अतना देवो, देवीया, सवनधति विवेरे
 यद्य दोषर इत्यं. आ अत्यरन्तत प्रभाशोक पूष्य रीते दिग्ध वाऽऽत्रि आदिनी साधे अन्तर शर्त, पूष्य रीते
 दोषावभयान शर्त, आनसिक्त छरकाय अने सिकरः प्रारणु धरी, इत्या-पूष्यं क अन्तानने लधने पाठा आऽपवा लाऽया।
 उपदेशत प्रभाशोकया देव-देवीयांनी लाऽवरी इत्यं (१) चपला (२) म. म. (३) विस, अने (४) अया
 आ आऽ अतिविया देवीने चरैकी अर्थात् छे अर्थात् अरेके अर्थात् आऽपवा, आऽ अतिविया अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात्

वेगवत्या, जयिन्या=जयशीलया, छेक्या=निपुणया दिव्यया=अद्भुतया, देवगत्या=इत्येषां सङ्ग्रहः। यत्रैव= यस्मिन्नेव प्रदेशे भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मनगरं, तत्र यत्रैव=यस्मिन्नेव स्थले जन्मभवनं=जन्मग्रहम्, तत्र यत्रैव= यस्मिन्नेव स्थाने तीर्थकरमाता=श्रीवीरजननी त्रिशलाऽऽसीत्, तत्रैव=तस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छति, उपागत्य भगवन्तं तीर्थकरं मातुः=त्रिशलाख्यजनन्याः पार्श्वे स्थापयति, स्थापयित्वा पूर्वदत्तां तीर्थकरमातुः=श्री-वीरजनन्याः, अवस्वापनीं=शयनकारणभूतां निद्रां प्रतिसंहरति=अपनयति, एवं=पूर्वप्रकारेण भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहोत्सवं कृत्वा सर्वे इन्द्राः सर्वे देवा देव्यश्च यस्यामेव दिशि प्रादुर्भूताः=प्रकटिताः, तामेव दिशं प्रति-गताः=प्रतिनिवृत्ताः ॥सू०६६॥

मूलम्—तए णं उदंचंतउस्सवो सिद्धत्थभूवो पचूसकालसमयंसि पमोय-कयंव-मोयग-पहुज्मण्ण-सूयग-जायग- निउरवं देणसेणपराभवसुण्णं करीअ। नागरियसमायवणमवि रायराय-रुमला-विलास-हास-वसु-सलिलाऽऽसारेहिं फारेहिं दुक्ख-दावानल-समुज्जलंत-कीलकवल-एवल-मयाओ विमोइज्जण उब्भिभंदताऽमंदा-नंद-कंदं-कुर-पूरं करीअ। कारागार-निगडिय-जणवारं च निगडाओ मोईअ। उत्तरोत्तरोच्छंतपत्राहेण उस्साहेण तं खत्तियकुंडग्गामं नयरं सव्भितरत्ताहिरियं आसित्त-संमज्जिओ-वलित्तं संघाडग-तिग-चउक्क-चचर-चउम्मुह-महा-

चंचल, वण्डा-उत्कर्ष के योग से चंड, उग्रा-सिंह के समान दृढ़ता एवं स्थिरतावाली, दर्प की अधिकता के कारण उद्धत, जयिनी-जयशीला, निपुण तथा अद्भुत देवगति से जहाँ भगवान् तीर्थकर का जन्म-नगर था, और जिस जगह जन्मग्रह था, तथा जहाँ तीर्थकर महावीर की माता थीं, उसी स्थान पर (गक्र) आये। आकर भगवान् तीर्थकर को त्रिशला माता की वगल में स्थापित कर दिया। स्थापित करके पहले दी हुई माता त्रिशला की अवस्वापनी निद्रा को दूर कर दिया।

इस प्रकार भगवान् तीर्थकर का जन्ममहोत्सव करके सभी इन्द्र, सभी देव और सभी देवियाँ जिस दिशा से आये थे-प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ॥सू०६६॥

सिंहनी सभान दडता अने स्थिरतावाणी तथा दर्पवाणी, तथा अट्टे न्यशीला, या अद्भुत-देवगतिवाणी गभन करीने, देवा जन्मभवनमां पडोअया, लगवानने भातानी गोडमां स्थापित करी, पोतानी इरअ यथायोग्य अज-वाध गंध तेना आनंद अने उत्साह लध, देवा पोतयेताला स्थाने जवा विहाय थया. (सू०६६)

पर-परोस सिद्ध-सुर-संमह-रस्यंता-यज-गीरियं मंभारमंभवकल्पियं
 माउछोपलुचं गोसीस-सस-रषवंप-दर-दिस-पंप्युल्लित्तं
 तोरुण-पडिबुवार-देसमग आसवो-वसव-विउल-सु-वयायिय-मछराम-कलापं पंचकम-सरस-सुररि-मुक-
 पुष्पुजो-वपार-कल्पिय कालागुरु-पवर-कुदकक-मुक-यू-उज्ज्व-मयमयत-गधुपुपुया-भिरामं सुगंयवर
 गपिय गंपवडियूं नह-दृग-गछ-मछ-मडिय-वेलवग-पवग-कडग-गडग-सासग-आरकलग-संव-तुणरछ-
 दुंपपीषिय-भणोगवालापरा-मुनरियं कारावेइ। जूभसइसस मुससइससं व अयाइषा एगओ उवावेइ, जण
 अस्सि मरोछवसि कोवि सगडे वा इछे वा जो वारठ, नो वा मुसछेहि किंचियि संठवणि ।ख०६७।

छाया-पठः लछ उदबदुसवः सिद्धार्यपूः प्रपूककल्समये प्रमोद-कृद्व-मोवक-प्रमुजन्मयुवक-या-
 वक-निडुअं दैन्य-सैन्य-परामव-यून्यमकरोत। नागरिकसमाजवनमपि रामरान-कमला-विहास-वास-वसु
 सक्किा-ऽऽसारेः स्तारेः दुःल-दावानल-सगुज्ज्वकडीलकवस-प्रवस-मयात् विमोच्य उद्विन्द-मन्दा-नन्द-

मूक का अर्थ—'एष मं' इत्यादि। तत्पश्चात् रामा सिद्धार्थने उरसव मनाना भारंम किया।
 पात्रकाल होने पर तरोमे मानन्द के समुदाय को देनेवाले प्रमु-जन्म के सूचक अन्तपुरके
 श्रुत्यों के तथा यावकों के समूह को दैन्येतन्य के परामव से शून्य कर दिया-मगवान् के
 जन्मके इर्षके उपलक्ष्य में प्रमुजन्म युवक अन्तःपुरके दासदासियों को और वृद्धों को इतना दान दिया कि
 उनकी दरिद्रता दूर हो गई। नागरिक-समान स्त्री वन को भी, कुयेर की सम्पदा का उपहास करनेवाले वनस्त्री
 पानी की विशाल धाराओं से वर्षा करके, दुःखरूपी दानाल की भावव्यपमान शिलागोंका प्राप्त बनने

भूजने अर्थ—'एष व' अन्वदि। सव्य सिद्धार्थे उत्सव भनाववानु शरुं ठुं प्रताशव शर्त्त, प्रमुना
 व धो-सव निमित्ते अवापुरेना नोकरवभतु शक्ति शीथी दीमु-शक-थाली नोकर-आइर विवेरेने अणणक इव्य
 आ-मु, ने तेजोनी कथेथानी वयावीवत भदावी दीपी
 देयना-व्यभक्तिनी वरिश्रवा इर इरणा कुवेरिना व धारने पवु भादीव्य तेयो तेभने व धार केने। आ व धार भक्ति
 धन, वरथावनी धासजोनी भाइर वडेत्त सुकवाभा आ-मु अा भन दाश वडेत्त...

कन्दकुुर-पूरमकरोर, कारागार-निगडित-जनवारं च निगडादमोचयत् । उचरोत्तरलसत्प्रवाहेणोत्साहेन तव
क्षत्रियकुण्डग्रामं नगरं साभ्यन्तरवाह्यम् आसित्त-संमार्जितो-पल्लिप्तं शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-
महापथ-पथेषु सिक्त-शुचि-संमृष्ट-रथ्यान्तरा-ऽऽपण-त्रीथिकं मञ्चातिमञ्चकलितं नानाविध-राग-भूषित-ध्वज-
पताका-मण्डितं लेपोल्लेपयुक्तं गोशीर्षि-सरसरक्तचन्दन-प्रचुर-दत्त-पञ्चाङ्गुलि-तलम् उपचित-चन्दन-कलशं
चन्दन-घट-सुकृत-तोरण-प्रतिद्वार-देशभागम् आसक्तोत्सक्त-विपुल-वृष्ट-पलम्बित-माल्यदाम-कन्यापं पञ्चवर्णा-

के प्रवल मय से युक्त करके उत्पन्न होने वाले असीम आनन्द-कन्द के अंकुरों के समूह से युक्त कर
दिया । कैदखाने में रहे हुए कैदियों की वेडियाँ खुलवा दीं । उत्तरोत्तर बढ़ते प्रवाहवाले उत्साह के साथ
क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगरी को भीतर और बाहर खूब सौँचा, झाड़ा और लीपा हुआ करवाया, अर्थात्
सजवाया । शृंगटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ और पथों में, रथ्याओं के मध्यभागों तथा
वाजारकी गलियों में सिंचन करवाया, इनकी सफाई करवाई, मचानों और मचानों पर मचानों से युक्त कर
दिया । तरह-तरह के रंगों से शोभित ध्वजाओं एवं पताकाओं से मण्डित करवाया । गोवर आदि से
लिपवाया, खड़ी आदि से पुतवाया । गोशीर्षिचन्दन तथा लालचन्दन के बहुत से हाथे लगावाये । चन्दन

ने गरीब वर्गने आर्थिक लयसांथी, इ'वेथने माटे सुकत कथे, ने आ वर्गमा आन'दना अ'कुरे दूटवा ता'ग्या.

नेलना डेहीजोने मधनसुकत कथां, उत्तरोत्तर उत्साह वधासिने, नेटला अथे गरीब-गरथाने धन द्वारा
संतोषाय, तेटला अंशे संतोष्या.

क्षत्रियकुंडग्राम नगरने लडारथी अने अ'दरथी, साइसूद करी, तमाम प्रकारे सुशोभित थाना'युं. शडेरनी
इरती दिवालो र'गावी-धोणावीने आ'कष'क रीते थीतरी. अ'दरना रस्ताजो बेवा डे शृ'गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर,
चतुर्मुख, मडापथ, पथ, रथ्या विगेरने साइ करी, तेना परना कथराने हर करी पाणी छ'टा'युं.

शडेरने मध्यलाग, लन्देा अने गवी-थुंथीजोमांथी गंधवाड विगेरे हर करवावी, तेनी पर पाणी'सुं शिंयन
कथुं, ने उडती धूण अने तेनी रनेने जेसाडी दीधी. ध्वजजो अने पताकाजो वडे, शडेरनी शोलाभां वृद्धि करी,
उत्तम प्रकारना रंगरोगान वडे दिवालो अने कमाडे धोवड'यथां अने रंगा'य्या. गोशीर्षिचन्दन अने लालय'दना
थाया हरेक थारी थारवा उपर लगान्यां, ने अ'दरथी सुगंधित लनवेला कणशो, हरेक पेढी, डुकानेा अने कायां-
लय-केशरीजोमां भूकान्या.

सास-पुरामिच्छु-मुष्णुओ-पबार-कसिंव कालागुद-पवारकुन्दुवनक-रुणक-वूप-इमान-मसरद-गान्वीवृषुगा-
 भिराम मुगन्वपगन्वितं गन्ववर्धितुव नद-नर्वक-अष्ट-मष्ट-मौष्टिक-विलम्बक-द्रावक-कपक-पाठक-वासका-
 उरसक-अ-वृणावुम्भरीयिका-नेकवालबारा-उचरितं कारयति। गुणसवत्र सुखससत व भानाय्य पकृत
 स्वापयति, यत् सल्ल भस्मिन् महोत्सवे फोडपि अकट्टानि वा हसति वा नो वाहयत्तु, नो वा सुवसै किञ्चित्
 सन्धयत्तु-इति। (गु० ६७।)

से न्द्रि कन्ध स्पणित करताये। शर शार पर चन्द्रस्मि घटों स रमणीय शोरण बननाये। नीचे से
 करत तक के माय को स्पर्श करने वाली विस्तीर्ण गोल और लम्बी फूलमाताओं के समूह से सुशोभित
 करताया। मलने वाले उपम काळे मगर, कुन्दुरकक (पीङ्गा), तुण्ण (लोवान) तथा पूय की फैलती हुई
 गण के मसार से रमणीय कराया। उपम धूर्णों की गण से मुंगुणित कराया। गेय की च्डी के समान
 बनवाया। नटी, नर्वकी, अष्टो, मह्यो, मीष्टिको, दिरुमको, प्पाबको, पकको, हासको, मारसको,
 सन्दी, वृणावतों, सुम्भरीयिकों तथा अनेक तालवतों से युक्त कराया। इनतों ज्ये तथा इनतों मूसल
 मंगवाकर एक नगह रतना दिये कि इस महोत्सव के अवसर पर कोई गाड़ी या हल न जये, और न
 मूसलों से कुट्ट डूटे। (गु० ६७।)

इस वस्त्रा इतवाने इत्थाने, च इतथी टेषानेवा बडाजिना तोरकु। अ धाव्वां। तोस्य पर, नीचि उपर
 वररथी हांवी अने प्पेव्णी हुदभगावो वरभवधामां अापी। पव्परओ हुदोनी शोभावठे आ तोश्वेने विरोध
 शोन्विठ क्थं आ हुदोने। एव अने मुग्ध पव्वा ठेअ इतं।

पेर पेर ठेतम अन्वलयती कुन्दुरक (नीस), तुण्ण (डोण्ण) नी ठ-पी अनानवणागा पूये अणभावधामां
 आव्वा, आ पूयेधं पव्वा कति सुग्ध छुटे तेवां व्पेव्णी वरववधामां आव्वा अचन अड्डि सुग्ध धनु एव आत्राव्ण
 केषां टोवी सुवात्र देवावधामां आनी।

येरीजि येरीजि अने अहीजि-अहीजि, नद-नद-अ-अक अश्व-मौष्टिक-विड अठ-आवक-इयठ-पाठ-व।सठ
 आयक-व-पेव्णव-वुम्भरीयिक तथा अनेठ पाववथै शोषधामां आव्वा।

केकशे जेवतलं अने केकशे सजिधं, आआजे अमधंवी ठवनापी हीधं, अने अेठ केकशि अणधं टोवां
 क्थं अठवण जे इतोके, टोवी अणधनाए अमठोत्सवना गुण अन्वर उपर अड्डियण अणधने कुण के अण

टीका—'तए णं उदंचंत' इत्यादि । ततः खलु उदञ्चदुत्सवः=उद्यदुत्सवः सिद्धार्थभूषः प्रत्युपकालसमयं=प्रातःकालावसरे, प्रमोद-कदम्ब-सौचक-प्रभुजन्म-सूचक-याचक-निकुरम्बं, तत्र-प्रमोदकदम्बसौचकम्=आनन्द-वृन्ददायकं यत् प्रभुजन्म तस्य ये सूचकाः=ज्ञापका याचकाः=भिक्षुकाश्च तेषां निकुरम्बं=समूहं, दैन्यसैन्य-पराभक्त-शून्यं=दाद्रिच-रूप-सैनिक-पराजय-रहितं-दाद्रिच्यमुक्तम्, अकरोत् । तथा-स नागरिकसमाजवनमपि=नगरवासि-जनसमूहरूपवनमपि, राजराज-रमला-विलास-हास-वसु-सलिला-ऽऽसारैः-राजराजः=कुवेरः, तस्य या कमला=लक्ष्मीः-सम्पत्तिः, तस्या यो विलासः=विलसनं, तं हसतीति तादृशं यद्वसुधनं तद्रूपं यत्सलिलं=जलं तस्या-ऽऽसारैः=धारासम्प्रातैः, तैः कीदृशैः? इत्याह—स्फारैः=विशालैः, दुःख-दावानल-समुज्ज्वलकील-कवल-प्रवल-भयात्-दुःखमेव यो दावानलौ=वन्यवह्निः तस्य यः समुज्ज्वलन्=पञ्चलन् कीलः=शिखा-ज्वाला तस्य यत् कवलं=ग्रसन तस्मात् यत् प्रवलं=पकृष्टं भयं तस्मात्, विमोच्य=पृथक्कृत्य, उद्भिन्दद-मन्दा-ऽऽनन्दा-ङ्कुर-पूरम्-उद्भिन्दन्=परोहन्-उत्पद्यमानः श्रमन्दाऽऽनन्दाङ्कुरपूरः=अतिशयितप्रमोदरूपाङ्कुरसमूहो यस्य यस्मिन् वा ताद-

टीका का अर्थ—'तए णं' इत्यादि । तव राजा सिद्धार्थ उत्सव मनाने के लिए उद्यत हुए । प्रातः-काल के अवसर पर उन्होंने आनन्द के समूह को देने वाले भगवान् के जन्म को सूचित करने वाले अन्तःपुर के दासदासियों को तथा भित्वारियों को दीनतारूपी सेना के पराजय से रहित कर दिया, अर्थात् सदा के लिए उन्हें दरिद्रता से मुक्त कर दिया । तथा नगर-निवासी जनसमूहरूपी वन को भी कुवेर की लक्ष्मी के विलास का उपहास करने वाले, अर्थात् अत्यधिक, धनरूपी जल की विशाल धाराएँ बरसा कर, दुःखरूपी दावानल की जलती हुई ज्वालओं का ग्रास होने के प्रवल भय से मुक्त करके, उत्पन्न होने वाले अतिशय प्रमोदरूपी अंकुर-समूह से सम्पन्न कर दिया । अभिप्राय यह है कि सिद्धार्थ राजाने कुवेर के धन से भी अधिक धन देकर नागरिक जनों को दरिद्रता के दुःख से रहित

टीकानो अर्थ—'तए णं' इत्यादि । भाषायने येताना पुत्रनो जन्म-उत्सव उज्ज्वलमां आनंद होयन्, यथु आवा होडनाथ थवाणा पुत्रनो जन्म-उत्सव उज्ज्वलमां तो आशु'थे राष्ट्र तैथार थध गयु. रामञ्चे, येतानो-अब्दनो खुड्डो भूडी हीधो, ने गरीभवर्गना डुःभो भटाडवामां कंधपथु भषा राभी नडिं. येताना आश्रये पडेवा नोकरियात वर्गाने तो, रामञ्चे न्यास करी हीधो, ने तवंगरनी कक्षासा ते सर्वने सुडी हीधा.

सूर्य अक्रोरोव। सिदायौ राजा वैश्रवणपनादिश्रापिपनयदानेन नागरिकजनान् दारिद्र्यदुखलरोहितान् कृत्वाऽमन्वा-
 नन्दपुक्तान् अक्रोरोदिति भावः। स सिदायैराजः पुनः कारागार-निगडित-जन-वारं कारागारे निगडित्वा-
 नियन्त्रिता ये जनाः-अपरापिनो लोकाः तेषां वारं-समूर च निगडाव-शृङ्गातः अमोचयत्-सुकुमकारयत्।
 पुनः स उषरोषरोद्धस्तप्रवारेण-उषरोषरयः-क्रमच्चः उद्धस्त-वर्षमानः प्रवारे-वारा यस्य वादधेन, उत्सारेन-
 अप्यवसायेन, तत्-वसिद्धं त्रिभियकुडप्राम नगरं साम्यन्तरबाह्वय-मस्यन्तरे वरिष आसिक्त-संमानितो-पस्त्रि-
 पूर्वमासिक्तं नडेन सुमिष्टमनाय, ततः सम्मानितं-संशोषितं मार्जन्या, ततः उपस्त्रि-गोमययुक्तिकास्यां यत् वादधय्,
 तथा-शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्गुल-महापय-प्येषु, तत्र-शृङ्गाटक-भिकोजस्यानय्, त्रिक-मार्गप्रयमिक्त-
 स्थानय्, चतुष्क-मार्गचतुष्टयमिक्तस्थानय् चत्वर-शुभमार्गमिक्तस्थानय्, चतुर्गुल-चतुर्द्वारस्थानं, महापयः-राजमार्गः,
 बना दिया, और तीस मानन्द से युक्त कर दिया। इसके अतिरिक्त सिदायै राजाने कारागार में कैद किये

हुए जो अपराधी जनों के समूर थे, उनको शेरियों से युक्त करा दिया।
 राजा सिदायै के उत्साह की वारा उषरोषर बढ़ती जा रही थी। उन्होंने त्रिभियकुडग्राम को
 भीतर से भी आर बाहर से भी लूट सनवाया। परछे पूल को झत करने के छिप जल से
 सिंचवाया, फिर पुष्पारी से शकवाया और फिर गोषर तथा युक्तिका से छिपवाया। शृङ्गाटक (विक्रोने स्थान),
 त्रिक (वीन रास्तों का संगमस्थल), चतुष्क (चार मार्गों के मिलने का स्थान-चौराहा), चत्वर (बहुत रा-
 स्तोंका संगम स्थल), चतुर्गुल (चार द्वारों वाला स्थान), महापय (राजमार्ग) और पव (सामान्य रास्ता) में

क्रमपर्यन्त सुधीनी श्येव शिखाजो पवु भादे कश्वाभं आवी, अने इरक देवीने, इरीबी डेड अ-कासर
 लेवभां एवाणे अवसर ठेले। न थाप ते अर्थे आभिक भड अने धभा शक्यार (वज्रेशनी विपुव प्रभाकुभां
 अत्रवत्तजो आपी आधी लेव-पभीजे पवु, आन इबी नाबी ठेव्यां, अने पोतापु आधीतु छवन सु हर रीते
 विवाचन तत्पर थयां।
 आ उपसत अनेक आनधान कुटुंबिनी अरीण अजितजोने, लेडके तेडवा प्रभाकुभां अत्र रीते अथर
 धन आपी अत्रस्थान जनाभा नेने पस्त्रिजे, तेमनी कथेसनी पण आंभी।
 -अथर-अत्रवत्तजो अनेक आनधान कुटुंबिनी अरीण अजितजोने अत्र रीते अथर

पन्थाः=सामान्यो मार्गश्चेतेषु=एतद्वच्छेदेन, सिक्त-शुचि-संमृष्ट-रथयान्तराऽऽ-पण-वीथिकं, तत्र-सिक्तानि=आद्री-
 कृतानि शुचीनि=पवित्राणि संमृष्टानि=शोधितानि च रथयान्तराणि=मार्गमध्यानि आपणवीथिकाः=हृदमार्गौश्च यस्य
 तत्तादृशं, तथा-मञ्चातिमञ्चकलितं-मञ्चाः=महोत्सवविलोकनार्थं जनानामुपवेशननिमित्तं मालकाः, अतिमञ्चाः=
 मञ्चानामुपरिस्थिता मालकाश्च तैः कलितं=युक्तम्, तथा-नानाविध-राग-भूषित-ध्वजपताका-मण्डितं-नाना-
 विधाः=अनेकप्रकारा ये रागाः=रञ्जनद्रव्याणि तैर्भूषिताः=रञ्जितत्वेन शोभिता या ध्वजपताकाः=ध्वजाः=सिंहा-
 दिरूपचित्रिता बृहत्प्रमाणा वैजयन्त्यः, पताकाः=लघुप्रमाणा वैजयन्त्यश्च तामिमण्डितं=शोभितम्, तथा-‘लाड-
 छोइयजुचं’ लेपोलेपयुक्तम्-लेपः=गोमयादिना भूमौ लेपनम्, उल्लेपः=सुधाचूर्णादिना भिरयादीनां धवलीकरणं,
 ताभ्यां युक्तम्, तथा-गोशीर्षि-सरस-रक्तचन्दन-मञ्जुर-दत्त-पञ्चाङ्गुलि-तलं, तत्र-गोशीर्षं=हरिचन्दनं, सरसं

जो भी मार्ग के मध्यभाग थे, तथा बाजार की गलियाँ थीं, उन सबको सिंचवाया, साफ कराया और
 शोधित कराया। महोत्सव को देखने के लिए लोगों को बैठने के वास्ते मंच (मचान) बनवा दिये,
 और उन मचानों पर भी मचान बनवा दिये। नाना प्रकारके रंगों से विभूषित और ध्वजा-पताकाओं से
 सज्जित करावा दिया। जिन पर सिंह आदि के चिह्न बने रहते हैं और जो बड़े आकार की होती हैं वे
 ध्वजा या वैजयन्ती कहलाती हैं। छोटी-छोटी ध्वजाएँ पताकाएँ कही जाती हैं। इन रंगों, ध्वजाओं और
 पताकाओं से नगर को सुशोभित कराया। भूमितल गोबर से लिंपवा दिया गया, और दीवारों पर चूना
 आदि से सफेदी करा दी गई। गोशीर्षं-हरिचन्दन तथा सरस लालचन्दन के बहुत से दीवाल आदि

राजकचेरीयो, जहिर रस्तानो विगेरेने संपूखं रीते सुधारी, रेनकंभं दाववाभं आन्धां.

अथदेशे-जहिर रस्तायो तेभज आनगी गृह्णीनी शेरियोना पखु, वाणीयोणी सुधस भनावी, सुगंधि द्रव्ये
 वडे सिञ्चित करी शहेरेने धन्-पताका वडे शब्जुगारवाभं आन्धे। जहिर रस्ताना यौटाओभां भये। अने भांयडाओ
 उधर, जहिर जनता येसी, नाटयारो-नाटके-येद्यो-तभास्यो सुभपूंक जेध शके तेवी व्यवस्थाओ उबी करी.

ध्वज अने पताका उपर चित्र विचित्र चित्राभयो। दोरवाभं आन्धां इतां। मोटी ध्वजयोने, दोके। ‘वैजयन्ती’
 कहेता अने नानी ध्वजयोने ‘पताका’ ना नामथी जोगभता।
 अनेक प्रकारे शहेरना आंतर तेभज आद्य भागोने जेवी सुंहर रीते शब्जुगार्थं अने बालकाभंध भनान्धा

प्रसर-द्रव्यो-द्रुता-भिरामं, तत्र-कालागुरु=कृष्णागुरु, प्रवरकुन्दुरुक्कं=वीरगामिधानं गन्धद्रव्यं, तुरुक्कं=सिक्कं
 'लोहवान' इति प्रसिद्धम्, धूपः=दशाह्नदिरनेकसुगन्धिद्रव्यसंयोगजनितविलक्षणगन्धः, एतेषां दहमानानां यः
 प्रसरन् गन्धः, तस्य यद् उद्भूतं=वायुना प्रेरितं सत्प्रसरणं तेन अभिरामं=शोभनम्, तथा-सुगन्धवरगन्धितं-
 सुगन्धवराणां=श्रेष्ठसुगन्धद्रव्यचूर्णानां यो गन्धः, स जातो यस्य तादृशं-प्रकृष्टगन्धयुक्तम्, अतएव-गन्धवर्तिभूतं=
 गन्धशुटिकासदृशं, तथा-नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल-मौष्टिक-विलम्बक-श्रावक-कथक-पाठक-लासका-SSRसक-लल्ल-
 तुणात्रव-सुम्बवीणिका-Sनेकतालचरा-नुचरितं, तत्र-नटाः=नाटयितारः, नर्तकाः=स्वयं नृत्यकर्तारः, जल्लाः=वरात्रा-

तथा-कृष्णागुरु, श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क (चीडा-नामक गंधद्रव्य), तुरुक्क-(लोवान), तथा धूप-दशांग आदि,
 जो अनेक सुगंधि द्रव्यों की मिलावट से बनती है, और जिसकी गंध विलक्षण होती है, इन सब के
 जलाने से उत्पन्न हुई गंध, हवा से चारों ओर फैल रही थी, और इस प्रकार सारे नगर को मनोहर बन-
 वाया। वटियाँ सुगंधित चूर्णों की गंध से भी सुगंधित कराया, अर्थात् नगर को उत्कृष्ट गंध से व्याप्त
 करवा दिया। इस कारण वह ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे गंध-द्रव्य की वड़ी हो।

तथा-नट, नर्तक (स्वयं नाचने वाले), जल्ल (वरात्रा पर-रस्सी पर खेल करने वाले), मल्ल, मौष्टिक

सुगंधि श्रेष्ठाववा भाटे, कथी पषु कथाथ राभी न इती. सुगंधि-जगना छंटाव उपसंत, सुगधि प्रयो
 अने उंथी अनावटनी अगारभस्तीयो, यल्लो तेभज सुगंधी द्रव्येतेा तेा केाड डिसाथ राभ्येा न न इती.
 आभुं शडेर भडेक-भडेक अनी रल्लु इतुं, ने सुथलोनी सुवास योभेर पथराड रही इती. भधमधायमान थयेतुं
 सभस्त पाटनगर, सुगधने वीधे, रडेकी उंठ्युं इतुं.

लोकेने जभवा भाटे, रल्लथना रसेांां थुदवां भूडी वीधां इतां. जथां सुधी उत्सव थावे त्यां सुधी, केाड्ये
 पषु पोताना वेर, रसेाड करवानी इतीज नडिं, जभ्या पषी, आनडं प्रभेाड भाषुव, डेर डेर योडभां भंयो गेाहवी
 वीधा इता ते भंयो उपर जेस्ती, डेाकेा पोताने योग्य बागे ते भतनी कडाव्येा भेाड शकता.

आ कडाव्येानुं प्रकथंन दिवस-रात थाल्लु रडेतुं इतुं. कडाव्येाना प्रकाशे धषुा इता ने ते कडाव्येाना निभ्यते।
 डेाकेांां थुंढा भुंढा नामथी ज्येाणभाता इता.
 वेथ परिधान कसी, केाडं पुरें थडं गयेव व्यकितेना चितार रल्लु करनारने डेाडेा 'नट' तरीडे ज्येाणभता.

ऽऽखेलकाः (रक्तूपरि खेलकाः), मल्लाः=यसिद्धाः, मौष्टिकाः=दृष्टियशारका मल्लयावीयाः, विलम्बकाः=विदूषका-
 मुत्तविकारादिना जननां हास्यकारिणः, ग्रावकाः=वर्गापुङ्खयितारः, क्यकाः=सरसकयावकारः, पाठकाः=
 युकादीनां पठितारः, सासकाः=रासमानकारिणः, आरसकाः=रसकाः-‘सिपाही’-ति सापायसिद्धाः, सङ्गाः=बंधा-
 प्रलेखकाः, हृन्वीषिकाः=वीणावादकाः, अनेकवालसघराः=अनेके=श्रोत्रो ये गालसघराः-तामिषरन्ति ये ते तया-
 ताळदानेन प्रेसाकारिणः, यद्वा-वासान् कुट्टयन्त्रो ये कयां कययन्ति ते ताळसघराः, वैरजुवरिते=संयुक्तं

(सूते=बाबी करने वाले एक प्रकार के मल्ल), विलम्बक (विरूक-मुलविकार आदि करके जनता को
 रसाने वाले), फावक (समाग मार कर गड़बड़े आदि को सजाने वाले), क्यक (मजेदार कहानी कहने
 वाले), पाठक (बुकियाँ सुनाने वाले), सासक (रस-गान करने वाले), आरसक (शुभासुप्त सुकून करने
 वाले नैसिचिक) सस (सँस के ऊपर खेल करने वाले), तुपावन्त्र (तूणा नामक शजा बनाकर कया करने
 वाले)-इन सब से नगर को युक्त कराया।

रस्य नाभ भव्य वाणाने नृत्यकार' कहेता. आ नृत्यनी कला, श्री तेमज पुरञ्ज वन्ने कल्पी यत्कथां, तेष्ठी पुरञ्ज
 कलाधरने 'नृत्यकार' कहेता अने श्रीने 'मृत्तिका' कहेवा 'रथी' पर इववा वायो 'अष्ट' कहेवाते. पाहुंमज अताववा
 वायो 'अष्ट' वरीके जोगजाते. ठोंश भासवामां कुयज होश तेने 'मौष्टिक वरीके जोगभव. शाराबी
 विदुष कार भजद करवा वाणाने, विवलय' अथवा 'विदुषक' कहेता. अश्वान भारीने मुडी अनाए 'अथावह' वरीके
 जोगजाते. वास्य आदने 'कथ' कहेवा थाओना श्योम सजनावनारने 'पासक कहेता. रासगान अनाए 'वायु'
 वरीके जोगजाते. युलायुम यमुनया कहेवश नैमित्तिकेने दोहा 'आयसक' कहीने सजोभव बांश उपर जेस कर-
 नारने क अ' कहेता. साशनी आवावाणो वत्र तुषावत' ना नामशी सजोभाते. वीक्य पञ्चरनार 'गुञ्जवीसुड'
 कहेवाते. काशवाणु-जन्वववामां कुयज कलाधरने दोहा 'वालयर' कहीने गोभावत.

बाजवानना जन्म प्रसजना अद्योत्सव पञ्चते नानाप्रार्थीन्त्रिने पञ्च इ ज न स्यु जेधजि जे पशाराबी,
 जजक-पदा-दाथी निरेशने सुदा मुडी स पूज' वास आशे अयापी, आनक करवा अनावी भुङ्गा कवा ते त्रिन्त्रो
 इरम्भान, आनमी रीते पञ्च होइ जजक आदिने जेवशमां सुते नदि आटे जेवश पञ्च सन्ममां अग्रवी रीधा न
 कार जे कथं सबे प्रार्थीन्त्रिने जन्मन सुज्य कथा

कारयति, तथा-यूपसहस्रं=युगसहस्रं, शुशलसहस्रं=शुशालानि प्रसिद्धानि, तेषां सहस्रं च आनाय्य, एकतः=एकपाश्व
स्थापयति। अत्र हेतुमाह-यत=यस्मात् खलु अस्मिन् महोत्सवे=श्रीमहावीरप्रभुजन्मनिमित्तमहोत्सवे कोऽपि जनः
शकटानि वा हलानि वा नो वाहयतु=दृषभाधादिना न चालयतु, शुशलैर्वा किञ्चिदपि धान्यादिकं न खण्डयतु=

विदलयतु-इति ॥ सू० ६७ ॥

मूलम्-तए णं सा ललिय-सीला-लंकीय-महिला-गिइ-कुसला तिसला कमणिज्जुणजाळं विसालभालं वालं
विलोणिय समुच्छलंता-मदाणंद-तरलतर-तरंग-महासिणेह-वरुणगिह-णिमामज्जमाण-माणसा इत्थी-पुरिस-लक्ख-
ण-गाण-वियक्खणा पईयपुत्तलक्खणा तं थविउयुक्कमित्था-किं गुणगणवज्जिण्हिं वृह्हिं तणएहिं?, वरमेगोत्रि
अंतदो कुलकेरवंचदो भवारिसो असरिखुज्जलगुणो सुओ, जो पुराकयसुकयकलावेण पाविज्जइ, जेण य गंधवाहेण
परिमलराजी विव माउण्हिपसिद्धी दिसोदिसि वित्तिज्जइ, सोरब्भ-भरिया-मिलाण-कुसुम-भार-भासुर-सुरतरुणा
नंदज्जुणाभिव य तेळोक्कं गुणगणेण वासिज्जइ, अतेलपूरेण मणिदीवेणेव य पगासिज्जइ, अपासिज्जइ य
हियदरीचरी चिरंतणाणाणतिमिराई। सच्चं बुत्तं-

पत्तं न तावयइ नेव मलं पसूए,
णेहं न संहरइ नेव गुणे खिणेइ।

तथा-हजारों जूए और हजारों मूशल भँगाकर एक किनारे रखवा दिये, जिससे कि इस महोत्सव
में, अर्थात् श्रीमहावीर प्रभु के जन्म के उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले उत्सव के समय, कोई भी मनुष्य
गाड़ी और हल न जोते, तथा किसी भी धान्य आदि वस्तु को न कूटे, अर्थात् सभी लोग उत्सव में
सम्मिलित होकर आनन्दका उपभोग करें ॥सू० ६७॥

भांडशुध्यामा अनाञ्ज विगेरे भाडवाथी आरंल थाय, ते आरंभने रेकवा भाटे साणेला विगेरे
राञ्भडेलमा सूडाव्या।

डाडपसु नतना कामभाथी युक्त होय तो, मनुष्य जन्म-भङ्गोत्सव भाषी थके जे धरादाथी, सधं नतना
व्यापार अथ करेववा, उत्सवमा भाग लेवा रान्य तरक्षथी ढट्टेरे गडार पाडथावुं सयन कसुं. (सू० ६७)

दन्वावसाणसमए चलयं न धाइ,
पुचो इमो कुलगिहे किल को वि दीवो ॥१॥
एसो नोपुणराणुणनुओ सुओ णपुण्यमोयं जगयइ । भवि प—

सीयल चंदण दुत्त, तओ चंदो सुसीयलो ।
चदचदणओ सीओ, मह णदणसगमो ॥२॥
सिया उ महुरा नूण, सुहाइमहुरा तओ ।
तेहिं वि अस्स बालस्स, सगमो महुरो मह ॥३॥

फणग सुहय लोए, रयण च महासुह ।
तेहिं वि य महासोक्खो, अस्स बालस्स सगमो ॥४॥ सू० ६८ ॥

छाया—शवः खलु सा सखित्-धीमा-सङ्कृत-मरिष्ठा-कृति-कुशला विप्रला कमनीयगुणजासं विशाल-
भासं धासं किलीशय समुच्छन्द-भन्दा-नन्द-चलत्तर-वरइ-महास्नेह-वल्गुशूर-निमामिष्यमान-मानसा स्त्री-पुरुष-
सत्संगान-परिचसणा प्रतीशुभ्रलक्षणा तं स्तोत्रुपवक्रमे-किं गुणगणवर्तितैरन्यैरपि तन्यैः, परमेकोऽप्यतन्द्रः

मूसार्थ—'भइ सखिपसीलासकिव'-स्व्यादि । फिर उत्सव की समाप्ति के बाद यह शील से सुन्दर,
मरिचामों के कर्णन्य में कुशल, उल्लसती हुई अर्पयत-वंचल आनन्द-रूपी वरगों से युक्त महास्नेहरूपी समुद्र
में तैरती हुई, तिछे हुए कमल के समान सुलवली, स्त्री-पुरुषों के गुणागुणसत्संग जानने वाली,
यया धम्मक के मत्स्य को परचानने वाली विप्रला रानी, सुन्दर एवों से अलङ्कृत, विप्राल मालबाजे
पात्रक की स्तुति करने लगी—

भुबाध—'भइ सखिपसीलासकिप' पत्वादि, शीलधी सुह, अज्जिना कतन्धमा इशण अने शिखवा
जेवा अरएव अण्ण आनइपेरी वरओधी अउ भहास्नेहइपे अमुद्रमा विवोणा आत्ती, अदिवा कभेओना
नेवा अुभवाणी सी-पुरुषेयान धारं-नरमां लक्ष्मिने भावुवाधणी, तेभअ णाणकअ लक्ष्मिने ज्योणअवाणी
वियवाधणी, सुह उदोधी सुगैकिव विद्यावाकवाणा धिताना णाणकणी स्तुति करवा वाजी.

कुलकारवचन्द्रो भवाहशोऽसहशोज्ज्वलगुणः सुतो, यः पुराकृतसुकृतकलापेन प्राप्यते, येन च गन्धवाहनं परिमलराजिरिव मातापितृप्रसिद्धिर्दिशि दिशि वितन्त्यते, सौरभ्य-भरिता-म्लान-कुसुम-भार-भासुर-सुरतरुणा नन्दनोधानमिव च त्रलोक्यं गुणगणेन वास्यते, अतैलपूरेण मणिदीपेन च प्रकाश्यतेऽपास्यते च हृदयदरीचरी चिरन्तनाज्ञानतिमिरराजी । सत्यमुक्तम्—

गुणविहीन बहुत पुत्रों से भी क्या?, किन्तु अप्रमादी, कुलरूपी कैव-रात्रिविकासी कमल-को विकसित करने में चन्द्र-रूप, तेरे जैसा अनुपम उज्ज्वल गुणवाला एक ही पुत्र अच्छा है, जो पुत्र पूर्वजन्मोपार्जित प्रचुर पुण्यों से प्राप्त होता है। जैसे-गन्धवाह-पवन पुण्यों की सुगन्धि को दिशा-विदिशाओं में प्रसारित करता है, उसी प्रकार जो पुत्र अपने मातापिता के नाम को सर्वत्र प्रसिद्ध करता है। जैसे सुगन्धियुक्त अम्लान (खिले हुए) पुण्यों के भार से सुशोभित कल्पवृक्ष, नन्दनवन को सुवासित करता है। उसी प्रकार जो पुत्र अपने गुणगण से तीनों लोक को सुवासित करता है। तथा-जैसे तैलरहित मणिदीप गृहादिक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तेरे जैसा पुत्र तीनों लोक को प्रकाशित करता है, और जो त्रैलोक्यवर्ती जीवों के हृदयरूपी गुफा में संवरण करने वाले चिरकालिक अज्ञानरूप अन्धकार-समूह को दूर करता है। कहा भी है--

शुभ्य वगरना धष्या पुत्रोथी पथ्य शु ? परंतु अप्रमादी कुण्डपी कैव-रात्रि-विकासी कमलने भीलवनामां यंद्र सरणो तारा सरथा अनुपम उज्ज्वल शुषुवाणो योऽकं पुत्र उत्तम छे, जे पुत्र पूर्वजन्मोपाजित अनेक पुष्टयता योगे प्राप्त थाय छे. जेवी रीते गन्धने लछं जनार पवन युग्मोनी सुगंधिने दिशा-विदिशाओमां इक्षावे छे, तेवीर रीते उत्तम पुत्र योताना मातपिताना नामने सर्वत्र प्रसिद्ध करे छे. जेवी रीते सुगन्धियुक्त निर्भल भीक्षां युग्मोना बारभी सुशोभित कल्पवृक्ष नन्दनवनने सुवासित करे छे, तेवीर रीते सुपुत्र योताना शुभ्य-समूहथी त्रैलु लोऽकने सुवासित करे छे. तथा तेदा-वगरनो भविषीप जेवी रीते गृहादिकने प्रकाशित करे छे, तेवीर रीते तारा जेयो पुत्र त्रैलु लोऽकने प्रकाशमान करे छे, अने त्रैलु लोऽकमां रक्षेला शुवोना हृदयर्पी शुक्रमां संवरण्य करवावाणा धष्या लाथा काणथी रक्षेला अज्ञानर्प अन्धकारसमूहने हर करे छे कछुं पथ्य छे--

पात्रं न तापयति नैव मल प्रसूते,
स्नेहं न सहरति नैव गुणान् क्षिणोति ।
द्रव्यावसानसमये चलतां न धत्ते,
पुत्रोऽयं कुलध्वंहे किल कोऽपि दीपः ॥१॥

एष लोकोत्तरगुणयुतः सुतः प्रभूतमोदं जनयति । अपि च—

शीतल चन्दन प्रोक्त ततश्चन्द्रं सुशीतल ।

चन्द्र-चन्दनतः शीतो महान् चन्दनसङ्गमः ॥२॥

“जो पाप को सतत नहीं करता, मल को उत्पन्न नहीं करता, स्नेह का सहाय नहीं करता, गुणों का नाश नहीं करता और द्रव्य के विनाश काल में अस्थिरता को प्राप्त नहीं होता है, ऐसा यह पुरुष्य वीर्य, कुलक्षयी घर में कोई विसृष्ट ही वीर्यक है” ॥ १ ॥ इति ।

यह लोकोत्तर गुणगर्भों से युक्त पुत्र बहुत आनन्ददायी होता है । और मी कथा है—

चन्दन शीतल कथा गया है, उससे मी शीतल चन्द्र है और चन्द्र-चन्दन से मी महान् शीतल पुत्र का सर्व है ॥ १ ॥

मिस्री मीठी होती है, उससे मी मीठा अमृत होता है, और उससे मी मीठा पुत्र का सर्व होता है ॥ २ ॥

ये धानने सतप्त करते नहीं, मलने उत्पन्न करते नहीं, स्नेहने नाश नहीं करते, सुखेने विनाश नहीं करते, तेमने रञ्जना विनाश क्षणमां अस्थिरताने प्राप्तो नहीं, तेवे अप् पुत्रक्षय वीये कुलक्षयी घरमां श्रेष्ठ विद्वत्पुत्र वीये छि ॥ १ ॥ इति ।

आ दीर्घानर शुद्धयद्योमी सुष्ठ पुत्र सव्याज आनन्दने आपवावाणी होव छि वणी पञ्च इष्ट छि—
आहन शीतल कुलक्षयीमां ज्ञान्छु छि, तेमने तेनामी पञ्च शीतल चन्द्र छि, अने चन्द्र तथा व्यक्तमी पञ्च मलान् शीतल पत्तनेने रञ्जना से ॥ २ ॥

सिता तु मधुरा नूनं सुधाऽतिमधुरा ततः ।
ताभ्यामप्यस्य बालस्य सङ्गमो मधुरो महान् ॥३॥

कनकं सुखदं लोके रत्नं च महासुखम् ।

ताभ्यामपि च महासौख्यः अस्य बालस्य सङ्गमः ॥४॥ सू० ६८ ॥

सम्प्रति देवाधुरनरनिकरनमस्कृतचरणचक्रवालस्य स्वबालस्य सुवक्त्रमलं विलोक्य त्रिशलाया हृदये यो भावः समजनि तमाह—‘ तए णं सा ललियसीलालंक्रिय ’—इत्यादि ।

ततः=उत्सवान्तरं खलु सा ललित-शीला-लङ्कृत-महिला-कृति-कुशला-ललितं=शोभनं-निर्दोषं यत् शीलं=स्वभावः सदृष्टं वा, ‘ शीलं स्वभावे सदृष्टे ’-इत्यमरः; तेन अलङ्कृताः=शोभिताः-युक्ता या महिलाः=स्त्रियः; तासां या कृतिः=कृत्यं, तत्र कुशला=निपुणा त्रिशला देवी, कमनीयगुणजालं=कमनीयं=मनोहरं

सोना इस लोक में सुखदायी है, उसकी अपेक्षा रत्न अधिक सुखदायी है, इन दोनों से भी बढ़कर इस अनुपम पुत्र का स्पर्श महासुखदायक है ॥३॥

टीकार्थ—देवी, अमुरों और मनुष्यों के समूह से जिसका चरण-चक्रवाल वन्दित है, ऐसे अपने बालक का सुवक्त्रमल देखकर, त्रिशला देवी के हृदय में जो भाव उत्पन्न हुआ, उसको सूत्रकार ‘ अह ललियसीलालंक्रिय ’-इत्यादि सूत्र-द्वारा प्रदर्शित करते हैं—

इस के बाद, सुन्दर-निर्दोष शील-स्वभाव अथवा सदृष्ट से युक्त महिलाओं के कर्तव्य में निपुण,

साकर भीड़ी होय छे, तेनाथी पथु भीहुं अश्रुत छे, अने तेथी पथु भीडि पुत्रनो स्थं छे ॥ ३ ॥

सोनु आ लोकभां सुभदायक छे, तेथी पथु रत्न अधिक सुभदायक छे. जो अनेथी पथु अधिक सुभ आपनार आ अतुपम पुत्रस्थं भडा सुभदायक छे ॥ ४ ॥ (सू० ६८)

टीकार्थ—इवे हेयो, असुरे, अने मनुष्योना समूधथी जेनुं अरथुभण वन्दित छे ओवा पोताना आणकनुं सुभकभण जेधने त्रिशलादेवीना हृदयभा जे भाव उत्पन्न थयो तेने अत्रकार ‘अह ललियसीलालंक्रिय’ इत्यादि सूत्र द्वारा प्रदर्शित करे छे.

त्यारपछी सुन्दर-निर्दोष शील-स्वभाव अथवा सारा वर्तनथी युक्त, स्त्रीकोना कर्तव्यभां निपुण,

गुणनामं=गुणसमूहो यस्य स तथा ते तादृशे, पुनः विद्यात्ममाल-विश्रामः=विस्तृतः-शुभलक्षणसम्पन्नः मालः=
 अन्तः यस्य स तथा ते तादृशे बाने महावीरं विलोप्य, समुच्छलद-मन्दा-नन्द-तरणवर-तरङ्ग-महास्नेहवस्त्राद्य-
 निमामग्यमान-मानसा-समुच्छलन्त-साम्यगुण्यतन्त्र-अमन्दानन्दस्थाः उल्लतराः=मतिवञ्चलाः उरुका यस्मिन्नेता
 इत्ये यद् महास्नेहरणशुद्धम्=मत्यधिकस्नेहरूपः समुद्रः, तत्र निमामग्यमानम्=अतिश्रयेन मज्जत मानस=मनो बस्याः
 सा तथा, परमानन्दसन्दोहरममन्त्रित्वात्तेत्यर्थ, पुनः कीदृशीत्याद-कीपुरुषलक्षणज्ञानमविचक्षणा-कीपुरुषलक्षणा
 परिग्राने कुत्रका, पुनः प्रतीकपीतरागलक्षणा-भतीत=ज्ञात पीतरागलक्षण-पीतरागस्य=वीररागस्य स्रक्षणं=पुत्रसम्बन्धि
 मरणे गया सा तथाभूता पूर्वोक्ता भिन्ना देवी व=पूर्वोक्तगुणगणसमलङ्कृतं स्वसुतं .. स्तोत्रं=मञ्जसिद्धम्
 उपपन्नम=भारेमे। सा केन प्रकारेण स्तोत्रमुपबध्कमे ? इत्याह- ' किं गुणगणवञ्छित्विदं ' इत्यादि। गुणगणवञ्छित्ति
 ने -गणाः=पैर्यौद्रार्थादिसदृशणा, तर्थायागणाः=समूहस्तेन वर्तितैः=रहितैः-निर्गुणे, अनस्थाः=बधुमिः तनयैः=पुत्रः
 विष्टं=किं प्रगानम्?, नाभिन गुणरहितपुत्राणां किमपि प्रयोजनमित्यर्थं । एतदपेक्षया हे पुत्र ! मत्तारुढः=
 मास्तदनः अस्तरागजलजुग -अस्तरता =मद्वितीयः उज्ज्वला =विद्युदा गुणा यस्य स तारुताः, अतन्द्रा=नित्त

श्री-पुरुष के सहाय-परिधान में कुञ्चन तथा जिसने अपने पुत्र के लक्षण जान लिये हैं, ऐसी उस विश्वला
 दरीने, मनोरगुणगणपाने, शुभलक्षणपुक्त समाट वाछे अपने पुत्र महावीर को देल कर, उछल्लवे हुए अविद्यय
 बध्नय भान्दरूप तरङ्ग ताछे महास्नेहकी समुद्र में डेरती हुई, पूर्वोक्त गुणगण से सुगोमित अपने उस
 अनुपम पुत्र की प्रशंसा करना प्रारंभ किया। वह इस प्रकार—

'पैर्ये, भौदार्ये प्रादि सदृशों मे रहित बहुत पुत्रों से क्या ?, अर्थात्-येसे निर्गुण पुत्रों का कुछ
 भी प्रयोजन नहीं है। इस की प्रपेक्षा की हे पुत्र ! तुम्हारे-सदृश मद्वितीय विद्युद गुणपुक्त, अतन्द्र-उत्सारी,
 श्री-पुरुषन्व बक्षन्-परिधानमं कुञ्चन अने पीताना पुत्रन्व वीतराग बक्षन्ते भक्षन्तरी ते त्रिधारादेवी,
 भन्देकर अक्षयभूदवाणा, शुभ बक्षणेवी भुष्ट बघारवाणा पीताना पुत्र महावीरने जेभने उछगवा जेवा
 अविशय बन्ध आनन्दरूपी तरङ्गवाणा महास्नेकरूपी समुद्रमं झुंझती अर्थात् परम आनन्दाना समुद्रमी भुष्ट
 दुस्वभावी, पूर्वोक्त गुणसभूदका सुशोभित पीताना ते अनुपम पुत्रनी प्रशंसा करवा छागी। ते आवी रीते-
 पैर्ये' भौदार्ये आदि मद्वितीयोकी तर्कतवणा पुत्रोकी गु ? अर्थात् जेना निर्गुण पुत्रोउ उछल्ल प्रयोक्तन नथी।
 तेना करतीं तो छे पुत्र ! तपस्या जेवा मद्वितीय विद्युदक्षयवी भुष्ट अतन्द्र जेदरे के-छाकी, कुण्डली डेर-अजेत

द्रः=निरलसः कुलकैरवचन्द्रः-कुलमेव कैरव=श्वेतकमलं, तत्प्रबोधने चन्द्रः-कुलप्रकाशक एकोऽपि सुतः= पुत्रः वरं, यो हि सुतः पुराकृतसुकूनकलापेन=पूर्वजन्मोपाजितपुण्यसमूहेन प्राप्यते=लभ्यते । पुनः प्रशंसति-येन च भवाद्देशेन सत्पुत्रेण मातापितृप्रसिद्धिः=मातापित्रोः ख्यातिः दिशि दिशि वितन्त्यते=विस्तीर्यते । केन किमिव वितन्त्यते ? इत्याह-'गन्धवाहेन परिमलराजिरिवे'-ति । यथा गन्धवाहेन=वायुना परिमलराजिः=सुगन्धसमूहः दिशि दिशि प्रसार्यते, एवमेव भवद्विद्येन सत्पुत्रेण मातापित्रोर्यशः कीर्त्तिश्च सर्वत्र प्रसार्यते इति भावः । तथा भवाद्देशेन सत्पुत्रेण इदं त्रैलोक्यं=लोकत्रयं गुणगणेन=गुणसमूहेन वास्यते=भाव्यते, इदं त्रैलोक्यं गुणयुक्तं क्रियते इत्यर्थः । केन किमिव ? इत्याह-सौरभ्यभरितेत्यादि । सौरभ्य-भरिताम्लान-कुसुम-भार-भासुर-सुरतरुणा-सौरभ्येण=सुगन्धिना भरितानि=युक्तानि यानि अम्लानानि=म्लानतामनुभगतानि कुसुमानि=पुष्पाणि तेषां यो भारः=समूहस्तेन भासुरः=प्रकाशमानो यः सुरतरुः=कल्पवृक्षस्तेन नन्दनोद्यानमिव=नन्दनवनमिवेति । अयं भावः-यथा कल्पवृक्षेण स्वपुण्यसौरभ्येण सकलमपि नन्दनवनं

कुलरूपी कैरव-श्वेत कमल के प्रबोधन करने में चन्द्ररूप एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, जो पुत्र पूर्वजन्मोपाजित पुण्य से प्राप्त होता है । हे पुत्र ! तुम्हारे जैसे सत्पुत्र के द्वारा माता-पिता की ख्याति दिशा-विदिशाओं में सर्वत्र फैल जाती है, जैसे-वायुद्वारा दिशा-विदिशाओं में पुष्पों की सुगन्धि । अर्थात्-जिस प्रकार वायु-द्वारा पुष्पों की सुगन्धि दिशा-विदिशाओं में सर्वत्र प्रसारित होती है उसी प्रकार तुम्हारे-जैसे सत्पुत्र से मातापिता की ख्याति दिशा-विदिशाओं में सर्वत्र फैलती है । तथा हे पुत्र ! तुम्हारे-जैसे सत्पुत्र से यह तीनों लोक गुणगण से सुवासित होते हैं, जैसे-सुगन्धियुक्त खिले हुए पुष्पों के गुच्छों से शोभित कल्पवृक्ष से नन्दनवन । अर्थात्-जैसे कल्पवृक्ष अपने पुष्पों की सुगन्धि से समस्त नन्दनवन को सुगन्धित

कभणने भीतववामा अद्रुप ओकत्र पुत्र श्रेष्ठ छे, के ने पुत्र पूर्वजन्मना पुण्ययोग्यथी प्राप्त थाथ छे. हे पुत्र ! तारा नेवा सत्पुत्र द्वारा माता-पितानी पथाति दिशा-विदिशाओमा सर्वत्र इेदाध नय छे, नेम वायुद्वारा दिशा-विदिशाओमा पुष्पेानी सुगन्धि. अर्थात् नेवी रीते वायुद्वारा पुष्पेानी सुगन्धि दिशा-विदिशाओमां सर्वत्र प्रसारित थाथ छे तेवीज रीते तमारा नेवा सत्पुत्रथी माता-पितानी पथाति दिशा-विदिशाओमां सर्वत्र इेदाध नय छे तथा हे पुत्र ! तारा नेवा सत्पुत्रथी आ त्रणे दोकं उषुगणथी सुवासित थाथ छे, नेम सुगन्धवाणा थीदिला पुष्पेाना शुन्धाथी शोभित कल्पवृक्षथी नन्दनवन. अर्थात् नेवी रीते कल्पवृक्ष पेताना पुष्पेानी सुगन्धिथी

सुरभीक्रियते शब्देन महाहजेन सत्युक्त स्वयम्भसमूहः समस्तपरीव प्रौढोक्त्यं गुणयुक्तं क्रियते-इति । तथा-महाहजेन सुतेन इदं प्रौढोक्त्यं प्रकाश्यते-प्रकाशितं क्रियते, केनेव ! अतल्लूरेण मणिदीपेनेवेति । अयं माधः-यथा संक-
 पूरवर्तिनो मणिदीपः सततं समानरूपेण पुरादिकं प्रकाशयति तथैव महाहजः सत्युक्तः समस्तमपीदं प्रौढोक्त्यं सततं समानरूपेण प्रकाशयतीति । तथा-महाहजेन सत्युक्तेन प्रौढोक्त्यवर्तिनीयानां हृदयपरीचरी-हृदयस्य कन्दरा-
 ऽभ्यन्तरपारिषी चिरन्तनाज्ञानविमिरासी-चिरन्तनाग्नि-अनादिकाशिकानि यानि अज्ञानविमिराणि-अज्ञानान्त्य कारास्थेषां राजी-यशक्तिः-अनादिकालीनाज्ञानपरस्परतेस्त्यर्थः, अथास्यते-दूरीक्रियते इति । पुनः सत्युक्तप्रसिद्ध्य इदं-व्यस्त्यमास्यं यत् सत्यं-वास्तविकम् उक्तं-कथितम्, किमुक्तम् ? इत्याह-—'पात्र न तापयति' इत्यादि ।

करता है, उसी प्रकार तुम्हारे-जैसा सत्युक्त अपने गुणों से इस समस्त लोक को शोभित बनाता है ।
 तथा-है पुत्र ! तुम्हारे-जैसे पुत्र से यह तीनों लोक प्रकाशित किये जाते हैं, जैसे तेस विना के
 मणिदीप से यह घर आवि । अर्थात्-निस प्रकार तेसररहित मणिदीप सर्वदा समानरूप से
 घर आवि को प्रकाशित करता है उसी प्रकार तुम्हारे-जैसे सत्युक्त तीनों लोकों को सतत समानरूप
 से प्रकाशित करता है । तथा घेरे-जैसा सत्युक्त तीनों लोक के भीतों के हृदयकामी कन्दरा के अन्त्यन्तर
 में सवरण करने वाले चिरकालिक-अनादिकालीन अज्ञानरूप अन्वकार की परम्परा को दूर करता है ।

फिर खती है-—'पात्र न तापयति' इत्यादि ।

समय न-अन्यननेन सुत्र भवाणु करे छ तेवीर शीते तथा जेवा सत्युक्त पीताना सुबोधी आ सभस्त बोधने सुशोभित
 बनावे छे. तथा हे पुन ! तथा जेवा पुत्रभी आ तबे बोध प्रकाशित करार छे, जेभ तेव वचनना भविषीपत्री आ
 घर आवि. अर्थात् जेवी शीते तेसररहित मणिदीप भवना समान इपथी अहं आदिने प्रकाशित करे छे, तेवीर शीते
 तथात जेवा सत्युक्त तबु बोधने सतत समानरूपभी प्रकाशमान करे छे तथा तथा जेवा सत्युक्त तबु बोधकमां
 रहेला ओवेना हृदयकामी अज्ञानी अकर सवरण करवावाणु निरकाशिक अर्थात् अनादिकालीन अज्ञानरूपभी
 अन्वकारनी परपशने इर करे छे

कुल्यहे=वंशरूपे शुद्धे अयं पुत्रः=सत्पुत्रः कोऽपि अर्निर्वचनीयो दीपः किल=निश्चयेन वर्तते, यो हि पात्रं=पात्रीभूतं सत्पुरुषं लोकं न तापयति=स्वाचरणेन न सन्तापयति, अथवा-पात्रम्=स्वाधारभूतं मातापित्रादिकं न तापयति=स्वाचरणेन संतप्त न करोतीत्यर्थः। तथा-मलं=पापं नैव प्रसूते-पापाचरणकारी न भवतीत्यर्थः। तथा-स्नेहं = प्रेम-दयामित्यर्थः, न संहरति=न दूरीकरोति, कस्मिन्नपि जने स्नेहं=दयां न परित्यजतीत्यर्थः। तथा-गुणान्=सद्गुणान् दयादाक्षिण्यादीन् नैव क्षिणोति=नव नाशयतीत्यर्थः। तथा-द्रव्यान् वसानसमये=धनाभावसमये चलताम्=अस्थिर्यं न घत्ते=न धारयति। अयं भावः-दीपो हि पात्रं=स्वाधारपात्रं

इस का अर्थ यह है—कुलरूप-वंशरूप घर में यह सत्पुत्ररूप अलौकिक दीपक निश्चय ही कोई अपूर्व त्रिलक्षण दीपक है, जो सत्पुत्ररूप दीपक पात्र को अर्थात् सज्जन पुरुषों को सन्ताप नहीं पहुंचाता है, अथवा अपने आधाररूप मातापिता आदि को अपने आचरण से कभी भी संतप्त-दुःखित नहीं करता है, कभी भी पापाचरण नहीं करता है, स्नेह को-प्रेम को अर्थात् दया को कभी भी नहीं छोड़ता है, इस का अभिप्राय यह है कि वह किसी के ऊपर दया-रहित नहीं होता है, दया-दाक्षिण्य-आदि सद्गुणों का नाश वह कभी भी नहीं करता है, तथा द्रव्य के अवसान काल में, अर्थात् धन के क्षीण हो जाने पर चंचलता-अस्थिरता को घास नहीं करता है, अर्थात् किसी भी परिस्थिति में वह नीतिमार्ग का परित्याग नहीं करता है। इस श्लोक का अभिप्राय यह है—दीपक अपने आधारपात्र को संतप्त करता है, मल अर्थात्

जोना अर्थ ओ छे डे कुणइय-वथइय घरमां आ सत्युइयपी अद्वैकिक हीवो निश्चय डोछ अपूर्व वितक्षु द्वीवो छे ने सत्युइय हीवो पात्रने अर्थात् सत्पुरुषने संताप पहुंचाडोते नथी, अथवा योताना आधारइय मातापिता आदिने योताना आव्यरब्धथी डोछपखु वथते संतप्त-दुःखित करतो नथी, डोछपखु वथते पापजुं आव्यरब्ध करतो नथी. स्नेहने-प्रेमने अर्थात् दयाने डोछ वथते छोडोते नथी. जेने अभिप्राय जे छे डे ते डोछनी पखु छपर इथारहित थते नथी. दयादाक्षिण्य-आदि सद्गुणोना नाश ते डोछपखु सभये करतो नथी. ते द्रव्यना अवसान कालमां अर्थात् धनने नाश थाय त्यारे अंणता-अस्थिरताने धारखु करतो नथी, अर्थात् डोछपखु परिस्थितिमां ते नीतिमार्गने त्याग करतो नथी. आ श्लोकंनो अंणप्रय जे छे डे—दापक योताना आधारपात्रने अंतप्त करे छे,

वत करोति, मलं = कज्जलं प्रसूते, स्नेह = तैलं संहरति, गुणान् = रसिषा नाशयति, तैलरूपद्रव्यामात्रसमये च मत्स्येयं वचे, परन्तु कुञ्जपुत्ररूपो दीपस्तया न भवति, मस्युत सर्वया एतद्विबलस्यो भवतीति ।

अथो ! एष लोकोत्तरगुणगणयुतः = प्रतीक्रियुणसमूहसमन्वित सुतः = पुत्रः प्रभूतप्रभोर्धे = प्रकृष्टमानन्दं जनयति = उत्साहयति ।

अपि च = नुनम पित्रसा सकुलोत्सवं पुत्रं प्रशसति - 'श्रीतलं चन्दनं चोक्तम्' इत्यादिना । चन्दन श्रीतल = श्रीतस्यैशुक्तं शोक्तं = कथितम्, तत्र = चन्दनात् - चन्दनापेक्षेत्यर्थः, चन्द्रः सुश्रीतल = समधिकश्रीतस्यैवान् इयितः, तथा - चन्द्रचन्दनतः = त्रैलोक्यत्रन्दनापेक्षयाऽपि नन्दनसंगतः = सुप्रसन्नं महान् = असत्यधिकः श्रीतः = श्रीतलो भवति ॥२॥

कज्जल उत्पन्न करता है, स्नेह-तेल का शोषण करता है, गुण का नाश करता है, और वेमरूप द्रव्य के अभाव-समय में अस्थिरता को प्राप्त करता है, अर्थात् पुत्रने समाता है। परन्तु सत्युत्तरूप दीपक तो ऐसा नहीं होता है, वह तो सर्वया इससे विसम्पन्न होता है।

अथा ! यह लोकोत्तर गुणों से विभूषित सत्युत्तर अतिशय आनन्ददायी होता है।
पित्रसा रानी फिर कहती है—इस लोके में चन्दन श्रीतल है, ठमकी अपेक्षा चन्द्रमा अधिक श्रीतल है, परन्तु चन्द्र और चन्दन की अपेक्षा पुत्र के अङ्ग का सर्वो भ्रतन्त श्रीतल होता है ॥ २ ॥

भगवतोत्तरं शब्द (शब्द भग) ने उत्पन्न करे है, स्नेह-तेल पुत्र श्रेष्ठ करे है, अथो-अपी (श्रीते) ने।
नाश करे है अने तेजस्वी इत्यन्त अभावमां अस्थिरता प्राप्ति है अर्थात् लोकात् अङ्ग है परन्तु अत्युत्तम्य दीपक ने जेवो होता नथी ते तो कथिता जेनाथी विकसल्य होय है ॥ १ ॥

अथो ! लोकोत्तरं श्रेष्ठोपी विभूषित सत्युत्तर अतिशय आनन्द आपत्त होय है त्रिषदाशब्दी इरीशी करे है—
आ लोकोत्तरं चन्दन श्रीतल होय है अने तेकी पक्ष अधिक श्रीतल चन्द्रमा है परन्तु व्यङ्ग्य अने पदानी अर्थकोत्तरं अत्युत्तम अत्युत्तम श्रीतल ते ॥ १ ॥

तथा-सिता=शंकरा तु वृत्तं=निश्चितं मधुरा=मधुररसवती भवति, रतः=तस्याः सिताया अपि-
 शर्कराऽपेक्षयाऽपीत्यर्थः, सुधा अतिमधुरा=प्रकृष्टमधुररसयुक्ता भवति, पुनः ताभ्यामपि=सितासुधाभ्यामपि
 अस्य बालस्य संगमो महान् मधुरो भवति ॥३॥

तथा-लोके कनकं=सुवर्णं सुखदं=सुखप्रदं भवति, च=पुनः रत्नं महासुखं-महासुखदायकत्वात्
 महासुखं भवति, च=पुनः ताभ्यामपि=कनकरत्नाभ्यामपि अस्य बालस्य संगमो महासौख्यः=प्रकृष्ट-
 सुखविशिष्टो भवतीति ॥४॥ सू० ६८ ॥

मूलम्—तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मोपियरो, एकारसमे दिवसे विइक्कते, निव्वत्ते
 सयणे, संपत्ते वारसाहे, विउलं असणमाणत्ताइमत्ताइय उव्ववड्डावित्ता मित्त-गाइ-सयण-
 संबंधि-परियणे उव्वनिमत्तेति, उव्वनिमत्ति च वहुण समण-माहण-क्किण-णीमग-भिच्छुंड-गांरंतीणं विच्छुडुंति,
 दायाएसु णं दायं पज्जाभाएति, पज्जाभाएत्ता मित्त-गाइ-सयण-संबंधि-परियणे भुंजावैति, भुंजावित्ता
 मित्त-गाइ-सयण-संबंधि-परियण-समक्खं इय एयारुवं कहेति-जण्णभिइ च णं अहं इमे दारए गब्धं वइक्कते,
 तपभिइं च णं इमं कुलं विउलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं त्रिहवेणं इमरिणं रिद्धीए णं सिद्धीए णं
 ससिद्धीए ण सक्कारेणं सस्माणेणं पुरक्कारेणं रज्जेण रट्टेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्टागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं

मिसरी मीठी होती है, और मिसरी से अमृत अधिक मीठा होता है, परन्तु मिसरी और अमृत
 इन दोनों से भी बालक का स्पर्श अत्यन्त मीठा है ॥ ३ ॥

तथा-इस लोक में कनक-सोना सुख देने वाला है, रत्न सोने से भी अधिक सुखदायी होता
 है, परन्तु पुनः लोको से भी इन दोनों से भी महान् सुखदायी है ॥ ४ ॥ सू० ६८ ॥

‘ साकर चीडी डोय छे, अने साकरथी अमृत वधारे भीहुं डोय छे. परंतु साकर अने अमृत अ। अनेथी
 यषु अधिक भीठी पुनना अंगनो स्पर्श छे. ॥ ३ ॥

या लोकमा कनक-सोनुं सुभ आपवावाणुं छे, यषु रत्न सोनाथी अधिक सुभ आपवावाणुं डोय छे. परंतु
 पुननो स्पर्शं तो अे अनेथी यषु भडान सुभदायी डोय छे. ॥ ४ ॥ (सू० ६८)

कर्मवर्णं ब्राह्मणवर्णं क्षत्रवर्णं विष्णुवर्णं शूद्रवर्णं सारवाण्यं सिलोगवाण्यं पुरुषाण्यं विठल-धन-शुभा-
 रत्न-मणि-मोक्षिय-सत्-सिम्पल-स्वरयण-याइयं सवसायइज्जेणं पीर-सकार-समुद्रणं अरि-अरि-
 परिहृदिय, तं होउ णं इमस्स शरणस्स गोळ्यं गुणनिष्कणं नामपिउरुं 'वद्धमाणे'-चि फहु भगवओ महावीरस्स
 'वद्धमाणे'-चि नामपिउरुं करेति । समणे भगवं महावीरे गुणं फासवे । उस्स णं इम तिण्णि नामपिउरुं
 पुरमाहिउरुंति-इम्मपिउरुंति 'वद्धमाणे' चि, सहसमुद्रयाए 'समणे' चि, इदसतिए 'महावीरे' चि ।। ६९ ।।

छाया-वतः सलु भगणस्य भगवतो महावीरस्य अम्बागिरौ, एकादशे दिवसे व्यतिकान्ठे, निवृत्ते
 वृत्ते, सम्पाद्ये द्वादशे विषुव्मंडनपाननादिमस्तादिमय उपस्कारयत, उपस्कार्य मित्र-श्रुति-स्वजन-सम्बन्धि-
 परिजनान् उपनिमन्त्रयत, उपनिमन्त्र्य बहुभ्याः भगण-ब्राह्मण-कृण-नीपक-मिसोपक-गारस्पेय्यो विष्ट-
 र्दयत; द्वापारेषु सलु द्वाप पर्योमाजयत; पर्योमाज्य मित्र-श्रुति-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनान् भोजयत;

पूर्वार्ध-—'उप व समवस्स' इत्यादि । इसके बाद भयव भगवान महावीरके माता-पिताने,
 न्यारहौ दिन बीतने पर, वृत्तक-जन्माशौचके निवृत्त होन पर, चारहवें दिन बहुव-सा अंडन,पान, लघ
 और स्नाय भोजन बनवाया । भोजन बनवाकर मित्रों, श्रुतिजन, संबंधीजनों और परिजनों को आमंत्रित
 किया । आमंत्रित करके बहुत से धर्मणों, ब्राह्मणों, दीनों, यावकों, भित्तारियों तथा गृहस्थों को
 भोजन-पन्न आदि दिया । मागीशरों को उनका माग दौटा । घंट कर मित्रों श्रुतिजनों, स्वजनों,

भुक्तने अथ—'उप वं समवस्स भुक्त्वादि अत्रवाना क-भने अत्रियार दिवसे ऋग्नीय वरुं, आरभी
 दिवस आवी ठेका वरुंते ते दिवसे न भ-अशुतिनु शुपक हेतु नरुं। आ दिवसे अत्रवाना भाउ-पिताके अनेक
 प्रकारनां स्वादि, अन मिउरुं लोकने तैवार इतल्लं

आ वे धनेभा अत्र वेवा मित्रे-सातिकना-भर्माधिके अत्र-वावाजाने आभत्रित इधं' आये आये
 अत्र-ब्राह्मण-दीन-ब्राह्मण-विपारी तथा वदन आया-अ-हेटिना शुद्धरुने भव भोक्त्वा पन्न विजेने वान कयुं
 केषुपुं दीन-दुःखी-अनाथ-अपत्र-सका-अत्र-अत्रां अत्र-पन्न विना वाडी इकी न अत्र, तेनी आश वडेहारी शुभी,
 अरुने लोकनादि पडोववा इधं

अथै श्रुतिजनो भिजवत्र अत्रास अ'पीज्जे कग्गिने परधाने अने आशाभ भुक्त्वां अत्र-विपारी विजेर

भोजयित्वा मित्र-ज्ञाति-राजन-सम्बन्धि-परिजन-समक्षम् इदमेतद्रूपं वचनं वदतः-यत् प्रभृति च खलु अस्मा-
 कमयं दारक्री गर्भं व्युत्क्रान्तः, तत्प्रभृति च खलु इदं कुलं विपुलेन हिरण्येन सुवर्णेन धनेन धान्येन विभवेन
 ऐश्वर्येण ऋद्ध्या खलु सिद्ध्या खलु समृद्ध्या खलु सत्कारेण सम्मानेन पुरस्कारेण राज्येन राष्ट्रेण बलेन वाहनेन कोषेण
 कोष्ठागारेण पुरेण अन्तःपुरेण जनपदेन जानपदेन यशोवादेन कीर्तिवादेन शब्दवादेन श्लोकवादेन स्तुतिवादेन
 विपुल-धन-रुनक-रत्न-मणि-मौक्तिक-शङ्ख-शिलाप्रवाल-रत्नरत्नादिकेन सत्स्नापतेयेन प्रीतिसत्कारसमुद्भयेन
 अतीवातीव परिदुर्द्धं, तद् भवतु खलु अस्य दारकस्य गुण्य गुणनिष्पन्न नामधेयं 'वर्धमान' इति कृत्वा भगवतो
 महावीरस्य 'वर्धमान' इति नामधेयं कुरुतः। श्रमणो भगवान् महावीरो गोत्रेण काश्यपः। तस्य खलु इमानि

सम्बन्धीजनो और परिजनो को भोजन कराया। फिर मित्रों, ज्ञातिजनो, स्वजनो, सम्बन्धीजनो और
 परिजनो के समक्ष इस प्रकार का यह वचन कहा-जब से हमारा यह बालक गर्भ में आया,
 तभी से यह कुल विपुल हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, त्रिभक्त, ऐश्वर्य, ऋद्धि, सिद्धि, सम्मान, पुरस्कार,
 राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार (कोठार), पुर, अन्तःपुर, जनपद, जानपद, यशोवाद, कीर्ति
 वाद, वर्णवाद, शब्दवाद, श्लोकवाद, स्तुतिवाद से तथा विपुल, धन, स्वर्ण, रत्न, मोती, शंख, शिला,
 प्रवाल, लालरत्न आदि वास्तविक सम्पत्ति से और प्रीति तथा सत्कार की प्राप्ति से खूब-खूब वृद्धि को
 प्राप्त हुआ है। अत एव इस बालक का गुणमय गुणनिष्पन्न 'वर्द्धमान' नाम ही। इस प्रकार कह कर
 भगवान् महावीर का 'वर्द्धमान' नाम रखवा।

सुप्रवास देवा अकत्रित तथा, त्वादे सर्वनी समक्ष, राज्ञ सिद्धार्थे ऋद्धेर कस्युं डे न्यारथी आ भाणक गर्भमां
 आण्ये छ त्वास्थी छिरिष्य-सुवर्ण-धन-धान्य-वैलव-अैश्वर्य-ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धि-सत्कार-सन्मान-पुरस्कार-
 राज्ञ-राष्ट्र-भण-वाहन-डोष-डोष्ठागार (कोठार)-पुर-अ त पुर-जनपद-जनपद-यशोवाद-कीर्तिवाद-वर्ष-वाद-शुद्ध-
 वाद-श्लोकवाद-स्तुतिवादमा तेमञ्ज (विपुल-धन-सुवर्ण-रत्न-मोती-शु-भ-परवाणां-शिला-वालरत्न आदि वास्तविक
 स पत्तिमा, उत्तरोत्तर वधादेश थलोञ्ज गथे छ हिन-प्रतिहिन आनंदनी वृद्धि यतां, अमो तेनुं नाम शुभमय
 बुञ्जिण्यह 'वर्धमान' राथीञ्ज छीये।

श्रीषि नामधेयानि एषामस्यापाने-अम्बापितृसत्कं 'वर्षमान' इति, सासमुदितया 'श्रमण' इति, इन्द्रसत्कं 'महावीर' इति ॥ सु०६९ ॥

टीका—'तए ष समणस्से'—त्यादि । ततः खलु भ्रमणस्य मगवतो महावीरस्य अम्बापितृो एकदशे दिवसे ब्यतिक्रान्ते-ज्योतीते, निवृत्ते-समाप्ते सूतके-जन्माशौचे, सम्प्राप्ते द्वादशारे-द्वादशे दिवसे विदुक्तं= षड् अहनपानत्वादिसमादिमम् उपस्कारयतः=निष्यादयत, उत्सर्गार्थे-निष्याप मित्र-शक्ति-स्वजन-सम्यन्वि-परिनिदान, तत्र-मित्राणि प्रसिद्धानि, श्रातयः=समानमातिकाः, स्वजनाः=निजलोकाः, सम्बन्धिनः=पुत्राणां पुत्रीणां श्वशुरादयः, परिनिनाः=दासीदत्तमसृषयश्च तान् उपनिमन्त्रयतः=भोक्तुमाह्वयतः, उपनिमन्त्र्य षड्भ्यः

भ्रमण मगवान् महावीर काश्यपगोत्रीय ष । उनके तीन नाम इस प्रकार करे जाते हैं—माता-पिता द्वारा रक्सा हुआ नाम रईमान, तपधरण्यकिकि के कारण भ्रमण, और इन्द्र का रत्न नाम—'महावीर' ॥ सु०६९ ॥

टीका का अर्थ—'तए षं समणस्स' इत्यादि । तदनन्तर भ्रमण मगवान् महावीर के माता-पिताने ग्यारह दिन बीत जाने पर और सूतक-वन्म संबंधी अशौच-दूर हो जान पर, बारहवें दिन बहुत सा अशन, पान, स्नाय, स्नाय तैयार करवाया और मित्रों को, शक्तियों—सत्रातीय जनों को, स्वजनों—मात्मीय जनों को, संबन्धियों—पुत्र और पुत्रियों के श्वशुर आदि संबन्धियों को, तथा परिनिनौ—दासीदास आदि परिजनों को भोजन के लिये

आ प्रभावे कोष्ठ बाण्डु देवोके भजवाननु नाम 'महावीर' शब्द, त्पारे भीष्म आण्डु आटा-रिताजे 'वध भान' शब्दु भजवान 'शरभपत्रेण' भा अ येळ देवाधी ते 'शरभपत्रेण' पणु कडेवाच छे । सु०६८

टीकानो अर्थ— तए षं समणस्स धम्मदि कोष्ठिक्क भवकारिभां, प्रसुति यथा आड, अगीआर दिवस सुधी भावाने तथा व्याजने भाटे अशौच' अणुय छे

सूतक सम्यक् वीत्या जाड, न्मावकारिक्क इच्छिके, आरभा दिवसे, पुशावी अताववा, उत्तंभावां-मित्र-शक्ति सम्प्री-वर्षने अभादधभां आदे छे ।

आ प्रभावे भजवानतो अन्ध यत्ता तेनी पुशावीभा सिद्धंशंभजे, विपुड लोअनी साधवी तैवार कशवी, पूण त्रेम अने वात्सक्य भावणी तेभने अभादधभां, तेजेण पणु पूण-पूण अानदित कठ 'वध भान' नाम पादवाभां कश्चिक्क अट्टीअन आन्नु

श्रमण-ब्राह्मण-कृपण-वनीपक-भिक्षोण्डका-ऽगारस्थेभ्यः, तत्र-श्रमणाः=शाश्वथादयः, तत्र-श्रमणाः प्रासिद्धाः, कृपणाः=
 दीनाः, वनीपकाः=याचकाः, भिक्षोण्डकाः=भिक्षाजीविनः, अगारस्थाः=गृहस्थाधेति तेभ्यः, विच्छेद्यतः=भोजनव-
 सनादि दत्तः, दायादेषु=पैतृकसम्पत्तिभागिषु दायं=सम्पत्ति पर्याभाजयतः=वरितो वण्टयतः, पर्याभाज्य=
 दायादेषु सम्पत्ति परिचण्ट्य, मित्र ज्ञाति-सजन-सम्बन्धि-परिजनान् भोजयतः, भोजयित्वा मित्र-ज्ञाति-
 स्वजन-सम्बन्धि-परिजनसमक्षम् इदमेतद्रूपं=इत्यमाण्यलक्षणं वचन वदतः-यत्प्रभृति=यस्मात् कालादारभ्य च
 खलु अस्माकम् अयं दारकः=वालकः गर्भं व्युत्क्रान्तः=गर्भे समागतः, तत्प्रभृति=तस्मात् कालादारभ्य
 च खलु इदम्=अस्माकमेतत् कुलं विपुलेन हिरण्येन=रजतेन, सुवर्णेन, धनेन=गवाधगजादिना, धान्येन=
 व्रीहिशालियवगोधूमामादिरूपेण, विभवेन=निर्वृत्त्या-आनन्देनेत्यर्थः, 'विभवो धननिर्वृत्तयोः' इति हेमः, तथा-ऐश्व-
 र्येण=धनाधिपतित्वेन जनाधिपतित्वेन वा, कृद्भ्या=सम्पत्त्या, सिद्भ्या=अभिलषितवस्तुप्ताप्त्या, समृद्भ्या=प्रय-

बुलाया-निमंत्रित किया। उन्हें निमंत्रित करके बहुत-से शाय्य आदि श्रमणों, ब्राह्मणों, कृपणों-दीनों,
 वनीपकों-याचकों, भिक्षोण्डों-भित्वारियों और गृहस्थों को भोजन-यसन आदि का दान दिया। जो लोग
 पैत्रिक सम्पत्ति में भागीदार थे, उन्हें सम्पत्ति का बँटवारा किया। बँटवारा करके मित्रों, ज्ञातिजनों, स्वजनों,
 संबंधियों और परिजनों को भोजन कराया। भोजन करार मित्र, ज्ञाति, सजन, संबंधी और परिजनों के
 सामने आगे कहे जानेवाले वचन कहे-‘जब से हमारा यह वालक गर्भ में आया है, तब से लेकर हमारा
 यह कुल विपुल हिरण्य से-चाँदी से, सुवर्ण से-सोने से, धन से, गाय घोड़ा आदि से, धान्य से-व्रीहि,
 शालि, जौ, गेहूँ आदि से, विभव से-आनन्द से, ऐश्वर्यसे-धन या जन के अधिपतित्व से, कृद्धि से-
 सम्पत्ति से, सिद्धि से-इष्ट वस्तुओं की प्राप्ति से, समृद्धि से-जहती हुई सम्पत्ति से, सत्कार से-जनता-

लागवानना जन्म-निमित्ते वेरभाव उपशांत थता, सर्वत्र आनन्द-भंगण व्यापी रह्यो, अने ते आनन्दने प्रदर्शित
 करवा गरीम-गुरथा विगेरेने पथु विपुल प्रभाषुभां भिष्टलोजन करावी तेभने हरेक शीते सतोषवाभां आब्धा.

इरिश्य कहेता थाळी, सुपथुं कहेता सोनुं; धन कहेता गाथ-धोडा-लेस आदिना धषु, अथवा गोकुण,
 धान्य कहेता व्रीडि-शालि-जव-धडं विगेरे, विभव अेटडे आनन्द, ऐश्वर्य अेटडे धन अने मानव समुदायनुं
 अधिपतिपथुं; कृद्धि अेटडे संपत्ति, सिद्धि अेटडे इष्ट वस्तुआनी प्राप्ति, सत्कार अेटडे जनता द्वारा प्राप्त थयेव

હુમાનસમ્પર્યા, સત્કારણ=જનકૃતાન્યુયાનાદિના, સમ્માનેન=આસનાદિકાનાદિના, પુરસ્કારણ=સર્વકાર્યોપુ અપ્રતઃ
 સ્વાપનેન, રાજ્યન=સ્વામ્યમાત્મ્યમુદ્ધત્કોપરાટ્ટુ (ગણમરુપેણ સપ્તાગ્નેન, રાટ્ટુંગ=યેશન, ષહેન=ત્યેન ચાનેન=રયાદિના,
 ક્રોયેષ=રનાત્રિમાઙ્ઙાગારેણ, ક્રોટાગારેય=ધાન્વસ્યાપનસુરેણ, પુરેણ=નગરેણ, અન્ત'પુરેણ=અન્ત'પુરસ્થપરિચારેણ,
 જનપથેન=કેશપ્રાપ્તિરુપ્થ, જાનપદેન=મજામિ', યજ્ઞોવાદેન=અહો ! ક્ષીદ્વોડયં પુણ્યમાર'-'-ત્યેકેદેશ્વર્યાપિસાયુ
 વાદેન, ક્ષીર્ષિવાદેન=સર્વશિશ્ય્યાપિમાયુવાદેન, ષણવાદેન=પદ્મસાવાદેન, શ્વદ્વાત્નન=અર્દેદિગ્ભ્યાપિસાયુવાદેન, ષ્કોર

દ્વારા ક્રિય જ્ઞાનચાહે ઉત્થાન આદિ સત્કાર સે, સમ્માન સે-માસન દેને આદિ રુપ સમ્માન સે, પુરસ્કાર
 સે-સર્વ કાર્યો મેં અણુવાપન સ, રાજ્ય સે-સ્વામી, અમાત્ય, મિષ, ક્રોપ, રાટ્ટુ, યુગ ઝીંગ સના ઇન સાત અર્ગોચાહે
 રાખ્ય સે, રાટ્ટુ સં-વ્યહ સ, શ્વલન-સના સ, શાશન સ-ત્ય આદિ શાશનો સ, ક્રાપ સે-રત્નો આદિ કે
 મહાર સે, ક્રોટાગાર સ-ધાન્વમ્પમહાર સ, પુર સ-નગર સ, અન્ત પુર સે-સ્વનાસ ક પરિવાર સે જનપદ
 સે-વેયપ્રાપ્તિ સે, જાનપદ સ-મજા સ, યજ્ઞોવાદ સે-'અહો ! યદ કૃસા પુણ્યમાર્ગી હ' ' સ પ્રકાર શ્વદેશ્વર્યાપી
 સાયુવાદ સ, ક્ષીર્ષિવાદ સે-સર્વશિશ્યાવ્યાપી સાયુવાદ સ, શ્વદ્વાત્ન સે-પદ્મસાવાદ સ, શ્વદ્વાત્ન સે-અર્દેદિશ્ના-

સ્થાન ઝ માન કોટલે ચોગ્ધ આસન આદિ અપણ કરી જતાવતો પૂજ્યશાવ, પુરસ્કાર કોટલે સામાન્યપણે બતા
 વાતો ઉપમ શબ્દ કોટલે ૧ સ્વામી ૨ અમાત્ય ૩ મિત્ર, ૪ ઠોષ, ૫ રાટ્ટુ, ૬ દુર્ઘ, અને ૭ સેના આ સાત
 અર્ગો નેમાં હોય તે. કાલ કોટલે સમસ્ત દેશ બલ કોટલે હાલકા-મલકાગ-રશકા અને પાલકાગની સેના, વહન
 કોટલે જર્મીન-પણી અને હવામાં ચાલતા યુવાકીરીના સાધનો ઠોષ કોટલે રે કમ ત્રિકાષી માટી રત્નો આદિનો
 બધા ઠોષ આર અપદ માન્વે શાખવાના કોટારે પુર કોટલે નગર અત પુર કોટલે પુણ્યવાસ, જનપદ કોટલે
 પ્રાત, જાનપદ કોટલે પ્રજા યજ્ઞોવાદ કોટલે ક્ષીર્ષિની સામાન્ય કલા અથવા કોળી, ક્ષીર્ષિવાદ કોટલે વ્યાપકપણે
 દેશાલોકો કમ-જમાં ૨ ને ઠોષી પ્રજ્વલા કિતાવે તમજ પરોપકારી કાચો કયા હોય તે સવનો સમાવેશ
 થાય છે. અચારે કમ' મા છુટા-છુટા ઠોષ અને કમ' કોટ-પાંતલાન હોય છે અચારે ક્ષીર્ષિ સમસ્ત
 પરિપૂર્ણ કમુ હોય, તેને બાવે ત જઈ અથ છે યદ' કોટ-પાંતલાન હોય છે અચારે ક્ષીર્ષિ સમસ્ત
 પ્રદેશોમાં વ્યાપી રહેલ હવ છે આટલા કમ અને ક્ષીર્ષિ માં કમ છે સમુવાદ કોટલે સુસૌની વહિ અથવા
 અણુસૌ તપકની કાલ, અણુવાદ કોટલે પ્રકાર, અણુવાદ કોટલે અપ ત્રિકાષી-મલકાગ-રશકા સુસૌ-કમ લો ૩ સમ

वादेन=सर्वत्र गुणवर्गेन, स्तुतिवादेन=चन्द्रजनकृतगुणकीर्त्तनेन, तथा-त्रिपुल-धन-रत्न-रत्न-रत्न-मणि-मात्तिक-
 शङ्ख-शिला-प्रवाल-रत्नरत्नादिकेन, त्रिपुलेत्यस्य धनादिषु प्रत्येकं सम्बन्धः, तेन त्रिपुलेन धनेन, त्रिपुलेन रुनकेन=
 सुवर्णेन, त्रिपुलेन रत्नेन=रत्नेकतनादिना, त्रिपुलेन मणिना=चन्द्ररत्नादिना, त्रिपुलेन मौक्तिकेन, त्रिपुलेन शङ्खेन=
 दक्षिणार्त्तेन, त्रिपुलया शिलया=राजपट्टशिलया, त्रिपुलेन प्रवालैर्न=रिदुषेण, त्रिपुलेन रत्नरत्नेन=ओहितरत्नेन-पयारा-
 गादिना, आदिना चीनाशुभादिचक्रकम्वलादीनि प्राधानि, तथा-सत्स्वापतेयेन=विद्यमानप्रधानद्रव्येण, प्रीतिसत्कारस-
 मुदयेन-प्रीतिः=मानसी तुष्टिः, सत्कारः=वस्त्रादिभिः स्मृतकृतः शुश्रूषालक्षणः, तत्समुदयेन=तत्सम्प्राप्त्या अती-
 वातीव=अधिकार्थिकं परिच्छिद्यम्=अभ्युदयं प्राप्तम्, तत्=तस्मात् अस्य=अस्मदीयस्य दारकस्य=पुत्रस्य गुण्यं=गुणोभ्य
 आगतम् अतएव-गुणनिष्पन्नम्=अन्वर्थं नामवेयं=नाम 'वर्द्धमानो' भगवतु-इति कृत्वा=इति उक्त्वा भगवतो
 महावीरस्य 'वर्धमानः' इति नामवेयं=नाम कुरुतः । श्रमणो भगवान् महावीरो गोत्रेण काश्यपः=काश्यपगोत्र
 आसीत् । तस्य खलु इमानि=रक्षयमाणानि त्रीणि नामधेयानि=नामानि एवम्=अनेन प्रकारेण आहवायन्ते=

व्यापी साधुवाद से, श्लोकवाद से-सर्वत्र गुणों के बखान से, स्तुतिवाद से-चन्द्रजीनों द्वारा किये जाने
 वाले गुणकीर्त्तन से, तथा-त्रिपुल धन से, त्रिपुल स्वर्ण से, त्रिपुल रत्नेतन आदि रत्नों से, त्रिपुल चन्द्ररत्न
 आदि मणियों से, त्रिपुल मोतियों से, त्रिपुल दक्षिणावर्त्तादि शंकों से, त्रिपुल राजपट्टरूप शिला से, त्रिपुल
 मूंगों से, त्रिपुल लालों से, तथा आदि शब्द से त्रिपुल चीनी वस्त्र, कंवल आदि से, तथा-विद्यमान प्रधान
 द्रव्यों से, प्रीति से-मानसिक तुष्टि से, सत्कार से-स्वजनों द्वारा वस्त्रादि से किये हुए सत्कार से अधिका-
 धिक वृद्धि को प्राप्त हुआ है । इस कारण हमारे इसः 'वालक का गुणों से प्राप्त, गुणनिष्पन्न नाम 'वर्द्धमान हो ।'

द्वारा मानवसमूहधी ने उच्याराम ते, श्लोकवाद अट्टवे भाट-चारुण्यो वडे छ'द-चोपध अने इक्षुओ द्वारा वषाषु थाय
 ते स्तुतिवाद अट्टवे अंदिजनो शुष्कीतंन करे ते. उपरनी सर्वं भाषतोना धारो यतो गयो. ते उपरात विपुल धन,
 विपुल स्वर्ण, कर्त्तन आदि सर्व-श्रेष्ठ रत्नो, अंर्द्रकांत आदि सर्वोत्तम भूषियो, दक्षिणावर्त्तादि शंओ अने राजपट्ट
 विगेरे उत्तम शिवाओधी, विपुल प्रवाल, विपुल शाल अट्टवे वादरत्न-विशेषधी अने धषुा प्रकारता उत्तम वओधी
 रत्न्यल'डार वरावा लाग्ये. तेधी आ भाणकुनु' नाम शुष्ुनिष्पन्न 'वर्धमान' राषवामां आवे छे.

उच्यन्ते, तानि यथा-भ्रम्यापितृसहस्रम्-भ्रम्यागितरौ सन्तौ-विषमानी कर्तृत्वेन यस्य तत्र, मातापितृवृत्तमिति मतः; 'वर्धमानः' इति प्रथम नाम १। तथा-सहस्रद्विधिया-सहस्रानिन्या तपःश्रुणाद्विषयया 'भ्रम्यः' इति द्वितीय नाम २। तथा-इन्द्रसहस्रम्-इन्द्रकृतं 'महावीर' इति तृतीय नाम ३ ॥ मृ०६९ ॥

॥ इति पठ्त्वमी वाचना ॥

मृतम्—उप न मगतं महावीरे क्रमेण पथस-इल-विस्मृत-वितिया-वन्दोव्व सोम्मकरोहि संतगुणनियरेहि गिरिकेन्द्रमहीणे वषणपायवेव वषण संबद्धम् । एवं से मगतं महावीरे मकरपरत्तकागपवत्ससोहीहि सनपहि सिद्धिं सद्धि बालवभ्रोजुण्कव गोवियसस्य कीर्त्तये ।

पराया देवलोए देवगालीकियाए सुहम्माए सहाए समासीजो सुणासीरो सोहम्मिदो भणुवमगुणेहि रद्धमापस्स रद्धमाणस्स पडुगां परकम वच्चिउं उवक्कम् । उं सोषा निसम्म सत्त्वे देवा देवीओ य इरिसवसपिसप्य माणवियया सजाया । तत्थ कोउपि निच्छाविही देवो उं पटुपरकममरिम असावतो इस्साद्धओ अगीकयदुग्मावजो मणुस्सजोओ इन्वमागाम्म वाओहि कीम्मण मयवं नियपिट्ठंमि समातोहिय सयवेउच्चियससीए सरीं सणहुवालवरुप-रिमिय लंभमाण विउच्चिय पडु अियम् उवरि आणासतत्थाभा भाओ पाडिउमारभीअ । त दट्टय उवत्तणयेव पणिरमील्लो सिट्ठणो सिट्ठयं सिय्य पम्माउमारद्ध। चावरीवट्ट पट्ट ओरिया देवकय उवत्तं सुणिय एवं चित्ते-न एए

इस प्रकार कर कर मगतान् महावीर का नाम 'वर्धमान' रक्त्वा । भ्रमण मगतान् महावीर काश्यप-गाथीय व । उनके यह तीन नाम इस प्रकार करे जाते इ-माता-पिता का रक्त्वा हुआ नाम 'वर्धमान' । सन्मानिनी (जन्म-जात) तपश्यां भादि की शक्ति के कारण दूसरा नाम-'भ्रम्य' । इन्द्र द्वारा रक्त्वा हुआ तृतीय नाम-'महावीर' ॥मृ०६९॥

॥ इति पंचम वाचना ॥

अत्रवाचना तस्य नामि वा प्रभावे छि-भावा-पिताब्जे सप्येष्ठु 'वर्धमान' नाम तपश्यां आदिना साभक्त्यंन वीधि भ्रम्य छे त्रे सप्येष्ठु महावीर' (सू. ६६)

(इति पंचम वाचना)

वाला ममं पेमाळणो अम्मापउणा कहिस्संति, ते णं मं उवव्वसंखलं विण्णाय मा खेयखिन्ना हव्वु-त्ति सिग्घं तं दुरासय दिविसय नमइउं तप्पिट्ठमज्झासीणो एव प्हू मूढगूढासयण्णु तप्पिट्ठवरि नियसरीरस्स अप्फारं भारं आरोवीअ। तेणं सो दुरासओ देवो तारेण सरेण चिकारिय पुढवीतले निवडिओ। तए णं देवाणं जयज्झणी सुरज्झुणि समजणि। तए णं गयगीवो सो देवो खामियदेवाहिदेवो पत्तसम्मत्तो सयधामं पत्तो। म्०७०॥

छाया-ततः खलु भगवान् महावीरः क्रमेण धवल-दल-विलस-द्वितीया-चन्द्र इव सौम्यकुरैः सद्गुण-निकरैः गिरिकन्दरा-ऽऽलीनश्रमकपादप इव वयसा संवर्द्धते। एवं स भगवान् महावीरो मयूरपक्षकाकपक्षशोभिभिः सवयोभिः शिशुभिः सार्द्धं बालवयोऽनुरूपं गोयितस्वरूपं क्रीडति।

एकदा देवलोके देवगणालङ्कृताया सुधर्माया सभायां समासीनः शुनासीरः सौधर्मन्द्रः अनुपमगुणैर्वर्धमानस्य वर्धमानस्य प्रभोः पराक्रमं वर्णयितुमुपक्रमते, तं श्रुत्वा निशम्य सर्वे देवा देव्यश्च हर्षशक्तिर्षर्पद्दुदयाः संजाताः।

मूल का अर्थ—'तए णं इत्यादि। तव क्रम से, शुक्ल पक्ष की द्वितीया का चन्द्र जैसे अपनी सौम्य किरणों से बढ़ता है उसी प्रकार भगवान् महावीर सद्गुणों के समूह से, तथा जैसे पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक-वृक्ष क्रम से बढ़ता है उसी प्रकार वय से, बढ़ने लगे। इस प्रकार भगवान् महावीर मयूर-पक्ष से सुशोभित चोटी से शोभायमान समवस्त्रक शिशुओं के साथ, अपने असली स्वरूप को गोपन करके, बाल्यावस्था के अनुरूप क्रीडा करने लगे।

एक बार देवलोक में देव-समूह से अलंकृत सुधर्मा सभा में बैठे हुए इन्द्र सौधर्मन्द्रने अनुपम गुणों से बढ़ते हुए वर्धमान प्रभु के पराक्रम का वर्णन करना आरंभ किया। उसे सुनकर और समझकर सभी देवों और देवियों का हृदय, हर्ष के वशीभूत होकर खिल गया। किन्तु उनमें से प्रभु के पराक्रम की

भूलने। अर्थ—'तए णं' इत्यादि नेत्र भ्रुवुल पक्षने। अद्रभा, दिन-प्रतिदिन उदात्तोभां वधते। अथ छि तेभ भगवान् महावीर पशु, सहशुणोभां वृद्धि पाभवा लाग्थां। नेत्र पर्वतनी शुक्षभा उगोल थंपक वृक्ष, इमे इमे विक्षास पासे छि, तेभ भगवान् पशु वयथी वृद्धि पाभवा लाग्थां।

भारती पाण्थी सुशोभित चोटीवाला सभान वयना सुंदर भित्तो साथे, भगवान् चोताउ' पराक्रम गोपनी गण्थिने, वाड्यावस्थाने अनुपम कीडात्तो अने रहते। करवा लाग्थां।

तत्र होऽपि मिथ्याहृदिर्देवसं प्रमुखात्ममपरिमानस्य अभाषणान् इत्याहुकोऽङ्गीकृतदुर्मायनो मनुष्यलोके श्रीश्रीभागम्य
 शक्तिः क्रीडन्तं मगान्तं निजपृष्ठे समात्पेय स्वकैः कियत्प्रया शरीरं समाप्टवालतरुपरिमितं सन्वमानं विकल्प
 मयुं त्रिपार्श्वदृष्टया निर्भरं प्रहरन् उपर्याकाशतमार्श्वः पातायितुमारभ्य, तद् दृष्ट्वा तस्मैः प्रयत्नैः प्रकृतिमीरतः शिशवः
 श्रीश्री शीघ्रं पलायितुमारभ्याः, चतुरीशुच्युः प्रसुखविना देवकृतमुद्रयं शान्ता एव चिन्तयति—यदेते शशा
 मय येमन्तौ अन्नापितरौ रूपयिवन्ति, तौ खलु माम् उपद्रवसङ्घं विहाय मा खेदविभौ मरुताम्—रिषि श्रीश्री

महिमा पर पिपास न करता हुआ, ईर्ष्या तथा दुर्मायना को अगोकार करनेवाला एक मिथ्याहृदि देव
 शीघ्र ही मनुष्यलोक में आया। उसने बालकों के साथ क्रीड़ा करते हुए मगवान् को अपनी पीठ पर
 बिठा कर, अपनी रैकिय शक्ति से अपने शरीर को साव-भाट ताड़के हस्तों जितना लम्बा (ऊँचा) कर
 लिया। वह मगवान् का इनन करना चाहता था। अतः उन्हें ऊँचे आकाशतल से नीचे गिराना आरम्भ
 किया। यह हृद्य देवकर स्वभाव से दरयोक्त बालक उसी सण जल्दी-जल्दी मागने लगे। अपनी कृतारों
 के लिए मसिद्ध मयुने अपपिज्ञान से इस उपद्रव को देवकृत जानकर इस प्रकार त्रिषार किया—'यह बालक
 मेरे स्नेहवील माता-पिता से कौनै। वे मुझे उपद्रव में फँसा हुआ समझकर खेतसिद्ध न हों, इस प्रकार

देहं जेह जभते, देवदोहभां, देवीना समुक्त वस्त्रे लठिठा पठेडा देवदोहकना छन्द- औपदेशेन्द्रे अत्रवानना
 अउपभ उत्रेनु वकुंन करवानु थरु हनुं' आ शीलको, अर् देव-देवीओना तुहये कर्षी युलहित थभा।
 आ देवा भये मेथं जेह देवने, प्रभुना परहशेयना भक्तिभा उपर विधास लेसे नरु, तेथी शीघ्रपले
 थुलुदोहभां आओ। आ देव, ते वजत मिथ्याहृदि अकृतो, तंभअ तेना स्वभाव छंभावाणा अने दुर्भाववाणा हवा
 आ देव, थुदुदोहभां आवीने, ल्भां अत्रवान थोवाणा अमान वअर अणजेस साधे रभते। रभतां हतां,
 ल्भां पठोवी जये, पठोअथ लुड, तुपतअ अत्रवानने थोवावी पीड थर जेसाथी दीधा, ने थोवावी रैकिय गतिना
 प्रताये, थोवावु शरीर साव-भाट ताड-मुसे लेटु हनुं जतानी दीपु करवु हे आभ करीने, ते अत्रवाननु
 हनन करवा थानते हते। आभ छंभाओने, आभासभांथी नीथे पृथवी पर पठअवपनु थरु हनुं

आपु हस नोडं स्वभाववी शरीर जेथ अणजेस, नास-भाज करवा लाज्भां प्रभु ते अत्रु ते अत्रु अने विभक्त
 हतां तेभये अनपिज्ञान शीघ्र अली वीपु हे, आ उपद्रव देवकृत छि आ जणजेस भात भाता-पिता थसि ल्भां
 भरी हवाव विवअरु ह मी ते, विवअरु

तं दुराशयं दिविषदं नमस्यितुं तत्पृष्ठमध्यासीन एव प्रभुर्महोग्दुहाशयज्ञस्तत्पृष्ठोपरि निजशरीरस्थास्फारं भारमारोपयत् ।
तेन स दुराशयो देवस्तारेण स्वरेण चीत्कृत्य पृथिवीतले निपतितः । ततः खलु देवानां जयध्वनिः सुराध्वनिः
स मज्जन्ति । ततः खलु नतग्रीवः स देवः क्षामितदेवाधिदेवः प्राप्तसम्यक्त्वः स्वकथाम प्राप्तः ॥सू०७०॥

टीका—‘तए णं भगवं मन्वीरे’ इत्यादि । ततः=नामकरणानन्तरं खलु सद्गुणनिकरैः=सद्गुणसमूहैः
भगवान् महावीरः सौम्यकरैः=आह्लादकक्रैणैः धवलदलविलसद्वितीयाचन्द्र इव-धवलदले=शुक्लपक्षे विलसन्=विरा-
जमानो यो द्वितीयाचन्द्रः=वालचन्द्रमाः स इव । तथा-गिरिकन्द्राऽऽलीनः=पर्वतगुहास्थितः चम्पकवृक्ष इव वयसा
क्रमेण संवर्धते । एवम्=अनेन प्रकारेण स भगवान् महावीरो मयूरपक्षकाकपक्षशोभिभिः-मयूरपक्षसुशोभितेन

सोचकर दुष्ट-आशय-वाले उस देव को नमाने के लिये, उसकी पीठ पर चढ़े-चढ़े ही, उस मूढ़ के गूढ़
आशय को जाननेवाले प्रभुने अपने शरीर को थोडा सा भारी कर दिया । इस कारण दुष्टाशय देव उच्च
स्वर से चीत्कार करके श्रुतल पर गिर पड़ा । तब आकाश में देवों ने जय-जयकार की ध्वनि की ।
तत्पश्चात् नतग्रीव-भगवान् के चरणों पर गिरा हुआ वह देव भगवान् से अपना अपराध खमाया और
सम्यक्त्व लाभ करके अपने स्थान पहुँचा ॥सू०७०॥

टीका का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । नामकरण के वाद भगवान् महावीर क्रमशः अपने सद्गुणों के
समूह से उसी प्रकार बढ़ने लगे, जैसे शुक्लपक्ष में विराजमान द्वितीया का चन्द्रमा बढ़ता है, तथा वय से
ऐसे बढ़ने लगे जैसे पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक वृक्ष बढ़ता है । इस प्रकार वह भगवान् मयूर के पांखों

आजु विचारी, लगवाने, आ देवना सान ठेकाखे लाववा माटे, तेनी पीठ पर ओठाओठा, पोतानु शुरी
रु वज्जन् वधारी हीधु, असह्य लारने लोधे, आ देव वाके वणी गथे, ने राड नाभी, पृथ्वी पर पटकार्ण गथे।
आ तमासो जेध, आकाशना देवाये ‘जय जयकार’ शब्देनी घोषण करी लोढो पडेढो आ देव, लग
वानना अस्थमां आवी नभी पडयो ने थयेल अपराधती भङ्गी भागी. पोतानो मिथ्यात्वभाव तए, सायी समजणु
लए स्वस्थाने विहाय थये। (सू०७०)

टीकानो अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि नामकरण पछी लगवान महावीर क्रमशः पोताना सहशुणाना समूहथी
जेवी रीते वधवा लाग्था के नेम अज्जवाणियामा थीज्जेना अन्द्र वधे छे वणी पर्वतनी शुक्रमां रहेल अम्पक वृक्ष
जेम वधे छे तेम वयमा वधवा लाग्था आ रीते ते लगवान महावीर पोताना महान् शक्तिमथ स्वइपने

क्राकुरूपेण=खिललुब्धकेन शोभनशीलेः सत्रयोमिभिः=समानवयसैः त्रिशुभिः=गौलेः सार्दे=सह शालवपो=जुस्ये=

शारयावस्यानुसारं गोपितस्वरूपं=पञ्चाङ्गवित्तमहाशक्तिरूपस्वरूपं यथा स्वाषया क्रीडति ।

पञ्चा=एकस्मिन् समये देवकीके देवतागाल्क्षुतायां=सुसुप्तशोभितायां सुषर्मायां समायौ समासीनः=

उपविष्टः सौषर्मेन्द्र=सौषर्माकस्य स्वामी युतासीर=इन्द्रः अनुपमशुभैः वर्षमानस्य=दृदि गच्छतो वर्षमानस्य प्रभोः

पराक्रमं=वलं वर्षयितुमुपाक्रमं=आरमणे । तै=रत्नाक्रमं वर्षमानं श्रुत्या=सामान्यतः कृष्णगोचरं कृत्वा निष्ठम्य=

इत्यवपायं सर्वं देवा देवशत्रुं वर्षयितुं दृष्ट्याः=भक्तिर्यौ=रुच्छमानसा संजाताः । तत्र=देवदेवीगणसभ्ये कोऽपि=

कश्चिद् मिथ्यादृष्टिः=विपरिस्त्रिचिर्वैव तं मनुपराक्रममभिरानं=महावीरस्वामिसामर्थ्यमहाशयम् अमरपानं=

अश्विपयमकुर्वन् इत्याँच्छुक्रः=ईष्यावान्, अत एव अश्वीकुवदुर्मानः=स्वीकुवदुष्टमानः सन् मनुष्यलोकं=मत्स्यलोक

से युक्त चोटियों से सोनेवाड़े, समान वषवाड़े बालका के साथ, शल्यावस्था के योग्य, अपने गगान शक्तिमय स्वरूप को छिपा कर, क्रीड़ा करने लगे ।

एक समय देवलोक में देवगणों से सुशोभित सुवर्मा नाम की सभा में सौषर्मे देवलोक के स्वामी इन्द्र बैठे हुए थे । उन्होंने अपने मनुपम छणों से वर्षमान (वृते हुए) वर्षमान प्रभु के बल-पराक्रम का वर्णन आरंभ किया । उस वर्णन किये जानेवाड़े पराक्रम को कानों से सुनकर और इत्य में पाएण करके सब देवों और देवियों का मानस हर्ष से विकसित हो गया । उन देव-देवियों में से किसी एक मिथ्या दृष्टि देव को अगज्ञान महावीर के पराक्रम की महिमा पर विश्वास नहीं हुआ । वह इल्याँछ या, अतः उसके मनमें दुर्माँना उत्पन्न हो गई । वह तत्काल ही मनुष्यलोक में आया और बालकों के साथ क्रीड़ा

पुत्रादीने भोत्र=शीलवाणी शिथ्यान्वेयी शोभतां समकवशक आण्डोनी साथे हीम करवा वाग्मं.

जैक वज्र देवदोहाभं देवदोहाभी सुयोग्येक्षित. सुधमं नामनी सभामं शोषधं देवदोहावना स्वभी धन्द्र लेठेव इतां. तेमके शोताना मनुपम श्रुत्योभी, वर्षमान (वधती) वर्षमान मनुपतां अण-पराक्रमनु वर्णन करवा मांडयु ते पराक्रमनु वर्णन जननी आलपीने तथा सुकवभां धारवु करीने सधया देव-देवीजीनां मन कषधी पिश्रित धमं. ते देव-देवीजीमांभी हाड जैक मिथ्यादृष्टि देवने अत्रपान महावीरणा पराक्रमनां भक्तिमा पर शिवास आन्वो नकी. ते धच्छु इतां तेभी तेना भनभां इकाँना उरपव धर्म ते तकेत अ मन्म शोभतां =... अने आण्डोनी साथे

शीघ्रम् आगम्य बालोः सह क्रीडन्तं=रममाणं भगवन्तं वर्धमानस्वामिनं निजपृष्ठे=स्वपृष्ठोपरि समारोहो=
 संस्थाप्य स्वकैक्रियशय्या=निजवक्रियसामर्थ्येन शरोरं=देहं, सप्ताष्टत्रालतरुप्रमितं=सप्ताष्टसंख्यतालवृक्षप्रमाण
 लम्बमानं=रीधं विकृत्य=निर्माय प्रभुं=महावीरस्वामिनं जिघासुः=हन्तुमिच्छुः उपरि=ऊर्ध्वोत् आकाशतलात्=न्याग-
 नमण्डलात् अग्रः=नीचः पानयितुम् आरब्ध । तद् दृष्ट्वा तत्क्षणमेव प्रकृतिभीरवः=स्वभावकातराः शिशवो=
 बालाः, शीघ्रशीघ्रसु=अतिशीघ्रं पलायितुमारभन्त । चातुरीबुद्धुः=स्वचातुर्येण प्रसिद्धः, प्रभुः=महावीरस्वामी
 अवधिना=अवधिज्ञानेनोपयोगेन देवकृतम् उपद्रवम्=उपसर्गं ज्ञात्वा एवं=वक्ष्यमाणप्रकारं चिन्तयति, यत् एते बालाः
 प्रम प्रेमवन्तौ=स्नेहयुक्तौ अम्बापितरौ कथयिष्यन्ति=देवकृतोपद्रवं निवेदयिष्यन्ति, तच्छ्रुत्वा 'तौ खलु माम्
 उपद्रवसङ्कुलम्=उपसर्गयुक्तं विज्ञाय खेदखिन्नौ=दुःखभाजौ मा भवताम् इति चिन्तयित्वा शीघ्रं तं दुराशयं=

करते हुए भगवान् वर्द्धमान स्वामी को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। उसने अपना वक्रियशक्ति से अपने
 शरीर को सात-आठ ताड़ वृक्षों-जितना लम्बा-ऊँचा बना कर महावीर स्वामी का हनन करने की इच्छा
 की। उसने प्रभुको ऊँचे आकाशतल से नीचे गिराना आरंभ किया।

यह दृश्य देख कर स्वभाव से भीरु बालक उसी समय भागने लगे। अपनी चतुराई से प्रसिद्ध
 महावीर स्वामीने, अवधिज्ञान का उपयोग लगा कर जान लिया कि यह उपसर्ग देव का क्रिया हुआ है।
 तब उन्होंने ने इस प्रकार सोचा-ये बालक मेरे स्नेहशील माता-पिता से कहेंगे-अर्थात् देवकृत इस संकट
 की बात उन्हें बतायेंगे। उसे सुनकर माता-पिता मुझे संकट-ग्रस्त जानकर चिन्तायुक्त न बनें, इस प्रकार

डोडा करता लगावानं वर्द्धमानं स्वामीने पोतानी पीठ पर बैसाडी दीथां. तेबु पोतानी वैद्धिय शक्तिथी पोतानां
 शरीरने सात-आठ-ताड वृक्षों-जितना लम्बा-ऊँचा बना कर महावीर स्वामीनी हत्या करवानी धव्छा करी. तेबु भक्षावीर
 प्रभुने जिया आकाशतलवर्था नीचे इक्वानुं शरं कर्युं.

आ दृश्य नेधने इत्येक स्वभावना आणके तो तरत, न नासवां बाग्यां. पोतानी व्युराधथी प्रसिद्ध
 महावीर स्वामीने, अवधिज्ञानेनो उपयोग करीने, नष्ट्युं इ आ उपसर्गं देव वडे करायेत छि. त्यारे तेभे आ
 प्रभाबे विचार कर्यो-ते आणके मारां स्नेहाद माता-पिताने आ आक्षतनी-देवथी करायेत आ उपसर्गनी बात
 कथे त सावणीने माता-पिता भने संकटमां भूक्षयेबे। जळीने चिंता न करे, जेवो विचार करीने तरत न ते

दुष्टमात्र विविधैर्देवैर् नमयितुं=नमस्त्रिंशुं वत्पुत्रम् अश्यासीनः=उपविष्ट एव मधु=वीरस्वामी मृदुगुणश्रयणः।
 मृदुस्य वस्य देवस्य यो गुणश्रयः=पञ्चभूमाशः तद्गुणः=दण्डबावा वसुधोपरि निजश्रीरस्य अस्कारः=स्वल्पं
 मारम् आरोपयत्=स्थापितवान्। तेन=मृदुवृत्तरीरस्त्वभारस्वर्गापनेन तं स्वल्पमारस्यसहमानः स दुराश्रयः=
 दुरात्मा देव' शारेण=अशुभैः स्वरेण चीत्कृत्य=वीत्कारं कृत्वा पृथिवीतले निपतितः। ततः=तत्पतनानन्तरं लख्
 देवानां नयचनिः=अपशब्दः सुराध्वनिः=भाकासे समजनिः=अमृत। ततः लख नरग्रीव' =नवा ग्रीवा यस्य स तथा,
 मृदुवर्षापतिविरा इत्पर्य', स देव' सामितदेवाधिपत' =सामितः=समां कारितः देवाधिदेवः=सर्वदेवनाथः स्वापराच
 परिमार्तनाथ येन स तर्गापूतः सन् प्राप्तसन्त्युत्तव' =ऋषयसम्पत्सु' स्वकृपापः=निजस्यानं प्राप्तो=गतवान् ।।मू०७०॥

मृतम्—एव न अप्यया कृपाए पदुस्त अन्मापिउणो सयलकलाकल्पिपि सलियवच्छृणुण कलाकलाव
 सिक्खेठ महाभरोण मरोवशारेण भगवज्जेसु वज्जेसु कज्जमाणेसु पठरपरिचारपरियरियं तं कलापरियसविहे णिति ।
 मयच उ ओरिण्णु मचि अण्णियुमुए अन्मापिज्जामणुरोएण कलापरियपासे पड्डियो। पदुस्त सोरणमागमणे
 अगमिय कलापरिमो पसभो उच्चासणमञ्जसासीणो महीणामोयपीणो अनुणेव तरन्तरशरो अणुगयपरिवारो
 रापकुमारो मासमाणो वद्धमाया मयंतिए आगमिस्सा-पि इहु तप्यच्चिच्छ करोम। किंतु लंबिय-कला-मंजियो

विचार करके शीघ्र ही उस दृष्ट भविष्यमाय वाळ देव को नमाने के लिए, देव की पीठ पर चढ़े-चढ़े ही
 अपने शरीर को योद्धा-सा मारी कर दिया। मधु के शरीर का स्वल्प मार पड़ने पर वह देव उसे मी
 सहन न कर सका। वह दुरात्मा द्रव बहुत उब-स्तर से चीत्कार करके पृथ्वीतल पर आ गिरा। उसके
 गिरने पर आकाश में देवा की मयध्वनि हुई। तत्पश्चात् भगवान् के चरणों पर चिर रत्न कर वह उपद्रव
 करने वाला द्रव भगवान् से अपना अपराध खमाया और सम्पत्तव प्राप्त कर अपने स्थान पर चला गया ।।मू०७०॥

इष्ट आश्रयवणा देवने नमाववा भाते देवनी पीड पर रहेवा जेबां तेमजे येवाना मरीरने थोडु भारे इहुं
 अशुण्य शरीरिना थोडो भार वधवा ए ते देव तेने क्यु उकन करी सउथे नही इष्ट देव धणु। आ स्वरे पीड
 पाडीने शूनक पर आपीने पडथे तेने पडना अ आडाशमा देवेजे अन्नाड भये। त्पार भाड अजयवानां चारथे पर
 येवानु मरणा अश्रीने ते उषडव करन्तार देव अजयवन थसि येवाना अश्राधनी क्षमा आश्रीने तथा सम्पत्तव
 पापीने येवानु स्थाने अ डोथे भये। (Sanskrit)

पंडितों कि अखंडकलामंडितं तं पुरिसुत्तमं सयलणवज्ज-विज्जाडहिदाई-देवया-विहेय-वंदणं भयवं पाडिउ सक्कि-ज्जा?; परिसुद्धं कंचणं कि सोहिज्जा?; अंबतरु तोरणेहि कि अलंकरिज्जा?; अमयं महुदव्वेहि कि वासिज्जा?; सरस्सई पाठविहिं कि सिक्खिज्जा?; चंदम्मि धवलचं कि आरोविज्जा?; सुवणं सुवणजलेण कि परिकरिज्जा?; जो भयवं गाणत्तिगमहालओ महाविण्णाणजलही महासामयणिही महाबुद्धी महागंभीरो य अत्थि सो अय्पणाणिणो अटिए पडिउं गच्छिज्जत्ति महं असमंजसं। एयाए पविचीए देवलोए सुहम्माए सहाए सक्कस्स देविदस्स देवरणो आसणं चलयं। तए ण आसणे चलिए समाणे ओहिणा आमोगिय सक्किदो सिग्यं तओ पट्टिओ माहणरूवेण पहुसमीवे आगमिय पहु उच्चासणे उवणिवेसिय जाः पण्हाइं कळावरियहियए संसयरूवेण ठियाइं ताइं चैय पण्हाइं पुच्छेइ; तत्थ इंदेण वागरणविसयं पण्हं कयं, भगवया तं वागरिय संखेवेण सव्वं वागरणं कहियं। तओ पच्छा इंदेण णयप्पमाणसरूवं पुच्छियं तं भगवया संखेवेण आघवमाणेणं उवसमो णायमस्स पयासियं। तओ पच्छा तेण धम्मविसए पुच्छियं। भगवया धम्मसरूवं आघवमाणेणं उवसमो आघवओ, उवसमं आघवमाणेणं त्रिवेणो आघवओ, त्रिवेणं आघवमाणेणं त्रिरमणं आघवियं, त्रिरमणं आघव-माणेणं पावाणं कम्माणं अगरणं आघवियं, तं आघवमाणेणं णिज्जरावंधमोक्खसरूवं आघवियं ॥ सु०७१ ॥

छाया—ततः खलु कदाचित् प्रभोः अम्बापितरौ सकलकलाकलितमपि ललितवात्सल्येन कलाकलापं शिक्षयितुं महामहेन महोपहारेण अनवद्येषु वाद्येषु वाद्यमानेषु प्रचुरपरिवारपरिकरितं प्रभुं कलाचार्यसन्निधे नयतः। भगवांस्तु अवधिज्ञोऽपि अनभिज्ञमुद्रया अम्बापित्रोऽनुरोधेन कलाचार्यपार्श्वे प्रस्थितः। प्रभोः शोभनमगमनम्

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि। तत्पश्चात् किसी समय प्रभु के माता-पिता ने सकल कलाओं के ज्ञान से युक्त प्रभु को अतिशय वात्सल्य के कारण कला-कलाप सीखने के लिए बड़े उत्सव और बहुत उपहारों के साथ तथा विपुल परिवार के साथ कलाचार्य के समीप भेजा। उस समय मनोहर वाजे बज रहे थे। भगवान् अवधिज्ञानी होने पर भी अनभिज्ञ-सरीखी आकृति बनाये, माता-पिता के

भूजने। अर्थ—“तए णं” इत्यादि। त्थार आद डैअं सभये भगवानना मातापिताब्बे सअण ज्जाब्बे।ना ज्ञानथी युत्त भगवानने अतिशय वात्सल्येन कारुण्ये ज्जाब्बे शीथवाने भाटे मोटा उत्सव तथा धणी न लेट-सोगाटो साथे तथा विपुल परिवारनी साथे उवाचार्यनी पासे सोअइयां, ते सभये वाणं वागतां इतां। भगवान अवधिज्ञानी होवा छता पभु अणइया नेवी मुआकृति राभीने, माता-पिताना अनुरोधथी उवाचार्यनी पासे नवा रवाना थयां।

गम्भीरश्च अस्ति, सोऽल्पज्ञानिनोऽन्तिके पठितुं गच्छेदिति महदसमञ्जसम् । एतया पृथ्व्या देवलोके सुधर्मायां सभायां शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आसनं चलिताम् । ततः खलु आसने चञ्चिते सति अत्रिणा आशुभ्य शक्रेन्द्रः शीघ्रं ततः प्रस्थितो ब्राह्मणरूपेण प्रशुसमीपे आगत्य प्रशुमुच्चासने उपनिवेश्य ये प्रश्नाः कलाऽऽचार्य-हृदये संशयरूपेण स्थिताः तां एव प्रश्नान् पृच्छति । तत्र इन्द्रेण व्याकरणविषयः प्रश्नः कृतः, भगवता तं व्याकृत्य सङ्क्षेपेण सर्वं व्याकरणं कथितम् । ततः पश्चात् इन्द्रेण नयप्रमाणस्वरूपं पृष्टम्, तद् भगवताः सङ्क्षेपेण

महागंभीरं ये, वे अल्पज्ञानी के पास पढ़ने जाएँ, यह पड़ी ही अट-पटी बात थी !

इस प्रवृत्ति से देवलोक में, सुधर्मा सभा में, शक्र देवेन्द्र देवराज का आसन चलायमान हुआ । तब आसन चलिता होने पर अत्रिज्ञान से जान कर शक्रेन्द्र शीघ्र ही वहाँ से आये । ब्राह्मण का रूप धारण करके, प्रशु के पास आकर और प्रशु को ऊँचे आसन पर आसीन करके, जो प्रश्न कलाचार्य के हृदय में संदिग्ध-रूप में स्थित थे, वही प्रश्न पूछे । इन्द्र ने पहले व्याकरण के विषय में प्रश्न किया । भगवान् ने उसका उत्तर देकर संक्षेप में सारा व्याकरण कह दिया । तत्पश्चात् इन्द्र ने नय और प्रमाण का स्वरूप पूछा । तब भगवान् ने संक्षेप में समाधान करके न्याय का समस्त रहस्य प्रकाशित कर दिया । तत्पश्चात् उसने धर्म के विषय में प्रश्न किया । धर्म का स्वरूप बतलाते हुए भगवान् ने उपशम

कृतां, विपुल, विज्ञाननां सागर कृता, भद्रान सामर्थ्यनां भंडार कृता, भद्राशुद्धिशास्त्री, भद्रार्थी, अने भद्रांगंबीर कृता, ते अर्धमाननीनीः] पासे लक्षुया नय ते धर्षी न अटपटी वान कृती.

आ प्रवृत्तिथी हेवद्वोक्तमा, सुधर्मा सभायां, शक्र देवेन्द्र देवराजस्य आसनं चलायमानं यथुं. त्पारे आसनं चलिता यवानुं कश्च तस्त न अवधिज्ञानथी नर्थुनि शक्रेन्द्र तस्त न त्याथी ब्राह्मणुं इय लधने, प्रभुनी पासे आवीने अने प्रभुने जेचि आसने भेसाडीने, ने प्रश्नो कलाचार्यनां हृदयमां संदिग्धइये रडेला कृता, जेन प्रश्नो लगतानने पूछ्यां. धन्द्रे पडेलां व्याकरकृता विषयमां प्रश्न पूछ्ये. भगवाने तेनां नवाण आपीने संक्षिप्तमां व्याशुं व्याकरथु कडीं बीधु. त्यारभाह धन्द्रे 'नय' अने 'प्रमाण' तु रचइय पूछ्युं. त्पारे भगवाने संक्षिप्तमां समाधान करीने न्यायतु समस्त रइय प्रकाशित करी बीधुं. त्यारभाह तेले धर्मना विषयमां प्रश्न पूछ्ये. धर्मनुं रचइय

आन्वयय सर्वे न्यायमर्म प्रकाशितम् । ततः पश्चात्तेन यर्मविवेने पृष्टम् । भगवता धर्मस्वरूपम् आचसाणेन उपशम
 आरुपात, उपशममाचसाणेन विवेक आरुपात, विवेकम् आचसाणेन विरमणम् आरुपातम्, विरमणम्
 आचसाणेन पापानां कर्मणाम् अकरणम् आरुपातम्, तत् आचसाणेन निर्मरादन्यमोसस्वरूपमाख्यातम् ॥ सु०७१ ॥

टीका—‘तए नं अणया’ इत्यादि । ततः सल्लु भन्वदा कदाचित् प्रमोः=महावीरस्वामिनः, अम्बा
 पितरौ=मातापितरौ, सल्लुकलाकलितमपि=सर्वकलावन्तमपि सल्लितवास्तव्येन=अतिशयमेम्णा कलाकलापे=कला-
 समूहं=कलाशिक्षां शिक्षयितुं=श्रायितुं महामहेन=महोत्सवेन महोपहारेण=पुष्कलोपायेन अनवद्येपु=ओमनेपु
 पायेपु=वादिश्रेयु गायमानेषु प्रमुपपरिवारपरिकरितं=बहुपरिजनपरिचेष्टितम्, प्रमु=श्रीमहावीरस्वामिनं कलाचार्य-
 सविधे=कलाशिक्षारूपं नयतः=आपयतः, भगवान्=श्रीवर्षमानस्तु अवधिउोडपि=अचपिज्ञानसम्प्लोडपि अनभिज्ञ
 वृत्रया=अनानानस्येव चेष्टया अम्बापिसोदुरोषेन=आप्रायेण कलाचार्यपार्थे=कलाशिक्षकनिष्ठे प्रस्थितः=पययौ ।

कहा, उपशम करावे हुए विवेक करा, विवेक करावे हुए विरमण करा, विरमण करावे हुए पाप-कर्मों का
 मकरण (न कला) करा, पाप-कर्मों का मकरण करावे हुए निर्मरा, कंय और मोस का स्वरूप करा ॥ सु०७१ ॥

टीका का अर्थ— तए नं’ इत्यादि । तदनन्तर किसी समय भगवान् महावीर स्वामी के माता-पिता ने
 समस्त कलाओं के ज्ञाता मनु को भी प्रगाढ प्रेम के कारण, कलाओं का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए महोत्सव
 के साथ, भारी भेंट के साथ, मनोहर गानों-बाजों के साथ और बहुत बड़े परिवार के साथ, कलाशि-
 लक के समीप पहुँचाया । भगवान् वर्षमान अचपिज्ञान से नियुषित होकर भी अनगान की सी चेष्टा
 करके, माता-पिता के आग्रह से कलाचार्य के समीप पर्यरे कि कलाचार्य, श्रीवर्षमान स्वामी का शोभन

जताता भयताने उपशम करो विवेक करो (नेवेकनी साधे त्तिमखु ठशु विरमणुनी साधे पाप-
 कर्मेषु अडरण (न कस्तु ते) ठशु अच-कर्मेषानां अकरणुनी साधेरनिकर, कंय अने मोसु सुवृष ठशु (सु०७१)

टीकाने अर्थ— तए नं अम्बा’ इत्यादि त्वालाद हेतु समये भगवान् महावीर स्वामीना माता-पिताञ्चै समस्त
 कलाञ्चने आशुनार प्रकुने पणु अग्रह प्रेमने कसुवे कलाञ्चने ज्ञान आपयप्य भाटे अकरोत्सवनी साधे तथा आरे वेद
 साधे, भनोकर पाननी साधे तथा षष्ठा शोदा परिशारनी साधे क्वागिज्ञाननी पाधे मोडका. अयवान वर्षमान
 अचपिज्ञानी होय छत्तां पणु कसुवे आनपका होय जेवरी, केषु अनेने माता-पिताना अट्टशैषथी कलाचार्यनी पाधे
 पयाने कलाचार्य श्री वर्षमान स्वामीनां शुभ आचमणन्ते आशने अग्रह कर्ता, अनेने कसुवे आशन पर छठक ने

कलाचार्यः प्रज्ञोः=श्रीवर्धमानस्त्वामिनः शोभनम्=प्रशस्तम् आगमनम् अत्रगम्य=बुद्ध्या प्रसन्नः=सन्तुष्टः उच्चासनम्
 अत्र्यासीनः=आश्रितः अदीनप्रमोदीपीनः=अमन्दानन्दपुष्टः अयुनैव=इदानीमेव तरलतरहारः=अनुपमहारधारकः
 अनुगतपरिवारः=परिजनसहितः, राजकुमारः=सिद्धार्थवृषभः भासमानः=गम्भीर्यादिगुणैः शोभमानः वर्द्धमानः=
 तदाल्यः कुमारो मम अन्तिके=पार्श्वे आगमिष्यति=इति कृत्वा=इति बुद्ध्या, तत्पतीच्छां=श्रीमहावीरागमन-
 नाटनिरिक्षणम् अकरोत्=कृतवान् । किन्तु खण्डितकलामण्डितः=अल्पकलाभिज्ञः पण्डितः किम् अखण्डकलामण्डितं=
 सकलकलाभिज्ञं तं=श्रीवर्धमानस्त्वामिनं पुरुषोत्तमं=पुरुषश्रेष्ठं सकला-नवध-विद्या-ऽधिष्ठातृ-देवता-विधेय-वन्दनं=
 सर्वसमीचीनविद्याऽधिपतिदेवताकर्तव्यवन्दनं-सरस्वत्याऽपि वन्दनीयं त्रिशलानन्दनं=त्रिशलापुत्रं भगवन्तं पाठयितुं=
 शिक्षयितुं शक्नुयात्? अपि तु न शक्नुयात्, तस्य स्वतः संबुद्धत्वात्, अमुमेवार्थं प्रकारान्तरेणैह—
 परिशुद्धं काञ्चनं=स्वर्णं किं शोध्येत? अपि तु न शोध्येत, स्वतः परिशुद्धत्वात्, आम्रतः=आम्रवृक्षः तोरणैः

आगमन जानकर प्रसन्न हुआ और ऊँचे आसन पर बैठा हुआ वह दर्ष की तीव्रता से फूल उठा-पुष्ट
 हो गया। अद्वितीय हार के धारणहार, गंभीरता आदि गुणों से सुशोभित, सिद्धार्थ महाराज के पुत्र
 राजकुमार वर्धमान अभी-अभी परिवार-सहित मेरे समीप आएँगे, इस प्रकार विचार कर कलाचार्य उनके
 आने की बात जोहने लगा।

किन्तु थाड़ी-सी कलाओं का ज्ञाता पंडित, समस्त कलाओं में निपुण, पुरुषों में उत्तम, सब
 श्रेष्ठ विद्याओं के अधिपति देवता के द्वारा भी वन्दनीय, अर्थात् सरस्वती के द्वारा भी स्तवनीय त्रिशला-
 नन्दन भगवान् को क्या पढ़ाने में समर्थ हो सकता था?, अर्थात्-नहीं हो सकता था, क्यों कि वे तो स्वयं-
 संबुद्ध थे। इसी अर्थ को दूसरे प्रकार से कहते हैं-पूर्ण रूप से शुद्ध स्वर्ण को क्या शोधा जाता है? नहीं

स्वर्ण की तीव्रताथी कृती गयां अनुपम डारने धारण्य करनार, गभीरता आदि सुश्लेथी सुशोभित, सिद्धार्थं भडा-
 रानना युत्र, राजकुमार वर्धमान क्षम्यां न परिवार साथे भारी पासे आवशे ज्येवा विचार करीने क्वाचार्यं तेभना
 आगमननी, राक्ष ज्येवा दाग्या. पण्य थोडी ज्येवी क्वाज्ये। नानुनार पंडित, समस्त क्वाज्येभा नियुक्त, पुरुषोभां
 उत्तम, अधी श्रेष्ठ विद्याज्येाना अधिपति देवता वडे पण्य वन्दनीय, ज्येठडे डे सरस्वती द्वारा पण्य स्तवनीय त्रिशला-
 नन्दन वागवदाने लष्याववाने शुं शक्तिमान यध शकता क्षता! . आज अर्थ थोली रीते दर्शावे छे. शुं शुद्ध तर्दन सोनाने

किम् अशुक्रियत=भूयेत ? अपि तु न, स्वतः पृथिव्यात्, अमृतं मयुष्मत्तैः किं वास्यत ?, अपि तु न वास्येत, स्वतो मयुष्मत्तात्, सारस्वती=आदा देवी पृथिविर्ष्वपठनक्रमम् किं क्षिप्तयेत=वीर्येयत्, अपि तु न क्षिप्तयेत्, स्वतः क्षिप्तित्वात्, वन्द्रे पवनसं=शुश्रूषत्वं किम् आरोयेत=स्यायेत्, अपि तु नाऽऽरोयेत्, स्वतो पचल्लखात्, सुवर्णं मुहूर्धनखेन किं परिष्कियत=संस्क्रियेत ?, अपि तु न, स्वतः परिष्कृतत्वात्, यो मगवान् ज्ञानत्रिकुमहालयः=महि=भुत्य=रूपिज्ञानत्रयमाप्यदागारः महाविज्ञानजलाभिः=सकलकलासासद्वृद्धः, महावीरः=वीराप्रगल्भः महागाम्भीरः=सावित्रयगाम्भीर्यगोपेतम् अस्ति । स पूर्वविषो वर्षमानत्वात्मी अत्यज्ञानिनः कलाचार्यस्य अन्तिके=पात्रे

जोषा जाता; क्यों कि वर तो स्वतः शुद्ध है। माम के हृत्त को तोरणों से क्या सिंगारा जाय ?, नहीं, वर तो स्वयं ही पर्वों से युक्त है। अमृत को मयुर द्रव्यों से क्या वासित किया जाय ?, नहीं, क्यों कि वर तो समाप्त से ही मयुर होता है। आदा देवी को क्या पठविधि सिलाने की आवश्यकता होती है ?, नहीं, क्यों कि वर तो स्वयं सीली हुई है। चन्द्रमा में पक्षता का आरोपण क्या किया जाय ?, आरोप करने की आवश्यकता नहीं, क्यों कि उसमें निर्वर्ण से ही पचलता है। सोने का सोने के पानी से संस्कार करने की आवश्यकता है ?, नहीं है, वर तो स्वयं ही परिष्कृत है।

जो मगवान् तीन ज्ञान=मति युत अचरि=के मण्डार, समस्त कथाओं के सागर, विशाल शक्ति के निधान, महान् महिमान्, महावीर=वीरों में अग्रगण्य और अत्यधिक गंभीरता आदि गुणों से संपन्न

वाचकभां आवि छै, वाचकाभां आप्तु नहीं; भाष्यु दे ते चोते वर शुद्ध होय छै आलाने तोरखोवी शु शुभगात्री यथाव छै, ना ते तो चोते वर धानपयो छै अमृतने शु अमुर द्रव्येथी स्वाकिट करी यथाव छै, ना, भाष्यु दे ते तो अरस्ती रीते वर भोकु होय छै अररवती देवीने शु पाठ=विधि सिजपवानी आवरवकता रहे छै, ना, ते तो चोते वर जे यथिज होय छै चन्द्रमाभा पचल्लयात् आरोपण्यु शु करी यथाव छै, ना तेनी आवरवकता वर नहीं, भाष्यु दे तेभां अरस्ती रीते वर पचल्लया रहेछ होय छै शु सोना वर सोनानु चाकी बधाववानी अरर रहे छै ? ना, ते तो जते वर परिशुद्ध छै

ये मगवान् ननु ज्ञान=मति, युत, अचरिना क. धार, समस्त ज्ञानयोगीना अग्रेर विधाग शक्तिना निधान, महान् महिमान् महावीर=वीरभां अग्रगण्य अने अतिशय व. कीरवा आदि शब्दोवालां कर्ता ते ब. ध. मान् स्वामी

पठितुं गच्छेदिति महत्=अत्यन्तम् असमञ्जसम्=अयुक्तम् । एतया=अनया प्रवृत्त्या=भगवतः कलाचार्यसमीपे शिक्षाग्रहणार्थगमनरूपया देवलोके सुधर्माणां समायां शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आसनं चलितम् । ततः खलु आसने चलिते सति अवधिना=अवधिज्ञानोपयोगेन आशुज्य=आसनकर्मनकारणं ज्ञात्वा शक्रेन्द्रः शीघ्रं ततः=तस्मात् देवलोकान् प्रस्थितः=प्रचलितो ब्राह्मणरूपेण प्रशुसमीपे आगम्य प्रशुम् उच्चासने उपनिवेश्य=संस्थाप्य ये प्रश्नाः कलाचार्यहृदये संशयरूपेण स्थिताः तान्=सन्दिग्धानेव प्रश्नान् पृच्छति, तत्र=प्रश्नेषु प्रथमम् इन्द्रेण व्याकरणविषयः प्रश्नः कृतः; भगवता=श्रीवर्धमानस्वामिना तं=प्रश्नं व्याकृत्य=समुचितरूपेण व्याख्याय संक्षेपेण=स्वल्पाक्षरेण सर्व=समस्तं व्याकरणं=शब्दशास्त्रं कथितम्=उक्तम् । तत्प्रभृति जैनेन्द्रव्याकरणं प्रसिद्धम् । ततः

ये, वे वर्धमान स्वामी, अल्पज्ञानी कलाचार्य के पास पढ़ने जाँएँ, यह अत्यन्त अयुक्त ज्ञात थी । भगवान् के कलाचार्य के समीप शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाने की प्रवृत्ति से देवलोक में, सुधर्मा समा में, शक्र देवेन्द्र देवराज का आसन चलायमान हुआ ।

आसन कम्पायमान होने पर अवधिज्ञान का उपयोग लगाने से आसन के कौपने का कारण ज्ञात हो गया । तब शक्रेन्द्र शीघ्र ही देवलोक से चला और ब्राह्मण का रूप बना कर प्रशु के पास आया । प्रशु को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करके, जो प्रश्न कलाचार्य के हृदय में संशय रूप से स्थित थे, वे ही प्रश्न पूछे । उन प्रश्नों में सर्वप्रथम इन्द्र ने व्याकरणसंबंधी प्रश्न पूछा । भगवान् वर्धमान स्वामी ने उस प्रश्न की उचित रूप से व्याख्या करके, थोड़े ही क्षणों में समस्त व्याकरणशास्त्र कह दिया । तभी से 'जैनेन्द्र व्याकरण' की प्रसिद्धि हुई ।

अक्षर्यानी कलाचार्यनी पासै बख्खा बभ, ओ वात अत्यन्त अयोग्य इती. कलाचार्यनी पासै विधा प्राप्त करवा जवानी भगवाननी प्रवृत्तिथी देवलोकिनी, सुधर्मा सलामा, शक्र देवेन्द्र देवराजनुं आसन डोलावा लाग्युं. आसन भ्रजता अवधिज्ञानना उपयोगथी शकेन्द्र आसन धुज्जवानुं करखु ळइयुं. त्यारे तरत ज शकेन्द्र देवलोकिभांथी उपडये अने प्राह्मण्डु इप लधने भगवाननी पासै आओ. प्रभुने उच्य आसन पर विराजमान करीने, जे प्रश्नो कलाचार्यना उदयभा संशयइयथी रडेला इतां ओ ज प्रश्नो तेखे भगवानने पूछ्यां.

ते प्रश्नोमां सौथी पछेदां धन्द्रे व्याकरण विषे प्रश्न पूछ्यो भगवान वर्धमान स्वामीओ ते प्रश्ननी योग्य रीते व्याख्या करीने, थोडा ज अक्षर्यामा आयुं व्याकरणशास्त्र कडी हीधुं. त्यारथी "जैनेन्द्र व्याकरण"नी प्रसिद्धि थध.

पमान्=वदनन्तरम् इन्द्रेण नयममाणस्वरूपं=नयानाम्=नैगमादीनां प्रमाणयोः=यस्यस्यपरोसयोश्च स्वरूपं
 पृष्टम्, तत् भगवता संक्षेपेण आख्याय सर्वं न्यायमर्म=न्यायब्राह्मणारः प्रकाशितं=प्रकटीकृतम् ।
 ततः पश्चात्=वदनन्तरम्, तेन=इन्द्रेण परमेश्वर्ये पृष्टम्, भगवता=भगवत्परोस्यम् आचक्षणात्=निक-
 पयता सत्ता उपश्रमः=अन्वेषित्विद्युनिग्रह आख्यातः=प्रकृतितः, उपश्रममाचक्षणात्=विशेषः=इच्छयाकुर्यन्वेषणार्थ-
 विवेचनम् आख्यातः, विषयम् आचक्षणात्=विरमणः=सावध्यापारशिवर्चनम् आख्यातम्, निरमणम् आचक्षणात्=विरमण-
 पापानां=न्यायविपादादीनां कर्मणाम् अकरणम् आख्यातम् । तत् आचक्षणात्=निर्भराबन्धनमोसस्वरूपमाख्यातम् ॥ ७३ ॥

मूलम्—एषसि गं पश्चान् विषयमकारणत्वेन सागरत्वेन तस्यद्विधा सत्त्वे जया विम्विया ज्ञाया ।

क्वयारिभो वि पसन्नविषयी संश्रमो । तस्यो पश्चात्तेण विवित्यं=अच्छेत्त्यभिणं भं एण दुदुद्वरेण सुतमाळेण
 बाळेण एयारिती चिक्का कजो सिचितया?, जो मम मर्णसि चिरकालो संवेरो भासी, जो य न केजवि
 अक्षपक्षं विचारिओ, सो सव्यो अक्ष अणेण निचारिओ । सव्येयं, न महायुरिसिम्मि एयारिसा गुणा इवति

व्याकरण-विषयक मम के पश्चात् इन्द्र ने नैगमादिनयों का तथा प्रत्यक्ष, परोस प्रमाणों का
 स्वरूप पूछा । भगवान् ने संक्षेप में उसका उत्तर देकर सम्पूर्ण न्यायब्राह्मण का सार प्रकाशित कर दिया ।
 तत्पश्चात् इन्द्र ने परमेश्वर से प्रश्न किया । भगवान् भी वर्णमान ने परमेश्वर का स्वरूप वत
 वारे हुए उपश्रम-मनोनिग्रह करा । उपश्रम करते हुए विरमण (सावध व्यापारों का त्याग) करा । निरमण
 करते हुए माणातिपात-भावों का न करना कहा । पापों का न करना कर निर्माण, वंच और
 मोक्ष का स्वरूप कहा ॥ ७३ ॥

व्याकरणवचनी २२ पृष्ठ १७३ अन्तरे नैगमादि नयेतु तथा प्रत्यक्ष, परोस प्रमाद्यैतु इत्येष पृष्ठतु
 अन्तराने इत्येष ततो २७७ व्यापारिने स पूर्यं न्यायब्रह्मणेन आर प्रकाशित करी विपि। त्वाश् वाइ अन्तरे भर्गना
 विषयमां प्रश्न करी अत्रचान् श्री वध भाने भर्गनु इत्येष जतावता उपश्रम-भनोनिग्रह करी। उपश्रमनी साधि
 विवेक (अन्व-अन्वेषण पदार्थोत्तु) विवेक) करी (विवेकनी साधि विषयम (सावध व्यापारोत्तु) त्वाश्) इत्यु विरमणनी
 साधि प्रावृत्तिपात भादि च.ये न इत्येष विवे इत्यु अपि न इत्येष करीने निरमण, अथ अने ये अन्तु
 २२१७ इत्यु (२७७)

चेव । केरिसं अस्स गांभीरियं जं एयारिसगुणगणसंपण्णोऽवि एसो एत्थ पढिउं समागओ । सच्चं अद्धभरिओ षडो सई करेइ न पुण्णो, दुब्बलो चिक्केइ न स्रो, कंसं गुंजेइ न कणयं, महापुरिसा णियमहिंमं न पयासेति । तए णं से सक्के देविंदे देवराया णियं इंइरूव पगडिय सयल-गुण-णिहिणो महागीरपहुणो अउल-बल-वीरिय-बुद्धि-पहुचं तत्थदिए जणे परिचांसु-जं इमो सयलगुणआलवालो सुउमालो बालो न साहाणो, किं तु सव्वसत्थपारीणो सव्वजगीवणीरिवक्खणपरायणो खिरिउद्दमाणो चरसत्तिथयो अत्थि-त्ति ।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिस्सि पाउअए तामेव दिस्सि पडिगए ।

पहू य सुसज्जीकयं गयमासुहिय तेण जणसमुदाएण अक्खोइज्जमाणे अक्खोइज्जमाणे सण्पासायं सण्पासायं अभिगमीअ । एयारिसपत्तिपहुपत्तिओ माउपियाईणं चेषसि भुज्जो भुज्जो अमंदा-णंद-सिंधू-च्छळंत-तरल-तरंगो न संमाओ ॥२०७२॥

छाया—एतेषां खलु प्रश्नानां चित्तचमत्कारप्रवृत्तेन व्याकरणेन तत्र स्थिताः सर्वे जना विस्मिता जाताः । कलाऽऽचार्योऽपि प्रसन्नचित्तः संजातः । ततः पश्चात् तेन चिन्तितम्-आश्चर्यमिदं यत्-एतेन दुग्धमुखेन सुकुमारेण बालेन एतादृशी विद्या कुतः शिक्षिता ? यो मम मनसि चिरकालात् संदेह आसीत्, यश्च न केनापि अद्यथन्तं निवारितः, स सर्वोऽद्यानंनं निवारितः । सत्यमेतत्-यन्महापुरुषे एतादृशा गुणा भवन्त्येव, कीदृशमस्य

मूल का अर्थ—‘एएस णं’ इत्यादि । इन प्रश्नों के चित्त में चमत्कार उत्पन्न करने वाले उत्तर से वहाँ स्थित सभी जन चकित रह गये । कलाचार्य भी प्रसन्नचित्त हुआ । तत्पश्चात् कलाचार्य ने सोचा यह आश्चर्य है कि इस दुग्धमुखे सुकुमार बालक ने ऐसी विद्या किससे सीखी ? मेरे मन में चिरकाल से जो संदेह था और जितने आजतक किसी ने दूर नहीं किया था, वह सब आज इसने दूर कर दिया ।

मूलनेो अर्थ—‘एएसि णं’ इत्यादि कलाचार्यनी न्त लध, आसखुना इपभा शकेन्द्रे पुछेला प्रश्नोता अवाओ, सर्वनी शकाने विहारी नाणे तेवा आववाथी, सर्वं समुदाय अकित थर्ध गथे। कलाचार्यं पषु विशेष प्रसन्न थयां कलाचार्यने आश्चर्यं प्रगट थये। के आवा नाना थाणकने आथुं सान केखि आथुं ? विरक्षणथी धर करी न्हेल मारा मननी थ थओउं निवारषु आ थाणकना प्रत्युत्तरथी सडेके आवी गथुं ।

गाम्भीर्यम्! यद् एवाहङ्कारगणसम्भ्रमोऽपि पपीऽत्र पठितुं समागतः, सत्यम्, शब्दश्रुतो घटः शब्दं करोति
न पुनं, दुर्गमधीत्करोति न शूर, कांस्यं गुञ्जति न क्लृप्त, महापुरुषा निजमभिमान न प्रकाशयन्ति! तवः
खट्वात् त इको देवेन्द्रो देवरागो निजमिन्द्रस्व प्रकटय्य सकलगुणनीरनिधेर्यर्थावीरप्रमोदुलबलवीर्ययुद्धिमस्तुत्वं
स्य स्थित्याऽनान्त पर्यचायवद्-यद् भयं सकलगुणाबलाः सुकुमारो यालो न साधारणः, किन्तु सर्वशस्त्रपारिणः
सबगज्जीयोनिरसनपरायणः श्रीवर्धमानभारमटीर्यकरोऽस्वीति।

सच है महापुरुष में ऐसे गुण होते ही हैं। कैसी गर्भरिता है इसमें, जो ऐसे गुण-गम से सम्पन्न होकर
भी यह यहाँ पहुंचने आया! सच है, आषा मरा हुआ चक्का ही आवाज करता है पूरा मरा नहीं, दुर्बल
ही चीत्कार करता है शूर नहीं; कांसा आवाज करता है, सोना नहीं। महापुरुष अपनी महिमा का
आप प्रकाश नहीं करते।

तत्प्रभात् द्रक्त देवेन्द्र देवराज ने अपना इन्द्र का रूप प्रकट करके सकल गुणों के सागर वीर
मण्ड के शत्रुत्व पक्ष, वीर्य, युद्धि और प्रभाव का परिचय दिया कि-यह समस्त गुणों का आल्लाख (कयारी)
युक्तमार बालक साधारण नहीं है, किन्तु समस्त शक्तों में पारंगत जगत् के सर्व प्राणियों की रसा में
वत्पर श्री क्यमान वरम वीर्यकर है।

अभीरतायुज्जु आने शानस्यपति होवा छतां, वधाथे शान मेणवकानी भुम्भुअजे का आणठ आदि
आन्नेल ते निवारधी पसु ठवाआथ पसु प्रशत यधं

ठवाआथ, का आणठनी सखता आने निरभिमानपसु मोठ, विआस्था दान्ना है, आधुरां प्रशज्जिअ
उवाआथ छे, पूरा नदि। नमवा भगता भावसेअल डिठिवासी पाठे छे, एआ नदि। इंसुअ अवाअ आने अणुअवाठ
हरी भुडे छे सोअ नदि। डुठअ, महापुरुष, इआपि पसु, धातानी शक्ति आने शुवेनि आविअअ हस्तां अ नधी।

अश्विदि आने कणयथा न भदत् अथन पूरु अयां पडी, आअवइये आवेलां शइन्अ धातान् अअव
अश्वप प्रअठ अयुः, ने त्वा आवेलां अन्नेनीने प्रसुअ आतुठ, अठ, वीअ, युद्धि आने प्रभावता परिक्व अशब्दे,
ने अठु है ' अठ अश्वेनि अश, सुठभार का आणठ हैअं सामान्य आणठ नधी, पसु अअत थाअभी पार अत
आने अय अश्वेनिअ इअअ अवाअ अवा तएस अथा अश्व तीअं'अरनी पठवीनि धारठ छे ७७

ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्या एव दिग्ः प्रादुर्गतामेव दिशं प्रतिगतः ।

प्रश्नश्च सुसज्जीकृतं गजमारुह्य तेन जनसमुदायेन अवलोकयमानोऽवलोकयमानः समसादं स्वप्रासाद-मभ्यगच्छत् । एताह-पवित्रप्रभुप्रवृत्तिं माता-पित्रादीना चेतसि भूयो भूयोऽमन्दानन्दसिन्धुच्छलत्तरलत्तरतरो न सम्मितः ॥सू०७२॥

टीका--'ए'सि णं पण्हणं' इत्यादि । एतेषां=व्याकरणप्रमाणधर्मस्वरूपविषयाणां खलु प्रश्नानाम् चित्तवत्कारप्रवृत्तेन=मनस्सन्तोषकारकेण व्याकरणेन=उत्तरेण तत्र स्थिताः सर्वे जना त्रिस्मिताः=आश्चर्ययुक्ता जाताः, कलाचार्योऽपि प्रसन्नचित्तः=सन्तुष्टमनाः संजातः, ततः पश्चात् तेन=कलाचार्येण चिन्तितं=विचारितम् ;

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ।

भगवान् सिंगारे हुए हाथी पर आरूढ़ होकर, बार-बार उस जनसमुदाय द्वारा अवलोकन किये जाते हुए, प्रसन्नता के साथ अपने प्रासाद की ओर चले । प्रभु की इस पवित्र प्रवृत्ति से माता-पिता के चित्त में पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली तीव्र आनन्द-सागर की उछलती हुई चपल लहरें समाई नहीं ॥सू०७२॥

टीका का अर्थ--'ए'सि णं' इत्यादि । इन व्याकरण, नय, प्रमाण एवं धर्मसंबंधी प्रश्नों के चित्त में सन्तोष उत्पन्न करनेवाले उत्तर से वहाँ स्थित सभी लोग आश्चर्ययुक्त हो गये । कलाचार्य का अन्तःकरण भी सन्तुष्ट हुआ । तत्पश्चात् कलाचार्य ने विचार किया । क्या विचार किया सो कहते हैं--'अहा, आश्चर्यजनक

त्यारशाह, शक्र-दे, भगवानने व दना-नमस्कार कथा, ने ने दिशासाथी आव्या इता, ते दिशाभां आल्या गया. भगवान पशु, डाथी उपर आरूढ थथ, प्रसन्नचित्ते, मडेल तरश्च वल्यां रस्तामा दोडे। भगवानने नेध नेधने पशु धरंतां न इता तेओने। तेमनामां अथाग प्रेम इतो. माथाप पशु प्रभुनुं आटळुं गधु अतुब सान नेध, विरमय पाश्या, ने आनं'दनी दडेरियोमां सभाध गया. (सू०७२)

टीकानो अर्थ--'ए'सि णं' इत्यादि व्याकरण, नय, प्रमाण अने धर्मसंबंधी ओ प्रश्नानां चित्तमां स'तोष उत्पन्न करनार उत्तरोथी त्यां रडेल मधा दोडे। आश्चर्यचकित थथं गयां. कलाचार्यनां अंतःकरणमां पशु स'तोष थथे. त्यार आह कलाचार्ये विचार कथे, ने विचार कथे ते कडे छे--'अहा, आ इधमुथ कोमण आणठे चित्तमां अभंजार करनारी

किम् ? इत्याह—आभार्यम्=विस्मयकारम् इदम्, यत् एतेन=अनेन दुग्धसूतेन सुकुमारेण=कोमलेन शोभेन एतादृशी=
 नेत्रभ्रमत्कारिणी विद्या कृताः=इत्याह—अनात् शिलिता=बुद्धिदिशिपीकृता, मम मनसि या संवेदः=संवेद्य चि-
 द्दामात् भासीत्, यद्य सदेहो न केनापि जनेन अपपर्यन्तम्=अद्यापि निवारितः=दूरीकृतः, स सर्वः संवेदः अद्य=
 अस्मिन् दिग्दसे अनेन=भीचर्यमानेन शोभेन निवारितः, एतत्=वस्तुमार्णं सत्यम्=ययार्यम्, यत् महापुरुषे=विशि-
 ष्टपुरुषे एतादृशाः=विचयमत्कारका गुणा महत्त्येव=आप्तव एव, अस्पय=वासस्य कीदृशं गाम्भीर्यम्=गाम्भीरता,
 यत् एतादृशगुणसम्पन्नोऽपि=विचयमत्कारकगुणसमूहवानपि एयः=भीचर्यमानो बालः अस्मभिकृते पठितुं=
 चित्तार्थं प्रीतुं समागतः। सत्यम्=ययार्यं यत्=अर्थसूतः=अर्थदशैवावच्छेदेन बालसहितो घटः, शब्दं करोति, न तु
 पूर्णं=व्युत्पत्यन्तं बालसूतः, दुर्बलः=बलरहित एव जनः पीठकरोति=चोत्कार करोति न तु पूर्णः। कास्यं=कास्य
 पार्थं गुञ्जति=अर्धं करोति, किन्तु कनरु=गुण्यं न गुञ्जति, एवमेव महापुरुषाः=उच्यतेपुरुषा निजमहिमानं=

है कि इस दुपधुरे कोमल बालक ने ऐसी विच में चमत्कार करने वाली विद्या किस मनुष्य से सीली है ?
 मेरे मन में जो शका बहुत समय से बनी हुई थी और अप्रतक जिस शंका का किस्ती ने भी समाधान
 नहीं किया था, अब सब शका भान बालक वर्धमान ने दूर कर दी। ययार्य ही है महापुरुषों के गुण
 विष में चमत्कार उत्पन्न करान चाहे होत ही हैं। इस बालक की गंभीरता कैसी है कि चमत्कारिक
 एणों के समूह से सम्पन्न हान पर भी यह मेरे पास शिला प्रणय करने के लिए बला आया। यह
 ठीक ही क्या जाता है कि, आया मरा हुआ यज्ञ ही भाषण करता है पूरा मरा नहीं; दुर्बल जन ही
 विद्यारणे है दूर नहीं, कासा बजता है, किन्तु स्वर्ण नहीं बनता। इसी प्रकार महापुरुष अपनी महिमा को
 प्रकाशित नहीं करते!

भावी विद्या क्या मनुष्य पक्षेयों शीभी छी ? भास अतर्भा आर्य सुधी ने यहा श्लोक कृती अने आर्य सुधी ने
 यहा श्लोक के अर्थ पक्ष समझाने कहुं न कहुं ते अभी यहा जो कुछ नाल आगत बल भाने निवारण इवी नापुन बधाय' व
 छे हे महापुरुष भं आया विद्य। यमहाय ईरण इनास श्लोक शेष छे व, आ आणकनी अक्षिटा देहवी अभी
 छे हे नमःशक्ति अक्षिता सन्नुवाये होवा छवा पक्ष ते भाई पासे विद्या प्राप्त करवा भये आये। आये। छे
 जे जगज्ज न श्लोक छे हे अपुहे भेवा अबाव छे छे पूरा भइये। अबाव इने। नवी दुबल भाव्य व
 यहा अले छे वर नक, शंभु चाहे छे मनुष्य नहीं जेव प्रभावे महापुरुष ऐवानी महत्ताने अक्षेण इवती नवी

स्वमहत्त्वं न प्रकृतयन्ति न प्रकटयन्ति । ततः=उदनन्तरम् स शक्रो देवेन्द्रो देवराजो निजं=स्वकीयम् इन्द्ररूपम् प्रकटयन्=प्रकाश्य, सकलगुणनीरनिघेः=सर्वगुणसमुद्रस्य महावीरप्रभोः=महावीरस्वामिनः, अतुलबलीर्येबुद्धिप्रभुत्वं=तुलनारहितबलपराक्रमबुद्धिनैपुण्यम्, तत्र स्थितान् जनान् पर्यवायत्=ज्ञापितवान्-यत् अयं पुरस्थितः सकलगुणालवालः-सकलानां=सर्वेषां गुणानां=इयादाक्षिण्यादीनाम् आलवालः सुकुमारो बालः साधारणो नास्ति, किन्तु-सर्वशास्त्रपारीणः=सर्वशास्त्रपारङ्गतः, तथा-सर्वजगज्जीव्यो निरक्षणपरायणः-सर्वेषु जगत्सु या जीवानां=प्राणिनां योनयो=मनुष्यादियोनयस्तासां रक्षणे=रक्षाया परायणः=तत्परः, श्रीवर्धमानः=वदालयः चरमतीर्थहरः=अन्तिमचतुर्विंशतितमतीर्थहरः अस्ति=विद्यत इति ।

ततः=श्रीवीरपरिचयख्यापनानन्तरं खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यथाः दिशः=यां दिशमाश्रित्य प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः=परावृत्य गतः ।

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने अपने इन्द्र-रूप को प्रकट करके समस्त गुणों के समुद्र भगवान् महावीर के अतुल बल, वीर, बुद्धि और प्रभुता का वहाँ स्थित जनों को परिचय कराया कि-यह दया-दाक्षिण्य आदि सब गुणों के आलवाल (वयारी) सुकुमार बाल सामान्य नहीं हैं, किन्तु समस्त शास्त्रों के पारंगामी तथा सारे संसार में जीवों की जो मनुष्यादि योनियाँ हैं, उनकी रक्षा करने में तत्पर श्री-वर्धमान-नामक अन्तिम-बौवीसवें तीर्थकर हैं ।

श्रीवीर भगवान् का परिचय देने के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन क्रिया, नमस्कार क्रिय वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ।

त्यार थाह शक हेवेन्द्र हेवराजे पोताना धन्दनां इपने प्रगट करीने, समस्त शुब्रोभा सागर, लगवान भडावीरना अतुल अण, वीर्य, बुद्धि अने प्रभुताने। त्यां आवेद भाबुसोने परिचय करान्थे। ऊ आ हथा, दाक्षिण्य-आदि सधणा शुब्रोने आदथाव (अयारी) सुकुमार आणक सामान्य नथी, पषु समस्त शास्त्रोने पार पाभनार तथा आथा ससारमा एवेनी ने मनुष्यादि योनीको छे, तेमनी रक्षा करवाने समर्थ श्री वर्धमान अन्तिम-बोवीसमा तीर्थ कर छे.

श्रीवीर भगवानने परिचय आप्या पछी शक हेवेन्द्र हेवराजे श्रमणु लगवान भडावीरने वंदन कर्या, नमस्कार कर्या, अंदन-नमस्कार करीने ने दिशासा प्रगट थयां इतां ओज दिशाभां आदथा अथां ।

मय्यर्थ=श्रीकर्ममानस्वामी च मुत्तस्त्रीकृत=सम्पत् सञ्चित, गलं=रस्तिनम् आरब्ध=नाजोपरि समुपविश्य
 तेन=ग्राह्यजोतेन विज्ञास्थानत्वेन च जनसमुदायन=रिजनसमूहेन कर्मजनसमूहेन च अवलोकयमानोऽबलो
 यमान =पुन पुनरनिगदगिर्मरिगमान समसाद्य=मसत्वापूर्वकं यथा स्याद्यथा स्वभासाद्य=व्यकीपरानजमवनम्
 मय्यगाव=गतवान्, एवाहृणविप्रमयुम्वृत्तितः=इन्द्रकृतममसमाधान-कलाचार्यसन्तोषण-सकलजनप्रसादनरूप-नि
 र्भवन्धीरस्त्रामिसमानरात, मातापित्रादीनां=मातापित्रोः, मादिना द्राष्टृमष्टीनामपि वेतसि=मनसि धूपो धूपः
 चारं चारम् समन्दाऽऽन्वगिन्युच्यन्तस्त्वरात्=अतिहरिसुदोद्गच्छयत्सोमिः-इर्पातिअपूरुपसासुद्रिकठटस्पृशिवल-
 तरत्तो न संमितः= न भवे । अश्रुमिषेण आनन्दो परिर्गत इति माषः ॥धृ०७२॥

श्रीकर्ममान स्वामी ब्रह्मिया सजाये हुए गजराज पर सवार होकर साथ आये हुए, एव विज्ञास्थान
 में एकत्र हुए जनसमूह द्वारा तथा परिजनसमूह के द्वारा पुनः पुनः निर्निमेष इष्टि द्वारा देखे जाते हुए
 प्रसन्नतापूर्वक भणने रातमध्य में बड़े गये ।

इन्द्र द्वारा किये गये प्रभों के समाधान, कलाचार्य को संछुट कला एवं सकल जनों को प्रसन्न
 कराना-एव प्रकारकी श्रीधीरस्वामी की मद्युचि स माता-पिता के तथा आदि अश्रु से आई कौरव
 क मन में प्रकय इर्प-रूपी सागर की चार-चार उछलती एवं बचल तरंगों समा न सकीं । सास्य यह है
 कि यह रों नीतर न समाया तो आश्रुओं के बहाने बाहर निकल पड़ा ॥धृ०७२॥

श्रीकर्ममानस्वामी आसी रीते यद्युत्तरेवा अथवा पर अथवा यद्यने आदि आवेक तथा विज्ञास्थानभा
 जेकर यथेक जनसमुदाय तथा परिजनसमूहद्वारा इरी-इरीधी अनिरीध नकरे जेवार्त्त प्रसन्नतापूर्वक योदाना
 शक्यभवेवर्षां आभा अर्वा

इन्द्र द्वारा पूजादिषु प्रभोनां समाधान, कलाचार्यने सुच्छुट कसु अपने सुधणा दोहेने प्रसन्न कस्य, आ
 प्रभोनी श्रीधीरस्वामीनी मद्युचिधी माता-पितानां तथा आदि अश्रुधी आदि बजिरेनां मनभां प्रणय कथ पूषी
 आभरनी चारवार उछलती अपने बचल कठेरी समाश शशि नहीं आयाक जे छि है ते कथ आकर समाये
 नहीं तो कर्पाश्रुने नकार निरन्ती पश्येत् (धृ०७२)

मूलम्—तए णं तं समयं भगवं महावीरं उम्मुक्कवालभावं त्रिष्णायपरिणयमेत्तं णवंगसुत्तपडिवोहिय
जाणिय अम्मपियरो सागेयपुराहिवस्स समरवीरस्स रत्नो धूयाए धारिणीए देवीए अंगजायाए जसोयाए
राजवरकनाए पाणिं पिण्हाविंसु ।

तत्रो णं समणस्स भगवओ महावीरस्स पियदंसणेति नामं धूया जाया । सा च जोव्वणगमणुप्पत्ता
सयस्स भाइणिज्जस्स जमालिस्स दिन्ना । तीसे पियदंसणाए धूया सेसवईति नामं जाया ।
समणस्स भगवओ महावीरस्स पिउणो कासवगोत्तस्स सिद्धत्थेत्ति वा, सेज्जसेत्ति वा, जसंसेत्ति वा

तओ नामथेज्जा ।

माउणो वाम्हिणुत्ताए तिम्लेत्ति वा, विदेहदिण्णेत्ति वा, पियकारिणीत्ति वा तओ नामथेज्जा ।
भगवओ पित्तियए सुपासे कासवगोत्ते, जेहे भाया णंदिवदणे कासवगोत्ते । जेह्हा भइणी सुदंसणा
कायवगोत्ता । भज्जा जसोया कोडिण्णगोत्ता । धूयाए कासवगुत्ताए अणोज्जाइ वा पियदंसणाइ वा दो नामधिज्जा ।
णत्तुईए कोसियगोत्ताए सेसवईति वा जसवईति वा दो नामधिज्जा होत्था ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मपियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था । ते णं
वहू. समणोवासगपरियागं पाउणित्ता अपच्छिमाए संलेहणाए झोसणाए झोसियसरीरा कालमासे कालं किच्चा
वारसमे अबुए कप्पे देवत्ताए उववणा, तत्रो णं महाविदेहे सिञ्जिस्संति ।सू०७३॥

छाया—ततः खलु त श्रमणं भगवन्तं महावीरम् उन्मुक्कवालभावं विज्ञातपरिणतमात्रं नवाङ्गमुत्तमविवोधितं
ज्ञात्वा अम्वापितरौ साकेतपुराधिपस्य समरवीरस्य राज्ञौ दुहितुः, धारिण्या देव्या अङ्गजाताया यशोदाया

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । तत्पश्चात् श्रमण भगवान् को वाल्यावस्था से मुक्त परिपक्व ज्ञान
वाला तथा नौ अंग जिनके जाग गये हैं—अर्थात् युवावस्था के कारण नौ अंग जिनके विकसित हो गये हैं—
ऐसा जान कर मातापिताने साकेतपुर के अधिपति समरवीर राजा की कन्या, धारिणी देवी की अङ्गजात

भूइने। अर्थ—‘तए णं’ धत्यादि. भाण्ड वर्धमान, आल्थावस्थाथी मुक्त थथां, युवान वथने आस थथां,
तेना नव थगे। परिपुष्ु युवानीने वीधे ञथां अट्ठे विकसित थथां, तेतुं सान पष्ु परिपक्व थथुं. आ षुधुं
अथात्तां, माता—(यतांअे, साकेतपुर (अथेधथानगरी) ना अधिपति समरवीर राजनी पुत्री अने धारिणी राष्ठीनी

ततः खडु श्रमस्य भगवतो महावीरस्य 'मियदर्शना' इति दुरिता जाता । सा च यौवनकल्पद्रुमासा स्वरूपे भागिनेयाय जमालये दत्ता । तस्याः मियदर्शनाया दुरिता 'शेषवती' इति नाम जाता ।

श्रमस्य भगवतो महावीरस्य पितुः काश्यपगोत्रस्य सिद्धार्य इति वा, भेर्यास इति वा, यद्वस्त्री इति वा, प्रीणि नामधेयानि ।

साम्प्रदायिष्ठगोत्रायाः 'भिनन्ना' इति वा 'विदेहना' इति वा 'मियकारिणी' इति वा प्रीणि नामधेयानि । भगवतः पितृव्यः सुपाथः काश्यपगोत्रः, ज्येष्ठो भ्राता नन्दिवर्धनः काश्यपगोत्रः । ज्येष्ठा मगिनी मूर्धना काश्यपगोत्रा । सार्या यज्ञोदा कौटिल्यगोत्रा । दुरितुः काश्यपगोत्रायाः 'अनवया' इति वा 'मियदर्शना'

'यज्ञोदा' नामक श्रेष्ठ राजकन्या कं साय पाणिग्रहण (विवाह) करायाम् ।

पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर की 'मियदर्शना' नामक कन्या का जन्म हुआ । जब वह यौवन की प्राप्त हुई तो भगवान् के भागिनेय (वरिन के लड़के) जमालि के साथ उसका विवाह हुआ । मियदर्शना की पुत्री 'शेषवती' हुई ।

भ्रमण भगवान् महावीर के काश्यपगोत्रीय पिता के तीन नाम य-सिद्धार्य, भेर्यास और यद्वस्त्री । वात्रिष्ठगोत्रीया माता के तीन नाम य-श्रिष्ठा, विदेहना और मियकारिणी ।

भगवान् के काका सुपार्थ थे, जो काश्यपगोत्रीय थे । बड़े सार्य नन्दिवर्धन थे, वे भी काश्यपगोत्र के थे । बड़ी बरिन सुदर्शना काश्यपगोत्र की थी । उनकी पत्नी यज्ञोदा कौटिल्यगोत्र की थी ।

अनन्वत श्रेष्ठा नामनी कन्या साथे यथमान' दु पाण्डुश्रद्ध (अन्) कथयु

श्रमण वीरता, 'यद्व'मान' ने त्वा प्रियदर्शना नामनी प्रिय कन्याने वर म श्रेष्ठ का कन्याने प्राप्तवये यद्व'मान' ना कावेज्ज लभामि साथे परवानी देवार्थम् आयी का प्रियदर्शनाने, शेषवती नामनी ज्येष्ठ पुत्री यजु ४१११ संघ.

अनन्वत महावीरना श्रमणमेत्री पितान्, तजु नाम क्ता—(१) सिद्धार्य, (२) भेर्यास, (३) यद्वस्त्री तेभनी वात्रिष्ठमेत्री भावना यजु तजु नाम क्ता—(१) विदेहना, (२) विदेहना, (३) प्रियकारिणी । अनन्वतना शायी सुपाथ वल्लि कथु नन्दिवर्धन जने श्रेष्ठि जल्लेन सुदर्शना का यथ श्रमणमेत्री क्ता ।

इति वा द्वे नामधेये । नञ्याः कौशिकगोत्रायाः 'शेषवती' इति वा, 'यशस्वती' इति वा द्व नामधेये अभूताम् । श्रमणस्य खलु भगवतो महावीरस्य अम्बापितरौ पार्श्वोपत्थीयौ श्रमणोपासकौ चापि अभूताम् । तौ खलु बहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्यायं पालयित्वा अप्रथिसया मारणान्तिकया संलेखनया जोषण्या जोषितशरीरौ कालमासे कालं कृत्वा द्वादशे अच्युते कल्पे देवतया उपपन्नौ, ततः खलु महाविदेहे सेत्स्यतः ॥सू०७३॥

टीका—'तए णं समणं' इत्यादि । ततः=नदनन्तरं खलु तं श्रमणं भगवन्तं महावीरम् उन्मुक्त-बालभावं=न्यक्तवाल्यावस्थं, विज्ञातपरिणतमात्रं=परिपक्वविज्ञानं, नत्राहसुप्तमतिवोधितं=श्रोत्रद्वयं चक्षुद्वयं घ्राणद्वयं

उनकी काश्मपणोत्र की लड़की के दो नाम थे—अनवद्या और प्रियदर्शना । उनकी दौहित्री (नातिन) कौशिक-गोत्र की थी । उसके दो नाम थे—शेषवती और यशस्वती ।

श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता पार्श्वोपत्थीय (पावनाय के अनुयायी) श्रमणोपासक थे । वे दोनों बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय को पालकर अर्थात् श्रावक-अवस्था में रहकर अन्तिम समय में होने वाली मारणान्तिक-संलेखना-जोषणा से शरीर को जोषित करके, मृत्यु के अवसर पर काल करके बारहवें अच्युत नामक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए । वहाँ से च्यत्र कर वे महाविदेह में सिद्ध होये ॥सू०७३॥

टीका का अर्थ—'तए णं' इत्यादि । तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर को वाल्य-वय को पार किया हुआ,

तेभना पत्नी यथोदाहुं गोत्र "कौडिन्य" इतुं भगवान्ती कश्चपेगोनी दीक्षरीना जे नाम इता-(१) अनवद्या,
(२) प्रियदर्शना. अने प्रियदर्शनानी पुत्री कौशिकगोत्री इती. आ दौक्षीनीना जे नाम इतां—(१) शेषवती,
(२) यशस्वती.

भगवानना माता-पिता पार्श्वोपत्थीय (पार्श्वनाथ भगवानना अनुयायी) श्रमणोपासक इतां. आ अन्ने
ब्रह्माणे, वर्षो सुधी, श्रावकपर्यायहु यथार्थं पावन करी, अंतिम-सभये भारथान्तिक संलेखणानुं सेवन करुं, काव
आण्ये काव करी, वारभा अच्युत नामना देवलोकमा देवपण्णे तेजेो उत्पन्न थयां. त्यांथी चवी, भक्षाविदेह क्षेत्रमां आवी,
त्यां ते क्षेत्र, सिद्ध थये. (सू०७३)

टीकानो अर्थ—'तए णं' इत्यादि. त्पार बाद श्रमणु भगवान भक्षावीरने, आल्यावस्था पसार कर्यां पछी जे डान, जे

रमना त्वा मनधरि न च भ्रान्ति पूर्ष सुप्तानि पद्मात् यौवनेन प्रविचोषितानि यस्य सप्त-नवयौवनोच्छ्रितं ब्राह्म्या अम्बा-
 पिता साकेतपुराधिपस्य=प्रयोष्यानागराधिपतेः समरवीरस्य=वदाल्यस्य रावः दुरिहः=पुष्याः, घारिण्याः=वदा
 म्पाया देव्या=राह्या भद्रनातायाः=पुण्याः यज्ञोदाया =वदासयायाः राजवरकन्यायाः=रानभेष्टपुत्र्याः पाणिः=
 क्रम्य भ्राह्मणवाम्=त्रिवार कारितवन्तौ ।

वताः=पाणिप्रणानन्तरं सल्लु कालक्रमेण भ्रमणस्य मगधतो महावीरस्य 'मियदर्शना' इति नाम=वामान्ता
 मसिद्धा दुरिवा=कन्या जाता=उत्पन्ना, सा=मियदर्शना च यौवनकं=यौवनावस्थाय् अनुमाप्ता=क्रमेण प्राप्ता सती
 मगधता स्वकस्यै माग्निनेयाय=निजमग्निपुत्राय जमालये दद्या । तस्याः मियदर्शनाया दुरिवा=कन्या
 'श्लेष्वती' इति नाम जाता ।

भ्रमणस्य मगधतो महावीरस्य पितुः काश्यपगोत्रस्य=काश्यपगोत्रोत्पन्नस्य श्रीणि नामधेयानि सन्ति,

परिपक्व-विज्ञान-शाला, दो कान, दो आल, दो नाक, रसना, त्वचा और मन-यह नौ अंग जो युक्त थे, उन्हें
 यौवन के कारण जाहृत हुआ देलकर, माता-पिता ने अयोध्या के राजा समरवीर की पुत्री और घारिणी
 नामक देवी की अंगनात यज्ञोदा-नामक भेष्ट रामकन्या के साथ उनका विवाह कराया ।

विवाह के बाद कालक्रम से अरण्य मगधान महावीर को 'मियदर्शना' नामक एक कन्या की प्राप्ति
 हुई । मियदर्शना पीरे-पीरे यौवन भरस्ता में पहुँची तो मगधान ने उसे अपने माग्निनेय जमालि को वी-
 जमालि के साथ उसका विवाह कर दिया । मियदर्शना की मी कन्या श्लेष्वती नामक हुई ।

भ्रमण मगधान् महावीर के पिता के, जो काश्यपगोत्र में उत्पन्न हुए थे, वीन नाम थे-सिद्धाय,

आँसू, वे नाक छत्र, त्वचा, त्वचा, मन और नभ आदि ने सुधाकरशामं कर्तां ते शौचने कारेण्ये अश्रुत कर्तां परिपक्व
 विज्ञानवर्णं श्लेष्वेभेने माता-पिताञ्च अयोध्याना राजा समरवीरिनी पुत्री अने भास्विदेवीनी अजम्बत अयोधा
 नामिनी श्रेष्ठ शल्यन्वानी साथे तेभयो विवाह कर्षो विवाह पछी प्राणकर्मि अमल्य भगवान महावीरने अयोधावानी इ जे
 मियदर्शना नामिनी कन्या अर्षि पिपकटना पीरे पीरे यौवनभरशाओ पकेकी त्पारे अजयने योताना आखेण
 अभाकि साथे तेभो विवाह कर्षो मियदर्शनाने एण्य श्लेष्वती नामि पुत्री अर्षि ।

यथा-‘सिद्धार्थः’ इति वा, ‘श्रयांस’ इति वा, यशस्वी’ इति वा ।

वाशिष्ठगोत्रायाः=वाशिष्ठगोत्रोत्पन्नायाः मातुर्नामधेयानि त्रीणि सन्ति, यथा-‘त्रिशला’ इति वा, ‘विदेहदाता’ इति वा, ‘प्रियकारिणी’ इति वा ।

भगवतः पितृव्यः सुपार्श्वः काश्यपगोत्रः=काश्यपगोत्रोत्पन्नः आसीत्, ज्येष्ठः=अग्रजो भ्राता नन्दिवर्धनः=तदाख्यः काश्यपगोत्रः=काश्यपगोत्रोत्पन्न आसीत् । ज्येष्ठा भगिनी सुदर्शना काश्यपगोत्रा आसीत् । भार्या यशोदानाम्नी कौडिन्यगोत्रा आसीत् । दुहितुः=कन्यायाः काश्यपगोत्राया द्वे नामधेये स्तः, यथा-‘अनवधा’ इति वा, ‘प्रियदर्शना’ इति वा ।

कौशिकगोत्रायाः नपथाः=दैहियाः द्वे नामधेये स्तः, यथा-‘शेषवती’ इति वा ‘यशस्वती’ इति वा । श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्वापितरौ=मातापितरौ पार्श्वीपत्नीयौ=पार्श्वनाथस्य शिष्यपरम्परासम्बन्धिनीं श्रयांस और यशस्वी ।

वाशिष्ठगोत्र में उत्पन्न माता के तीन नाम थे-त्रिशला, विदेहदाता और प्रियकारिणी । भगवान् के काका काश्यपगोत्रोत्पन्न ‘सुपार्श्व’ थे । वड़े भ्राता काश्यपगोत्रोत्पन्न नन्दिवर्धन थे । बड़ी बहिन काश्यपगोत्रीया सुदर्शना थी । पत्नी का नाम यशोदा था, वह कौडिन्य-गोत्र में उत्पन्न हुई थी । उनकी कन्या काश्यपगोत्रीया के दो नाम थे-प्रियदर्शना और अनवधा । कौशिकगोत्र में उत्पन्न नातिन के दो नाम थे-शेषवती और यशस्वती ।

भगवान् के माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा से संबंध रखने वाले श्रावक थे ।

श्रमणु भगवान् महावीरनां पिता काश्यपगोत्रमां वृन्त्यां हुतां. तेभना वषु नाम हुतां-शिद्धार्थं, श्रयांस अने यशस्वी

वाशिष्ठगोत्रमां उत्पन्न थयेष्व तेभना मातानां पषु वषु नाम हुता-त्रिशला, विदेहदाता अने प्रियकारिणी. भगवानना काका ‘सुपार्श्व’ काश्यपगोत्रमां उत्पन्न थयेव हुता. भोटा भार्ध काश्यपगोत्रमां उत्पन्न थयेव नन्दिवर्धन हुता. काश्यपगोत्रीया सुदर्शना तेभनी बोटी जेन हुतां. पत्नीनुं नाम यशोदा हुतुं, ते कौडिन्यगोत्रमां उत्पन्न थयेव हुती. तेभनी काश्यपगोत्रीया कन्यानां जे नाम हुतां-प्रियदर्शना अने अनवधा. कौशिकगोत्रमां उत्पन्न थयेव नातिन (हीकरीनी हीकरी) नां जे नाम हुतां-शेषवती, यशस्वती.

भगवानना माता-पिता भगवान पार्श्वनाथनी शिष्यपरंपरा साथे संबंध राखनार श्रावक हुतां. तेन्ना धाधुं

अमजोपासकौ=प्राचक्रौ चापि अचूतार्थ=मास्वाम् । तौ=माहावीरस्य मातापितरौ बहूनि सर्वाणि अमजोपासक-
 पर्थाय=प्राचक्रस्य प्राप्तयित्वा अश्विमया=सर्वांस्त्रिमया मारुणान्त्रिमया=मरुणान्त्रिमयासमयमश्वया संछेलनया जोषणया
 क्षीपितश्चरीरी सन्ती काम्मासे काल कृत्वा द्वायसे=अभ्युत्ते कन्ये वषट्पा=देवसेन उपपन्ती । ततः लख
 मराणिवेदकृते तस्यप सेत्स्यताःसिद्धिं प्राप्स्यतः ॥धृ०७३॥

मूक्तम्—वेद्यं कोष्ठेष तेष समएवं समणे सगवं महावीरे विष्णुगोरुगए अम्मापिकरिं देवखोय
 गरिं समणेहिं समघपणणे अद्धावीसं वासाइ अगारएवन्ने वसिषा अमियिबलमणाभिप्याए यावि होस्या । त
 आधिय मगधमो वे,माया वंदिददणो राया मयव एवं वयसी-हे माय ! अम्मापिकणं वियोगदुख
 अञ्जारे नो सिस्तरियं, ना ष अम्बल्ल सय्यपरिययो सोगविमुञ्चो संजाओ, एयम्मि अक्सरम्मि तुन्ने अमि-
 यिबलमभिप्याया इविय या मम शिययम्मि लए लारं जिक्खेवेह । पणपियाणं तुम्हाणं विरहो अम्हाणं
 असम्भो अरिष । मगवया करियं=अम्मापिउकणीमाइसर्बधो अस्स नीवस्स अणतचरंरं जाओ, एस्य नो पडिबंघो
 धायवो-सि । वंदिददणेय्य वुध-माय ! अं मे करिय त खवं सर्बं, मम अगारेयपि तुम्हेहिं दो वरिसाई
 वाव निरवासे आस्सं वसियवन्-ति ।

एष ण विच्छयणाभी मयव नियमाज्जो नदिइद्वयस्स एयम्ल सोषा निसम्म एवं वयासी-वइ एवं
 मव कइए सा दो चरिसाई जाव गिहवासे वसाभि, अज्जप्यमिइ च णं गिहम्मि मज्ज निमिष आरंभो समांभो
 मां नो करमिज्जो । साहुविचीए मं चिडिस्सामि । नंदिइद्वयो राया तं पडिच्छइ ।

ये बहुत यहाँ तक अम्होपासकरूपार्थय पासकर सबसे अन्तमें, मरणके समय में होने वाली संछेलना-
 जोषणा से चरीर को जोषित करके (समाधि-मरण का संबन्ध करके) काम्मास में काल कर के चारहरे
 अच्युत-नामक कृत्य में देव-वर्षार्थय से उत्पन्न हुए । यहाँ से व्यवहार महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने
 और वृत्ति प्राप्त करने में ॥७३॥

यहाँ सुधी अम्होपासकरूपार्थय धाणीने छरु अरुणमभये चरारी अट्टेअना-मोएव्वाधी शरीरने ज्येपित करीने
 (सम्भविमल्लवुइ जेवन् करीने) अज्जप्यमं धाव करीने अच्युत-नामना चारुमा अकथमा देवकुपे उत्पन्न यधं
 अथी अचरीने भकविदेह क्षेत्रमा उत्पन्न करी अन्ने धाम प्राणम लल्ल (धृ०७३)

तए णं समणे भगवं महावीरे तत्थ गिहवासे वसमाणे निब्बं काउस्सगं करेमाणे वमचेरं पालेमाणे सिणणं सरोस्सोहं च वज्जेमाणे एसणिज्जेणं असणाइणा सरीरज्जं निब्वाहेमाणे विखुद्धज्झाणं क्रियायमाणे

भाष्यसुणित्रितीए जहातहा एगं वरिसं अगारवासे वसीअ ॥६०७४॥

छाया--तस्मिन् काले तस्मिन् समने श्रमणो भगवान् महावीरः त्रिज्ञानोपगतः अम्वापित्रोः देवलोके गतयोः सतोः समाप्तप्रतिज्ञः अष्टाविंशति वर्षाणि अगारमध्ये उपित्वा अभिनिक्रमणाभिप्रायश्चापि वभूव । तज्ज्ञत्वा भगवतो ज्येष्ठभ्राता नन्दिर्वर्धनो राजा भगवन्त्वमेवमवादीत-हे भ्रातः ! अम्वापित्रोर्वियोगदुःखमद्यापि नो विस्मृतम्, नो खलु अस्माकं स्वजनपरिजनः शोकविसुक्तः संजातः, एतस्मिन् अवसरे यूयमभिनिक्रमणाभिप्राया भूत्वा मा मम हृदये क्षते क्षार निक्षिपत । प्राणप्रियाणां युष्माकं त्रिहोऽस्माकमसखीऽस्ति ।

मूल का अर्थ—‘तेण कालेण’ इत्यादि । उस काल और उस समय में तीन ज्ञान से युक्त श्रमण भगवान् महावीर की, माता-पिता के देवलोके-गमन करने पर, प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई । अर्द्धसि वर्ष तक गृहवास में रहकर उन्होंने दीक्षा अंगीकार करने का विचार किया । यह जान कर भगवान् के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिर्वर्धन राजाने भगवान् से कहा-हे बन्धु ! माता-पिता के वियोग का दुःख अभी तक भूला नहीं है, हमारे स्वजन और परिजन शोक से मुक्त नहीं हुए हैं । इस अवसर पर दीक्षा अंगीकार करने का विचार मत करो, मेरे हृदय के घाव पर नमक (क्षार) मत छिडको । तुम मुझे प्राणों के समान प्रिय हो । तुम्हारा विरह हमें असह्य है ।

मृणते अर्थ—‘तेण कालेण’ इत्यादि ते क्षणे ते सभये, तथु सानयुक्त श्रमणु भगवान् भडावीरना माता-पिता देवदोकभा पधारवाना कारणु तेभनी प्रतिज्ञा पूरुं थथ गध अकुवीश वर्षं गृडवास (संसार)भां रथा पछी तेभणु दीक्षा अगीकार करवा निश्चय कथे।

प्रभुते आ निष्णंय ळणु लगवानना भोटाभाध नदिवधनं राब्णये भगवानने कधुं ठे ‘हे भाध ! माता-पिताना वियोगनु इ थ इल्लु इ वीसरी शकथे नथी. आपणु स्वन्न-परिजने। पथु शोकथी इल्ल मुक्त यथा नथी. अेवा सन्नेगोभा तसे दीक्षा शकथु करवानी वात न करे, मारा हेयामां पडेला धा इल्ल इआया नथी त्या गीडुं लभराववानु साइस न भेडे। तसे मारा प्राणुथी पथु अधिक वडावा छे। तसारे। वियोग भाराथी सहन थये नकि.

मगता दृष्टिद्वय-श्रद्धाचिह्नमणिनीप्रावसम्बन्धोऽस्य जीवस्य अन्तवचार् जातः, अतोऽत्र नो मतिरयः कर्तव्य इति ।
 नन्दिरघनेनोक्तं-ध्रातः ! यद् युष्माभिः कथितं तद् सर्वं सत्यं, ममाऽऽश्रेयापि युष्माभिर्द्वे वर्षे यावद् सुरवासोऽवश्यं
 वस्तव्यमिति ।

ततः सलु निधयज्ञानी मगवान् निमग्नानुर्नन्दिरघनेनस्य पृथमयं भुत्वा निधम्य एवमवासीत्-यमेवं
 भवान् कथयति तदा मे यो यावद् सुरवास वसामि । अथमद्यति च सलु शूरे मभिमिष आरम्भ समारम्भो
 वा नो करणीयः, साधुद्वत्या स्यास्यामि । नन्दिरघनेनो रामा तद् प्रतीच्छति ।

ततः सलु श्रमणो मगवान् महावीरः तत्र सुरवासो वसन् नित्य कायोत्सर्गं कुर्वन् ब्रह्मचर्यं पालयन्
 मगवान् ने कथा-माता, पिता, बहिन, माई का सर्वथ इस जीव का भन्त्व वार हो चुका है,
 अत इस त्रिपय में ककात्र न रहानिप ।

नन्दिरघनेन बोले-माई ! तुमने जो कथा सा सप सच है; मगर मेरा आग्रह मान कर मी तुम्हें
 दो वर्ष तक सुरवास में भ्राउप रहना चाहिए ।

तब निधयज्ञानी मगवान् ने अपने याद नन्दिरघन के इस अर्थ को सुनकर और हृदय में पारण
 कर के इस प्रकार कथा-यदि नाप ऐसा कहते हैं तो दो वर्ष तक सुरवास में रहता हूँ; मगर आज से
 मर निमित्त परमै आर्त्त-नमार्सन न होना चाहिए । मैं साधु-शुषि स रहूँगा । नन्दिरघनेन राजाने यह
 बात स्वीकार कर ली ।

तब म श्रमण मगवान् महावीर सुरवास में रहते हुए, नित्य कायोत्सर्ग करते हुए, ब्रह्मचर्य का
 भजनाने बन्वाव आरभो- 'के काष्ठ ! मात्त-पिता अने जठेन-भाउते अवध तो आ एवे अन्वीवार
 भयो छे आरे आ विवभमा कुवे अत्तमाध न नाओ तो सारु ।'

नन्दिरघने आजग आनी कहु है के काष्ठ ! तमे ने कहु ते यत्थ छे परतु भाओ आअक भानी अथ
 वमे कहु वे वरं सुदवासमं विवावो तो सारु ।

मैगभाउते आ प्रकृततर सांभणी निधयज्ञानी प्रभु सकावीरे पिताना काष्ठ नन्दिरघननी आपी छुआ आपी,
 दुसकमं छवारी अने शीपु छे ने आधनी उक्ख जेम न होव तो हूँ कहु वे वप सुदवासमं रहीय, पण
 यरण के छे भास निमित्त, परमा देअं पणु भाउते आरक-समारव मवो न नोअज्जे, हूँ साधु-वृत्तिवावो
 वधने न रहीय, 'नन्दिरघने प्रभुनी आ यावने रहीवार भवे ।
 योधाकाष्ठ भाओ आ वाप यथा पठो अभय अन्वयन भकावीरे सुदवासमं कहु दिवसे वीतानव वात्सा ।

स्नान शरीरशोभां च वर्जयन् एषणीयेनाशनानादिना शरीरयात्रा निर्वहन् विशुद्धध्यानं ध्यायन् भावस्थानदृश्यं यथा तथा एकं वर्षमगारवासोऽवसत ॥ सू० ७४ ॥

टीका—‘तेण कालेण तेणं समएण’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये=मातापितृदेवलोकगमन-कालावसरे श्रमणो भगवान् महावीरस्नानोपगतः=नतिश्रुत्यरथिरूपज्ञानत्रयवान् अम्बापित्रोः=मातापित्रोः देवलोकं=स्वर्गलोकं गतयोः सतोः समाप्तमतिहः=पूर्णप्रतिहः सन् अष्टाविंशतिम्=अष्टाविंशतिसंख्यानि नर्पाणि आगारमथ्ये=गृहमथ्य उषित्वा=वासं कृत्वा अभिनिष्क्रमणाभिप्रायः=संयमग्रहणाभिलाषुकः अभूत्, तत् ज्ञात्वा भगवतः=श्रीवीरस्य ज्येष्ठभ्राता नन्दिर्वर्धनो राजा भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनेमवमदीत=हे भ्रातः ! अम्बापित्रोः=मातापित्रोः वियोगदुःखं=विह्वलजनितदुःखम् अद्यापि=अद्यपर्यन्तमपि नो विस्मृतम्, तथा-अस्माकं स्वजनपरिजन-पालन करते हुए, स्नान एवं शरीरशोभा न करते हुए, एषणीय अशन आदि से शरीरयात्रा का निर्वाह करते हुए, विशुद्ध ध्यान व्यतीते हुए, भावस्थिति की वृत्ति से जैसे-तैसे एक वर्ष तक आगारवास में रहे । ॥ सू० ७४ ॥

टीका का अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि । उस काल और उस समय में अर्थात् माता-पिता के देवलोक-गमन के समय में मति श्रुत और अवधिज्ञान के धनी श्रमण भगवान् महावीर पूर्णप्रतिह हो गये, अर्थात् उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई । तत्र अर्हाइस वर्ष गृहवास कर के वे संजम ग्रहण करने के अभिलाषी हुए । यह जानकर श्री महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिर्वर्धन राजा भगवान् वीर स्वामीसे इस ते दरम्यान आ प्रमाणे नियमोनु पालन करवा लाया (१) दरदोज्ज कायेत्सर्गं करता. (२) अस्सयथं दुं पादानं करता (३) शरीरनी शोभा वधारयाना उपायोथी हर रडेता (४) शरीरना पोषणु पूरतो ज् आहार लेता. ओ प्रभारे विशुद्ध ध्यान धरता धरता भावमुनि नेवी वृत्तिने आथरता नेम तेम ज्येठ वर्ष सुधी अगारवासमां (संसारी-पणामा) रहेता (सू० ७४)

टीकाने अर्थ—‘तेण कालेण’ इत्यादि ते काले आने ते समये ज्येठे हे प्रभु महावीरना माता-पिता देवलोकां पामता, मति, श्रुत अने अवधिज्ञानधारी अना श्रमणु भगवान् महावीरनी प्रतिज्ञा हुवे पूर्युं थध. आ वीस वर्षं स सारंमा रहेता आह तेभने सयम लेवानी ज्येठे हे दीक्षा, देवानी लावना जगुत थध. ज्येठे प्रभु महावीरना मोटाभाउं राण्ट नन्दिर्वर्धने आ ज्येठुं थ्यारे तेमहे भगवान् महावीरने बारे हेथे कथुं.—“ लाध, वर्धमान् ! माता-पितानां

मोक्षचिह्नकः—धर्मरीयमाठापिठवियोगजनितदोषहरिदो नो संजात, एतस्मिन् अवसरे=दोषकृति प्रसङ्गे युयम
 मिनिकम्पणाभिप्राया भूत्वा मम हते=मातापितृमरणजनितदुःखरूपवणुके इदये=मनसि शार=स्ववियोगजनित
 दुःखरूपं अर्चनं मा निक्षिपतन्न पाठयत। माणभियाणां=याणेभ्योऽप्यपिकानां युष्माकं विरहो=वियोग
 यस्माकम् असद्यः=तोऽनुमनयोर्यन्ति। ततो मगवता=भीर्यमानस्वामिना कथितम्—यत् अस्यापितृमगिनी-
 भ्रातृसन्वय भस्य जीवस्य अनन्तवारं जात, अतः=अस्मादेतोः अत्र=परिव्रज्यायां प्रतिबन्धः=
 अन्तराय ना कल्प्य इति। सचक्रुवा नन्विकर्षनं उक्तम्—इं भ्रातृ ! यत् युष्माभि कथितम् तत् सर्वम्

मकार पोछे—भार्य ! माता और पिता का विरह-जनित दुःख कमी तक भी मुझे दुःखी कर रहा है तथा
 स्वप्न और परिजन भी इस शोक से मुक्त नहीं हा पाय हैं। इस शोक के प्रसंग पर संयम ग्रहण करने के
 अभिलाषी हो कर हम माता-पिता की मृत्यु के दुःखरूपी पात्र से मुक्त मेरे हृदय पर अपने वियोगजनित
 दुःखका नमक मत छिड़कौ, अर्थात् दुःखी का अधिक दुःख मत दो। हम प्राणों से भी अधिक मिय
 हो। तुम्हारे वियोग का दुःख हमारे लिये सब नहीं हो सकता।

त्वत् कर्षमान स्वामीने कथा-माता, पिता, बहन और भ्रातृ का सर्वत्र इस जीव के साथ अनन्तवार
 हुआ है। यत् एव प्रकृत्या ग्रहण करने में विघ्न न कीजिए।

यह सुनकर नन्विकर्षन पोछे—तुमने का कथा है सा अक्षरत्रः सत्य है। मगर मेरे अदुतोष-

विरहदुःख तो बहुत भारी हैवाने कतारी म्हु छे संसु दुःखभी शोअतुर छे स्वर्जने आने परिकरने पशु
 बहुत शोअनी वाचकीभांभी अलत यथा नशी. जेअ लालु शोअनां वाअके सुटी पठथा छे, तेभां वणी तसे सथभ
 देवानी अनिवाधा इशोबीने भातापिताना भुअने कारखे आबात पभेअ आशा केयां छपर तमाश विओजनां
 दुःख श्पी भीकुन अकाराये सभ्यात भगवा छनां दुःखी छु भने पधारे दुःखी न करथे। तसे आशा प्रालुभी
 पशु पधारे भने प्रिय छे। तमाश वियाअदु दुःख आभारे आटे अलत अछं पठथे ॥
 ल्यारे पक्ष भात भुअने कम्— अकेअ लक्षु। भाता-पिता आअं आने अछेनने। सवथ आ अछेने आनटी
 बार बसे छे आ सवथ आअं नवेअवे। नशी, आटे प्रमअवा (दीआ) देवानी आशा शुभ कार्भंभां अतशाव न
 नाअतां अनुशोअन आये।”

आ आंकीने नविकर्षने कथि— लक्षु ! तसे ले कहे छे। ते अक्षरत्रः सत्य छे—अनादान अत्य छे

अक्षरशः सत्यं=यथार्थम्, परन्तु मम आग्रहेण=अहुरोधेनापि युष्माभिः द्वे वर्षे=वर्षद्वयं यावत् गृहवासे अवश्यं वस्तव्यम्=वासः कर्तव्य इति ।

ततः खलु निश्चयज्ञानी= 'वर्षद्वयावधि मम संसारवासोऽवशिष्टोऽस्ति' इति अवधिज्ञानेन निश्चयज्ञानवान् भगवान् श्रीवीरः निजभ्रातुः नन्दिवर्धनस्य एतम्=इमं पूर्वोक्तम् अर्थं=विषयं श्रुत्वा=सामान्यतः श्रवणगोचरीकृत्य निश्चय=हृदि विशेषतोऽवधार्य एवम्=अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अयादीत्=यदि एवम् भवान् कथयति तदा द्वे वर्षे यावत्=वर्षद्वयपर्यन्तं गृहवासे वसामि, किन्तु-अद्यप्रयुति=अद्याऽऽरभ्य गृहे मन्निमित्तो=मदर्थः आरम्भः=ओदनादिपचनक्रिया समारम्भः=तद्द्विविशिष्टपचनक्रिया वा नो करणीयः, अहं सायुष्टर्या=मुनिजनवदाचरणेन स्थास्यामि=निवत्स्यामि । ततो नन्दिवर्धनो राजा तत्=श्रीवीरवचनं प्रतीच्छति=स्वीकरोति ।

आग्रह से भी आप को दो वर्ष तक गृहवास में अवश्य रहना चाहिए ।

तब निश्चयज्ञानी अर्थात् 'दो वर्ष तक मेरा संसार-वास शेष है' ऐसा अवधिज्ञान से जानने वाले भगवान् श्रीवीरने अपने भाई नन्दिवर्धन की इस बात को सुनकर तथा हृदय में विशेषरूप से धारण कर के इस प्रकार कहा—अगर आप ऐसा कहते हैं तो दो वर्ष तक गृहवास में रहता हूँ, किन्तु आज से घर में मेरे निश्चित आहारादि का पचन-पाचन-रूप आरंभ-समारंभ नहीं होना चाहिए । मुनियों जैसी ज्योती से निवास करूँगा । तब नन्दिवर्धन राजाने वीर भगवान् के वचनों को स्वीकार किया ।

पशु भारा अनुदरेध-आथइथी भारा इ. भने इणुवुं करवा पशु तभारे जे वर्षं संसारमां अवश्य भे'ची डाढवा जेधये. ”

निश्चयज्ञानी प्रभुके सानना प्रभावे जेधुं' के इणु जे वर्षं सुधी भारे संसारमां रहेवानुं' पाडी छे, त्यारे पोताना भाई नन्दिवर्धननी आ वातने पाछी न डेलतां इधयमां विशेषरूपे धारिने कथुं—“ वडिल भंधु । आपनी जे ज्येभ इच्छा छे तो जे वर्षं सुधी हुं' गृहवासमां तो रहथि, पशु आजथी धरमां भारा निमित्ते आकार विगेरेना पथन-पाथन इप आरल-समारंभ थवे। जेधये नडि. हुं' मुनिको जेची यथोथी निवास करथि, कानां वाडयोमां इश्यमान थती तेजरेआ जेवी प्रभुनी वाणी सांभाजी राज्ज नन्दिवर्धनने टाढक वणी अने जेटवेथी संतोष सानी प्रभुतां आ वयनेतोने। स्वीकार कथे।

ततः=नन्दिर्वचनस्य श्रीवीरोक्तस्वीकृतानन्तरं त्वच्छ्रमणो मगवान् महावीरः तत्र=तस्मिन्-शुश्रावसे
 यस्तु नित्यं=मविदिनम् क्रायोत्सर्गं कुर्वन् ब्रह्मचर्यं पालयन् स्नानं शरीरशोभां च वर्जयन्=स्पृशन् प्रासुक्येन
 क्षीयन्=निर्दिपेण भक्षनादिना शरीरयात्रां=शरीरस्थितिं निर्वहन्=सम्प्राप्यन् किञ्चिद्व्याने=धर्मध्यानं ध्यायन्=कुर्वन्
 मासमुनिव्रथा=मासमुनिव्रतचरणेन-या-उया=येन-तेन प्रकारेण एकं वर्षम् अग्राशासे=शुश्रावसे=उचसत्=

अविहन् ।म्०७४॥

मूषम्--तेन कालेन तेन समपणे लोपतिपदेनाम् अग्निसाराणं आसनाई चञ्चति । तए ग ते
 देवा मगभो निरुवमणामिपयां श्रीणिणा आमोगिय मगवभो अंविए भागमिय अमासे ठिवा मयवं इद
 माणा नमसमाया एव वयासी-जय जय मगवं ! मुग्धाहि लोगनाह ! सव्वनगनीवरत्तल्लपदयह्वाए एवयेरि
 पम्मविरिय, जे सव्वन्ओए सव्वपाणपूणीवसपणं खेमकरं आगमेसिमं च मरिस्सइ-चि । ज सयंजुइस्सवि
 मगवभो अभिण्णिलमभत्तव देवाण कइण तं वेत्ति देवाणं नीयक्कम् ।

तया नं समणे मगवं महावीरे सक्कच्छदानं दल्लं, तं जहा पुब्बं घराभो जाव जांम अदुसयसस्सारिय
 एणं कीदि एगदिवसण दइइ । एव एगग्गिम संवच्छरे विनि कोढीसयाइ अकुसीई कोढीओ भसीई सपसइस्साइ
 (३८८००००००) सुवण्णसुवाराणं मगवया दिष्वाइ । तए णं से नदिवदणे राया मगवओ अभिण्णिलमण
 मरोच्छ्वं करेइ ।

श्रीवीर मगवान् का कथन नन्दिर्वचन द्वारा स्वीकार कर लेने पर भ्रमण मगवान् महावीर
 शुश्रावसे में वसते हुए मविदिन क्रायोत्सर्ग करते हुए, ब्रह्मचर्य पालते हुए, स्नान एवं शरीरशोभा का
 त्याग करते हुए, निर्दोष अशन-यान आदि से शरीरयात्रा का निवार करते हुए मासमुनि के समान
 आचरण कर के जैसे-वैसे एक वर्ष तक शुश्रावसे में रहे । ॥ सू०७४ ॥

श्रीशारदाई नन्दिर्वचने प्रकृतपुत्र भ्रमणने इतीहास्त्वं, अमरु अत्रवान भट्टावीर सत्कारभां श्लेवा श्रुत्वा साधुवचनो
 कश्च बाणश इरेशेण क्रायोत्सर्गं कर्त्तुं, एकव्ययं च पठन् इत्थं शरीरशोभा वधारनारा साधनेन अने इमाने।
 त्याग कथो निर्दोष व्याहार-पात्री विदेशी शरीरने नीभावता. अप प्रभावि भर्भम्यान करत्वा भावमुनिव (मुनिनी
 भाववचनवत्) तेन व्यापारस्य कर्त्ता अत्रवानं चोक्तं नई तेन सत्कारभां पश्चात् मसु (सू०७४)

तयो णं समणस्स भगवब्बो महावीरस्स अभिणिक्खमणनिच्छय जाणेत्ता सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंवा भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिणो देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं परिवारेहिं परिखुडा सईयाहिं २ इइहीहिं समागया । तं समयं जहा कुसुमियं ऋणसंडं, सरयकाले जहा पउमसरो, पउमभरेणं जहा वा सिद्धयवणं, कण्णियारवणं, चंपयवणं कुसुमभरेणं सोहइ तथा गणतलं सुरगणेहिं सोहइ ॥मू०७५॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये लोकान्तिकदेवानां सपरिवाराणामासनानि चलन्ति । ततः खलु ते देवा भगवतो निष्क्रमणाभिप्रायमवधिनाऽऽभोगयित्वा भगवतोऽन्तिके आगत्याऽऽकारे स्थित्वा भगवन्तं वन्दमाना नमस्यन्तः एवमवादिषुः—जय जय भगवन् !, बुध्यस्व लोकनाथ !, सर्वजगज्जीवरक्षणदयार्थतयै प्रवर्तय धर्मतीर्थ—यत् सर्वलोके सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वानां क्षेमङ्करम् आगमिष्यद्भद्रं च भविष्यतीति । यत् स्वयंबुद्धस्यापि भगवतः अभिनिष्क्रमणार्थं देवानां कथनं तत् तेषां देवानां जीतकल्पः । क्तः खलु श्रमणो

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि । उस काल और उस समय में परिचार-समेत लोकान्तिक देवों के आसन चलित हुए । तब वे देव भगवान् के दीक्षा अंगीकार करने के अभिप्राय को अवधिज्ञान से जानकर भगवान् के समीप आये । आकाश में स्थित हो कर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—‘जय हो, जय हो भगवान् !, बोध प्राप्त करिये, हे तीन लोक के नाथ ! समस्त जगत् के जीवों की रक्षा और दया के लिए धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति कीजिए, जो सर्वलोक में सर्व प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्त्वों के लिए क्षेमंकर होगा, और भविष्य में कल्याणकर होगा । स्वयंबुद्ध भगवान् को भी प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिये देवोंका जो कथन है, वह उनका जीतरूप है—परम्परागत आचार है ।

भूतनो अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि. ते काले अने ते समये परिवारसहित सर्वं षोडाशतिक देवानां आसनो यक्षाद्यमान थयां. अवधिज्ञान सुकीने देवोञ्चे ज्येथुं’ तो प्रभु महावीरनी दीक्षालावना देअवाभां आवी.

आ आञ्जुतानी साथे ते देवो लगवाननी समीप आन्था. आकाशभां स्थिर रही लगवानने त्यां रहे रहे वडना नभस्कार कर्थां. त्थारआह देवो कडेवा आथा डे “लगवाननी जय हो ! लगवाननी विजय हो !. डे नाथ ! आप सांनना स्वाभी भनो ! समस्त जगतवासी एवेतु रक्षु अर्थे धर्मतीर्थनी स्थापना करो ! जेथी करीने सर्वषोडशभां सर्वप्राणी-भूत-एव-सत्त्वने माटे जे कांठ सुअअर अने कथाशुकारी होय ते प्रवतोवा ।” लगवान पीते तो गानी छे, पषु देवो आवीने प्रवन्था श्रेष्ठु करवावु लगवानने समभवे छे. ते तेभनो एतव्यवहार अेटडे परपरगत आधार छे.

टीका—‘तेजं कालेणं तेषं समए णं’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये=प्रथमवर्षे व्यतीते द्वितीयवर्षे प्रारब्धे लोकान्तिकदेवानां सपरिवाराणाम् आसनानि चलन्ति । ततः=आसनचलनानन्तरं खलु ते=लोकान्तिका देवाः, भगवतः=श्रीवीरप्रभोः निष्क्रमणाभिप्रायं=प्रव्रजयेच्छाम् अवधिना=अवधिज्ञानोपयोगेन भोगयित्वा=ज्ञात्वा भगवतः श्रीवीरप्रभोः, अन्तिके=निकटे आगम्य आकाशे स्थित्वा भगवन्तं श्रीवीरस्वामिनं वन्दमानाः नमस्यन्त एवं=वक्ष्यमाणं वचनम् अत्रादिपुः=उक्तवन्तः—हे भगवन् ! त्वं जय जय=सर्वोत्कर्षणं चारं चारं वर्तस्व, लोकनाथ ! =हे त्रिलोकीपते ! बुध्यस्व=बोधं प्राप्नुहि, तथा—सर्वजगज्जीवरक्षणदयार्थतयै=सर्वेषां जगद्धर्तिनां जीवानाम् एकेन्द्रियादीनां त्रियमाणानां रक्षणार्थं दयार्थं च धर्मतीर्थं प्रवर्षय । त्रिय-

टीका का अर्थ—‘तेजं कालेणं’ इत्यादि । उस काल और उस समय में अर्थात् प्रथम वर्ष वीर जाने पर और दूसरा वर्ष प्रारंभ होने पर सपरिवार लोकान्तिक देवों के आसन चलायमान हुए । आसनों के चलायमान होने के अनन्तर लोकान्तिक देव भगवान् की प्रव्रज्या की इच्छा को अवधिज्ञान से जानकर भगवान् के समीप उपस्थित हुए । आकाश में स्थित होकर भगवान् वीर प्रभु को वन्दना-नमस्कार करते हुए वे इस प्रकार बोले—प्रभो ! आप की जय हो, जय हो, (आप पुनः पुनः सर्वोत्कृष्ट होकर वर्ते) । हे त्रिलोकीनाथ ! आप बोध प्राप्त कीजिये, तथा जगत् के एकेन्द्रिय आदि सभी प्राणियों की रक्षा के लिए और दया के लिये धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति कीजिए । अर्थात् मरने वाले एकेन्द्रिय आदि प्राणियों की रक्षाके लिए

टीकानो अर्थ—तेज कालेणं इत्यादी न्यारे न्येष्ट अंधु नं द्विवर्धननी आसा अनुसार भगवाने स्वीकारेता ये वर्षना गृहावास हरस्थान ओक वर्षं तो वीती युक्रुयु अने भीज वर्षने आर ल थतां न परिवार सखितना लोकान्तिक देवानां आसनेो यलायमान थवा लाग्यां आ देवेो देवपण्यांमां होवा छता पणु वैराज्यवान अने उहासीन वृत्तिवाला होय छे. तेजोना स्थानो पणु निरादा अने ओकात नेवा होय छे. आ देवेो मोक्ष पथना निकट गाभी होय छे. तेजोनुं द्विब्यथवन पणु योगनी दृष्टिओ अनासकत नेवुं होय छे. केछ पणु भानवी संसारमाथी भडा अबिनिष्कमणु करे अगार वाञ्छना करे छे. न्यारे तेजोना पथादांमां तरत आवी जय छे. अने तुरत न तेनी पासे न्ह जोधाधायक वचनो स लणावी, संसारदयामांथी ते भडायुरुषने जगृत करे छे.

आनी भडान् व्यक्तितु सामर्थ्यं जेछ, धर्म प्रवृत्ति यलाववा तेमने विनंति पणु करे छे. कारणु हे जगतना एवेो आधि व्याधि अने उपाधिथी सणगी रखा छे, तेमना आ हुं जो भटाडवानी तीव्र भावना आ देवेोमां होय छे. आणेो लोक जणीजणी रह्यो छे, तेथी ओकेन्द्रियथी भाडी पंचेन्द्रिय सुधीनां एवेोनी रक्षा भाटे “(भा-छवो)

માત્રાનાં નીવાનાં રક્ષાકાર્યે 'મા હન મા હન' इति 'इत्यस्य इत्यस्य' इति च उपवेष्टं कुरु, इति भावः । यद् परमंतीय सर्वभूतोके तूत्सर्वभागयुक्तजीवसत्त्वानां-सर्वे ये प्राणाऽऽक्षिप्रिचतुरिन्द्रियाः, शूलाऽऽन्तःखः-वनस्पतयाः, जीवाऽऽश्लेन्द्रियाः सत्त्वाः-पृथिव्यप्लेजोवायवस्तोषाम् समस्तैरु-रूपस्याणकरम् आगमिष्यन्मृत्-मविव्यक्तकाले कल्याणकरं च मविव्यतीति । इत्ये यद् स्वयमुद्भवस्य-स्वर्गो ब्रह्मवर्तोऽपि भगवतः अभिनिक्रमणार्थं प्रप्रयाप्रवर्णार्थं लोकान्तिकानां देवानां भगवन्त मति फलयम्, तद् फयनं तेषां लोकान्तिकानां देवानां नीतस्त्वय-ऽऽजीवास्वयः कल्पः ।

? प्राणा द्वि-वि-चतुः प्रोक्ताः शूलास्तु तत्रतः सृष्टाः । जीवा पञ्चेन्द्रियाः प्रोक्ताः शेषाः सत्त्वा उदीरीताः ॥१॥

'मा हन, मा हन' अर्थात् 'मत् माता, मत् माता' ऐसा, तथा 'इत्या करो, कल्या करो' ऐसा उपदेश कीजिए । यह वनतीय समस्त लोक में अश्लेन्द्रिय प्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय रूप प्राणियों को, शूलों (वनस्पतियों) को, जीवों (पंचेन्द्रियों) को तथा सर्वों (पृथ्वीवाय, वायुकाय, तेजस्काय, वायुकाय) को कल्याणकारी है और मविव्य मं मी कल्याणकारी होगा ।

इस प्रकार स्वर्गोप को मातृ भगवान् को दीक्षा प्रारण करने के लिए लोकान्तिक देवों का जो कहना है सो उनका भीतकल्प (परंपरागत आचारमात्र) ही है ।

अ-कवेणु) कवेणुः नदि-कवेणुः नदि-इवा इरो-इवा इरो" अेवा कवेणु नथनेो वठे आ डोडोडोडि इवे, भडोडुडुडु आत्थाने अशुत इरे छे आ लोड तेभनेो डुव पर इराने लुडववान आगं छे अने ते भाअने अणुधरी, आवा अणुतु डड" इरे छे आ लोड इडत तेजोनेो रुडि पर परडनेो आआर छे

अणुतिये पेशार अलगतर्त इ आ अणुतना अणित्थ धनेने, डोडोडुडुडुडु डडडडं वापस्वा, आवी तिड" इरे। डडड डड छे, तेभअ 'डान' अे डडडनेो डुडअ विडोड छे अने डुडअ पायेो पणु छे, तेसु लणुतने इआपवा तेडु अतिपाडर इरावे छे अने तेभी अ वस्तीडानन्नी अणुडडडड तजोनी आरुत वडेवा भांठे छे. इरडोड अेड इरोड आड वाप सेना अणुडोडना धनेनेो डिडाल इरुत वडेवे इडोडे ते डडड, वणु अणुड अणुडोडो इरोड अेसी वाप डुडुी पडोड छे

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरः संवत्सरदानं=गार्मि रुदानं ददाति=करोति, तद्यथा=श्रयोदयात् पूर्वमा-
 रम्य यामम्=एकं महरं यावत्=एकमहरपर्यन्तं सुवर्णमुद्राणाम् अष्टशतसहस्राधिकाम्=अष्टशतसहस्रोत्तराम्=अष्टलक्षाधिकाम्
 एकां कोटिम् (१००००००) एकदिवसे=एहस्मिन् दिने ददाति । एवम्=प्रतिदिवसमष्टलक्षाधिककोटिपरि-
 मितसुवर्णमुद्रादानेन भगवता एहस्मिन् संवत्सरे सर्वत्रैकलजया सुवर्णमुद्राणां=दीनारणां त्रीणि कोटिशतानि
 अष्टाशीतिः कोटयः अशीतिः शतसहस्राणि च (३८८८०,०००) दत्तानि ।

ततः खलु स नन्दिवर्धनो राजा भगवतः अभिनिष्क्रमणमहोत्सवं=दीक्षामहोत्सवं करोति ।
 ततः खलु श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अभिनिष्क्रमणनिश्चयं=दीक्षानिश्चयं ज्ञात्वा शक्रमुखाः=
 शकादयः चतुष्पष्टिः इन्द्राः भवनपति=व्यन्तर-ज्यौतिषिह-विमानवासिनो देवाश्च स्वकैः स्वकैः=स्वैः स्वैः

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने वर्षीदान देना आरंभ किया । वह इस प्रकार-
 सूर्योदय के पहले से आरंभ करके एक महर-पर्यन्त एक करोड़ आठ लाख सुवर्णमुद्राएँ प्रतिदिन देते
 थे । इस प्रकार सबका जोड़ करने से एक वर्ष में तीन अरब, अठ्ठासी करोड़, अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ दीं ।

तत्पश्चात् नन्दिवर्धन राजाने भगवान् महावीर का दीक्षा-महोत्सव का प्रारम्भ किया ।
 तब श्रमण भगवान् महावीर के दीक्षा अंगीकार करने के निश्चय को जानकर शक्र आदि चौसठ
 इन्द्र, भवनपति, व्यन्तर, ज्यौतिषिक, विमानवासी देव तथा देवियाँ अपने-अपने परिचारों से युक्त तथा अपनी-

जेम लोको विवाह प्रसंगे अढक धन अर्थे छे. तेम वीक्षाना छिमायतीये, तेना मडोत्सवोने अण
 षाठमाथी उरवे छे. आ प्रथंसनीय पगडुं छे जगतने लात भारीने जे नीकणे छे. तेनुं अडुमान करवुं
 जेथजे. अने ते मडान पुइय छे, अने सुद्धि मागोमा आ अेक सुअ्य मार्ग छे. आना अतिरेक कथां विना,
 द्रव्य क्षेत्रे कण अने लाव प्रभाणे, तेनुं आथरथु करवुं जेडजे. आयेो अपूर्व प्रसंग डेअर् परम भाग्यशालीने ज
 लाधे छे, तेथी नंदीवर्धने, बागवानने वीक्षा मडोत्सव धामधुमथी उरवेथी.

बागवाननुं मडाबिनिष्क्रमथु अे डेअर् भामुदी नथी. रणे रगमा अने डेउ डेउडमां जेने वैरागथने रंग
 दागथे छे, जेने आ 'लाव' सिवाय अन्य डेअर् लवनथो, तेवी मडान व्यक्तितनां अबिनिष्क्रमथनी वात, अवधिसान
 द्वारा प्राप्त थता थोसड धन्द्रो, तेमनी सर्व सिद्धि संपत्ति साथे आववा दागथां, जेत जेतामां आयुजे आकाश

परिवारे=परिवर्तनेः परिहृत्वा=संबोधिताः सन्तः सर्वेति सर्वेति=स्वकीयाभिः स्वकीयाभिः अस्मिन्निमित्तं विमानादि सम्बन्धिभिः सह समागताः । तस्मिन् समये यथा=येन प्रकारेण कुमुमिर्ते=पुष्पितं वनपण्डं, तथा=इत्यस्माच्छे= शरच्छसमये यथा पक्षसरा=पक्षसरोवरः पक्षमरेण=पक्षसमूहेनः यथा वा=सिद्धार्यवर्तनं=सर्पवर्तनं, कर्णिकारवन्= दुमोत्पन्नं ' कूचम्पा ' इति स्थावृतस्य वनं, वन्यकृपन् वा कुमुमसमूहेन=पुष्पसमूहेन शोभते तथा=तेन प्रकारेण गगनवलम्बे=आश्वाश्रमण्डले सुरगणैः=देवतसमूहैः शोभते ॥ सू०७५॥

युष्म्—एष वं ते चउत्तडी वि इवा देवा य देवीभ्यो य वरपठभारिच्छरिसंखेर्हि सयसहस्सेर्हि तुरेर्हि तयवितययजुसिरेर्हि चउगिरेर्हि आउज्जेर्हि य वक्ष्मणेर्हि आज्ञगसपरि भट्टिज्मणेर्हि सन्नादिच्छुद्धियस्य निनाएण मण्य रवेणं मर्हप विर्यूरि मढया य विरयोच्छासेर्णं मर्ह वित्ययरनिपत्तयज्मणं करिउमारिमिस्तु, तंनहा— सके दर्शिते वत्राया कपिपुरागाऽनाम्नाविश्विचचित्तिय शारदशाराऽभूत्समयसिचं युगाहन्वयरजालविकृद् मापसोह, आत्वायभिञ्च पत्वायभिञ्च प्थमकृयमचिचित्त नाणाविहारयज्मणिमऊलसिरात्रिचित्त बाणावण्यपटा पडागपरिमिद्धियमसिहंरं मक्कट्टियसपायपीडमीरासणं एग मर्ह दुरिससहस्सचारिणि चंदप्पंरं सिचिय चिउज्जं, चिउज्जिषा नेणेण समणे मयवं महावीरे तेणेण उवागच्छं, उवागच्छिवा समण भगव महावीरं तिकसुणो आयाणिण=प्याशिनं कंरं, करिवा यदं नमसह वदिषा नर्ममिषा परिच्छियवुमुड्डाभरणलोमयवत्स्य भगवं वित्त्सपरं सिचियाए निसियावेरं ।

एष वं सबीसत्त्वा दोषि इंदा शार्दि पासेर्हि मणिरयणनर्यदंढार्हि चामरार्हि मत्तं वीर्यति ।

एष वं तं सिचिय पुब्ब पुब्बयरोपकूचा हरिसवसविसत्तयमाणश्चियया मयुस्ता उक्खंति, पच्छा अयुर्दिता सुर्दिता शार्दिता सुवण्णिदा य उक्खंति । एत्थ तं सिचियं पुब्बदिसाए सुर्दिता, दाशियाए दिसाए नाग्गिदा, पच्छिमदिसाए अयुर्कुमारिदा उक्खदिसाए मुत्तय्ज्जुमारिदा उक्खंति । सू०७६॥

अपनी विमान आदि विद्युति के साथ आये । उस समय जैसे पुष्पित वनपण्ड तथा शरच्छुद्ध में कमल-युक्त सरोवर अथवा सरसां का वन, कनेर का वन एवं धम्म्या का वन पुष्पों के समूह से शोभित होता है उसी प्रकार आकाशमंडल सुरसमूहों से शोभायमान हुआ ॥ सू०७५ ॥

शरच्छुद्ध जनेन=आश्रित कृत्वा उद्वेगारं यज्जु=अन्व(०७५) २५) २५) न उदी भा। आश्रिते ते वज्रते आश्रिताने। उद्वेगारं यज्जु अश्रितयन्तिय जनेन अश्रितयन्तिय कृत्वा (२५०७५)

छाया—ततः खलु ते चतुष्पष्टिरपीन्द्राः देवाश्च देव्यश्च वरपटहभेरीझल्लरीशङ्खेणु शतसहस्रेणु तूर्येणु ततविततघनशुषिरेषु चतुर्विधेष्वातोषेणु च चाद्यमानेषु आनर्तकशतेषु नर्त्यमानेषु सर्वदिव्यद्युटितगन्धनिनादेयु महता रवेण महत्या ऋद्धया महत्या विभूत्या महता च हृदयोल्यासेन महान्तं तीर्थकरनिष्क्रमणमहं कर्तुमारप्सत, तथा—शक्रो देवेन्द्रो देवराजः ऋरि-तुरगादिनानाविधचित्रचित्रितां हाराद्धंकारादिभूषणभूयिता मुक्ताफलमकरजाल-निवर्द्धमानशोभाप्र आढादनीयां प्रहादनीयां पद्मकृतभक्तिचित्रां नानाविधरत्नमणिमयूरशिशिवाचित्रिचां नानावर्ण-

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि। उस समय विशाल पटह (डोल), भेरी, झालर और शंख (आदि) बाजे बजने लगे। तत, वितत, घन और शुषिर—इस प्रकार चार तरह के वाद्य बजने लगे। सैकड़ों श्रेणु नचैया नाचने लगे। समस्त दिव्य वाजों की ध्वनि होने लगी। चौसठ इन्द्रोंने, देवोंने और देवियोंने महती ऋद्धि, महती विभूति और महान् हृदयोल्यास के साथ भगवान का महान् दीक्षामहोत्सव मनाना आरंभ किया। वह इस प्रकार—

शक्र देवेन्द्र देवराज ने चन्द्रप्रभा नामक एक बड़ी शिबिका (पालकी) की विकुर्षणा की। वह पालकी हाथी, घोडा आदि अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित थी। द्वार और अर्धद्वार आदि आभूषणों से आभूषित थी मोतियों के समूह के गवास उसकी शोभा बढा रहे थे। वह आह्लाद और विशिष्ट आह्लाद उत्पन्न करने वाली थी। कमलों द्वारा की हुई रचना से अद्भुत थी। अनेक प्रकार के

भूषणों अर्थः—‘तृष्णं’, धृत्यादि. ते सभये, विशाण डोल, खेरी, आलर, अने शंभ आदि वाज्य वाज्य वाज्या तत्र वितत घन अने शुषिर आदि सार प्रकारनां वाज्ये वाद्ययंत्रो—वाज्य वाज्यवा वाज्यां. से’कडे श्रेष्ठ गत’के नाचवा वाज्यां. समस्त दिव्य लोकना वाज्यंत्रो वाज्यवा वाज्यां. चोसठ धन्द्रो—देवो अने देवीज्योञ्जे मसान्ऋद्धि-मसान् विभूत, अने महान् हृदयोल्यास साथे, तीर्थ’करनेो दीक्षा मडोत्सव उज्ववयानो आरंभ कयो. आ प्रसंगे केवा रीते उज्ववाथे तेनुं वषुंन आ रधु.

यकेन्द्रे चंद्रप्रभा नामनी जेक मोटी शिबिका (पावणी) तैयार करी आ पावणी वैकिय शक्तिद्वारा भनाववाभां आवी हती तेभा हाथी—घोडा—विगेरेना अनेक प्रकारना चित्रो वडे चित्रतरवाभां आवी हती. तेने हासतोरथी अर्थ यद्रकार विगेरे आलूषणोद्वारा सुशोभित करवाभां आवी हती. मोतीयोना गोभलाञ्जे तेनी शोभाभां वृद्धि करी रखा हतां. आ पावणी उत्तम प्रकारने आनंद उत्पन्न करवावाणी हती कभणोवडे करवाभां आवेही रयनाथी ते अद्भुत वाजती हती. अनेक प्रकारनां मडि अने रत्नोना डिस्कोथी ते चित्र विचित्र भासती हती. तेनी उपरनुं

पलापताकापरिमिडिताशिल्वरां मरुत्स्यितसपादपीठसिंहासनाम् एकां महतीं पुरपसहस्रनाहिनीं वन्द्यमयां शिविकां
 विक्रोति, चिकुत्य यत्रैव श्रमणो मगवान् महावीरः, तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य श्रमणं मगवन्तं महावीरं
 प्रिकृत आदक्षिण-प्रदक्षिणं करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा शरितिवहुमुत्प्यामरणसौं
 मन्वन्न मगवन्तं तीर्थकरं शिविकायां निपाद्यति ।

ततः सल्ल शक्रेशानौ द्रावपीन्द्रौ द्वयोः पार्श्वयोर्मणिरत्नलसितवस्त्रैश्चामरैः मगवन्तं चीनयतः ।

ततः सल्ल तां शिविकां पूर्वं पुम्भितरोमकृपा हर्षवशक्सिर्षद्वया मनुष्या उद्वबन्ति, पश्चात् घुरेन्द्रौ
 रत्नां और मभियों की किरणों से चित्रविचित्र गी । उसका ऊपरी शिखर नाना रंगों के घंटाघों और
 पताकाघोंसे मढिठ था । उसके मध्य में पादपीठ सशिव सिंहासन रक्ता था । एक हजार पुरुषों से बान
 करने (उठार्ग जाने) योग्य थी ।

इस पालकी की विकुर्षणा फरके नहीं श्रमण भगवान महावीर थे, यहीं (शुक) आगे । आफर
 तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणपूर्वक श्रमण मगवान महावीर को वन्दना की, नमस्कार कीया । वन्दना-नमस्कार
 करके, बहुमूल्य सामाण और सौम यन्न धारण किये हुए मगवान तीर्थकर को शिविका में विटलान्ये ।

तब सौर्यमं और ईशान-दीनों इन्द्र दानों बगलों में (स्वहे होकर) मणियों और रत्नों से जड़े हुए
 रंग वाले चामर मगवान पर घीजने लगे ।

तस शिविका को पारलेतो पुम्भक्ति रोमहृप वाले और हर्ष से विकसित हृदय वाले मनुष्यों ने
 शिभर निविध रचना बट करने पदाशब्दो वहे शकुन्तारवामां आणु कटु तेनी भवेभमां पादपीठ अदितु अके
 सिंहासन भुम्भामां आणु कटु आ पादपीठो उपादवा भादे अके उकार पुम्भेनी अदर पठे तेवी भादे
 वरणादर हती

आ पादपीठो तैचार करीने अथा श्रमणु भजवान भकावीर पीशकत्वा क्त्वा त्यां शकन्त्र पधामो, अने
 आदक्षिण-प्रदक्षिण पूरुं अश्रमणु भजवान भकावीरतं त्रयुवार वदना-नमस्कार करी वसुं भुत्प्यान अने
 आप वरन-भाग्य आणारवो अने वओपी अन्व शयेवा तिभेकर भजवानने तेभा जेसादका.
 सौभमं अने ईशान देवदोहाना सौभमेन्द्र अने ईशानेन्द्र देवोअि पदभे उभा रही भवि अने रत्नोकी
 अदक्षिण इवाका चामर भजवान उपर वीजवा आणु

आ पादपीठो सौ प्रथम शमशेम लेनां प्रमुम्भिकत क्त्वा उ लेद केतु केपथी निभसित वसु उ तेवा

असुरेन्द्रो नागेन्द्रो सुपर्णेन्द्रो च उदारोऽहन्ति । तत्र ता शिविकां पूर्वदिशि सुरेन्द्राः, दक्षिणस्या दिशि नागेन्द्रो, पश्चिमदिशि अमुरकुमारेन्द्रो, उत्तरदिशि सुवर्णकुमारेन्द्रो उद्वहन्ति ॥ सू०७६ ॥

टीका—‘तए णं ते चउसहीवि’ इत्यादि—ततः=आगमनानन्तरं खलु ते समागताः चतुष्पष्टिरपि इन्द्राः देवाश्च देव्यश्च वरपटहभेरीशछरीशङ्गेषु, तत्र-रपटहाः-चराः=विशालाः पटहाः=‘ढोल’ इति भाषामसिद्धाः भेर्यः=दुन्दुभयः=शङ्खाश्च प्रसिद्धास्तेषु तथा-शतसहस्रेषु=लक्षसंख्येषु तूर्येषु=मृदङ्गादिषु, तत्रविततग्रनशुपिरेषु-ततं=त्रीणादिकं, विततं=पटहादिकं धनं=कास्यतालादिकं, शुपिरं=त्रिद्वान्वितवंशादिकम् । उक्तंच—

वहन किया; वाद में सुरेन्द्र, असुरेन्द्र नागेन्द्र और सुपर्णेन्द्रों ने बहन किया । उनमें से उस शिविका में पूर्वदिशा में सुरेन्द्र लगे, दक्षिणदिशा में नागेन्द्र लगे, पश्चिमदिशा में अमुरकुमारेन्द्र और उत्तर दिशा में सुवर्ण कुमारेन्द्र लगे ॥ सू०७६ ॥

टीका का अर्थ—आने के पश्चात् उन चौंसठ इन्द्रों ने, देवों ने और देवियों ने भगवान् महावीर का दीक्षा-महोत्सव मनाना आरंभ किया । बड़े-बड़े ढोल बजने लगे, भेरियाँ बजने लगीं ‘झालरो और शंखों की ध्वनि होने लगी । लालों मृदंग आदि वाद्य बजने लगे । त्रीणा आदि तत, पटह आदि वितत, कासे के ताल आदि धन और वांसुरी आदि शुपिर; इस प्रकार चार प्रकार के वाद्य बज उठे । कहा भी है—

भद्रुभ्योऽप्ये उपाडी त्पारथाह तेने वडन करवाभा सुरेन्द्र असुरेन्द्र. नागेन्द्र अने सुपर्णेन्द्र तेभनी साथे न्नेउया. या पावभीना यार इथा यार दिथाऽप्ये इता. पूर्वदिथाने इथा सुरेन्द्र पडथे इतो, दक्षिणदिथाने नागेन्द्रोऽप्ये उकाऽप्ये इतो, पश्चिमदिथाने इथा असुरकुमारेन्द्रना इथभा इतो न्यारे उत्तरदिथाने इथा सुवर्णकुमारेन्द्रना इथभा इतो. (सू० ७६)

टीकाનો अर्थ—आव्या पछी ते येसठ इन्द्रोऽप्ये देवोऽप्ये अने देवीऽप्ये भगवान् महावीरनो दीक्षा-महोत्सव उन्नवानी आरंभ कथे. मोटां मोटां ढोल वागवां लाग्या, लेरियोना नाद थवा लाग्ये, न्ने अलारे अने शंखोना नाद थवा लाग्ये. मृदंग आदि, लाजो वालोत्रो वागवां लाग्यां. वीणा आदि तत (तंतु वाद्य). पटह विगेरे वितत, कासाना ताद आदि धन अने वांसुरी विगेरे शुपिर-अप्ये प्रभाषुनां यार प्रकारनां वाद्य वागवां लाग्यां. इथ पथु छि.—

“तुं वसादिकं ज्ञेयं, पितृं पट्टादिकम् ।

वर्तं तु क्रांस्तवासादि, वञ्चादि भृषिरं मतम् ॥१॥ इति ।

रत्येतेषु चतुर्विधेषु=चतुर्भूतयोः आतोषेषु च वाधमानेषु तथा=आनतं कृत्वा येषु=समीचीनतर्ककृतयोः
नर्त्यमानेषु=नाट्यमानेषु, सर्वभूतितृहृद्यनिनादेन=सकलबाधव्यन्निनादेन, महता=दीर्घेण रवेण=कृत्वेन मात्या
कृद्गण=सम्पत्त्या मात्या विभूत्या=मैत्रेण महता इदयोच्छासेन=विद्योत्सारेण, महान्त=शूलन्तं दीर्घकर-
निष्कमजमम=दीर्घकृद्दीक्षामातोत्सवं कृत्यम् आरपयत=आरम्भं कृतवन्तः, तथाया=शुक्रो देवेन्द्रो देवराजः
शिविच्छां=‘पासकी’ इति मखिन्दां, विक्रोतीस्युरेव सम्बन्धः । तुष क्रीदतीं शिविकायाम् ? इत्याह—कश्चिदु

“तुं वीणादीकं ज्ञेयं, पितृं पट्टादिकम् ।

पत्नं तु क्रांस्तवासादि, वञ्चादि भृषिरं मतम् ॥१॥ इति ।

वीणा आदि को तुत, पट्टर (डोल) आदि को पितृ, क्रांसे के ताल आदि को घन और
चाँसुपी आदि को भृषिर माना गया है ॥ १ ॥

उपम-उपम सैकड़ों नर्चक नाट्य करने लगे। समस्त राजों के सख्यों की ध्वनि से, महान्
सूत्रों से, महती सम्पत्ति से, महती विभूति से तथा महान् शक्ति उच्छास से समीचे वीर्यकर का महान्
वीर्यामोस्तन करना आरंभ किया। पर इस प्रकार—

“तुं वीणादिकं ज्ञेयं, पितृं पट्टादिकम् ।

पत्नं तु क्रांस्तवासादि, वञ्चादि भृषिरं मतम् ॥ १ ॥ इति

वीणा आदिने तत्, पट्टक (डोल) आदिने पितृ, क्रांस्तव ताल आदिने
घन आने न शरी आदिने भृषिर मानवार्थं आन्वयं से ॥१॥

संज्ञोनी स अन्वयं उच्यते न तन्मि नाट्य इत्येव आन्वयं अस्ति । अत्र नाट्य वाद्ययंत्राणां संज्ञोनां नाट्यी, अत्रान
संज्ञोनी, विपुल संपत्ति, विपुल विभूतिश्च तथा अतिशय कश्चि क उच्छासश्च अन्वयि तीक्ष्णः अत्रान टीक्ष्ण-
अत्र उच्यते देवराजः विक्रोतीस्युरेव सम्बन्धः । तुष क्रीदतीं शिविकायाम् ? इत्याह—कश्चिदु

—कश्चिदु वीणादीकं ज्ञेयं, पितृं पट्टादिकम् ।

गादिनानाविचित्रचित्रितां=इत्यप्यादि बहुप्रकारकचित्रसहितां, हाराद्धंकारादिभूषणभूषिताम्, तत्र-हारः=अष्टा-
 दशसरिकः, अर्द्धंकारः=नवसरिकस्तदादिभिर्भूषणैः भूषितां=शोभिताम्, मुक्ताफल-प्रकर-मुक्ताफल-प्रकार-जालविवर्धमानशोभां
 मुक्ताफलानि-मौक्तिकानि, तेषां प्रकारः-समूहाः, तेषां यानि जालानि=वासास्तैः विवर्धमाना=वृद्धि प्राप्नुवती
 शोभा यस्यास्ताम्, तथा-आलदनीयाम्=विताजादिनीम् प्रहादनीयाम्=प्ररूपेण मनःप्रसादिनीम्, इहोभयत्र
 बाहुल्यकार् कर्त्तरि अनीयप्रत्ययः, तथा-यमकृतमक्तिचित्राम्-यैः=रूपैः कृता=विरचिता या भक्तिः=रचना
 तथा चित्राम्=प्रदृशुवा, तथा-नानाविधरत्नमणिमयुत्वशिखात्रिचित्राम्-नानाविधाः=अनेकरूपकाराः ये रत्नमणयः-
 रत्नानि=कैकेतनादीनि, मणयो=वैडूर्यादयः, तेषां ये मयूखाः=क्रिस्ताः, तेषां या जिखा=दीप्तिः, तथा विचित्राम्=
 विचित्रवर्णाम्, तथा-नानावर्णगण्टापताकारिमण्डिताग्रशिखराम्-नानावर्णाः=अनेकवर्णा या वण्टाः पताकाश्च,
 ताभिः परिमण्डितं=मुशोभितम् अग्रशिखरं=शिखराग्रभागो यस्यास्ताम्, मध्यस्थितसपादपीठसिंहासनं-मध्यस्थितं
 सपादपीठं=पादपीठसहितं सिंहासनं यस्यास्ताम्-एवाद्दशीम् एकां महतीं पुरुषसहस्रवाहिनीं=सहस्रसंख्यपुरुषरुपवहनीयाम्,
 इह बाहुल्यकार् कर्मणि णिनिप्रत्ययः, चन्द्रप्रभा-तन्नाम्नीं शिखिकां विस्तोति=वैक्रियस्यक्त्योत्पादयति, विकृत्य=

निर्माण किया। वह पालकी कैसी थी, सो कहते हैं-वायी घोड़े आदि के बहुत प्रकार के चित्रों से युक्त
 थी। हार (अष्टादह लड़ों का), अर्द्धंकार (नी लड़ों का) आदि भूषणों से भूषित थी। मोतियों के समूहों
 के जालों (गवाशों) से उसनी शोभा बढ़ रही थी। चित्र में आनन्द उत्पन्न करने वाली और अविद्य
 मानसिक आह्लाद उत्पन्न करने वाली थी। कमलों द्वारा की गई रचना से अनुपम थी। अनेक प्रकार के
 कर्केतन आदि रत्नों तथा वैडूर्य आदि मणियों की क्रियाओं की दीप्ति से जगमगा रही थी। विक्रिय रंगों के
 घंटाओं और पताकाओं से उसके शिखर का अग्रभाग सुशोभित था। उसके नीचे में पादपीठ सहित
 सिंहासन रखवा था। इस प्रकार की एक बड़ी हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य चन्द्रप्रभा नाम की

पादपीठेवी देवी ते कडे छे-ते हाथी, घोडा आदि धव्यां प्रकारनां प्रतीकोपगणी छती. अक्षरसरोरु छार आर्द्धंकार
 नवसरोरु छार आदि आभूषणोथी शोभायमान छती. मोतियोना समूहोथी तेना गोशोनी शोभा पूष वृद्धि यामती
 छती. चित्तमां आनंद उत्पन्न करनारी अने अतिगुण मानसिक आह्लाद उत्पन्न करनारी छती. कमलो वडे करवामां
 आवेल रचना वडे ते अनुपम लागती छती. अनेक प्रकारना कर्केतन, आदि रत्नो तथा वैडूर्य आदि मणीओनां
 क्रियोनां तेजथी अभमगी रही छती. विविध रंगना घंट अने पताकाओथी तेना शिखरनो अग्रभाग सुशोभित छतो.
 तेनी वन्धे पादपीठ साथेनुं सिंहासन गोशयेछं छतुं. आवी ओक छतर पुरुषो वडे उथकी गथाय तेवी चन्द्रप्रभा

वक्रिप्रवृत्तयोत्साव यत्रैव=परिमन्त्रेन स्थाने श्रमयो मगवान् महावीरः, तत्रैव=व्यस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छति,
 उपागम्य श्रमयं मयवन्तं महावीरं विक्रान्तः=चारणयम् आदक्षिममदक्षिण करोति, कृत्वा भीवीरं कन्दते
 नमस्पति, स्मिन्त्वा नमस्तित्वा परिश्रितबुद्धयुस्यामरणसौमहृद्वरं=चारितमरणसौमहृद्वरं, मगवन्तं सीर्यकरं
 शिषिद्यायां निपाद्यति=उपश्लेषयति ।

उतः सलु वक्रेशानो=वक्र शैथानवेगौ ह्रावपि=उमानपि इन्द्रौ मगवतो इयो=उमयोः दक्षिणपामपाशयोः=
 दक्षिणापामममयोः मभिरत्मलक्षितद्वयैः=संसन्ममभिरत्मलपष्टिकैः, चामरैः मगवन्तं=भीवीरस्त्वामिन बीजयतः ।
 उतः सलु वक्रेशानो=भीवीरगपिष्ठितां शिषिद्यां सर्वतः पूर्व मनुष्याः युक्तवितरोमाश्रिताः, तथा इत्यन्तपि
 सर्वदुःखा=मानन्दोच्छ्रितद्वयाः सन्तः उपवसन्ति, यथाव-सुरेन्द्रा=वैमानिकेन्द्रा सौषर्मोद्वय, अमुद्रकुमारेल्लौ, चमर
 शिषिका वैकिपष्टकि से उत्पन्न की ।

शिषिका की विक्रिया करके वक्रेशानो मिस जगद श्रमय मगवान् महावीर वे, उसी जगद आये।
 आकर श्रमय मगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण मदक्षिण पूर्वक कन्दता की, नमस्कार किया। कन्दना-
 नमस्कार करके मरामुत्पयान सौम यल्लों को चारण किये हुए मगवान् तोर्यकर को शिषिका में पिठलाये।
 उत्पयान् वक्र और शैथान-पर दोनों इन्द्र मगवान् के दारिमैवाये पार्श्व-मग में (सक्रे होकर)
 मयियों और रत्नों के ढलों वाले चामर मगवान् भीवीर स्वामी पर चीनने सगे।
 उत उच्चरित इत्य सके मनुष्यों ने उठाया। बाद में वैमानिकों के इन्द्र, सीर्यम, चमर और बलि नामक असुरेन्द्र,

माभन्ती शिपी शिषिन्म वैकिप यन्त्रिधी सकेन्द्रे जन्वन्ती।
 (शिषिन्म तथा इरीने सकेन्द्र-रथां अत्रयान महावीर बीराजयान कदा त्वां पथाथो आवीने श्रमयु अत्रयान
 महाभूयवयान सौम यन्त्रिधी आरव्हीने प्रदक्षिणा इरीने वन्दता इरी, नमस्कार इथा, वन्दना-नमस्कार इरीने अमयु अत्रयान
 तथा वक्र शक्र जने पुथयान जे जने उन्त्री अत्रयानने अमयु-धले पठजे उवा इकीने अमयुत्प तथा
 उत उच्चरित इत्यपयान अमयु महावीर उपर दक्षिण वायाम् ।
 त्वां वक्र शक्र इरीने अत्रयान कदा ते पाठयिने की प्रथम शिषिन्म जने कर्त्तने काश्वि
 माभन्ती शिपी शिषिन्म वैकिप यन्त्रिधी सकेन्द्रे जन्वन्ती। त्वापयान वैमानिकानां उन्त्री अत्रयान जने बलि नामक असुरेन्द्र,

बलीन्द्रौ, नागकुमारेन्द्रौ-धरण भूतानन्देन्द्रौ, सुपर्णकुमारेन्द्रौ वेणुदेववेणुदालिनामानी च, एते पद् भवनपतीन्द्राः, तेऽमी क्रमेण उद्भवन्ति। तत्र-शिविकासुदुवहस्तु सुरेन्द्रा-सुरकुमारेन्द्र-नागकुमारेन्द्र-सुपर्णकुमारेन्द्रेषु मध्ये सुराः तां=श्रीवीराधिष्ठितां शिविकां पूर्वदिशि=पूर्वदिग्भागावच्छेदेनोद्भवन्तीत्युत्तरेण सम्बन्धः, नागकुमारेन्द्रौ-धरणभूतानन्देन्द्रौ, दक्षिणस्यां दिशि=दक्षिणदिग्भागावच्छेदेन तां शिविकासुदुवहतः, असुरकुमारेन्द्रौ-चमरवलीन्द्रौ अपरदिशि=पश्चिमदिग्भागावच्छेदेन तामुद्भवतः, सुपर्णकुमारेन्द्रौ-वेणुदेव-वेणुदालिनामानी उत्तरदिशि=उत्तरदिग्भागावच्छेदेनोद्भवतः ॥ सू०७६ ॥

मूलम्-तए णं ते मणुया सुरिदा असुरकुमारिदा णागकुमारिदा सुवणकुमारिदा य तं सिबिचं उव्वहमाणा उत्तरखचियकुंडपुरसंनिवेशस्स मब्धमज्जेण निग्गच्छति निग्गच्छित्ता जेणेव गायसंठे उज्जाणे तेणेव उवा गच्छंति, उवागच्छित्ता ईसिरियणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमिभागेणं सणियं पुरिससहस्सवाहिणि चंदप्पहं सिवियं ठवेंति। तए णं समणे भगवं महावीरे ताओ सिवियाओ सणियं२ पच्चोयइ, पच्चोयरित्ता सीहासणवरे पुव्वाभिमुदे संनिसण्णे। तओ पच्छा उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हारद्धाराइयं सव्वालंकारं ओमुयइ।

तए णं वेसमणेदेवे जुंहुवायपडिए ससणस्स भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणे सेयवत्थे आभरणा-लंकारां पडिच्छइ ॥ सू०७७ ॥

धरण और भूतानन्द, नामक नागकुमारेन्द्र, वेणुदेव और वेणुदालि नामक सुपर्णकुमारेन्द्र-ये छह भवनपतियों के इन्द्र क्रमशः बहन करने लगे। शिविका को बहन करने वाले सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों, नागकुमारेन्द्रों तथा सुपर्णकुमारेन्द्रों में से सुरेन्द्र सौधर्मोंदि उस वीराधिष्ठित शिविका को पूर्व दिशा की तरफ से बहन किये, भूतानन्द नामक नागकुमारेन्द्रो पश्चिम दिशा की तरफ से, धरण और असुरेन्द्र चमर वलि दक्षिण की तरफ से बहन किये और वेणुदेव तथा वेणुदालि नामक दोनों सुपर्णकुमारेन्द्र उत्तर की ओर से ॥ सू०७६ ॥

अने भूतानंद नामका नागकुमारेन्द्र, वेणुदेव अने वेणुदालि नामका सुपर्णकुमारेन्द्र-अये छ भवनपतियोनां धन्द्र-कुंभशः पडव करवा वाया. पावणीने उपासनाए सुरेन्द्रो, असुरेन्द्रो नागकुमारेन्द्रो, तथा सुपर्णकुमारेन्द्रोभांथी सुरेन्द्रे प्रभुनी ते पावणीने पूर्व दिशा तरक्षथी उपाडी नागकुमारेन्द्रे पश्चिम दिशानी तरक्षथी, धरथु अने भूतानंद नामना असुरकुमारेन्द्र दक्षिण तरक्षथी अने वेणुदेव तथा वेणुदालि नामका अने सुपर्णकुमारेन्द्रे उत्तरनी तरक्षथी प्रभुनी पावणी उपाडी ॥ ७६ ॥

छाया—उतः त्वत्वे मनुजाः सुरेन्द्राः समुद्रकुमारेन्द्रौ नागकुमारेन्द्रौ सुरर्षकुमारेन्द्रौ च तां शिविका
 मनुष्यान्तः उतासत्रियिकुडपुरासनिवेश्य मय्यमरयेन निर्गच्छति निर्गत्य यत्रैव श्रातपञ्चमुद्यत्तं तत्रैव उपागच्छन्ति,
 उपागस्य पितृनिमगणम् असृष्टे यूमिभागे इतः इतः पुरुरसास्रत्वारिणीं चन्द्रप्रभां शिविकां स्थापयन्ति।
 ततः तत्तु श्रमणौ मगवान् महावीरः तस्याः शिविकायाः इतः इतः मय्यवतरति, मय्यवतीर्य सिंहासनवरे
 पृथग्विद्युत्तं संनिपठ्यः। ततः पश्चात् मगवान् उचरत्तौस्तस्ये दिग्भागे उपागच्छति, उपागस्य शाराईशारादिकं
 सर्वान्यङ्कारान्यमुञ्चति।

उतः तत्तु वैश्रवणो देवो जन्तुपातं पवितः श्रमणस्य मगवतो महावीरस्य हंसलक्षणो श्वेतवस्त्रे
 आभाषणान्यङ्कारान् प्रवीच्छति ॥ मृ०७७ ॥

मूत्र का अर्थ—'तप क' इत्यादि—तपश्चात् वे मनुष्य, सुरेन्द्र, दोनों समुद्रेन्द्र, दोनों नागकुमारेन्द्र
 और दोनों सुरर्षकुमारेन्द्र उक्त शिविका को चान करते हुए उचरत्तत्रियिकुडपुर संनिवेश्य के बीचोंबीच
 से निकले। निष्ठवन्त जहाँ श्रात-पञ्च उपाग या वही पहुँच कर उन्तोंने एक शाय से कुछ कम परती
 के ऊपर पीरे-पीरे पुरुरसास्रत्वारिणी चन्द्रप्रभा शिविका को स्थापित किया। तब श्रमण मगवान् महावीर
 तप शिविका से पीरे-पीरे नीचे उतरे। उतर कर भेठ सिंहासन पर पहुँच कर उसके चिराजे।
 तपश्चात् मगवान् उ सर्वे दिग्भा-इतिहास कोण में पवारे और पवार कर शार, अर्थात् भादि सब
 यर्मकाँती को उतारने लगे। तब वैश्रवणदेव, जैसे कोई जन्तु उड़ता हुआ आपका हो-संसा आ पहुँचते हैं

मूत्रनेत्रो अथ—'तपसे' इत्यादि. तपश्चात् मनुष्य-सुरेन्द्रो भी ब्रह्मण्डली प्रकृति आ पाठ्यी, उत्तर अत्रिय
 इत्युर अत्रियेथनी अथमंभीषी नीत्यी तथा 'सातपथ' इत्यादि उक्त त्वां ते पाठ्यी पद्योत्थी. पद्योत्थया पद्यी धरतीभी
 अथमंभीषी अथमंभीषी, आ पाठ्यीने स्थापित इत्यां आनी. आ पाठ्यीने नाम 'चन्द्रप्रभा' इत्यु
 अथ सभ्यीने निर्माणया.

तथा वी, अथवान् इतिहास पद्युभां पद्युभां अथार सेरा, नव सेरा कीर आदि उक्त अथशारा अने आक
 पद्योने उपागस्य आनी. ते अथने वैश्रवणदेवे, उक्त जन्तु अथक आनी पद्योने अथशारा अने आक
 अथशारा अने आक

टीका—' तए णं ते मणुया ' इत्यादि—ततः खलु ते=पूर्वोक्ताः मनुजाः सुरेन्द्राः असुरकुमारैन्द्रौ नागकुमारैन्द्रौ सुपर्णकुमारैन्द्रौ च तां=श्रीवीरार्चिष्ठितां शिविकां उद्वहन्ताः=स्कन्धोपरि धारयन्तः—स्थापयन्तः उत्तरक्षत्रियकुण्डपुरनगरस्य मध्यमध्येन निर्गच्छन्ति=निःसरन्ति, निर्गत्य=निःसृत्य यत्रैव=तस्मिन्नेव स्थाने शतषड्मू-तदाख्यम् उद्यानम्-अस्ति तत्रैव=तस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छन्ति, उपागम्य-ईषद्विप्रमाणम्=इस्त-प्रमाणात् किञ्चिन्नूतं यथास्यात्तथा तथा शिविकया 'अच्छोत्पेण'-अस्पृष्टे=असंश्लेषे भूमिभागे=पृथ्वीभागे सति शनैः शनैः=मन्दं मन्दं पुरुषसहस्रवाहिनीं तां चन्द्रप्रभां शिविकां स्थापयन्ति, ततः=शिविकास्थापनानन्तरं खलु श्रमणो भगवान् महावीरः तस्याः शिविकायां=शिविकामध्यात् शनैः शनैः प्रत्यवतरति, प्रत्यवतीर्य सिंहासनवरे-श्रेष्ठसिंहासने पूर्वाभिमुखः सन् सन्निषण्णः=उपपिष्टः। तत् पश्चात् भगवान्=श्रीवीरप्रभु उत्तर-

और भगवान् के आभरणों तथा थलंकारों को हंस के समान उजले वस्त्र में ले लिये ॥ सू.०७७ ॥

टीका का अर्थ—तत्राश्चात् वे मनुष्य, सुरेन्द्र, दोनों असुरकुमारैन्द्र, दोनों नागकुमारैन्द्र, एवं दोनों सुपर्णकुमारैन्द्र श्रीवीर भगवान् द्वारा आश्रित पालकी को वहन करते-कंधों पर धारण करते हुए उत्तरक्षत्रियकुण्डपुर नगर के बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर जहाँ ज्ञातखण्ड नामक उद्यान था, वहीं आये। आकरके एक हाथ से कुछ कम ऊपर-अधर में, धीरे-धीरे, उस पुरुषसहस्रवाहिनी (हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य) चन्द्रप्रभा पालकी को उठराया। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर उस शिविका में से धीरे-धीरे उतरे। उतर कर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा में मुख करके विराजमान हुए।

आश्रयणोने हंसनी पांथ सभान सद्देह भास्ता नेवा उवणा वस्त्रभां जीवी वीथां. (धू०७७)

टीकानो अर्थ—प्रभुनी पादधीने उपाडवी जे येषु जेक अडोभाग छि; जेम भानी देव-भुण्यो ह्यो-भन्त भनी तेने पोताना भवे उथकता हता ते बारे वजनवाणी पादधीने, पोतानी कांध उपर वधने, शङ्करना मध्य भागभांथी सरधस इये बर्ध जता हता ते वथतनुं हस्य अनुपम अने अदौकिक हतुं. पादधीने त्हांना 'ज्ञातखंड' नामना उद्यानमा वध जवभां आवी.

भगवान तो स्वयंप्रभु हतां; तेथी तेभने केह गुरुनी सभ्धिपे दीक्षा लेवानी बइर न हती, तेथी पोते भते पादधीभांथी नीथे उतरी पूर्व दिशाना मुखे रहेवां सिंहासन उपर भेठी.

पीरस्ये=उत्तापुर्णोन्तराखे दिग्भासे=ईशानकोणे उपागच्छति, उपागम्य इतार्द्धशारादिकम् सर्वानङ्कारम्
अभ्युपदि=धनतारापति ।

ततः सत्यु वैभ्रजो देवः जन्तुपातं पतितः-जन्तुरिष पतितः=साहासाऽऽगतः सन् ईसलक्षणो=ईसवदु
उज्ज्वले नेतरस्ये नेतरस्ये=ममपस्य भगवतो महावीरस्य आमाकाजङ्कारान् मवीच्छति=सुहृत्ति ॥ सू०७७ ॥

मूर्च्छ-नेत्रं काळेयं तेषं समएयं जेसे हेमतामं पढयमासे एवमे पवले मन्नासिरपडुले, तास्य वं
मगसिराचकुलस्त दसमीए तिहीए सुन्मएयं द्विसतेषं, विजएणं सुदुषेण, इत्युचरार्हि नक्तनेषं चदणं जोगसुवगएयं
प्राङ्गणमिणीए छायाए बियथाए पीरितीए छट्टेयं मचेयं म्पाणएणं म्गवं महावीरे दाहिणेणं इत्येयं दारिणं, घामेणं
इस्येणं वामं पंचद्विहयं ह्योप करिय सिद्धामं नमोकारं करौ, करिषा "सम्यं मे अकरणिमं पावकम्" ति वदु
सीरिषीए सामाएयं चरिण पठिवज्झ। तं समयं च णं देवासुरपरिसा मपुणपरिसा य आछेपलविषययाविच
चिद्ध। तएण से सञ्जे देविने देवताया नंतुवायपटिए सममस्त मगतमो महावीरस्त केसाई बयराएणं
पाळेयं पठिच्छ, पठिच्छिषा लीरीयसापर साहए। नं समयं च णं समयं सामाएय चरिण पठिवज्झइ
त समय च णं मगतमो वदमापस्य चउरमे म्पापस्यन्नाणे सपुणणे।

तत्पथात् मगतान् नीरं पृष्ठं तत्पथ-दूरं विज्ञाके सन्तरुस्ये-ईशान कोष मे-पथारे) पथात् करं पौर, अर्थ
इत आदि समस्त अङ्कारों को उठारने लगे। तब वैभ्रज देव उठते जन्तु की तरह 'अपानक' आपट्टिचे
और उन्हींने ईस के समान उनसे जेठ वल में उन अङ्कारों को छेत्तिये ॥ सू०७७ ॥

डिबटनेो सुषुआर पीतान्ये न क्त्वे, षष्पु पुत्रकनेो क्त्वे तेभी तेभञ्जे दोहोनी यमञ्ज सई अलकोशे। उवासी
नामन्। छिचटे तमाम सुषुआरेशे-शुभभोवी-अङ्गि निबेशेत्य सुज्जे। षष्पु छिडिने न्यपुज्ज कोष छि, ते। पछेदेवो अथा
आटे पीतानी नञ्ज सभञ्ज तेने त्पथ न करेवो? जेदेो आइशं भवाएय्य भाटे अ अजवनि धारणु इरेव आअरणु
वत्तो निबेशे दोहसुधुएयनी यमञ्ज उवाचं

आ अलकोशे मालवीरुत्त न क्त्वां क्षारणु हे अमपीनी यवक्षेभ सलंन शक्तिनी अकारनी आ वाट क्त्वी
आ आणुएवो। ते। देवी क्त्वां जेन्तं अङ्गुले आणुएवो उवाशया भाइयं हे अञ्जे उठवां अतु हे अङ्गीनी माइक
अथानञ्ज वैभ्रजपुत्रेव आनी पछेदेव्या अने क्त्वानी पांभ धमाम उवाशएण खेवत नञ्जथं अङ्गुली अलकोशेने जेवो
कीचं। (ध०७७)

तए गं सकृत्सुहा चउसहीवि इंदा सन्वे देवा य देवीओ य भगवं “जयउ भयवं! पालउ समणधम्मं, नासउ सुक्कञ्चणेण अट्टविक्कम्मसत्तू, पराजयउ रागदोसमळं, आरोहउ मोस्वसोहं” इवाइरूवेण अभियंउमाणार अभियुणमाणार आगासे जयञ्छणिं कुणमाणारजामेव दिसि पाउब्भूया तामेव दिसि पडियया । तएणं सपणे भयव महावीरे सिचणाइणियगसयणसंवंधिपरियणं पडिविसजेइ, सयं च इमं पयाखवं अभिगहं अभिगिणइ—“जमहं वारसतासाइं वोसट्ठाए चचदेहे जे केइ दिव्वा वा माणुस्ता वा तेरिच्छिया वा उवसगा समुप्पज्जिस्संति ते सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि तित्तिविवस्सामि अहियाइस्सामि नो णं कस्सवि साइजं इच्छिस्सामि” चि । ॥सू०७८॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये यः स हेमन्तानां प्रथमो मासः प्रथमः पक्षः मार्गशीर्षवह्लुः, तस्य खलु मार्गशीर्षवह्लस्य दशम्यां तिथौ सुव्रते दिवसे विजये मुहूर्ते इस्तोत्रराभिः नक्षत्रेण चन्द्रे योगसुपगतं प्राचीनगाभिन्यां छायायां व्यक्तायां पौरुष्यां पठेन भक्तेन अपानकेन भगवान् महात्रीरः दक्षिणेन दक्षिणं नामेन वामं पञ्चमुष्टिकं लोचं कृत्वा सिद्धाना नमस्कारं करोति, कृत्वा ‘सर्पे मे अरुणीयं पापकर्म’ इति कृत्वा सिंहट्टया

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि—उस काल और उस समय में, जो हेमन्त का प्रथम मास था, प्रथम पक्षवाडा था अर्थात् मार्गशीर्ष का कृष्णपक्ष था, उस मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि में, सुव्रत दिन में, विजय मुहूर्त में, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, छाया जब पूर्वे की ओर जा रही थी, और जब दिन का एक पहर शेष रह गया था, ऐसे समय में, निर्जल पष्ठभक्त (बोबीहारवेला) के साथ भगवान् महात्रीर ने, दाहिने हाथ से दाहिनी तरफ का और बांयें हाथ से बायी तरफ का पंचमुष्टिक लोच करके सिद्धों को नमस्कार किया । नमस्कार करके ‘मेरे लिए समस्त पापकर्म अर्कंणीय है’

भक्षतो अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि. ते काले अने ते सभये हेमन्त ऋतु (शियाणा)ता प्रथम मासुं प्रथम अड्वाडियुं यात्री रहुं इतुं. ओ भागथर (शुभराती कारतक) मास इतो अने वहीनुं पथवाडियुं इतुं. आ भागथर (शु कारतक) मडिनानी वनी इथसता सुव्रत द्विवसे, विजय मुहूर्ते, उत्तरा श्रद्धुनी नक्षत्रने। यं द्रभाने। योग थतां छाया न्यादे पूर्वं दिशा तरश् ढणी रडी ते वथते (सांजना पडादे) न्यादे द्विवसने ओइ पडोर गाडी रडो इतो ते सभये छसने। इपवास करीने, नमस्कार करीने, नमस्कार करीने। अने डाणा डाथे डाणी तरश्ना वाणनुं पंथसुण्डि दीव्य करीने सिद्ध कर्मावातने श्रीमहात्रीर देवे नमस्कार कथो. नमस्कार करी कथुं डे “ इयेथी काल पथ प्रकारनां

सामायिकं चारित्रं प्रतिपद्यते । तस्मिन् समये च लख देवाद्युपरिपत् मुमुक्षुपरिपत् व आडेस्यविषयभूवेव सिद्धति । तदा लख स इको वेवेन्द्रो देवराजो जन्तुपारं पतितः श्रमणस्य भावतो महावीरस्य केधान् वधमये स्याद्ये प्रतीच्छति, प्रतीत्य सीरदसागरं सहरति । यस्मिन् समये च लख भगवान् सामायिकं चारित्रं प्रतिपद्यते, तस्मिन् समये च लख भगवतो वर्षमानस्य चतुर्थे मनःपर्ययज्ञानं समुपपन्नम् ।

ततः लख ब्रह्मप्रज्ञासमुत्पत्तिवीन्द्राः सर्वे देवाद्यु देव्याद्यु भगवन्त् “ भगवन् भवान् ! पालयतु श्रमणपरमं, नाश्वस्तु शुक्रुपायेन भट्टविषकर्मबधून्, पराजयतां रागद्वेषमहात्तु, आरोहन् मोक्षसौपर्यम् ” इत्यादिरूपेण अभिमुन्दन्त् २ अभिमुन्दन्त् २ आकाशे जयध्वनिं कुर्वन्ता, यस्या एव विश्वः प्रादुर्युताः रामेव विश्वं प्रतिगताः ।

इस प्रकार कर कर सिंह-द्विति से सामायिक चारित्र भंगीकार किया । उस समय निम्न ही सुतों की परिपद्, अमुतों की परिपद् और मुमुक्षुओं की परिपद् विचित्रलिखित के समान रह गई । तब वह एक देवेन्द्र देवराज क्वचानक आकर भ्रमण भगवान् महावीर के केशों को

वधमय गाल में लिये और सीर सागर में उर्ने प्रसिप्त कर दिये । जिस समय भगवान् ने सामायिक चारित्र भंगीकार किया, उसी समय भगवान् वर्षमान स्वामी को चौथा मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया । तत्पश्चात् एक सौरर वसिष्ठ इन्द्र, सब देव और देवियों भगवान् का अभिमुन्दन करने लगे- ‘ भगवन् ! जपदंता हों, भ्रमण धर्म का पालन करें, दुःखलक्ष्यान से भाट प्रकार के कर्मफलुओं का विनाश

प्राप इत्वां भयस भाटे (अशुशुकीक) बोध नवी ” आभ लयी तेभके सिद्धवृत्तिकी आभासिक आसिन् आशिकार भुंत्

आ लभये, भूशे-अभुशे । अने मुमुक्षुकी येदनीज्जानी कोटकी लयी अभ्यावत् भुं डती है, केयुं भयन अण-
भयन अने देवेनी येदनी ज्जानी डती, बि तोषा आडेभित विज्जानी भाइक, इतल्ल भुं शोटाड नरेव नेवी
इधने शिरसमुदत्तां पधसंथा. ने धभये भजवने आभासिक आसिन् आशिकार भुंत् ते पपटे, तेभने लख्खु भजपधंभयान
उत्पत्त वधु

२

स चानाम्-रेयत्वस्तुसम्पिनां चतुर्णां मासानां मध्ये प्रथमः-आद्यः, मासः-मार्गशीर्षको मासः, प्रथमः पक्षः
 मार्गशीर्षक-मार्गशीर्षकृष्णपक्षः, तस्य खलु मार्गशीर्षकृष्णस्य दशम्यां त्रिंशत्, शुभते-शुभस्ते दिवसे-विने
 चित्रये-चित्रपदानि शुद्धे-शाल्विशयो, इतोपरमिः नसन्ने-इतोपलसितोचगनसन्ने-उचराफास्युनीनसन्ने
 सह योगगुणते-साम्बन्ध माते वन्ने सति प्राचीनगामिन्यां-पूर्वद्विगमागामिन्यां छायायाम्-अपराहकाष्ठे व्यक्त्यां-
 सप्तयाम्-अश्रित्यां चतुर्थमरसम्भार्यां चौक्यां भवानक-जल्पानरारिणेन पठेन मन्केन-उपवासादय्यरूपेण
 भावान् महावीरः इतिणेन इस्तेन दक्षिण-दक्षिणमागस्य तामेन-वागइस्तेन वाम-वाममागस्य पञ्चमष्टिकं,-
 पञ्चमष्टयो यस्मिस्तं मोर्व-सुवनं कृत्वा-सिद्धानां नमस्कारं करोति । कृत्वा-"सर्वे-सकलं मे-यम पापकर्म-
 मावाविषादादि सत्संसाधकर्म अकरणीयम्-अकर्तव्यम्" इति कृत्वा-इति इ-परिहया शाखा प्रत्याख्याल-परिहया
 प्रत्याख्याय शिबुरया सामाजिक चारित्रं प्रतिष्यते-स्वीकरोति-शुद्धाति । तस्मिन् समये च खलु देवापुरपरि

प्रथम मास मार्गशीर्षं या, प्रथम पक्ष-मार्गशीर्षं कृष्णपक्ष या, तस मार्गशीर्षं कृष्णपक्ष की दशमी त्रिंशत्, शुभत
 नामक दिन में, विषयनामक शुद्ध में, इस्लसत्र से उपलसत्र तवरा नसत्र अर्थात् उचराफास्युनी नसत्र
 के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, छाया नव पूर्व दिशाकी ओर जा रही थी, अर्थात् उचराफास्युनी नसत्र
 एक प्रहर अत्र क्षेत्र या, अर्थात् दिनके चौथे प्रहर में, जल्पान-रहित (बौधायन) पठमक के साथ, सगवान्
 महावीरने दक्षिणे शाय से दक्षिणी ओर का ओर बायें शाय से बायीं ओर का पंचमष्टिक सोच कर के सिद्धोको
 नमस्कार किया । नमस्कार करके 'मेरे किये समस्त प्रमादियत्त आदि पाप-साधकर्म अकर्तव्य है' इस प्रकार

(शुभरातीर्षां शस्तक) खाद्यते इतो, प्रथम पक्ष के-आजशर-शस्तक) आशना दुष्पुष्कनी (वर्ष) इसम इती, सुभव
 नशय के शुभ विवसना विद्ये विषय नामना शुद्धमें इत्त नक्षत्रधी उपलक्षित उत्तम नक्षत्रथां-कोट्ये ठे उत्तर-
 शरद्वेदी नक्षत्रनी साथे चन्द्रने शत्रु इत्ता पराशरे अथार पूर्वदिशाम् पद्यते इतो त्वारे कोट्ये ठे उत्तर-
 अथार विवसने कोट्ये पक्षे पराशरे अथार पूर्वदिशाम् पद्यते इतो त्वारे कोट्ये ठे उत्तर-
 उत्तराश्रमां शशीने शत्रु पक्षे पराशरे अथार पूर्वदिशाम् पद्यते इतो त्वारे कोट्ये ठे उत्तर-
 त्वारे शशीने (आशना सख्य वाग पांच युद्धी कोट्ये) विद्ये परमात्मोने नमस्कार इत्ता नमस्कार इतीने "आरे
 अथे सभक्त प्रभुविरिष्यत् आदि अथार प्रथमं पक्ष-शरीर इत्ता नमस्कार इतीने "आरे

षट्=देवाद्युरसभा, मनुजपरिषत्=मनुष्यसभा च आखेल्यवित्रभूता इव=अङ्कितचित्रवत् तिष्ठति । ततः=श्रीवीर-
प्रभोश्चारित्रग्रहणानन्तरं, खलु स शक्यो देवेन्द्रो देवराजः जन्तुपातं पतितः=जन्तुरिव पतितः-सहसा समागतः
श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य केशान् वज्रमये=वज्रमणिनिर्मिते स्याछे प्रतीच्छति=गृह्णाति प्रतीप्य=गृहीत्वा तान्
केशान् क्षीरोदसागरं संहरति=नयति । यस्मिन् समये च खलु भगवान् श्रीवीरः सामायिकं चारित्र्यं प्रतिपद्यते=
गृह्णाति, तस्मिन् समये च खलु भगवतो वर्द्धमानस्य चतुर्थं=मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलरूपेषु पञ्चसु ज्ञानेषु
चतुर्थं मनःपर्ययज्ञानं समुत्पन्नम् ।

ततः खलु शक्रमुत्वाश्रुत्पुष्टिरपि इन्द्राः सर्वे देवाश्च देव्यश्च भगवन्तं=श्रीवीरप्रभुं “हे भगवन् ।

इ-परिज्ञा से जानकर और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से त्याग कर विद्वृत्ति से सामायिक चारित्र्य अंगीकार किया । उस
समय देवों और अशुरों का समूह तथा मनुष्यों का समूह चित्रलिखित के समान स्तब्ध रह गया ।
श्रीवीर प्रभु के चारित्र्य-ग्रहण के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज अचानक ही आ पहुँचे और उन्होंने
श्रमण भगवान् महावीर के केशों को हीरे के थाल में लेकर क्षीरसागर में रख दिये ।

जिस समय भगवान् ने सामायिक चारित्र्य को अंगीकार किया, उसी समय भगवान् वर्धमान को
चौथा, अर्थात् मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल रूप पाँच ज्ञानोंमें से चौथा मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न होगया ।
तब शक्र आदि चौंसठ इन्द्र सभी देव और देवियों श्रीवीर प्रभु का इस प्रकार अभिनन्दन करने लगे-

प्रत्याख्यान परिज्ञाथी त्याग करीने सिद्ध वृत्तिथी सामायिकचारित्र्य अंगीकार कर्तुं. ते वभते देवा, अशुरो तथा मनु-
ष्येनो समूह चित्रवत् स्तब्ध बनी अथे.

प्रभुको चारित्र्य-ग्रहण करतां न शक्ये देवेन्द्र देवराज आगण आव्या अने तेभस्से श्रमण भगवान् मक्षा-
वीरना देखेने रत्तना थाणमा जीवी सीधा अने विनयपूर्वक क्षीर सागरमां पधराव्यां

ने समये भगवाने सम्यक् चारित्र्ये अंगीकार कर्तुं. ते वेणुको भगवान् वर्धमानने चोथुं अटले डे मति,
श्रुत, अवधि, मनःपर्यय अने देवण को पांच ज्ञानोमांथी चोथुं मन पर्ययज्ञान उत्पन्न थ्युं. शक्ये आदि चोसठ इन्द्र
सधणां देव अने देवीकोको श्रीवीर प्रभुने आ रीते अभिनन्दन करवा लाग्या. “भगवन्! आपनो नय डे। श्रमण-

भवान् नयतु=सर्वोत्कर्षेण वर्तताम्, भ्रमणधर्म=साधुधर्म पाकपटु अष्टविषकर्मशत्रून्=अष्टप्रकारकर्मरूपशत्रून्
 शुरुच्यानेन नाशयतु=दूरीकरोतु, रागद्वेषमहत्=रागद्वेषरूपमहत् पराजयताम्, तथा=मोक्षार्थम्=शुक्तिरूपमासादम्
 भारोदुःख=आह्वी भक्तु" इत्यादिरूपेण विधोत्साजनकवचनेन अभिनन्दयन्तः २=पुनः पुनरभिनन्दयन्तः, तथा
 अभिदुःखन्तः २=पुनः पुनः सर्वतो तर्पयतः आकाश नयध्वनि=अयकर्म इवन्तः यस्या एव विशाः=यामेव विश
 माभ्यम् प्रादुर्भूताः=अष्टोभूताः तामेव विश्वं प्रतिगताः=अतिनिवृणाः।

ततः=शुक्रादिभक्तिगमनानन्तरं तच्छु भ्रमणो यगवान् महावीरः मित्र-शक्ति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परि
 जन, तत्र-मित्राणि=मुहुरादयः, शत्रवः=समातय, निजकाः=स्वकीयाः पुत्रादयः, स्वजनाः=पितृव्यादयः, सम्ब
 न्दिनाः=पुत्रपुत्रीणां श्वशुरादयः, परिजनाः=दासीदासादयः, इत्येषां समाहारस्त्वय प्रविशियन्ति निवेदयति स्वयं
 च इममनुग्रहम्=अनुग्रहं कस्यमाप्तम् अभिप्रार्थय=नियमम् अभिप्रार्थयति=सर्वतोमोवेन स्वीकरोति " यत्-अर्थां द्रावत्

'मगवान् सर्वोत्कृष्ट हो कर शैं। साधुधर्म का पावन कीर्ति, आठ प्रकार के कर्मपुरुषों को शुरुच्यान से
 दूर कीजिये, राग-द्वेषरूपी महलों का मान-मर्दन कीजिए, मुक्ति-महाल पर आरोहण कीजिए।' इत्यादि रूप
 से विधोत्साहनक वचनों से पुनः पुनः अभिनन्दन तथा स्तवन करते हुए, आकाश में जय-जयकार करते
 हुए, जिस दिशा से अष्ट दिशा में वृष्टे गये।

अक्र आदि के वृष्टे जाने के पश्चात् भ्रमण भगवान् महावीरने मित्रजनो, समाचित्यों, निजजनो (पुत्रा-
 दिवो), स्वजनो (काका आदिको), संबंधीजनो, (पुत्र-पुत्री आदि के श्वशुर आदि नातेदारों) तथा परिजनो
 (दासीदास-श्वशुर) का विसर्जन किया और स्वयने इस प्रकार का अभिप्रार्थ-नियम प्रथम किया- 'मैं वारह

भ्रमणु भवात्' पावन करने का प्रकाशना अभिप्रार्थकोने शुरुच्यान वटे इर करने, शत्रव इपी अश्विनानां यान्तु
 भवेन इत्थे अश्विनमेव पर व्याशेदव्य करने" इत्यादि प्रकारे विचराम ईशाक उत्पन्न कराने वचनोपी इरी इरीपी
 अश्विनान् इते अश्विनो की वचनाइ प्रकारता ने विद्यायापी अष्ट वर्षा इत्यां तेज विद्यायां पाठ यावत्वा यथा।
 ईन्द्राणां वजेरे वावका तथा पीपी अश्वयु कानवान् अश्वीरे भिजन्ते, अश्वतीजो, निजकन्ते (पुत्रादिको)
 स्वजनो (माता आदिको) स्वजनीजो (पुत्र-पुत्रीना शत्रवा आदि स्वयं) तथा परिजनो (दास-दासी श्वशुर)वा स्व
 यज्ज् इते येते ज् प्रकाशये अश्विभक्त-नियम शेषी इ- इ वार वरं यपी अश्विभक्तं इति। २-५। अश्विनान्ता

वर्षाणि व्युत्पद्यन्त्याः=कृतकायोत्सर्गः त्यक्तदेहः=परित्यक्तशरीरापिमानः सन् ये केचिद् दिव्याः=द्यौः=स्वर्गः,
 तद्वासिष्ठुरगणोऽऽपि उपचाराद् धोः, तद्भवाः=देवसम्बन्धिनः, वा-अथवा, मानुष्याः=मानुष्यममुद्भवा=वा तैश्चाः=
 तिर्यग्योनिसमुद्भवाः उपसर्गाः समुत्पत्स्यन्ते, तान्=उत्पन्नान् उपसर्गाच्च सम्यक्=मनोदाहर्णेन सहिष्ये=भयाऽभा-
 वेन, संस्ये-क्रोधाभावेन, तितिक्षिष्ये दैव्याऽकरणेन, अथामिष्ये-निश्चलतया, तथा-तदुत्सर्गसहनान्दिषु कस्यापि देवस्या-
 ऽसुरस्य मनुष्यस्य वा साहाय्यं=प्रतीकारकरणे सहायतां नो खलु एषिव्यामि=अभिलषिष्यामि । इति ॥ बृ०७८॥

मूलम्—तर्पणं ममणे भगवं महाीरे इमेयाख्यं अगिगहं अभिलिषिदिचा योसदृक्षाए चत्वेहे मृदत्तसेसे
 दिवसे कुम्भारणांमं पट्टिए ।

तर्पणं सिरिचद्धमाणसामी जाव नयणपवगामी आसी ताव णंदिवद्वणापयुद्धा उम्मुदा जणा णियणिपय-
 लोयणपुडेहिं पहुदरिसणांमयं पित्रमाणा पहरिसमाणा आसी । अह य पहू जहा तथा दिद्विसरणिओ विष्यक्त्रो
 जाओ तथा तथा दारिद्राणं विव मव्वेसिं सोऽरिसहसिओ पणद्धमारभीअ, गिम्हकालम्मि सरोरणं मलमिव हरि-
 सोछासो सोसिउयुवाकमीअ, वारिविरहेण पफुळं कमन्कुळं विव मव्वेसिं हियपदुस्सहेण पद्विरहेण मच्चिणं
 जायं, तमुज्जीविणं पवत्तो सोंडीरो सीयलमंदयुगंधिसमीरोवि भुयंगमसासायइ, पुळ्वं जाओ तद्विरावमदोन्ञ्च-
 नंदणवणे तद्वरिसणकपत्तरुत्ते इद्धिसिद्धीए आणंदक्खरीओ जायाओ ताओ सव्वाओ पद्विरिहउचानन्मि पण-
 द्वाओ । पहुस्स दुस्सहो त्रिहो चंदविरहो चगोरमिव, हियनिलायं सद्धमिव अविळे जणे र्हिए करीअ परिओ
 त्रित्थरिएण फारेण पद्विरिहंधयारेण आयलोयणेमु समाणेमु चि तत्यट्टिया जणा अनयणा जाया, पईणा समीईणा
 पड्डपासणत्रीणा तत्यच्चा सोहा निच्चाणदीवमिहगिहसोहेन तासीअ । पद्वुम्मि विरहिए ममाणे पयंसि गत्तिए
 नईणुल्लिणमिव, रसे गल्लिए दल्लमिव जणमणे मल्लिणो संजाओ, जणनयणाओ फारा गरिजारा पाउमम्मि वृद्धि-

वर्षों तक कायोत्सर्ग किये, देहममत्त्व का त्याग किये, देवों संवंधी, मनुष्यों संवंधी अथवा तिर्यचों संवंधी
 जो भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन उत्पन्न हुए उपसर्गों को मानसिक दृढ़ता के साथ निर्भय भाव से सहन
 करूँगा, बिना क्रोध के क्षमा करूँगा, अर्दीन भाव से सहन करूँगा, और निश्चल रह कर सहन करूँगा । उन
 उपसर्गों के सहन करने आदि में किसी देव या मनुष्य की सहायता की अभिलाषा भी नहीं करूँगा ॥ बृ०७८॥

त्याग करीने देयो, मनुष्यो अथवा तिर्य'चो सं'ंधी ले उपसर्ग (वास) उत्पन्न थये ते उपसर्गोने मानसिक दृढता
 साथे निर्भय भावशी सहन करीथ, क्रोध कर्था बिना क्षमा करीथ, अर्दीन भावे सहन करीथ अने निश्चल रहीं सहन
 करीथ. ते उपसर्गो सहन करवा आदिमां डोअ पक्ष देव डे मनुष्यनी सहायतानी छ'ंधा पक्ष नाई छ'ंधे." (स्०७८)

धारा विष शरितमारसीभ, पशुखरगानो भरिसिषको नंदिकन्दणो नरीबो पुंससत्त्वञ्चाऽऽमृणो पठैतपशुणसमूहो छिप्या-
 नोगो विष विगपशेषणो भवणियळ सन्नेगेण वसचिपडिभो, स दहूणं सन्ने सामंतपुमियमोडवि समतथो अवणियळे
 निवडिया। तएणं विनीगशेषको नदिपदणो भूबो कसियि चेष्यायारेण सीयलोवयारेण वेयण णीमोडवि अरिव
 शरिथो मयीभ, निरंतरासितसिणसल्लिकोच्छसिपरापीपभाइं लोयणाइं पमजिप पज्जदुबलमाणं सयमप्या-
 नमेष निदीभ-धी! वी! सन्नायं पावविवागे, भयू वंधुविरहो पागसासणी अस्मीविच अग्ने गिरणइ। एवं
 दुस्सहपशुविरहदुखेण निण्णो पयामिषदणो गदिकदणो राया मुषकंठमाकंदीभ। वस्सा इत्थिण्णेडि अस्सइ
 पडुवभाभा अत्तोमसोगमाइणो मदीअ। तयाम्मि नवमुरेदि मज्जेरेदिचि नभं विसरिय, चिडविणो कुमुमाइं चरिअ,
 काणविरहरणरायकारिया उपाणां तथाइ, कणमविलको पविसणो य आहारं परिहरीअ। एवं सब्बेसु पाणिपु
 पशुविराशिपुरेसु सो बाररा पडुं चेषसा चित्तमलो तभो एवंवयासी-जस्य तस्य य ससस्य दुमं वेधवत्तलय ए विउचो
 सिचि व शीर। दुक्खापवाजुमिज्झइ” ॥१॥ एवं मासमाणो नन्दिरदणो राया सणिसंतं पट्टिमो ॥ सु०७९॥

छाया—पठ' लख भयणो मगवान महारीरः इमंतदूपमभिश्रमभियस व्युत्सुष्टक्रायः त्यक्तदेह
 सुदंतसेषे विरसे 'कुमार' ग्रामं प्रस्यत ।

वतः लख पावत् शीतर्षमानस्थामी नयनपयगामी आसीति वाचनन्दिवर्षनमसुखाः तयुवा जनाः निज
 निजलाषनपुटः पशुवर्षनापठं पिबन्तः महत्यन्त मासन्। अथ च प्रपूर्यया यया इष्टिसरणिषो विमृष्टो जातः,

मूस का अर्थ 'तएण' इत्यादि। तत्पश्चात् श्रमण मगवान महारीर इत प्रकार के इस अभिप्राय को
 प्राय करके शरीर की शुधुपा और ममता का त्याग किये हुए एक गृहर्ष दिन रोप रहने पर 'कुमार' ग्राम
 की ओर विहार किये।

तत्पश्चात् षष तक भी वर्षमान स्वामी नयनपयगामी ये-दिवारिं वते रेते, तव तक नन्दिवर्षन आवि
 सपनन भवने-भयने नयनपुटों से मसु-वर्षन का अमृत-पान करते हुए हींसि रहे; किन्तु मसु ज्यों ज्यों

भूभेनो अर्थ- तएणं इत्थादि आना प्रारणा कालिकने धारुणु हरी शरीरपी शुधुवा इ भभवानो
 ॥११॥ भूभो. तेव दिवसे ऐक्य सुकृत भं अयथाण कुभोरे' यम तथइ काळी नीकण्ण।

अर्थ। शुधा कथाना इतिवैशेष्य अना तां शुधी न द्विवर्षन वजरे स्वअन्तोमि अनिनिभ इत्थिमे दमर दमर
 जेका भूभु' ने मसुवा इतं नापुठ पान करनी कथित रहतं ॥११॥ अथार मसु इति भवतावा इत्याना अ'प भवा

तथा तथा दृष्टिगामिव सर्वेषां सोत्कर्षर्हर्षः प्रणष्टुमारभत, ग्रीष्मकाले सरोवराणां जलमिव हर्षोद्घासः गोण्डु-
सुपाक्रमत, वारिविरेहण प्रफुल्लं कमलमिव सर्वेषां हृदयं दुःसहेन प्रभुविरेहण मलिनं जातम्, तदुज्जीनयितुं प्रवृत्तः
शौण्डीरः शीतलमन्दसुगन्धिसमीरोऽपि भुजङ्गमभासायते, पूर्वं याः तद्दीक्षामहोत्सवनन्दनवने तद्दर्शनकल्पतरुतले
इष्टसिद्ध्या आनन्दहर्षो जाताः, ताः सर्वाः प्रभुविरेहवडवानले मण्ड्याः, प्रमोदुःसहो विरेहः चन्द्रविरेह-
श्रकोरमिव, हृदयनिवातं शल्यमिवाखिलान् जनान् व्यधितान्करोत, परितोः विस्तृतेन स्फारेण प्रभुविरेहान्धकारेण
आयतलोचनेषु सत्स्वपि तत्र स्थिता जना अनयना जाताः, प्राचीना समीचीना प्रभुप्रकाशनवीना तत्रत्या गोमा

नजरों से दूर होते गये, त्यों त्यों दरिद्रों के समान सबका उत्कर्षपूर्ण हर्ष समाप्त होना आरंभ होने लगा।
जैसे ग्रीष्म के समय में सरोवरों का सलिल सूखने लगता है, उसी प्रकार उनका हर्ष सूखने लगा। जैसे
पानी के बिना फूला कमल सुरक्षा जाता है उसी प्रकार सब का हृदय दुस्सह प्रभु-विरेह से सुरक्षाने लगा।
उसे ताजा करने के लिए प्रवृत्त हुआ, पटु पवन शीतल मन्द और सुगंधित होने पर भी सांप के भास के
समान जहरीला प्रतीत होने लगा। भगवान् की दीक्षा के महोत्सवखुशी नन्दन कानन में, प्रभु के दर्शन
रूपी कल्पवृक्ष के मूल में इष्ट प्राप्ति से जो आनन्द की लहरें उत्पन्न हुई थीं, वे सभी चीरविरेहरूप वड-
वानल में भस्म हो गईं। चकोर को जैसे चन्द्रमा का त्रियोग दुस्सह होता है, उसी प्रकार प्रभुका विरेह,
हृदय में चुमे हुए कौटे के समान सभी जनों को व्यथा उत्पन्न करने लगा। चारों ओर फैले हुए प्रभु-
विरेह रूप सघन अंधकार के कारण वहाँ खड़े सभी जन बड़े बड़े लोचनों के विद्यमान रहते भी नयनहीन-

गया तेम तेम दरिद्रोनी समान स्वर्जनेना इयो ओछा थां दाग्यां. नेम उनाणाना प्रथर तापमा सदोपरधुं पाथी
सुकाधं जय छे तेम स्नेहीजनेने। धुर् सुकावा दाग्यो. पाथी विना नेम कभगो। करमाधं जय छे तेम प्रभु-
दशन विना सर्वना मत करमावा दाग्या. तेने विकसित करनारा वहेता भंभंभं शीतल अने सुगंधित पवने।
पथु तेओने सर्पना श्वाससग विषभय दागता छेता.

दीक्षामहोत्सव इपी नंदनवनमां प्रभुदर्शनइपी कल्पवृक्षना भूलमां धष्ट्रासिथी ले आनंदनी दहेरीओ। ठाती
इती ते अधी दहेरीओ। वीरशगवानना विरेह इपी वडवानल-अक्षिमा कर्णीने भाप थध गध. चकोर पक्षीने नेम
चंद्रना वियोग सादे छे तेम प्रभुने। वियोग सर्वजनेने साबवा दाग्यो. अने आ विरेह शल्यनी भाइक भूंथवा दाग्यो.
प्रभुवियोगने दीधे बोधेर प्रसराबेल प्रभुविरेह इप सधन अंधकारने दीधे त्यां उलेता अधा भाषुसे। सोटी सोटी

निर्वाणदीपत्रिलहराशोभाउत्सवत् । प्रभौ विरहिते सति पर्यासि गच्छिते नदीपुल्लिनमिष, रसे गच्छिते दुर्लभमिष
 जन्मतो मस्मिन् संभारं, जननपनवः स्कारा वारिधारा द्वाभ्यापि वृष्टिपारेव शोडुमारवत । मधुवाराप्रणोडस्मिन्दनो-
 नन्दिर्वर्षनो नरेन्द्रः प्रस्वल्ध्यामामयः पतत्पद्मनसमूर्ध्निष्ठभानोकर इव विगतचेतनोऽनितवृष्टे सर्वाङ्ग्य धसेविविपतिवः,
 तं दृष्ट्वा सर्वे सामन्तमसृष्टयोऽपि समन्ततोऽचनितवृष्टे निपतिताः । ततः सल्लु निलीनचेतनो नन्दिर्वर्षनो भूयः
 कृष्णमपि चेतनाजनकेय शीतलोपचारम चेतनां नीतोऽपि अतीव व्यवथितोऽभवत् । निरन्तरेपयुज्यासिद्धोऽच्छलित-
 धारामोषने लोचने प्रकृत्य प्राग्पशुःसमाग्रं स्वऋणशानमेषानिन्द्रव-पिय पिंगस्माहं पापनिपाकम्, असौ

से हो गये । पोंछे की बौं की मधु के पकास से दूतन और सलौनी डोभा उसी प्रकार नष्ट हो गई, जैसे
 रीप-द्विजा के बुध जाने पर पर की ओसा नष्ट हो जाती है । जैसे पानी के बह कर निकल जाने पर
 नदी का ठट डोमाहीन हो जाता है, और जैसे रसमाग मूलमाने पर पचा मस्मिन्-कीका-नियम हो जाता है,
 उसी प्रकार अन्ता का मन मलिन हो गया । वर्षा कलु में पानी की धारा की तरह लोगों के नपनों से
 आसुओं की धारा पचाहित होने लगी । भगवान् के ज्येष्ठ भ्राता, स्थिबों का मर्दन करने वाले नन्दिर्वर्षन
 राजा शेषुच हो कर पकाससे सर्वांग से रुटे हुए ही तरह-बारी पर गिर पड़े, उनके समी आयुषण ऐसे
 गिर पड़े, मानो हस के फूल झड़ गये हों । उन्हें गिरा देस कर सभी सामन्त वीरर भी इषर-उपर भूतस
 पर जा गिरे । तत्पश्चात् सेवार्हीन नन्दिर्वर्षन राजा किसी प्रकार चेतना उत्पन्न करने वाले शीतलोपचार से
 रोत्र में आये भी तो अतीव बय्या का अनुभव करने लगे । अनन्तर इसके से उज्ज्य बल की उल्लखी
 धारा बहाने वाले नेत्रों का पीछकर वह अतीव दुःख के पात्र अपनी आत्मा की इस प्रकार निन्दा करने

आये होवा कर्त्त आधगा कीव लेभा मधु जगल लेयी शीते शीवे ज्योत्सवातां धरणी शोभा नष्ट वर्ध आश छि
 तेयी अ शीते त्थानी प्रभुवा प्रकाशकी धती नवी जने सुदर शोभा नष्ट मधु अथ लेभ नदीमदि धोकाध कर्त्त नदी
 खडेग बाये छि लेभ इव सुसाध कर्त्त हणकेव यन शीझं बाये छि तेम प्रभुवा गभा जाह समस्त अगतानी मम
 रसहीन शीझं देआवा बाअम् । आयुषु कादरवानी बरानी धारानी माधुं शोभानी आशुकोनी आसुकोनी भाय वडेवा
 बाणी इरमनेने सड पधवी दे तेवा तेमवा मोदं कायं नदिर्वर्षन भूछित मधने मयेका वृक्षनी अजी भादर धरती
 पर यही बगल लेभ वृक्षनी देवा नीवे अज्जवा भादे तेम तेमनां आण्णसेः एवु जेव पधुं जेव नीवे अज्जवा
 भांझां निरतेव अवेव नीवपधनेने विधुद पडेका जेव अय साभती वडेव एवु छेयुद कायं जेव पधुं बाय्वा

वन्धुविरहः पाकशासनिरशानिरिव अस्मान् निहन्ति । एवं दुस्सहप्रभुविरहदुःखेन खिन्नः प्रजाऽभिनन्दनो नन्दिवर्धनो राजा मुक्तकण्ठमाक्रन्दत् । अथा हस्तिनोऽपि अश्रणि प्रभुञ्चन्तः अस्तोकशोकभागिनोऽभवन् । तदानीं नृत्यशूरै-
र्भयुरैरपि नृत्यं विस्पृष्टम्, विटपिनः कुसुमान्यत्यजन्, काननविहरणपरायणा हरिणा उपात्तानि तृणानि, कण-
भक्षिणः पक्षिणश्चाऽऽहारं पर्यहरन् । एवं सर्वेषु प्राणिगणेषु प्रभुविरहविधुरेषु स नरवरः प्रभुं चेतसा चिन्तयन्नाह—

“यत्र तत्र च सर्वत्र, त्वामेवाऽऽलोकयाम्यहम् ।

वियुक्तोऽसीति वीर ! त्वं, दुःखादेवानुमीयते ” ॥ १ ॥

एवं मनसि चिन्तयन्निन्दिवर्धनो राजा स्वनिशान्तं प्रस्थितः ॥ सू०७९ ॥

लगे-‘विकार है, विकार है हमारे पाप के परिणाम को ! यह बन्धु-वियोग इन्द्रके वज्र की तरह हमें चोट पहुंचा रहा है ।’ इस प्रकार प्रभु के दुस्सह विरह के दुःख से खिन्न और प्रजा को आनन्द देने वाले नन्दिवर्धन राजा मुक्त कंठ से आक्रन्दन-स्दन-करने लगे । घोड़े और हाथी आंस्र वहाते हुए प्रवल शोक करने लगे । उस समय नृत्य करने में शूर मयूर भी नाचना भूल गये । वृक्षों ने कुसुमों का परित्याग कर दिया । वन में विचरण करने में परायण हरिणों ने मुख में ग्रहण किये तृणों को भी त्याग दिया और कण-कण का भक्षण करने वाले पक्षियों ने जुगना वंद कर दिया । इस प्रकार सभी प्राणिगण प्रभु के विरह से व्यथित हो गए । तत्पश्चात् राजा नन्दिवर्धन मन ही मन भगवान् का चिन्तन करते हुए अपने भवन की ओर खाना हुए ॥ सू०७९ ॥

शीत उपचार वडे नंदिवर्धन न्यारे होशमां आंथ्ये तेमनी न्यथाने पार न हतो. न्नु इःथना वाहणे। तुटी पडया गजामा दुमेो भारथो हतो. आसुथी छलकती आंणेने साक्ष करी आत्मनिंदा करवा लाय्या. ‘धिष्कार छे भारा पायोना परिश्रुमिने ! आ अंधुविरक धन्दना वज्जना भार समान दुःख आथी रथो छे ! आम कधी तेज्यो दुयाक्षट देवा लाय्या ने योधार आंसु पाडी विलाप करवा लाय्यां. घोडा, हाथी वगेरे प्राणीज्यो पथु आंसु वडा-
वतां प्रभव शोक अनुभववा लाय्यां. आ समये नाय करतार भयूरो पथु नाय करवातुं भूली गयां. वृक्षा शोकना थिन्क तरीके पुंथेयोने त्याग करवा लाय्या. हरिणो ज्ये रोढामां दीधेधुं घास छोडवा लाय्यां; पक्षीज्यो ज्ये यथुवातुं छोडी दीधुं. आ प्रमाणे सर्व प्राणीज्यो पथु विलाप करवा लाय्यां. आडयान पथु शोकना भाथी श्रवा लाय्यां. शोकथी इःथिन थयेद नदिवर्धन भगवाननुं थितन करतां करतां भीन्न भावे पोताना भडेवे पडोःथ्यां. (सू०७९)

टीका—'तप्य समये मगधं' इत्यादि—तदा=दीक्षाप्राप्तानन्तरं सद्यः भ्रमणो मगधान् महावीर इममेतद्भ्रमणं=पूर्वोक्तं स्वयतिश्रावणम् अभिप्रायम् अमिष्टम्=स्वीकृत्य श्रुत्युत्पत्त्याः=त्यक्तशरीरशुभ्रुयः, त्यक्तवेष्टा=परिवहवस्त्रेरी (गोशः), सुहृत्वेष्टे=ग्रहिकाश्रावणशिल्पे विवस्ते=दिने, 'कुमार'—ग्रामं=कुमारालय-ग्राम, प्रस्थितः=विहारं कृतवान् ।

वतः सद्यः यावत्=यावत्काष्ठपर्यन्तम्, श्रीवर्षमानस्वामी नयनपयगामी=दृश्यमान आसीत्, यावत्=वापत्कालपर्यन्तं नन्दिवर्षनयमुत्सा=नन्दिवर्षनाख्य ; जनाः उन्मुत्सा-श्रीवर्षमानावलोकार्थं वदन्तिमुत्साः सन्त, निप्रतिज्जोषनपुटो=स्व-सं-नेत्रपुटैः, प्रसुदर्शनायुतं=श्रीवर्षमानस्वामिदर्शनरूपार्थं पिबन्तः सन्तः प्रहृष्यन्तः=पयो दमाना भासन् अय-उदन्तरम् च प्रभृत्=श्रीवर्षमानस्वामी यथा यथा=येन येन प्रकारेण दृष्टिसरणिताः=नेत्रपयवतः, निपकृष्टः=दूरो जातः तथा तवा=वेन येन प्रकारेण दृष्टिणां=दीनानाम् इव सर्वेषां तत्र स्थितानां

टीका का अर्थ—'तप्य जं' इत्यादि । दीक्षा प्रारण करने के अनन्तर भ्रमण मगधान् महावीर पूर्वोक्त अभिप्राय को अंगीकार करके शरीर की शुभ्रुपा के त्यागी हुए और वेश सर्वेषां गोश से रहित हुए, जब अनुमान दो पड़ी दिन शेष था, तब 'कुमार' ग्राम की ओर विहार किये ।

तत्र समय, नितने समय तक श्रीवर्षमान स्वामी वित्सारि देते रहे, उतने समय तक नन्दिवर्षन यदि जन मगधान् श्रीवर्षमान प्रभृ को देखने के लिए उनकी ओर दूर उठाए हुए नेत्र-पुटों से उनके दर्शनरूपी शण्ड का पान करते रहे और प्रसन्न होते रहे; किन्तु बाद में श्रीवर्षमान स्वामी जैसे-जैसे दृष्टियत्र से दूर होते चले गये, जैसे-जैसे दीनों के समान वहाँ लड़े हुए सभी लोगों का चार उत्कृष्ट

टीकाने: अर्थ—'तप्य जं' इत्यादि । टीका टीका पची अथवा महावीर का जण जवाल्का प्रभाइनेय अन्विष्टने जन्वीशर इरीने शरीरनी सुभ्रुपने त्यागी शरीर उपरने गीठ छिठये अन्वारे व पद्य विवस वाडी रको त्यारे "कुमार" नामनी तपके विकार हये ।

न्यां सुधी गन्धर पडोकिती रकी-न्यां सुधी श्री वर्षमान स्वामी दृष्टिोत्तर रक्य त्थं सुधी नन्दिवर्षने वनेरे जनेो अजयन श्री वर्षमान भ्रुनेने नेवाने भारे तेमनी तपके युअ छिमु इरीने नेत्र-पुटोकी गीठ भाडी तेमना इयन इपी अशुचतु पान शव्य रक्य जने प्रसन्न बत्ता रक्य, सज्जेम नेत्र श्री वर्षमान स्वामी इषि पक्षी इर इर बत्ता जनां तेम तेम बीन भाइशिननी नेत्र त्या अयेका कथा ३. ३. ३.

जनानां सोत्कर्षर्षयः=उत्कृष्टानन्दः प्रणष्टुं=दूरीभवितुम् आरभत-उपाक्रमत, किंच-ग्रीष्मकाले=ग्रीष्मऋतौ सरा-
 वराणां जलमिव सर्वेषां जनानां हर्षोल्लासः शोषुष्टुपाक्रमत, वारिविरहेण=जलाभावेन प्रफुल्लं=विकसितं, कमलकुलं=
 कमलवनमिव सर्वेषां तत्रस्थितानां जनानां, हृदयं=मनः, दुःसहेन=ऋष्टसहनीयेन प्रभुविरहेण=श्रीवर्धमानस्वामि-
 वियोगेन, मलिनं=हतप्रभं जातम् । तत्=सर्वजनहृदयम्, उज्जीवयितुम्=उल्लासयितुं प्रयत्नः शौण्डीरः=निपुणः
 शीतलमन्दसुगन्धिसमीरोऽपि भुजङ्गमश्वासायते=भुजङ्गमश्वास इवावर्ति-तद्बृहद्वाहजनको जात इत्यर्थः । पूर्वं
 तदीक्षामहोत्सव-नन्दनवने=श्रीवर्धमानस्वामिचारित्रग्रहणो देयक-बृहदुत्सवरूप-नन्दनवने तद्दर्शनकल्पतस्तले=श्रीवर्ध-
 मानस्वामिदर्शनरूपकल्पवृक्षमूले इष्टसिद्धया=अभिलषितसम्पन्नतया या आनन्दलहर्षः=हर्षपरम्पराः जाताः, वाः
 सर्वाः प्रभुविरहवडवानले=श्रीवर्धमानस्वामिवियोगरूपसामुद्रिकान्नौ प्रणष्टाः । प्रभोः=श्रीवर्धमानस्वामिनः दुःसहः=
 कष्टसह्यः विरहः चन्द्रविरहः=चन्द्रवियोगः चकोरम् इव=यथा व्यथितं करोति, हृदयनिखातं=हृदयप्रदेशान्तः-

आनन्द दूर होने लगा । जैसे ग्रीष्म ऋतु में सरोवरों का जल सूखने लगता है, उसी प्रकार उनका हर्षो-
 ल्लास सूखने लगा । जैसे जल के अभाव से विकसित कमलों का समूह शोभाविहीन हो जाता है, उसी
 प्रकार धँहा स्थित जनों के हृदय दुस्सह प्रभु-विरह से-श्रीवर्धमान स्वामी के वियोग से मुरझा गया । सब के
 हृदय को प्रफुल्लित करने के लिए प्रयत्न हुआ सुन्दर, शीतल, मन्द और सुगंधित समीर (पवन) भी साँप
 के श्वास के समान संतापवर्धक हो उठा । पहले भगवान् वर्धमान स्वामी के दीक्षा-ग्रहण के निमित्त हुए
 उत्सवरूपी नन्दनवन में, श्रीवर्धमान स्वामी के दर्शनरूप कल्पवृक्ष के मूल में इष्टसिद्धि से आनन्द की जो
 लहरें उत्पन्न हुई थीं, वह सब प्रभु के विरहरूप वडवानल में अंश हो गईं । जैसे चन्द्रमा का वियोग
 चकोर को व्यथित करता है, उसी प्रकार भगवान् का वियोग लोगों को व्यथित करने लगा । अथवा

थवा लाये। नेम ग्रीष्म ऋतुमा अरोवदेतुं पाषी स्रक्षवा दागे छ तेम तेभने इधोव्दास सूक्षवा दाये। नेम
 वणना अलावे विक्षसिन् क्षभणेनो समुद्धे यीभणार्थं नय छे, ओज प्रभाषे तथा उपस्थित थोव्दा माधुसेनां हुद्धय असाह्य
 प्रभुविरहथी-श्री वर्धमानस्वामीना वियोगथी अरुवा लायां. सर्वना हुद्धयने प्रकुट्टित करी रहेवो सुंइर, शीतण,
 भइ अने सुगंधित पवन पणु सायना अेरी श्वासनी भाक्ष्क सतापी रहो उतो. भगवान वर्धमान स्वामीना दीक्षा-
 अक्षु निमित्ते प्रकटेवा उत्सव इपी नन्दनवनमा श्री वर्धमानस्वामीना दर्शन इपी कल्पवृक्षना मूणमां छि सिद्धिथी
 आनंदनी ने लडेशे उत्पन्न थइ इती ते अधी प्रभुना विरह इपी दावानणमा लंस्म थइ गध. नेम अन्द्रमाने
 वियोग अडोर पक्षीने सतापे छे ओज प्रभाषे भगवानने। वियोग बोडोना हुयाभा अपार व्यथा करवा दाये।

संयतं शून्यं च इव=यथा जनान् व्यथितान् करोति, तथैव असिखान् जनान् व्यथितान्=वीरितान् अकरोत्।
 परिश्रितः=सर्वगतः विस्तृतैः=प्रसूतेन स्फारोप=विश्वाहनं प्रसूतिरहास्यकारोप आयतनबोधयेत्=दीर्घनेत्रेषु सत्स्वपि
 वप्रस्थिताः=धीर्बर्धमानमसूरीक्षास्थानपरितो जनाः अतयनाः=अन्धा इव जाता। प्राचीना=पूर्वकालीना, समीचीना=
 शोभना मयुष्कायुजनीना=धीर्बर्धमानस्वामिभिराजनाभिनवा वप्रत्या=धीर्बर्धमानस्याभिसमलङ्कृत्यतयानोद्भवा शोभा
 =रमणीयता, निर्वाणदीपशित्त-पूरशोभनेव=किर्यातदीपस्य मयनस्य रमणीयपेक्ष अनन्यत्=नाट्यमयव, प्रमो=धीवी
 रभिने निरिहिते=विपुळे सति, पयसि=श्रुते गलिते=निःशुते, नदीपुच्छिनम्=नदीसम्यन्वितोयोस्थितवटम् इव=यथा
 मलिनं मवति तथा=रसे=प्रलययोगे, गच्छिते=पुष्के सति वरुं=यषम् इव=यथा मलिनं मवति तथैव=जनमनः=सोक्त इदयं
 मलिनं शोतासारं संभ्रातयु, जननयनव=जोक्तानां नेषव स्फारा=मरती वारिषारा=अभुपरस्पर, माहृषि=वर्षाकाले
 वृष्टिषारा=वर्षाषारा इव=यथा नोर्धु=स्वन्दिनयुग्-आरमत=उपाक्रमत। तथा=मसुरजः=धीर्बर्धमानस्वामिज्येष्ठध्राता,

जैसे इदय-यद्वेज में जुमा हुआ इत्य व्यया पहुँचाता है, जैसे ही वह वियोग सब को व्यया देने लगा।
 सब ओर फैले हुए विशाल मसू-विरर के अन्वकार के कारण दीर्घनयन होने पर भी क्षीणास्थान पर
 विषयमान मत मेघरिनी जैसे ही गये। प्रसू के विरानने से नवीन वर्षों की पहले वाली शोभा, अर्थात्
 भगवान् बर्धमान के विरानने के स्थान ही वह रमणीयता उसी प्रकार नष्ट हो गई, जैसे दीपक कंजुस
 जाने पर भवन ही शोभा नष्ट हो जाती है। जैसे पानी का बराब समाप्त हो जाने पर नदी के तटकी
 शोभा मलिन हो जाती है, भववा रस-माग के मूल जाने पर पंच निष्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार लोगों
 के इदय मलिन-उत्साहहीन हो गये। लोगों के लोचनों से मरती अश्रुषारा ऐसी प्रवाहित होने लगी, जैसे
 वर्षाकाल में वर्षा की धारा बर रही हो। भगवान् क ज्येष्ठ ध्राता, शशुजों के विनेता नन्दिर्वर्धन राजा,

अथवा जेभ ठामन दुबाभां पुयी मनेका भाषणी क्वी मका-कका हरे छे जेवर प्रभावे ते विवेक सीने सत-
 पवा बाज्ये प्रसुनिरकनेा याद अ धकार श्रितारै हेबायने धारवे श्रेती अने स्वकठ आरिवाणा हेवा छत्तां पयु
 रीक्षारथान पर छपस्वित दौडा। अवे नेत्रकीन कथ अभा। जनयवनी काशरीने धारवे त्यानी शोभाभा ने नवीनता
 अने रमणिकवा भावी कती ते भावे छे दीपक जुजुअ छत्तां जननी शोभा जेभ नाश पाये तेभ नाश पगनी
 जेभ पायुनु बसेय अथ बत्तां नलीन तदनी शोभा मकीन कथ छत्र छे अथवा इव युजाअ छत्तां जेभ पाकेवां
 पुडां अने निस्तेव कथ अथ छे जेवर प्रभावे दौडांन दुयां छेयाक विनायां निरस कथ अभा जेभ वर्षाकाल
 बरवावनी धारा बरे छे तेभ दौडांन आंवेयांकी भाषण कालरव वासवया अरिषा।

अरिर्मर्दनः=शत्रुपराजयी नन्दिवर्धनः=तदाख्यः, नरेन्द्रो=राजा प्रस्वल्दाभरणः=प्रपतदलङ्कारः=सन् पतत्प्रसूनसमूहः= प्रस्वल्त्पुष्पसमुदायः छिन्नानोक्तः=छिन्नवृक्षः इव=यथा विगतचेतनः=निश्चेष्टः सन् अत्रनितले=पृथ्वीतले, सर्वाङ्गिणः= सकलावयवेन धसिति-‘धस्’ इत्याकारकशब्दपुरस्सरं पतितः=अपतत् । तं=नन्दिवर्धनं पतितं दृष्ट्वा सर्वे=सकलाः सामन्तप्रभृतयोऽपि पुरुषाः समन्ततः=सर्वतः अत्रनितले=भूतले निपतिताः=न्यपतन् । ततः=भूतलनिपतनानन्तरम् विलीनचेतनः=निश्चेष्टः, नन्दिवर्धनो भूयो=राजा कथमपि=केनापि प्रकारेण चेतनाकारेण=चेष्टाजनकेन, शीतलोप-चारेण=व्यजनादिना शीतीकरणसाधनेन चेतनां=चेष्टां नीतोऽपि=प्रापितोऽपि, अतीव=अत्यन्तं यथा स्यात्तथा व्य-थितः=दुःखितोऽभवत् । स च निरन्तरेषुदुष्णा-सलिलोच्छलित-धारामोचने=निरन्तरम्=अचिरतं या ईषुदुष्णसलिलस्य= किञ्चिदुष्णजलस्य उच्छलन्ती या धारा=प्रवाहस्तस्या मोचके लोचने=नेत्रे प्रमृज्य=प्रोञ्ज्य प्राज्यदुःखभाजनं= वहुदुःखपात्रं स्वकं=निजम् आत्मानमेव अनिन्दत्=अगर्हयत्, तथा हि-धियुं धिक् अस्माकं पापविपाकं=पापपरिणामम्, असौ=एषः प्रसु विरहः=श्रीवर्धमानप्रभुवियोगः पाकशासनिः=इन्द्रसम्बन्धी अशनिः=वज्रम् इव अस्मान् निहन्ति=नितरां

जिनके आभूषण नीचे गिर रहे थे, इस प्रकार सब अत्रयत्रों से धरती पर घड़ाम से गिर गये, जैसे झड़ते हुए पुष्पों वाला वृक्ष कट कर गिर गया हो। धरती पर गिरने के बाद वह मूर्छित हो गये। फिर-मूर्छा दूर करने वाले शीतल उपचार से-पंखा आदि के द्वारा हवा करने आदि से होश में आये भी तो अत्यन्त ही दुखी हुए। वह लगातार किंचित् उष्ण जल की धारा के समान अशुधारा वहाने वाले नेत्रों को पीछ कर अत्यन्त दुःखित अपने आत्मा की ही निन्दा करने लगे-हमारे पाप के परिणाम को धिक्कार है ! यह वन्दुवियोग हमको इन्द्र के वज्र के समान व्यथा पहुँचा रहा है। इस प्रकार असह्य प्रभुवियोग-

नेत्रेभ्यः शरतां पुष्पवाणं वृक्ष कपाधनि धरणी पर पटी पडे छे तेम नेनां आलूथेणो नीचे पडी रखां छे अवेवा लगवन्ना न्येपेठ भाई अने शत्रुयोना विनेता गण नंदिनीवर्धनं विरहवेहनाथी शरीर उपरने। अशु शुभावतां धरिभ करताक धरणी पर ढणी पड्या, अने मेडोथ थई गया. आणुथाणु अेकडा थयेता प्रबन्नेनोअे तेमनी भूछां टाणवा शीतण उपचार करिने तेम न् पंथा वडे पवन वगेरे नाभतां राण नंदिवर्धनं वानभां आव्यां. वानभां आवतां ते अर्थत दुःपी ज्युता उना. आंथोभांथी योधार आंसु वही रखां इतां. आंथो दुधवा छतां पुरनी भाइक आंसु उकरतां इतां, दुःभनी केई स्तीमा न इती. दुःभ भाटे तेअे. पोताना आत्माने धिक्कारवा लाअ्या. “धिक्कार इने अमार पापना परिष्ठाभने. आ कथा लवनां पाप उकथ आव्यां इशे ठे भारी आंथो सामे भार

विनिस्ति=व्यययीति मात्रः। एस्-अनेन प्रकारेण दुःसहमद्यपिरहदुःखेन=दुःसहनीय-भीतवर्षमानस्वामिवियोग-
 नान्तस्वेदेन लिङ्गः=दुःखितः प्रजाऽभिनन्दनः=स्वकीयप्रजाऽभ्यन्तानन्दकारको नन्दिवर्षनो राजा दुःककृच्छयः=सशब्दं
 यथा स्यात् तथा-याक्रन्दत्=उच्चैरोदीत, वस्मिन् समये मथाः इस्तिनोऽपि, मद्युषि=नेत्रजलानि प्रमुञ्चताः=पातयन्तः
 सन्तः मस्तोऽभोऽक्रमागिनः=दुःखतश्चोऽभक्तम्। तदानीं=धीवर्षमानस्वामिवियोगसमये दृत्ययैः=नर्तनविधौः
 मयूरैरपि द्रव्य विस्वयत् तथा-दिठयिनः=दृशाः, कुसुमानि=पुष्पाणि, मत्पजनः=अमुञ्चन्-दृशा मद्युविरहेण पुष्प
 शोमारगिता क्रमवन्मिति भावः। तथा-ज्ञानविररणपरायणाः=वनविवरणतत्पराः इरिणाः=सृगाः, उपान्तानि=
 शरीरानि=दृशानि=व्यासान्, पर्यहरन्=पतित्यक्तवन्तः, वः=दुःखः कृष्णमसिषः पक्षिणः आहारः=कृष्णमसण पर्यहरन्,
 एस्-अनेन प्रकारेण सर्वेषु माभिगणेषु मद्युविरहदिपुत्रेषु-धीवर्षमानस्वामिवियोगजनितदुःखाकुलेषु सस्य सः=

भीवर्षमान स्वामी के विरह-जनित खेद से दुःखित होकर मानी प्रजा को मानन्दित करने वाले नन्दिवर्षन राजा
 सिद्धा-पिच्छा कर लून करने लगे। उस समय में अश्व और हस्ती मी भायू बगैरे हुए अत्यन्त शोक के मारी हुए।
 भीवर्षमान स्वामी के वियोग के समय नाचने में निपुण मयूर भी द्रव्य करना थूक गये। हस्तों ने फूलों का परि
 त्याग कर दिया, अर्थात् वे मी प्रसू के विरह से फूलों की शोभा से ररिठ हो गए। तथा कन में विहार
 करने वाले सृगों ने वृन् में मिया हुआ घास मी त्याग दिया। कृष्ण का मसण करने वाले पक्षियों ने
 कृष्णमसण करना मी छोड़ दिया। इस प्रकार समस्त प्राणीस्य मगवान् के वियोग से व्यथित हुए। उत्पन्नात्

भाषणेन वियेधः कथे आ अनुवियेधः तो उन्मत्ता वध देवे मारी था भारी रको छे " योतानी प्रभाने आनन्दित
 कश्चर राजा नन्दिवर्षन प्रभुनेनो वियेधः कर्ता पत्करने पशु पीजगावे तेवा कश्चस्वरे वदोपात कश्य बाञ्छे, विरहनी
 कश्चत्त भारे वरहे व्यापी रही क्वी, पक्षिकोके मद्युवाण मुझी हीधु काथो कने योकाञ्छे जे सभारकाने शोभा
 बदा क्वाते पशु आ वातावरणकी मुक्त न रक्का, तेमनी आञ्छे आकुसुम्ब क्वी, नवन करी रहेवा अशुराञ्छे
 तेमदु नर्तन छीरी हीधु वृक्षा पशु वन्वित न रक्का, नबनेमोभाषी जेभ आञ्छुम्ब अरे तेभ वृक्षा उपरशी पुत्रये
 व्यञ्छुम्बनी आरु कश्चर अरवां बाञ्छा बनभां निर्दोष गीते इस्तां वेण्णां मुनबाळोके उद्येभां वीपिष्ठ कश्य पशु
 छीरी हीधु का प्रसू। ताशे वियेधः। हेने व्याध नशी उपजन्वते। पशु सृ। ने पक्षी सृ। मानवी सृ। देवे
 सृ। व सवन्ना कश्चर आञ्छे म प्रभुना विरहकी भारी बनराए, पशु, पक्षी मानवी कने देवमस्य शोभ दुःखकी

प्रभुत्रियोगविधुरो नरवरो=राजा-नन्दिर्वर्धनः प्रभुं=श्रीवर्धमानस्वामिनं चेतसा=हृदयेन चिन्तयन्=स्मरन् कथयति-

“यत्र च सर्वत्र त्वामेवाऽऽलोकयाम्यहम् ।

त्रियुक्तोऽसीति वीर त्वं, दुःखादेवानुमीयते ” ॥१॥ इति ।

एवं विलपन् नन्दिर्वर्धनो राजा ततः=ज्ञातपण्डवद्वजात् स्वनिशान्तं=लिजगृहं प्रस्थितः=पयातः ॥सू०७९॥
मूलम्—तत्थ गण्दिवद्वणेण बुत्तं-दे वीर ! अम्हे ते त्रिणा सुणं वणं त्रिव पिउकाणणं त्रिव भयजणणं भयणं कइ गमिस्सामो ? ।

हवति य एत्थ सिलोगा—

तए त्रिणा वीर ! कइं वयामो, गिहेऽहुणा सुणवणोवमाणे ।
गोट्टीसुह केण सहायरामो, भोक्खामहे केण सहाऽह वंधू ! ॥१॥
सव्वेसु कज्जेसु य वीर-वीरे-च्चांमतणाइंसणओ तवज्ज ! ।
पेमप्पकिट्ठीइ भजीअ मोयं, गिराऽऽसया कं अह आसयामो ॥२॥

भगवान् के विरह से दुःखी नन्दिर्वर्धन राजा श्रीवर्धमान स्वामी को हृदय से स्मरण करते हुए कहते हैं—
“यत्र तत्र च सर्वत्र, त्वामेवाऽऽलोकयाम्यहम् ।

त्रियुक्तोऽसीति वीर ! त्वं, दुःखादेवानुमीयते ” ॥ १ ”

अर्थात्—हे भ्राता ! मैं जहां तहां सब जगह तेरेकी ही देखता हूँ, अतः कौन कहता है कि तेरा त्रियोग हुआ है, मुझे तो चारों ओर तू ही तू दिखाई दे रहा है परंतु हे वीर ! जब अंतर में दुःख होता है तब अनुमान करता हूँ कि तेरा त्रियोग ही गया है । इस प्रकार मनहीमन बोलते हुए नन्दिर्वर्धन राजा ज्ञातपण्ड उद्यान से अपने भवन की ओर स्वाना हुए ॥सू०७९॥

सुष्ठु न इत्तु. प्रलु तो गथा डवे रडे शेा झथडेा ? ओभ विथारी बाऱे डेये नं-हिवर्धन राण ओभ डडेवा दाऽया डे—
“यत्र तत्र च सर्वत्र, त्वामेवाऽऽलोकयाम्यहम् ।

त्रियुक्तोऽसीति वीर ! त्वं, दुःखादेवानुमीयते ” ॥ १ ॥

अर्थात्—हे भाई ! त्वं तथा अधी जगोळी तने ज् जेठं छुः. तो पथी डेाथु डडे डे तारे। त्रियोग थये छे, भने तो थारे तरडे पूज् पूं हेभाड रहो छे, पथु डे वीर ! न्यारे अंतरमां डुःख थथ छे त्यारे अनुमान डडे छुः डे तारे त्रियोग थथ गयो छे. आ प्रभाणे मनमा ने मनमा ओलता नन्दिर्वर्धन राणओ सातथं डे उद्यानमांथी पोताना लवननी तरडे उगला लयो. (सू०७९)

वर्षापर्यं बंधव ! दंस्यं ते, सुअंजं मादि क्वडम् अवित्त्वं ।

नीरामधिषोडवि क्वाह क्मरे, सरिस्समी सन्धगुणाभिराम ! ॥३॥

इहैवं सुजो विस्मृतस्यं वेसि सव्भेसि अच्चओ मोषियमाल्ख फारा अस्सुहारा निस्सदिडि
सुवाक्कीम्म । उह य अच्चिसुषियामा अस्सुविदुमुवाह्लाणि परिओ विक्तित्तिमारमीअ । एव सोगमयं समय
निरिपित्तय विनयणीवि मंशुष्मि जाओ । एगो अवरस्स इक्खं परोपरं ददु द्ययत्ति विमाधिय विव सहस्स-
किरणो अत्थयिओ । सुरे अत्थयिण चरा य अंधयारड्डच्छायणं परीअ, कमा य सोगाडरा विच्छायययणा सयं
सयं निरं पट्टियया ॥६०८०॥

आया—उत्र नदिवर्षनेनाक्क—“हे वीर ! क्या त्वां विना शून्यवनमिष पितृकालमिष मयजननं भवतं
इयं गमिष्यामः ?

महन्ति चात्र श्लोका — ‘त्वया विना वीर ! कयं ब्रह्मामो, सुरेऽशुना शून्यवनोपमाने ।
गोष्ठीसुखं केन सहाऽऽधरामो, मोक्षामहै केन सहाय वन्थो ! ॥१॥

यूथ का कार्य—‘तस्य’ इत्यादि उनमें से नदिवर्षन ने कहा—हे वीर ! मैं तुम्हारे विना शून्य वन
के समान और स्मृत्तान के समान मय—जनक राजभवन में कैसे जाऊंगा ? इस विषय में श्लोक भी है—
तए किणा वीर ! कइं वयामो, गिरेऽशुणा सुष्णवणोपमाने ।
गोष्ठीसुखं केय सहायारामो, मोक्षामहै केय सहाय वंथू ! ॥ १ ॥

हे वीर ! तेरे विना हम कैसे जाएँ ? इस समय राजभवन से सुनसान वन के समान जान पड़ता
है । हे वीर ! हम किसके साथ गोष्ठी (बाधाकाप के सुन का अनुभव करने) ? हे वन्थो ! हम किस
के साथ बैठ कर मौजान करेंगे ॥ १ ॥

भूगनेा अथ — तस्य’ धन्वादि विवाप इत्यां नदिवधन इके छ के, ‘हे वीर ! हे वारा विना शून्य वने
इसखान लेवा थयं परेवां अवकनठ कवनभां देवी रोते अहं ?” आ विषयभां त्रयु श्लोको छ ते आ प्रभक्षि छ—
“तए किणा वीर ! कइं वयामो, गिरेऽशुणा सुष्णवणोपमाने ।

गोष्ठीसुखं केय सहायारामो, मोक्षामहै केय सहायवन्थू ! ॥ १ ॥

“हे वीर ! वारा विना इवे आ कवनभां देवी रोते अहं ? वारा विना ते आ कवन सुनसान वन
लेवु वाजे छ हे वीर ! वारा वतां हे देवी आइ बोधा इरीथ ? विनेह इरीथ ? हे वंथू ! वारा वतां हे
देवी आइ मेत्रीने भोक्कन इरीथ ? (१)

सर्वेषु कार्येषु च वीर-वीर-त्यामन्वणादर्शनतस्तवाऽऽर्घ्यं ! ।

प्रेमप्रकृष्टया अमनाम मोदं, निराश्रयाः कम् अथ आश्रयामः ॥२॥

अतिप्रियं बान्धव ! दर्शनं ते, सुखाञ्जनं भावि कदाऽस्माकमस्याम् ।

नीरागचित्तोऽपि कदाथ अस्मान्, स्मरिष्यसि सर्वगुणभिराम ! ॥३॥”

इत्येवं भूयोभूयो विलपतां तेषां सर्वेषामक्षितो मौक्तिकमालेव स्फाराऽऽधुधारा निस्यन्दितुमुपाक्रमत । तथा

सर्वेषु कज्जेषु य वीर-वीरे,-च्चाभंतणाईसणओ तवज्ज ! ।

पेमप्पकिट्ठीह भजीअ मोयं, गिरासणा कं अह आसयामो ॥ २ ॥

अइप्पियं बंधव ! दंसणं ते, सुहंजणं भावि कयऽम्ह अक्खिणं ।

नीरागचित्तोऽपि कयाह अम्हे, सरिस्ससी सब्वगुणाभिरामा ॥ ३ ॥ इति ।

हे आर्य ! सभी कार्यो मे 'हे वीर, हे वीर' इस प्रकार तुम्हें संबोधित करके, तुम्हारे दर्शन करके तुम्हारे प्रेम की प्रकृष्टता से आनन्द भोगते थे । मगर आज हम निराधार हो गये । अब किसका आश्रय लेंगे ॥२॥

हे वन्धु ! मेरे नेत्रों के लिए सुखद अंजन के समान तथा अत्यन्त प्रिय तुम्हारा दर्शन अब कब होगा ? हे सर्वगुणाभिराम ! तुम विरक्तचित्त होकर भी कब हमें स्मरण करोगे ? ॥३॥

सर्वेषु कज्जेषु य वीर-वीरे-च्चाभंतणाईसणओ तवज्ज ! ।

पेमप्पकिट्ठीह भजीअ मोयं, गिरासया कं अह आसयामो ॥ २ ॥

अइप्पियं बंधव ! दंसणं ते, सुहं जणं भावि कयऽम्ह अक्खिणं ।

‘ नीराग चित्तोऽपि कयाह अम्हे सरिस्ससी सब्वगुणाभिरामा ” ॥ ३ ॥ इति,

हे आर्य ! दरेक काममा “ हे वीर ! हे वीर ! ” करीने तमने पोकारतो अने तमारां दर्शन करीने तमारा

प्रेमनी प्रकृष्टताथी अमे आनंदने अनुभव करता हता, पषु आणे अमे निराधार थतां हवे केने आश्रय दध्के ? (२)

“ हे वन्धु ! मारा नेत्रेना सुखकारी अंजन समान, तथा धणुा प्रिय अेवा तारा दर्शन हवे मने क्यारे

थशे ? हे सर्वगुणाभिराम ! तमे तो हवे विरक्त चित्तवाणा थथा छे, छतां हेधक हडाडे तो अभेने थाह तो करशेने ? क्यारे करशे ? (३)

चातिशुद्धि का तो शुद्धि नुसुद्धाफलानि परितो विकिरितुमारभत । एवं शोकमयं समयं निरीक्ष्य दिनमणिरपि मन्द
 प्रणिर्भातः । एकोऽपरस्य द्रुत्स परस्यं दृष्ट्वा इत्यत इति विमान्येष सप्तकिरणोऽस्तमितः । घुरेऽस्त्वमिते परा
 धान्यकाराऽऽच्छादनमभारत, अनाम शोकादुरा विच्छायवदनाः स्वक स्वकं घृणं प्रतिगताः ॥२०८०॥

टीका—'कस्य भदिकच्छणेण' इत्यादि—उच्यते—शोकाच्छुभेयु मध्ये नन्दिशर्वनेन उक्तं=शिलापवचनमुकारितम्
 हे वीर ! सयं त्वां विना न्यूनवतमिव तथा-पितृकाननमिव=स्मृशानमिव मयजनने=मयङ्कर मवने=यासाद कर्ण=
 केन प्रकारेण गमितव्याम' ? ।

अत्र विषये श्लोकाच्च भवन्ति यथा—'उप किणा वीर' इत्यादि—हे वीर ! त्वया विना वयमयुना=
 नन्दिशर्वन तथा दूसरे लोग बार-बार इस प्रकार का विलाप कर रहे थे । उन सब के नेत्रों से
 मोतियों की माला के समान मक्खी श्लुषुषारा निकल रही थी अत एव-नेत्र रूपी सीपों से श्लुषुषिन्दु
 रूपी मोती इधर-उपर बिखरने लगे । इस प्रकार शोकमय समय बेलफर घुर्य भी मन्द-
 क्षिप्तों वाला हो गया । एक दूसरे के दुःख को बेल फल परस्पर खेद करते हैं, ऐसा सोच कर ही मानो
 घुर्य अस्त हो गया । घुर्य के अस्त हो जाने पर पृथ्वी ने भयकार रूप काला वस्त्र पारण कर लिया । शोक
 से आहत एवं घुरशाये बेचरे से अपने-अपने स्थान पर गये ॥ २०८० ॥

टीका का अर्थ—शोकाकुल लोगों में से नन्दिशर्वन ने इस प्रकार विलाप के वचनों का उच्चारण
 किया 'हे वीर ! तुम्हारे बिना सुनसान वन के समान और स्मृशान के समान मर्यकर मवन-राजमवन-में
 हम किस प्रकार जायेंगे ? इस विषय में श्लोक भी है—'उप किणा' इत्यादि । हे वीर ! तुम्हारे बिना अब

नन्दिशर्वन अपने आन्व-बने, आ प्रशरनेो विविध विलाप करी शक्यं इत्तं, तेभ्य नैत्रेभ्यो भूरी शोकी शोकीनी
 भाषाऽस्मान् अश्लुषुषवाकं वही रह्यो कृतो, नैत्रे इपी क्षीपामांशि, अश्लु इपी शोकीश्लोका नीकनी अन्यं त्वां वेर-विशेर
 ययु शक्यं इत्तं, यन्न प्रथ अन्ये समस्त प्राक्षीमानां शैवाभां आश्रयते। शोकासि अशने सुभं पशु यश्वी जयेत्,
 शोकेनो आश्रीदारु बये। इशनेनो कार वधु न इत्यवर्ता पक्षिम विद्याभां रोही अथ, सुशोस्त यत्तं पुष्पी उपर
 आशरपट उवाडं अये। शोकादुर अये दोहा पञ्च योतयेतांना स्थाने अना कारे ह्ये आधी नीकन्यां, (१०)
 टीकाको अर्थ—शोकाकुल दोहोभांशी नन्दिशर्वने आ प्रभावे विलापनां वचनेनैव उच्यते। अश्लुषुषु कर्णु "हे वीर
 तथापि विना सुन-वान वननां जेच्यं अने स्मृशान समान भाष कर शक्यमवनभां शैवी सीते रही शक्यो ?" आ निरे
 श्लोक पञ्च छे— उप किणा इत्यादि ।

इदानीं शून्यवनसदृशो भवने कथं=केन प्रकारेण व्रजामः=गच्छामः ? हे वन्धो ! अथ=इदानीम् वयं गोष्ठीसुखं गोष्ठी=मित्रमण्डली, तत्र सुखम्=तत्त्वविमर्शजनितमानन्दं केन सह आचरामः=अनुभवामः, तथा केन सह वयं भोक्ष्यामहे ॥१॥

हे आर्य ! सर्वेषु कार्येषु हे वीर ! हे वीर ! इति तव आमन्त्रणात् तत्र दर्शनात्, तव प्रेमप्रकृष्ट्या स्नेहप्राप्त्यर्थेण च एतावद्दिनं मोदस्=आनन्दम् अभजाम=प्राप्तवन्तः, अथ=तत्र विरहसमयेऽधुना निराश्रयाः सन्तो वयं कं जनम् आश्रयामः ? ॥२॥

हे वान्यव ! अस्माकम् अक्षयाम्=नेत्राणाम् सुखाञ्जनं=सुखजनकाञ्जनं अतिप्रियं ते=तव दर्शनं पुनः कदा=कस्मिन् काले भावि=भविष्यति ! हे सर्वगुणाभिराम =हे सर्वगुणसुन्दर ! नीरागचित्तोपि=रागरहितसना अपि त्वं कदा=कस्मिन् काले अस्मान् स्मरिष्यसि ? ॥३॥

शून्य वन के सदृश भवन में हम किस प्रकार जाएँ ? हे वन्धु ! इस समय हम वह गोष्ठी का सुख-तत्त्व विचारणा से होने वाला आनन्द-किस के साथ अनुभव करेंगे और किस के साथ भोजन करेंगे ? ॥ १ ॥ हे आर्य ! सभी कामों में 'हे वीर, हे वीर,' इस प्रकार तुम्हें संबोधित करके और तुम्हारे दर्शन करके तथा तुम्हारे प्रेम की प्रचुरता से हम आनन्द-लाभ किया करते थे। अब तुम्हारे वियोग में निराधार हो गये हैं। हाय, किसका आधार लें ? ॥ २ ॥

हे वन्धु ! हमारे नेत्रों के लिए सुखजनक अंजन के समान, तथा अत्यन्त प्रिय तुम्हारा दर्शन फिर कब होगा ? हे समस्त गुणों से सुन्दर ! राग-रहित चित्त वाले होकर भी तुम हमें कब स्मरण करोगे ? ॥ ३ ॥

हे वीर ! तमारा विना इवे शून्य वनतां नेवा लवनमां अमे देवी रीते न्दधये ? हे अंधु ! आ समये अमे ते गोष्ठीतुं सुभ अने तत्त्वविचारणुथी थनार आनंदना डोनी साथे अनुभव करणुं अने डोनी साथे लोअन करणुं ? ॥१॥ हे आर्य ! अथां अमेमां "हे वीर, हे वीर" आ रीते तमने संघोधीने अने तमारां दर्शन करीने तथा तमारा प्रेमनी नियुतताथी अमे आनंद प्राप्त करतां हुतां. इवे तमारा वियोगथी निराधार थध गयां छीअये. हाय, इवे डोना आधार देवे ? ॥२॥

हे भाध ! अमारी आओने आंटे सुभजनक आअणुनां नेवां तथा अत्यंत प्रिय तमारां दर्शन करी कथारे थशे ? हे समस्त गुणोथी सुंदर भाध ! रागरहित चित्तवाणा थधने पथु तमे कथारे अमाइं रभरणु करथे ? ॥३॥

ररयेयम् अनेकमकारसीहस्य श्रुयोपुष्यः=जुनः पुनः विलपतां=खेदवचनमुवातां मेपां=नन्दिवर्षनानीना
 सर्वेषां जनानाम् अशितः=नेत्रेष्यो मौक्तिकमालेव=मुक्ताफलमालावत् स्फारा=माहती अभुषारा=नेत्रप्रजरूपपरम्परा
 निस्यन्दिह=निगवितुम् उपाक्रमत=भारमत । तथा च-अक्षिशुक्तिकातः=नेत्ररूपयुक्तिस्यः अशुशुभिसुक्ताफलानि
 नेत्रप्रजरूपरूपनीक्तिकानि विकिरितम्=आसर्तुम् आरमत, एवम्=एतादृशं शोकसमय=शोकावसरं निरीक्ष्य=
 इष्टा दिनमस्मिन्नि=स्यौडपि मन्दघृणिः=अन्वद्विक्रियाः-मस्तोमुली जातः । एको जनः अपरस्य दुःखं=
 मञ्जुविरदनविकखेदं परस्परम्=प्रयोन्व इष्टा दूयते=स्लिषति इति=एतत् विमान्येव=विचार्यैव सहस्रकिरणः=सूर्यः
 मस्तामितः=मस्तावन्नं गतवान् । सरे=सूर्ये मस्तामिते=मस्तावन्नं गतेसति धरा=शृण्वी मन्वकाराऽऽस्मावनयु=मन्व
 काररूपवसम् अपरत्=धारितवती-भून्वकारात्वाजमवविति माष । जना =शोकाच्च शोकातुराः=शोककुलाः अत
 एत-विच्छायदवना=निव्यभमुलाः स्वकं स्वकं=निनं निमं पाय=स्यतं पतिगताः=निवृत्तपातवन्त ॥सू०८०॥

इस तरह धार-धार दुःखमय वचन उच्चारण करने वाले नन्दिवर्षन आदि सभी जनों के नेत्रों
 से मोतियों की माला के समान गहरी मोतियों की धारा निकलने लगी, अत एव मौलों रूपी सीपों से
 मधु रूपी मोती इपर-उपर विलरने लगे। इस प्रकार का शोक अपसर जान कर मानों सूर्य सी मन्दकिरण-
 अस्तावन्त ही गया। एक दूसरे के दुःख को देख कर, परस्पर दुली होता है, मानों यही सोच कर सूर्य
 कर किया, अपकार अर्थात् ढँक गई। सभी लोग शोक से भाकुल थे, अतएव सब के चेहरे फीके पड़ गये
 थे। वे अपने-अपने स्थान पर बले गये ॥सू०८०॥

भा शीते वारवार दुःखमय वचनोक्तुं लब्धास्य इत्याह नन्दिवर्षन आदि सर्वे दोशानां नेत्रमाद्यौ शोचि-
 त्वादी भाषा समान शोचौ आशुज्ज्वली धारा वहेवा वाच्यी, तथै आशौ इपी छिशिभांशौ आकु इपी शोचौ आश
 तेष वैशावा वाञ्छा.

भा प्रभारने शोचते। अपसर लघुने सूर्यं पक्ष भइ हिरण्य-अस्ते। मुष यक्ष अथो ज्येष्ठीवर्षां शोच ज्येष्ठी
 पक्षेने ज्येष्ठीवर्षा इ पी वचने भास्येने सूर्ये अस्त आस्तावजनी तक्षे वाञ्छा अथो सूर्ये अस्त पाभत
 कर्ता तथै वशावा अक्षेरा शीजं यदी अना कर्ता तेज्जा शोचिताने स्थाने आस्था भवत ॥सू०८०॥

मूलम्—जया णं समणे भगवं महावीरे स्वत्तियकुंडगामाओ निग्गच्छित्ता कुम्मारगामस्स समीवं समणुपत्ते, तथा णं सरो अत्थमिण्णो, सूरे अत्थमिण्णो साहूणं विहरणं अकप्पणिज्जंति कट्टु भयवं गामासन्नतरुयले चारस-पोरिमिण्णो काउसग्गे ठिण्णो । भगवं य जाव जीवं परीसह सहणसीले आसि, अओ इंददिण्णेण देवदूसेण वि वत्थेण भगवया हेमंते वि सरिं नो पिहियं । इंददिण्णं देवदूसं वत्थं जं भगवया धरियं तं 'सवत्तित्थराणं इमो कप्पो' ति कट्टु धरियं ।

अभिणिक्खमणसमए जं भगवओ सरिं सुगंधिद्ववेण चंदणेण य चच्चियं आसि, तग्गंधलुद्धा सुद्धा सुगंधिपिया भ्रमरपिवीलियाइजंतुणो साहियं चाउम्मासं जाव पट्टुसरिं ओल्लिगिय ओल्लिगिय मंसं सहिरं च चोसीअ, परं भगवया णो ते णिवारिया ।

तओ पच्छा वीए दिवसे कोऽपि गोवो बलिवदे पट्टुसमीवे ठविय पट्टु कहीअ—'हे भिक्खु ! इमे मे वलिवद्दा रक्खणिज्जा, न कर्हिपि गच्छिज्ज' ति—कहिय सो गोवो भोयणपाणट्टं णियगिहे गओ । भुत्तपीओ सो पट्टुपासे आगमिय बलिवदे अदट्टुणं तेसिं गवेसणाए अहोरत्तं वणं वणं भमीअ । एवं गवेसणाए जया नो लद्धा बलिवद्दा तथा सो पट्टुसमीवे आगच्छइ । तत्थ चरियतणे तिचे ठिण्णो बलिवदे पासइ । तए णं से गोवे आसुरत्ते मिसमिसेमाणे पट्टुमेवं कहीअ—

“रे भिक्खु ! किं मम बलिवदे संगोविय मए सह हांसं करेसि ? भुंजाहि एयस्स फलं” ति कहिय जाव भयवं तज्जेउं तालेउं च सणुज्जइ ताव दिवि सक्कस्स आसणं चलइ । तए णं से सक्के देविंदे देवराया ओहिणा भगवओ उवसणं आभोगिय मणुस्सलोए हव्वमागमिय तं गोवं एवं वयासी—“हं भो ! गोवा ! अपत्थियपत्थया ! दुरतपंतलक्खणा ! हीणपुण्ण ! चाउइसिया ! सिरिहिरिधिइक्कित्तिपरिवज्जिया ! अधम्मकामया ! अणुणकामया ! नरयनिगोयकामया ! अथम्मकंखिया ! अणुणकंखिया ! अणुणकंखिया ! अणुणपिवासिया ! नरयनिगोयकंखिया ! नरयनिगोयपिवासिया ! किमइं एरिसं पावकम्मं करिसि ? जं तिलोयनाहं तिलोयवंदियं तिलोयसुहरं तिलोयहियकरं भगवं उवसग्गेसि’—ति कट्टु तं तज्जेउं तालिउं हणिउं उवाकमीअ । तं दट्टु करुणावरुणाए भगवं सक्कं देविंदं देवरायं पडिसेहीअ । तए णं से सक्के देविंदे देवराया पट्टु एवं वयासी—“पट्टु ! देवाणुप्पियाणं भग्गेवि बहवे दुस्सहा परीसहोवसग्गा आवडिस्संति, अओऽहं ते निवारिउं तुम्हाणं अंतिए चिट्ठामि । सक्किदस्स वयणं सोच्चा भगवया कहियं—“सक्का ! जे य अईया, जे य अणागया, जे य पडुप्पणा तित्थयरा ते सव्वेवि सएण उट्ठाण—कम्म—वल—वीरिय—पुरिसक्कार—परक्कमेणं कम्माइं खवेति अस्सहेज्जा चेव विहरंति, नो णं देवा—

इत्येवमर्थे अनेकप्रकारमीदृश भूयोभूयः=पुनः पुनः विलपतां=खेदवचनसुधारतां नेपां=नन्दिषर्षनासीनां सर्वानां जनानाम् अस्ति =नेपेभ्यो मौक्तिकमाथे=युक्ताफलाखापत् स्कारा=यशवी अशुभारा=नेत्रजलपरम्परा नित्यन्दिह=निर्गतितुम् उपाकमत=आरमत् । तथा व=अस्तिशुक्तिशतः=नेत्रकस्यशुक्तिभ्यः अशुभिन्युक्त्याफलानि= नेत्रजलकस्यमौक्तिकानि विकिरितुम्=यसर्वम् आरमत्, एवम्=एतादृशं शोकवचनम्=शोकानसं निरीक्ष्य= इष्टा दिनमणिरपि=व्याजपि मन्दशुभिः=मन्वृक्षिण्य -अस्तोन्मुली जातः । एको जनः अपरस्य दुःखः= मन्विरननितखेद परस्परम्=अयोन्य इष्टा दूयते=लियति इति=एतत् विभाव्येक=विचार्यैव सरस्रक्षिण्य=सूर्यः अस्मितः=अस्ताचलं गतवान् । सरे=सूर्ये अस्मिते=अस्ताचलं गतेसति परा=दृषिती अन्वकाराऽऽच्छादनम्=यस्य कारूपवत्तम् अपरत्=परितपती=पूरपकारादवाऽमचविति माघः । जनाः=लोकान् शोकान् शोकान्=शोकान्कुलाः अतएव=विच्छायापदना=निव्यममुत्साः स्वर्कं स्वर्कं=निर्मं निमं भामं=स्थानं प्रतिगावाः=निमित्तव्यगतयन्तः ॥सु०८०॥

इस तरह बार-बार दुःखमय वचन उच्चारण करने वाले नन्दिषर्षन आदि सभी जनों के नेत्रों से मोतियों की माका के समान गहरी आँसुओं की धारा निकलने लगी, अत एव शौलों सभी सीपों से अस्तोन्मुल हो गया। एक दूसरे के दुःख को देख कर, परस्पर दुःखी होता है, मानो यही सोच कर सूर्य अस्ताचल की ओर चला गया। सूर्य के अस्त हो जाने पर पृथ्वी ने अंपकार सभी काले वल को घायल कर लिया, अंपकार अर्थात् ढँक गई। सभी लोग शोक से आकुल थे, अतएव सब के चेहरे पीके पड़ गये थे। वे अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥सु०८०॥

आ शीते वारवार इन्द्राप्रभं वचनेऽपु उच्चारय वचनेऽपु उच्चारय नन्दिषर्षन आदि सर्वे लोकानां नेत्रेभाधी शीवी-
 नेत्रे भाजा सभान शीवी आसुकोनी धारा बहेव दाञ्ची, तथी आसि इधी छिथिभाधी अशु इधी शीवी भावी आभ
 तेष वेशय दाञ्च्य।

आ प्रथमो लोकाने अपरस्य आसुने सूर्यं पशु मइ शिशु-अस्तां युज शय अशो- लोकजीवनां दुःख ज्येष्ठनि
 परस्पर इन्धी शय छि अद्ये ज्येष्ठु क्वाशीने अ सूर्य आस्त आस्तावगती वरश्च आश्व्ये ज्येष्ठे सूर्ये आस्त धामतां
 पूथ्वीञ्च अंधकार इधी अन्ते भास्व करी दीपु ज्येष्ठे इ दे पूथ्वी अंधकारादी ६ शोर् अइ अश्वना लोकेशी शीवी अशुज
 ६नां, तेषी जयथान अहेरा शीर्षं यदी अनां वत्तं, तेज्या शितथिवाते स्थाने भास्वना अश्व ॥सु०८०॥

मूलम्—जया णं समणे भगवं महावीरे खलियकुंडणामाओ निग्गच्छिच्चा कुम्मारगामस्स समीवं समणुपत्ते, तथा ण मुरो अत्थमिओ, सुरे अत्थमिए साहूणं विहरणं अकप्पणिज्जंति कट्टु भयवं गामासक्कतरुयले वारस्स-पोरिमिए काउसग्गे ठिए । भगवं य जाव जीवं परीसह सहणसीले आसि, अओ इंददिण्णेण देवदूसेण वि कथेण भगवया हेमंते वि सरीरं नो पिहियं । इंददिण्णं देवदूसं वत्थं, जं भगवया धरियं तं 'सव्वतित्थयरणं इमो कप्पो' ति कट्टु धरियं ।

अभिणिकखमणसमए जं भगवओ सरीरं सुगंधिद्वेवेण चंदणेण य चच्चियं आसि, तग्गंधलुद्धा मुद्धा सुगंधिपिया भमरपिचीलियाइजंतुणो साहियं चाउम्मासं जाव पहुसररीरं ओलगिय ओलगिय मंसं रुद्धिरं च चौसीअ, परं भगवया णो ते णिवारिया ।

तओ पच्छा वीए दिवसे कोडवि गोवो बलिवहे पहुसमीवे ठविय पहुं कहीअ—'हे भिक्खू ! इमे मे वच्चिद्दा रक्खणिज्जा, न कहीपि गच्छिज्ज' ति—रुहिय सो गोवो भोयणपणहं णियग्गिहे गओ । भुत्तपीओ सो पहुपासे आगमिय बलिवहे अद्वहूणं तेसि गवेसणाए अहोरत्तं वणं वणं भमीअ । एवं गवेसणाए जया नो लद्धा बलिवद्दा तथा सो पहुसमीवे आगच्छइ । तत्थ चरियतणे तित्ते ठिए बलिवहे पासइ । तए णं से गोवे आसुरत्ते मिसमिसेमाणे पहुमेवं कहीअ—

“रे भिक्खू ! किं मम बलिवहे संगोविय मए सह हासं करेसि ? भुंजाहि एयस्स फलं” ति कहिय जाव भयवं तज्जेउं तालेउं च समुज्जयइ ताव दिवि सक्कस्स आसणं चळइ । तए णं से सक्के देविदे देवराया ओहिणा भगवओ उवसगं आभोगिय मणुस्सलोए हव्वमागमिय तं गोवं एवं वयासी—“हं भो ! गोवा ! अपत्थियपत्थया ! दुरतंपंतलक्खणा ! हीणपुण ! चाउइसिया ! सिरिद्धिरिद्धिक्कित्तिपरिचज्जिया ! अथम्मकामया ! अणुणकामया ! नरयनिगोयकामया ! अथम्मकंखिया ! अथम्मपिवासिया ! अणुणकंखिया ! अणुणपिवासिया ! नरयनिगोयकंखिया ! नरयनिगोयपिवासिया ! किमइं एरिस पावकम्मं करिसि ? जं तिलोयनहं तिलोयवंदियं तिलोयसुहयं तिलोयहियकरं भगवं उवसग्गेसि'—त्ति कट्टु तं तज्जेउं तालिउं ह्णिउं उवाक्कमीअ । तं दट्टु करुणावस्सणालए भगवं सक्कं देविदं देवरायं पडिसेहीअ । तए णं से सक्के देविदे देवराया पहुं एवं वयासी—“पहू ! देवाणुपियणं अगेवि वहवे दुस्सहा परीसहोयसणा आवडिस्संति, अओडहं ते निवारिउं तुम्हाणं अंतिए चिद्दामि । सच्चिदस्स तं वयणं सोच्चा भगवया कहियं—“सक्का ! जे य अईया, जे य अणागया, जे य पडुण्णणा तित्थयरा ते सव्वेवि सएण उट्टाण—कम्म—वल—वीरिय—पुरिसक्कार—परक्केमेणं कम्माइं स्वेंति अस्सेहज्जा नेव विहरंति, नो णं देवा—

मुर-याग-त्रयस्य-एव-स-ई-नर-ई-पुरिस-याल्ल-गवच्य-मरोरगार्गं-साहिज्जं-इच्छति"-ति नो णं सका ! मम दम्मणि माहज्जपओयण । एवं सोषा सक्क वविंद दवापाया नियमवराहं त्वाभाविय ववइ नमंसाह, वंदिचा नमंमिणा जामेव विधिं पाउअणुए तामव दिसिं पडिगए ॥इ०८१॥

छाया—यदा न्मलु भयवां मगवान् महावीरः क्षत्रियकुलप्रामाव् निर्गय 'कुमार'-ग्रामस्य समीप समनुमातः तदा नवृ मृतोऽन्वमिन । मृतोऽन्वमिते साधुनां विरहणमकरानीयमिमि कृत्वा मगवान् ग्रामाऽऽसख-तन्नाय डाइदपौषिक दयासगौ म्यित । मगवांश्च यावज्जीवं परीपसइन्वीक आसीव अत इन्द्रदशेण देव-दृष्याणि मगवता हेमनैऽपि शरीरं ना पिहितम् । इन्द्रेण टवदृष्य वक्त्र यद् मगवता वृत्, वत-सर्वतीय ह्राणामयं रूप ' इति कृत्वा शतम् ।

मूक का श्रय—'प्रया णं' न्त्यादि । नव भ्रमण मगवान् महावीर क्षत्रियकुलप्राम से विचार कर 'कुमार' ग्राम क समीप पहुँच, तत्र मूर्ध अस्त हो गया । मूर्ध के अस्त हो जाने पर साधुओं को विहार करना देखवा नहीं, यह साच घर मगवान ग्राम क समीप में एक वृक्ष के नीचे वारह पौरुषी का छाया तर्पं घरक म्यित हो गप ।

मगवान् यावज्जीवन परीरह-सहनशील थ । अत एव-उन्वोंने इन्द्र के द्वारा दिये हुए देवदृष्य वल स मी, इमन्व श्रुत में मी शरीर नहीं ईका । इन्द्र का दिया देवदृष्य वल जो मगवान ने धारण किया ता 'समग तीर्थकर्तों का यह कल्पई' ऐसा समझ कर घाल्य किया ।

भुवनेा अई—'प्रयाणं' अर्थात् भवत्वादि । देवा भयम् अगवान् महावीर क्षत्रियकुलप्रामनरक्षी विचार करी कुमार आभनी पासे पडोव्या ते समये अर्थोन्व दथे । अर्थोन्व यतां साधुज्जोने विचार करवे । कल्पतो नधी ज्येभ विचारी अत्रवान-आभनी नल्लभमा जेक वक्ष नीथे नार पडोरने । आयोत्सभं करी स्थिर ठका रहा । अगवाने अप एव सुधी पीरडेने सकन करपावु नत वीधु वतु ते अनुसार भन्ने पडोवयेवा देवदृष्य परअधी पणु तेमखे कुभन्व श्रुतने । अमभ होवा छवां योतावु शरीर दांशु नदि ।

पं । पडोवयेव देवदृष्य वअने आ न्भवकार सपं वीईईका आबरे छि ज्येभ समलने प्रभुजि तेने । एपीपर इतो नतो वीक्षा समये अत्रवानना शरीर एपर सुअधी डज्ये तथा अइनने । देव करवाभा आऽने । अतो

अभिनिष्क्रमणममये यद् भगवतः शरीरं सुगन्धिद्रव्येण चन्दनेन च चर्चितमासीत् तद्गन्धलुब्धा सुग्धाः सुगन्धप्रिया भ्रमरपिपीलिकादिजन्तवः-साधिकं चतुर्मासं यावत् प्रशुरीरेऽवल्ययावल्यय मासं रुधिरं च अचरन्, पर भगवता नो ते निवारताः ।

ततः पश्चात् द्वितीये दिवसे कोऽपि गोपो वलीवर्दान् प्रसुसमीपे स्थापयित्वा प्रसुमकथयत्-“ हे भिक्षो ! इमे मे वलीवर्दा रक्षणीयाः, न क्वचिदपि गच्छेशुरि ” ति कथयित्वा स गोपो भोजनपानार्थं निजगृहे गतः । युक्तपीतः स प्रसुपार्श्वे आगत्य वलीवर्दान्दृष्ट्वा तेषां गवेषणायाम् अहोरात्रं वन वनम् अभ्रमत्, एवं गवेषणया यदा न लब्धा वलीवर्दाः, तदा स प्रसुसमीपे आगच्छति, तत्र चरितवृणांस्तृप्तान् स्थितान् वलीवर्दान् पश्यति, ततः खलु स गोप आशुरकः मिसमिसायमानः प्रसुमेवमकथयत्—

दोक्षा के समय भगवान् का शरीर सुगंधी द्रव्यों से तथा चन्दन से चर्चित था, अतः उस सुगंध के लोभी सुग्ध एवं सुगंधप्रिय भ्रमर आदि जन्तुओं ने चार मास से भी कुछ अधिक समय तक प्रभु के शरीर में चिपट-चिपट कर उनका मास और रुधिर चूसा, परन्तु भगवान् ने उनका निवारण नहीं किया।

तत्पश्चात् दूसरे दिन एक गुवाल अपने बैलों को प्रभु के समीप खड़ा करके प्रभु से बोला-‘हे भिक्षो ! मेरे इन बैलों की रखावली करना; ये रुद्धीं चले न जाएँ ।’ इस प्रकार कह कर वह गुवाल भोजन पानी के निमित्त अपने घर चला गया । खा-पीकर वह प्रभु के पास आया । बैल दिखाई न दिये । तब वह दिन भर और रात भर सारे वन में बैलों के अन्वेषण में भटकता रहा । इस प्रकार अन्वेषण करने से जब बैल न मिले तो वह भगवान् के पास आया । उसने देखा-बैल वहीं पास खाकर तृप्त हुए बैठे हैं । तब वह गुवाल बहुत क्रुद्ध हुआ और मिसमिसाता हुआ प्रभु से इस प्रकार बोला—

आयी ते सुगधना दोलभी जेवा भ्रमर-डीडिओ आदि जतुओजे थार भासथी पथु वधारे वणत सुधी प्रभुना शरीरे वजणी रही तेभनु भास अने रुधिर थूसु, ते छता लगवाने तेभने अटकाव्या नडि.

એક દિવસ એક ગોવાળ પોતાના બળદોને લઈને આવ્યો અને પ્રભુની પાસે ઉભા રાખી બોલ્યો કે ‘હિ ભક્ષુ ! તુ આ મારા બળદોનું રક્ષણ કરજે અને તે કયાંય ચાલ્યા બંધ નહિ તે ભેતો રહેજે.’ આ પ્રમાણે કહી ખાવા માટે ગોવાળ પોતાના ઘેર ચાલ્યો ગયો. પાંચમીને તે પ્રભુની પાસે આવ્યો; ત્યારે બળદ તેના ભેવામાં આવ્યા નહિ તેથી તેણે આજો દિવસ ને રાત આખા વનમાં તેની શોધમાં વિતાવી છતાં પણ બળદો નહિ મળવાથી તે ભગવાન પાસે આવી પહોંચ્યો. અહીં આવીને બેસ્યું તો તેણે બળદોને બેઠલાં જોયા અને તેઓ ઘાસ-ચારો વાગોળી રહ્યા હતા

“रे भिक्षो ! किं मम वलीचरान् संगोप्य मया सह हास्य करोषि ! सुखं पतस्य फलम्” इति कथयित्वा यावत् भगवन्तं तर्नयितुं वाढयितुं च समुद्यतते वावत् विनि शुकस्याऽऽसनं चलति । ततः स भद्रा देवेन्द्रो देवराजोऽवधिना भगवत् उपसर्गमासुष्य मनुष्यलोके इत्युपागत्य तं गोपमेवमवादीत्—“रे भो ! गोप ! अपार्थित पापक ! दुरन्तमान्तलक्षण ! गीतुष्यचतुर्दशिक ! भी शी इतिकीर्तिपरिनिमित्त ! अथर्मकामक ! अशुभ्यकामक ! नरकनिगोदकाक्षक ! अथर्मकाक्षित ! अथर्मविपासित ! अशुष्यकाक्षित ! अशुष्यविपासित ! नरकनिगोदकाक्षित ! नरकनिगोदविपासित ! किमर्थमीदृशं पापकर्म करापि ? यत् भिक्षोऽनायं भिक्षोऽकवन्दितं धियोऽसुखकरं भिक्षोऽकश्चित्करं भगवन्तमुपसर्गयसि” इति कृत्वा तं तर्नयितुं वाढयितुं इच्छुपाकृतम् । तद् दृष्ट्वा करुणा

‘भर भिक्षु ! मरे बैकों को छिना कर क्या मेरे साथ उपवास करता है ! अच्छा छे, इस का फल चल छे ।’ इस प्रकार कह कर वह ज्यों ही भगवान् की तर्जना और ताड़ना करने को तैयार होता है, उसी समय स्वर्ग में राक्ष का आसन धरूपमान हुआ । तब शुक देवन्द्र देवराज अवधिमान से भगवान् पर उपसर्ग आया मान कर उत्काम मनुष्यलोक में आय, और गुवाक से बोले—‘अरे गोप, अपार्थित के मागीं, कुम्पनी, शीन-शुष्य, कृष्ण चतुर्दशी को जन्म देने वाले, भी शी इति और कीर्ति से कोरे, अथर्म की कामना करने वाले, अशुष्य की कामना करने वाले, नरक-निगोद की कामना करने वाले, अथर्म के इच्छुक, अथर्म के प्यासे, अशुष्य के कामी, अशुष्य के प्यासे, नरक-निगोद की इच्छा करने वाले, नरक-निगोद के प्यासे, किस लिये यह पाप-कर्म कर रहा है ? तीन लोकके नाथ, तीन लोकके वन्दित, तीन लोकके मुलकारी और तीन लोकके शिवकारी भगवान् को उपसर्ग करता है ?’ इस प्रकार कह कर

आधी ओषाण बोये। उससे बोये। अने गोपभी भ्रमभ्रमते। प्रभुने बड़ेव्य बाओये।—‘अरे भिक्षु ! श्रु सु भारा भगवनेने छुपावी माणी मारी नरशरी हरवा भागतो बूते।’ तो बोये छ आधी पूरे भरभरीवु इण व्याप।’ अथ भोवी भगवानने भारवा तैयार बोये। आ सभये स्वर्गंभां शङ्केन्तु आसन वदावधान अशु आसन अद्वित भतानी साथे तैवे अवधिसानेना उपरोध भूओये। आ जान द्वारा तेना बहवभां आशु छे भगवान उपर उपसर्ग आओये छ तेथी तलाब ते भगभोदोहभां ठवरी आओये अने वैवाकने बडेवा बाओये।—‘के जग्गाद्वित भागीं लेतेवे भक्षुना आबेनार, भुखण्डी, कीकुरपुत्र हृष्य योदधाना नाथ, वधनी, बल्लभ येथ अने श्रित्तिशी पल्लव, अथम छपुशु अथमना भारा पापम डानी, अथम भ्राथा नरक-निबोडना छपुशु था भाटे अथ पाप शरी पको छे ।’ छ अथ निबोडनीय नबोड नोडन नबे वैधान लवकारी अने सुभकारी जेवा लभवानने इच्छ

वरुणालयो भगवान् शक्रं देवेन्द्रं देवराजं प्रत्यषेधत् । ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः प्रभुमेवमवादीव—‘प्रभो ! देवानुप्रियाणामग्नेऽपि बहवो दुःसहाः परीपहोपसर्गो आपतिष्यन्ति, अतोऽह तान् निवारयितुं युष्माकमन्तिके तिष्ठामि । शक्रेन्द्रस्य तद् वचनं श्रुत्वा भगवता कथितं—शक्र ! ये चाऽतीताः, ये चाऽनागताः, ये च प्रत्युत्पन्नास्तीर्थकराः, ते सर्वेऽपि स्वकेन उत्थानकर्मवल्त्रीर्यपुरुषफारपराक्रमेण कर्माणि क्षययन्ति असहाया एव विहरन्ति, नो खलु देवाऽसुरनागयक्षराक्षसकिन्नरकिंपुरुषगरुडगन्धर्वमहोरगादीनां साहाय्यमिच्छन्ति’ इति नो खलु शक्र ! मम कस्यापि साहाय्यमयोजनम् । एवं श्रुत्वा शक्रो देवेन्द्रो देवराजो निजमपराधं क्षमयित्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ ३०८१ ॥

शक्र उसे ताड़ने, तर्जने और हनने के लिये उद्यत हुए । यह देखकर करुणासागर प्रभुने शक्र देवेन्द्र देवराज-को मना कर दिया । तब शक्र देवेन्द्र देवराजने प्रभु से इस प्रकार कहा—‘प्रभो ! देवानुप्रिय को आपने भी बहुत-से दुस्सह परीपह और उपसर्ग आँगे, अतः उनका निवारण करने के लिये मैं आपके पास रहता हूँ ।’

शक्रेन्द्र का कथन सुनकर भगवान् बोले—‘हे शक्र ! जो तीर्थंकर अतीत में हुए हैं, भविष्यत् में होंगे और वर्तमान में हैं, वे सभी अपने ही उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम से कर्मों का क्षय करते हैं, अस्हाय ही विचरते हैं । देवों, असुरों, नागों, यक्षों, राक्षसों, किन्नरों, किंपुरुषों, गरुडों, गन्धर्वों, और महोरगों आदि देवोंकी सहायता की इच्छा नहीं करते । हे शक्र ! मुझे किसीकी सहायताका प्रयोजन नहीं है ।’

इस प्रकार सुनकर शक्र देवेन्द्र देवराजने अपना अपराय खमाकर वन्दना और नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार कर के जिस दिशा से वह प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ॥ ८१ ॥

‘आपी रह्यो छे ?’ आभ कडी शक्रेन्द्र तेने भार भारवा तैथार थया. आ दृश्य जेई प्रभुजे शक्रेन्द्रने तेम करता अटकाऽथा. ते वज्जते शक्रेन्द्रे प्रभुने प्रार्थना करी के ‘छे भगवन्त ! आपनी छपर आगण धर्या परीपहो आने दुःषो आवी पडशे, भाटे तेना निवारथु अर्थे’ हूँ आपनी साथे रहूँ ?’

शक्रेन्द्रजु कथन साभणी भगवान् जोदथा, ‘छे शक्रे ! ने जे तीर्थ’करे। श्रुतकाणमां थया छे, वर्तमानमां थाय छे आने आगाभी काणे थये ते मधा पोताना उत्थान कर्म-गत-वीर्य-पुरुषकर आने पराक्रम वडे कर्मने। क्षय करे छे आने आसहायपथे विचरे छे. तेज्यो कक्षापि पषु देव-असुर-नाग-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किंपुरुष-गरुड गंधर्व आने महोरग आदिनी सहायता विना न विचरे छे आने तेज्योनी महती लेथ पषु धर्या राभता नथी तेथी छे शक्रे ! भारे कर्षनी पषु सहायतानी नरर नथी. आ प्रभाषे सांभणीने देवराजे पोतानी विनति जोक्रे शशी आने

टीका—'नगर्भ' इत्यादि। यदा=यस्मिन् समये सखु भयभीत भगवान् महावीर' सत्रियकुण्डप्रग्रामात् निर्गत्य=निर्गम्य कुमाराग्रामस्य समीपं समनुमातो=गतवान् तदा=तस्मिन् काले सूरः=सूर्यः अस्वमित्=अस्त गत। सूर अस्तमिते=सूर्यास्तपनान्तरं सापूर्णा विरारण=विराटः अह्वनीयम् इति नियमोऽस्तीति कृत्या=इति पुत्रा भगवान् श्रीवीरिणम् ग्रामाऽसक्तस्त्वच्छे=कुमाराग्राम्यप्रामनिकत्वं विद्वत्समूहे द्वादशयौश्रीके=द्वादशयौश्रीके=भार्या यस्य स तथा तस्मिन्=द्वादशपहरात्रचिके कायोत्सर्गो स्थितः।

भगवार्थं याचञ्जीके=जीवनपयन्तम्, परीयवसहनश्रीलः=श्रीतोऽप्याशिसहनकारी आसीत्। इन्द्रचेन देवदू प्यप=देवसंकेणापि भगवता हेमन्तेऽपि=हेमन्तभ्रतानपि शरीरं नो निहितवन्=नो आच्छादितम्। अन्येषु ऋतुषु तु

टीका का अर्थ—जिस समय भगवान् महावीर सत्रिय कुण्डग्राम से विहार कर कुमाराग्राम के समीप गये, उस समय सूर अस्त हो गया। सूर्य अस्त होजाने पर सापूर्णे को विहार करना नहीं कल्याण है, ऐसा नियम है, ऐसा जानकर भगवान् महावीर स्वामी, कुमाराग्राम के समीप क इंस के नीचे चार पहर तक श्रिया जाने का कायोंसर्ग करके स्थित हो गये।

भगवान् जीवनपर्यन्त शीत, उष्ण, आदि परिपूर्य को सहन करने वाले थे। उन्होंने इन्द्र के द्वारा दिये हुए देवदूत्य सब से मी, हेमन्त ऋतु में मी, शरीर को आच्छादित नहीं किया। इस से यह स्वतः

अवधानने बहना=भयभार ठकां वहना=भयभार करीने ने दिव्याभांशी ज्ञान्वा कृता ते दिव्याभं आरुधा गम्। (स्०८१)
 विद्योर्ध्व=इत्ये अने भावे साधुपण्यु अपमान्वा भाव डेवण शुभता आहरी विद्या रहेतु भगवानने पाठवे तेभ न कृत भास्यु के पूर्वें जस अथात भावोभां प्रमण्ड इयुं कृतु ते प्रमण्यु इरभनन आदिद गुल्याशुल इभी द्वारा आत्यपदेश पर ने भोके इपी जगा लभार्थ जथा कृता वेतु छिन-वेहन इरथा भाटे निरप शांतिनी अत्रर कृपी आ निरप शांति केअ उन्मन्ड अने वेधान प्रदेशभां अथ डेवण आरभ उल्थान अर्धे योजववभां भावे तो अ डेजे वांशी इकेवाक जे प्रशावाशी कुमारे नामना आभनी अरपी अर्ध काय पछेभने आशुअत्र डरी शुद्ध चितवनभां काय पान उला रस्य आशुअज आरतां भन जे चितवनभां ज्ञातप्रोत अथा वास्यु भावा कडन-अडन विधानी स्थिर अर्ध बचन तो स्थिर इरथापु कृत अ नडि भास्यु के ते तो पछेवेधी अ मौनपण्युभां पश्यतु पाभी गयु कृतु आ भन-वचन-भावात् इ धनने जैन धारिणादिश श्रुतेषां 'आयेत्यन' इहे छे

अवधान इत्ये अने भावे नम कृता, परतु उभावकारिके रीते ज्यारे तीर्थेशे इत्ये साधुपण्यु आदिभार इहे छे ज्यारे तेभने देवदूत्य नामदु वचन शरीर बीकना भाटे पेशेयववभां भावे छे, यद्यु आ वचन अर्पण्यु अगु

સુતરામેવ શરીરં નો પિહિતમિત્તમ્ વોદ્યમ્ । इन्द्रदत्तं देवदूष्यं यद् भगवता धृतम्, तव सर्वतीर्थकराणाम्=सर्वेषु
पाम् जिनानाम् अयं-शकार्पितवत्प्रहणरूपः कल्पः=आचारोऽस्ति-इतिकृत्वा=इति ज्ञात्वा धृतम्=धारितम् ।

अभिनिष्क्रमणसमये=दीक्षाप्रसङ्गे यद् भगवतः शरीरं सुगन्धिद्रव्येण=कस्तूरीकुङ्कुमादिना चन्दनेन=श्री-
खण्डचन्दनेन च चर्चितं=लिप्तम् आसीत् तत्सुगन्धिलुब्धाः=तेषां=सुगन्धिद्रव्यचन्दनानां सुगन्धे लुब्धाः=आसक्ताः ।
अतएव मुग्धाः=मोहं गताः सुगन्धमियाः=सुगन्धानुरागिणः भ्रमरपिपीलिकादि जन्तवः=भ्रमरकीटिकाप्रभृतिप्राणिनः ।
साधिकम्=सातिरेकम् चतुर्मासं=चतुरो मासान् यात्रत् प्रभु शरीरे अवलयावलयम्=पुनः पुनः संवध्य मासं रुधिरं=

समझा जा सकता है कि अन्य ऋतुओं में भी भगवान् ने अपने शरीर को वस्त्र से आच्छादित नहीं किया ।
इन्द्र द्वारा दिया गया देवदूष्य वस्त्र जो भगवान् ने ग्रहण किया सो सभी तीर्थकारी का, इन्द्र के द्वारा अर्पित
किये गये वस्त्र को ग्रहण करना आचार है, ऐसा जानकर ग्रहण किया ।

दीक्षा के अक्सर पर भगवान् के शरीर का सुगन्धित द्रव्यों से=कस्तूरी-कुङ्कुम आदि से, तथा श्री-
खण्डचन्दन से लेपन किया गया था, उनकी सुगंध में आसक्त, अत एव मोह को प्राप्त एव सुगंध के अनुरागी
भ्रमर आदि जन्तु, चार मास से भी कुछ अधिक समय तक प्रभु के शरीर में वार वार चिपट कर उनके मांस

અને ઘેબુ' તે એક અન્યવહાર એટલેકે કલ્પવ્યવહાર-આચાર થઇ ગયો છે. ભાગવાન કોઈ પણ ઋતુમાં વસ્ત્રને અહલ્ય કરતા
ન હતા તેમ જ હચ્છતા પણ ન હતા તેમણે શરીરને પુદ્ગલનો પિંડ પહેલેથી જ માન્યો હતો અને આમદ્રવ્ય એ
શુદ્ધ-નિરંજન-નિરાકાર પર દ્રવ્યથી તદ્દન નિરાશુ' અને સર્વથા ભિન્ન છે એમ અનુભવતા આભ્યા છે એટલે જ્ઞાન-દર્શનની
શુદ્ધતા અને નિર્મળતાને મૂળથી જ શ્રદ્ધાપણે અપનાવી છે એટલે પુદ્ગલ ઉપરની રુચિ અને ભાવ સ્વનિર્ણયની અપે-
ક્ષાએ ધટી ગયા છે માત્ર તેના પરનો બાહ્ય સંયોગ જ ઇહાડવાનો રહે છે તેથી હિમંત અને અન્યઋતુમાં વસ્ત્ર આહિતું
માનસિક અહલ્ય પણ તેમને રહેતું નથી. કેવળ આત્મા તરફની રૂચિને સ્થિર કરવા ચારિત્ર અહલ્ય કરવાગા આવે છે.

ભગવાનના શરીર પર હીક્ષા પ્રસંગે ચર્ચન આહિના શ્રેષ્ઠ લેયો કરવામાં આવ્યા હતા. જેની સુગંધ મહિક
મહિક થતી હતી. માનવ પણ આ સુગંધથી તેમની તરફ ખેંચાતો હતો તેા. જીવજંતુઓની વાત જ શી? કારણ
કે જીવજંતુઓને માનવ કરતાં ઘણોન્દ્રિય શક્તિ તીવ્ર હોય છે, તેથી સાધારણ પણ ગંધ આપતાં તેઓ તે તરફ
આકર્ષાય છે. ન્યારે ભગવાનના શરીર ઉપરની સુગંધ મનોભાગ્ય હોવાને કારણે ભમરાઓ અને કીડિઓ વગેરે જંતુઓ
ખેંચાયાં. સુગંધિતું પાન કરતાં કરતા તેઓને રસ પડ્યો ને તેઓ તેમના શરીરમાં કાણુ પાડી, ધરતી માફક તેમાં

नोभितं च अपूपत्, परं=क्रिन्तु-भगवता वे=आंसरुधिरं चिन्तौ भ्रमरादयो जन्तुचो न निवारिताः-न दूरीकृताः।
 तत्र पञ्चात्=रीत्याप्रारणद्विसानन्तरं द्वीवीये दिवसे क्रोडि गीपो=गोपालो बलीवर्दान्=दृपमानं प्रभु
 तमीये स्वापकिता प्रभुम् अरुणयद्-रे मितो ! इमे=एते मे=प्रम बलीवर्ताः=स्वया रसणीया-येन कश्चिदपि
 न गच्छयुः इति कथयित्वा स गोपः भोजनपानार्थम् निनयुरे गतः, तत्र युक्तपितः=कुलभोजनपानं सन्
 स ततः=ननुपश्चात् प्रसुपाथं भागव्य बलीवर्तान् अष्टद्रा तेषां बलीवर्तानाम् गवेपजायाम्=अन्वेषणायाम् अहोरात्र

और रुधिर को बूझते पे मगर मगवान् ने मांस और रुधिर को बूझने वाले उन जन्तुओं को इटाया तक नहीं।
 तत्पश्चात् दूसरे दिन कोई गुबाल नैलें को मसूके पास लड़ा कर के मसू से योला-—‘ रे मिष्टु !
 मरे इन बैलों को देखरेज रतना, जिस से यह कहीं चले न जायें। इस प्रकार कह कर वह गुबाल भोजन-
 पानी क मिए अपने घर चला गया। खाने-पीने के पश्चात् वह अपने घर से मगवान् के निकट माया को

रही बार भक्तिनाथी पक्षु वधारे भजवानना इधित्तु अने भांयतु बसव्यु करतां अत्यडाभा नकि डाएषु हे तेजोने आ
 उत्तम पुरेनतु दोही भांय अडर लेवां गिलां दाज्यां तथी तेजोले वृमं यता सुधा भजनानतु इधिर पीया हयु”
 आरामा स्व पर प्रहाय हरेव्यथ छि आरामानु ज्योव्यस अने प्रभाव शरीरना सूक्ष्म शैभ-याच द्वारा प्रजट
 याव छि नेम जुवो दास आरामा शुद्ध यतो ब्यथ छि तेम शरीरना रजुध्रयो पक्षु महीनताभाथी शुद्धपक्षुभां प्ररावत्त
 थय छि आधी शरीरनी अर रवेसा दाद-भांय-जशवी-दोही आशोन्धय स्व्य सुगधीवाण्य अने भिडाशयवाणा यथा
 भठि छि दोही अने भांयतु आतु वसव्यु यतां भजनानने ज्ञानत वेहना यवा दागी तो पक्षु भजनाने तेभने तेम
 इतनां शैभनां नकि रथशरीरने तेजोधीले पितानु भा-यु अ न छंनु तेथी ते शरीर पर पिताने छंछपक्षु भा-यो
 न दतो, डाएषु हे आरमकान यता तेजोने देह अने आरामा युधा अ भास्य छिवा

वीले परीषक भानपदूत अर्की वक्षुववाभां आवे छि-
 आ श्चम प्रदेयमा वसवा ग्राम्यरतो हेवा युधु अने भूषं होव छि तेनु ध्यात ‘ गोवाच ’ ना ध्यात
 प धी भणी आवे छि तेजो शुद्ध आत्मिक अने निक्षेपशुद्धावाणा साधु पुरयेने तेजोना थ्यस आयास-विवाशमी
 पक्षु ज्योतशी यथां नधी अटरे सुधी तेजो भूषं होव छि ज्येवाचपथा पिना ते जेवाच भजनानने इ भ ज्योतश्या
 तेषर यथे ते ज्ये अदपक्षु छि ज्येम आ उपरकी स्थय वरी आवे छि आया अदपक्षुद्विवाणा श्चम प्रदेयानां हेवज
 इ भ स्थम उपार्जन करवा भाटे अ भजनाने विकार यत्रु हये।

यावत् वन वनम्=तत्रिकटवर्ति प्रत्येकं वनम् अभ्रमत । एवम्=अनेन प्रकारेण गवेपण्या यदा वलीवर्दीः=दृपभाः न लब्धाः-तदा-स गोपः प्रभुसमीपे आगच्छति, आगतमात्रः-स तत्र=श्रीवीरसमीपे चरितवृणान्=भक्षितयासान् अतएव वृणान् स्थितान् वलीवर्दीन् पश्यति ।

ततः=वलीवर्दीर्देशानन्तरं खलु स गोपः आशु रक्तः-शीघ्रक्रोधारूणो मिसमिसायमानः=क्रोधेन प्रज्वलनम्= उच्चैर्नीचैः पादौ संचालयन् प्रभुं=श्रीवीरस्वामिनम् एवम्=अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अकथयत्-‘रे भिक्षो ! मम वलीवर्दीन् संगोप्य मया सह हास्य करोषि ? शुद्धस्व=अनुभव एतस्य=हास्यस्य, फलम्’ इति कथयित्वा यावत् भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनं तर्जयितुं=तर्जन्यङ्गुलीप्रदर्शनपूर्वकं भर्त्सयितुं, ताडयितुम्=चपेटादिनाभिहन्तुं समुद्यतते= उद्युक्तो भवति तावद् दिवि=देवलोके शक्रस्याऽऽसन चलति=कम्पते । ततः=आसनचलनानन्तरं खलु स शक्रो देवेन्द्रो

उसे वहा बैल न दीखे । तब वह बैलों की खोज में दिनभर और रातभर उस वन के निकटवर्ती प्रत्येक वन में भटका । इस प्रकार खोज करने पर भी बैल न मिले तो वह गुवाल् लौट कर भगवान् के पास आया । आ कर उसने देखा कि बैल घास खा कर तुम हुए वहाँ बैठे हैं ।

बैलो को देखने के अनन्तर गुवाल् एकदम क्रोध से लाल हो गया । क्रोध से जलता हुआ-ऊपर-नीचे पैर पटकता हुआ वह श्रीवीर प्रभु से बोला-‘रे भिक्षु ! मेरे बैलों को छिपाकर मेरे साथ हांसी करता है ? ले, इस हांवी का फल भोग ।’ इस प्रकार कह कर ज्यों ही वह भगवान की तर्जना (तर्जनी-अंगुली उठा कर भर्त्सना) करने और ताड़ना करने (थप्पड़ आदि से मारने) को उद्यत होता है, त्यों ही स्वर्गलोक में शक्र का आसन कौपने लगा । आसन कौपने पर शक्र देवेन्द्र देवराजने अवधिज्ञान से भगवान्

बाधितभावथी नेनु लूहय इमेया उधर्णा रधु छे अने मृत्युदोकां ने कांछ सुक्ष्म डे स्थल अनाव अने तेनुं नेने तकात न्धु धाय छे अवा थुन्द्रे कगवाननी पासे आवी आ भूर्ध शिरोमण्णी वारवाडेने पूष ४पके आन्धे अने कगवान पासे इमेया तेमना रणेवाण तरीडे रहेवा प्रभुने यिनति करी, नेथी तिर्थन्थ अने मानवकृत उपसर्गो पाते निवान्ध करी थडे. कगवान तो स्वयं पुद्ग इता तेयो न्धुता इता डे नेषु ने ने कर्म आंध्या डिय ते तो तेने न्धेने लोणववां पडे छे. येताना न्धे अण अने वीर्यं वडे अनतकाणनुं आत्मप्रदेशे वागेडुं अज्ञान इधी आधरथु न्धेने असेऽनुं पडे तेमा डोडनी सहायता काम आवती नथी.

गद्य उपसर्गो तो निमित्त इय छे. पाद्य उपसर्गो अर्धरना कर्मोना उद्य आन्धे अक्षर हेप्राय छे अने आनी न्धे छे. आतारिक कर्मोदय धावु न्धे सुक्ष्म-पुद्गल परमाणुयो इय छे; ते अन्धन्वन्थी डेम अटकावी शक्य ?

पिपासित !—अधुण्यपिपासायुत !, रे नरकनिगोदकाङ्क्षित ! = नरकनिगोदकाङ्क्षायुत !, रे नरकनिगोदपिपासित ! = नरकनिगोदपिपासायुत ! किमर्थम् = कसै प्रयोजनाय ईदृशम् = एतादृशम् पापकर्म करोषि यत् त्रिलोकनाथं = त्रिलोकपति, त्रिलोकचन्द्रितं = त्रिलोकमस्कृतं, त्रिलोकसुखकरं = त्रिलोकप्रसोदकारिणम्, त्रिलोकहितकरं = त्रिलोककल्याणकारिणम्, भगवन्तम् = श्रीवीरस्वामिनम् उपमर्गयसि = उपमर्गरुखि ?” इतिकृत्वा—इतिकथयित्वा तं=गोपं तर्जयितुम्—अहल्यादिना ताडयितुं चपेटादिना, हन्तुं=मारयितुम् यद्यद्यादिना उपाक्रमत=उद्यतोऽभूत् ।

तद्—दृष्ट्वा करुणावरुणालयः = इयासमुद्रो भगवान् श्रीवीरस्वामी शक्रं देवेन्द्रं देवरजं प्रत्यषेधत् = निवारितवान् । ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजः प्रभुं = श्रीवीरस्वामिनम्, एवं—वक्ष्यमाणं वचनम् अत्रादीव—प्रभो ! = हे स्वामिन् ! देवानुभिषयणा भवताम् अद्रेऽपि बहवः = अनेके दुःसहाः = रुष्टसहनीयाः परीषहोपसर्गाः = परीषहा—शीतोष्णादयः, उपसर्गाः—देवादिकृताश्च आपतिष्यन्ति = आगमिष्यन्ति, अतः = अहं तान्—निवारयितुं देवानुभिषयाणामन्तिके = पार्श्वे तिष्ठामि । ततः शक्रेन्द्रस्य तद् वचनं श्रुत्वा भगवता = श्रीवीरस्वामिना कथितम् ‘हे शक्र ! ये च अतीताः = भूतकालीनाः, ये च अनागताः = भविष्यत्कालीनाः ये च प्रयुत्पन्नाः = वर्तमानकालीनाः तीर्थकराः सन्ति, ते सर्वेऽपि स्वकेन = निजेन उत्थानकर्मफलवीर्यपुरुषकारसंक्रमेण—तत्र उत्थानं = वैश्वविशेषः, कर्म = चलनादिक्रिया, बलं = शरीर-

निगोद को आकांक्षा करने वाले, अरे नरक—निगोद के प्यासे ! किस प्रयोजन से तू ऐसा पाप कर्म कर रहा है ? जो त्रिलोक के नाथ, त्रिलोकचन्द्रित, त्रिलोक के प्रसोदकारी, त्रिलोक के कल्याणकारी भगवान् महावीर स्वामी को उपसर्ग करता है ?’ इस प्रकार कह कर इन्द्र, गुवाल को तर्जन करने, ताड़न करने और मारने को उद्यत हुए ।

यह देख कर दया के सागर भगवान् श्रीवीरस्वामीने शक्र देवेन्द्र देवराज को रोक दिया । तब वह शक्र देवेन्द्र देवराज वीर भगवान् से इस प्रकार वचन बोले—स्वामिन् ! देवानुभिय को अर्थात् आप को आगे भी अनेक कष्ट—परीषह और उपसर्ग (परीषह शीत, उष्ण आदि, उपसर्ग देवादिकृत कष्ट) आएँगे । मैं उनका प्रतीकार करने के लिए देवानुभिय के पाम रहता हूँ ।

तब शक्रेन्द्र के वचन सुनकर भगवान् महावीर स्वामिने कहा—‘हे शक्र ! जो अतीतकालीन, भविष्यत्कालीन और वर्तमानकालीन तीर्थकर हैं, वे सभी आने ही उत्थान (वैश्वविशेष), कर्म (चलना आदि

भीष्ण डोह कंठ करी शकवाने जरा पथु समर्थ नथी ओषु भगवाने पोताना अनन्य ब्रह्म शक्रेन्द्रने समजळ्युं त्यारे तेष्णु पोतानी भूय आने गेरसभज्जु कथून करी भगवाननी माथी भागी पोताना स्थाने पाछा क्षया. भगवाने शक्रेन्द्रने भण—वीर्यना जे जे प्रकारे अताच्या तेना प्रकारे पांथ छे. तेमां ‘उत्थान’ ज्येठले डोह पथु प्रकारनी

तं जहा-वसुहारावुडा १, दसद्वन्वणे कुसुमे निगाइए २, चेलुक्खेवे कए ३, आहयाओ दुंदुहीओ ४, अंतराचि य णं आगांसि अहोदानं २ तिघुडे-५ य । तएणं से समणे भगवं महावीरे कोल्लागाओ संनिवेशओ पडिणिवखमइ, पडिणिवखमिचा जणवयविहारं विहरइ ॥ सु० ८३ ॥

छाया—ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरः कुमाराग्रामात् निर्गच्छति, निर्गत्य पूर्वोत्तुरीं चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् सुखं सुखेन विहरन् यत्रैव कोल्लाकः संनिवेशः तत्रैव उपागच्छति । ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरः पष्ठक्षणापारणे भिक्षाचर्यां बहुलस्य ब्राह्मणस्य गृहमनुप्रपिष्टः । तेन बहुलेन ब्राह्मणेन भक्तिबहुमानेन पाणिपतद्ग्रहे क्षीरं दत्तं, भगवता पारणकं कृतम् । ततः खलु तस्य बहुलस्य तेन द्रव्यशुद्धेन दायकशुद्धेन प्रतिग्राहकशुद्धेन त्रिविधेन भगवति प्रतिलभिते सति गृहे च इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा-वसुधारा वृष्टा १, दशार्द्धवर्णानि कुसुमानि निपातितानि २, चेलोत्क्षेपः कृतः ३, आहताः दुन्दुभयः ४,

मूल का अर्थ—'तए णं' इत्यादि । तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर कुमारे ग्राम से विहार क्रिये और प्राचीन तीर्थकरों की परम्परा का अतुराण करते हुए ग्रामानुग्राम सुखे-सुखे विचरते हुए जहाँ कोल्लाक संनिवेश था, वहाँ पहुँचे । वहाँ श्रमण भगवान् महावीर वेले के पारणा के दिन भिक्षाचर्या के लिये बहुलनामक ब्राह्मण के घर में प्रविष्ट हुए । उस बहुल ब्राह्मण ने भक्तिसन्मानपूर्वक करपात्र में खीर का दान दिया । भगवान् ने पारणा क्रिया । तत्पश्चात् उम बहुल ब्राह्मण के घर में, द्रव्यशुद्ध, दायकशुद्ध एवं प्रतिग्राहकशुद्ध, इस प्रकार तीन करण शुद्ध दान से भगवान् को बहराने पर यह पाँच दिव्य प्रकट हुए (१) वसुधारा वरसी (२) पाँच वर्णों के फूलों की वर्षा हुई (३) वस्त्रों की वर्षा हुई (४) आकाश में दुंदुभी वजी और (५) आकाश में 'अहो दानं, अहो दानं' का घोष हुआ । तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर कोल्लाग

भूणो अर्थ—'तए णं' इत्यादि । त्पारपथी श्रमणु वागवान भडावीर कुभोर शामथी विहार करी प्राचीन तीर्थ करेनी परंपरा अनुसार ग्रामानुग्राम आलता, सुणे समाधे विथरता तथा 'दोददाक' संनिवेश छतुं' त्या आवी पडोअथा छटना पारखे भगवान भडावीर भिक्षाचर्या माटे गडुद नामना प्राहायुना घेर हाफल थयां. आ प्राहखे लडितिवावपूर्वक पात्रभा थीर वडोरावी आ थीर वडे भगवान गेदा (छ) उपवाससुं पारखुं' कथुं. गडुदे रे दान आभ्यु ते शुद्ध अने निर्मल तेम न निर्दोष छतुं. दान लेनार पथु पवित्र छता ते आपनारनेा बाव पथु । इन विशुद्ध अने इणनी धुअछा विनानेा अनासकत छतो. तखे करखु शुद्ध होवाथी त्यां पांथ हियेा प्रगट थया. न्येाना नाम आ प्रमाखे छे. (१) वसुधाराणेा वरसाह (२) पथरंगी इणोनी वृष्टि (३) वस्त्रोनी वर्षा (४) आकाशमां

मन्तराजि च तलु ग्राहारां ग्राहाराणमहोदानम् इति श्रुपितं ५ व। ततः स भ्रमणो भगवान् महावीरः को
छाकात् सन्निवेशात् प्रतिनिष्काम्यति, प्रतिनिष्काम्य जनपदविहारं विहरति ॥मृ०८३॥

टीका—'तए न समणे' इत्यादि ततः शकमविगमनानन्तरं, तलु भ्रमणो भगवान् महावीर कुर्माप्रा
मात् निगच्छति निगत्य पूर्वानुपूर्वी—पूर्वोपावीनानां तीर्थकराणां आनुपूर्वीम्—परिपाटीम्—क्रमं चरन्—भ्रमुकुर्वन्,
ग्रामानुग्रामं चरन्—एकस्माद् ग्रामादपरं ग्राम गच्छन् सुखं मुखेन विहरन्—यत्र कोछाक सन्निवेशे च तत्रैव तथा
गच्छति । तत् =उदनन्तरं तलु स भ्रमणो भगवान् महावीरः पठस्रपणपाणके—पठस्रपणपाणके—मत्तया मज्जुसत्कारेण
पर्यन्तं बहुस्रपणपाणके—मज्जुसत्कारेण मज्जुसत्कारेण, तेन बहुछेन मज्जुसत्कारेण—मत्तया मज्जुसत्कारेण
च पाणिपतवद्भौ—कराणो ह्रीं—पायसं दधम्, भगवता—भीमीरस्वामिना तेन हीरेण पाण्यकं कृतम् ।

सन्निवेशे स निकछे श्रीर निकल कर जनपद में विचरने लगे ॥मृ०८३॥

टीका का अर्थ—शक के बड़े जाने के पभाव भ्रमण भगवान् महावीरने कुर्मां ग्राम से विहार
किया और एकरर्षी तीर्थकरों की परम्परा से विचरते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव सुखपूर्वक विहार करते हुए
गाँव छोडना सन्निवेश या वहाँ पधारे । काछाम सन्निवेश में भ्रमण भगवान् महावीरने पठमक (बेछे) के
पाणके के दिन भिस्वार्थों के लिये भ्रमण करते हुए बहुस्रनामक शास्त्रण के घर में प्रवेश किया । बहुस्र
ग्रामने मज्जि और मत्तन्त सत्कार के साथ भगवान् के कर—पात्र में हीरका दान दिया । भगवान् श्री-
हीरसुने तम हीर से पाणया किया ।

इइन्धीनी शेषका (५) अथाश्रमां 'अच्छेदान-अच्छेदान' नी। अथनाइ शयो। दोषकाइ संन्निवेशार्थी नीइणी लजवान
भदावीर आश्रुताश्रुता प्रदेसार्थं विवरवा कांवा. (५०८३)

टीकाने अर्थ—शक आस्था तथा पछी श्रमणु भगवान् भदावीर कुर्मां आश्रमां विहार कथे अने पूर्ववर्ती
दोषकाइनी पर शराशी विवरवा कोइ आश्रमी वीरे गाम विहार करताइत्तां अर्थां दोषकाइसन्निवेश कए त्वां पधायो।
जहुंइ चामभव प्राकालुनी बरमा प्रवेश कथे जहुंइ चामभवे कछि अने अत्यंत सत्कार थाइ भगवानना कर—पात्रमां
धीर बछेवावी. लजवान श्रीवीरसुने ते धीरशी पाण्य कए पाण्य। पछी प्रासुिक कोपवीर अछनाइ इय द्र०

ततः=पारणानन्तरं खलु तेन द्रव्यशुद्धेन=शुद्धद्रव्येण प्राप्तकैषीयाशानादिरूपेण, दायकशुद्धेन=द्रव्यतो भावतश्च शुद्धेन दात्रा, प्रतिग्राहकशुद्धेन=निरतिचारतपःसंयमसम्पन्नेन प्रतिग्राहकेण त्रिविधेन=द्रव्य-दायक-प्रति-ग्राहकभेदात् त्रिप्रकारकेण, त्रिकरणशुद्धेन=दायकशुद्धेन मनोवाक्कायलक्षणकरणत्रयेण भगवति=श्रीवीरे क्षीरं प्रति-लम्बिते=प्रतिग्राहिते सति तस्य बहुलस्य ब्राह्मणस्य ग्रहे इमानि=अनुपदं वक्ष्यमाणानि पञ्च=पञ्चसंख्याननि दिव्या-नि=देवकृतानि वस्तूनि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा वसुधारा-स्वर्णवृष्टिः वृष्टा देवैः कृता १, दशार्द्रवर्णानि-पञ्चवर्णानि-कुसुमानि-पुष्पाणि निपातितानि=वर्षितानि २, चैत्रोत्क्षेपः=वसुवृष्टिः कृतः ३, दुन्दुभयः आहताः=ताडिताः ४, अन्तराऽपि खलु आकाशे-‘अहो दानम्’ इति ध्रुपितम्=उच्चैरुच्चरितं देवैः। ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरः, कोष्ठाकात् संनिवेशात् प्रतिनिष्काम्यति=प्रतिनिःसरति, प्रतिनिष्काम्य=प्रतिनिःसृत्य जनपद-विहारं विहरति ॥सू०८३॥

पारणा के अनन्तर प्राप्तक एषणीय अशनादि रूप द्रव्य से शुद्ध द्रव्य और भाव से शुद्ध, दाता के कारण तथा अतिचार रहित तप और संयम से सम्पन्न ग्राहक (पात्र) के शुद्ध होने से, इस प्रकार द्रव्य, दाता और पात्र, तीनों शुद्ध होने से, तथा दाता के मन-वचन-काय-रूप तीनों करण शुद्ध होने से भगवान् वीर को बहराने पर उस बहुल ब्राह्मण के घर में आगे कहीं जाने वाली पाँच देवकृत वस्तुएँ प्रगट हुईं। वे इस प्रकार हैं-(१) देवों ने स्वर्ण की वृष्टि की, (२) पंच वर्ण के कुसुम वरसाये (३) वस्त्रों की वर्षा की (४) दुंदुभियों वजाई, (५) आकाश में ‘अहो दान, अहो दान’ का उच्चस्वर से नाद किया।

तपश्चात् श्रमण भगवान् महावीर कोष्ठाग सन्निवेश से निकले और निकल कर जनपद-विहार विचरने लगे ॥सू०८३॥

शुद्धिथी, द्रव्य अने भावथी शुद्ध ज्येवा दाताने कारणु तथा अतिथार रहित तप अने संयमभावा आहुक (पात्र)ना शुद्ध होवाने कारणु आ रीते द्रव्य, दाता अने पात्र त्रैणी शुद्धि होवाथी, तथा दाताना मन वचन काय इय त्रैणु करणु शुद्ध होवाथी, भगवान् महावीरने वडोराववाथी ते अहुद आहुण्णानां धरमां आगण ने उडेवाथे ते पांथ हेवी वस्तुओ प्रगट थध. ते आ प्रभाणु हती-(१) देवोओ सुवर्णुनी वृष्टि करी (२) पांथ रंगना पुणेा वरसाओयां (३) वस्त्रोनी वृष्टि करी (४) हुंडुभि नाह थथे (५) आकाशमा “अहो दान, अहो दान” नेा उच्चस्वरे नाह थथी. त्थारपथी श्रमणु भगवान् महावीरे डेवलाग सन्निवेशमांथी अहार नीकणीने जनपद-विहार करवा मांडथे। (सू०८३)

मूषम्—एष्य से विरमाणे मयत्तं पक्षम मित्राउत्मासम्मि अत्थिपं गाम समणुषचे । तस्य ये सुल-
 पाग्निजलसस जयलायणे रामो काउसगो ठिप । दुडुखल्ले सो नरलो सयपादिं भणुसरतो भगवं उवसगो इतल्य
 पुत्र सो दंसमसगार समुप्याइय पहुं वेदिं ईतीअ । तेण उवसगोअ अक्खुद सयकाणुदं विलोइय विच्छिअ उणा
 इय वेदिं ईतीअ । तेअ वि अत्थिअं अत्थिअं पत्थिअं पत्थिअं मयायिसेअ मयासीविसेण मयाओ सरी
 रम्मि ईतीअ । तेअ वि वायआएअ अणअमिअ अणियलं ददुअं तेअ रिच्छा विउडिविया । ते य पलरणत्तरा
 एदिं उववीअ । तओ वि अणुअियं सयकाणलागं ददुअं विउअियएदिं पुक्खुरापमाणेदिं सुल्लमासुखुरेदिं सुयरेदिं
 कावीअ । वेअ वि अत्थिसअं भाग्णिसअं विलोइय सजो समुप्याइएणं कुल्लिसगवित्तलदंतगोअ करिणा उववीअ ।
 तेण वि इर पिरं अत्थियलं ददुअं विउअियएदिं स्सात्तरनरवादावेदिं कवेदिं उववीअ । तेअ वि अत्थियअं पत्थिय
 विउअियएदिं केसीदिं सारयनरदाइमादाएदिं उववीअ । तेण पुणो वि पिरं विरसरीरं विसोइय पगढीए
 अत्थियएरावेदिं वेपाळेदिं उववीअ । एवं सो दुरासओ नवलो पुअं रत्तिं जाअ उवसगो कारं—कारं खेय
 विय्थो विसत्थो जाओ, परं मयत्तं अत्थिसणे अयाइळे अत्थिअए अरीणमाणसे विविहमाणअयकायगुचे वेव ते
 सचे वि उवमाणे समं सरीअ, तमीअ, विउत्तलीअ, अट्टियासीअ । तएणं से नरसे अोरिणा पहुं मणसानि
 अरिवअियं इअ आमोगिन आहं समासापरं पहु सयावराहं समावियं अंइअ नमसा, वंअिआ नमंअिआ सये
 ठअं गओ । तेण काळेणं तेणं समएणं समणे मया मयावीरे तस्य वं अट्टा—दि मासदलमाणेदिं चाउत्मास वइअ
 मिय अट्टियाओ गामाओ पठिविरत्तमए पठिविरत्तमए पत्थिअ अत्थिअविहारेअ विरमाणे सेयंयियं
 पयारं पठिए । ॥५०८४॥

छाया—उतः सल्लु स विहरन् मगवान् प्रथमे चतुर्मासे अस्थिकं ग्रामं समनुप्राप्तः । तत्र सल्लु शून-
 पाग्निपसस्य पश्याज्यतने रामो कापोस्तमै स्थितः । दुर्लक्षः स यतः स्वप्रकृतिमनुसरन् भगवन्त्वमुपसर्गोपति ।

मूल का अर्थ—'उप नं से' इत्यादि । तस्यभात् विहार करते हुए भगवान् प्रथम चतुर्मास अस्थिक
 ग्राम में पपारे । वहाँ शूलपाग्निनामक यज्ञ के यज्ञाद्यतन में रात्रि के समय कायोस्तम में स्थित हुए ।
 शून्य भावना पाछे उस यज्ञ ने अगनी प्रकृति का अनुसरण करते हुए भगवान् को उपसर्ग किया । पाछे

भूकेने अर्थ—'तप वं' इत्यादि विचार करता करता अथवा अथवा प्रथम चतुर्मासों अस्थिक आश्रम
 पथाओ, त्वा शूलपावो नामक अथवा अथवा यज्ञाद्यतनमां सुत्रीय समये कापोस्तमैमां स्थित रह्यां, इअ भावनावावा ते
 परे, योगानी प्रकृति अनुसर अथवा अथवा उपसर्गोपति, तेअ अ उपसर्गोपति पर परा यज्ञ कवी कीमी।

तत्र पूर्वं स दंशमशकानि समुत्पाद्य प्रभुं तैरदंशयत् । तेनोपसर्गेणालुब्धं सद्दधानलुब्धं विलोक्य दृशिक्रानुत्पाद्य तैरदंशयत् । तेनापि अविचल्यम् अविकम्पितं दृष्ट्वा विकुर्वितेन महाविवेकेण महाशीविषेण भगवतः शरीरेऽदंशयत् । तेनापि वातजातेन अचलमिव अविचलं दृष्ट्वा तेन क्रक्षा विकुर्विताः । ते च प्रखरनखरघातेरुत्पादयन् । ततोऽप्यनुद्विग्नं स्वध्यानलग्नं दृष्ट्वा विकुर्वितैरुत्पुरायमाणैः शूलग्रमुखसुरैः शूलरैरस्फालयत् । तेनाप्यविषणं ध्याननिषणं विलोक्य सद्यः समुत्पादितेन कुलिशाग्रतीक्ष्णदन्तोत्तरेण करिणोपादयत् । तेनापि दृढं स्थिरम् अविचलं दृष्ट्वा विकु-

तो उसने डांस-मच्छर उत्पन्न करके उन से प्रभु को डँसवाया । उस उपसर्ग से भी भगवान् को अलुब्ध और धर्मध्यान में अचल देखकर विच्छुओं को उत्पन्न करके उन से डँसवाया । उस उपसर्ग से भी अचल और अकम्पित देखकर विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए अत्यन्त विचैले महान् सर्प से भगवान् के शरीर को डँसवाया । जैसे पवन-समूह से पर्वत अचल रहता है, उसी प्रकार उस सर्पदंश से भी भगवान् को अविचल देखकर उसने रीछों की विकुर्वणा की । उन रीछोंने तीखे नाखूनों से उपद्रव किया । उस से भी अनुद्विग्न और ध्यान में संलग्न देखकर विकुर्वणाजनित, घुरघुराते हुए, काँटे की नौक की तरह तीखे दाँत वाले शूकरों से विदारण कराया । उस से भी त्रिपाद को न प्राप्त और ध्यान-मग्न भगवान् को देखकर शीघ्र ही उत्पन्न किये हुए, वज्र की नौक के समान तीखे दाँतों के अग्रभागवाले हाथी से भगवान् का उपसर्ग कर-

पड़ेता उपसर्गमां दास-भच्छर उत्पन्न करी लगवानने विपुल प्रमाणमां दास-भच्छर करडाव्या. आ वेदनामा लगवान अलुब्ध रहेवाथी, यक्षे थिले उपभगं तैथार कथो तेबुे पोतानी द्विव्य प्रभावे, जमीन उपर सेऽडो विधीओने पेढा कथां आ विधीओनेो ऽण्ण पथु, लगवान सडन करी गया, अने धर्मध्यानथी यदित थथा नडि. आ अथल अने अकपित दंशावाणा लगवानने नेछ, यक्षे, वल्लि प्रथेअ कथो. आ प्रथेअमा, तेबुे ओक मडान विधधारी सर्पनी उत्पत्ति करी आ सर्पंऽसथी पथु लगवानने यदित थता न नेवाथी, ते वधारे डेपाधमान थछ, जंगली पथुओनी विकुर्वणा करी आ विकुर्वणांमां रिंछे उत्पन्न कथो, अे रिंछिअे पोताना तीथु। अने उत्र नणेा वडे लगवानना शरीरने उअरडी नाण्यु. आषी वेदनांमां पथु लगवान अडोत रहां. आ अडो-दताने यक्ष साभी थकथे नडि लगवानने उद्वेग विनाना अने असंविग्न नेछ, तेना भिअण् कथो अने तेना डोधनी पारा शीशी थववा दागी. वैडिअ थकित दारा, धूर धूर करता तीक्षु हांतवाणा सुवरो (भूडो) ने उत्पन्न कथो आ सुवरो दारा, लगवानना शरीरतु विदारण् करण्यु आमां पथु प्रभुने दद रहेता नेछ, तेबुे धथुो विधाद अमुलअे. वज्रनी अषी नेवा तीथुा तगनगता हातोवाणेो ङाथी तेबुे सअथी, अने ते ङाथी दारा, तीन डःण

विश्वेः स्वराजानस्रदंद्देष्याविरुपाद्रवत् । तेनाज्जविचलितं हथा विकुर्वितैः केसरिभिः स्वराजानस्रदंद्दप्रायावैरुषा
 द्रवत् । तेन पुनरपि स्थिरं स्थिराक्षरीं विलास्य प्रकृत्याऽवीचिकारालेवैरुषाद्रवत् । एष स दुरागयो यत्स पूणा
 राशिं यावत् उपसर्गान् कारं कारं खेदलिप्तो विपथो जातः । परं मगशान् अविपथ्या अनाविच्य अव्ययिभः
 अदीनमानसः अविचयमनोवचःकाययुत् एष तात् सर्वानप्युपसर्गान् सम्यक् असहत् असमत अतिविसृत अरुपास्त ।
 ततः लख स यषोऽकषिना प्रभुं मनसाऽप्यविचिचिर्भितं हृदमायुज्य अयाय समामगारं प्रभुं सज्ञपराधं क्षामयित्वा

बाया । उस से भी मगशान को हृद् स्थिर एवं अभिचल देलकर विकुर्वणा स उत्पन्न किये हुए अविचय वीरुण
 मल और दाबों बाछे व्याघ्रों से उपसर्ग कराया । उस स भी विचलित हुए न देलकर विकुर्वणा स उत्पन्न
 किये हुए केसरी सिंहं द्राग, तीस्पतर नलों और दाबों क अप्रमग से उपसर्ग कराया । उस उपसर्ग से भी
 मगशान् को स्थिरविच और स्थिरकाय देला ता स्वगार से अरुपान विहरात्त यतालों स उपसर्ग कराया ।
 इस प्रकार पर दुराश्रय यत्स सारी रात उपसर्ग करवा-रखा कर खेदविष और शिपायुकुहो गया, परन्तु
 मगशान् ने विपादविहीन, कछुपतारीन, अव्ययित, अदीनमानस तथा मन वचन काय से युत् रा कर ही
 उन सब उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन किया, निना क्रोध के सहन किया, अदीन मात्र से सहन
 किया और निबल्ला के साथ सहन किया । तब उस यत्स ने अपिधान से प्रभु को मन से भी चलित
 न हुवा तथा हृद् जान कर अयाग समा के सागर प्रभु से अपने अरुपराय के लिए समा माँग कर वन्दन

भाऽप्यु आ इऽपथी पक्ष अश्वानः अथय रक्ष्मा अ वेो पकाड लेवा अरुव आऽभी नेड तेने पित्तो ह्येो आऽथो
 तेवे वीकषु नथ अने हाशेवाजो वाभ तैवार करी तेना दासा अतुष इ थ आऽप्यु अन्धारे बसे आऽडि पक्ष इऽप्येने
 कती हाँवटा अश्वानने लेआ, त्वारे तेवे देशरीडिकनी विडुपव्वा ठेवी करी. तेना नथ वडे, प्रभुत्त शरीर अशिराऽनु
 उअ वेरना होवा छवां तेजे अभ्यरथ मुअथगण अशुवाथ त्वाऽरहाड तेतु वेर अने होध हाँव टाव करवा पोते वेवावत्त
 इय धारक्षु करी, अत्यत विडशजटा अतानी अनेक हथो हाश तेभने अक्षित करवा प्रभाशेो हवा. छवां तेभने
 विपाऽडीन नेतो यत्स पोते विपाऽअस्त सरो ने आन्धत जेने पाभवा हाऽथेो. अश्वान तो विपाऽविहीन, हृडपटाडीन,
 अन्धयित, अदीनमानस, तदा मन-वन्धत-हावाशी युत्स रक्षी मन्धरकवांते अतुभक्वा हाऽअर्ध आवा अरुपुऽत्विड इऽप्येने
 पक्षसम्भू प्रभारे सकन करी, अतुडशक्ति पैहा करवा हाऽवां. आवा उअऽथेोभा पक्ष होधने यथावी हथ क्षमान अशु
 जिहववा हाऽवा इ थत्त वेदन हस्तां पक्षु हिनवा अतुभवी नऽडि ने निबल्लाता युत्सने वधारे ने वधारे अरुव
 हस्तां यथां आ परो अन्धारे अरुत्त के अश्वान तो भनबी पक्षु अक्षित कर्ता-नधी, आम आऽवी क्षमान साअर सभा

वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा ननास्यित्वा स्वस्थानं गतः । तस्मिन् आळे तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महा-
वीरः तत्र खलु अष्टाभिर्मसार्द्धैः चतुर्मास व्यतिक्रम्य अस्थिक्रम्य प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्राम्य
पत्रन इत्रापतिहतादिहारेण विहरन् श्वेताश्विका नगरीं प्रस्थितः ॥ ३०८४ ॥

टीका - 'तएणं से विहारमाणे' इत्यादि । ततः खलु स विहरन् क्रमेण विचरन् भगवान्=श्रीरी-
स्वामी प्रथमे चतुर्मासे अस्थिकं=तन्नामकं ग्रामं रामनुपासः=गतवान् । तत्र खलु श्लथपाणियस्य=शूलपाणिनामक-
यस्य यशायतने राज्ञी कायोत्सर्गे स्थितः । दुर्लभः=दुर्भावतः सः यशः स्वमूर्ति=निगस्सभावम् अनुसरन्=अनु-
गच्छन् भगवन्तुसवर्गयति=भगवत् उपसर्गान् करोति । तत्र=उपसर्गेषु यत्र पूर्वं=प्रथमं सः=यज्ञः, दंशमशकानि-
दंशाश्च=मशका-क्षेति दंश-मशकम् शुद्रजन्तुत्वैरुत्तद्भागः, ततो दंशमशकं च दंशमशकं चेति दंश-
मशकानि=दंशानां मशकानां चानेरुसमूहान् चैक्रियगत्तया समुत्पाद्य प्रभुं=श्रीरीस्वामिनं तैः=दंशमशकैः अदं-

नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके अपनी जगह चला गया । उस काल, उस समयमें, श्रमण भगवान्
महावीर ने उस अस्थिक ग्राम में चातुर्मास क्रिया, और चातुर्मास में अर्धमास-तमण-अर्धमास-खमण
किया । इस प्रकार भगवान् आठ अर्धमासखमणों से चातुर्मास व्यतीत करके अस्थिक ग्राम से निकले ।
निकल कर वायु के समान अप्रतिबन्धविहार करते हुए श्वेताश्वी नगरी की ओर पधारे ॥ ३०८४ ॥

टीका का अर्थ--तत्पश्चात् क्रम से विहार करते हुए श्री वीर प्रभु पहले चोर्मासे में अस्थिक
नामक ग्राम में पधारे । वहाँ शूलपाणि नामक यज्ञ के यज्ञायतन में, रात्रि के समय, कायोत्सर्ग करके स्थित हुए ।

वह यज्ञ दुष्ट भावना वाला था । उसने अपने स्वभाव के अनुसार भगवान् को उपसर्ग दिया ।
उसने ढांसों और मच्छरों के अनेक समूह चैक्रियगत्ति से उत्पन्न करके भगवान् को उनसे ऋताया ।

प्रभु पासे अपराधनी भाशी भागी भाशी भणता तेभने वंदना-नमस्कार कथां. त्थारपणी पोताना इथगे ते आदथे गथे.
आ काण अने आ समथे श्रमणु लागवान महावीरे आ अस्थिक गाभमां चातुर्मास इयुं इत्तुं. योभासा इरमथान
तेभणु 'अध'मास अमथु' कथां. आ प्रभाणु आ आठ 'अध'मास अमथु' चातुर्मासमां पूरा करी, तेजा अस्थिक
गाभमाधी विहार करी गयां वायु समान अप्रतिबंध विहारी भनी तेजा श्वेताणी नगरीमां पधायो. (३०८४)

टीकाके अर्थ--त्थारपणी कथे कथे विहार करीने श्रीवीरप्रभु पडेवा योभासामां अस्थिक नामनां गाभमां
पधायो. त्यां श्लथपाणु नामना यक्षना यज्ञायतनमां रात्रिने पणते कयोत्सर्ग करीने उभा रक्षां. ते यज्ञ दुष्ट भावना
वाणो इतो. तेणु पोताना स्वभाव प्रभाणु लागवानने उपसर्गो कथां. तेणु पोतानी वैक्रियगत्तिथी अंस अने मच्छरैना

अणुत्व=विद्यमान, तेन=संशयमशक्यद्वारा तोत्यादिदेन उपसर्गोन्मथुस्य=शोभारहितं सद्धानलब्ध=समीचीनव्यानयानमन्ने
 मथु निकोपय=दृष्टा स दृष्टिकान् उत्पाद्य तैः=दृष्टिकैस्त्वम् अर्धश्रयत् । तेनापि अविचलं=स्थिरम् अतएव=अवि-
 कस्मिन् मथु दृष्टा स विद्वद्विदेन मरापिपेज=दुर्गुरारिपयता मराडीनियेण=विशालकायसर्पेण मगवतः खरीरे अर्ध
 श्रयत् । तेनापि वातनादेन=पवनसमूहेन=वात्यया अचक=पर्वतमित अविचलम्=अमकम्प्यं तं दृष्टा येन यक्षेण मुस्ता=
 मष्टिकाः विद्वकिंताः । ते च मलनरनलरपातैः=वीर्यनलमपारैस्तं मथुम् उपाद्रवत् । ततोऽपि म्मुद्रिग्नम्=अथ
 स्तम् स्वप्यानम्नम्=अत्सप्यात्सासक मथुं दृष्टा विद्वद्विदेः दुर्गुरायमाजैः=दुर्गुराख्यं कुर्वन्निः शूलाग्रमुलसुरैः=
 शूलाग्रमागववीर्यवन्तैः शूकरैः=वराहैः अस्कास्यत्=च्यदारयत् । तेनापि अविषयम्=विषादरहितं ध्याननिपण्यं=

मगवान् दांस-पच्छरौ के द्वारा उत्सव किये उपसर्ग से हृष्य न हुए, और प्रथम ध्यान में लीन रहे तो
 उसने विद्वानों को उत्सव करके उनसे ईसबाया । इस उपसर्ग से मी मगवान् को विचलित या कंपित
 हुए न देल उतने नैक्रियविकि से उत्पन्न किये गये उग्र विषवाछे निशालकाय सर्प से मगवान् के शरीर
 में ईसबाया । मगवान् इससे अकंपित रहे, जैसे पवन के समूह से पर्वत अकंपित रहता है, तब उस यज्ञने
 माछुओं-पौकों की विद्वक्या की । माछुओं ने अपने तीक्ष्ण नसों से मगवान् को उपद्रव किया । यज्ञ ने देला
 कि मगवान् उससे मी प्राप्त को प्राप्त न हुए और आत्मध्यान में लीन हैं । तो उसने विद्वक्या से उत्पन्न
 किये हुए दुर्गुर ख्य करवे हुए, काट की नौक के सदृश तीक्ष्ण दाँतों वाछे शूकरों से मगवान् को विदा-
 रण कराया । उससे मी मगवान् को विषाद न हुआ और वे ध्यान में स्थिर रहे तो उसने सत्काल

अनेक समूह उत्पन्न करीने अत्रवानने तो करवाळ्यां, अत्रवान दांस मच्छरेशे द्वारा उत्पन्न करायेल उत्पन्न की ह्रुष्य
 यथां नहीं आने प्रथमत् ध्यानमां हीन यथां त्यार तेव्हे वीछिको उत्पन्न करीने तेमना दास उग्र देवशब्दां आ उत्प-
 न्नाथी पशु अत्रवानने यथापमान हे कंपित यथां न आउने तेव्हे वैद्विय यज्जिभी उत्पन्न करेव छत्र विषवाण्य वि-
 शानदास यथां दास अत्रवानना शरीर पर उग्र मशळ्यां, जेभ यवनना समूह साथे परंपर स्थिर रहे छे तेभ अत्र
 यान तेनाथी पशु अकंपित यथां त्यार ते यज्ञे शिछितु निर्माळु म्मुं शिछिळ्ळे पोताना पीक्षु नकेरथी अत्रवानने
 पीस आपी, यरी ओमु छे अत्रवान तेनाथी पशु यज्ञ पाठ्या नहीं आने आत्मध्यानमां हीन यथां छे त्यार तेव्हे
 वैद्विययज्जिभी उत्पन्न करेव शूर नार इस्तां मंडानां आळी जेवां पीक्षु हातावाण्य स्वपेशे (शूरो) वटे अत्रवानज
 विषारण्य म्मुं, तेथी पशु अत्रवानने विषाद न यथे आने तेका ध्यानमां स्थिर यथां त्यार तेव्हे यवनना आत्र-

ध्यानान्स्थितं प्रभु विलोक्य=दृष्टा सद्यः समुत्पादितेन=तत्कालनिष्पादितेन कुलिशाप्रतीक्षया=दंष्ट्राग्रैण=वज्राश्रय-
 निश्चितदन्ताश्रमगेन करिणा=इस्तिना उपाद्रवत्=उपसर्गयुक्तमकरांत। तेनापि दृढं=हृदतायुक्तं स्थिरं=स्थैर्यम्सम्पन्नम्
 अत एव अत्रिचलं=मनोवाक्कायेन कायोत्सर्गतोऽचलं त प्रभुं दृष्ट्वा स यक्षो विक्रुर्वितैः खरतरनखरदंष्ट्रैः=अति-
 तीक्ष्णनखदन्तैः व्याघ्रैः प्रभुमुपाद्रवत्। तैनापि अत्रिचलितं प्रभु दृष्ट्वा स यक्षो विक्रुर्वितैः केसरिभिः=सिंहैः
 खरतरनखरदंष्ट्राश्रयैः=अतितीक्ष्णनखदन्तमहारैः उपाद्रवत्। तेन पुनरपि स्थिरं=स्थितचिंतं स्थिरशरीरं=कायो-
 त्सर्गचलनाभावेन स्थिरशरीरयुक्तं प्रभुं विलोक्य स यक्षः प्रकृत्या=स्वभावेन अतीवविक्रुरालैः=अत्यन्तभयङ्करैः
 वेतालैः=व्यन्तरदेवविशेषैः उपाद्रवत्। एवम्=अनेन मकरेण स दुराशयः=दुष्टस्वभावो यक्षः पूर्णा रात्रिं यावत्=
 सम्पूर्णरात्रिपर्यन्तं उपसर्गान् कारं=कारं=वारं वारं कृत्वा खेदखिन्नः=परिश्रान्तः अत एव=विपण्णः=विपादयुक्तो
 जातः, परं=किन्तु भगवान् महावीरस्वामी अविगण्यः=विपादरहितः अनाविलः=अफ्रलुपितः=द्वेषवर्जितः अव्य-

ही वज्र के अग्रभाग की तरह तीखे दन्ताश्रमगों वाले हाथियों द्वारा उपसर्ग किया। उस पर भी भगवान्
 को दृढ, स्थिर अतएव मन वचन काय से अत्रिचल देखकर यक्ष ने अत्यन्त तीखे नाखूनों एवं दांतों वाले
 व्याघ्रों द्वारा उपसर्ग किया। तब भी प्रभु अत्रिचल रहे तो यक्ष ने अतिशय तीखे नखों और दाहों के
 अग्रभाग वाले सिंहों द्वारा उपसर्ग कराया तब भी भगवान् का न तो वित ही चंचल हुआ, और शरीर न
 शरीर ही। वे कायोत्सर्ग से विचलित न होकर जब स्थिर ही बने रहे, तो यह देख कर यक्ष ने स्वभाव
 से विक्रुराल वैताल नामक व्यन्तरदेवों के द्वारा भगवान् को सताया। इस प्रकार उस दुष्टस्वभाव वाले
 यक्ष ने सारी रात उपसर्ग किये। उपसर्ग करके वह स्वयं थक गया, इस कारण उसे विपाद हुआ, परन्तु
 भगवान् महावीर स्वामी को विपाद नहीं हुआ। वे द्वेष से अछूते रहे। उन्होंने ने उद्वेग का अनुभव

भाग जेवां तीषुां इंताश्रमगोवाणा इाथीओा द्वारा उपसर्ग कथ्यो, छतां पशु भगवानने दद, स्थिर तथा मन-वचन
 काया वडे अविचल जेधने यक्षे अत्यंत तीक्ष्ण नभ्य अने हातवाणा वाधो द्वारा उपसर्ग कथ्यो, तो पशु.प्रभु यदाय-
 मान न थया त्यारे यक्षे अतिशय तीषुां नभ्य अने दाढोना अश्रमगवाणा सिद्धो द्वारा उपसर्ग करान्थो तो पशु
 भगवाननुं चित्त यदायमान न थयुं अने शरीर पशु यदायमान न थयुं. तेओा कायोत्सर्गथी विचलित न थतां
 न्थ्यारे स्थिर न रथां त्यारे ते जेधने यक्षे विक्रुराल नामना व्यंतर देवो द्वारा भगवानने सतान्थो।

आ प्रभाष्ये ते दुष्ट स्वभाववाणा यक्षे आथी रात उपसर्गो कथ्यो. उपसर्ग करीने योते न थकी गथो. ते
 अरुष्ये तेने विषाद थये. पशु भगवान भडावीर स्वामीने विषाद न थये। अने द्वेष तेभने स्पर्शा शक्यो नहीं. तेभना

पितुः=उद्वेगरहितः श्वीनमानसः=दीनतायुक्तमनोरहितः, तथा विविधमनोवचःकायगुणः=त्रिचैः=करण-कारणा
 नुमोदनेः कृता मनोवचःकार्यगुणः स नैर तान् यत्कृतात् सर्वात्म्युपसर्गात् सम्यक् अतहत-मयाभावेन, अस
 मत-कोपभावेन, अतिविस्तृत-दैन्याकरणेन, अध्यास्त-निबलतया ।

ततः सखु स यतः अपयिना=अवधिज्ञानेन प्रभु मनसाऽपि अविचलितवृत्त=स्वप्यवानाद्व्युत्तमततपव इदं=
 प्रवस्येयम्, आशुभ्य=शास्त्रा आर्षां=वल्स्यर्शरहित-महान्तम् समासागरं=परापकारसमन्वयसमुद्रम् प्रभुं=श्रीमहारा
 श्रीस्वामिनं स्वपराप=निर्भं बहुविधोपसर्गांकरजन्यमपरापं सामयित्वा वन्द्यते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्वित्वा च
 स्वं स्थानं गत ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये भयण्यो भगवाय् महाशीरः तत्र=अस्थिरप्रामे भट्टामि.=भट्टसंस्थे
 मासाद्रसंस्थैः बहुमाससप्यजेरित्यर्थः चतुर्मासं द्यवतिक्रम्य=अविवाह अस्थिकाय् ग्रामात् प्रतिनिष्क्रामति=प्रति
 निरति, प्रतिनिष्क्रम्य पवन इव अमतिहवविहारेण=अमतिबन्धविहारेण-विहरन्-धेताम्बीकां=धृतास्यां नगरी
 प्रस्थितः । ॥७०८४॥

नहीं किया। उनके मन में दीनता का प्रवेश न हुआ। वे कृत-कारित-भद्रमोदना-रूप वीनों कल्पों से
 युक्त मन रखन काय से गुप्त रहे, और यज्ञ द्वारा किये हुए समस्त उपसर्गों को निर्भय भाव से, अन्तिपूर्वक
 अश्रीनता के साथ तथा निबल रूप से सहन करते रहे। तब उस यज्ञने अवधिज्ञानसे जाना कि प्रभु तो
 मन से भी ध्यान से विचलित नहीं हुए। यही नहीं, उनकी प्रबल स्थिरता भी उसने देखी तब अया
 समके सागर-तुल्यता द्वारा किये अपकार को सहन करने रूप के समुद्र-मगधान से अपने अपराध की
 क्षमा मांगी। उन्हें इन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके वह अपने स्थान पर चला गया।

उस काल और उस समय में प्रमग गगान् महाशीर ने उस अस्थिक ग्राम में आठ अर्धमास साय
 पर पीज्जी अक्षर न यह तेभना मनभां दीनताते। प्रवेश किये नई। तेको इवधारित अनुभोतनना रूप वखे कार-
 वोधी बुद्ध भन-वजन कवाधी उप-यकां जने यक्ष द्वारा कश्येक सधणा उपसेवेनि निजम भावधी शान्तिपूर्वक
 अदीनता काले तथा निबल रूपे सहन कर्वां कर्वां त्वादे ने यजे अवधिज्ञानधी व्यक्त्यु ई अश्वानते भनधी पक्ष
 ध्यानभांषी विचलित कर्वां नयी जेदक अ नकी पक्ष तेभनी प्रमग स्थिरता यक्ष तेके जेध त्वादे अप्यार क्षमान्य
 यात्र-नीलन दास कश्येक अपकारने सहन करी देवाना श्रुतना सात्र-काजधान पासे तेके देवाना अप्यशाध भाडे
 कथा भाजी तेभने बडना कही नमस्कार कर्वां वडना जने नमस्कार करीने ते देवाने स्थाने आन्वे। अये।
 ते काले जने ते अमये कर्मणु काजधान भकावीरे ते अकथिके व्याभमभां जगद अप्यभाध कश्यु (जगद वाए प. ६४ प. ६४)

मूलम्—अह य सेयंवियाए णयरीए दो मग्गा संति—एगो वको वीओ उब्जु य । तत्थ जे से उब्जु-
मग्गे तत्थ एगा वियडा महाडवी अत्थि । तीए वियडाए महाडवीए बंडकोसिओ णमं एगो दिट्ठिविसो का-
लो न्व महाविगरालो कालो वालो णिवसमाणो आसि । सो य नियकूरयाए तेण मग्गेण गमणाऽऽगमणं कुण-
माणे पंथजणे दिट्ठीए जालेमाणे घाएमाणे मारेमाणे दंसेमाणे विहरइ । सो तीए महाडवीए परिभमिय परि-
भमिय जं कंचि सउणगमवि पासइ तंपि णं डहरइ । तस्स विसप्पहावेण तत्थ तणाणि वि दड्ढाणि, ण य पुणो
नवीणाणि तणाणि ससुभवंति । एएण महोवइवेण सो मग्गो ओरुद्धो आसी । तेण, उब्जुमग्गेण गच्छमाणं भगवं
गोवद्वारगा एवं वंसु—“रे भिक्खु ! एएण उब्जुणा मग्गेण मा गच्छाहि, वंकेण गच्छाहि, जे णं कण्णो
वुट्ठइ तेण कण्णभूसणेण वि किं पओअणं ? , उब्जुमग्गे महाडवीए एगो महाविगरालो दिट्ठिविसो सप्पो चिट्ठइ,
सो तुमं भक्खिहइ” । तं सोच्चा प्हू णाणवलेण चिंतीअ-जं सो सप्पो जइवि उग्गकोहपगडी तहवि सुलह-
वोही अत्थि, जीवस्स कंचिचि अणिट्ठकरिं पयडिं तिब्बत्तेण उदयावलयं पविट्ठं दट्ठणं जणा तं परिवट्ठणसंभ-
ववाहिरं मन्वति, वत्थुओ सा तथा भविंउं न अरिहइ, मणस्स कोऽवि अंसो जया वियडो होइ तथा सो
उचिएण उवाएण परिवहिंउं सक्किज्जइ । एयावइयं चेव नो, किं तु अणिट्ठंसस्स जावइयं तिव्वं वलं पडिकूले
विसए हवइ तं तावइयं चेव अणुकूलेऽवि विसए परिवहिंउं सक्किज्जइ, काइवि वलवइ चित्ठिई इडा वा अणिट्ठा
वा होउ, सा अइसइओवओगियाए गेज्जा एव, जओ दुविहाऽवि चित्ठिई समाणसामत्थवइ हवइ, परमिमो
भेओ-एगा वट्टमाणक्खणे सुहे पओइया, अन्ना य असुहे, तह वि दुण्हं कज्जसाहणसामत्थं वुट्ठं चेव गणणिज्जं ।
जीए सत्तीए सुहा वा असुहा वा परिणामा हवंति, सा सत्ती अवस्सं इच्छणिज्जा एव सुणेयव्वा, जहा-आ-
मन्नाणं साउपक्कन्थाए पायणे अणेगोवओगिवत्थूणं भासरासीकरणे य समत्था सत्ती एगाओ चेव अग्गिओ
ससुभभवइ तथा सुहाऽसुहाकायव्वपरायणा सत्ती अप्पणो एगओ एव अंसाओ उब्भवइ, परं तीए सत्तीए उवओगं

(पन्द्रह-पन्द्रह दिन के आठ वार के) तपश्चरण करके वह चतुर्मास व्यतीत किया । चतुर्मास व्यतीत करके
भगान् अस्थिक ग्राम से निकले और वायु के समान अप्रतिबंध विहार करते हुए श्वेताम्बी नामक नगरी की
ओर प्यारे ॥सू०८४॥

(पन्ध्रह) तपश्चरषु करीने ते आलुभास पसार करुं ओटले हे चार भासभां इकत आठ द्विवस आडार-याष्टी दीधां.
आलुभास पसार करीने लगवान् अस्थिक गाम्थी नीकथां अने वायुनी जेभ अप्रतिबंध विडार करता श्वेताम्बी
नामनी नगरीभां पधायो. (सू०८४)

पितुः=उद्भूतः शरीरः शरीरमानसः=दीनतायुक्तमनोरहितः, तथा त्रिपिपमनोवचःकायगुणः=त्रिपिपे=रूप-काया-
 नुमोदने कृतमनोवचःशरीरगुणः सःनेर तात् यमकुण्डान् सर्वानप्युपसर्गाच्च सम्यक् असह-प्रयाभावेन, अस
 मन-क्रोधभावेन, अतिविसह-दैन्याकरणेन, अद्यास्त-निश्चलतया ।

तदाः सखु स यताः अविना=अविनाशमानेन प्रभुं मनसापि अविचलितम्=स्वध्यानादभ्युत्पन्नम् इह
 प्रसन्नस्यम्, आशुभ्य=आत्मा आगाथं=वल्लभं शरीर-महान्तम् समासागर्-वरापकारमहान्तम् इह
 नीरस्मानिन् स्वाराधनं=निर्भं बहुविधोपसर्गाकरणजन्यपराधं सामयित्वा बन्धुं नमस्यति, बन्धुत्वा नमस्यित्वा च
 स्वं स्थान गत ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये धमनो मगनात् महाधीरः तत्र=मस्यकृपामे अष्टाभिः=अष्टसस्यै
 मासाद्भक्तैः बहुमांसभक्तैः=चतुर्मासं द्यतिभक्त्यः=अतिविक्रम अस्थिकाद् ग्रामात् प्रतिनिक्रामति=मति
 निःसरति, प्रतिनिक्रम्य एवम् इव अमतिवतविहारेण=अमतिवन्विहारेण-विहरन्-वेताम्बीकां=वदास्यां नगरीं
 प्रस्थित्वा । ७८४॥

नहीं किया। उनके मन में शीनता का प्रवेश न हुआ। वे कुत-कारित-अनुमोदना-रूप वीनों कल्पों से
 युक्त मन बचन काप से गुप्त रहे, और यत्न द्वारा किये हुए समस्त उपसर्गों को निर्मय मात्र से, छान्तिपूर्वक
 शरीरता के साथ तथा निश्चल रूप से सहन करते रहे। तब उस यज्ञने अविज्ञानसे जाना कि प्रभु तो
 मन से भी ध्यान से विचलित नहीं हुए। यही नहीं, उनकी प्रबल स्थिरता भी उसने देखी तब अयाह
 समाके सागर-दुसरी द्वारा किये अपकार को सहन करने का के गुण के समुद्र-मगनात् से अपने अपराध की
 समा मांगी। उन्हें बन्दना की, नमस्कार किया। बन्दना और नमस्कार करके वह अपने स्थान पर चला गया।

उस काल और उस समय में प्रमथ मगनात् महाधीर ने उस अस्थिक ग्राम में आठ अर्धमास तपण
 पर पीछानी करके न कुछ तेमना अनभं दीनताये प्रवेश किये नही, तेजा इतकारित अनुमोदना इय त्रये कार-
 येधी युक्त मन-वचन शरीरकी उप-रक्षां अने यक्ष दास करकेल सवणा उपसर्गेनि निभक्त भावकी छान्तिपूर्वक
 अदीनता साथे तथा निश्चल रूपे सहन करवां रक्षां त्पारे ने यक्षे अविज्ञानकी अपरुद्ध कृपादानने अनधी यत्न
 ध्यानभीषी विचलित यकां नही, केदरुष अ नही पणु तेमनी प्रवण रिकरवा यत्न तेवि केरुष त्पारे अपपर क्षमाया
 आशु-शीलन दास करकेल अपकारने सहन करी तेथाना युक्तम आशु-सजयान युक्ते तेवि येताना अपपराध भाटे
 क्षमा भायी तेभने पठना करी नमस्कार कर्ना, बन्धु अने नमस्कार करीने ते येताने स्थाने आरक्षे अये।

७८४॥ अष्टाभिः आठ सस्यै आठ सस्यै (आठ बार) ७८४ प ४४

नान् दृष्ट्या ज्वलयन् घातयन् मारयन् दशनं विहरति । स तस्यामटव्यां परिभ्रम्य परिभ्रम्य यं कांचिद् शकु-
नरुमपि पश्यति, तमपि दहति, तस्य त्रिपप्रभावेण तत्र तृणान्यपि दग्धानि, न च पुनः नवीनानि तृणानि समुद्भव-
न्ति । एतेन महोपद्रवेण स मार्गोऽवरुद्ध आसीत् । तेन ऋजुमार्गेण गच्छन्तं भगवन्तं गोपदारका एवमवादिषुः—
“रे भिक्षो ! एतेन ऋजुना मार्गेण मा गच्छ, वक्रेण गच्छ, येन कर्णछुटयति, तेन कर्णभूषणेनापि किं प्रयो-
जनम् ?, ऋजुमार्गे महादिव्यामेको महाधिकरालो दृष्टिविषः सर्पस्तिष्ठति, स त्वां भक्षिष्यति । तच्छ्रुत्वा प्रभुर्ज्ञा-
नवलेनाचिन्तयत्—“यत् स सर्पो यद्यपि उग्रक्रोत्रप्रकृतिः, तथापि सुलभवोधिरस्ति, जीवस्य कांचिदपि अनिष्ट-
करीं प्रकृतिं तीव्रत्वेन उदयावलिकां प्रविष्टां दृष्ट्वा जनास्तां परिवर्तनसम्भवाद्वां मन्यन्ते, वस्तुतः सा तथा

से आवागमन करने वाले पथिकों को अपनी दृष्टि के विष से जलाता, घात करता, मारता और डँसता था ।
वह उस अटवी में घूम-घूम कर जिस किसी पक्षी को भी देखता, उसी को भस्म कर देता था । उसके
विष के प्रभाव से वहाँ का घास भी जल गया था । वहाँ नवीन तृण तक भी उत्पन्न नहीं होते थे । इस
महान् उपद्रव के कारण वह मार्ग रूक गया था अर्थात् उधर से कोई आता-जाता नहीं था ।

उस सीधे मार्ग से भगवान् को जाते देख कर गोपदारकों ने इस प्रकार कहा—अरे भिक्षु ! इस
सरल मार्ग से मत जाओ; चक्रदार रास्ते से जाओ । जिमसे कान टूट जाय, उस कान के गहने से क्या
लाभ ? इस सीधे मार्ग में, महाटवी में अत्यन्त विकराल दृष्टिविष सर्प रहता है, वह तुम्हें खा जाएगा ।

यह सुनकर भगवान् ने ज्ञान के बल से सोचा—वह सर्प यद्यपि उग्र क्रोधशील है, फिर भी
वटेभारुज्योने ते सर्पं कुरतापूर्वकं योताना दृष्टिविष वरे भाणी नाभते, घात कर्तो—भारतो अने उसतो पशु डेतो.
आ अटवीमा जे डेध पक्षी अर्डीतर्डी छे तेने पशु भाणने बरुम करी नाभते। तेना विषना अभावें त्यांनुं
दास पशु भणी गथुं नथां दास भणी गथुं इतुं त्या नवा अंकरे पशु क्रेटता नछि. आवा उपद्रवने वीधे ते
भागं सर्दतर जवाआववा भाटे अंध थध गथे। इतो तेथी त्यांनुं आवागमन अवहार अटवाध पडथे। इतो.

भगवानने सीधे मार्गे श्वेतांथीनगरी तरफ जतां जेध गोवाणीआओ। आ अभावे छडेवा दाग्या डे ‘छे
बिक्षु ! आ सरणमार्गं नछि पकडतां दांथा भागे जवानु राणे। जेनाथी काननी खुटीओ पटी भय ते सोनाने
(धरेथाने) पछेरवाथी शे। दाब ? आ सीधा मार्गंभां मडान् अटवी मध्ये जेक काणे। इच्छिधर नाग रहे छे ते तमने
भाधं नशे.’ आपुं सांभगी लजवाने शान द्वारा जाली वीधु डे आ सर्पने। डेध इच्छु सुधी हर थथे। नथी, छतां ते
आत्मा सुदल जेधी तो जरेर छे. डेध पशु एवनी वर्तमानदथा अनिष्टकारी प्रवर्तती होय अने आ अनिष्टपशु

घरे अघुरे वा कुळा, शैव्याशय अस्तिस्तर। मणुस्तरां एयारिसो एयारिसो मममरियो दीसा, ज विव्वा
 अणियविधिगरी सची सुखो सुखो पिकरिय वारि करणिव्जेचि, परं वेण सर एयं विस्तरति नं मणुस्सत्त
 वा सची नाशयं अणिव्हं काठं सखेइ सा वेव सची इहमणि तावय्य वेव काठं सखा, जहा जो चकव्ही
 नीए सचीए सपमनरयुधुचिनोनाइं नाशयाइं तिसारकरुम्माइ अज्जिउ सखेइ, सो वेव चकव्ही जइ तं
 सपिं इहकूजे संगोएइ, ठो तावय्याइ वेव अतिसारसुइरुम्माइं अज्जिय सोवत्तमरि एणु सखेइ। जे जीवा सुइ
 मघुरं वा किपि क्कत्त न सखेवि, जे य वेयरीजा गल्लिवल्लिरा विव इति, जे य जहा विव जगतथाए आइज्जिवि,
 जेति पापरयाए मोग्गाल्साए वारिरत्त पमायस्स य अक्की एव नय्यि, एयारिसा जीवा न किपि काठं स
 केति। जेसु पुण अणवत्तसोरियाइय इोइ ते घुरे अघुरे वा पजाए इोहु इच्छणिव्जा एव। अओ अघुर
 पजाएयि तं अणवत्तायं जेण अय्यसेण निव्वण, तत्त अय्यसत्ता सचीरि लओवत्तममावेण वेव जीवेण पा
 पिज्जइ। सा सची निमित्तं पारिय जदिदं परिचिट्टं सक्किअइ, अओ तत्त गमणे लाहो एव-ति चित्तिप मगव
 वेणेव उज्जुणा मग्गेव पट्टिए। अया मगवं तीए अइवीए पट्टिइ, तथा तत्त घुडी पाणिण गमणागमणाभा-
 यानो वरणाएिपरिया जइविया वेव। जल्लनाल्लियाओ जसामायेण सुकाओ। सुणा क्वला तच्चिज्जनालाए
 इइरा सुका य। सट्ठपट्टियुअपपासायाएण यूमिमागो आच्छाएओ, रम्मीयसइस्सेहिं सक्तो सुधमग्गो य
 भासी। कुडीरा सखे यूमिसाइओ संगया। एयारिसीए महाइवीए मगवं जेणेव वठकोत्तियस्स रम्मीयं वेणेव
 उवागअइ, उवागच्छिवा तत्त काउत्तसग्गेण डिए ॥२८८५॥

छाया--अय व श्रवताम्यिकायाः नगर्याः द्वी मार्गौ स्तः एको वक्रो द्वितीय न्नुजुध, तत्र य' स य्जुजु
 मार्गत्तत्र एका विक्रता महाटवी अस्ति। तस्या विक्रतायां महाटव्यां वण्डकौशिको नाम एको इष्टिषिपः काळ
 इव महाविक्रतालः काको व्यालो निरसन भासीव। स च निजकूरतया तेन मार्गेण गमनागमनं कुर्वतः पान्यज

पूरु का अर्थ--'अइ य' इत्यादि। वेताम्बी नगरी के दो मार्ग थे-एक देड़ा, दूसरा सीषा। जो
 मार्ग सीषा था, उसमें एक विक्रत महा अम्बी पड़ती थी। उस विक्रत महा अम्बी में वण्डकौशिक नामक
 एक इष्टिषिप, काळ के समान विक्रताल काला सौंप रहता था। वह अपनी कूरता के कारण उस मार्ग

मूकने अर्थ--'अइ य' अर्थात्, वेतान्बीननरीना के भाई कर्त। अइ आये अने जेअ सीषा के भाज सीषा
 केते। तेम जेअ अकान् अइवी आइवी केती का अका अइवीमां अइवीमां नामने। जेअ इष्टिषिप इष्टिषइ नाम
 इष्टिषी केते। का इए अका विक्रता अने साकत्त अमशर नेवे अकाले केते। जे आइ अणवत्तसुइरुम्माइ अज्जिउ-

રાત્નન એકસ્માદેવાશાદુઢ્ઢવતિ, પરં તસ્યાઃ શર્ચયા ઉપયોગં શુભેડશુભે યા કુર્યાત્-इत्येतावदवशिष्यते । મનુ-
 વ્યાણામેતાદશો વિચારો અમૃતો દશ્યતે-यत् तीव्राऽनिष्टप्रवृत्तिकरो शक्तिर्भूयो भूयो प्रिमृत्त्य वद्विकरणीयेति ।
 પરં તેન સહ એતદ્ વિસ્મરન્તિ-यद् मनुष्यस्य या शक्तिः यात्तम् अनिष्टं कर्तुं गर्भेति, सैव शक्तिरिष्टम-
 પિતાવદેવ કર્તું શક્નોતિ, યથા-यश्चक्रवर्ती यथा शतया सप्तमनरऋषियित्रीयोग्यानि यावत्क्रान्ति हिंसादिक्कर-
 માણિ અર્જયિતું શક્નોતિ સ એવ ચક્રવર્તી યદિ તાં શક્તિમિષ્ટકાર્યે સંયોજયતિ, તદા તાવત્યેવ પ્રહિંસાદિશુભ-
 કર્માણિ અર્જયિત્વા મોક્ષમપિ પ્રાપ્તું શક્નોતિ । એ જીવા શુભમશુભં વા ક્ષિમપિ કર્તું ન શમ્નુવન્તિ, એ ચ
 તેજોહીના ગલ્લિવલીવર્હીં ફ્રવ ભવન્તિ, એ ચ જડા ફ્રવ જગત્સત્તયાડ્ડહન્યન્તે, એવાં પામરતાયા મોગલાલસાયા

ઉત્પન્ન હોતી છે । ઇસી પ્રકાર શુભ ઓર અશુભ કર્તવ્યમ્ મં પ્રયુક્ત હોને વાઝી શક્તિ આત્મા કે એક હી અંગ સે
 ઉત્પન્ન હોતી છે । યહ વાત દૂસરી છે ફિ ઉસ શક્તિ કા ઉપયોગ શુભ મં ક્રિયા જાય યા અશુભ મં ।

“તીવ્ર અનિષ્ટ પ્રવૃત્તિ કો ઉત્પન્ન કરને વાઝી શક્તિ કા તાર-તાર ધિક્કાર કર વદ્દિક્કાર કરના વાદ્દિપ.”
 મનુષ્યોં કા યહ વિચાર પ્રમર્ણ છે । એસા વિચાર કરને વાલે લોગ ખૂઝ જાને હે ફિ મનુષ્ય કી જો શક્તિ
 જિતના અધિક અનિષ્ટ કર સક્તી છે, વઠી શક્તિ ઉતના હી અધિક ફળ્ડસાગ્રન મી કર સક્તી છે । જો
 ચક્રવર્તી જિસ શક્તિ સે સાર્વેં નરક મં જાને યોગ્ય જિતને હિંસાદિ કૂર કર્મોં કા અર્જન કર સક્તા છે,
 વહી ચક્રવર્તી અગર ઉસ શક્તિ કો ફળ્ડ કાર્ય મં પ્રયુક્ત કરે-ક્યાવેં, તો ઉતને હી (અહિંસા આદિ પ્રગલ્લ
 કાર્ય કરકે) મોક્ષ મી પા સક્તા છે । જો જીવ સામર્થ્યહીન હે-શુભ યા અશુભ કુઝ મી નહીં કર સક્તે,

ચિત્તને અગ્નિ સાથે નરખાવવામાં આણું છે. જેમ અગ્નિ કાગા અતને પકવે છે અને તેજ અગ્નિ સમસ્ત
 પદાર્થોને ખાળી પથ્થુ થકે છે. આવી જે ધારી શક્તિઓ જેમ અગ્નિમા છે, તેમ ચિત્તમા પણ રહેલી છે. ચિત્ત જે
 સવળે માર્ગે વળે તો આત્માને ધડીએક ભરમાં મોક્ષગતિએ લઈ લાય છે અને શક્તિ અવળે માર્ગે કામ કરે તો
 સાતમી નરકે પહોંચાડી દે છે.

અનિષ્ટ ઉત્પન્ન કરવાવાળી ચિત્તશક્તિને વારંવાર ધિક્કાર આપી તેના અધિકાર કરવો જોઈએ જોમ જે
 ગુણ્ય માનતો હોય તો તેની એક પ્રમથ્થા છે. જે ચિત્તશક્તિ અધિકમાં અધિક અનિષ્ટતાને આકરી થકે છે તેજ
 શક્તિ દપ્તાને પથ્થુ તેજ પ્રમાણે આકરી થકે છે. જે શક્તિ દારા ચક્રવર્તી નરકમાં જમા યોગ્ય હિંમા આહિના
 પ્રથરન કાર્યો કરી મોક્ષની સાધના પથ્થુ કરી થકે છે. જે દુષ્ટ સામર્થ્યહીન છે. શુભ-અશુભ કાંઈ કરી શકવાની

मर्चिर्तु नाति, मनसः क्रोड्यन्तो यदा विद्धवो मर्चति, तदा स उषितेनोपायेन परिवर्तयितुं शक्यते। एतावदेव ना किन्तु अनिष्टान्त्रय यावत्कं तीव्र बलं प्रविद्धे विषये मर्चति तत्र तावत्क्रमेवात्तुच्छेदपि विषये परि वर्तयितुं शक्यते। काचिदपि वस्तुवती विचरन्तिः इष्टा वा अनिष्टा वा मन्तु सावित्रिचितोपयोगिताया प्रायेण, यतो द्विविधापि विषयस्थितिः समानसामर्थ्यवती सद्यति, परमयं भेदः—एका वर्तमानसूत्रे शुभे प्रयो गिता अन्याचाशुभे, तथापि द्वयोः कार्यधापनसामर्थ्यं मुख्यमेव गजनीयम्। यथा श्रुतया शुभा अशुभा वा परिणामा मर्चन्ति, सा शक्तिरशयमेयोगीयैव ज्ञातव्या यथा—आमाभानौ स्वादुपकालतया पाचने, अनेकोप- योगित्वान्नौ मत्सराशीकरणे च समयां शक्तिरेकसादेवानेः समुत्सृजति तथा शुभाशुभमूर्तव्यपरायणा शक्ति- शुभमर्चोपि है। नीच की किसी अनिष्टकारी प्रकृति को, तीव्रता के साथ, उदयानुलिका में मर्चिष्ट देव कर लोग मान लेते हैं कि यह परिवर्तन की संभावना से वार है, किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। मन का कोई भी अह मत्र विद्ध हो जाता है तो उचित उपाय से वह चरला जा सकता है। यही नहीं, अनिष्ट अशु का नितना इस प्रतिकूल विषय में होता है, उठना ही तीव्र वह अनुकूल विषय में भी पलटा जा सकता है। विष की कोई भी वस्तुती स्थिति, चाहे वह इष्ट हो या अनिष्ट, अविक्षय उपयोगी रूप में ही उसे प्रारण करना चाहिए। कारण यह है कि दोनों (इष्ट और अनिष्ट) प्रकार की वितस्थिति समानशक्तिसम्पन्न होती है। दोनों में अन्तर यही है कि एक वर्तमान में शुभ में प्रयुक्त हो रही है और दूसरी अशुभ में। फिर भी दोनों का, अपने-प्राने कार्य को सिद्ध करने का सामर्थ्य तो समान ही गिना जाना चाहिए। जिस प्रयुक्त शक्ति से शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह शक्ति अस्य ही वस्तुनीय है, ऐसा समझना चाहिए। उदाहरण के लिए अग्नि की शक्ति को भीजिए। एक ही अग्नि की शक्ति कचे अन्न को अच्छी तरह पकाती भी है और अनेक उपयोगी वस्तुओं को मसम भी करती है, यह द्विविध शक्ति अग्नि से ही

तै एव यत्र जतावतो होय, तेषु वर्तनं जहाशची यत्रु प्रारण अने उदीरिष्ठ होय तो दोहा इहे छे ते अत्र एव इतिपि यत्र सुभरी शक्ये नहिः परं वास्तविक रीते अत्र वात अदामर नही भनने। होइ अत्र इहाय विष्टव जनी अत्र तो उचित उपाय बडे तेने सुभारी शक्य छे तेअ अ जहावाची यत्रु शक्य छे आदरि अ नहि यत्रु अनिष्ट अशुभ देहई अत्र प्रतिकूल विषयभा होय छे तेदरि अ तीम ते अदरि विषयभा यत्रु पकाटाइ शक्य छे अतिरानी शक्ति अची छे ते धरत यत्रु यपि अने अतिशय यत्रु यपि। आटे तेनी शक्ति होई अशुभरने यत्रुभाची तेना सुदर उपरोचन यत्रु सहे छे अतिरभाची धरि जने अनिष्ट जने आवे नीक्ये छे, यत्रु शक्तिरनी अरीश अ अतिर जने-धरि अने अतिरप्युभा अमानक-नीक्ये शक्य इहे छे

तै एव यत्र जतावतो होय, तेषु वर्तनं जहाशची यत्रु प्रारण अने उदीरिष्ठ होय तो दोहा इहे छे ते अत्र एव इतिपि यत्र सुभरी शक्ये नहिः परं वास्तविक रीते अत्र वात अदामर नही भनने। होइ अत्र इहाय विष्टव जनी अत्र तो उचित उपाय बडे तेने सुभारी शक्य छे तेअ अ जहावाची यत्रु शक्य छे आदरि अ नहि यत्रु अनिष्ट अशुभ देहई अत्र प्रतिकूल विषयभा होय छे तेदरि अ तीम ते अदरि विषयभा यत्रु पकाटाइ शक्य छे अतिरानी शक्ति अची छे ते धरत यत्रु यपि अने अतिशय यत्रु यपि। आटे तेनी शक्ति होई अशुभरने यत्रुभाची तेना सुदर उपरोचन यत्रु सहे छे अतिरभाची धरि जने अनिष्ट जने आवे नीक्ये छे, यत्रु शक्तिरनी अरीश अ अतिर जने-धरि अने अतिरप्युभा अमानक-नीक्ये शक्य इहे छे

जलाभावेन शुष्काः । जीर्णं वृक्षास्तद्विपञ्चालया दग्धाः श्रुष्काश्च । सटितपतितजीर्णपत्रादिसंघातेन भूमिभाग आ-
च्छादितः, बलमीरुसहस्रैः सक्रान्तो लुप्तमार्गथासीत् । कुटीराः सर्वे भूमिशापिनः संजाताः । एतादृश्या महाऽऽटव्यां
भगवान् यत्रैव चण्डकौशिकस्य बलमीरुं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत्र कायोत्सर्गेण स्थितः ॥४०८५॥

टीका—‘अहं य संयंविद्याए’ इत्यादि । अथ च श्वेताम्ब्याः नगर्याः द्वी मार्गो स्तः—एको वक्रः=
कुटिलः, द्वितीयः=अपरो मार्गः ऋजुः=सरलश्च । तत्र=द्वयोर्मार्गयोर्मध्ये यः स ऋजुर्मार्गः, तत्र एका त्रिकुटा=मया-
नका महाटवी अस्ति । तस्या त्रिकटार्यां=भयानकाया महाटव्या चण्डकौशिको नाम एकः दृष्टिरिपः—इष्टो विपं

जल गये थे और मूख गये थे । भूभाग सड़े पड़े जीर्ण पत्तों के ढेर से ढँक गया था । हजारों चात्रियों
से व्याप्त था और मार्ग लुप्त हो गया था । वहाँ की सभी छोटी-छोटी कुटियाँ धराशापिनी हो गई थीं ।
ऐसी महा अटवी में, जहाँ चंडकौशिक की वांची थी, वहाँ भगवान् पर पड्डुच कर वहाँ कायोत्सर्ग में
स्थित हो गये ॥ ४०८५ ॥

टीका का अर्थ—श्वताम्बी नगरी के दो मार्गों के दो मार्गों ये—एक चकर फाट कर और दूसरा सीधा था ।
इन दोनों में जो सीधा रास्ता था, उसमें एक भयानक जंगल पड़ता था । उस भयानक जंगल में चंड-

सुक्राह गयेवा माहुम पउ छे पुराषा आडपान थंउडकेशिकना विपानी न्वावाओ वडे अणी गयेवा अने सुकाडने पाथ
नेवा थर्ह गयेवा न् जखाय छे अभि पष् सडेवा अने लुधुं थयेवा पांढजाथी ढंकांछ गयेओ न्खुली इत्ती ने ठेर ठेर
भोरा ढगवा न्या त्या पडेवा न्खाता इता । आओ मार्गं ठिन्रउ अने वेरान थर्ह गयेो इतो । अगाडनी नानी कुटिरो
पथु पडी-पणपी गछ इती अने तेनो काटमाण लोथंखेगेो थर्ह गयेो इतो । आनी भयंकर अटवीभा न्यांत्थं वेणुना
राइडा नभी गथा इता । आ भयंकर निर्रन प्रदेशमा न्या थंउडेकेशिकनेो गइडेो इतो । त्या भगवान पडोंथी गथा ।
थंउडेकेशिकना राइडा पासे आवी आणुणायु नन्र करी ने न्गथा तेभने निटोप न्खुअर्ह, ते न्गथाओ पोते
सावधण्णे काथाने स्थिर करी कायोत्सर्गं धारखु कथेो अने आत्मसमाधिमा भन्ने नेडी हीधु । (४०८५)

टीकानो अर्थ—‘श्वेतांगी नगरीमा न्वाना ने छे भागो इता । तेमां ओक डेडी मार्ग इतो । दोडोतुं मानस
छ भेया द्रका रस्ते थर्ह, दृच्छित स्थले पडोंथवातुं होय छे आवा द्रंका रस्ता, पद्मस-नरी-नाणा विगेरे अनण्या
रस्ते थर्हने न् न्तां होय छे । पडेवा थिडो पाडनार माधुस सुदकेदी अनुभव्हे छे । पण त्यारपथी माणुगेाना पगरव
पडता, त्या ओक रीतसन्नी डेडी पडी न्थ छे । त्यारथाढ, आ डेडीनेो उपयोग धीमे धीमे नाना रस्ता तरीट्टे थाय छे ।

णीन्ने ओ धोरी मार्गं श्वेतांगी नगरी तरक्ष न्तेो इतो, नगरन्नेो ते रस्तानेो न् उपयोग करी रखा इता ।
परंतु कमलाग्र्ये त्याना रस्ते डोर्ह ओक कायंकर साथ अवार नवार नन्रे पडता आववा न्वानेो न्वयइर ओओ

राक्षिणस्य ममाहस्य नावपिरेष नास्ति, एताहञ्चा जीवा न स्मिपि कर्तुं शक्नुवन्ति । येपु पुनरात्मसकञ्चौपाधिकं भवति, ते शुभेऽगुमे वा पर्याये भवन्तु, एषानीया एव, यतोऽशुभपर्यायेऽपि तद् आत्मबलादिकं येन आत्ममाणेन निवृत्तं तस्य आत्मोच्चस्य अक्षिरपि क्षयोपशममात्रैवैव क्षीवेन प्राप्यते । सा शक्तिः निमित्त प्राप्य यथेष्टं परिचरितुं शक्यते, अतस्त्रप गमने काम एव ” इति चिन्तयित्वा मगवास्तेनैव कञ्चुना मार्गेण प्रस्थितः । यदा मगवास्त्वस्या-मटर्च्यां प्रविष्टस्त्वा तत्र शूलिः प्राणिनां गमनागमनाभावात् चरणादिचिह्नरहिता यथास्थिता एव । जलनालिकाः

जो गलियार पैस की छार तेजोहीन होते हैं, जो बक की भौष्टि जगत की सचा से बचे रहते हैं, मि नकी पामरता की, मोगलास्सा की, दखिता की और प्रमाद की कोई सीमा ही नहीं है, ऐसेपामी कुछ मी नहीं कर सकते। जिन में आत्मबल है, शौर्य आदि गुण हैं, वे चारे शुभ अवस्था में हों या अशुभ अवस्था में, बौछनीय ही हैं। क्यों कि अशुभ अवस्था में मी वह आत्मबल आदि जिस आत्मांश से निप्यन्न हुए हैं, उस आत्मांश की शक्ति मी क्षयोपशम मात्र से ही जीव को प्राप्त होती है। पर शक्ति निमित्त पाकर इच्छानुसार बहसी जा सकती है। अत एव वहाँ जाने में काम ही है।

इस प्रकार विचार कर मगवान् ने उसी सींचे मार्ग से प्रस्थान किया। जब मगवान् उस अटवी में प्रविष्ट हुए तो वहाँ की पूस प्राणियों का गमनागमन न होने से चरखविह्न आदि से रहित, क्यों की त्यौं थी। जल की नाभियाँ बसामात्र से सूख गई थीं। पुराने पेरु बहकौशिक के निय की ज्वालाओं से

शक्ति धरावती नहीं, अक्रिया वगतनी आरु तेजहीन छै, अरु लेवी अजतनी प्रतिभा इवायेदो रहो छै, अने प भरवा-योगदावधा-रिहता अने प्रभाहनी होइ सोभा नही तेवो आत्मा अजतभां भंड पञ्च करी यकतो। नबी लेनाभां आ आत्मलग होव, शौर् अदि अुख होव ते बहे दुःख-अशुभ अरे ते आस्थामां परेदो होव तौ पञ्च ते वांछनीय छै आरु के भावा; आभङ्गवान आत्माने अरुस्ते वाकवामां बधि आवतो नबी।

आ शक्ति अहे ते अहसावनी होव के अत्रभवनी। परत ते अयोपशममात्र दास्य प्राप्त यक्ष छै, अहेदो शक्ति तो आरुशक्ती छै हेर अहेदो छै के ते अशुभ रहते होस्वाडं अरु छै तेने पाछी वानी दुःख रस्तामां जाह वबानी छै आनी अशुभ भाजे होराकोही शक्ति निमित्त मगतां पाछी वजे छै, अने तेना अहृषयैव अरु शहे छै आे आ शक्ति भाजे अन्धमां बखो काम छै, कोम अन्धारे सर्पना अणन उपरबी बनवाने बानी बधि ल्यारे तेजोही सोभा भाजे प्रस्थान करी गब।

आ अटवीमां प्रवेश करत बनवानना आकाशमां आनी अरु के अ अग्नि प्रभावे अ वातानरु छै आ अग्नि पर होइ अण् आनुनीं पमबां अकतां नबी पाबोना नागं अने अरनाणां शक्ति बधिर पाबोनी अकतां

गच्छन्तं भगवन्तं गोपदारकाः एवम्—अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अत्रादिषुः—कथितवन्तः—“रे भिक्षो ! एतेन= अनेन ऋजुना मार्गेण मा गच्छ, किन्तु वक्रेण मार्गेण गच्छ । येन भूषणेन कर्णः—बुटयति तेन भूषणेन=कर्णा-भरणेन किं प्रयोजनं ? किमपि कार्यं नास्ति । अयमपि ऋजुमार्गः कर्णवोटकाभरणवदेवास्ति, यतोऽत्र ऋजुमार्गे महाटव्यामेको महाविकरालो दृष्टिविषः सर्पस्तिष्ठति, स सर्पः त्वां भक्षिष्यति ।

तत्=गोपदारकवचनं श्रुत्वा प्रभुः—श्रीमहावीरस्वामी ज्ञानबलेन=ज्ञानप्रभावेण अचिन्तयत्=चिन्तितवान् यत् सः=चण्डकौशिकः सर्पः यद्यपि उग्रक्रोधप्रकृतिः=तीव्रक्रोधस्वभावोऽस्ति, तथापि—स सुलभवोधिरस्ति । जीव-

मनुष्य आदि प्राणियों का तो कहना ही क्या ? उस चण्डकौशिक सर्प के विष के प्रभाव से—विष की ज्वालाएँ फैलने से, उस अटवी का घास—फूस भी भस्म हो गया था । भस्म होने के बाद नया घास उगता नहीं था । चण्डकौशिक के विषजनित इस उपद्रव के कारण अटवी का वह मार्ग रूढ़ गया था कोई आवागमन नहीं करता था ।

उसी सीधे मार्ग से भगवान् को जाते देख गुवालों के लड़कों ने भगवान् से कहा—हे भिक्षु ! इस सीधे रास्ते से मत जाओ, चकरदार रास्ते से जाओ । जिससे कान ही टूट जाय, उस कान के आभूषण से क्या प्रयोजन ? अर्थात् इस सीधे रास्ते से क्या लाभ जब कि इससे जाने पर लक्ष्य स्थान पर पहुँचने से पहले ही प्राणों से हाथ धोने पड़े ? यह सीधा रास्ता कान तोड़ देने वाले गहने के समान है । इस रास्ते में एक महाविकराल दृष्टिविष सर्प है । वह तुम्हें खा जायगा ।

वडे, तेना उपर प्रहार करतो इतो. ते उपरात, तेना अवधयेने, हांतथी करडी पातो. आकाशभा उडनार पक्षी पण, तेना दृष्टिविषथी नीचे पटकथ पडतु, अने भरथुने आधिन थतुं. न्यादे आवा उचे उडवावाणा पक्षी सुधी, तेनुं अेर उचे अरतुं तो जमीन पर आलनार प्राण्युबोनी तो वात न शी ? घास आदिना अंकुरे। पथु नवीन पथु इटतां नडि होवाने कारणे आर्षो रस्तो वेरान अने रमथान बूमि लेये। थध गये। इतो. न्णणे अडिं डार्थ रणु उबुथधुं न होय। तेम आर्षो प्रदथे निःसस्व अनी गये। इतो.

ज्ञानीको अने साधुजनोने, उडस्थानी माक्षक, डार्थ शुसता न्णणवानी न होवाथी आडे मार्गे नवा आववाडं डार्थ प्रथेनन होतुं न नथी—तेथी, तेको डंभेशा सीधा मार्गे न नवा टेवायेता होय छे. ते अनुसार भगवान पण, साधु मार्गी होवाथी, न्णहेर रस्तो पकडयो, अने ते तरक्ष तेमणे आलवा मांडथुं.

भगवान तो, आ अधु प्रथमथीन न्णथुतां इतां. अने ते सर्पने। उडार तेमना न होये थवा लभायेडो इतो अने आ वात तेमना न्णालभां न इती. वणी थक्षना उग्र परितापेथी लेओ। इथां नडि, तेने ओक मामुदी सर्प

यस्य स तपापूतः, कास इव=व्युत्पत्तिव महाविकारास न्मतिमपङ्कुरः, कास=कृष्णार्णः, व्याल=सर्पः, निवसन्
 आसीत्। सन्सर्पेण निमङ्कुरतया=स्वदुष्टसमायेन तेन=महादनीस्येन मार्गेण गमनाऽऽगमन कुर्वतः=आच्छत आग
 रत्वाव पान्यमानान्=यधिकोकात् इष्टयान्=कष्टुपा अस्मत्तन्=इहन् पातपन्=दुष्टेन ताहपन् मारयन्=माणेभ्यो
 विभोयन् दस्मन्=न्तैः मइस्य विहरति=विचरति। सां=वण्डकौशिकाम्यः सर्पः, तस्यां महादन्त्यां परिभ्रम्य
 परिभ्रम्य=वारं शारमिपस्तगो अमित्या यं कञ्चिद=कमपि शकुनकमपि=पशिमपि पश्यति, तमपि=आकाश
 चारिणमपि पशित्वा दशदिग्दृष्टिविषेण मस्समारुहोति, म्यलवारिणां तर्हि कथेष का? तथा=तस्य=वण्डकौशिक-
 सर्पस्य विपमभवेण=विपज्ज्यालासरणेन तत्र=महादन्त्यां तृषान्यपि इग्यामि=प्रसीयुतानि। न च पुनः दहना
 नन्तरं नवीनानि=नवानि कृषानि सद्युवमर्वान्त=मरोरन्ति। एतेन=अनेन वण्डकौशिकविपोग्मभेन महोत्क्षेपेण=
 दृष्टुपसर्गेण सां=महादन्तीस्यः मार्गः, अवच्छन्=यधिकामनागमनवर्जित आसीत्। तेन=महादन्तीस्यन कञ्जु=मार्गेण

कौशिक नामक एक साप रहता था। वह दृष्टिविप था, अर्थात् तसकी दृष्टि में बिप था। जिस पर दृष्टि
 हाछे, वह मस्य हो जाय। वह मृत्यु की तरफ अस्पत्य मयङ्कर और काछे रंग का था। वह सर्प अपने
 दुष्ट स्वभाष के कारण उस महादन्ती के मार्ग से गमन-भागमन करने चाछे पयिकों को अपनी दृष्टि से
 नलाता हुआ, पूँछ से ताङ्कना करता हुआ, पानाहीन बनाता हुआ और दांतों से महार करता हुआ दुआ रहता
 था। वह उस अग्नी में पार-पार इधर-उधर घूमता हुआ जिस किसी पत्नी को भी देखता, उस आकाश
 चारी पत्नी को भी अपने दृष्टिविप से मस्य कर देता था। ऐसी स्थिति में जमीन पर बसने चाछे

दया छाये। का थाप प्योताना अर वडे अदुभ-पद्यु, पभी विअरेने भारी नाभते दोबाद्य भाहुम परतं का रस्ते
 अदुभ्य कने प्राछीमेनी अवर अवर तरेन ओछी सध अथ छतं पद्यु इष्ट प्रदृतिवाणा सापे, प्योतानी दुधुवा ओछी
 ठरी गर्डे अवे होय शायभां न आवत्तं पद्यु-पभीने जादे, आठ-पान-इल-इल विअरे उपर अर ओछीवा भांछे।
 पद्युभी का वनरअति पद्यु सुभाथ कने निर्गीअ जनी अथ ओद्रे दोहाभां ज्येथी भान्वत्त प्रअरी अथ के का अर्पनी
 इपिभा अ दबादव त्रिप रहेछु छे ने होय ओछिनियकी भाथी पञ्चिन्त्र सुधीना छजने ते ज्ये छे के तरत अ
 तेनी पर वक इष्टि अरे छे, कने वक इष्टि यत्वा तेज इष्टिविष, अदुभ्य तरर देअथ छे ज्ये छे ते अदुभ उपर
 वकइष्टिपाव अरे छे के अदुभ्य अजर प्रअरी ने होय होय ते जलवा भांछे छे कने कषुपारभां जलोने भाअ
 सध अथ छे आथी दोहे, ते भाजने छीथी देछी भाअ अदुभ्य ठरी, अवेतनी नअरीअे कत्ता।
 अर अस्व भाष्टु कटु ने तेने बोधे अर अस्व अरुअर का सार्प पद्यु भाया हांला अरुअर ज्ये दो द्योते
 कते। का अर्पेभां ओद्रेनी ज्ये अथ अर इष्टव जरी कती के भाज्यअने त्रिपकी भाथी पद्यु ते प्योतनी प्युअदी

इष्टा=अनुकूल अनिष्टा=प्रतिकूल वा भवतु, किन्तु सा चित्तस्थिता अतिशयिता=उत्कर्ष प्राप्ता सता उपयागयथा- कार्यकारित्तैव ग्राह्या=विज्ञेया। तत्र हेतुमुपन्यस्यति-यतः यस्माद्धेतो द्विविधापि इष्टानिष्टभेदात् द्विप्रकाराऽपि चित्तस्थितिः समानसामर्थ्यवती=तुल्यवत्या भवति, परं=किन्तु तयोः अयम्=अनुपदं वक्ष्यमाणः भेदः=अन्तरं वर्तते, एका=प्रथमा चित्तस्थितिः वर्तमानक्षणे=विद्यमानकाले शुभे=शुभफलजनककार्ये प्रयोजिता=व्यापारिता भवति, अन्या=द्वितीया च सा अशुभे=अशुभफलजनककार्ये प्रयोजिता भवति, तथापि=चित्तस्थितेः शुभाशुभप्रयोजितत्वेऽपि द्वयोरपि चित्तस्थित्योः कार्यसाधनसामर्थ्यं=शुभाशुभ फलोत्पादनशक्तिः तुल्यं=समप्रमाणमेव गणनीयम्=मन्तव्यम्। यया शक्त्या=सामर्थ्येन शुभाः वा अशुभाः वा परिणामाः भवन्ति=जायन्ते,सा शक्तिः अवश्यं=नःसंदेहं यथा स्यात् तथा एषणियैव-अपेक्षणा यैव ज्ञातव्या=बोध्य। यथा=येन प्रकारेण आमान्ना-नाम्=अप्रकृतपुण्डुलाद्यनानाम् स्वादुपकान्तया=स्वादिष्टपकान्तवेन पाचने=पचनक्रियायां, च=पुनः अनेको-

चित्त की कोई भी स्थिति क्यों न हो, अगर उस में बल है, वह सामर्थ्यशालिनी है, तो चाहे वह अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो, अर्थात् वह कुमार्गगामिनी हो या सुमार्गगामिनी हो, उस उत्कर्षप्राप्त शक्ति को उपयोगी ही मानना चाहिए। कारण यह है कि चित्त की यह दोनों प्रकार की स्थितियाँ तुल्य सामर्थ्य वाली होती है। दोनों में भेद है तो केवल यही कि पहला चित्तस्थिति वर्तमान में शुभफलजनक कार्य में प्रयुक्त हो रही है और दूसरी अशुभफलजनक कार्यमें, फिर भी उन दोनों चित्तस्थितियों में शुभ-अशुभ फल को उत्पन्न करने की शक्ति तो समान ही है। अत एव-जिस शक्ति के कारण शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह मूलभूत शक्ति निस्सन्देह अपेक्षित ही है।

जैसे अग्नि की शक्ति कच्चे चावल आदि अन्नो को मलीभाति पकाने में समर्थ होती है, और अनेकानेक उपयोगी वस्तुओं को भस्म करने में भी समर्थ होती है, वह द्विविध शक्ति एक ही अग्नि से उत्पन्न होती है उसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्तव्य में प्रयुक्त होने वाली शक्ति भी आत्मा के एक ही अंश से उत्पन्न होती है।

लगवान् अंकेऽशिकनीं भक्तिवृत्तिने भसेडवा भागता इता. तेनुं चित्त ने इष्ट कार्यं भां रमषु करे छि तेभाथी तेने इटावी, अन्य भाव उपर नवर पडता, तेने पोतानुं निरस्वदप सभज्ज न्थे, जेम भानी, बगवाने था विकट मार्गं पडउये।

चित्तने। यमकारे अने उक्ताव, नेटवे। अने नेटवी शक्ति जे अनिष्टता-उपर वणे छि, तेवे न यमकारे अने उक्ताव अने नेटवी न शक्ति जे धृष्ट भावे। उपर पषु पडे छे. जे भूणभूत शक्ति चित्तभां काम करी रही छि अने ने शक्ति शुभ अने अशुभ अने वृद्धिभां काम करे छि ने चित्तशक्तिने यथायोग्य सभल तेनुं परीवर्तन करवुं न्थेअि.

स्प=भागिनः काचिदपि=ज्ञामपि अनिष्करीय=अनर्थकारिणीं, प्रकृति=वीग्रहवेन=उग्रत्वेन उदयवक्त्रिकां प्रविष्टाम्=
 उदयवक्त्रिकात्वंतां दृष्ट्वा जनाः तां प्रकृतिं परिवर्तनसम्प्रदायाम्=अपरिवर्तनीयां मन्यन्ते, सस्तुतः=यथा
 र्थत सा=प्रकृति तया=अपरिवर्तनीया मन्वितुं न=नैव अर्थित=अक्रोति, मनसाः=विषयस्य कोऽपि=कश्चिदपि अज्ञाः=
 भागाः यद्वा=यस्मिन् काले विष्णुः=विकारपुक्तो भवति, तद्वा=वस्मिन् काले साः=मनोविष्णुांशः उपरिधेन=
 याग्यन उपारयेन=साधनेन परिवर्तयितुम्=अच्छिन्नात्साध्यां परिणमयितुं शक्यते, एतावदेव=मनोविष्णुांशस्य उपा
 यतनात् परिवर्तनीयता भवतीत्येतावत्मात्रं नास्ति, किन्तु=अनिष्करीयस्य=मनसोऽनर्थकारमागस्य यावत्कर्म=यत्परिमाणं
 तीव्रम्=उग्रम्, कर्म=सामर्थ्यं प्रतिकूलैः=अनिष्टैः विषये भवति, तत्=बलं तावत्कर्मैव=वृत्तपरिमाणमेव अनुकूलैः=शुभे
 अपि विषय परिणयितुम्=परिणमयितुं शक्यते। काचिदपि ब्रह्मवती=सामर्थ्यसम्पन्ना विधिस्यतिः=मनोऽप्यस्या

धुरन्मौ के सङ्को की बात सुनकर श्रीमहाश्रीर स्वामी ने अपने ज्ञानबल से विचार किया-‘यद्यपि
 ब्रह्मलौकिक सर्व अग्रकोष स्वभाव वाला है, फिर भी है सुकर्मबोधि। जीव की कितनी भी अनर्थकारिणी
 प्रकृति को, उग्र रूप उसे, दयावलिता में आई देलकर लोग मान लेते हैं कि उसमें परिवर्तन होना
 संभव नहीं है किन्तु यथार्थ में वह अपरिवर्तनीय नहीं होती। जब विष्णु का कोई भी अक्ष विकारयुक्त
 हो जाता है तो उपरि उपाय स उसे पिकृत अवस्था से अचिकृत अवस्था में पल्टा जा सकता है। इतना
 ही नहीं कि विष्णु के पिकृत अंश को बदल कर अचिकृत बनाया जा सकता है, किन्तु उस चिकृत अंश
 का नितना सामर्थ्यं पयिकूल अनिष्क विषय में होता है, तबने ही सामर्थ्य के साथ उसका अनुकूल-वृत्त
 विषय में भी ब्रह्मत्व हो सकता है।

३३ भवने। कतो? कनी सरीर उपरधी मोक तो लजवने पडेहेकी ए हाडी नापये कतो, कोटके सरीरना इ जे दुःखी,
 यराउ तेभने कतु ए नकि आ लधानो विचार करी, लजवान ते रते आकी नीकथा. एथाभां बिकार इतां अवां हे,
 आ य कोयिक उत्र एभाववाको छे, छयां सुकल जोषी छे तेने सभभावतां वार बाजे तेभ नकी. ते विवारी आ
 अनुकूल कर्मना उदरभा अथयो छे परतु तेनी आनकिठ वृत्ति निष्पाद्य छे तो बदर तेनु परिशर्तन यथ सठरो.
 इहाथ कोर्ं हाखे सिपते। अनुकूल अ स विवृत यथ अथो तो कोम सभभावतु नधी हे तेनु आयु सिप
 निवृत्त पन्ती अतु छे अनुकूल सिपतवृत्तिको विवारी यथ अथ छे, एखु आकीनी वृत्तिको निर्वहारी होवायी विवारी
 सिपतवृत्तिने, निविहार अवरथाभां देवी यथाय छे हाखे विप-भन अनेक वृत्तियानुं लनेक होब छे. अनत
 हाठनु अत-अथय एरभान अनेक शुभा शुभ लाने वृत्तिना पराजिती होब छे कोटके सारी अने नरबी लाने
 वृत्तियोषी आस कयेक सिप अनेक सुदर अने अनुदर कवनेने प्रकट करे छे.

इष्टा=अनुकूला अनिष्टा=प्रतिकूला वा भवतु, किन्तु सा चित्तस्थिता अतिशयिता=उत्कर्ष प्राप्ता सती उपयोगियता=कार्यकारित्तैव ग्राह्या=विज्ञेया । तत्र हेतुमुपन्यस्यति-यतः यस्माद्धेतो द्विविधापि इष्टानिष्टभेदात् द्विप्रकाराऽपि चित्तस्थितिः समानसामर्थ्यवती=तुल्यबला भवति, परं=किन्तु तयोः अयम्=अनुपदं वक्ष्यमाणः भेदः=अन्तरं वर्तते, एका=प्रथमा चित्तस्थितिः वर्तमानक्षणे=विद्यमानकाले शुभे=शुभफलजनककार्यं प्रयोजिता=व्यापारिता भवति, अन्या=द्वितीया च सा अशुभे=अशुभफलजनककार्ये प्रयोजिता भवति, तथापि=चित्तस्थितेः शुभाशुभप्रयोजितत्वेऽपि द्वयोरपि चित्तस्थितयोः कार्यसाधनसामर्थ्ये=शुभाशुभ फलोत्पादनशक्तिः तुल्यं=समप्रमाणमेव गणनीयम्=मन्तव्यम् । यथा शक्त्या=सामर्थ्येन शुभाः वा अशुभाः वा परिणामाः भवन्ति=जायन्ते, सा शक्तिः अवश्यं=नःसंदेहं यथा स्यात् तथा एषण्यैव=अपेक्षणायैव ज्ञातव्या=बोध्यम् । यथा=येन प्रकारेण आमात्रानाम्=अपकृतदुलाघानाम् स्वादुपकान्तयान्=स्वादिष्टपकान्तेन पाचने=पचनक्रियायां, च=शुनः अनेको-

चित्त की कोई भी स्थिति क्यों न हो, अगर उस में बल है, वह सामर्थ्यशालिनी है, तो चाहे वह अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो, अर्थात् वह कुमार्गगामिनी हो या सुमार्गगामिनी हो, उस उत्कर्षप्राप्त शक्ति को उपयोगी ही मानना चाहिए । कारण यह है कि चित्त की यह दोनों प्रकार की स्थितियाँ तुल्य सामर्थ्य वाली होती हैं । दोनों में भेद है तो केवल यही कि पहली चित्तस्थिति वर्तमान में शुभफलजनक कार्य में प्रयुक्त हो रही है और दूसरी अशुभफलजनक कार्यमें, फिर भी उन दोनों चित्तस्थितियों में शुभ-अशुभ फल को उत्पन्न करने की शक्ति तो समान ही है । अत एव-जिस शक्ति के कारण शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह मूलभूत शक्ति निस्सन्देह अपेक्षित ही है ।

जैसे अग्नि की शक्ति कच्चे चावल आदि अन्नों को भलीभाँति पकाने में समर्थ होती है, और अनेकानेक उप-योगी वस्तुओं को भस्म करने में भी समर्थ होती है, वह द्विविध शक्ति एक ही अग्नि से उत्पन्न होती है उसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्तव्य में प्रयुक्त होने वाली शक्ति भी आत्मा के एक ही अंग से उत्पन्न होती है ।

भागवान् य इक्षैशिक्षन्ती भविनवृत्तिने भस्नेऽव्वा भागता इता. तेजुं चित्त ञे इष्ट कार्यं भां रमथु करे छि तेभाथी तेने इटावी, अन्य भाव उपर नजर पडता, तेने पोताजुं निरस्वइप समल्लं नथे, जेम भानी, भागवाने आ विकट मार्ग पडथे.

चित्तने यमकारे आने अुकाव, नेटवे आने नेटवी शक्ति जे अनिष्टा-उपर वणे छि, तेवे न यमकारे आने अुकाव आने नेटवी न शक्ति जे धृष्ट भावे। उपर पणु पडे छे. जे भूणभूत शक्ति चित्तभां काम करी रही छे आने ने शक्ति शुभ आने अशुभ आने वृद्धिभां काम करे छे ने चित्तशक्तिने यथायोग्य समल्ल तेजुं परीवर्तन करवुं नैछिजे.

पयोगिबस्तुनाम्=बहुकार्यसाधनस्वार्थानां मस्मरावीकरणे=मस्मसमूरीकरणे ष समर्थां शक्तिरेकस्मात् अपेक्षेव
 समुद्भवति तथा=तेन प्रकारेण भूमाशुभाकृतव्यपरायणा=शुभकार्यसाधनतत्परा अशुभकार्यसाधनतत्परा चेति
 द्विविधा शक्तिः=सामर्थ्यम् आश्रयनः एकस्मादेव अंशात्=मागात् उद्भवति=उत्पद्यते, परं=किन्तु तस्या=शुभा
 शुभकार्यसाधिकायाः शक्तेः उपयोगे वा कुर्यात्=रूपेण वा=शुभाशुभकार्यनिर्णययोगजनमाश्रय, अन्वित्यते=
 प्राप्तिनां स्वीकृत्यैव भवति। अत्र विषये मनुष्यणाम् एतादृश=अनुपदं=अनुपदं रूपमाणो एतादृशो विचारी
 भ्रमयुताः=भ्रमपूर्णं इत्यर्थे यत् सीमा=उप्रा-प्रकटा अनिष्टमद्विषयकरी=अनिष्टकार्यमद्विषयकारिणी शक्तिः=
 सामर्थ्यं उपयोगः=कार्यार्थं विकृत्य=निवृत्त्या शक्तिः=शुभमपि तावदेव=व्यतिरिक्तव्या इति। परं=किन्तु तेन विचारेण
 सा=सामर्थ्य एतत्=शुभमनुपदं कल्पनाय विवचनं ते विस्मरन्ति, यत्=‘मनुष्यस्य या शक्तिः यावत्=यत्परिमाणम्
 अनिष्टम्=अन्तर्धं पृष्ठं उपनोति सैव शक्ति इष्टमपि=शुभमपि तावदेव=व्यतिरिक्तव्या इति। अत्र इष्टा
 तामुपन्यस्यति-‘यया’ इत्यादि। यया-य कश्चित् चक्रवर्ती यया शक्यता सप्तमनरकृषित्रीयोग्यानि यावन्ति
 व्यतिरिक्तानि क्रूरकर्माणि=नाष्वाधिपतावीरिनि अर्जयितुम् इत्यर्थे, स एव चक्रवर्ती यत्रि=येव तां शक्तिम्
 इष्टक र्थे=शुभकार्ये सयोनयति तदा=तर्हि वास्तव्यक=व्यतिरिक्तव्या-यव शुभकर्माणि=अहिंसादीनि भर्जयित्वा मोक्ष
 भवत्पण उपमा शुभ कार्य में उपयोग करना, यही श्रेय रहता है। यह व्यक्ति का के अर्धीन है।

सत्त्वा अनिष्ट-मद्विषय जनक शक्ति धार-धार विचार देकर दूर करने योग्य है। ऐसा जो लोग विचार
 करते हैं, वे यह भूय मात हैं कि ‘मनुष्य की जो शक्ति जितना अनिष्ट कर सकती है, वही उतना इष्ट भी
 कर सकती है। इस विषय में चक्रवर्ती का उदाहरण लीजिए।

कोई चक्रवर्ती जिस शक्ति से सातवीं नरकधूमि में जाने योग्य जितने प्राणाधिपात आदि क्रूर
 क्रम उपार्जन करने में समर्थ होता है, वही चक्रवर्ती, उसी शक्ति को अपार शुभ में लगा दे तो उतने ही
 शक्ति आदि को उपार्जन करके मोक्ष भी पा सकता है।

ध्यान-प्राप्तवानी करने आ-कने वाली नाचवानी केम ले शक्ति को आदिमां केवाम आवे छ तेवी शते
 शुभ अने अशुभ अने इतन्वोमां काम करेतां शक्ति आ-कना जोड कर अशुभावी उपपन्न करेवी छ अने आपसे
 केवण अरे रहे छे हे आ शक्तिना रोमां उपपेय करेतां आ शक्तिना शुभ हे अशुभमां उपपेय करवाना अर्थिकार
 अन्ति परतेना कोय छे अने ते हाके अन्तिने आधिपन रहे छे यका यकवर्तिकाके पितानी शक्तिना उपपेय
 निर आधनमां वापरी आ-कनाय प्राप्त भयो अने जोकको तेकर शक्तिना अकार अर्थ वापरी अशुभ अमी आधी
 अयम अन्तिमां परेवीनी यया

मपि प्राप्तं शक्नोति । ये जीवाः=प्राणिनः शुभम् अशुभं वा किमपि=शुभाशुभयोर्मध्ये एकतरमपि कर्तुं न शक्नु-
 वन्ति=न समर्था भवन्ति, च=पुनः ये जीवाः ते जीहीनाः=निस्तेजसः, गलिवलीवर्दाः=अत्रिनीतटपभा इव भवन्ति,
 च=पुनः येः-जीवाः जडा इव जगत्सत्तया=जगतः शक्त्या अधिकारादिरूपया आहन्यन्ते=पराभूयन्ते येषां पाम-
 रतायाः भोगलालसायाः=भोगकामनायाः, दारिद्र्यस्य प्रमादस्य=आलस्यस्य च अधिरेव=सीमैव नास्ति,
 एतादृशाः-ईदृशाः जीवाः=प्राणिनः किमपि=किञ्चिदपि कार्यं कर्तुं नन्वैव शक्नुवन्ति । येषु जीवेषु पुनः आत्म-
 बलशौर्यादिकं भवति, ते जीवाः शुभे अशुभे वा पर्याये विद्यमाना भवन्तु, उभयत्र पर्याये विद्यमानास्ते जीवाः
 समानतया एषणीयाः=अभिलषणीयाः । तत्र हेतुमाह-यतः=यस्मात् कारणात् अशुभपर्यायेऽपि तत्=अनर्थकरम्
 आत्मबलादिकं येन आत्मांशेन कारणीभूतेन निर्दत्तं=सम्पन्नमभूत्, तस्य आत्माशस्य शक्तिरपि=अनर्थकरं
 सामर्थ्यमपि क्षयोपशमभावेनैव=तदावरणक्षयोपशमभावद्वारैव जीवेन प्राप्यते । सा क्षयोपशमभावलब्धा शक्तिः
 निमित्तं=कारणं प्राप्य यथेष्टं=यथेच्छं यथास्यात्तथा परिवर्तितुं=पराट्चा भवितुं शक्यते, अतः=अस्मात् कारणात्
 तत्र=चण्डकौशिकाधिष्ठितस्थाने गमने=विहारे लाभ एव भवितुम् अर्हति=इत्थं चिन्तयित्वा=विचार्य भगवान्
 श्रीवीरस्वामी तेनैव ऋजुना मार्गेण प्रस्थितः=प्रचलितः । यदान्यस्मिन् काले भगवान् श्रीवीरः तस्याम्=

जो प्राणी शुभ और अशुभ, दोनों में से किसी भी एक को उग्र शक्ति के साथ करने में असमर्थ
 होते हैं, और जो निस्तेज हैं, गलियार बेल के समान हैं, जो जड़ की भाँति जगत् की शक्ति से अभि-
 भूत हो जाते हैं और जिनकी पामरता, भोगकामना, दग्दिता और प्रमाद की कोई सीमा ही नहीं है, ऐसे
 प्राणी क्या कर सकते हैं? उनसे कुछ भी नहीं हो सकता । इनके विपरीत, जिन जीवों में आत्मबल है, शूरता-
 आदि है, वे शुभ या अशुभ किसी भी पर्याय में क्यों न हों, समान रूप से बालनीय हैं । क्यों कि अशुभ
 पर्याय में भी जो आत्मबल आदि जिस आत्माश से उत्पन्न हुआ है, उस आत्मांश की शक्ति-अनर्थकारी
 सामर्थ्य-भी क्षयोपशम के द्वारा ही जीव को प्राप्त होती है । वह क्षयोपशमभावजनित शक्ति, कारण मिलने
 पर इच्छानुसार परिवर्तित की जा सकती है, अतः जहाँ चण्डकौशिक रहता है, वहाँ जाने में लाभ हो सकता है ।
 इस प्रकार विचार कर श्रीवीर प्रभु उसी सीधे मार्ग से रवाना हुए ।

अनुभव योतानी शक्तिने व्योणया विना योताने पाभर मानतो थल गयो छ अने आत्मोद्धार करवा
 तरक्ष अगर् शुभदृष्टि करवा तरक्ष तेतु वदवु शभया बला ते डिभर जोल जेसे छ. हरेक्ष आत्माभा शक्ति रहवी
 छ अने ते यवु सौभा सरथा प्रभाषमां छ नेवु नेवु आत्मविश्वास क्णन्थे। तेवु तेवु. ते शक्ति प्राप्त करी.

वण्डकौशिकपिटव्यायाम् अष्टव्यां प्रविष्टः, तथा तस्मिन् काले तत्र=भट्टव्यां घृषिः प्राणिनां गमनाऽऽपयना-
 मायात् चरणद्विग्निराशिव=गन्नाद्विचित्रमिता, अत एव-ययास्थितैव आसीत् । तथा-जलनालिकाः जलाभावेन
 शुष्काः आसन् । तथा-नीर्णां=पुरातनाः केचन वृक्षा तद्विपण्यस्य=वण्डकौशिकसर्पविपदारो न दृग्धाऽन्य-
 म्भीभूताः, तथा-केचन वृक्षाः शुष्काऽनीरसाश्च आसन् । तथा-उत्पत्त्या भूमिभागः षट्पण्यवितनीर्णप्रादि
 संघातेन-अटिवानां=नीर्णानां पविठानाम् शीण्यप्रादीनां संघातेन=समूहेन आच्छादितः=आहत आसीत्, तथा-
 वरमीक्षससैः=वरमीक्षाः=वामसूराः-‘बान्मी’ इति मायाप्रसिद्धाः, तेषां ससैः संक्रान्त=चुक्रः, व-सुनः
 न्युसमार्गः=अश्वयमानमार्ग आसीत् । तथा-सर्वैः=वद्वनस्थिताः सकलाः कुटीराः=लघुकुटीरौ भूमिआयिना=धरापविताः
 सजाताः=प्रभवन् । एतादृश्याम्=ईदृश्याम्-अगम्ययायाम् महाटव्यां मगवान् भीबीरत्वामी यत्रैव=यस्मिन् स्थाने
 वण्डकौशिकस्य वरमीक्षम् आसीत्, तत्रैव=तस्मिन्नेव वरमीक्षस्थाने उपागच्छति, तथाप्य तत्र=वण्डकौशिका
 भिष्टिवरमीक्षाऽऽस्तनस्थाने द्वायोत्सर्गेण द्वायोत्सर्गपुरस्सरं स्थितः ॥६०८५॥

जिस समय मगवान महावीर उस मयानक अर्थी में प्रविष्ट हुए, उस समय वहाँ की मूल पैरों
 आदि के निदानों से रहित थी, क्योंकि वहाँ आगमन नहीं होता था, अतएव वर उषों की त्यों थी।
 वहाँ की जल की नालियाँ जलाभाव के कारण सूली पड़ी थीं। किन्तु ही पुराने पेठ वण्डकौशिक के विष की
 गवाया से मत्स्य हा लये थे और किन्तु ही मूल लये थे। अटवी का युगाग सङ्गे पड़े और सुखे पशों के डेरों
 से आच्छादित हो गया था और इनारों चकियों से व्याप्त था। मार्ग इहीं दिन्वार्य नहीं देता था। वहाँ के
 समी कुटीर धराआधी (अमनोस्त) हो गये थे। ऐसी दुर्गम अटवी में मगवान् नहीं पहुँचे, जहाँ वण्डकौशिक
 की बंसी थी। वहाँ पहुँच कर मगवान् उम बंसी के पास ही द्वायोत्सर्गदेह स्थित हो गये ॥६०८५॥

आ शक्ति लक्षारधी आगतो नधी, परतु अडरशुस शीते रकेडी छि जने तेव लक्षार आदे छि इठव तेना आविभाव
 इवाम् लक्षारवा साधेना निमित्त भूत बाध छि, केरठे आपके इकीन्ति छिजे छे आ साधेनाधी अ भारी शक्ति लीठी।
 ने शक्ति अडर न इती तेा भीठी इभांभी ? आ अतावे छि छे इरठ आत्माभां अतत शक्तितेना पिठ परये छि
 इठत हेनी शीते लक्षार बावये तेव विचारवानु रके छि

आगतवान् आ कथु जितो जितो सर्पन शरुड आउन आधी पडोन्ना जने ते शरुडानी आत्माप्राप्त अ
 लक्षारवाया वया विचार कथी, अने ते कथि कथि अज भी कथा कथा (६०८५)

मूलम्—तए णं से चंडकोसिए विसहरे कुद्धे समाणे विलाओ वाहिरिं निस्सरिय काउसग्गट्टियं पहुं दट्टणं चिंतीअ—‘केरिसो इमो मच्चुभयावेषुक्को मणुस्सो जो खाणू विव थिरत्तणेण ठिओ, संपइ चेव इमं अहं विसजालए भासरासी करोमि’—त्ति कट्टु कोदेषण धमथंमंतो आसुरोचो मिसिमिसेमाणो विसर्गिण वममाणो फणं वित्थारयती भयंकरेहि फुक्कारेहि दिट्ठिं फोरेमाणो सूरं निज्जाइत्ता सारिं पलोएइ। सो न उज्झइ जहा अणणे, एव दोचंपि तचंपि पलांएइ तहवि सा न उज्झइ, ताहे पहुं पायंगुट्टम्मि डसइ, डसित्ता ‘मा मे उवरि पडिज्ज’—त्ति कट्टु पचोसक्कइ। तहवि पहुं न पडइ। काउसग्गाओ लेसमवि न चलइ। एवं दोचंपि तचंपि डसइ, तहवि णो पडइ, ताहे अमरिसेणं पहुं पलांएंतो अचडइ। एवं तं भगवं संतमुदं अउलकंतिमंत सोम्मं सोम्मवयणं सोम्मदिट्ठिं माहुरियगुणजुत्तं खमासीलं पिच्छंतस्स तस्स ताणि विसभरियाणि अच्छीणि जिज्जाइयाणि। तओ कोहपुंजख्वो सो चंडकोसिओ थुद्धो जाओ। पहुस्स सतिवलेण तस्स कोहो समिओ। तस्स कोहजालाए उवरिं पहुणा खमाजालं सित्तं, तेण सो सतो सतसहाओ संजाओ। एयारिसं संतिसंपन्नं चंडकोसियं दट्टुणं पहुं एवं वयासी—हे चंडकोसिय! ओबुज्झ, ओबुज्झ, कोहं ओमुंच ओमुंच, पुव्वभवे कोहवसेणेव कालमासे कालं किच्चा तुवं सण्णो जाओ, पुणोऽवि पावं करेसि, तेण पुणोऽवि दुगइं पावेहिंसि, अओ अप्पाणं कल्लणमग्गे पवत्तेहि—त्ति। एवं पहुस्स अग्गियसमं पवोहवयणं सोच्चा चंडकोसिओ विथारसायरे पडिओ पुव्वभयजाइं सरइ। तेण सो गिय-पुव्वभवे कोहपगडीए गियमरणं विण्णाय पच्छयाव करिय हिंसयपगडिं विमुचिय संतसहावो संजाओ। तए णं से सण्णे तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता सुहेण ज्ञाणेण कालमासे कालं किच्चा उक्कोसओ अट्टारससागरोवमट्ठिए सहस्साराभिहे अट्टमे देवलोए उक्कोसट्ठिइओ एगावयारो देवो जाओ। महाविदेहे सो सिञ्चिस्सइ ॥सू०६॥

छाया—ततः खलु स चण्डकौशिको विपथरः क्रुद्धः सन् विलाद् बहिर्निःसृत्य कायोत्सर्गस्थितं प्रभुं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्—कीदृशोऽयं मृत्युभयविप्रमुक्तो मनुष्यो यः स्थाणुरिव स्थिरत्वेन स्थितः, सम्प्रत्येवेममहं विपज्जालया भस्मराशीकरोमीति कृत्वा क्रोधेन धमधमायमान आशुरक्तो मिसमिसायमानः विपाग्नि वमन् फणा

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि। तव ब्रह् चंड कौशिक विपथर क्रुद्ध होकर विल से वाहर निकला और कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु को देख कर सोचने लगा—‘कौन है यह मौत की भीति से मुक्त मानव, जो ठंठ की भांति स्थिर होकर खड़ा है? मैं इसको अभी विप की ज्वाला से भस्म कर देता हूँ।’

भूतने। अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि अं उक्कोसिक्कनाग गडार नीकगता कोधथी धुंवाडुवा थथे। ने प्रभुने स्थिर उसेवा। नेह विथार इत्था दाब्बे। के ‘आ कथे। मानवी छे के ने भेतथी पणु उरतो। नथी? अने ज्युवारना। हुं। धानी

विस्तारान् मयङ्कुरैः पूरकारौटि स्फारान् दूरं निर्याय स्वामिन प्रलोकते । स न दृढते यथाज्ञेयै । एव
 द्विरपि चिरपि प्रलोकते, तथापि स न दृढते, तथा प्रष्टं पादाङ्गुले दृढति, दृष्टा 'मा म उपरि पतेत्' इति
 कृत्वा प्रत्ययवृत्तते, तथापि प्रष्टुं पठति । कायोत्सर्गादिशर्मणं न चमति । एवं द्विरपि चिरपि दृढति तथापि
 न पठति, तथाऽऽर्मण्येव प्रष्टुं प्रलोकमान आरुते । एवं तं मगन्तं शान्त्यद्रुममुलकान्तिमन्तं सौम्य सौम्यवदन
 सौम्यदृष्टिं मायुर्गुणयुक्तं समाशील मेलमात्मस्य तस्य वै विपद्यते अशिषी विख्याते । तदा क्रोयपुञ्जस्य स

येसा सोच कर क्रोध से 'धम-धम' की भावान करता हुआ, शीघ्र ही कुपित हुआ, क्रोध से जलता हुआ,
 विपक्षी यदि का वजन करता हुआ फणा फेलाता हुआ मीपण फुफकार करता हुआ, दूरज की ओर देल
 कर प्रसु की ओर देखने स्मा मगर दूरतों की तरह बह प्रछे नहीं।

सर्वने दूसरी बार और फिर तीसरी बार मीदेला, फिर मी प्रसु न जळे । तब उसने प्रसु के
 पैर के अगुठे में हँस लिया । हँस कर 'यह मेरे ऊपर ही न गिर पड़े' यह सोच कर दूर सरक गया,
 तथापि मगवान गिरे नहीं । दूसरी और तीसरा बार हँसा, तब मी मगवान न गिरे । कायात्सग से तनिक
 मी चम्बित न हुए । तब यह क्रोध से प्रसु को देखने लगा । शान्त मुद्रा बाळे, अटुल कान्ति के पत्नी,
 सौम्य, सौम्यमुल, सौम्यदृष्टि, मयुरता के गुण से युक्त और समाशील मगवान को देखने बाळे उस

आइक स्थिर बड़ ठले। छी १ कमजोर् अ दु तेने न्यला वठे जाग्गिने लक्ष्म करी नापु छु अउडेकिङ्कनाग ज्यपु
 किवादी होधकी धमधमी ठेठेडा शीघ्र होय भमान बतो होधवेधयी नीकण्ठती न्यण्णज्जेने धारुव करतो, विष
 र्थी ज्जिमुत्त वधन करतो, हेवु निस्तान करतो, वीरवु दूक्षान् आरतो, सुरभन्नी साथे देअतो मगवाननी साथे दृष्टि
 करी, परतु ज्जन्व माधुसेनी आइक प्रसुने जाव्नी शक्यो नकि जे प्रभावे अउडेकिङ्क वीरवार-नीरवार दृष्टि
 मज्जवान तरह करी, परतु प्रसुना शरीरने ठेनी जांज पवु जावी नकि.

दृष्टि वठे न्यारे मज्जवानने होठ पवु ज्जस्सर बड़ नकि त्थारे तेवे प्रसुना अउठे उअ भाये। उअ भाषवावी
 आ मज्जवी विपन जेरे क्काम मारी ऊपर पे ते वीरकी ते इर सरसी अये। छवां प्रसुने तो होठ पवु वधु नकि.
 जावी शीते जे त्थ वार उअ भाये, पवु तेभने होठ पवु प्रहारनी ज्जसर न्युप नकि तेभ परस्य पवु नकि जने
 अयेल्लमभावी पवु च्चुप बसा नकि. जावी तेने बजे। होध न्यानी पकी जने होधमुत्त दृष्टिनी जे छए मज्जवान तरह
 पविषण करी। इतिहास करतं जेतं मज्जवान् मज्जवादिना पत्नी अत्थम. मीमज्जानी कोम्यद्विमुत्त मयुर मयुरी-

चण्डकौशिकः स्तब्धो जातः। प्रभोः शान्तिबलेन तस्य क्रोधः शमितः। तस्य क्रोधज्वालाया उपरि प्रशुणा क्षमा-जलं सिक्तं, तेन स शान्तः शान्तस्वभावः संजातः। एतादृश शान्तिसम्पन्नं चण्डकौशिकं दृष्ट्वा प्रसुरेचमवादीति— 'हे चण्डकौशिक ! अबबुद्ध्यस्वावबुद्ध्यस्व, क्रोधमत्रमुञ्चावमुञ्च, पूर्वभवे क्रोधवशेनैव कालमासे कालं कृत्वा त्वं सर्पो जातः पुनरपि पापं करोषि, तेन पुनरपि दुर्गतिं प्राप्स्यसि, अतः आत्मानं कल्याणमार्गे प्रवर्तयेति। एवं प्रभो-रमृतसमं प्रबोधवचन श्रुत्वा चण्डकौशिको विचारसागरे पतितः पूर्वभवजातिं स्मरति। तेन स निजपूर्वभवे क्रोध-प्रकृत्या निजमरणं विज्ञाय पश्चात्पापं कृत्वा हिसकप्रकृतिं विमुच्य शान्तस्वभावः संजातः। ततः खलु स सर्प-

चण्डकौशिक की विपयरी आँखें शान्त हो गईं। क्रोध का पिंड वह चण्डकौशिक स्तब्ध रह गया। प्रभु की शान्ति के बल से उसका क्रोध शांत हो गया। उसकी क्रोध-ज्वाला पर भगवान् ने क्षमा का जल सींच दिया। इस कारण वह शान्त और शान्तस्वभावो हो गया। इस प्रकार चण्डकौशिक को शान्तिसम्पन्न देखकर प्रभुने इस प्रकार कहा— 'हे चण्डकौशिक ! बोध पाओ ! क्रोध को छोड़ो, छोड़ो ! पूर्व भव में क्रोध के वशीभूत होकर ही कालमास में काल करके तुम सर्प हुए। अब फिर पाप कर रहे हो तो फिर दुर्गति पाओगे, अतएव अपने आप को कल्याण-मार्ग में प्रवृत्त करो।'

प्रभु के अमृत के समान यह प्रबोध-वचन सुनकर चण्डकौशिक विचार-सागर में डूब गया। उसे पूर्व के जन्म का स्मरण हो आया। उससे वह पूर्वभव में क्रोध-प्रकृति से अपना मरण जान कर, पश्चात्पाप

वाण अने क्षमाशील भगवानने नेतां यड्डेथिकवी विषमथ आणे शात थड गड ! डोधना पिंड समान ज्येव यड्डेथिक स्तब्ध थड गथे प्रभुना शातिभण आगण ज्येना डोध शात पडी गथे। तेनी डोधयुक्त न्वाणा उपर प्रभुजे क्षमा इपी न्णनु सिन्धन ड्युं' आने वीधे ते शांत अने शांतस्वभावी थड गथे। तेने शांतस्वभावी नेतां प्रभुजे तेने नीधे प्रभाषे डळु

“ हे यंडेथिक ! भुल ! भुल ! भुलीअ ! डोधने तिदांजवी आप ! पूर्वभवमां डोधने वश थवाथी अने भरषु वपते न तु डोधो गन्थे। डोवाथी डण आण्ये भरषु पाभी तुं सर्प गन्थे। डोधनी आवी माठी गति डोगवी रळी छे, छता डण्ण तु डोधने भूडवा भागते नथी. न्ने डण्ण डोधने वश थड आवु पापी उवन उवीश ते। आथी पषु वधारे माठी गतने पाभीथ, माटे डवे तुं डव्याणुना मार्गने अपनाव ! अने डोधोवेशमांथी डमे-शने माटे छटी न्ना !”

प्रभुने आवो अमृत समान डोध साळणी यंडेथिक नाग विचारसागरमां डुभी गथे. विचारश्रेष्ठी पर यढता तेने पूर्वजन्मनु रभरषु थड आण्यु. आ रभरषुथी तेषु नड्युं डे पूर्वभवे डोध प्रकृतिमां भरषु थवाथी

शिवत मकानि भस्मनेन उद्येयित्वा शुभेन ह्यानेन कालमासे काल कृत्वा उत्कर्ष्यतोऽन्तःशसागारोपमस्थितिके
 सप्तसाराग्निषेऽन्त्ये श्रेयोके उत्कृष्टस्थितिके एकावतारो देवो जातः । महाविदेहे स सेत्स्यति ॥ ५०८६ ॥

टीका—'तर्णं स संखकोसिप' इत्यादि तताः=भीरीरामो' कायोस्सर्गपुरस्सरस्थित्यन्तरं ग्लु
 सः=दृष्टिपिपा; वल्लुः=वक्राणा विपश्चरः=सर्प; कुट्टः=क्रोधयुक्तः सन् क्रियायुः शक्तिः=वह्निःप्रदो निसृत्य=
 निगोय कायोस्सर्गस्थितं मधु भीरीरसामिनं, इन्द्रा अश्विनस्यव=चिन्तितवान्-हीदशः=हयम्पूठ अपयम्=एष मम
 चिन्तितः स्थितः; मृत्युमयविममुक्तः-मृत्योरपि निर्मयः मनुष्यो=मानवोऽस्ति, योऽयं स्याणुरिव स्यारत्वन=निश्चय
 करके और हिसक प्रकृति का त्याग करके शान्तस्वभाव हो गया । तत्पश्चात् वह सप अनशन से तीस
 मक छेदन करके अर्थात् पन्द्र दिनों का अनशन करके, भुमप्यान कं साय, कालमास में काल करके,
 अठार सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले सप्तार नामक माछे सर्ग में उत्कृष्ट स्थिति वाला और
 एकावतारी देव हुआ । वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा ॥५०८६॥

टीका का अर्थ—वीर सगवान् के कायोस्सर्ग में स्थित हो जाने के पश्चात् दृष्टिपि चंडकीभिक
 नामक सर्प क्रोप से पुक्त होकर अपने विश्व से बाहर निकला । पाहर निकल कर कायासग में स्थित मयु
 को देख कर वह विचार करने लगा—यह मृत्यु के मय से रहित मनुष्य कैसा है जो मरे विल के समीप

जा अतिने कु पात्रेय छु आ विचारने प्रस्थिति तेने पाशवार पश्चात्पाययेथे अने दिशामय प्रवृत्तिने ल्याज करी
 यांत स्वभावी जनी अये; शांत स्वभावी बटा तेजे पर इवस्यु अणुशय आरु" शुभभावातमां रही पूर्वप
 यथेतेना कुंस्वपूर्क पश्चात्पाय इशते, यथेने सकार्यते बाइ करी तेनी आदोभना इशता काल करी अये—भाष्य पात्रेय
 आर्षीनी मरी ते आदार साशेषमनी उत्कृष्ट रिशतिवाण सकलार नामना आशमा देवदोऽर्भमां, उत्कृष्ट स्थितिवाणे।
 भाषवत्वां देवस्यैः ल्वांभीः अनी भक्तिविदेशेनभाषीपत्तकर्मभने सवसाक्ष्य करी सिद्धमतिने प्राप्त करे। (५०८६)

टीकाने अर्थ—'प्राय अने प्रकृत साक्षे व अय" के कहेवत जेटी नथी अये तेठेवा प्रकल्प इशवमां आवे
 अरी तेठे उदर्यान बाव पक्ष पीताने आसख स्वभाव इशते व नथी तदनुसार आ सपें सपथे। प्रदेय रणु लेते।
 जनानी वीधा तो पक्ष तेना दोष शांत भये नकि. पशु शक्ति तथा पशुना उदयन विनाने जनी अये। तो पक्ष
 तेने शांति कर्म नकि अस्मिमां येय नेय पाष आदि ग्राभवा कर्मके तेम तेम अग्नि वधाए ने वधाए कथकतो अय
 ऐ। तेम नेय ग्राय वेशत बतो भये। तेम तेने दोष शांत बनाने जहदे वपतो व अये। कामवाने
 देवभावी तो तेने शिव वसे। ग्राय के आर्षी पशुपती आश्वनी कथित करत नथी तो आ भाव

त्वेन स्थितोऽस्ति । तिष्ठ नामैषः किन्तु सम्प्रत्येव=अधुनैव इमं=पुरोवर्तिनम् अहम् विषञ्चालया=विषाप्रतजसा भस्मराशीकरोमि=भस्मपुञ्जीकरोमि, इति कृत्वा=एतद्विचिन्त्य क्रोधेन=रोषेण धमधमायमानः=‘धमधमे’=तिशब्द-कुर्वन्, आशुरुभ=शीघ्रकृपितः ‘मिसमिमायमानः’=जाञ्चल्यमानो विषाग्निं वमन्=उद्गिरन् फणां विस्तारयन्=विस्तृता कुर्वन् भयङ्करै=भीषणैः फुत्कारैः=भयङ्करफुत्कारपूर्वकं दृष्टिं=चक्षुः स्फारयन्=विकाशयन् सूरं=सूर्यं निधाय=निरीक्ष्य, स्वामिन=श्रीवीरप्रभुं प्रलोकते=प्रकर्षेण पश्यति, किन्तु विषदशा प्रलोक्यमानोऽपि सः श्रीवीरस्वामी न दहते=न भस्मीभवति, यथा=येन प्रकारेण अन्ये=प्राणिनो भस्मीभवन्ति । एवम्=अनेन प्रकारेण=पूर्ववत् द्विरपि त्रिरपि=द्विवारमपि त्रिवारमपि प्रलोकते, तथापि सः=श्रीवीरस्वामी न दहते, तदा स सर्पः पादाङ्गुष्ठे=चरणा-ङ्गुष्ठाङ्गुल्यवच्छेदेन दशति, दष्ट्या ‘मे उपरि=मम शरीरोपरि अयं मा=न पतेत्=इति कृत्वा=इति विचार्य प्रत्यव-ष्वञ्कते=दूरिभवति, तथापि=पादाङ्गुष्ठे दंशनेनापि प्रभुर्न पतति । एतावदेव न अपिच कायोत्सर्गात्=कायो-

खडा है? यह ठंडू के समान अडिग रूप से खड़ा हुआ है । यह भले खड़ा हो, परन्तु इसको अभी-अभी विप के उग्र तेज से राख का ढेर कर देता है ।

इस प्रकार विचार कर चण्डकौशिक रोषवश धमधमाट करने लगा । एकदम कुपित हो गया । क्रोध से जल उठा । विषरूपी अग्नि को निकालने लगा । भयानक फण फैलाकर, नेत्र फाड़ कर और सूर्य की ओर देख कर भगवान की तरफ देखने लगा । किन्तु विषभरे नेत्रों से देखने पर भी प्रभु भस्म न हुए, जैसे दूसरे प्राणी भस्म हो जाते थे । इसी प्रकार उसने दूसरी बार भी देखा और तीसरी बार भी देखा । फिर भी वीर भगवान् भस्म न हुए । तब उस सर्प ने पैर के अंगूठे में काट खाया । काट कर उसने सोचा—‘यह कहीं मेरे शरीर पर न गिर पड़े’ अत एव वह दूर सरक गया । मगर अंगूठे में डंसने पर भी भगवान् नहीं गिरे । यही नहीं, किन्तु वे कायोत्सर्ग से लेश मात्र भी चलायमान न हुए । इसी प्रकार

माथाना मानवीये अर्हा आववानी हिंसत डेवी रीते करी? तेमाय पथु आडनी भाक्षक स्थिर थधने उके। रह्यो छि? आबुं अश्रवपीय दश्य जेध धथे। धमधमी उथे। अने क्षुधवारभां ते बागवानने इता न इता करी देवा तैथार थयो।

इष्ट माथुस वथत आन्धे पेतानी इष्टता अताववामा पाथी पानी करतो नथी, अने ते अंगे तेना सधजा प्रयत्न करी छुटे छे तेम अश्रवपीय दष्टि, डेथु, डंअ, वगेरे धमपछाडा कथी. पथु जेभ जेभ ते उपाथे। अजभावतो गथे। तेम तेम तेना प्रयत्नो निक्षुण थवा दाग्या, आथी छेवटुं। अथियार अजभाथथ करवा सर्व शक्तिअने इन्द्रत करी बागवान सांभ अतूट दष्टियात कथी, परतु तेमा निक्षुणता अनुभवतां तेना। डेधी स्वभाव थांतपथे परिणुभवा दाग्या।

त्वेन स्थितोऽस्ति । तिष्ठतु नामैषः किन्तु सम्प्रत्येव=अधुनैव इमं=पुरोवर्तिनम् अहम् विषज्वालया=विषोप्रतोजसा
 भस्मराशीर्रोमि=भस्मबुद्धीकरोमि, इति कृत्वा=एतद्विचिन्त्य क्रोधेन=रोषेण धमधमायमानः=‘धमधमे’=तिशब्द-
 कुर्वन्, आशुस्त्र=शीघ्रकुपितः ‘मिसमिमायमानः’=जाज्वल्यमानो विषाग्निं वमन्=उद्गिरन् फणां विस्तारयन्=
 विस्तृता कुर्वन् भयङ्करै=भीषणैः फुत्कारैः=भयङ्करफुत्कारपूर्वकं दृष्टिं=चक्षुः स्फारयन्=विकाशयन् सूरं=सूर्यं निध्याय=
 निरीक्ष्य, स्वामिनं=श्रीवीरप्रभुं प्रलोकते=प्रकर्षेण पश्यति, किन्तु विपद्दशा प्रलोकयमानोऽपि सः श्रीवीरस्वामी न
 दहते=न भस्मीभवति, यथा=येन प्रकारेण अन्ये=प्राणिनौ भस्मीभवन्ति । एवम्=अनेन प्रकारेण=पूर्ववत् द्विरपि
 त्रिरपि=द्विवारमपि त्रिवारमपि प्रलोकते, तथापि सः=श्रीवीरस्वामी न दहते, तदा स सर्पः पादाङ्गुष्ठे=चरणा-
 ङ्गुष्ठान्मुल्यवच्छेदेन दशति, दष्ट्वा ‘मे उपरि=मम शरीरोपरि अयं मा=न पतेत्=इति कृत्वा=इति विचार्य प्रत्यव-
 ष्वज्ज्कते=दूरिभवति, तथापि=पादाङ्गुष्ठे दंशनेनापि प्रभुर्न पतति । एतावदेव न अपिच कायोत्सर्गात्=कायो-

खडा है? यह टूट के समान अडिग रूप से खड़ा हुआ है । यह भले खड़ा हो, परन्तु इसको अभी-अभी
 धिप के उग्र तेज से राख का ढेर कर देता है ।

इस प्रकार विचार कर चण्डकौशिक रोषवश धमधमाट करने लगा । एकदम कुपित हो गया । क्रोध
 से जल उठा । विषरूपी अग्नि को निकालने लगा । भयानक फण फैलाकर, नेत्र फाड़ कर और सूर्य की
 ओर देख कर भगवान् की तरफ देखने लगा । किन्तु विषभरे नेत्रों से देखने पर भी प्रभु भस्म न हुए,
 जैसे दूसरे प्राणी भस्म हो जाते थे । इसी प्रकार उसने दूसरी बार भी देखा और तीसरी बार भी देखा ।
 फिर भी वीर भगवान् भस्म न हुए । तब उस सर्प ने पैर के अंगूठे में काट खाया । काट कर उसने
 सोचा-‘यह कहीं मेरे शरीर पर न गिर पड़े’ अत एव वह दूर सरक गया । मगर अंगूठे में डंसने पर
 भी भगवान् नहीं गिरे । यही नहीं, किन्तु वे कायोत्सर्ग से लेश मात्र भी चलायमान न हुए । इसी प्रकार

माथाना मानवीञ्जे अर्द्धीं व्याववानी हिंसित डेवी रीते करी ? तेमाथ पथु आऽनी भाक्षक स्थिर थधने उबो। रधो छि ?
 आवु अश्रधयनीय दश्य ञ्जेथ धथो धमधभी उठेथो अने क्षथुवारमा ते लथगवानने इता न इता करी देवा तैथार थथो।

इष्ट माथुस वथत आन्थे चेतानी इष्टता अताववामा पाथी पानी करतो नथी, अने ते अगे तेना सधणा
 प्रयत्न करी छ्टे छे तेम अऽकेथिठे दधि, डेथु, ड थ, वजेरे धमपछाडा कथीं. पथु ञ्जेम ञ्जेम ते उपाथो अण्मावतो
 गथे तेम तेम तेना प्रथनो निक्षण थवा लाऽया, आथी छेवटुं छथियार अण्माथथ करवा सर्व शक्तिअोने डेन्द्रित
 करी लगवान सामे अत्तु दधिपात कथीं, यर तु तेमां निक्षणता अतुलवतां तेनो। कोधी स्वभाव थांतपथे परिशुभवा दागथो।

सर्गाक्रियतः श्रेयमपि=किञ्चिदपि न चलति । ततः स एवं=पूर्ववत् द्विरपि त्रिरपि=द्वित्रारमपि त्रिवारमपि
 दद्याति, तथापि प्रह्वनों पतति । तथा सः अमर्षेण=क्रोधेन मधुं मलोक्त्मानः=अपश्यन् आस्ते=विद्यति । एषः=
 भूनेन प्रकारेण शान्तपूर्व=शान्ताकारम् अह्लकान्तिमन्त=निरुपमममाश्लुक्त, सौम्य=सुदुस्वभाष, सौम्यवदन्=
 सौम्यसुल्ले सौम्यदर्शि=सुदुर्नर्द, मापुर्त्यण्युक्तं=मधुरवास्वगुणालंकरं, समाश्रीयं=समादेशमारं तं=सर्वोत्कृष्टं मगवन्तं
 वीरस्वामिनं प्रेसमाभस्य=अपरमथः तस्य=बद्धकौशिकस्य सर्वस्य से=कल्यान्तकालवदिसदशो विपश्यते=विपयूणे
 अस्थि=नन्ने पिपाथे=शान्तिमापने । ततः खलु क्रोपपुञ्जम्=क्रोपरशिसरूप -उग्रक्रोपी स=बद्धकौशिकः-
 सर्वः शरप=दृष्टि जातः । प्रयो=धीवीरस्वामिनः, शान्तिपथेन=शान्तिप्रभावेष, तस्य=बद्धकौशिकस्य क्रोधाः=
 क्रोषः श्रमिताः । तस्य=बद्धकौशिकस्य क्रोपञ्जालाया उपरि प्रह्वजान्धीवीरस्वामिना समाजकं=शान्तिरूपं जलं
 सितम्, तेन=समाजलसेपनेन स शान्तः=माकृत्या शान्तियुक्त शान्तस्वभावः=महत्स्या च शान्तियुक्तः संभावतः ।

उजने दूसरी बार और तीसरी बार मी हँसा, तथापि प्रह्व गिरे नहीं । तबभाव बर तोप के साथ प्रह्व को
 देलता रहा । श्रंत आकार बाळे, प्रनुपम कान्ति से मंडित, सुदुस्वभाव वाले, मधुरता से अलंकृत और
 समाश्रील मगवान वीर स्वामी को देखते हुए बद्धकौशिक सर्प की, प्रत्यक्षाल की भाग के समान, विप
 से परिपूर्ण श्रंतें पुञ्ज गां अर्थात् श्रंत हो गई । तब क्रोष का पुञ्ज-उग्र क्रोपी बद्धकौशिक सर्प कुठित हो
 गया । वीर प्रह्व की गति के प्रभाव से उसका क्रोष श्रंत हो गया । बद्धकौशिक की क्रोष-ज्वाला पर
 मगवान महावीर ने समा का जल सींच दिया, अर्थात् अपनी समा एवं श्रान्ति के प्रभाव से उसके क्रोष
 को नष्ट कर दिया । समा का जल सींचने से वह आकृति से मी श्रंत हो गया और प्रकृति से मी श्रंत हो गया ।

शान्ति यु आशान्त अंतरभा आर्पात् तेने विचार करवाने अवसर प्राप्त पड़े। अशान्तिभां मधुं विचार
 आगतो नही, तेम अ थोअ निराशरु पक्ष धरं सकुटु नही. श्रान्ति अने कोबनेना उअयो वन्नेग अमुकुमे व्य से-
 पक्ष अने ही वुय वक्त तेनी विचारभास अइबाई आवा परम इयाइ सभाव व अने श्रंत युद्धावाणा पुरुषने
 कोष तेना अंतरभां डड वणी अने आनकारा एइअे तेमनी तरर अर्थ रइओ अमि डड पाकीधी युजम छे, श्रंत
 अरशीधी आही अथ छे, इरेक पर धंने नारा तेना विद अयुवाणा पाबाधी आथ छे अे प्रह्वतिना नियम छे
 अन्तरभां युद्ध अे अन्तरां अन्तर छे (१) कुवुयु-धमधमाट प्रवृत्तिगु छेय छे तेनाधी अमस्त अजत प्रवृत्तिजाओ
 अममयी सकेड रेआप छे अेम कडन-कडन-डोडभाष-भार नारा-पिपास-इस्ता-यलअअवद-डोडोनी डोडभाष
 विविध आरशार-नन्ने नन्नेअम छे । निवही अरनी अम अमअडोनी अनी अमिअं अिम अिम वि अमअम

एतादृशम्=ईदृशं, शान्तिसम्पन्नं=शान्तिगुणवन्तं चण्डकौशिकं सर्पं दृष्ट्वा प्रभुः=श्रीवीरस्वामी एवम्=अनुपदं वक्ष्य-
 माणं वचनम् अवादीत=उक्तवान्-‘हे चण्डकौशिक ! त्वम् बुद्ध्यस्व बुद्ध्यस्व=बोधं लभस्व, तथा
 क्रोधं कोपम्, अमुञ्चावमुञ्च=सर्वथा त्यज, यतः पूर्वमेव क्रोधवशेनैव कालमासे कालं कृत्वा त्वं सर्पः संजातः ।
 पुनरपि=इह भवेऽपि पापं=कोपं पापकर्म करोपि=उपार्जयसि तेन=पापकरणेन पुनरपि=आगामिनि भवेऽपि
 दुर्गतिं=नरकादिगर्हितगतिं प्राप्स्यसि । अतः=अस्मात् कारणात्-क्रोधस्य दुर्गतिनिमित्तत्वात् त्वम् आत्मानं
 कल्याणमार्गं=मोक्षमार्गं प्रवर्तय=प्रापय-इति । एवम्=अनेन प्रकारेण प्रभोः=श्रीवीरस्वामिनः अमृतसमं प्रबोध-
 वचन=प्रबोधकरोपदेश. श्रुत्वा=श्रवणविषयीकृत्य चण्डकौशिको विचारसागरे=विचारसमुद्रे पतितः सन् पूर्व-
 भ्राजतिं=पूर्वभवसम्बन्धिनीं स्वकीयां जातिं स्मरति । तेन=स्वपूर्वभवजातिस्मरणेन सः=चण्डकौशिकस्यः निज-
 पूर्वभवे=स्वपूर्वजन्मनि क्रोधप्रकृत्या=कोपस्वभावेन निजमरणं=स्वकीयकालधर्मं=प्राप्तिं विज्ञाय=अनुभूय पथात्पापं

इस प्रकार चण्डकौशिक को शांत देखकर वीर प्रभु ने उससे कहा-हे चण्डकौशिक ! तुम बुद्धी,
 बुद्धी बोध प्राप्त करो, बोध प्राप्त करो, क्रोध को तज दो, तज दो, अर्थात् पूरी तरह त्याग दो, क्यों कि
 पूर्वभव में क्रोध के कारण ही तुम काल मास में काल करके साँप हुए हो । इस भव में भी वही क्रोध रूप
 पाप कर रहे हो । इस पाप का आचरण करने से आगामी भव में भी नरक आदि गर्हित गति प्राप्त करोगे,
 क्योंकि कि क्रोध दुर्गति का कारण है, अतः तुम अपनी आत्मा को मोक्ष के मार्ग में लगाओ ।

इस प्रकार के वीर भगवान् के बोधजनक उपदेश को सुनकर चण्डकौशिक विचारों के समुद्र में
 डूब गया । उसे अपनी पूर्वभवसंबंधी जाति का स्मरण हो आया । पूर्वभव के जाति स्मरण से उसे विदित
 हो गया कि मैं क्रोध-प्रकृति के कारण ही कालधर्म को प्राप्त हुआ था । तब उसने पथात्पाप किया और

आ.वे, तेन तेम, ते आगण धपतो डोय छे, तेम आ गरम युद्ध, नेम नेम दडातुं न्ध छे, तेम तेम ते विस्तृत थतुं न्ध छे
 (२) शीत युद्ध शुद्ध न् प्रकारतुं भाडुम पडे छे. ते अक्षर देथातुं नथी, तेनी होऽधाम नग्दरे पडती नथी, ते कोऽप्रकारे
 डलन-चलन वाणु न्क्षुत्तु नथी, परंतु आतरिक थल्ले प्रसरतुं डोऽर्ध सर्नं हावानणने डडु गार भनावी हे छे. नेम
 डिम अे डडु कुदरती युद्ध छे, ते शाकबालु आऽ-यान विगेरेने भाणीने भरम करे छे. तेमा अक्षरने। अग्नि डोतो
 नथी, परंतु अहरनी सण्त ताकत डोय छे. डंडा युद्धने अक्षरने। आडंभर डोतो नथी, पथु ते अंहरथानेधी सथोऽ
 काम करी रले छे. अने गमे तेवा पदथोने न्डभूणमांथी उणेडीने निर्भोज करी नाणे छे, तेम भगवाननी डंडी आत्म
 श्वाती रूप शक्तिअे, सर्पनी कभाय रूप उण्णु शक्ति पर विग्रय भेगण्थे। आ विग्रय प्रस्थान रूपे, सर्पने विचार
 करतो करी भूकथे अने तेने आत्माना असल स्वभाव तरक लध गथे।

कृत्वा हिंस्रमर्कटिन्=पातुर्कृत्स्वभावं विमुच्य=परित्यज्य शान्तस्वभावः संजातः। तत' लच्छ सः=वण्डुकौशिकः।
 सर्प, विद्रुत=विश्रुतस्वस्थानि मर्कटानि अन्तर्गतेन छेद्यन्तः श्रुतेन श्रुतेन कालमासे कालं कृत्वा
 उत्सर्गतः अष्टादशसारागोपमस्थितिके सरस्वाराभिधे=सहस्रारानामके अष्टमे देवलोके उत्कृष्टस्थितिकः=अष्टा
 दशसारागोपमस्थितिकः एकाशगर' =एकमधिको देवो जातः। स च वैवायुस्समाप्त्यन्तरं ततश्च्युत्वा महा
 विपदौ सेस्यति=विद्रो भविष्यति ॥मृ०८६॥

मन्म—एव षं समने मगर्त महावीरे बंढकोसियस्योवरि उवथार किष्वा तावो अहवीओ परि
 शियस्यम, पहिभिसलमिष्वा उचरसायालामिहरे गामे समागच्छइ। तस्य एगो भागसेणो नाम गारावर् परिक्खइ,
 तस्य एगो एव पुणो आसी, सो विदेसगओ षारसवरिसाओ अकालुद्धी विव मकन्धा गिरे समागओ। अओ
 सो षागसेणा पुसागणमहोरच्छम्मि निचिर'असज्जपायालाइमसाइसां उवषलढावेर, उवषलढाविष्वा मिचणार
 नियग-सणण-संभंषि परियणे मुंजावेर। तेणं काळेणं तेणं समएणं मगव पत्तोववासपाणणे भिक्खवारियाए
 तसम गिहं अणुप्यन्दिहे। तेण नागसेणेण उच्छिद्धेअपिचइमाणेण मगधं खीरं पढिलामिए। तए णं तस्य नाग
 सेजसस तेणं दन्वमुदेणं दायगमुदेणं पहिमागमुदेणं विविरेणं विक्खराभमुदेणं मगंभि पहिलामिए समणे
 गिहंसि य इमां पैच दिष्वाइ पाठन्मूयां, तं जहा-सुहारा बुद्धा १, दसदवण्णे कुरुमे षिवाए २, वेच्छकखेवे
 कए ३, माहयाओ सुदुरीओ ४, अतराजवि य षं आगासासि अओ दार्गं २ वि बुहे ५ य ॥मृ०८७॥

अपने हिंसक स्वभाव को त्याग कर शीघ्र स्वभाव प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् वह वीस मत्त अन्तर्गत से छेद
 कर, प्रसन्न ध्यान के साथ, कालमास में काम करके, अठारह सारागोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले सरस्वार
 नामक भाठवें देवलोके में अठारह सारागोपम की स्थिति वाला, एक ही मत्त करके मोस में जाने वाला देव
 हुआ। देवायु की समाप्ति के पश्चात्, वहाँ से च्युत होकर वह महाविदेह में सिद्ध होगा ॥मृ०८६॥

अत्रवानना देष वपनेत्ते, तेन चर अद्दुपं अस्स इरी, तेना पूर्वकवेतु इमसणु इराणु नररु अाई
 भयेनी प्राप्तिनेऽथ येज्ज पयाइ इराओ, वीरव इन्धेनी आर वी इर.वी. इधेने छिडवा वार व २ उपदेइ देवा भांइओ
 आणु आणुं ज्ञान वने इधेने उडक वणे तेवा वररात्री वरनेना बांजणवाथी, तेणु अन शतरसे परिष्मवा बाणु
 वने ते इधमां इरवा, विरावरवे इरी, ध्यागमअ वये. आत्थ विदतमा आणुअ पुरे इरी, ते आठमा देवतोडे
 इणुपे रिकतिजे, देवण्णे उरपन वये. त्वांधी वधी जेठ कवरी ते सिद्धअतिने चअरी. अर्द्धी अण्वीने अडा
 निदेक इरवां व म डेहे. त्वाणे कएव इणुपे छेओ अओ। वने ते कवमां, आणु पणु अजिहाइ इरी पणुं पुठवाअ
 ते आत्थ स्वभाव अरइ इरी, सुअ इवने म म इरहे. वने आत्थम उर अी निअ वाने वणवकी (मृ०८९)

छाया—एवं खलु श्रमणो भगवान् महावीरः चण्डकौशिकसर्पोपरि उपकारं कृत्वा तस्या अटव्याः प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य उत्तरवाचालाभिध्रे ग्रामे समागच्छति । तत्रैको नागसेनो नाम गाथापतिः परिरसति, तस्यैक एव पुत्र आसीत्, स विदेशगतो द्वादशवर्षात् अकालवृष्टिरिवाऽऽकस्माद् गृहं समागतः, अतः स नागसेनः पुत्राऽऽगमनमहोत्सवे विविधाशनपानखादिमस्त्रादिमानि उपस्कारयति, उपस्कार्य, मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनान् भोजयति । तस्मिन् काले तस्मिन् समये भगवान् पक्षोपवासपारणके भिक्षाचर्यायै तस्य गृहमनुप्रविष्टः । तेन नागसेनेन उत्कृष्टेन भक्तिवहुमानेन भगवान् क्षीरं प्रतिलम्बितः । ततः खलु तस्य नागसेनस्य तेन द्रव्यशुद्धेन दायकशुद्धेन प्रतिग्राहकशुद्धेन त्रिविधेन त्रिकरणशुद्धेन भगवति प्रतिलम्बिते सति

मूल का अर्थ—‘एवं णं’ इत्यादि । इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर चंडकौशिक सर्प पर उपकार करके उस श्रद्धा से बाहर निकले । निकल कर उत्तरवाचाल नामक ग्राम में पधारे । वहाँ नागसेन नामक गाथापति रहता था । उसके एक ही पुत्र था । वह विदेश गया हुआ था । बारह वर्ष वाद अकालवृष्टि के समान वह अचानक ही घर आ गया अतः नागसेन ने पुत्र के आगमन के उत्सव में विविध प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम वनवाये, और बनवा कर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकजनों, स्वजनों, संबंधीजनों और परिजनों को भोजन निमाया ।

उस काल और उस समय में भगवान् अर्धमास खमण के पारणे के दिन, भिक्षाचर्या के लिये नागसेन के घर में प्रविष्ट हुए । नागसेन ने उत्कृष्ट भक्ति और बहुमान के साथ भगवान् को खीर बहराई । तब द्रव्यशुद्ध, दायकशुद्ध, प्रतिग्राहकशुद्ध-त्रिकरणशुद्ध आहार भगवान् को बहराने पर नागसेन के घर में यह पाँच

भूणो अर्थ—‘एवं णं’ इत्यादि श्रमण भगवान् महावीर, अ-डोकेथिक सर्प उपर उपकार करी, अटवीथी अहार नीकणी गया त्याथी प्रस्थान करी, ‘उत्तर वाचाल’ नामना गाभमां पधार्थी आ गाभमा ‘नागसेन’ नामने। गाथापति रहेनो छेनो तेने अेक पुत्र छेतो, ते विदेशमा गयो छेतो। बार वर्ष आठ, अकाले वृष्टिसमान ते अथानक पोवाने घेर आवी पडोअथे। पुत्रुं शुभ आगमन थता, नागसेन धखे। राख थछ गयो अने तेनी खुशालीमा तेखे अनेक प्रकारना भिष्टान्नी अनावी, विविध प्रकारना भेवा (महाधक्या तैयार करवी, मित्रो-ज्ञातिजने, स्वजने, परिजने), सयधीअो अने जोगणआषु पिछ बुवाणा सर्वने नेतार्थी, अने आनदपूर्वक लोग्न कराव्या। ते काले अने ते सभथे, भगवाने ‘अर्धभास भभथु’ कथुं छेत्तुं। अने तेभना पारथाने। दिवस आव्ये, अथानक नागसेनना धरमा ते पधार्थी न गगेने पूरुं अकृतापूर्वक अने भान साथे, प्रछने क्षीरुं लोग्न बडोराव्युं।

युरे च इमानि पञ्च दिग्भ्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा—चसुभारा वृष्टा १, दशार्द्धस्पर्गानि कुमुमानि निपातिवानि २, वेसो-
रक्षेपः कृतः ३, आहता दुन्दुभयः ४ अन्तराक्षि च खलु आकाशे अरोवानसरोक्षान् इति वृत्ति ५ च ॥ सू० ८७ ॥

टीका—‘एवं यं समगे मगर्भं’ इत्यादि । एवम्=उक्तप्रकारेण खलु धमणो मगवान् महावीर-
चण्डकौञ्चिसर्पौपरि उपकार=यद्योषमेन सिद्धिभागित्खलसम्पुकारं कृत्वा तस्याः=चण्डकौञ्चिसर्पसर्पधिष्ठितायाः
अभ्याः प्रतिनिकाभ्यलि=प्रतिनिसरति प्रतिनिकम्भ्य उपरवाचासाभिधे=उपरवाचासास्नामके ग्रामे समा-
गच्छति । तत्र एको नागसेनो नाम गायापतिः परिवसति, तस्याः=गायापतेः एक एव पुत्रः आसीत् । सः-
गायापतिपुत्रो विदेऽग्रतः=परदेऽग्रतः सन् द्वादशवर्षात्=द्वादशं वर्षम् अतिवासा अकालवृष्टिरिव=याकस्मिन्क
वर्षात् अकस्मात्=प्रवर्तितं वृष्टे समागतः । अतः=पुत्रागमनदिनोः स नागसेनो गायापतिः, पुत्रागमनसरोत्सवे=

दिश्य प्रादुर्भूतं रूप । ये इ स प्रकार हैं—(१) सोमे की वर्षा हुई (२) पाँच रंग के फूलों की वर्षा हुई (३) वर्षों की
वर्षा हुई (४) दुन्दुभयों का योग हुआ और आकाशमें ‘अरो वान, अरो वान’ की ध्वनि हुई ॥ सू० ८७ ॥

टीका का अर्थ—इस प्रकार भयान मगवान् महावीर ने चण्डकौञ्चिक को प्रतिबोध देकर मोक्ष का
मार्गी बना कर उसका उपकार किया । तदनन्तर जिस ऋष्ट्री में चण्डकौञ्चिक रहता था, उस ऋष्ट्री से प्रसू
धार निकल । बार निकल कर उपरवाचाल नामक ग्राम में पधारे । उस ग्राम में नागसेन नाम का एक
घरस्य रहता था । उसका एकमात्र पुत्र विदेस गया हुआ था । बार वर्षों के बाद, अकाल-वर्षों के समान,
अचानक ही वह घर आ पहुँचा । पुत्र के आगमन को सुखी के उपलक्ष्य में नागसेन ने बड़ा मारी

देना-देनार अनं हावय त्रये शुद्ध होवती, गमसेनेने धेर पांय दिव्य वस्तुको प्रगट शक्त ते आ छे -
(१) सुवर्णं वृष्टि (२) पवर्गनी देवोनी वृष्टि (३) दिव्य वस्तुनी वृष्टि (४) दुदुर्षीनाइ (५) ‘अहोदान-अहोदान’ ना
वर्षनाइ का पौक्षी अने ध्वनि (सू० ८७)

टीकानो अर्थ—अचानक महावीर, चण्डकौञ्चिकने प्रतिशोध मारी, अकालो अचिदारी जनाये, ने तेने
अनेइ रीत उपभूत होले । पौदाउ शब्द अरण समेष्ठ लेई मकान कवी छवने तेइ शुद्धपुत्रु जतापी, अचवान
तस्थानेरोही अथ अशुने ती स्वयं विनाय शिवाय वीरुगु मंछं लेईसु न केउ स्वयं विनाय इरमान, जे वीर्य
छवे । पौदाउ निमित्त पानी सवणी इया अमुकवे ती, तेमने ते पधारे सिम केउ
अने तेने दिव्य वस्तुके अथ अचिदानी रीती काय कया वरीइ तेअइ ते दिव्य वस्तु आनी गीत अद्वैत अथवा विभवा

स्वप्नुत्रस्य गृहाऽऽगमननिमित्तकवृद्धदुस्तवे विविधाशनपानखादिमस्वादिमानि=अनेकप्रकारकाऽऽहारपान खाद्यस्वा-
धानि उपस्कारयति=पावकैर्निष्पादयति, उपस्कार्य=निष्पाद्य मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनान्=
तत्र-मित्राणि=प्रसिद्धानि, ज्ञातयः=सजातयः, निजकाः=स्वकीयाः पुत्रादयः, स्वजनाः=पितृव्यादयः, सम्बन्धिजनः=
पुत्रपुत्रीणां श्वशुरादयः, परिजनाः=दासीदासादयः, इत्येतान् भोजयति, तस्मिन् काले तस्मिन् समये भग-
वान्=श्रीवीरस्वामी पक्षोपवासपारणके=ऋद्धमासक्षणपारणादिवसे भिक्षाचर्यायै तस्य-गाथापतेः गृहम् अनुप्र-
विष्टः। ततः तेन नागसेनेन गाथापतिना उत्कृष्टेन भक्तिवहुमानेन=भक्त्या बहुमानेन च भगवान्=श्रीवीरस्वामी
क्षीरं=पायसं प्रतिलम्बितः। ततः खलु तेन द्रव्यशुद्धेन, दायकशुद्धेन, प्रतिग्राहकशुद्धेन त्रिविधेन विकरणशुद्धेन
भगवति महावीरे प्रतिलम्बिते=प्रतिग्राहिते सति तस्य नागसेनस्य गृहे इमानि=वदय्यमाणानि पञ्च दिव्यानि
वस्तूनि प्रादुर्भूतानि=देवैः प्रकटितान्यभवन्, तद्यथा-देवैर्वसुधारा वृष्टा १, दशार्द्धवर्णानि=पञ्चवर्णानि कुसुमानि=
पुष्पाणि निपातितानि २, चेलोत्क्षेपः=वसुधृष्टिः कृतः ३, दुन्दुभयः आहताः=वादिताः ४, अन्तराऽपि च
खलु आकाशे 'अहो दानम् अहो दानम्' इति ध्रुपितम्=उच्चैरुच्चारितम् ॥मू०८७॥

उत्सव मनाया। उस में नाना तरह के अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य : भोजन पाचकों से बननाये।
बनवाकर मित्रों वों, सजातीयों को, पुत्र आदि निजक जनों को, कारा आदि राजनों को, रिश्तेदारों
को तथा दास-दासी आदि परिजनों को जिमाया। उस काल उस समय में भगवान् वीर प्रभु अर्धमास
खमण के पारणक के दिन भिक्षाचर्या (गोचरी) के लिए उस गाथापति के घर में प्रविष्ट हुए। नागसेन गाथा-
पति ने उत्कृष्ट भक्ति और बहुमान से भगवान् को खीर से प्रतिलम्बित किया-खीर वहराई। तत्र
द्रव्यशुद्ध, दायकशुद्ध और पात्रशुद्ध इस प्रकार त्रिविधशुद्ध और विकरण (मन, वचन, काय) से शुद्ध दान
देने से नागसेन के घर में आगे कही जाने वाली पाँच दिव्य वस्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ, अर्थात् पाँचदिव्य

वधती गर्भ अने अक्षराना हु जेना निमित्तो उत्पन्न करनार एवो पथु, भगवानन्ती अतुल क्षमा अने धीरञ्च तेभञ्
सङ्गन शक्तिने लोर्ध, प्रातगोधित थया. तेभाना धक्षु, स्वयशङ्कम शेरवी लगीरथ पुरुषार्थ आहरी, पांचमी गतिञ्चे ञ्शे.
अर्थात् रोक्ष पाभशे.

प्रभु आत्म-स्थिरतामा दायथवा तपश्चर्या करता अने ते पहर-पहर द्विवस सुधी याल्या करती. आनी तपश्चर्याने
भारण्डे केअपथु योग्य धरमा (बक्षार्थे) पडोय्ती जता. त्या घेताना हाथने पात्र भनावी, उभा रडेता, अने धर धरणी निर्दोष
आहार ळे आये तेषु' अक्षु करता

मूल्य—उए ग से समणे मगव महावीरे तओ गामाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छया सेयंयियाए नयरीए मग्गं-मग्गण विहरमाणे जेणेव सुअरिपुरं बयरं वेणेव उवागच्छइ। तत्थ गं सुअरीए पट्टसाद्धियं विव सागरमिव उच्छन्नतरणतरंगियं गगाणइं उचरिठकामे मगवं उचारे आगमीअ। तएणं से मगवं नावियस्स उग्गहणे तीए नावाए ठिए। वसमाणी सा नावा अगाइलम्मि पया। तत्थ सुदइलामे एगे नागकुमारदेवो निव सीअ। जो विच्छिन्नायुदेवमेव मगवओ नीवेण इयस्स सीरस्स जीवो भासि। सो इदाहावेवो मगवं दहूणं पुणवेरं गरिय कोइए वमथंतेओ आसुरओ मिसिमिसेमाणो मगवओ पासे भागवूअ आगासद्धिमो किलकिळाव इयमण्यो एव वयासी—“रे भियस्सु! इत्थ गच्छसि? चिट्ठ चिट्ठ” एवं करिय कर्णतकालवणमिव मयं करं संवट्ठामिं वाड विठंगिय उवसमं करे। तं जहा-वेण सवइगवाउणा खं वा पडिया, पडवया कंथिया, पुण्णिवइछेण अउने अपयारो जाओ, जलुम्मीओ आगासं इसिडमिव उच्छलंति पच्छा पडति य, गंगाए इसम्मि सा नावा वि उवरी आगासे उण्णइ निवइइ य, वेअ दोबायमाणीए तीए नावाए संसो मगो, इडइअधि वडियाभि, पञ्चटाहिया पहाणा फालिया, नावडिया जया मयमीया सयसयजीअम्म संकेमाणा कल-कलानं इतिमारमिअ। नावाए मवइओ नाविओ मउचिमो किंकायउमूओ संसाओ।

तेणं काळेणं तेणं समण सणस्स मगवओ मरावीरस्स पुक्कमवनिणेहिं कंबल-संवलामिणेहिं दोहिं वेमाजियं देवेहिं ओडिया सुदाइमिइनागकुमारदेवकयं उवममा आमोगिय तत्थ आगमिय त निवारिय, सा नावा तीरे ठापिया। मओ वे देवा सुदाइ नागकुमारदेव निग्गमिच्छिय इयिउज्जया, इत्थारविचेअ मगवया ते निवारिया। तएणं ते दोहि देवा नियकं एणडिय मगव वंदंति नमसति, वडिया नमसिवा जामेव विसि पाउठथुया तामेव दिमि वडिगया।

समासापर वीयरगे मगवउसग्गहारो सुदाहादेवे कोइमावं उगगरकारेणु कंरुससथेसु देवेसु य रागमाअ न विचिचि करीअ, उमयएयति सममावं दुरिसीअ।

तएणं नावडिया मग्गे जणा नियनीअवायाए सयससगमीवरएल्लग मगवं जागिय मविअहुमाणेणं थइयु ॥अ०८८॥

एन्पुर मगट इई। वे यह हैं—(१) देवों ने स्वर्ण की बर्षा की (२) पाँच वर्षों के पुण्यों की बर्षा की (b) बर्षा की इष्टि की (४) देवुमियों बर्षा और (५) आकाश में 'अग्नेयान, अग्नेयान' को पोषणा की ॥अ०८९॥

देवाने देवाने आने आणाम् वरम् क्वा नखि मन एवम आवाइय मग्गं इयवधी सुअ देवाने वडिये त्थो पाअइअ ए-गुअ। अउअ वरी-अपडिय ने। इ उ अकान पुअअकाओ उ म तेने थोअ भाअ। ए क्वाअ। अअ भाअ। (अ०८९)

छाया—ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरस्ततो ग्रामान्नि च्छति, निर्गत्य श्वेताश्विकाया नगर्या मध्यमध्येन विहरमाणो यत्रैत्र सुरभिपुर नगरं तत्रैव उपागच्छति । तत्र खलु पृथिव्याः पट्ट्याटिकासिन्धु सागरमि-
 वोच्छलत्तरद्भ्रतरद्भ्रितां गङ्गानदीं तरीतुकामो भगवान् तत्तीरे आगच्छत् । ततः खलु स भगवान् नाविकस्य
 अवग्रहेण तस्यां नावि स्थितः । चलन्ती या नौरागजले प्राप्ता । तत्र मुदंन्द्रनामा एको नागकुमारदेवो न्य-
 सद । वक्षिपृष्ठवासुदेवभवे भगवतो जीवेन हतस्य सिंहस्य जीव आसीत् । स मुदंन्द्रदेवो भगवन्तं दृष्ट्वा पूर्वैरे-
 स्मृत्वा क्रोधेन धमधमायमानः आशुरक्तो मिसमिसायमानो भगवतः पार्श्वे आगत्य आकाशस्थितः किलकिन्नरं

मूल का अर्थ—‘तणं’ इत्यादि । तत्पथा । श्रमण भगवान् महावीर उस उत्तरयाचाल गंग से बाहर
 निकलते हैं । वहाँ निकल कर श्वेताश्विका नगरी के बीचों बीच होकर जहाँ सुरभिपुर नामक नगर था, वहाँ
 पधरते हैं । वहाँ पृथिवी की खेत साड़ी के सहज तथा समुद्र के समान उछलती हुई तरंगों से तरंगित
 गंगा नदी को पार करने की इच्छा से भगवान् उसके किनारे आये । तत्पथात् नाविक की आत्मा लेकर
 भगवान् नौका पर आरूढ़ हुए । चलती-चलती वह नौका अथाह जल में जा पहुँची । वहाँ मुदंन्द्र नामक सिंह का
 एक नाग कुमार देव निवास करता था, जो त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में भगवान् के द्वारा मारे गये सिंह का
 जीव था । अर्थात् उस पूर्व भव में भगवान् त्रिपृष्ठ वासुदेव थे, और यह देव सिंह था । त्रिपृष्ठ वासुदेव ने
 उस सिंह को मारा था । अतः मुदंन्द्र देव भगवान् को देखकर, पूर्वभव के वैर का स्मरण कर के, क्रोध से
 धमधमाता हुआ, क्रुद्ध होता हुआ, क्रोध से जलता हुआ, भगवान् के पास आकर, अथर में स्थित होकर

भूदनेन अर्थ—‘तणं’ इत्यादि, त्थारपछी लगवान उत्तर वायाण नामना आभमाथी यथा सभये नीकणी
 श्वेताश्विका नगरीनी मध्यमाथी पसार थर्ध सुरभिपुर नामना नगरभा पधार्था, नाश्चे पृथ्वीञ्जे धवलवत्र धारत्तु कथु”
 छिद्य तेषां निर्भण छिद्येणा आतां पाष्ठी वाणी अने विथाण काय समुद्रनी लेभ मोलंञ्जो उछणती जेवी गंगा
 नदीना तटे प्रलु पधार्था अने नदीने पेड़े पार जवा छच्छा करी त्यां पड़ेवी नौकाना भादिकनी आना लध लगवान
 ते नौकाभा ओठा. पाष्ठीना पंथ कापती आ नौका अगाध जण मध्ये आवी पहेंञ्ची. आ मध्य भागमां ‘सुदंन्द्र’
 नामने। अेक नागकुमार देव निवास करी रह्यो હતો. ત્રિપૃષ્ઠવાસુદેવના ભવમાં ભગવાને જે સિંહને માર્યો હતો તેજ
 સિંહને આ શવ હતો અને તે ‘સુદંદ્રક’ નામના નાગકુમાર તરીકે અહીં જન્મ્યો હતો.

આ સુદંદ્રક દેવે ભગવાનેને જોયા કે તરત જ પૂર્વભવના વેરનું સ્મરણ થઈ આવ્યું. સ્મરણ માનથી તે
 ક્રોધાશિથી બળવા લાગ્યો અને તરત જ ભગવાન પાસે આવી હવામા અદ્ધર ઉભો રહી ‘કિલ-કિલ’ અવાજ કરતાં

महावीरस्य पूर्वभवविद्याभ्यां कम्बल-शम्बलाभिधाभ्यां द्वाभ्यां वैमानिकदेवाभ्याम् अत्रधिना सुदंष्ट्राभियनाग-
कुमार देवकृत मुपसर्गमायोग्य तत्रागत्य तं निवार्य सा नौस्तौरे स्थापिता । ततस्तौ देवौ सुदंष्ट्रनागकुमारदेवं
निर्भस्त्र्यं हन्तुमुद्यतौ ! करुणाद्र्चिन्तेन भगवता तौ निवारितौ ! ततः खलु तौ द्वावपि देवौ निजरुचं प्रकृत्य
भगवन्तं वन्देते नमस्यतः, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतौ तामेव दिशं प्रतिगतौ ।

क्षमासागरो वीतरागो भगवान् उपसर्गं कारके सुदंष्ट्रदेवे क्रोधभावम्, उपकारकारकयोः कम्बल-शम्बलयो
र्देवयोश्च रागभावं न किञ्चिदपि अकरोत्, उभयवापि समभावमदर्शयत् ।

ततः खलु नौस्थिताः सर्वे जना निजजीवनदातारं सकलजगज्जीवरक्षकं भगवन्तं ज्ञात्वा भक्तिवहु-
मानेनाऽस्तुवन् ॥ सू०८८ ॥

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के पूर्वभव के मित्र कम्बल और शम्बल
नामक दो वैमानिक देवों ने अवधिज्ञान से सुदष्ट नामक नागकुमार देव के द्वारा किया हुआ उपसर्ग
जाना । वे वहाँ आये और उसे रोक कर नौका किनारे पर रख दी । तत्पश्चात् उन दोनों देवों ने सुदंष्ट्र
नागकुमार देव को फटकारा और वे स्फुरत अपराध का ढण्ड देने को उद्यत हुए । मगर करुणामयचित्तवाले
भगवान् ने उन्हें रोक दिया तब उन दोनों देवोंने अपने अपना असली रूप प्रगट कर के भगवान् को वन्दना
की, नमस्कार किया । वन्दना और नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उमी दिशा में चले गये ।

क्षमा के सागर वीतराग भगवान् ने उपसर्ग करने वाले सुदंष्ट्र देव पर किञ्चित् भी द्वेष नहीं
किया, और उपकार करने वाले कवल शंबल देवों पर किञ्चित् भी राग नहीं किया । उन्होंने ने दोनों पर

ते क्षणे अने ते समये श्रमणु भगवान् महावीरना पूर्वभवना कण्ठ अने शंभल नामना जे वैमानिक द्वेव-
भिन्नोञ्जे अवधिज्ञान द्वारा भगवान् उपर वरसत्ती आ हुंअनी डेवी जलषी दीधी, 'सुदंष्ट्र' नामने नागहेव आ वित्तक
वरतावी रहेल छि ते पणु सानना प्रभावे जलषुं' आ अन्ने हेवभिन्नो त्यां आञ्चा अने नौकाने डिनारा पर सडीसहा-
मत लह आञ्चा अने नागकुमार हेवने पधारे उपसर्ग करता देखी पाडये। त्यारथाह आ अन्ने हेवोञ्जे नागकुमार
हेवने पडकार्यो अने मार मारवा तैयार थया, परंतु कइस्थाना सागर भगवाने आ अन्ने हेवोने तेम करता देखया,
हेवोञ्जे पोतीनुं' मण स्वप्नं प्रगट क्युं' अने वंइना-नमस्कार करी जे दिशाभाथी आञ्चा हुता ते दिशाभां चाल्या गया,
क्षमाना सागर जेवा वीतरागी प्रणुजे वित्तक विताडनार सुदंष्ट्र हेव उपर जरा पणु द्वेष क्यो नहिः तेम

ज उपकार करवावाणा कण्ठ अने शंभल हेवो पर जरा पणु अनुराग भाव क्यो नहिः। भगवाने अन्ने जथा उपर

हृदय एतदानीं—रे भिसो ! कुछ गजबसि ! तिष्ठ तिष्ठ ! तिष्ठ तिष्ठ ! इत्यान्तकालपर्यन्तमिव सर्वत्र कामिषं वायु विकृत्य उपसर्गं करोति, तदपरा—येन सर्वत्रैकवायुना हृत्ताः पतिताः, पूर्वगाः कस्मिन्नाः, धूलिपटलेन अतु मोक्ष्यकारो जातः । जलोर्मय आकाश स्पन्दुमिव उच्छलन्ति पश्चात् पतन्ति च, गङ्गायाः जले सा नीरपि उपरि आकाशे उत्पतति निपतति च, तेन दोलायमानायाः तस्या नावः स्वप्नो मनः, काष्ठपट्टानि भ्रष्टिवाणि, पवन-रोपिका पताका स्फटिका नौस्यता जनाः मयसीताः सः—सः—जीवनं संकुमानां क्लृप्तकरवं कर्तुमारभन्त । नाव आत्मरूपो नाविका मयोद्दिग्ताः किर्तन्यमूढः संजातः । तस्मिन् काले तस्मिन् समय धमणस्य मगवतो

‘क्षिप्त-क्षिप्त’ उच्यं कृता हुआ बोला—‘रे भिष्ठ, कहां जाता है ? ठहर, ठहर !’ इस प्रकार कह कर उसने मलयकान्तीन पवन के समान सर्वत्रैक नामक वायु को विकुर्बणा करके उपसर्ग किया । उपसर्ग इस प्रकार हुआ—उस सर्पलंकसे इस गिर गये, पर्वत कैंप उठे, धूल का ऐसा पटल उठा कि अतुल अंधकार छा गया । जन की हिलारों जैसे आकाश हो स्थैर करने के लिए उठार उछळती और बाढ़ में गिरती थीं । गंगा के पानी में चर नौका भी आकाश में उड़ने और नीचे गिरने लगी । दगमगाने के कारण उस नौका का स्तंभ टूट गया । काठ के पट्टिये टूट गये । इस को रोकने वाली पताका (पाल) फट गई । नौका पर आरुढ़ जन मयमीत हो गये, जीवन के विषय में दुःखा करते हुए कल-कल शब्द करने लगे । नौका का नाविक चिन्तित हो उठा, मय के कारण किस हो गया और कि कर्तव्यमूढ़ हो गया ।

बोलेवा बाब्बो—‘हे भिष्ठ ! कहां बदन छे ? उबो रहे !’ आम कही प्रथम नीपअवे तेवां अवंतै नामना वायुने रेकिन यच्छि दास पैदा कथेो अने अजवानने उषसअं आ.पथ तेषार थयेो आ.आ उपसग मु वणुं न नीखे अरुण छे —
आ प्रकवशारी पवनने वीपे वृषे उअदीने पदवां बाब्बो पवती । कथा बाब्बो, पूगने, वटीण यथावी तेवे शवन अंधकार चाकरी दीये, योबब्बो पूज उठगवा बाब्बो आ योबब्बो बब्बे आकाशने इधरीं रक्षा खोब तेम न्यावा बाब्बो. आ योबब्बो उखे यदीने. नीखे पटहाती वेगाळे अकठर अलंभाजे यपी क्वी आ योबब्बो जोने भारवे अजग्य पाखीभा वहेती आ नोडा पवु आकाशवां उठगवी अने कुरी पाडी नीखे अजग्यी पडती क्वी. अजग्यवांने भारवे तोना स्थन पदी अयेो बाइबांनं पाटिया पवु वेरिनियेर वणुं अबां. क्वाने आधाये इरकरोता अक पवु हादी अयेो. क्वेसा हांशु कामना न रक्षां. नोडावां जेठवां भाखुजे वापणीव वणुं अबां उअनहोरी पदी अअनी बाहाडी बाकाभार ववु अयेो. नोडांने नाविक पवु विवापुअर वणुं अयेो. कश्चना भारवे तोने पूज जिस्तवा आपी मय ते विणुअ अने विवापुअर वणुं अयेो.

महावीरस्य पूर्वभवमित्राभ्यां कम्बल-शम्बलाभिधाभ्यां द्वाभ्यां वैमानिकदेवाभ्याम् अवधिना सुदंष्ट्राभिधानाग-
कुमार देवकृत सुपसर्गमायोग्य तत्रागत्य तं निवार्य सा नौस्तूरे स्थापिता । ततस्तौ देवौ सुदंष्ट्रनागकुमारदेवं
निर्भर्त्स्य हन्तुमुद्यतौ ! करुणाद्रिचित्तन भगवता तौ निवारितौ ! ततः खलु तौ द्वात्रपि देवौ निजख्वं प्रकटय्य
भगवन्तं वन्देते नमस्यतः, वन्दित्वा नमस्थित्वा यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतौ तामैव दिशं प्रतिगतौ ।

क्षमासागरो वीतरागो भगवान् उपसर्ग कारके सुदंष्ट्रदेवे क्रोधभावम्, उपकारकारकयोः कम्बल-शम्बलयो
देवयोश्च रागभावं न किञ्चिदपि अकरोत्, उभयत्रापि समभावमदर्शयत् ।

ततः खलु नौस्थिताः सर्वे जना निजजीवनदातारं सकलजगज्जीवरक्षकं भगवन्तं ज्ञात्वा भक्तिबहु-
मानेनाऽऽस्तुवन् ॥ सु०८८ ॥

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के पूर्वभव के मित्र कम्बल और शम्बल और
नामक दो वैमानिक देवों ने अवधिज्ञान से सुदंष्ट्र नामक नागकुमार देव के द्वारा किया हुआ उपसर्ग
जाना । वे वहाँ आये और उसे रोक कर नौका किनारे पर रख दी । तत्पश्चात् उन दोनों देवों ने सुदंष्ट्र
नागकुमार देव को फटकारा और वे स्वकृत अपराध का दण्ड देने को उद्यत हुए । मगर करुणामयचित्तवाले
भगवान् ने उन्हें रोक दिया तब उन दोनों देवोंने अपना असली रूप प्रगट कर के भगवान् को वन्दना
की, नमस्कार किया । वन्दना और नमकार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये ।

क्षमा के सागर वीतराग भगवान् ने उपसर्ग करने वाले सुदंष्ट्र देव पर किञ्चित् भी द्वेष नहीं
किया, और उपकार करने वाले कंबल शंबल देवों पर किञ्चित् भी राग नहीं किया । उन्होंने दोनों पर

ते क्षणे अने ते समये श्रमण भगवान् महावीरना पूर्वभवना कण्ठ अने शंखल नामना जे वैमानिक हेव-
भिन्ने अविधिज्ञान द्वारा भगवान् उपर वरस्ती आ इःअनी छेती ज़ाणी छीथी. 'सुदंष्ट्र' नामने नागहेव आ वितक
वरतावी रहै छे ते पथु ज्ञानना प्रभावे ज़ाथ्युः. आ अन्ने हेवभिन्ने त्या आन्था अने नौकाने किनारा पर सडीसल-
भत लई आन्था अने नागकुमार हेवने वधादे उपसर्ग करतो. देखी पाडये. त्यारभाइ आ अन्ने हेवोअे नागकुमार
हेवने पडकयो अने भार भारवा तैयार थया; परंतु कइखाना सागर भगवाने आ अन्ने हेवोने तेम करता देख्या.
हेवोअे पोतीनुं. भण स्वइपं प्रगट कथुं अने वंइना-नमस्कार करी जे हथ्यामंथी आन्था छता ते दिशांमां आल्या गया.
क्षमाना सागर ओवा वीतरागी अलुअे वितक विताडनार सुदंष्ट्र हेव उपर जरा पथु द्वेष कथो नछि. तेम

ज उपकार करवावाणा कंअळ अने शंखल हेवो पर जरा पथु अलुसग लाव कथो नछि. भगवाने अन्ने ज़ाथु उपर

टीका—'तप षं' से समझे' इत्यादि। ततः=नागसेनद्वारे पारवानन्दरं सल्ल स भ्रमणो भगवान् महावीरं ततः=तस्मात् उपरबाबालाभियाद् ग्रामात् निगच्छति=निःसरति, निर्गत्य=निःसृत्य श्वेताम्बिकाया नगर्यां मत्पयमये विहरमाणो=गच्छन् यत्रैव प्रवेशे सुरमिपुरं नगरं तत्रैव उपागच्छति। तत्र=सुरमिपुरनगरसमीपे सल्ल पृथिव्याः पट्टशक्तिमिव=पट्टाभ्यामिव उच्छस्करप्रकारविशाम्=उच्छस्करप्रकारवतीम् गङ्गानदीम् उषरीतुकामाः-पारंगन्तुमिच्छुः, भगवान् तथीरे=गङ्गानदीवटे आगच्छन्। ततः=नदीतीरागमनानन्तरं सल्ल स भगवान् नारिकेलस्य अश्वमेधेय=आश्रया तस्यां नारिकेलीकायां स्थितः=उपविष्टोऽभवत्। ततो नद्यां वसन्ती= तस्मिन् सा नीः भगापजले प्राप्ता=आगता। तत्र=आपत्रममरुपे सुदृष्टनामा एको नागकुमारदेवो न्यवसत्।

ही सममात्र मरुद्विह किया। तत्पश्चात् नौका पर सवार समी जनों ने भगवान् को अपना भीवनदाता और सल्ल जगत् के जीवों का रक्षक जान कर भक्ति और बहुमान के साथ उन की स्तुति की ॥५०८॥

टीका का अर्थ—नागसन के घर पारणा करने के पश्चात् भगवन् भगवान् महावीर उत उपरवाचाम नामक ग्राम से निकले। निकल कर श्वेताम्बिका नगरी के बीचोबीच हो कर विचरते हुए निस प्रदेश में सुरमिपुर नगर या वही पहुँचे। सुरमिपुर नगर के निकट पृथ्वी के पटाम्बर के समान तथा समुद्र के सदृश उल्लूकी दिशाओं से बिल्वती हुई गंगा नदी को पार करने की इच्छा करने वाले प्रसू गंगा के किनारे पर पड़े। नदी-किनारे आने के अनन्तर भगवान् नारिकेल की आश्रया लेकर उस नौका में गिराजे। वसन्ती=वन्ती नौका आगप जल में आई। उस आगप जल में सुदृष्ट नामक एक नागकुमार देव

अभवात् प्रपद इत्ये। नौका बधीयकाभत आवातां तेनी अइर जेठका अुसादेशेले प्रभुने लुभनदात्त भानी तेभ अ प्रवी भातना रक्षक भानी तेभनी कश्चि ज्येने लुभमान इभा. (५०८८)

टीकानो अर्थ—अथानाक नागसेनना पुत्रवना जजे तेन्य धेर प्रभुनु पाप्सु यद्दु त्पारपथी प्रभु उत्तरवाक्यात् आभमं बाबी नीकल्था. उत्तरवाक्यात् आभमं सुरमिपुर नगराभां वक्ष्ये श्वेताम्बिका नगरी आवाती क्वती. एतेनो नगरीनी अर्थमं यद्यने ए पवार भते। तेषां सुरमिपुर नगरीनी नल्लकं भाने बिबोधा भाएवी धरेद इध जेवी अगा नदी वदेती क्वती अ नदी ज्योत्स्नीने सुरमिपुर नगरमं पक्षेवाप तेभ कसु दोहा अ मंडिषी आने ठठि अवरअवर जेठका दास इरी रषा क्वा अने धामसाये ठठि अवेका अभिने उभाभ अतने अवरअर नाक्याकि आश्रित ए बाबी रषी क्वेते। अनवान आने इतिना मरि अथा पुत्रकवा क्वा तेनी तेज्य नाकिनी एअ कर्त तेभं जस्यी अभा. अन्तरी एत्था जेवी विष क अभा नीना धरुय नाभेना नागकुमार देव भाने इति.

ય: સુદંષ્ટદેવ: ત્રિપૃષ્ઠવાસુદેવભવે ભગવાનો જીવેન હતસ્ય સિંહસ્ય જીવ આસીત્ । સ: = અગાધજલવાસી સુદંષ્ટ-
 દેવો ભગવન્તે = શ્રીવીરસ્વામિન દૃષ્ટા પૂર્વવૈરં = સ્મૃત્વા ક્રોધેન ધમધમાયમાન: = “ ધમધમ ” ઇતિ શબ્દં કુર્વન્ આશુ-
 રક્ત: = શીત્રારુણલોચન: મિસમિસાયમાન: = ક્રોધાગ્નિના જાજ્વલ્યમાનશ્ચ સન્ ભગવત: = શ્રીવીરપ્રભો: પાર્શ્વે આગત્ય
 આક્રોયો સ્થિત: કિલકિલરવ = કિલકિલેતિ શબ્દં કુર્વન્ એવમ્ = અનુપદં વક્ષ્યમાણં વચનમ્ અવાદીત્ = ‘ રે મિસો!
 કુત્ર ગચ્છસિ ? તિષ્ઠ તિષ્ઠ ’ એવ કથયિત્વા કલ્યાનતકાલપવનમિવ = પ્રલયકાલપવનવત્ મયદ્ધરં સંવર્તેકામિથિં = સં-
 વર્તેકત્નામકં વાયું ચિક્રત્ય = વૈક્રિયશક્ત્યા સમુત્પાદ્ય ઉપસર્ગકરોતિ । તદ્વથા = તેન = ચિક્રુતેન સંવર્તેકવાયુના દૃશ્યા:

નિવાસ કરતા થા, જો ત્રિપૃષ્ઠ વાસુદેવ કે ભવ મેં ભગવાન કે જીવ કે દ્વારા મારે ગયે સિંહ કા જીવ યા ।
 અગાધ જલ મે નિવાસ કરને વાલા સુદંષ્ટ દેવ ભગવાન ત્રીર પ્રમુ કો દેવકર ઓર પૂર્વવૈર કા સ્મરણ કર કે
 ક્રોધ સે ધમધમાતા હુઆ, લાલ લાલ લોચન કરકે, દાંત પીસતા હુઆ ભગવાન કે પાસ આકર ઓર ‘કિલ-
 કિલ’ શબ્દ કરતા હુઆ ઇસ પ્રકાર ગોલા — ‘ અરે મિભુરુ, જાતા કહૌં હૈ ? ઠહર, ઠહર ! ’ ઇસ પ્રકાર કહ
 ઠર પ્રલય = સમય કી વાયુ કે સમાન મંચર સંવર્તેકનામક વાયુ કો ચિકુર્વેણા કરકે ઉસને ઉપસર્ગે ક્રિયા ।

વેરની ભૂમિકા એવી હુર્ધટ હોય છે કે તેનું ણીજ બે એક વખત પણ ભૂલેચૂકે વવાઈ ગયું હોય તો તે બીજ
 વડવાઈઓની માફક ટૂટી નીકળે છે અને તેના છેડા પણ આવતો જ નથી. એક વેર વાળતાં બીજી વેર હોય જ થાય
 છે અને તેની પર પરા ભવોભાવ વધતી જ ભય છે, માટે જાનીઓ પોકારી પોકારીને કહે છે કે વેર હોયું થયા જ દેવું
 નહિ, અને કદાચ હોયું થયું હોય તો તેનું નિરાકરણ તુરત લાવ પરસ્પરમાં ક્ષમાપના થઈ જવી જોઈએ, નહિતર
 એની ભૂમિકા વધતા તેના પાર આવશે નહિ

આ પ્રમાણે ભગવાનનો જીવ જ્યારે ત્રિપૃષ્ઠ વાસુદેવપણે અવતર્યો હતો ત્યારે ત્રિપૃષ્ઠ વાસુદેવે લોકોને રંબડ-
 નારા એક કૂર: સિંહને ચીરી નાખ્યો હતો. તેનું વેર વધતાં તેનું ક્ષણ તે સિંહ સુદંષ્ટ દેવપણે અવતરી આ વખતે
 ભગવાન પાસેથી વસુલ કરવા માંડ્યું. વેરી વેરીને તુરત જ ઓળખી કાઢે છે તેવો જીવનો સ્વભાવ ઘડાઈ ગયો હોય છે.
 એકથીબંનેનો સમાગમ થતાં જ પૂર્વના વેરનાં બંધનો ઉછળા જ વે છે. વેર એ માયાવી ગાંઠ છે અને જીવ
 પેતાની વકેતા અનુસાર તે ગાંઠને બાધે છે, પોષે છે અને વધારી-ઘટાડી પણ શકે છે. આ ગાંઠ બંધાતા જીવમાં
 માયા-કપટના દોષો એક પછી એક વધતાં જ ભય છે, જેના પરિણામે કષાય શુક્ત થઈ મહાન્ નિવિડકર્મ ઉપાજન
 કરતો તે આત્મા ભવોભવમાં પૂર્વનાં વેર લેતો ભય છે અને સાથે સાથે નવાં વેરના બંધનો બાંધતો ભય છે,
 માટે જ શાસ્ત્રકારો કહે છે કે—

पवित्राः परीक्षाः कृमिदा, वृभिः गलेन = गुणिसंपूर्णेन मनुजः = योरः भाषकारी प्रातः । जन्मोर्मय = जलतरङ्गा
 प्राकाशं स्पन्दुमिग = माहाशक्ततापमित्र उच्छसन्ति = उपरिगच्छति, पश्चात् = उच्छम्मानन्तरम् पतन्ति = नीचैरा
 गच्छन्ति च । ततश्च = गङ्गाया अग्रे सा नौ = नौका अपि उपरि = ऊर्ध्वं आकाशं उत्पत्सि च = युतः निपत्सि =
 अप्र आगच्छति । तेन = उत्पतन्निपत्सिनो मय्यप्यपारेण योकायमनायाः = योलावदावरन्त्याः तस्याः = गङ्गाजलमध्य-
 स्थितायाः नारः = नौकाया स्वग्म्य = स्था, मन्तः = सुटिवः, काष्ठद्वानि सुटितानि, तथा पत्रमसौषिका = आयु-
 निरापन्कारिका पताका = इडावचरि = वैजयन्ती स्फटिका = विवीणां, नोस्फिटा = नौकाया सुविष्टा जनाः = लोकः =

पर इत प्रहार = शक्तिप्रशक्ति से उत्सव क्रिये हुए वायु से द्रव गिर पड़े । पर्वत होकर मने । धमि के
 पटन से गोर अंधकार छा गया । मल की लहरें जैसे आकाश को छूने के लिए जाती हैं उस प्रकार ऊपर
 जाने लगी और नीचे गिरने लगी । इस 'खोरब' गंगा के जल में वह नौका भी ऊबी-नीची होने लगी ।
 ऊची-नीची होने के कारण किन्हीछे (मुन्ना) के समान शिलो डुर नौका का मस्तूक (स्वैम) मन्त हो गया ।
 मन्त की क पटिये टूट गये । वायु के बोग का निरोध करने वाली पताका-ढंके पर फहराती हुई वैजयन्ती

"आ जवने भयोभव भटि, मयु वेर विरोध,
 अ'भे जनी अजानधी, इथो अतिशय शोध
 ते अवि भियअभि दुल्लस ' २ गान
 " १ "

अथ अभातु छ अवि, अभा करके अथवा
 वेर विरोध टणी अन्ने, अक्षयपठ सुधर्मक,
 अमकारि आवाम यशे,
 कारे कर्मा एवय्य पीवे वेरशु अेर,
 भव अटवीमा ते भमे, धामे न्धि शिव इहेर
 धमनु अर्थ विचारके "

आ प्रभावे अमुने जेवीच नाममुभारे जत्यत अेर अभापी अयु जने हांत पीसते काजवाननी पारे अानी
 उपकारे पीसते अवे प्रमत्तयु विदुषिनि अणमा जनेप पकडे अटका शिव अणे इथो आ शिव जेना अणजाने
 बीपे नन्दी अय न्धिनी अणने अण जानी अण अणने अण अणने अण अणने अण अणने अण अणने अण अणने अण अणने

भयभीताः=भयोद्धिनाः स्वस्वतीवन=निजनिज जीवितंशुद्धमानाः सन्तः कलकलराव=कालाहलशब्दं कतुमार-
भन्त । नावः=नौकायाः, आत्मरूपः=आत्मस्वरूपः, रसक इत्यर्थः, नाविको भयोद्धिजः=भयत्रस्तः किं कर्तव्यमूहः=
विचारशून्यः संजातः ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य पूर्वभवमित्राभ्यां कम्बलशम्बलाभिधाभ्यां=
कम्बल-शम्बलनामकाभ्यां द्वाभ्याम्, वैमानिकदेवाभ्याम् अधिना=अधिनानोपयोगेन सुदंष्ट्राभिधनागकुमार-
देवकृतम् उपसर्गम् आमोग्य-ज्ञात्वा तत्रागत्य तम्=उपसर्गम् निवार्य=दूरीकृत्य सा नौः तीरे=नाज्ञायास्तटे स्थापिता ।
ततस्तौ=कम्बल-शम्बलौ देवौ सुदंष्ट्रनागकुमारदेवं निर्भर्त्स्य=दुर्वचनमुक्त्वा हन्तु=ताडयितुमुद्यतो जातौ, तद्दृष्ट्वा

(पाल) फट गई । नौका पर सवार लोग भय के कारण उद्धि हो उठे । उन्हें अपने-अपने जीवन के लिए
सन्देह हो गया-मोवने लगे-न जाने वचेंगे या मरेंगे? वे कोशाल मचाने लगे । नौका के सन हो जाने के
कारण नाविक चिन्तित हो गया, भय से त्रस्त हो गया और उसे भान न रहा कि म्या क औरक्या न करूं ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के पूर्वभव के मित्र कम्बल और शम्बल
नाम के दो वैमानिक देवोंने अवधिज्ञान के उपयोग से सुदंष्ट्रनामक नागकुमारदेवद्वारा कृत उपसर्ग को जाना,
जानकर वे वहाँ आये और उस उपसर्ग को रोक दिया । उन्होंने वह नौका गंगा के किनारे लेजा कर
स्थापित कर दी । तत्पश्चात् कम्बल और शम्बल देव सुदंष्ट्र-नागकुमार देव को दुर्वचन कह कर मारने को

तणीञ्जे बध भेसशे ज्येभ आगाडी थवा लागी. तेभा जेडेवा मुसाधरोना एव तणीञ्जे जेभी गया. दोडो 'अथावो,
अथावो'ना योकाशे करना लाग्या डेटलाक योताना एध हेवमु' रभण्णु करुणं' एववानी आथा पणु छेडिने जेड डता.
ए साथे आ हेवमु वेर भांध्यु इशे आ अधो तरडेडट हेवने न ए रज्येभ, भगवान योते भणुत्ता इत्ता छता
दोडोने कध कछु नडि, तेभ न एसाशे पणु कयो नडि भगवानना ज्यालमां इत्तुं ई आ वेरनेो भड्डो छेड्यो न
छे, तेथी ते कर्म पूरे थता आयोयाप याति थध जशे. डेटलाक तेा भगवानने अ्यु तोडोिन थात करवा विनंति
पणु करता इत्ता, अने भगवान तेभने थात रहेवा सूयना पणु आपना इत्ता, आ कर्ममुं इण पूरे थता भगवानना
पूर्भवोना (मित्रो आवी पडोन्था अने तेजोञ्जे आ हेवने तेम करते। अटकांनी तोडोानने थात पाड्युं. नौकांने कठे'
दोरी गया सडिसत्ताभतपणु किनादे पडोन्थी जता दोडोना जोगियाभा एव आन्थे। धडी पडैवां एवने पटवानी अण्णी

कल्पार्थचिन्तेन मगधा तौ श्वौ तत्कार्याय निवारितौ । ततः स्वच्छ शौकम्बल-शम्बलौ द्वापयि देवौ निजकल्प-
 म्बलीयदेवत्वस्य प्रकृत्यय मगधन्-भीषीरत्नाग्निन बदेते नयस्यतश्च, बन्दिता नमस्त्वया च यस्या एष विश्व
 प्रादुर्भूतौ तामश्च विश्व प्रकृतौ । समासागरः भीषीरगः=रागोद्वेषवर्जितो मगवान्=भीषीरप्रभुः उपसर्गाकारके
 सुदंष्ट्रदेवे क्रोपमानं, च=पुनः उपकारकारकयोः=उपसर्गानिचारकत्वेनोपकारिभ्योः कम्बल-शम्बलयोर्देव्यो रागमायं
 किञ्चिदपि=अनुपामाप्रमपि न=नैव अक्रोतव=कृतवान् । किन्तु उमयप्रभ=सुदंष्ट्रनामदेवे कम्बल-शम्बलदेवयोश्च सम-
 मायम् भद्रं प्रयत्न=यश्चितवान् ।

ततः नन्दु नौस्विताः सर्वे मना निगनीरत्नद्वारारं=स्वमीवित्वायकं सकलजगत्जीवरक्षक=समस्तसृष्टवनवर्ति
 मणिषाण्यपरायणो म्बान्क=भीषीरप्रभुं इत्यत्रा मकिचक्रुमोनेन अस्तुवन्=वतमयावसम्बलवाक्ये सुतकन्तः (सू०८८)
 ममम्—उप णं से समणे मगधं महावीरे नावामो भोयस्स भोयस्सि मगधरणे सुष्णागारे रषीए
 काउससणे ठिए । तव णं मगधो पुत्ररघावरापकात्मसमयसि माईमिच्छादिही एणे संगमाभिरे देवे अतियं
 पाउरूपे ! तप णं से देवे आसुरणे रुहे कुबिए चडिक्किए मिसिमिसेमाणे कउससगदिये पंहु एवंप्रयासी—
 “इ मो मिक्कु ! मपत्थियपत्थया ! सिरी-हिरी-धिइ-किप्पि परिबक्किया ! पम्माकामया ! पुष्णाकामया ! मग्ग
 कामया ! मोक्खकामया !, पम्माकंविवा ! इ, नो बं तुमं ममं जायासि ! अहं तुमं पम्माओ
 तेषार हुए । या देवकर कळ्णा से आद्रे विषवाठे मगवान् ने दोनौ देवौ को मारणे रोक दिया । तत्सभात्
 कम्बल और शम्बल दोनों ही देवोंने अपने दृष-रूप को प्रकट कर के मगवान् पीर मद्र को हृदना की
 और नमस्कार किया । रचना-नमस्कार कर के वे जिस दिशा से प्रकट हुए वे उसी दिशा में चले गये ।

समा के सागर और रागद्वेष से रहित मगवान् पीरन उपसर्गकर्षा सुदंष्ट्र पर क्लिप्ति मी क्रोध
 मार नहीं किया और उपकारकता कम्बल-शम्बल देवों पर अनुपाम मी राग नहीं किया । उनहों ने
 सुदंष्ट्र, कम्बल और शम्बल के प्रति सममान ही प्रदक्षिण किया । तब नौका पर सवार सभी लोक मग
 वान् महावीर को ही अपना मोहनवाया एवं जगत् क समस्त जीवों का प्राणा ज्ञानकर मकि और बहुमान
 के साथ उनके पमान का गर्वन करने वाले बाण्यों से स्तुति करने लगे ॥सू०८९॥

४४ ६९ ते पदी पधी अथाठं ज्वानं वीरानं आनं अमनं अथापी रको जने अमुने कञ्जिभावे प्राडवा बाअभा
 आपर वेदना आभार तदश्च पञ्च कनयन आद्रेरी रक्यं तेअ अ इअभांभी छोडाननार तदश्च पञ्च आरुणी
 रक्यं आउ तेअउ वरैनं जेठं देवभिनो निरमभ आम्मां जने तेअपी स्तुति इरी निवाकरवाने पाडा इभी, युआ
 इरी आउ इअ जेठं, अउरुको अ अमुने अउरुअ आशीवां आपवा तेअपी स्तुति इरए अभा, (सू०८९)

परिभंसेसि" चि क्रहु पउरं रयपुंजं उण्याडिय पहुसम सासोच्छासं निरुंधइ । तह वि पहुं अक्खुद्धं दहुंणं, पच्छा से तिकखंतुंडाओ महापित्रोलियाओ विउव्विय ताहिं दंसावेइ, निदसावेइ, उवदसावेइ तेण पहुसरीराओ पवलहरिधारा निस्सरेइ, तहवि पहु नो चलेइ । तओ पच्छा तिकखिसभरियकंटयाइ विच्छियसयसहस्साइं विउव्विय पहुं उवसगेइ । पच्छा तेण विगारालसुडे तिकखदंते दंती विउव्विए । से णं सुडाए भयवं उट्ठाविय अहे पाडेइ, तओ लुरियतिकखदंतगेण विदारिय पाएहिं मेइइ । तओ से भयभेरवेण पिसायरुवेण भीसेइ । तओ सीह विउव्विय पहुसरीरं फालेइ । तए णं भगवओ उअरिं महासां लोहमयं, गोलय पखिवेइ । एवं सप्यरिच्छ-सूर्यभूयपेयाइरएहिं नाणाविहेहिं उवसगेहिं उवसगिओडवि भगव अत्रिचलिए अकंपिए अभीए अंतसिए अत्तथे अणुव्विगे अक्खुभिए असंभते तं उज्जलं मह विउल धोरं तिक्वं चंड पगाहं दुरहियासं वेयणं सम-भावेण सम्म सहेइ ख्वमेइ तितिकखेइ अहियासेइ नो णं सगसावि तस्स अमुहं चितेइ, तुसिणीए प्रम्मज्झाणो-वगए चेव विवरइ । एवं से संगमे देवे जणवयविहारं विहरमाणं भगवं पच्छा गर्मिय छम्मासं जाव उवसगणीथ तहावि बहुस वज्जरिसहनारायसंघयत्तणेण न पाणहंणी जाया ।

एव ण विहरमाणे भगवं संवच्छरं साहिय मासं सवेलेए, तओ परं अवेलेए होत्था ।

तए णं से समणे भगव महावीरे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे वीयं चाउम्मासं रायणिहस्स गयरस्स नालंदाभिहाणे पाडगे मासमासखलमणतवेणं ठिए । तत्थ णं पहममासखलवणपारणगे विजय-सेट्टिणा भगवं पडिलाभिए १ । एवं वितियारणगे सुनंदसेट्टिणा, चउत्थपारणगे वहुल-साहणेण पडिलाभिए । सव्वत्थ पव द्विवाइं, पाउवभूयाइ २ । एवं तइयं चाउम्मासं चंपाए गयरीए दुदुमास-कवमणेण ठिए ३ । चउत्थ चाउम्मासं चउम्मासखलमणेण त्रिचंपाए ठिए ४ । पंचमं चाउम्मासं भदियाए गयरीए नाणाविहाभिगहजुत्तेणं चाउम्मासखलमणेणं ठिए ५ । छट्ठं पुण चाउम्मासं भदियाए गयरीए नाणाविहा-भिगहजुत्तेणं चाउम्मासियतवेणं ठिए ६ । सत्तमं चाउम्मासं आलंभियाए गयरीए चाउम्मासियतवेण ठिए ७ । अट्ठम चाउम्मासं रायणिहे गयरे चाउम्मानियतवेण ठिए ८ ॥सू०९॥

छाया-ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो नावोऽवतरति, अतीर्य महाऽरण्ये शून्यागारे रात्रिके कायोत्सर्गे

मूल का अर्थ—'तए णं' इत्यादि । तदश्चात् भ्रमण भगवान् महावीर नौका से नीचे उतरे और एक सहारण्य में जाकर घूने घूर में रातभरका कायोत्सर्ग करके स्थित हो गये । वहाँ मध्य रात्रि के समय

भूणेनो अर्थ—'तए णं' इत्यादि त्थारपछो भगवान नावडाभाथी नीचे उतरी ओइ भइरस्थ तरइ थावी नोऽकथा आ अरइयमा ओइ सुउ धर इउ त्या आथी रात कोयेत्सर्गमा उला रइहा त्या मध्यरात्रिना समये भायीइ

स्थितः । तब लख मगवतः पूर्णप्रापरारामकामसमये मायी मिथ्याहलिकेकः सङ्गामिषो देवोऽन्तिकं गानुर्मुत ।
 ततः लख स देव शानुरको रुष्टः इषितः वष्टिषितः मिसमिसायमानः कायोत्सर्गस्थित मसुयेवमबादीत्-
 " ई मी मिसो ! अमावित्तमार्थक ! मी-श्री-इति-हीतिपरिचिनित ! धर्मकामक ! पुण्यकामक ! स्वर्गकामक !
 मोलकामक ! धर्मकावसित ! ध धर्मपिपासित ! ध नो लख त्व मी जलानसि, अर्धं त्वां धर्मात् परिधंश्रयामि" ।
 इति कृत्वा मज्जुं रणःपुञ्जसुखात्य ममोः नासोच्छ्वास निरुद्धादि । तथापि महम्मसुम्भं दृष्ट्वा पश्चात् स वीक्षण-
 दुष्भाः महापिपीलिकाः विकृत्य तामिर्दंशयति, निर्दंशयति, उर्ध्वंशयति, तेन मसुखरीरात् प्रकलरभिरचारा नि-
 सरति, तथाऽपि मसुनों चलति । ततः पश्चात् वीक्षणविपयुक्तकृत्कानि वृषिकृशतसहस्राणि विकृत्य मसुमुपस-
 मायी मिथ्याहृष्टि संगम नामक एक देव मगवान् के निकट प्रकट हुआ । खन्तर नर देव शीघ्र ही लाल
 चोस हो गया । स्य, इषित, रश्मिकारवाक और दांत पीमठा हुआ नर देव कायोत्सर्ग में स्थित मगवान्
 मशानीर से इस प्रकार बोला— 'अरे मिष्ट ! मौत की कामना करने वाले ! अरे मी, श्री, इति, कीर्ति से
 गुन्य ! अरे धर्म की कामना करने वाले ! स्वर्ग की कामना करने वाले ! मोल की कामना करने वाले !
 अरे धर्म की माकांक्षा करने वाले (ध) अरे धर्म के पिपासु (७) ! तू मुझे नहीं पहचानता है ? देल, मैं तुझे
 अमी ही धर्म से श्रेष्ठ कर देता हूँ ।

इस प्रकार कर कर उसने विशाल रजका पुंज (धूम का पटल) उठा कर मगवान् के नासोच्छ्वास को
 रोक दिया । तब भी मगवान् धर्ममाल स्वामी को मुग्ध हुआ न देलकर उसने वीखे मुल वाली बही बही चीटियों
 की विकुर्वणा कर के उन से इसवाया, खूब हँसवाया और पूरी तरह हँसवाया । उस से मसु के शरीर से
 शरिर की प्रकल चारा नर निकली फिर भी मसु वनायमान न हुए । तत्पश्चात् उम्र विप स परिपूर्ण कूटन-
 अने निम्ना दक्षिणो अक्षय देव लेयु नाम स अम कटु ते अजयानतो धर्मो आवी प्रकट यथे आवानानी आवे
 तेखे बाबाव धारण्य हरी, इष्टपुष्ट शरीरतो आकार हरी शेषायमान दृष्टिने उखो रको तेतो देवाव अम कर रोद्रतावाणे
 कना। तेखे गंत कच्छयानि कावयानने मसु के ' अरे मिष्ट ! तू मीतने शरखे ज ंये छे । तू कच्छयानि कटु
 रको छे, वक्षत्री, बाव शीरज अने श्रित्तिनाने जनी अये छे । अरे धर्मशेरी ! उपकृपाछक ! स्वर्गनी उभयवाणा
 येक येकवावाणा ! धमना उच्छिष्टक ! अरे धर्मपिपासु ! तू अने अजयानतो नही के छु तने पजयारभा न
 धम कष्ट हरी नाथीछ ? आभ हकी तेखे भुलनी आंधी आवाही का कक्षर अंधीधने वधि अजयानतो अयोऽच्छवास तेखे
 अटडाही दीपे। तेम छतां अजयान अकापीर इत्या नदि, त्पारलाड तेखे त्रिख्य अजयानो मीरी मीरी श्रित्तिना अस्त हरी
 अजयानने इरवाही, आधास्य अचनाभां का श्रित्तिना न हवी पण आवे श्रित्तिनाय शक्य काजः - कोष तेम
 तेजा अक्षी शरि अट्टक इरवा वाची का अट्टकामेने पच्छायि

एवं स सर्वमो देवा मनस्वद्विहारं विहरन्तं भगवन्तं पश्चात् गत्वा पाष्मासीं यावत् उपासर्गं च तद्यथापि प्रमो-
हं अक्षुपमानाराधसंभनन्तरेण न प्राणहानिर्माता ।

एवं तनु विहारं भगवान् संप्रसारं साधिकं मासं सत्वेत्कृत् ततः परमवेत्कको वयुत् ।

ततः तनु स भ्रमणो भगवान् महावीरः पूर्वांशुर्षीं चरन् ब्रामानुश्रामं द्रवन् द्वितीयं चातुर्मासं
राशशुश्य नगरस्य नाश्वन्श्रामिणाने पाटके मासमासतणपसा स्थित । ततः सल्ल प्रथममाससण्यपाणके
विनयभेदिना भगवान् प्रविशन्मिता १ । एवं द्वितीयपाणके नन्दभेदिना, तृतीयपाणके सुन्दभेदिना, चतुर्थे
पाणके बहुलद्राभणेत मतिस्मित । सर्वत्र पञ्च विष्णुयानि मातुर्भुवानि २ । एवं तृतीयं चातुर्मासं चम्पाया
हो कर ही ने विचरते रहे । इस प्रकार उस समय देवने जनपद-विहार करते हुए भगवान् के पीछे जाकर
एक मास तक उपसर्गं किय । तद्यथा प्रभु का वक्षस्त्रम नाराचसानन होने से माणहानी नहीं हुई । इस
प्रकार विचरते हुए भगवान् एक मास अधिक एक वर्ष पर्यन्त सत्वेत्क रहे । तस्यमात् अवेत्क हो गये (१) ।
तस्यमात् भ्रमण भगवान् महावीर पूर्वर्षी तीर्थकरों की परम्परा का अनुसरण करते हुए ब्रामानुश्राम विचरते
हुए, दूसरे चोमासे में राशशु नगर के नाम्ना नामक गाँव में, मासलमण तपस्या के साथ स्थित हुए ।
वहीं परवेत्के मासलमण के पारणक के दिन विजय छेठने आहारदान दिया ।

इसी प्रकार दूसरे पारणक के दिन नन्द छेठने, तीसरे पारणक के दिन 'सुन्द' छेठने और
चौथे पारणक के दिन का कष्टाकसनिवेश में बहुलद्राभणने आहार दिया । सब महावीर दिव्य-यकट हु एण्ट)

सागर प्रभुज्जे ननशी पणु त इणु यत्तिमित्ता अशुल इणुणु नदिं अने भोनपण्णे धर्मिभानभा न् एविं रत्था
अने न्या न्नां भगवान् विचरन्ना वाज्या त्या त्या सअंमं देवे तेमनी पाण्ण पाण्ण व्थं छ भास सुधीं लनेक
अण्णित्ताया अने कश्चन्नायां पणु न आवे तेना पणुण्णं हाइण्णं कुञ्जे आम्हा क्खं पणु प्रभुनी प्रवृत्तानी न
वधं तेणु हाएणु ल्कन्तणल नाशान् सअननं वटु आ प्रशारे विचरत्ता । महावीर भगवान् दीक्षित भया, न्याह तेर
भास सुधीं सवेत्क इत्था । त्याएणव्हा अवेत्कपण्णे विहार करेवा वाज्या १ पूर्वतीर्थकरेनी पर पणु अजुसारे आभान्
आम विचरेश वाज्या । एण्णु आपासु अत्ति सुशोभितुं शक्युंकी नगरीना प्रचन्नात नाइहा नाम्नायां यन्नायां क्खुं
जहाँ भासजपण्णुं वथ आहारी आत्मभावें स्थिरं भवा । अहाँ प्रभुने परवेत्के मासभ्रमणं च पारण्णं विनय छेठने
त्यां वसु एण्णु पारण्णं नह छेठने त्यां त्रीण्णु पारण्णं सुनह छेठने पेर अने शिशु पारण्णं लकुत्तवाचवने त्यां वसु

नगरी द्विद्विमासक्षणणेन स्थितः ३ । चतुर्थं चातुर्मासं चतुर्मासक्षणणेन पृष्ठचम्पाया स्थितः ४ । पञ्चमं चातुर्मासं भद्रिकायां नगरी चतुर्मासक्षणणेन स्थितः ५ । षष्ठं पुनश्चातुर्मासं भद्रिकायां नगरी नानात्रियाभिग्रहयुक्तेन चातुर्मासिकतपसा स्थितः ६ । सप्तमं चातुर्मासमालम्बिकाया नगरी चातुर्मासिकतपसा स्थितः ७ । अष्टमं चातुर्मासं राजशुभे नगरे चातुर्मासिकतपसा स्थितः ८ ॥ सू० ८९ ॥

टीका—“ तण णं से समणे ” इत्यादि । ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो नावः=नौकातः अत्रतरति, अतीर्थं महारण्ये=महाटव्यां शून्यागारे=जनरहितगृहे रात्रिके=सम्पूर्णरात्रावधिके काथोत्सर्गे स्थितः । तत्र खलु भगवतः—श्रीमहावीरस्वामिनोऽन्तिके=निकटे पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=मध्यरात्रे मायी=मायावी मिथ्या-

इसी प्रकार प्रथु तीसरे चातुर्मास में चम्पा नगरी में दो-दो मासखमण करके स्थित हुए (३) । चौथे चातुर्मास में चार मास के चौमसी तप के साथ पृष्ठचम्पा में स्थित हुए (४) । पाँचवें चौमासे में भद्रिका नगरी में चौमासी तपसा के साथ स्थित हुए (५) । छठे चातुर्मास में भद्रिका नगरी में नाना प्रकार के अभिग्रहों से युक्त चौमासी तप के साथ स्थित हुए (६) । सातवें चौमासे में आर्लभिका नगरी में चौमासी तप के साथ स्थित हुए (७) । आठवें चौमासे में राजशुभ नगर में चौमासी तपसा के साथ स्थित हुए (८) ॥ सू० ८९ ॥

टीका का अर्थ—तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर नौका से नीचे उतरे और उतर कर महा-अटवी में जाकर एक शून्य मकान में सम्पूर्ण रात्रि तक के कायोत्सर्ग में स्थित हुए । वहाँ भगवान् महावीर स्वामी के समीप, पूर्वरात्रि-अपररात्रिकाल के समय अर्थात् मध्यरात्रि में एक सायावी और मिथ्या-

थयु जेने जेने धेर लगवानने भासअभभखुना पारण्णे अति भावपूर्वक आडार भल्ले। तेने तेने धेर पाथ दिंथे। प्रगट थया २, नीण्णु यातुभास प्रलुखे यथानगरीभा कथुं अर्डी प्रलुखे अण्णे ‘भासअभभखु’ तप आदथां ने धमंध्यानभा पोताने। समय वितावता ३, योथु योभासुं पृथव्य पातनगरीभां न कथुं अने त्या थार भासवु योभासी तप कथुं ४, पाथसुं यातुभासं भद्रिका नगरीभां योभासी तपस्था साथे पुरं कथुं ५, आन नगरीभां छुं योभासु विविध प्रकारना अबिथळो अने योभासी तप साथे परिपूरुं कथुं ६, सातसु योभासु आबं बिका नगरीभा पसार कथुं त्यां पण्णु तेज्जेअये योभासी तपनी आराधना करी ७, आठसुं यातुभासं राजशुभी नगरीभां उपर प्रभाणेनी तपस्था साथे समाप्त कथुं ८ (सू० ८९)

टीकाने अर्थ—अपार वेदनाओंने सहने कर्षा पथी पणु तेभनुं भन शांत अने निर्जन भूमिभां जवा यातुं छतु तेथी नौकाभाथी सहिसदासत उत्तरी केस व्येक अरुषय तस्के प्रयाणु करतां पडतर धर नजरभां आण्णु। त्या रातवसे। गाणवा निश्चय करी ध्यानभजन थया, आ अथा इ. भोनी तितिक्षा पाछण असीभ सहनशक्ति प्रगट

पट्टिः एकः=रुद्रिष्ठ मङ्गलामिषः=सङ्गमनामको देवः मादुर्मृत =मष्टोऽमवत् । ततः सल्लु सः=सङ्गमो देवः
 आशुरक्तः=द्वीपक्रोपाख्यानोचन इत् =रोपान्वितः=द्विपितः=कुन्दः वाञ्छितकियतः=रीद्राकारयुक्तः मिसमिसायमानः=
 क्रोधेन जागृत्यमानः सन् कायोत्सर्गस्वियं प्रयुम् एवम्-अनुपर्वं वक्ष्यमाणं वचनम्-अथावीत-ईं मो भित्तो ।
 'ईं मोः' इति साक्षिपेपामाप्रणयम्, भ्रमपित्तप्रार्थकम्=भरणेषुक्क । धी-शी-श्रुति-कीर्ति-परिवर्धित ।=स्वस्मी-सञ्जा
 वैर्य-स्यति-रहित । धर्मकामक ।=धर्मच्छो । पुष्यकामक ।=पुष्येच्छो । स्वर्गकामक ।=स्वर्गच्छो । मोक्षकामक ।=
 मोक्षेच्छो । धर्मकारुणित ।=धर्मकारुणित । पुण्यकारुणित । स्वर्गकारुणित । मोक्षकारुणित धर्मपिपासित ।=
 धर्मपिपासयुक्त । पुष्यपिपासित । स्वर्गपिपासित । मोक्षपिपासित । त्वं मां=सङ्गमनामकं देवं नो सल्लु जानासि ?
 अं त्वां धर्मात् परिभ्रमयामि=परिभ्रष्टं करोमि, इति कृत्वा=इत्युक्त्वा मञ्जुरे=मञ्जुं रजःपुच्छं रजःपुच्छं द्रुत्सिमूरम्
 उत्थाप्य=वैक्रियपञ्चया उद्गाप्य यमोः=भीमशशोरस्य शसोच्छ्वास निष्क्रान्दि=स्तम्भयति, तयाऽपि मयुम् अशुभ्य=
 लोभरहितं दृष्ट्वा पथात्=तदन्तरं सन्सङ्गमो देवः गीस्वतुष्टा=गीस्वतुष्टयुक्ताः मगापिपीलिकाः=पिपिला-

इष्टि सगम नामका देव पष्ट हुआ । वह देव एकदम ही छाल नेत्रोवाला हो गया, अष्ट हो गया, कुन्द
 हो गया और मथानक आकार से युक्त हो गया । क्रोध से लकड़े हुए उस देवने कायोत्सर्ग में स्थित
 मष्टु स पा वषन करे—'ईं मो ! इस प्रकार के अपमानयुक्त संवाचन के साथ वह वीळा-अरे पृष्टु
 की इच्छा करने चाहे ! अरे स्वस्मी, लज्जा, वैर्य और स्यति से हीन । अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्षकी
 कामना करने चाहे ! अरे धर्म पुष्य स्वर्ग और मोक्षकी कामना करने चाहे । अरे धर्म पुष्य स्वर्ग और मोक्ष
 के प्यासे ! तू मुझ सगम देवको नहीं जानता ? छे, मैं तुझे धर्म से अष्ट करता हूँ ।' इस प्रकार कह
 कर उसने मष्टु पढ़ा पृस्ति-समूह वैक्रिय शक्ति से उड़काकर मष्टुके श्वासोच्छ्वास का निरोध कर दिया ।
 इतने पर भी मष्टु को सोम-रहित देवकर उसने वीस्त्रे मूलबाकी मालों वीटियों की विकृष्णा करके

इश्वरानि तेभेनो उदयु वरी भावते। इत्येने तेजो जेह भवतो इत्येन। अमन्त्या धेते सदरीश्वी जिन
 छे आत्मा मष्टुपी छे तेने ऐहन-वेहन बंल पण मष्टु नाथी, तेवा एक निश्वनी कता, अत्ता पूरा पर तरशनी इज्जिने
 वीपे ने सुयेजिने जथावा कता ते सुयेजिने कथमं भावतां, तेनाथी पृष्ठा रेष्टु ज्जने ते सुयेजिने शसुत्थां इरी
 इज्जि नरि इत्तां पदरथ आवे त्रिधा रेष्टु ज्जे तेभेनो भयेनावा वतता कता ज्जेह पूरणी पर तरशनी इज्जिने वीपि
 वेहन छेयु मय, पण ते वेहनने वास्तविक वेहन नरि भानतां शसुत्थिक वेहन छे ज्जेम आत्मे मष्टुभव इत्तां
 जन्मपुन २२-२२२२२२ भावता वत्ता कता।

शरीरकपिपीलिकाः, विकृत्य=डै, यशस्वत्योत्पाद्य ताभिः प्रभुम् दंशयति, निदंशयति-नि=नितराम्-अतिशयेन दंशयति, उपदंशयति-उप=सामस्येन-सर्वाङ्गावच्छेदेन दंशयति, तेन प्रभुशरीरात्=श्रीशरीरामिदेहात्, प्रवलरुधिरधारा=अविच्छिन्नशोणितधारा निस्सरति, तथापि प्रभुर्नो चलति=कायोत्सर्गात्-स्खलितो न भवति, ततः पश्चात् स सङ्गमो देवः तीक्ष्णविषयतकण्टकानि-उग्रविषपूर्णकण्टकयुक्तानि, दृश्विकशतसहस्राणि=दृश्विकलक्षं, विकृत्य=त्रैक्रियशक्तयोत्पाद्य तः प्रभुम् उपसर्गयति तथापि प्रभुर्निश्चल एव तिष्ठति। प्रभुमविचलितं दृष्ट्वा पश्चात् तेन=सङ्गमदेवेन विकरालशुद्धः=भयङ्करशुद्धायुक्तः तीक्ष्णदन्तो दन्ती=हस्ती विकृतः=त्रैक्रियशक्तयोत्पादितः, सः-सङ्गम देवविकृतो हस्ती खलु शुण्डया भगवन्तं-श्रीशरीरम् उत्पाप्य=उपरिनीत्वा अधः=नीचैरवनितले पातयति, ततः=अधःपातनानन्तरं स हस्ती क्षुरिकातीक्ष्णदन्ताग्रेण=क्षुरिकाग्रवन्निशितेन दन्ताग्रभागेन प्रभुं विदार्य=विदीर्णं कृत्वा पादैः=चरणैः मर्दयति तथापि प्रभुः कायोत्सर्गान्न चलति। ततः प्रभुमशुब्धं दृष्ट्वा सः-सङ्गमो देवः भयभैरवेण=अतिभयानकेन पिशाचरूपेण प्रभुं भीषयति=भयमुत्पादयति। तथापि न चलति। ततः प्रभुमशुब्धं

प्रभु को उन से कटवाया, खूब कटवाया और पूरी तरह सभी अंगों में कटवाया। इस से प्रभु के शरीर से रुधिर की तेजधार बहने लगी। फिर भी भगवान् कायोत्सर्ग से विचलित नहीं हुए। तब संगम देवने भयानक सुंडवाले और तीखे दातोंवाले हस्ती की विकुर्बणा की। संगम देव द्वारा वैक्रिय शक्ति से उत्पन्न किये गये हाथीने भगवान् को ऊपर उठाकर नीचे धरती पर पटक़ा। नीचे पटक़कर उसने छुरोंके समान तीक्ष्ण दांतोंके अग्रभाग से प्रभु के शरीर को विदारण करके पैरों से कुचला फिर भी भगवान् कायोत्सर्ग से चलित न हुए। तब भगवान् को अडग देखकर संगम देवने अत्यन्त ही भयानक पिशाच का रूप बना कर उन्हें भयभीत करना चाहा फिर भी भगवान् चलायमान न हुए।

आ दृष्टिने परिस्थितिमे दुःभोगीने देश पथु परवा कथा सिवाय, 'स्वानुभव' वधार्थे जता इता. आ स्वानुभव करवामा पूर्वं विपान्ति नरे नरे कर्मोने। उदय आवी रहो इतो ते ते कर्मोनी रज्जु सोगवाधने स्वयं भरी पडती इती. येतामां राग-द्वेष इपी विक्थाय नहि डोवाने डारखे अधावा योअ्य कर्मरज्जु पथु कर्मरूपे अंधाती न इती, जेटवे भूतकाण्डुं कर्मरूपी आवरथु पथु तेनी नेणे इण उत्पन्न इरी निर्भाजि थर्ध जर्ध भसी जतुं आने भावी आवरथु पथु-राग-द्वेषनी विक्थाशना अभावे अकारक थय रहेतुं. भन्ने भूत अने भविष्य इर थवाथी वर्तमान-स्थाने जे भगवान् लोगवी रखा इता. मृत्युदोक्षने। मानवी आत्मस्थिस्ता प्रगट करवामां आटलो भधो अथण डोय छि ते भित्थाभिमानी डोवाना भनमा वसी शकतुं नथी तेथी तेथी तेथी कसोटी करवामां जरा पथु डयाथ राभता।

दृष्टा सिद्धं विदुष्य-तेन मनुष्यरीरं स्फाल्प्यति=विदारयति । यथापि मनुः कायोस्सर्गान्ति किञ्चिदपि चञ्चति ।
 यतः तच्छ स म्गावत उपरि महाभार मधुरमारयुक्तं सौहम्य=लौहिन्यन्यन् गोचक्र=पिण्ड प्रसिपति=वेगेलापाठयति ।
 तथापि मधुरकम्पित एव विच्छति । एतत्=अनेन प्रकारेण पूर्वपत्र-सर्प-कृष्ण-युक्त-युत-भेतादिकृते =म्यामदेव-
 विकृति-सर्प-मृच्छक-वराह-युत-भेतमधुविकृते; नानाविधैः=अहुमकारै, भन्ः=उपसर्गैः उपसर्गितोऽपि=जावो
 पदराशि, मगवान=भीमीरस्वामो भविचस्मित=कायोस्सगाइस्त्वस्मित', अक्षस्मितः=अस्पन्दितः अमीत=मपरशितः
 अत्रासितः=वाससमासाः, अत एव-अप्रस्ताः=वाससमितः, यदा-='अवत्ये' इत्यस्य 'आत्मस्याः' इविच्छाया, तत्पक्षे
 'आत्मनिस्वित'-स्वस्य इत्यर्थः, अनुद्विन्न=उ वगारशितः, अद्युमित=नामरशितः, असम्प्रान्तः=सम्प्रमरशित-
 विस्मयपर्यन्तम् सत्र वो=सौक्यापसर्गमनितो लज्जन्कार=जागवल्पमाना मरवीम्-युद्धवीम् विपुलाय=अधुरा
 योरो=मयङ्करां तीव्राम्=उग्राम् चण्डो=छटारो मगाताम्=अतिदहाम् दुरूपतां=रुष्टेन सवनीयां वेदनां सम
 मापन्न=कोऽपि न ये मियो न च देव्यः' इति सर्वमाणिषु अपकार्युक्तापि समबुद्धया सम्यक् सरते-

तव मनु का सोमरशित देलकर सिद्धकी विकृषणा की और उस सिद्ध स मनुके शरीर को विदारण कराया ।
 इतने पर भी मनु कायोस्सर्ग से छेदनाम भी नहीं छिगे । तब उसन मगवान ऊपर अत्यधिक मारधाका
 लीरिका गोला तेजी क साथ कैका इस पर भी मगवान अक्रम्य वन रहे ।

इसी प्रकार नैसा कि पहले शूषयाणि यल क उपसर्ग=सर्जनमें करा गया है, उसी प्रकार इस संगम
 शिवा, मगर मगवान कायोस्सर्ग से चम्पित न हुए, कम्पित न हुए, निर्मय रहे, प्राप्त को प्राप्त न हुए,
 अत एव प्राप्त स र्जित रहे या 'अवत्ये' अर्थात् आत्मस्य ही बने रहे, उद्वेगीरि न रहे, सोमरीरि न रहे,
 विमयरीरि न रहे । इन उपसर्गों स उल्लस हुई इच्छत, मवान्, मधुरा, मयंक, उग्र, छटोर, गात्री, एवं दुस्साह वेदना

नहीं आधी इन्दोटीकोभांभी पाए उवरनाए अपने आधी इन्दोटीको यदवार उपर् तीर्थ शशोभां अजयान भकावीर जोक कर
 काल नेगना लेबा परिको गीला है। तीर्थ शशे कोअन्धा कोव तेम अन्धाए नकी आटके सुधी भिआन्ती देवे।
 आरमकांनिजिने दु अ देवाभां अथापारण यजिने। अथोअ अवां कशे ते ते। अजयान भकावीरन एअन उपरकी आधी
 मअधु आरमकांनिजि प्रअठ इरयभां आटके सुधी सोधारी केवी अेअके जेअ अ उपरकी आयायने अजयन इरी नाअ छ

भयाऽभावेन, क्षमते-कोधाऽभावेन, तितिक्षते-दैन्याऽकरणेन, अध्यास्ते-निश्चलतया, नो खलु मनसाऽपि तस्य सङ्गमदेवस्य अशुभम्=अनिष्टं चिन्तयति=त्रिचारयति, प्रत्युत तूष्णीकः=मौनशीलः धर्मध्यानीपगतः=ध्यानमग्नः सन्नेव विहरति=तिष्ठति। एवम्=इत्थम् सः-उपसर्गकारी सङ्गमो देवः जनपदविहारं विहरन्तं भगवन्तं=श्रीवीर-स्वामिनम्, पश्चात् पश्चात्=पुनः पुनः पृष्ठतः गन्त्वा वृष्टामसीं=वृषमासान् यावत् उपासर्गयत्-उपसर्गमकरोत् परन्तु भगवतो वज्रकुपभनाराचसंहननत्वेन प्राणहानिर्न जातेति ।

एव खलु विहान् भगवान्-श्रीवीरस्वामी संवत्सरं=वर्षं तदुपरि साधिकम्=किञ्चिद्दिनाधिकं मासं यावत् सवेलकः=देवदूष्यवस्त्रधारी आसीत्, ततः परन्तदनन्तरम् अवेलकः=वल्लरहितो वभूव ।

ततः=अवेलीभवानन्तरं खलु स भगवान् महावीरः पूर्वानुपूर्वीं=पूर्वजिनपरिपाटीं चरन्=आश्रयन्

को समभाव से सहन किया उन्होंने न किसी को भिय, न किसी को द्वेष्य-द्वेष का पात्र-सम्झा । अपकारी और उपकारी पर समान बुद्धि रखी । इस वेदना को भगवान् ने सम्यक् प्रकार से निर्भय भाव से सहन किया, क्रोधाभाव से क्षमा किया, दीनता न लाकर तितिक्षा की, निश्चल रह कर अध्यास किया । मन से भी संगम देव का अनिष्ट नहीं सोचा, बल्कि मौन धारण करके धर्मध्यान में मग्न ही रहे । इस प्रकार जनपद में विचरते हुए भगवान् के पीछे-पीछे ल्या कर संगम देव ने छद्म महीनों तक उपसर्ग किया । परंतु भगवान् वज्रकुपभनाराचसंघणन वाले होने से उनकी प्राणहानि नहीं हुई ।

इस प्रकार जनपद में विचरते हुए भगवान् वीर स्वामी एक मास अधिक एक वर्ष तक, अर्थात् तेरह मास तक देवदूष्य वस्त्र को धारण किये रहे-सवेलक रहे, तत्पश्चात् अवेलक अर्थात् वल्लरहित हो गये ।

अवेलक होने के पश्चात् भगवान् महावीर ने पूर्ववर्ती जिनों-तीर्थंकरों-की परम्परा का पालन करने

शान्तु अंतर परिश्रमन थता योतातुं वास्तविक स्वल्प ओणपाय छे, अने ते वास्तविक स्वल्पनी यथाथं ओणभाषु थये तेना पर दुबि वधये एव भदकधाधी अने छे. भदकधाधी अनता आसवता लावे। अध थाय छे अने सवर करणी तरक्षे तेनु लक्ष्य भाय छे. सवर करणी आहरतां आहरतां पर पदाथी उपरने। भोड अने तेनी उपरने। लाव ओछे। थवा भाडे छे. सम्यक्षान अने सम्यक्ष श्रद्धा। तेभज सम्यक्ष यारित्तुं अवलंभन देतां निर्णश पक्षु थवा भाडे छे। भाटे समन्वयपूर्वकं शान अने श्रद्धाने अथनावता उदासीन लाव प्रगटे छे. भोक्षुं सुप्य साधन ससार तरक्षे वरतते। उदासीन लावज छे. जे लावना आधारे त्पार पछीनी सर्वं क्रियाओ। थती जेवाभा आवे छे.

आवा तीन दु.जे हरम्यान शास्त्रना कडेवा सुज्ज धारणु करी राण्युं छुं अने त्पार-गाह ते वस्त्र आकस्मिकपणे अदृश्य थता, भगवान् अचेतक रहेवा लाया. देव-दूष्य छुं त्थां सुधी, भगवान् सचेतक कडेवाता ज्येठे वस्त्रसहित कडेवाता अने वस्त्र हर थता तेओ अचेतक कडेवाया. अचेत अवस्था प्राप कथां भाड

ग्रामानुग्रामम्=एकस्माद्ग्रामाद् ग्रामान्तरम् इत्यन्वितम् नगरम् नालन्दाविधाने
 पाटके मासमाससप्तमत्पसा=अथैकमासत्रयसप्तमस्यया स्थितोऽभवत् । तत्र-अस्यैकमाससप्तमपारणकेषु मध्ये
 प्रथममाससप्तपारणके भिन्नयन्त्रिणा भगवान् प्रविलम्बित १, एक=त्रिप्रयन्त्रिणत् द्वितीयपारणके=द्वितीय
 माससप्तपारणके न=इच्छिना २, तृतीयपारणके मुन्द=अच्छिना ३, चतुर्थपारणके बहुसत्राभ्यानेन भगवान्
 प्रविलम्बितः ४। सर्वत्र=सर्वेषु पारणकेषु पञ्च पञ्च दिव्यानि=स्वर्णच्छपादीनि वेदनिष्पादितानि प्रादुर्भूतानि=अश्वत्थी
 यूनानि । एस्=अनेन प्रहारेण तृतीयं चातुर्मासं चत्वार्यां नगरीं द्वि-द्विमाससप्तनेन स्थितः । चतुर्थे चातुर्मासं
 चातुर्माससप्तनेन षुचरन्त्यायां नगरीं स्थित ४। पञ्चमं चातुर्मासं मदिहायां नगरीं चतुर्माससप्तनेन स्थितः ५।

हुए और एक गौत्र से दूसरे गौत्र बिचाले हुए, दूसरे वीमासे में रामगृहनगर के नामन्दा नामक पाड़े में,
 मास-मास स्वयम् करके स्थित हुए । पहले मासत्रयण के पारणे में विजय सेठ ने भगवान् को आहार-दान
 दिया(१)। दिनपसेठ के ही समान, दूसरे मासत्रयण के पारणे में नन्द सेठ ने आहार बहराया(२)। तीसरे
 मासत्रयण के पारणे में सुन्द सेठ न (३), और चौथे मासत्रयण के पारणे के दिन क्रोड्याकसन्निवेश
 में बहुत शास्त्रज्ञ ने भगवान् को बहराया (४), इन चारों पारणों के अन्तर पर स्वर्णपर्षा आदि पाँच-
 पाँच दिव्य पदार्थ प्रकट हुए २।

इसी प्रकार तीसरा चातुर्मास चम्पा नगरी में हुआ । इस चातुर्मास में भगवान् ने दौदो मास का पारणा किया ३।
 चौथे वीमास में षट्षम्या नगरी में रहे । वहाँ वीमासी तप किया ४। पाँचवाँ वीमास मद्रिका नगरी में,
 तेजोको राक्षसी-व्यपासी बनेश मर्तुभात्र करी शैभासा इरम्भान् स्थिरता करी, शैभासायां भासप्रभयः
 ने भासप्रभय अने छेदने शैभासी तप सुधीन्य तपेनी आराधना करी

जो कि भासकी भाई ब्यार भार भास सुधीन्य भास प्रभयना तपने तपेने, तेजो पारधाने दिक्से एकाग्रुहा इत्ये
 आकार भाते उपस्थित बता आ आरुणीका दिक्को उपर कृष्णान्ध सुकृष्ण्य भकान् युपशयणीकोने त्वां भती का
 बभते देनार देनार अने इन्ध, करे त्वांनी शुद्धिना प्रभाव, आकार देनारने त्वां पाँच दिव्य वस्तुको प्रकट बती कती।
 सुकृष्णकी अथ कद्रिका विदेर नगरीको ते सभमे विष्णुभात कती आ नररिजोभां 'व्यास जिहा' नगरीने।
 पय सभमेय थाप छे आ नररिजोना यातुर्मास इरम्भान भासप्रभयौनी तपश्चो उपशयौ उपशयान विविध प्रहारा
 कलिभकी पय धारक करता कता आ कलिभको कोटरे अशुभ संयोगेभां, अशुभ वस्तुको प्राप्त थाप ता तपना
 करते परसु इत्य आना निकसो चका इकट छे अने जेना निकसो परिसुत्त बत्तां कय परिसेय तेभने सकेन
 इरना परता। कर्णोपर आरकेका भासप्रभय तपे अय अमर्षितपस्ये भपी कती। (२५०८५)

षष्ठ चतुर्मास पुनः द्वितीयवारं भद्रिकायां नगर्यां नानाविधाभिग्रहयुक्तेन चतुर्मासिकतपसा स्थितः ६ । तप्तमं चतुर्मासम् आलम्बिकाया नगर्यां चतुर्मासिकतपसा स्थितः ७ । अष्टमं चतुर्मासम् राजगृहे नगरं चतुर्मासिक तपसा स्थितः ॥सू०८९॥

मूलम्—तए गं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ णयराओ पडिणिकत्वमइ, पडिणिकत्वमिचा कडिण-
कम्मवत्तणइ अणारियदेसं समणुपत्ते । तत्थ णं नत्तमं चाउम्मासं चाउम्मासतवेण ठिए । तत्थ णं भगवं
इरियासइसमिए इत्थीजणकए भोगपत्थणारूवे अणुक्कपरीमहे, मिल्लिच्चजणकए पडिक्कपरीसहे य सहमाणे
तितिकवेमाणे अहियासेमाणे तुसिणीए चेव वेरगमग्गे विहरीअ । केणत्रि वंदिओ णमंसिओ निंदिओ त्तिरक्किओ
वा न तुहे न रुहे समसावेण भावियप्पा चेव चिद्धीअ । छक्कायपरिवाल्लो भगवं 'सन्वे पाणा सन्वे भूया सन्वे
जीवा सन्वे सत्ता सयसयकम्मपप्हावेण चाउरंतसंसारकंतारे परिभमंति'—त्ति संसारवेचित्तं विभावेमाणे विहरीअ ।
द्वयभावोवाहिपडिया अण्णाणिणो जीवा पावाइं कम्माइं वत्थति—त्ति कट्टु भगवं पावकम्म—कलावाओ परस्पुहो
आसी । बाला य भगवं दहूणं लट्ठि—सुट्ठीहिं हणिय २ कंदिसु । अणारिया य भगवं दंडेहिं ताडिसु, केसग्गे करिसिय
करिसिय दुक्खं उप्पाइसु, तद्वत्रि भगवं नो दोसीअ । अणारियेहिं संभासिओवि भगवं तेहिं सद्धि परिचयं
परिच्चज्ज मोणभात्तेण सुहज्जणनिमग्गे चेव विहरीअ । भगवं सहिउं असक्के परीसणेसग्गे न गगोअ, नयणीएसु
रागं न धरीअ, दंडुद्धसुट्ठिजुद्धाइयं सोच्चा न उकंठीअ । कामकहासंलीणाणं इत्थीजणाणं मिहो क्कहासंलावे सुणिय
भगवं रागदोसरहिए मज्झन्थभावेण असरणे एव विहरीअ । घोराइयोरेसु संकडेसु किंचित्ति मणोभावं न
विगडिय संजमेण तवसा अण्णाणं भावेमाणे विहरीअ । भगवं परवत्थमत्ति न सेवित्था, गिहत्थपाए न भुंजित्था ।
असणणाणस्स मायन्ने रसेसु अग्गिदे अपडिन्ने आसी । अच्चिपि नो पमज्जीअ, नोडवि य गायं कंइइअ । विहरमाणे
भगवं त्तिरियं पिट्ठो य नो पेहीय, सररीरप्पमाणं पंहं अग्गे विलोइय इरियासभिइए जयमाणे पंथपेही विहरीअ ।
सिसिरंमि बाहू पसारित्तु परक्कमीअ । न उण वाहू कंधेसु अक्खंवीअ । अण्णे मुण्णिणोडवि एवमेव रीयंतु त्ति कट्टु
माहणेण अपडिन्नेण भगवया एस विही बहुसो अणुक्कंतो ॥सू०९०॥

क्रिया और वहाँ भी चौमासी तप किया । फिर भगवान् ने भद्रिका नगरी में नाना प्रकार के अभिग्रहों से
युक्त चौमासी तपस्या के साथ छठा चौमासा किया । सातवाँ चतुर्मास आलम्बिका नगरी में चौमासी तप
से व्यतीत किया । आठवाँ चतुर्मास राजगृह नगर में चौमासी तपश्चरण के साथ किया ॥सू०८९॥

प्राणसुश्रामम्=एकस्माद्ग्रामाद् ग्रामान्तरम् द्रव्य=विहरन् द्वितीयं चतुर्मासं रामयुद्धस्य नगरस्य नाळन्दाभिषाने
 पाटके मासमाससप्तगणतपसा=पत्येकमासप्रत्ययपरस्पया स्थितोऽमरुत् । ठन्न-ग्रस्येकमाससप्तगणकरणकेषु मध्ये
 प्रथममाससप्तपारणक विमयभटिना मगवान् प्रतिलम्बित १, एवं=विमयभेष्टित्वं द्वितीयपारणके=द्वितीय-
 माससप्तपारणके नन्दभेष्टिना २, तृतीयपारणके सुनन्दभेष्टिना ३, चतुर्थपारणके बहुन्वामणेन मगवान्
 प्रकिल्बन्धित ४ । सप्तम=सर्वेषु पारणकेषु पञ्च पञ्च दिव्यानि=स्वर्णहृष्टयादीनि देवनिव्यादितानि प्रादुर्भूतानि=पक्ष्मी
 भूतानि । एषम्=अनेन प्रक्षरेण तृतीयं चतुर्मासं चर्चयार्थं नगर्यां द्वि-द्विमाससप्तणेन स्थित । चतुर्थं चतुर्मास
 चतुर्माससप्तणेन पृष्ठवर्णयार्थं नगर्यां स्थित ४ । पञ्चमं चतुर्मासं मद्रिचार्थं नगर्यां चतुर्माससप्तणेन स्थितः ५ ।

हुए और एक गौष से दूसरे गौष विचाले हुए, दूसरे बीमासे में रामपुरनगर के नाळन्दा नामक पाटके में,
 मास-मास समय करके स्थित हुए । पहले मासमग्न के पारणे में त्रिमय सेठ ने मगवान को आहार-दान
 दिया(१) । त्रिमयसेठ के ही समान, दूसरे मासवक्रण के पारणे में नन्द सेठ ने आहार चहराया(२) । तीसरे
 मासमग्न के पारणे में सुनन्द सेठ ने (३), और चौथे मासमग्न के पारणे के दिन कोष्ठाकसम्बिधेश्व
 में बहुत ब्राह्मण न मगवान को चहराया (४), इन चारों पारणों के अन्तर पर सर्ववर्णों प्रादि पौष-
 पौच दिव्य पदार्थ मष्ट हुए ।

इसी प्रकार तीसरा चतुर्मास चम्पा नगरी में हुआ । इस चतुर्मास में मगवान ने दो दो मास का पारणा किया ।
 नीचे बीमास में पृष्ठवर्णयार्थ नगरी में रहे । वहाँ बीमासी सप्त किया । पौषर्षा बीमासा मद्रिका नगरी में,
 तेजोन्ने शाल्वरुकी-च पापुरी बजेश्वर चतुर्मास करी, बीमासा इरन्धान. स्थित्य करी. शोभाशार्थ मासप्रभवः
 ने भासजमग्न अने छेन्ने बीमासी तप सुधीन्य तपे नी आशरधना करी

किं भासकी भाटी आर आर भास सुधीन्य भास प्रभवना तपने तपिने तेजो पारवाने त्रिसे युका युका स्थले
 आकार आटे उपस्थित कदा का पास्तानी द्वि-त्रि-चत्वारो उपर कृष्णान्ना सुकल्पना भक्षान पुष्पकालीजिने त्वां श्रुती का
 वपते देनार देनार अने इन्ध, को त्रिकुनी शुद्धिना प्रभाव, आकार देनारने त्वां पौष दिव्य वस्तुको प्रश्रुत श्रुती श्रुती
 शम्भुकी अथ मद्रिका विजये नगरीको ते समये विख्यात श्रुती का नन्दजिओभां 'ज्वात'जिहां 'नगरीने
 पञ्च उपश्लेष याम छे का नन्दजिओना अतुर्मास इरन्धान भासप्रभवनेनी तपश्चो उपश्लेष, अमवान विविध प्रकारना
 कालिमकी पञ्च पारण करवा कदा का कालिमकी केदरे मयुक्त शोभोर्षाभां, मयुक्त वस्तुको प्रथम खाव तो तपन्य
 अते पक्ष्म इत्यु आवा निक्षेपो कदा कुरेट छे अने जेना निक्षेपो परिष्कृत श्रुती कदा परिष्कृत तेभने अक्षन
 इरवा पक्ष्म पञ्चोपार आदिर्षा भासजमग्न तथा पञ्च, अमरुदितपञ्चि बपी श्रुती (स.१८६)

षष्ठ चातुर्मास पुनः द्वितीयवार भद्रिकाया नगर्यां नानाविधाभिग्रहयुक्तेन चातुर्मासिकतपसा स्थितः ६ । सप्तमं चातुर्मासम् आलम्बिकाया नगर्यां चातुर्मासिकतपसा स्थितः ७ । अष्टमं चातुर्मासम् राजगृहे नगरे चातुर्मासिक तपसा स्थितः ॥सू०८९॥

मूलम्—तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ णयरओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमिचा कडिण-कम्मवत्तणट्ठ अणारियदेसं समणुत्ते । तत्थ णं नवमं चाउम्मासं चाउम्मासतवेण ठिए । तत्थ णं भगवं इरियासमिइसमिए इत्थीजणकरए भोगपत्थणारूवे अणुक्कलपरीसहे, मिलिच्छजणकरए पडिक्कलपरीसहे य सहमाणे तित्तिकेवमाणे अहियासेमाणे तुसिणीए चेव वेरग्गमणे विहरीअ । केणवि वंदिओ णमंसिओ निदिओ तिरक्किओ वा न तुट्ठे न रुहे समभावेण भावियप्पा चेव चिटीअ । छक्कायपरिवाल्लो भगवं 'सन्वे पाणा सन्वे भूया सन्वे जीवा सन्वे सत्ता सयसयकम्मण्णहावेण चाउंतसंसारकंतारे परिभमंति'—त्ति संसारचेवित्तं विभावेमाणे विहरीअ । दव्वभावोवाहिपडिया अण्णाणिणो जीवा पात्रां कम्मां वधंति—त्ति कट्टु भगवं पात्रकम्म-कलात्ताओ परम्मूहो आसी । बाला य भगवं दहूणं लट्ठि-मुट्ठीहिं हणिय २ कंदिंस्सु । अणारिया य भगवं दंडेहिं ताडिंस्सु, केसग्गे करिसिय करिसिय दुक्खं उप्पांस्सु, तदवि भगवं नो दोसीअ । अणारत्थेहिं संभासिओवि भगवं तेहिं सद्धिं परिचयं परिचच्च मोगभावेण सुहज्झाणनिमग्गे चेव विहरीअ । भगवं सहिउं असके परीसडोअसग्गे न गणीअ, नच्चणीएस्सु रागं न धरीअ, दंडुदुस्सुदुद्धांइयं सोच्चा न उक्कंठीअ । कामकहासंलीणाणं इत्थीजगाणं मिहो क्कहासंलावे सुणिय भगवं रागदोसरहिए मज्झत्थभावेण असरणे एव विहरीअ । घोराइघोरेस्सु संकडेस्सु किंचिवि मणीभावं न विगडिय संजमेण तवसा अत्थमाणे भावेमाणे विहरीअ । भगवं परत्थमत्ति न सेवित्था, गिहत्थपाए न भुंजित्था । असणपाणस्स मायने रसेस्सु अग्गिद्धे अपडिन्ने आसी । अच्छिपि नो पमज्जीअ, नोडवि य गायं कंइइअ । विहरमाणे भगवं तिरियं पिट्ठओ य नो पेहीय, सरीरप्पमाणं पं अग्गे विलोइय इरियासमिइए जयमाणे पंथपेही विहरीअ । सिसिरंमि बाहू पसारित्तु परक्कीअ । न उण बाहू कंथेस्सु अक्खंबीअ । अण्णे सुणिणोडवि एवमेव रीयंतु त्ति कट्टु माहणेण अपडिन्नेण भगवया एस विही बहुसो अणुक्कतो ॥सू०९०॥

किया और वहाँ भी चौमासी तप किया । फिर भगवान् ने भद्रिका नगरी में नाना प्रकार के अभिग्रहों से युक्त चौमासी तपस्या के साथ छठा चौमासा किया । सातवाँ चतुर्मास आलम्बिका नगरी में चौमासी तप से व्यतीत किया । आठवाँ चतुर्मास राजगृह नगर में चौमासी तपश्चरण के साथ किया ॥सू०८९॥

छाया तब खलु स भ्रमणो भगवान् महावीरो राजगृहाद् नगरात् प्रविष्कामसि, प्रतिनिष्कम्य कृत्स्नकर्मक्षयार्थमनार्यदम समनुमास । तत्र खलु नवम चातुर्मासं चातुर्माससप्तमा स्थित । तत्र खलु भगवान् ईर्यासमिषिमितः स्त्रीजनकृतात् भोगमार्यनारूपान् अनुकूलपरीपद्यान्, म्लेच्छजनकृतां प्रतिकूलपरीपद्यां सत्मानस्त्वितिसमाणाऽऽध्यासीनः तुष्णीक एव वैराग्यमार्गो ज्यारत् । केनापि तन्त्रितो नमस्यितो निन्दित्वा स्तिरारकृतो वा न तस्या न श्रुत् समभावन भावित्वात्मा वैश्रावतिष्ठन् । पट्टकायपरिपलको भगवान् “सर्वे प्राणाः सर्वे भूताः सर्वे जीवाः सर्वे सरत्राः स्वस्वकर्मप्रमाणेन चातुरन्तससारकान्तारे परिभ्रमन्ति” इति समासैविभ्यं

सूक्त का अर्थ—‘तएवं’ इत्यादि । तत्पश्चात् भ्रमण भगवान् महावीरस्वामी राजगृह नगर से निकले और निकल कर कठिन कर्मों का तप करने के लिए अनार्यदेशमें पधारे । वहाँ बोमासी तप के साथ बोमासे में स्थित हुए । वहाँ ईर्यासमिति स युक्त भगवान् स्त्रियों द्वारा किये गये भोगमार्यनारूप अनुकूल परीपद्यों को, म्लेच्छ जनों द्वारा किये गये प्रतिकूल परीपद्यों को सहन करते हुए, वित्तिसण करते हुए, अत्यास करते हुए, मौनयुक्त ही वैराग्य के मार्ग में निचरते रहे । किसी ने पदना को, नमस्कार किया तो हुट्ट न हुट्ट, किसी ने निन्दा क्रिया की या तिरस्कार किया तो रुष्ट न हुए । समभाव से मवित्वात्मा होकर ही रहे । पट्टकाय के रसक भगवात् ‘समी माण, समी भूत्, समी जीव और समी सत्त्व, अपने-अपने कर्मों के प्रमाद से चार गति रूप ससार कान्तार (कटकी) में परिभ्रमण कर रहे हैं’ इस प्रकार संसार की

तप में भ्रमण भ्रमण भगवान् महावीर राजगृही नगरीभाषी नीलगी शक्ति कर्मोन्म सुभ अर्द्ध ज्ञानात् देवार्थं पथान् । त्वां बोमासी तपनी नाराधना कर्त्ता यथां चतुर्भासार्थं निरर थयात् अकिं प्रभु धर्मासमिति विगोरे अग्नित्ति नरे सुभ्र बधने निररथा वात्या आ स्वये तेभने आनुभूण परीपद्यो सहन कर्त्वा पक्ष्य अीळो तेभने प्रार्थन कर्त्वी कर्त्वी तो पक्ष्य प्रभु विस्त भवार्थं श्रुत्वा क्वा आ उषात भवेत्त्वत्तितया दोडो तश्शुभी तेभने केरान कर्त्वाभं पक्ष्य भावत्वा क्वा भावा आनुभूण अने प्रवित्भूण जन्ने परीपद्योने सहन कर्त्वा क्वात्वा तेभन ते परी पद्योनी वित्तिसा कर्त्वा गीन भास्य क्वात्वा क्वात्वा आनुभूण परीपद्योने आभते । कर्त्वा तीन वैशज्जने तेजो फणी रक्का क्वात्वा तेभने डोई पडन कर्त्वा तो तेनाका ते पुरी भूता नकिं इवाय डोई तेभने निरे तो तेनाथी तेभने नापुग्गी क्वात्वा क्वात्वा नकिं डोई तेभने तिरस्कार कर्त्वा तेभनी उपर तेजो देव कर्त्वा नकिं इरेक वाकत्तां सुभभाव राष्ठी सुभर्षियामे अर्द्धं वेदन कर्त्वा । इरेक भाषी, भूत, लज्ज, अत्त योतयित्ताना कर्मोन्म प्रभाव नरे स आरुष्ठी कर्त्वा कर्त्वा क्वात्वाभं भ्रमण इरी रक्का छे जे प्रधारेनी स धारनी विभिनयानो विचार कर्त्वा विवर्षी रक्का क्वात्वा इरेक अने जाने

त्रिभावयन् व्यहरत् । “द्रव्यभात्रोपाधिपतिता अज्ञानिनो जीवाः पापानि कर्माणि वञ्चन्ति” इति कृत्वा भगवान् पापकृपात् पराङ्मुख आसीत् । बालाश्च भगवन्तं दृष्ट्वा यष्टिमुष्टिभिर्हत्वा हत्वाऽक्रन्दन् । अनार्याश्च भगवन्तं दृष्ट्वा ताडयन् । केशात्रे कृष्ट्वा कृष्ट्वा दुःखमुदपादयन्, तथाऽपि भगवान् नाऽद्वेत् । अगारस्थैः सम्भाषितोऽपि भगवान् तैः सार्द्धं परिचयं परित्यज्य मौनभावेन शुभध्याननिमग्न एव व्यहरत् । भगवान् सहितुमशक्यान परीपहोपसर्गान् नाऽगणयत्, नृत्यगीतेषु रागं नाऽधरत्, दण्डयुद्धमृष्टियुद्धादिकं श्रुत्वा नोदकण्ठत । कामकथासंलीनानां स्त्रीजनानां मिथःकथासंलापान् श्रुत्वा भगवान् रागद्वैरहितो मध्यस्थभावेन अशरण एव व्यहरत् । भगवान् परब्रह्ममपि न असेवत्, किञ्चिदपि मनोभाव नो विकृत्य सयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् व्यहरत् । भगवान् पापमय कर्मों का विचित्रता का विचार करते हुए विचरे । ‘द्रव्य और भाव उपाधि में पड़े हुए अज्ञानी जीव पापमय कर्मों का वन्य करते हैं, ऐसा सोचकर भगवान् पाप के समूह से विमुक्त थे ।

अनार्य देश के वालक भगवान् महावीरप्रभु को देखकर लट्टी और मुट्टी से मार-मार कर हल्ला करते-रोते थे । अनार्य लोग भगवान् को हंडों से मारते थे । उनके वालों का अग्रभाग खींच-खींच कर कष्ट उत्पन्न करते थे । फिर भी भगवान् ने उनपर द्वेष नहीं किया ।

गृहस्थों के भाषण करने पर भी भगवान् उनके साथ परिचय का परित्याग करते हुए, मौन-भाव से शुभध्यान में मग्न ही रहते थे । जिस परीषद् को सहन करना अशक्य था, उनको भी भगवान् ने कुछ नहीं गिना, नृत्यों-गीतों में राग धारण नहीं किया, दंडयुद्ध या मुष्टि युद्ध आदि की बात सुनकर उत्कंठा प्रकट नहीं की । काम-कथा में लीन स्त्रीजनों की आपस की बातें सुन कर भगवान् राग-द्वेष से रहित, मध्यस्थ भाव से अशरण (आश्रयरहित) ही विहार करते रहे । घोर और अतिघोर संकट आने पर भी लेश भर भी

उपाधिमा पडेला अज्ञानी लये पापमय कर्मोना अंध कथा करे छे’ अेषुं विचारी भगवान् पाप समूहथी विमुक्त रक्षीने वरतता हता. छताय अनाथं दैशमा नाना आलक्षं भगवानने जेध दाही अने मुष्टिना प्रक्षारि करता ‘भारो-भारो’ना पोक्षारि करी तेमना उपर ह्दवाओ करता अने तेमनी यछनाडे छेकाराओ पाडी रेककण करी मारपीट करता ते देशना पुण्ठ उभरना माथुसे। तेमने बाकडीओ वडे भारता तेमज तेमना वाणने जेथीने कष्ट आपता ते। पथु भगवान द्वेषरहित थध विचरता.

आ अनाथं बुभिमभा भगवानने गुहस्थीओ जेलावता छतां मौन सेवता अने तेमना परिचयने। त्याग करता सडेन करवा अशक्य, जेवा प्रभुने आपी पडेला संध्याअंध परीषडेने अदिं गथुवामां पथु आंथा नथी.

युःस्पष्टे न अमुक्तः । अन्तपानस्य मात्रासो रसेषु अयुद्धः अग्रविद्म आसीत् । अद्यपि नो ग्रामार्णयत्, नो प्रिये, य गात्रम् अरुणयत् विहरत् मगवान् तिर्यक् पृष्ठवत् न प्रसूत, उरीरप्रमाम पथानम् अग्रे विमोक्ष्य र्थ्यां समित्या यतमानः पयमसी न्यहरत् । अश्विरे वाहू प्रसार्थ्य पराक्रमत । न पुनर्बाहू रस्त्रयोरवाऽम्भवत् । अन्ये पुनयोऽपि एवमेव रोचन्तु इति कृत्वा माहनेन अग्रविद्मेन मगवता एष चिभिः पशुबोऽनुक्रान्तः ॥धृ०९०॥

मन का चिन्तन करते हुए, संयम और तप से आत्मा को वासित करते हुए विचरे । मगवान् ने परवल का सेवन नहीं किया और युद्ध के पात्र में मोजन नहीं किया । वे मोजन-यानी की मात्रा के ज्ञाता थे, रमों में अनासक्त थे और अमतिष्ठ थे । उन्हीं ने कमी आन्व तक की भी सफाई नहीं की, काया को सुजलाया नहीं । बिहार करते समय वे न इधर-उधर देखते थे, न पीछे की ओर देखते थे । सामने उरीरममाम मार्गको देखते हुए, र्थ्यांमभिविपूर्वक यतना करते हुए चलते थे । अश्विर मृष्ट में दोनों जुनाएँ फैला कर समय में पराक्रम प्रकट करते थे । युग्मों को अपने कंधों पर नहीं रखते थे । अन्य मुनि भी इसी प्रकार विचरे, यह साध कर अमतिष्ठ माइन मगवान् वर्णमान न अनक पार इसी विधि का अनुसरण किया ॥धृ०९०॥

नृत्वा नीत्वा रज-भानमां तो, प्रभुके, दृष्टि पशु करी नभी. इत्युक्तं सुष्टिपुत्रं आदिपुत्रो साभगवानी उक्तं हा भगवाने देवी न इती श्री समूहो भगवानने ठोदायमान कस्या, जेहनीत यतां त्पारे भाभक्यामां ढोन मयेव श्री वक्रन्तं अइये अइस्या यतोवाये आंभणीने पशु, भगवाने तेमां सत्र-देव अनुभन्धे नदि, परत्, मभश्य लावन्तु सेवन करी आभय रक्षित यर्ध विवशतः

घोर अने अतिघोर सुठयो कावी पठतां, भनने ज्वापशु विभूत करवा नदि परतु सभम अने तपनी भावनाजोषी भावित यर्ध विवशतः

भगवाने, अ वना वसेन्तु सेवन कर्तुं नभी तेमल गुहकश्चत्वा यात्रमां योवन पशु आरोग्यु नभी तेजो योवन अने पशुनी भगवाने अनुयायाणा उतप, रसदोषपी नदि होवाची सर्व रसदायक पदार्थोभां भनासक्त रहतेवा अने अग्रविद्म पशु उतप शरीर सुशुषा आटे तेमजे क्वापि पशु, कांशिये साइ करी नभी तेमल हाथाने भगवानी पशु नभी. विहार इरम्भान, आश्रीज्वणी नन्वर नदि भरतां आमे दृष्टि करी शरीर प्रयाज रस्त्राने जेवा श्रता ध्योअश्रितां विचरे अमितिनु यतता पूरक पावन कस्या करवा विवशता उतप

अश्विरे मृष्टमां अने दोषो उवा करी सभमां योवात्तु पराक्रम हाजकता अने सुभाजोने हांथ उपर शभना नदि अन्य मुनिजन पशु अा प्रभाज्जे विवशे जेवा विवश करी अग्रविदश्वेवा भगवान, अनेकवार कावी विचिन्तु अन्तुअशु करवा उतप. (धृ०६०)

टोका—“तए णं से समणे” इत्यादि । ततः=राजगृहनगरे अष्टमचातुर्मासकरणानन्तरं खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो राजगृहानगरात् प्रतिनिष्क्रामति=प्रतिनिःसरति, प्रतिनिष्क्रम्य कठिनकर्मक्षयार्थम् अनार्य-देशं=म्लेच्छदेशं समनुप्राप्तः=विहारं कुर्वन् गतः । तत्र खलु भगवान् नवमं चातुर्मासं चातुर्मासतपसा=चातुर्मासिक तपःपूर्वकम् स्थितोऽभवत् । तत्र खलु ईर्ष्यासमितिसमितः, उपलक्षणत्वाद् भापासमित्यादिसमितः त्रिगुप्तिगुप्तश्च भगवान् स्वीजनकृतान् भोगप्रार्थनारूपान् अनुकूलपरीषद्वात्, तथा=म्लेच्छजनकृतान् तर्जनाडनादिरूपान् प्रतिकूल-परीषद्वांश्च सहमानः=क्रोधाभावेन, तितिक्षमाणः=दैन्याकरणेन, अश्यासीनः=निश्चलतया, तृष्णीक एव=मौनमय-लम्बमान एव वैराग्यमार्गं=निरतिचारचारित्रारथनमार्गं व्यहरत्=तत्परोऽभूत्, केनापि=केनचिदपि जनेन चन्द्रितो नमस्थितः=नमस्कृतः, निन्दितः=गर्हितः, तिरस्कृतः=अनादृतो वा न तुष्टः=चन्द्रितुर्नमस्कृतुथोपरि न प्रसन्नः, न

टोका का अर्थ—राजगृह नगर में आठवाँ चातुर्मास विताने के बाद श्रमण भगवान् महावीर ने राजगृह नगर से विहार किया । कठोर कर्मों का क्षय करने के लिए विचरते हुए प्रभु अनार्यदेश में पधारे । वहाँ चौमासी तप के साथ नौवाँ चौमासा किया । ईर्ष्यासमिति और उपलक्षण से भापासमिति आदि सभी समितियों से सम्पन्न तथा तीन गुप्तियों से गुप्त भगवान् स्वीजनों द्वारा की गई भोग-प्रार्थनारूप अनुकूल परीषद्वाँ को तथा अनार्य जनों द्वारा कृत तर्जना-ताड़ना आदि रूप प्रतिकूल परीषद्वाँ को क्रोध के निना सहते हुए, दीनता के बिना तितिक्षण करते हुए, निश्चल भाव से अश्यास करते हुए मौन का अवलम्बन किये हुए ही निरतिचार चरित्र के मार्ग में तत्पर रहे । किसी मनुष्य ने उन्हें वन्दन किया और नमस्कार किया तो वन्दना करने वाले और नमस्कार करने वाले पर वे यत्किञ्चित् भी तुष्ट-प्रसन्न नहीं हुए, किसीने निन्दा की-

टीकोनो अर्थ—राजगृह नगरीमा आठसु चातुर्मास पीताव्या आन, श्रमण्यु भगवान् महावीर त्याथी विहार करी थादी नीक्ष्या. भगवान्, पीताना गाढ करोनी उदीरण्या करवा भागता हुता भूमिमा विथरवाथी क्रमो यक्षयुर करी थक्षाशे. आ आशयते पूरो करवा पीते अनार्थं भूमिमां विथरवा लाग्था. अने अनार्थं भूमिमां योभासी तप साथे नवसु योभासु व्यतीत कर्युः. भगवान्नुं इय अहार्थं अने तपना प्रभाव वडे देदीभ्यमान लागतुं हुतुं. तेभनु शरीर पणु कणु दोढा ळेदुं भण्युत अने सुदढ होवाथी ते भूमिनी स्वइपवान् थिओ, भगवान् उपर मोड पाभवा लागी. अने ते तेभने हरेक रीते यलाथमान करवा प्रथत्तो करती. हरेक प्रकारना हाव भाव विलास, शरीर सोदंर्थ विगेरे भलाववा उद्वत रडेती तेभना स्थणनी आसपास, सुगधित द्रव्ये। छाटी ऋतुनी सणवट करती, जेथी भगवान् दोलाधं न्य। अम तेओ धारती हुती.

सुरस्यपत्ने न अनुकूलः। अहनपानस्य मात्राद्धो रसेषु अष्टद्वः अप्रतिष्ठ आसीत्। अथपि नो प्रामाण्यपत्, नो मयि, च गामस्र अकृष्टपत् विरत् मगवान् तिर्यक् पृष्ठमथ न मैसठ, शरीरममाणं पपानम् अग्रे विलोक्य ईर्यां समित्या यतमानः पयमेसी स्पष्टत्। चिञ्चिरे वाहू प्रसार्य पराक्रमत्। न पुनर्बाहू सन्धयोरवाऽऽम्बत्। अये मूनयोऽपि एवमेव रोयन्तु इति कृत्वा मारनेन अप्रतिज्ञेन मगवता एव विधिः बहुशोऽनुक्रान्तः ॥६०९०॥

मन को विकृत न करते हुए, संयम और तप से आत्मा को शासित करते हुए विचरे। मगवान् ने परवल का सेवन नहीं किया और सुरस्य के पात्र में भोजन नहीं किया। वे भोजन-पानी की मात्रा के ज्ञाता थे, रसों में अनासक्त थे और अप्रतिष्ठ थे। उन्हीं ने कमी आत्म तर्क की भी सफाई नहीं की, काया को सुमलाया नहीं। विहार करते समय वे न श्वर-उपर देखते थे, न पीछे की ओर देखते थे। सामने शरीरममाण मार्गको देखते हुए, ईर्यांसिगिरिपूर्वक यतना करते हुए चलते थे। चिञ्चिरे श्रद्ध में दोनों झुजाएँ फैला कर समय में पराक्रम प्रकट करते थे। युजामों को अपने कंधों पर नहीं रखते थे। अन्य मुनि भी इसी प्रकार विचरें, यह सोच कर अप्रतिष्ठ मान्न मगवान् स्वर्मान ने अनेक बार इसी विधि का अनुसरण किया ॥६०९०॥

दन्तः गीतः, रज-सज्जमां तो प्रभुज्जे, दृष्टि पक्ष करी नशो इ इतुद अष्टिभुद आष्टिभुदो साधपानानी उररर। अजवाने सेवी न इती स्वी अयुद्धो अजवानने अेवाधमन करवा, कोऽतीत वतां त्पारे अमभथाभां बीन अयेद स्वी वननं अइदो अ इत्या वतांवाये सांवाणीने पक्ष, अजवाने तेभां सज-द्वेष अजुसये। नकि, परतु, भाषररर अजानु सेवन करी आश्रय शक्ति कर्त्त विररता।

बौर अने अतिशेर सठगे आवी पदवां, अतने अवापक्षु विभुत इरता नकि परतु सजम अने तपनी आवानाञ्जोभी लावित कर्त्त विररता।

अजवाने, अ-यना वस्योनु सेवन इहुँ नशी, तेमअ गुकररना पात्रभां लोअन पक्ष आरोग्यु नशी तेजो लोअन अने अखीनी मर्षादाने अणुवावाणा कृता, रसदोऽपि नकि कोवाभी सव' रसदायक पदाशोभां अनासक्त इकेता अने अप्रतिष्ठ पक्ष कृता शरीर श्रुश्रुषा भाटे तेमखे क्वापि पक्ष, अग्निने आर करी नशी तेमअ हाथाने पअवाणी पक्ष नशी विचार इरम्यान, आष्टिअवणी नकर नकि इरवां आभि दृष्टि करी शरीर अवाते पअवाणी प्रवीधमिाव विजेरे अग्निदिनु बतना पूव क पाठन इरता इरवा विररता कृता।

शिञ्चिरे अतुभां, अने दोषी उन्वा करी सज्जमां पोपानु पपकम हाजवता अने अजज्जेने अंधि उपर सज्जता नकि अन्य अुनिअन पक्ष अा प्रमाग्ने विररते जेवे। विचार करी अप्रतिष्ठज्जेवा अजवान, अने इत्यार आवी चिञ्चिनु अतुअररर इरवा कृता। (५०६-७)

टीका—“तए णं से समणे” इत्यादि । ततः=राजगृहनगरे अष्टमचातुर्मासकरणानन्तरं खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो राजगृहाब्जगरात् प्रतिनिष्क्रामति=प्रतिनिःसरति, प्रतिनिष्क्रम्य कठिनकर्मक्षयार्थम् अनार्य-देश=म्लेच्छदेशं समनुभासः=विहारं कुर्वन् गतः । तत्र खलु भगवान् नवमं चातुर्मासं चातुर्मासतपसा=चातुर्मासिक तपःपूर्वकम् स्थितोऽभवत् । तत्र खलु ईर्यासमितिसमितः भाषासमित्यादिसमितः त्रिगुप्तिगुप्तश्च भगवान् स्त्रीजनकृत्वा भोगप्रार्थनारूपान् अनुकूलपरीषद्दान्, तथा-म्लेच्छजनकृतान् तर्जनाडानादिरूपान् प्रतिकूल-परीषद्दान् सहमानः-क्रोधाभावेन, तितिक्षमाणः-दैन्याकरणेन, अध्यासीनः-निश्चलतया, तूष्णीक एव=मौनमव-लम्बमान एव वैराग्यमार्गैः=निरतिचारचारित्राधानमार्गैः व्यहरत्=तत्परोऽभूत्, केनापि=केनचिदपि जनेन वन्दिता नमस्यितः=नमस्कृतः, निन्दितः=गर्हितः, विरस्कृतः=अनादृतो वा न तुष्टः=वन्दितामस्कृतं श्रोत्रोपरि न प्रसन्नः, न

टीका का अर्थ—राजगृह नगर में आठवाँ चातुर्मास विताने के बाद श्रमण भगवान् महावीर ने राजगृह नगर से विहार किया । कठोर कर्मों का क्षय करने के लिए विचरते हुए प्रभु अनार्यदेश में पधारे । वहाँ चौमासी तप के साथ नौवाँ चौमासा किया । ईर्यासमिति और उपलक्षण से भाषासमिति आदि सभी समितियों से सम्पन्न तथा तीन गुप्तियों से गुप्त भगवान् स्त्रीजनों द्वारा की गई भोग-प्रार्थनारूप अनुकूल परीषद्दानों को तथा अनार्य जनों द्वारा कृत तर्जना-ताड़ना आदि रूप प्रतिकूल परीषद्दानों को क्रोध के विना सहते हुए, दीनता के विना तितिक्षण करते हुए, निश्चल भाव से अध्ययन करते हुए मौन का अवलम्बन किये हुए ही निरतिचार चरित्र के मार्ग में तत्पर रहे । किसी मनुष्य ने उन्हें वन्दन किया और नमस्कार किया तो वन्दना करने वाले और नमस्कार करने वाले पर वे यत्किञ्चित् भी तुष्ट-प्रसन्न नहीं हुए, किसीने निन्दा की-

टीकानोअर्थ—राजगृह नगरीमा आठसु आतुर्मास वीताव्या आद, श्रमणु भगवान् महावीर त्वाथी विहार करी थादी नीकल्या. भगवान्, येताना जाढ कर्मोनी उदीरया करवा भागता इता भूमिमा विथरवाथी कर्मो अकत्तुर करी थकशे. आ आशयने पूरा करवा पोते अनार्थं भूमिमां विथरवा दाग्था. अने अनार्थं भूमिमां चौमासी तप साथे नवसु थोमासु व्यतीत क्युं. भगवानसुं इय अक्षयर्थं अने तपना प्रभाव वडे हेदीथ्यमान दागतुं इतुं. तेभमुं शरीर पथु कक्षु बोडा नेवुं मज्ज्युत अने सुदढ होवाथी ते भूमिनी स्वप्नपवान खिन्ने, भगवान् उपर मोक्ष पाववा लागी. अने ते तेमने हरेक रीते ब्दायमान करवा प्रयत्नो करती. हरेक प्रकारना डाव भाव विदास, शरीर सौधं विगेरे अताववा उधत रहेती. तेमना स्थणती आसपास, सुगधित द्रव्यो छाटी ऋतुनी सणवट करती; नेथी भगवान् बोलाड णय । ओम तेओ धारती इती.

स्था=निन्दितुस्तिरस्करुर्भूषोपरि न कुद्व भपि तु समभावेन सर्वेषु कनेषु समत्वबुद्ध्या-‘न मे ब्रह्मो न वा कश्चित् भियाः’ इत्येवं भावितान्मा सन् भवितुश्च=स्थितोऽभवत् । पट्टकायपरिणालकः=पट्टनीचनिकायपरसको भगवान् श्रीबीरस्वामी “सर्वे प्राणाः=द्विषिषुत्तरिन्द्रियसंश्लेषाः, सर्वे भूताः=वनस्पतिलसणाः, सर्वे जीवा =यन्त्रेन्द्रियसंश्लेषाः, सर्वे सत्ताः=द्विषिष्यतेओवायुसंश्लेषाः, स्वस्वकर्मप्रमाणेन चातुरन्तदसंसारकान्तारे=चतुर्गतिके संसाररूपविषममार्गे परिश्रमन्ति=नारकविशुद्ध-नरा-ऽमरातया पर्यटन्ति”-इति=एव संसारवैचित्र्यं=संसारवैलक्षण्यं विभावयन्=विचारयन् सपममार्गे व्यवहर्तु=विहृतवान् ।

गर्ग की, भनाहर किया, जो ऐसा करने वाले पर जरा मी रुट या अपसम नहीं हुए । उन्होंने ने सभी पर समान मात्र पाएन किया । ‘मेरे लिए न कोई द्वेष का पात्र है, न कोई राग का पात्र है’ इस प्रकार की भावना से आत्मा की भावित करते रहे । पट्टनीच-निकाय के रसक श्रीमहावीर प्रष्ट ‘समी द्वीन्द्रिय, प्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय रूप प्राण, वनस्पतिरूप रूप भूत, पंचेन्द्रियरूप जीव, पृथ्वीकाय-अणुकाय-वेगस्काय-वायुकाय रूप सत्त, आग्ने-मपने तर्प के परिणाल के अनुसार चार गति कर ससार के दुर्गम मार्ग में परिश्रमण कर रहे हैं; अर्थात् कमी नारक, कमी विर्यक, कमी नार और कमी अपर (देव) कर से जन्म-मरण कर रहे हैं’ इस प्रकार संसार की मयावह विचित्रता का विचार करते हुए संशय-मार्ग में निपटते रहे ।

अत्रवाने आन सुभी प्रत्यूव सथोवोना साभनो करी कर्म कृष कथो उतो उवे उदरते तेभने धानुद्व (भनोक. एष वरसी पडे-एवने असे तेष्) सथोवो आनल आ सथोवोभां रदी तेभने कर्मकम कस्वानो उतो हेवो आदरदी कशभत ।

आथा भनोक पदोभोभां तो सहेने वपती नवाथ । आनुद्व सथोवोभां एवने जभकु त्रकुमसु, वीचं शेकनु पडे । प्रत्यूव सथोवोभां जोक न प्रशरतु जने जोक धाडे वीच शअवपनु जोक छे त्पारे आनुद्वताभां से नवतव जने ते पनु उददी दिवानं वीथो (यन्त्रिजो) पूजपुल प्रभाजुभां शअवपनु पडे छे जोकपनु जोक यन्त्रिकाय योताना आनभाने स्थिर शण्ठने, अतरपस्विामी कस्वानो जोक छे त्पारे थीए आनु उभा सथेवा निमित्तो आसे उकर एकवतनी जोक छे प्रत्यूवताभां आनभनीचं अहर जोपनी, पदथा रहेवानु जोक छे, त्पारे आनुद्वताभां आनभवीच वरवार अकार अनु रहे छे तेने वरवार अमभनी स्थिर करी, अतत्रति करवानु जोक छे आ छे जोक अचं इतिन योत्र आनना ।

“द्रव्यभावोपाधिपतिताः=द्रव्यत उपाधिर्हिस्थादिः, भावत उपाधिरात्मनो दुष्परिणतिः, तद्भुयोपाधिपतिताः= तदुभयासक्ताः अज्ञानिनः=ज्ञानहीनाः जीवाः पापानि=प्राणातिपातादीनि कर्माणि वञ्चन्ति=आत्मनि सम्बन्धानि कुर्वन्ति” इति कृत्वा=इति ज्ञात्वा भगवान्=श्रीवीरस्वामी पापकलापात्=पापसमूहात्, पराङ्मुखः=निवृत्त आसीत् । अनार्यदेशीयवालाश्च भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनं इन्द्रा यष्टिमुष्टिभिः=दण्डमुष्टिभिः हत्वा हत्वा=पुनः पुनस्ताडयित्वा अक्रन्दन्=स्वापराधप्रच्छादनाय स्वयं रुदितवन्तः ।

अनार्याः=म्लेच्छाश्च भगवन्तं दण्डैः अताडयन्=ताडितवन्तः, केशाग्रे कृष्टा कृष्टा=पुनः पुनः कृष्टा प्रभोः दुःखम् उदपाद्यन्=उत्पादितवन्तः, तथापि भगवान् नो तात् आर्यान् अद्वेष्ट=तदुपरि द्वेषं न कृतवान् । तथा-अगारस्यैः=गृहस्थजनैः संभाषितोऽपि=उक्तोऽपि भगवान् तैः सार्द्धं=सह परिचयं=स्वजातिकुआदिपरिचयं परित्यज्य=विधाय मौनभावेन शुभस्थाननिमग्नः=धर्मस्थानतत्परः सन् व्यहरत्=विहारं कृतवान् । तथा-भगवान्=श्रीवीरप्रभुः

‘हिरण्य-सुवर्ण आदि द्रव्य-उपाधि, तथा आत्मा की दुष्परिणतिरूप भाव-उपाधि में आसक्त अज्ञानी प्राणी प्राणा-तिपात आदि पापकर्मों का वन्ध करते हे’ ऐसा जान कर शो वीर भगवान् पापों से विमुक्त अर्थात् निवृत्त थे ।

अनार्य देश के लड़के श्रीवीर प्रभु को देखकर लट्टियों और मुट्टियों से मार-मार कर वार-वार ताड़ना करते थे, वार-वार वालों के अप्रभाग के लिए उलटे रोने लगते थे । अनार्य-म्लेच्छ लोग भगवान् को डंडों से मारते थे, वार-वार वालों के अप्रभाग को खींच-खींचकर सताते थे । फिर भी भगवान् ने उन अनार्यों के प्रति जरासा भी द्वेष नहीं किया । और गृहस्थों द्वारा संभाषण करने पर भी भगवान् उनके साथ जाति कुल आदि संबंधी परिचय नहीं करते थे । मौन धारण किये हुए धर्मस्थान में लीन होकर विहार करते थे ।

आना अचक्षुण संयोगो अेक आणु इत। थीए आणु भगवान् अथेह अवस्थाभां विव्रता इता ते वथते भगवाने डेटोडा संभमनेो बार वहो इथे अने आंतर धद्वियो पर भूडी हीधो इथे ? ते इड्यनाभा पथु आवतुं नथी, अर्थात् आ अनार्य भूमिनी स्त्रीयो वगतना सर्व देशोभां सर्वश्रेष्ठ रमणीयो तरीडे पंडती. तेभनी वन्धे आ प्रभु येर पर्वतनी माइक, अडोल अने निडंय उला रध्या डेवु मडान आश्रयं ! आ योग साधनाने नैनयास्त्रोभां पांय सभिति अने वषु शुमिसा गणी देवाभां आवी छे. आ पांय सभिति अने वषु शुमि युक्त साधु ‘योगी’ गध्याथ छे. योगना सर्व साधनेो आ आठ प्रवचनमातामा समाठ नय छे. आ भाताने आधार लह भगवाने अनार्य भूमिनी स्त्रीयोनी लोगप्रार्थनायो उपर विज्य येणव्यो अने तेभनी विज्यथताका योगरहम इरकवा लागी दोडेा पथु

सहितमत्रयान्=दुःसाहान परीहोपसर्गान् परीयाहा=शीतोष्णादय , उपसर्गो =वेदमनुव्यतिर्यङ्कृता उपद्रवास्तान्-
 नामनपत्=न किञ्चिदमन्यत । इत्यगीतेषु च रागम्=आसक्तिं नाशरत्=न घृतवान् । वृष्युद्वृष्ट्युद्यद्विकं क्वचित्
 प्रवर्तमानं भुत्वा तद् श्रद्धं नोदकृष्टत=उत्कण्ठितो नामभवत् । कामकथासलीनानां=कामसम्बन्धिनानां कर्मां कर्षुं मृत्त्वानां
 स्त्रीनानां मित्रःकथासंवापान्=स्वस्वसंवातांलापान् भुत्वा मगवान् रागद्वेषपरिवो मर्यस्यभावन अञ्जणाः=आभय
 रश्चि एव म्यइत् । घोरारिघोरेषु=अतिमयानकेषु संभ्रटेयु=कट्टेयु किञ्चिदपि ययास्यात्पया मनोमाकं=विषहृष्टि
 नो रिकृत्य=किञ्चिदपि विचारयुक्त न कृत्वा संयमेन=सप्तश्रविषेन तपसा=द्वारद्वविषेन च आत्मान माषयन्=
 नाशयन् ज्यइत् । मगवान् मयङ्कुरेऽपि शीतं परतलम्=मन्यदीयं वल्लमपि न भसेवत्=शीतनिवारणार्थं नो घृतवान् ।
 तथा सुरस्थापने न असङ्कन्=न सुकृतवान् । तथा=अमनपानस्य=माहागपानीयस्य मात्राद्भिः=परिमाणवेषा मगवान्

घोर मगवान् ने इसस परीपहो (मूल-प्यास आदि की बाधाओं) तथा उपसर्गों (वेदों, मनुष्यों
 तथा विर्यवों द्वारा कृष्ट उपद्रवों) को कुछ न समझा, अर्थात्-समभाव से सहन किया । इत्य-गीता में
 राग धारण नहीं किया । कहीं वृष्युद हो रहा हो या सुष्टियुद (धूसैयानी) हो रहा हो तो उसका
 वृत्तान्त घुन कर कमी उत्कठा नहीं उत्पन्न की । कामसंघर्षी वातचीव करने में मृत्त स्त्रीजनों के पारस्परिक
 शार्गलाप को सुन कर मगवान् राग-द्वेष से रश्चि ही बने रहे और मर्यस्य माष से, आभय रश्चि होकर विचरे ।

मयानक और अत्यन्त मयानक सफट माने पर मी मगवान् विषहृष्टि को तनिक भी विकारयुक्त
 न करके सत्पार प्रकार के सयम और बारह प्रकार के तप की आरापना से आत्मा को मावित करते हुए
 विचरते थे । मगवान् ने मत्यधिक शीत पड़ने पर मी, शीतनिवारण के लिए पराये वल्ल को कमी धारण
 नहीं किया, तथा सुरस्य के पात्र में मोजन नहीं किया । अमिमाय यह है कि न मगवान् के पास वल्ल-
 पात्र थे, न हस्तों से लेकर ही उनका सेवन करते थे । उन्होंने ने किसी भी स्थिति में वल्ल-पात्र का

आ आभयों विर्युद क्य अथा अपने छेपे आवा प्रहारुत् मानस जलाववापु तेओके ऐओ शीथु अमृदुण परिपहो
 कृशरात्, भार-वाहन-वर्णन-पिशन-वेहन कृपरा इराववा वल्लदीना प्रकेशो,-युष्टि,-वातो, पशुषी इडवा पूषी नाथवा
 विभेरेना इओ तेओ मेराना यथ परभां कर्ता जेटे वधा इओने सभभावको सहन करता कता कअवान् आ
 अनाथ प्रवेशभां निदिविअर पखे रशी वहन नभरार-भान-अपमान-युवा-अदा-निरा प्रसतवा-अप्रसतवा विभेरेभां
 अथ परिवापे रशी विवरावा कता भोजनपथु को तेभने शुभ्य भोज कते आ कृपरात्, धाम-द्वेषना भावोभी तिरश्च
 रशी छके भावना लोचोनी रक्षा करता

एव अतुअतिभां ने भयसु इपी एको छ एव-अथ कथं प्रकृणुना इओ अमृकवि रको छ ते अर्त्त भूज

रसेपु=मथुरादिपु अशुद्धः=गृद्धिभाववर्जितः अमतिब्रः=इहलोकपरलोकप्रतिभारहितश्च आसीत् । तथा-भगवान् अक्षयपि=
 नेत्रमपि न प्रामाण्ययत्=जलेन नो कदाचिदपि प्रक्षालितवान् । तथा-कण्डूतौ समुद्रतायामपि भगवान् गात्रं=
 शरीरमपि नो अकण्डूयत्=नो कण्डूप्रितवान् । तथा विहरन्=जनपदविहारं कुर्वन् भगवान् तिर्यक्=पार्श्वतः, प्रुष्टः=
 पश्चाद्गामे च न प्रैक्षत=नापश्यत् । शरीरप्रमाणं=देहप्रमाणं पन्थानम्-अग्ने=पुरतो विलोक्य=दृष्ट्वा इर्य्यासमित्या
 यतमानः=यतनां कुर्वन् पर्यपेक्षी=मार्गं विलोकमानो व्यहरत् । शिशिरकृतौ, वाहू=शुजौ प्रसार्य=विरतार्य पराक्रमत-
 संयमे आत्मबलमुपयोजितवान्, न पुनः स्कन्धयोः=वाहू अवालम्बत=स्थापितवान् । भगवान् यदेवविद्यमाचारं

सेवन ही नहीं किया । आहार और पानी के परिमाण को जानने वाले भगवान् मधुर आदि रसों में गृद्धि
 से सर्वथा रहित थे । इहलोक और परलोक संबंधी प्रतिज्ञा से रहित थे, अर्थात् उन्हें न इस लोक संबंधी
 कोई कामना थी, न परलोकसंबंधी ही । वे सर्वथा कर्मनिर्णय की भावना से उग्र तप संयम की आराधना करने में
 तत्पर थे । उन्होंने नेत्रको भी कभी जल से साफ नहीं किया । खुजली आने पर भी कभी शरीर को नहीं
 खुजलाया । जनपद-विहार करते हुए भगवान् ने कभी तिरछा-इधर-उधर, या पीछे की तरफ नहीं देखा ।
 सामने की तरफ शरीरपरिमित-साढ़े तीन हाथ भूमि-मार्ग को देखते हुए विहार करते थे । शिशिर काल
 में अपनी दोनों भुजाएँ फैलाकर संयम में आत्मबल का प्रयोग करते थे, कंधों पर भुजाएँ नहीं स्थापित करते थे ।

तेनी यापभ्य प्रवृत्ति छे, तेमञ्ज ञ्ज पहाथो तरक्षनी अन्गोक्ष इधि छे आने दीधे नरक्ष. निगेह, ओडेन्द्रियथी भांडी
 पथेन्द्रिय सुधीनी ज्जोत्तामा परिभ्रमथु डरी स्थो छे आ विविध परिभ्रमथु द्वारा संसारनी विचित्रता पथु लोगावी
 रथो छे. आ ससारनी विचित्रतातेना नाश करवा आतरिंछे अने आह्य सयमनी प्रणय आवश्यकता छे, ज्येभ लगवानने
 लागवथी तेमथे पृथुं सयमते भागं अपनान्थे इते.

सोनु-इयु-डीरा-माथेक-रत्न-परवाणा-मथिु विगेरे आह्य द्रन्थे उपाधि इप छे, अने अंतरमा तेनी इधि
 करनी ते आत्मानी इध्रप्रिधान वाणी इष्ट परिब्रिति छे आ अने प्रक्षरनी अतर अने आह्य उपाधिमां आसक्त
 थयेद आत्मानानी एव प्राणुतिपात आदि निमित्त-गाढ पाच्छमेनि अंध करे छे. तेवा पापेथी लगवान
 विसुप्त इता. अनार्थं ज्जतिना मदेच्छ लोकोऽ लगवानने शारीरिंछे पीडा आपवाभां डेअर् इत्यास राभता नडि; ते। पथु
 लगवान तेमनी तरक्ष द्वेष हापववाने अहवे इक्षुण्ण वरसावता ते ज्जत्ता इता डे आ जित्यारा आदअज्ञानी
 एथे छे. ते नक्षामा कर्म्म पाथे छे. आ कर्मेनि। उदय तेमने आवथे, त्त्यारे डेटली वेदना तेज्जे अतुलवथे ?

पान्तिवान्, तत्र हेतुसा 'अणो मुम्बिओऽपि' इत्यादि । अन्य मुनयोऽपि एवम्-इत्यस् रीपन्तु=विरन्तु इति कृत्वा= इति हेतोः साधनेन=प्रसिद्धेन अपविशेन=रसोऽपरलोकरूपविभारहितेन भगवता एव=मूल्युणोपरयुणसमारोपन स्वरूपो विधिः=आचारः बहुधा=अनेकतः अनुकान्तः=अनुसृतः=उत्कृष्टेण पान्तिः ॥सू०९०॥

भगवान् ने इस प्रकार का गो-उत्कृष्ट और अनुपम आचार पालन किया, उसका हेतु वतलते हैं—अन्य मुनिन मी इस प्रकार विहार करें, इस हेतु से यहिसक और अमविद्ध (इसलोक-परलोकसंकीर्ण) प्रविज्ञा से रहित) भगवान् ने मूल्याओं एव उत्तराणुओं की आराधनास्व आचार का बार-बार उत्कृष्ट के साथ पालन किया ॥सू०९०॥

अनेक अने अभनेस वातावरणुभं भजवान् अविहारी रही सत्तर प्रभारना स बभ अने आर प्रभारना तप वरे आत्मने व्यक्तित करी, मुझे उभापे विवस्वा सर्व स भयोभं "भौन" स बभने सुभूष पव्ने तेजो आशुग कस्वा. भजवान् बभू-पत्त अरिषी रहित हवा हवां अहसरचना वरुपातेनु सेवन कस्वातु भनकी पव्ने उचिता नकि. अने परस्वोऽपी वांछापी तेजो रहित हवा. शरीर ने आत्मबोध शैल्यवधाम साधन रूप भानता होवाधी तेनी शूक्ष्ण तरशेनो शैल तेभने भयी जशो हवा.

छिपरना भावोनु विचारव कस्वने। आशुब जेटलं पूरतो छि ठे, भजवान् नेवा भद्रायुशेवा पव्ने बीतराज वाव देववधामं, हेतवा सभबधी विवरे छि ? ने साधु वीतधामतां प्रकट करवा आगत्य होक, तेजे, वितराज भाव ने पुष्टि आपनशा सर्व, काक अने अतर्कत भूमिभोजने अपनवावधी पश्ये अने हेतव मान किया तरशेनोऽप सुभव वावधो पश्ये, भजवाने भूदधुशे। अने छित्तशुशेनी आशुधवातुप आशुशना उल्लेखं वानी साधे वार बार पालन कसु विवराधनु ते जेक साधुजने अने भूदशेवा भाटे, नयुनेवार आशुशं छि आ आशुशंने नरर साभि सभवाधी साधु-अशुतो रोतानु जेक साधी शक्ये तमा तो कत्याव सट्टे नथी ! परतु शोकभं भूमिग भसवतो सावक गव्ने जेटके शोकाशी पव्ने आ तेभना साधु छवतभंधी अनेक प्रशुवा शैलनी, पीते रोतानु छवन बयी शोकेने वाधक जनी शक्ये। साधुजने नेटके अने नेटका प्रभाकभं शैक सज तन्तो. अने भजवाने ज्वातु छि तेदके ने तेना प्रभावनां क...

भगवओ विहारद्वारणानि—

मूलम्—कयाइ भगवं आवेसणेसु वा सहासु वा पवासु वा, एगया कयाइ सुणणासु पणियसालासु पलियद्वारणेषु पलालपुजेसु वा, एगया आंगुठ्यागारे आरामागारे णगरे वा वसीअ। सुसाने सुणणागारे रुक्खमूले वा एगया वसीअ। एएसु ठाणेसु तहप्यगारेसु अण्णेसु ठाणेसु वा वसमाणे समणे भगवं महावीरे राइदियं जयमाणे अप्पसत्ते समाहिए झाईअ। तत्थ तस्सुवसग्गा नीया अणेगरूवा य हविंसु, तं जहा—संसपपगा य जे पाणा ते, अटुवा पक्खिणो भगवं उवसग्गिसु। पट्टरुवमोहियाओ इत्थियाओ य भगवं उवसग्गिसु। सच्चिहत्थगा गामरक्खगा य किपि अत्रयमाणं भगवं चोरसंकाए सत्थाभियाएण उवसग्गिसु। भगवंते सव्वे उवसग्गे अहियासीअ। अह य इहलोइयाइ पारलोइयाइ अणेगरूवाइं पियाइं अप्पियाइं सदाइं, अणेगरूवाइं भीमाइरूवाइं, अणेगरूवाइं सुब्बिभदुब्बिभंगंधाइं, विरूवरूवाइं फासाइं सयासमिए रं अरइं अभिभूय अवाइं समाणे सम्मं अहियासोअ।

सुणणागारे राओ काउसग्गे ठियं भगवं कामभोगे सेविउकामा परत्थीसहिया एगवरा समागया पुच्छंति—“कोउसित्तुमं”—ति, तथा कयावि भगवं न किपि वयइ तुसिणीए संचिद्धइ, तथा अवायए भगवम्मि कुद्धा रुद्धा समाणा नाणाविहं उवसग्गं करेति, तपि भगवं सम्मं सहीअ। कयावि ‘को एत्थ’ ति पुच्छिए भगवं वदीअ—‘अहंसि भिक्खु’ ति सोच्चा सकसाएहिं तेहिं आहच्च—‘अप्पसरेहि एत्तो’—त्तिकहिय भगवं अयसुत्तमे धम्मं” ति कट्टु तत्तो तुसिणीए चेत्र निस्सरीअ। जंसि हिसवाए सिंसिरे पवेयए मारुए पवायंते अप्पेगे अणगारा निवायं ठाण-मेसंति, अण्णे ‘संघाडीओ’ पविसिस्सामोत्ति वयंति, एगे य इधणाणि समादहमाणा चिहंति, केई पिहिया अइ-दुक्खं हिमगसंफासं सहिउं सकखामो ति सोयंति, तंसि तारिसंगंसि सिंसिरंसि दविए भगवं अप्पडिन्ने समाणे वियडे ठाणे तं सीय सम्मं अहियासीअ। एस विही “अण्णे मुणिणो वि एवं रियंतु” ति कट्टु अप्पडिन्नेण मइमया भगवया बहुसो अणुक्कंतो ॥२०९१॥

प्रसुविहारस्थानानि—

छाया—कदाचिद् भगवान् आवेशनेषु वा सभासु वा प्रपासु वा, एकदा कदाचित् शून्यासु पण्यशालासु पलितस्थानेषु पलालपुजेषु वा एकदा आगान्तुकागारे आरामागारे नगरे वा अवसत। इमशाने शून्यागारे दृशमूले

प्रसु के विहारस्थान

मूल का अर्थ—‘कयाइ भगवं’ इत्यादि। कभी भगवान् शिल्पकारों की शालाओं में उतरे, कभी

प्रसुं विहारस्थान

भूणने। अर्थ—‘कयाइ भगवं’ इत्यादि। भगवान् नानां विहार स्थाने। शिल्पकारानि शालाओभां, सत्थामां,

वा एखाडवसत् । एतेषु स्थानेषु तथापकारेषु अन्येषु स्थानेषु वा वसन् अथवा मगवान् महावीरो रात्रि
 निवृत्तं यतमानोऽपमणः समाहितोऽप्ययत् । तत्र तस्यापसर्गा नीताः अनेकरूपासाऽऽसन्, तथाया-संसर्पकाम ये
 प्राणास्ते, अथवा-पशिनो मगवन्तम् औपसर्गयन् । प्रसूयमोहिताः स्त्रियम् मगवन्तमीपसर्गयन् । अकिरस्वका
 प्रामरसकाश्च किमप्यवदन्त मगवन्तं चोरदृष्ट्वा दस्ताभिघातेन उपासर्गयन् । मगवान् तान् सर्वानुपसर्गयन् तस्य
 गण्यसत् । अथ च ऐहलौकिकाश्च पारलौकिकान् अनेकरूपान् मियान् अभियान् शब्दान् अनेकरूपाणि मीमादि
 स्थापि अनकरूपान् सुरमिदुरमिगन्धान्, विरूपस्वान् सर्वान् तदासमितः रतिषु अरतिमिमिषूय अत्नादि सन्
 सम्यया अख्यासीत् ।

समाधौ में, कमी प्रयाधौ में, कमी युनी दुकानों में, कमी कारखानों में, कमी पलाळ के पुनों में, कमी
 धर्मशालाओं में, कमी आरामगाहों में, कमी धगीचों के घरों में, कमी नगर में, कमी दमशान में, कमी घन घरों में,
 और कमी हस्तों के नीचे उतरे । इन स्थानों में अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में रहने हुए अथवा
 मगवान् महावीर रात-दिन यतना करते हुए, अपमण और समाधिपुक्त रहे । इन स्थानों पर मगवान् को
 अनेक प्रकार के उपसर्ग हुए । वे इस प्रकार-संसर्पण करने वाले सर्प आदि जो प्राणी थे, उधों ने तथा
 पशियों ने मगवान् को उपसर्ग किया । अकिनामक इल्ल हाथ में लिये हुए ग्रामसक कुछ मी न पीलते हुए
 मगवान् को चोर समझ कर इल्ल का आयात करके उपसर्ग देने प । मगवान् ने उन सभी उपसर्गों का अच्छी तरह
 समझाच से सहन किया । और इल्लोक और परलोक संसर्गी अनेक प्रकार क मिय एवं अमिय दुष्टों को,
 विविध प्रकार के सर्पकर आदि रूपों को, आवि-भावि की सुर्ग-दुर्गण को तथा तरह-तरह के स्वर्गों को,
 प्रपञ्चोत्थं, रसी दुर्गेत्थं, शरभानोत्थं, वासनी य लोकोत्थं, धर्मशाणाकोत्थं, आशमगुहोत्थं नजरभं, रमशान
 भूमिभं, सेना वशोत्थं, अने दुर्गेत्थं नीचे उतर्ता का स्थानो अने जेवाळ प्रशरना अन्य स्थानोत्थं, अमल्ल अजवान
 महावीर, वतना पूर्वक, अपमण इथा अने समर्थिभा रहेवा उवा । अथवा स्थानोत्थं, अजवानने अनेक प्रशरना
 उपसर्गो कवा उवा का उपसर्गो देवा प्रशरना उवा ते कल्याणत्थं शास्त्रप्र श्रेष्ठे छे हे उदानवहन शरवशाणा प्राण्योत्थं
 अने पथ्योत्थि पित्यानी शीते तेभने हन् अथवा ।

अथ अने अथ निर्वन स्थानोनी युवागत वेती उवादी शोनीनी श्रीजि, अजवानना देवा उपर गीळ पानी
 तेभने हन्ते उपमणवती स्वरभुने पाटे वाक्यभं उवादी कर्तुं शरपर अमण्ये प्रीन आशु अशवाणा अजवान महावीर
 और अमण्ये तेभने अशरीना अर आशु अजवान का वाक्योत्थं...

शून्यागारे रात्रौ कायोसर्गे स्थित भगवन्त कामभोगाच्च सेवितुकामाः परस्त्रीसहिताः एकराः समागताः पृच्छन्ति—“कोऽसित्वम्” इति, तदा कदाऽपि भगवान् न क्रिमपि वदति, तूष्णीकः संतिष्ठते, तदा अचाकं भगवति कुद्राः सन्तः नानाविधप्रपसर्गं कुर्वन्ति, तमपि भगवान् सम्यक् असहति । कदाचित् “कोऽत्र” इति पृष्ठो भगवान् अवदत् “अहमस्मि भिक्षुः” इति श्रुत्वा सरूपयैस्तराहस्य “अपसर इतः” इति कथितो भगवान् “अयमुत्तमो धर्मः” इति कृत्वा ततस्तूष्णीक एव निरसत् । यस्मिन् हिमवाते विशिरे प्रवेपके मारुते प्रचाति अल्पेकं

सदा समितियुक्त, तथा रति-अरति का अभिभव करके, मौन रह कर, सम्यक् प्रकार से सहन करते रहे । कभी-कभी सूने घर में, रात्रि के समय, कामभोग सेवन करने ही कामना वाले परस्त्री के साथ आये हुए जा र पुरुष, कायोत्सर्ग में स्थित भगवान् से पूछते थे—‘तू कौन है?’ तो भगवान् कभी भी कुछ भी उत्तर नहीं देते थे—बुपचाप रहते थे । उस समय मौन रहने वाले भगवान् पर वे क्रुद्ध हो कर नाना प्रकार के कष्ट उन्हें देते थे । उस कष्ट को भी भगवान् ने सम्यक् प्रकार से सहन किया ।

‘यहाँ कौन है?’ इस प्रकार पूछने पर कदाचित् भगवान् उत्तर देते—‘मैं भिक्षु हूँ ।’ यह सुन कर वे कणायुक्त हो जाते और मार पीट करते—‘हठ यहाँ से’ । इस प्रकार कहे गए भगवान् ‘यही उत्तम धर्म है’ ऐसा सोच कर विना बोले ही यहाँ से निकल जाते थे ।

जिस शीतल बासु वाली विशिर करु में, कॅपी कॅपी उत्पन्न करने वाली हवा चलने पर, कोई-कोई सधधी प्रिय अने अप्रिय शब्दोभा (विविध प्रकारना भडा लयकर श्योभां लात लातनी सुगध अने दुर्गन्धोभा, अने तरेदुतररेडना स्थेशोभा रति अने अरती लाव्या सिवाय मौन रहनी लेगवान सडन कर्ये) जता डता. डोर्ड डोर्ड सूना धरभा रात्रिना वथते छथी रीते डामबोगानु सेवन डरवावाणा नर श्री पुरुषे पथु आवता. तेजो, लेगवानने ध्यानभजन लेर्ड ‘तुं’ केषु छे? शा माटे आव्ये छे? अेवा प्रश्नो पूछता लेगवान निइत्तर रही, मौनपथुाने सेवता आ मौनपथु लेर्ड तेजो डोधातुर थता अने लुहालुगी नतना ड जो तेमने आपता आ सर्व दुःखोने लेगवान सुपरिणामे सडन डरता अने डेहाय लेगवान जवाय आपता डे ‘हु बिक्षुड’ छुं ता तो तेगसुं आवीज्ज थनतु । ‘बिक्षुड’ शब्द सालणी, तेजो डधाय युक्त थता ने भारपीट डरवा मंडी पडता. धषी वथत “याड्ये न् !” “डटा न् !” विगिरे वाड्येथी पथु लेगवानने नवाजता. आवा वथनेो सालणी लेगवान अंतर्गत विथारता डे ‘याड्या जनु अेज श्रेष्ठ छे’ । आसु विथारी गोड्या याड्या विना थांथी नीकणी जता डता. शीतण परनवाणी डडी करुमा न्यारे डंडा पवनेो सूसवाटा डरता डुंकाता डोय त्यारे डोर्ड साधु डंडीमांथी थथवा माटे थोय्य

अनगारा निर्वाणं स्वानमेपपन्ति, अन्ये 'संपाटीः प्रवेक्ष्यामः' इति वदन्ति, एके च इषानानि समाश्रयन्त्वस्विष्टान्ति,
 क्षेपित् 'पिपिता अतिदुःखं हिमकर्मस्यैर्षं सोषुं क्षत्यामः' इति क्षोषन्ति, तस्मिन् तादृशो क्षिप्रिरे द्रविको मगवान्
 क्षप्रविष्टः सन् विकटं स्थाने गत् शीतं सम्यक् कल्प्यात्। एष विधिः 'अन्ये सुवयोऽपि एवमीरताम' इति कृत्वा
 क्षप्रविष्टेन मयिषया समापरा बहुभोजनान्तः ॥ सू० ९१ ॥

टीका--"क्याह मगर्ष" इति। कदाचित् प्रपाशु-शानीपशामासु, क्षप्रसदिति पर्यायान्त्य, एवमग्रेऽपि बोध्यम्। एकदा कदाचित्
 बनगार वायुहीनं स्थानं की गयेयथा करते थे और कोई-कोई करते थे कि 'इमं संपाटी-चादर बाँधेने'
 तथा कोई-कोई योगी आदि शीत निवारण के लिए इंधन जलाते थे, कोई-कोई सोचते थे कि वस्त्र धाड़ने
 पर ही इस शीत के सट को सहन कर सकते हैं, ऐसे क्षिप्रिरे के समय में मी मगवान् द्रुक्ति के अमिलानी
 और क्षप्रविष्ट रह कर सम्यक् प्रकार से उस शीत को सहन करते थे। 'अथ द्युति मी इसी प्रकार का आचरण
 करें' ऐसा सोच कर क्षप्रविष्ट एवं मयिमान् मगवान् ने अनेक बार इस प्रकार का आचार पालन किया ॥ सू० ९१ ॥

टीका का अर्थ--कमी-कमी मगवान् क्षित्तिया की शालाओं में, कमी समा-स्यसों में और कमी-
 कमी प्यत्यों में उतरते थे। कमी-कमी जनशून्य दुकानों में, कमी कारखानों में, कमी पत्तल के पुडों में,
 स्थानोन्नी येष कस्या, गैर्षं शैली-आदर (संघाटी) जोड़बाद पक्ष कर्त्ता ते गैर्षं शैली-आदर

आदर कर्त्ता अन्धकारी तापस्य कर्त्ता कस्या अथवा अथवा पशु जानवान ने मुक्तिमा क्षमिषार्थ कर्त्ता जने अप्रतिश
 कर्त्ता तेजो अथ प्रतिष्ठाये शीतल्य प्रतिष्ठाये देवता कर्त्ता अन्य द्युतिजो पशु क्षप्रिषार्थ भाषा केतुं कर्त्ता कस्या कर्त्ता
 जेभ धारी जानवान बारवार आवाज प्रसारना आवाजसु पालन कर्त्ता (सू० ९१)

टीका का अर्थ--द्युतिने भवेबाद जने असाध अशुभा कर्त्ता थे तेभने अत जने आटीनी कर्त्ता जन्मपद
 के एक संघट जोषा सिद्ध मुझे लगे थे' जे धून अनुसार देक क्षानशिवत यशार्थ कर्त्ता। क्षानक क्षानुलने थे
 'जे शय्य थे ते धृष्टिने जे जाँड़े थे इत्ये,
 क्षप्रिषं क्षानुलने जे रहे ते थे इत्ये इत्ये।

इतना धारण नेने क्षान गरीं स्युं थे जेव क्षप्रानने कस्य क्षप्रिनी आटीनी भवेबाते जेभ पक्ष ५२१
 ते तेभ गैर्षं पशु क्षप्रिषं कर्त्ता जेभ गैर्षं पशु क्षप्रिषं कर्त्ता जेभ गैर्षं पशु क्षप्रिषं कर्त्ता जेभ गैर्षं पशु क्षप्रिषं कर्त्ता

शून्यासु=जनरहितासु ण्यशालासु=आणयुष्टहेषु पलितस्थानेषु=लोहकारशालासु पलायुजेषु=पलालराशिषु वा अवसत्
 एकदा=एकस्मिन् समये आगन्तुककारे आगन्तुकयुष्टहे=धर्मशालायाम् आरामागारे=उपवनयुष्टहे नगरे=पुरे वा अवसत् ।
 एकदा एकस्मिन् समये इमशाने शून्यागारे=जनरहितयुष्टहे, हसमूले वा अत्रवसत् । एतेषु=आवेशनादिरूपेषु स्थानेषु
 तथाप्रकारेषु अन्येषु स्थानेषु वा वसन् श्रमणो भगवान् महावीरो रात्रिन्दिवम्=अहोरात्रम् यतमानः=यतनां
 कुर्वन् अप्रमत्तः=प्रमादरहितः, अत एव समाहितः=समाधिमुक्तः सन् अध्यायत्=धर्मध्यानमकरोत् । तत्र तस्य=श्रीवीर-
 स्वामिनः, उपसर्गा, नीताः=देवादिभिरुपस्थापिताः, ते उपसर्गाश्च अनेकरूपाः=बहुविधा अभवन् । तद्यथा=ये
 संसर्पकाः चलनशीला प्राणाः=द्वीन्द्रियादयस्ते, अथवा=गृत्रादयः पक्षिणः स्थाणुवदचलं भगवन्तं=श्रीवीरम् औप-
 सर्गयन्ः=उपसर्गं कृतवन्त । प्रभुरूपमोहिताः=भगवद्रूपमोहिताः स्त्रियश्च भगवन्तम् औपसर्गयन् । तथा=शक्तिहस्तकाः=

कभी धर्मशालाओं में, कभी उपवन में बने घरों में, कभी इमशानों में, कभी घने घरों में, कभी वृक्षों के नीचे
 उतरते थे। इन सब स्थानों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में रहते हुए भगवान् महावीर दिन-रात
 यतना करते हुए, प्रमादहीन होकर और समाधि में लीन रह कर धर्मध्यान ही करते रहते थे। इन स्थलों में
 ठहरते समय भगवान् को देवों आदि द्वारा भौति-भौति के उपसर्ग हुए। जैसे-सर्पादि तथा द्वीन्द्रिय आदि
 चलने-फिरने वाले प्राणी अथवा गीध आदि पक्षी स्थाणु की तरह अचल भगवान् को उपसर्ग करते थे।
 कभी-कभी प्रभु के रूप पर मोहित होकर स्त्रियाँ प्रभु को उपसर्ग करती थीं। तथा-शक्ति नामक अस्त्र

कार्यं भा विद्वन्-इष के अतरायनुं कारश्चु थाय नडि ! छता आवा अक्रातिक आत्मिक कामभां पशु तेने धष्ठी विटं भनायो
 उष्ठी थती अने ते विटं भनायोना पशु डोछ आरे इतो नडि. भगवान् छुडारानी डोडभां, पिथावा जेवी जग्थाञ्जे,
 अरेर स्मथान डे पडतर धर डे डुकानभां न्यां न्यां जता त्यां त्या, वसवाट करी रहेल पशुपंभीञ्जे। पशु
 उपद्रवो उभा करता, तेम ज आवा स्थेणोञ्जे डुरायारी अक्रिञ्जे आवती ज डोय छे तेथी तेमनी द्वारा पशु भग-
 वानने कण्टेना तीव अनुभवो थता इता. आ थटा-भीठा ससारभां विविध भानस धरावती अक्रिञ्जे। पोताने
 डीछ लागे ते रीते संसारने व्हावेो भेणववा धरुछे छे, छतां तेञ्जेनी आकक्षा पूरी थती ज नथी अने कुतराना
 कानमा डीडा पडता जेम कुतराने कथाय येन पडतुं नथी तेम संसार डोडुपीने कथाय पशु सुथ अने शांति नडि
 भणता आवा नजर्न स्थानमा इवानेआच्यकां बरे छे. परतु भगवान् तो पोताना कार्यंभां भस्त रहेता छोवाथी
 आवा कण्टेने तदन निर्भोदय जेवा गणुता, अने पोताना स्मभावभां तद्वीन रहेता. आवी जग्थाञ्जे आभायीडीआं, -धुवड,
 डस, -वींछी, -गीध, आदि युंक्ल प्रभाधुभां रहेतां छोवाने कारणे तेञ्जे, भगवानने जुही जुही रीते डुःख आपता इतां.
 प्रभुना शरीर साथे भोइनी आधिथी याणा करतार इपसुंइरीञ्जेना उपसर्ग तेमने क्येो थतो इथे ! ते वपते प्रभुञ्जे

अतिक्रामकाहापिचपाराका, ग्रामरसका=ग्रामपालकाव भिम्पि=किञ्चिदपि वचनम्-अवदन्तम् भगवन्तं=प्रीनीरव्या
 मिन, बीरइङ्क्या=बीरसंयुतपन शक्त्वाभिधातेन=अस्रप्रधारण औपसर्गयन्=उपसर्गं कृतवचन्त । मगत्रांस्तु शान्=उपसर्गकां
 सर्वानपि उपसर्गान् सम्यक् अथ्यसाहत्=साहवान् । अथ च भगवान् ऐश्वरीकिकान्=मनुष्य सम्यचिन, तथा-
 पारुकीकिकान्=देशादिसम्बन्धिनश्च अनेकरूपान्=शुभकारान् मियान्=अनुकूलान् अभियान्=अतिकूलान् नृप्यान,
 तथा-अनेकरूपानि=नानाविधानि मीमानि=अथशूरानि रूपानि=पिशाचादीनामाकारा, आदिपदान्-
 देशान्नादीनां मनोहरानि रूपानि च, तथा-अनेकरूपान्=शुभविधान् सुरभिदुर्भित्वाञ्च=शुगन्वाञ्च दुगन्वाश्च, तथा-
 विरूपरूपान्=अमनोदान्, उपलक्षणश्च मनोदान् सर्वान् सन्ना=सर्वदा समित्=समिसितिसम्पद्यः सन् रविमरवि=
 रागप्रपौ अभिभूय=स्पृष्टवा श्रवादीन्=नीनी=मुत्सु दु समप्रकाशयन् सम्यक् अयास्त=निश्चलवया सोन्वान् ।

हाय में लिये ग्रामरसक-कोतवाल आदि कुछ मी न बोलने वाले भगवान को चोर की आर्जका करके
 अर्थात् चोर समाप्त कर दस्रो का प्यार करते उपसर्ग करके ये, परन्तु भगवान इन सभी उपसर्गों को सम्यग्
 रीति से सारन करते थे । तथा-भगवान् शूलोद्धर्तकी मनुष्यादिकृत तथा परलोकासर्गकी अथवा देवादिकृत
 अनेक प्रकार के अनुकूल एवं प्रतिकूल शक्तियों को, विविध प्रकार के मयापक पिशाच आदि के रूपों को
 'आदि' शब्द से देवतागना आदि के मनोहर रूपों को, शार-त्तर की मुंगंय और दुर्गंय को, तथा भमनोद्य
 और उपलक्षण से मनोद्य रूपों को, सर्वत्र समिविद्युक्त होकर, राग-द्वेष को त्याग कर, मीनमात्र से-अपने
 सुत्न-मुत्सु को प्रकाशित न करते हुए, निश्चलरूप से सारन करते थे । कमी-कमी ऐसा मी प्रसंग आता

योगानी हर्ष अहोकिञ्चि अक्षित वरु धन्त्रियो उपर इभन यद्यत्सु करो ? प्रभुने और वरीहे ठेवने श्राम्य रक्षोक्षे
 तेभया यु काव हवा करो ? भद्राच्युत-वैभुव आने तिर्क्यच्युत उपसर्गो भस्य उपपदे तेवां क्वा, छावां अजयान
 ते अर्थने उदकभावे अली हेकी देवां, धस्यु हे ते उपपत्तयेने उपपत्तये त्रशिहे भानवा अ नकि, नेने आ हेके उपरनी
 सर्वाणी भयवा हरी अर्ध हवी, तेने हेके रके तोष यु जने न रहे तो पष्य यु । भाष्य हे तेभल्ले तो हेकेने जेभ
 'वरात्मक' एव त्रशिहे अर्थये क्वा, ते हेके उपरना चित्तो-इत्ये ते ते पष्यतना अठवा चरित्रासिह भावेव
 क्वा ते अपते अर हेके, ते हरीव परिशुषया सर्वथेयो क्वा, जेभ आभ युसिजे अजयाने नकी ह्यु' क्वा
 पक्षी ते इत्यने अपपत्तये सिक पठे ते अर्थमां यथावीक ! परतु अजयाने हेके भाष्ये तो सन्धेय (असि) पूरा जेके क्वा
 आ पत्त अर्थनसि क्वाते क्वाअर्थ सार्थने क्वाअर्थ भावी क्वा अनेके क्वाअर्थ उ तेने आ अठवा यद अजयाने
 नकि, आ अठवासिह भने ते आ अठवाके अ ठे अठवाअर्थ अठवाअर्थ अ अठवाअर्थ अठवाअर्थ अठवाअर्थ अठवाअर्थ

तथा-कदाचित्-शून्यागारे=निर्जनगृहे रात्रौ कायोत्सर्गे स्थितं भगवन्तं-श्रीवीरस्वामिनं कामभोगान्
 सेवितुकामाः परस्त्रीसहिताः एकचराः=जारपुरुषाः समागताः पृच्छन्ति-‘कोऽसि त्वम्’? इति । तदा कदाचित्
 भगवान् श्रीवीरस्वामी न किञ्चिदपि वदति, किन्तु तूष्णीकः=मौनसहितः संतिष्ठते, तदा-तस्मिन् काले अथादके=
 अनुचरशीले भगवति=भगवन्तं प्रति, कुब्जाः=कृतक्रोधाः, श्याः=कृतरोषाः सन्तः नानाविधम्=अनेकप्रकारम् उप-
 सर्गं कुर्वन्ति=यष्टिमुष्ट्यादिभिर्भगवन्तं ताडयन्ति, तमपि उपसर्गं भगवान्=श्रीवीरस्वामी सम्यक् असहत्=सोढवान् ।
 कदाचित्=कस्मिंश्चित्समये-‘कोऽत्र’ अत्र-अस्मिन् स्थाने कोऽस्ति? इति=एतत् पृष्टः सन् भगवान् श्रीवीरस्वामी
 अवदत्=उक्तवान्-अहं भिक्षुरस्मि, इति=एतद्वचः श्रुत्वा सकपयैः=क्रोधादिरूपायसहितैः तैः=जारपुरुषैः आहत्य=
 ताडयित्वा “इतः=अस्मात् स्थानात् अपसर=दूरं गच्छ” इति=एतत् कथितः=उक्तः सन् भगवान् ‘अयम्=ताडनादि-
 सहनरूपः उत्तमः=उत्कृष्टो धर्मोऽस्ति’ इति कृत्वा=इति ज्ञात्वा ततः तस्मात् स्थानात् तूष्णीकः=किञ्चिद्वदन्नेव
 निरसरत्=निर्गतवान् । तथा-यस्मिन् हिमवाते=शीतलवामुद्युक्ते शिशिरे=शिशिरकृतौ प्रवेपके=शीतसंगलितत्वात्

कि भगवान् सुनसान घर में रात्रि के समय कायोत्सर्ग में स्थित रहते थे । व्यभिचारी पुरुष परस्त्री के
 साथ कामभोग सेवन करने के लिए वहाँ आते और भगवान् से पूछते—‘कौन है तू?’ तब भगवान् कुछ
 उत्तर नहीं देते, मौन साधे रहते । तब कुछ भी उत्तर न देनेवाले भगवान् पर वे क्रोधित होते, रुष्ट होते
 और भगवान् को अनेक प्रकार से लट्टी मुट्टी आदि से ताड़ना करते । उस उपसर्ग को भी भगवान् सम्यक्-
 रूप से सह लेते थे । कभी किसी ने पूछा—‘कौन है यहाँ?’ इस प्रश्न के उत्तर में वीर प्रभु ने कहा—
 ‘म भिक्षु हूँ ।’ वह शब्द सुन कर वे जार पुरुष क्रोध आदि कषायों से युक्त हो जाते और ताड़ना करके
 कहते—‘दूर जा यहाँ से ।’ इस प्रकार कहने पर भगवान् सोचते—‘ताड़ना आदि को सह लेना उत्कृष्ट
 धर्म है ।’ और यह सोचकर वे चुपचाप, बिना कुछ कहे, निकल जाते थे ।

शीते, आत्मानि वातो इरता इता. आथार-विथारैरुं पालन पथु योतानी दृष्टि अे न इरता, श्रता शीतपरीषडने
 पथु सडन इरवामा दाथार इता शीतपरीषडने सडन नडि इरनारा आत्माभ्यो, याडर आदि वरुओ, तथा मानव
 वसवाट विनाना स्थयोनी शोधमां न इरता इता. डारथु डे तेओने देड दृष्टि गर्ध न इती
 डैन धर्मना साधुओ। सिवायना अन्यमार्गी साधुओ, अग्नि विगेरे भ्रगटावीने शीत साभे रक्षथु भेणवता
 डारथु डे तेओ। शरीरने, आत्म-साधन मानता. अने “देड रणो धर्म.” मानता. ओटवे देडनुं अस्तित्व इशे ते।
 धर्म धर् शक्ये ओम तेओनी धारण। इती. आवाओ।डुं मतव्य, लगवानना आथारथी श्रुडुं तरी आवे छे । से

शक्तिनामकास्त्रविशेषपरकारा, ग्रामरक्षकाः=ग्रामपालकाश्च किमपि=किञ्चिदपि वचनम्-अवदन्त्यम् मगवन्तः=भीषीरस्वा
 भिन, वीरसङ्घा=वीरसंघयन इत्यामियातेन=इन्द्रमाराण्य औपसर्गयन्=उपसर्गं कृतवन्तः। मगवास्तु तान्=उपयुक्तान्
 सर्वानपि उपसर्गान् सम्पृक् मगपसराश=सोढवान्। अथ च मगवान् ऐरलौकिकान्=मनुष्य सम्बन्धिन, तथा-
 पारमौष्ठिकान्=वेषादिसम्बन्धिनश्च अनेकस्थान्=वहुमकारान् म्रियान्=अनुकृमान् अप्रियान्=अविच्छिन्नान् शब्दान्,
 तथा-अनेकस्थानि=नानाविधानि मीमादिस्थानि मीमानि=मयङ्कराणि रुपानि=पिशाचादीनामाकारा, आदिपदाव-
 देशानादीनां मनोरथानि स्थानि च, तथा-अनेकस्थान्=बहुविधान् सुरभिदुरभिरगन्धान्=सुगन्धान् दुर्गन्धान्, तथा-
 विरूपस्थान्=अमनामान्, उपससराश मनोमान् सञ्चान् सदा=सर्वदा समितः=सभितिसम्बन्ध सन् रविमरवि=
 रागद्वयी अमिष्यन्=सर्वदा अवादी=मौनी=मुत्सुहुरःसमप्रकाशयन् सम्यक् करयास्त=निष्कण्ठया सोढवान्।

हाय में लिये ग्रामरक्षक-कोतवाल आदि कुछ भी न बोलने वाले मगवान् को चोर की आँसूका करके
 अर्थात् चोर समझ कर इन्हीं का मार करके उपसर्ग करके थे, परन्तु मगवान् इन सभी उपसर्गों को सम्यग्
 रीति से सहन करते थे। तथा-मगवान् इच्छोक्तसंबंधी मनुष्याविकृत तथा परलोकसंबंधी अर्थात् देवाविकृत
 अनेक प्रकार के अनुकूल एवं प्रविच्छिन्न शब्दों को, विविध प्रकार के मयानक पिशाच आदि के रूपों को
 'आदि' शब्द से दवांगना आदि के मनोर रूपों को, वर-वर की मुगध और दुर्गध का, तथा अमनोत्र
 और उपलक्षण से मनोर स्थलों को, सर्वैष समिवियुक्त शक्ति, राग-द्वेष को त्याग कर, मौनभाव से-अपने
 पुल-दुल को प्रकाशित न करते हुए, निबलक्य से सहन करते थे। कमी-कमी ऐसा भी प्रसंग आता

धैर्यवान् कथं आलोकितं शक्तिं वदे छन्दोश्चै उपर इमन् यथाऽप्यु वदो ? अथुने और वरीछे देखिये आत्म रक्षोक्षि
 वेभन्य शुं वद ह्यं वदो ? मनुष्यवृत्त-देववृत्त अने विद्विष्युपुत उपस्थो भस्वु उपभव वेवा वदो, उदां अमवान
 ते सर्वने कथयवो अशी देही देवां, आसुं दे, ते उपस्थोने उपस्थो वरीछे भागवा अ नदि, नेने आ देक उपरनी
 अर्थांवी भभवा वी गर्ध वदो, वेने देक रहे तोय शुं अने न रहे तो पशु शुं । आसुं दे तेभ्यो तो देहने कोछे
 'अथालक्ष' ज्ञाव वरीछे अप्थो वदो, ते देक उपरना विदोः-दुग्धो तो ते वपतना अरुना परिष्ठाभिध बावो अ
 वदो ते वपते अर देक, ते रूपेच परिष्ठाभवा सम्प्रथिषो वदो। ज्ञेय अन्तर सुद्विजे, अमवाने नशी शुं' इत
 प्थी ते वदने अप्थो शिध वदे ते अर्थांमा वदानीम् । परत अमवाने देक आशे तो यम'अ (कनि) श्छो अशो वदो।
 आ वदो अर्थांतिम अमने अर्थमा शक्तिं कथयाम् आशो छे अनी देक आसुं-अदि उ तेने आ वदानी म् अमवो
 नदि, अथ अर्थांतिम रीते तो, आ अमवो अर अमवाने अमवान्, आ अर्थां अमवाने अमवाने अमवाने

तथा-कदाचित्-शून्यागारे=निर्जनगृहे रात्रौ कायोत्सर्गे स्थितं भगवन्तं-श्रीवीरस्वामिन कामभोगान् सेवितुकामाः परस्त्रीसहिताः एकचराः=जोरपुरुषाः समागताः पृच्छन्ति-‘कोऽसि त्वम्’? इति । तदा कदाचित् भगवान् श्रीवीरस्वामी न किञ्चिदपि वदति, किन्तु तूष्णीकः=मौनसहितः संतिष्ठते, तदा-तस्मिन् काले अवादके=अनुत्तरशीले भगवति=भगवन्तं प्रति, कुब्जाः=कृतक्रोधाः, रुष्टाः=कृतरोषाः सन्तः नानाविधम्=अनेकेप्रकारम् उपसर्गं कुर्वन्ति=यष्टिमुष्ट्यादिभिर्भगवन्तं ताडयन्ति, तमपि उपसर्गं भगवान्=श्रीवीरस्वामी सम्यक् असहत्=सोढवान् । कदाचित्=कस्मिंश्चित्समये-‘कोऽत्र’ अत्र-अस्मिन् स्थाने कोऽस्ति? इति=एतत् पृष्टः सन् भगवान् श्रीवीरस्वामी अवदत्=उक्तवान्-अहं भिक्षुरस्मि, इति=एतद्वचः श्रुत्वा सकपायैः=क्रोधादिक्रपायसहितैः तैः=जारपुरैः आहत्य=ताडयित्वा “इतः=अस्मात् स्थानात् अपसर=दूरं गच्छ” इति=एतत् कथितः=उक्तः सन् भगवान् ‘अथम्=ताडनादि-सहनरूपः उत्तमः=उत्कृष्टो धर्मोऽस्ति’ इति कृत्वा=इति ज्ञात्वा ततः तस्मात् स्थानात् तूष्णीकः=किञ्चिद्वदन्नेव निरसरत्=निर्गतवान् । तथा-यस्मिन् हिमवाते=शीतलवायुयुक्ते शिशिरे=शिशिरकृतौ प्रवेपके=शीतसंलितत्वात्

किं भगवान् सुनसान घर में रात्रि के समय कायोत्सर्ग में स्थित रहते थे । व्यभिचारी पुरुष परस्त्री के साथ कामभोग सेवन करने के लिए वहाँ आते और भगवान् से पूछते—‘कौन है तू?’ तब भगवान् कुछ उत्तर नहीं देते, मौन साधे रहते । तब कुछ भी उत्तर न देनेवाले भगवान् पर वे क्रोधित होते, रुष्ट होते और भगवान् को अनेक प्रकार से लट्टी सुट्टी आदि से ताड़ना करते । उस उपसर्ग को भी भगवान् सम्यक् रूप से सह लेते थे । कभी किसी ने पूछा—‘कौन है यहाँ?’ इस प्रश्न के उत्तर में वीर प्रभु ने कहा—‘म भिक्षु हूँ ।’ वह शब्द सुन कर वे जार पुरुष क्रोध आदि कषायों से युक्त हो जाते और ताड़ना करके कहते—‘दूर जा यहाँ से ।’ इस प्रकार कहने पर भगवान् सोचते—‘ताड़ना आदि को सह लेना उत्कृष्ट धर्म है ।’ और यह सौचकर वे चुपचाप, बिना कुछ कहे, निकल जाते थे ।

रीते, आत्मानि वातो करता हुता. आथार-विद्यारेलुं पादान पथु येतानी दृष्टि ये न करता, छातां शीतपरीषडने पथु सडन करवामां दाथार हुता. शीतपरीषडने सडन नडि करनारा आत्मायो, आहर आदि वस्त्रो, तथा मानव वसवाट विनाना स्थणोनी शोधमा न करता हुता. कारथु डे तेयोने डेड दृष्टि गर्ध न हुती

कैन धर्मना साधुयो सिवायना अन्धमार्गी साधुयो, अग्नि विगेरे भगटावीने शीत साचे रक्षथु येणवता कारथु डे तेयो शरीरने, आत्म-साधन मानता. अने “डेड रथो धर्म.” मानता अेटवे डेडनु अस्तित्व हुशे तो धर्म धरु शकथे. अेम तेयोनी धारथु हुती. आवायोतुं भंतव्य, लगवानना आथारथी अुडुं तरी आवे छे । से

जनानां प्रकृत्यकारके मातृत्वेऽप्यायी प्रजातिः=प्रजामति सति अप्येके=केचित् जनगाराः=साधवः निर्वातः=वायुरहित
 स्वानम् एष्यन्ति=गोधेयन्ति, अन्ये जनाः “सघाटीः=शीतनिवारकवस्त्रविशेषान् प्रवेष्ट्यामः=मचिष्टाः मचिव्याम ”
 इति=स्यं शीतमीत्या वदन्ति=अस्यन्ति, एके अन्ये च मिसवः इत्यनामि=काष्ठानि समाह्वन्तः=अमनौ प्रबलपन्तः
 सन्वस्तिष्ठन्ति, केऽपि “पिरिताः=स्त्राण्डाः अविदुःस्य=महाकृष्टम् हिमकसंस्पर्शं सशिशुं अस्यामाः=समया
 भविव्यामः” इति श्लोचन्ति=अनसि विचारयन्ति, तस्मिन् ताश्चे=वयापूते शिशिरे शीतफाले द्रविका=मोक्षाभिलाषी
 मगवान्=गीचोरस्वामी अमतिष्ठः=इश्लोकपरलोकाप्रतिहारितः सन् विकटे=शीतमययुक्ते अनाह्वते स्थाने तत्=दुःसह
 शीतं सम्यङ् अघ्यास्त=निषण्णया सोढवान्। “अन्ये=मदितरेऽपि सुनयः=साधवः एवम्=मदनुष्ठितप्रकारेण ईरताम्=
 विदन्तु” इति कृत्या=इति विचार्य अमतिष्ठेन=अविचारहितेन मतिमतता=मेधाविना मगवता=भीवीरस्वामिना एष्यन्
 पूर्णोक्तो निधिः=माघारः बहुशः=बनेकृष्टः यदुक्तान्तः=यदुसृतः=पालितः ।।म्०११।।

शीतल वायु से युक्त शिशिर ऋतु में, शीतलवा के कारण मनुष्यों को कँपकँपी उत्पन्न करने वाली
 हवा चलती थी। उस समय कितने ही सायु ऐसे स्वस्त लोभते फिरते थे जहाँ वायु का प्रवेश न हो।
 कोई-कोई जन शीत की भीषि से करते थे-‘इम तो शीत को रोकने वाले बल में युबक जाएँगे।’ कई
 लोग माग में ईपन जला कर तापते थे। कोई सोचते थे-यत्न मोड़ने से ही महाकष्टकर सर्दीं सहन की
 जा सकती है। ऐसे शीतकाल में भी मोक्ष के अभिलाषी मगवान् इश्लोक-परलोकसंबंधी समस्त कामनाओं से
 दूर रह कर सर्दीं के मय वाले सुखे स्थान में उस दुस्साह शीत को अचल माघ से सहन करते थे।

उपरोक्त उपसर्गों द्वारा संकेते बम्पी शब्दाभ छ लेने आत्मस्थान व्यभूत वस्तु छ तेने आत्थानी स्वदत शक्ति,
 स्व-पर प्रशयानेना अतु अततवीभ अने अनतसुभनेना अतुभव वतां, देक शानकषार्ठ नाभ छ, ने देवव आत्थ,
 ।नर शक्तिअने निर्भर वरु, आनर वधि छ

देक इहा अने व्यासदश्या वरुणु अतः, आकाश-पाताल नेट्ट होथ छ लेनी देकदष्टि छ, ते अने
 तरेवी इन्धोला इये, शरीरने सुकवी नाभी आण अनावी रेये, तो पण, आत्मस्थान नदि बाव. परतु लेने
 आत्मस्थ वस्तु छ निर स्वभावनी लेने स्थित्यु कर्छ छ, लेखे आत्थाम् रहेव अनत सुजे अने अनत वीर
 उपर विधास भूये छ ते शरी पण शुक् क्रिया इये बरु, निर निवास धामभां पडोवी शक्ये
 अतथान तो निरकान बरि कर्छ ने अ अतवर्षो कर्छ. ले कुरुप आत्मस्थान” ने शारिक सुभ्युव
 इवेवभां आवे छ, ते अतवर्ष. तत्र अतभा अतथानने शिक अतम् वरु अये आवा कुरुप आशीना अने,

मूलम्—तथो भगव पुणोऽवि चित्ते—“बहुय कम्मं मम निज्जरेयन्व अत्थि, अओ अणारियवहुल्ल
 लाढदेस वच्चाभि, तत्थ हीलणनिदणार्हिहि बहुय कम्मं निज्जस्सिइ” चि कट्टु लाढदेसं पविसीअ । तत्थ पविस-
 माणस्स भगवत्तो मग्गे चोरा भिलिया । ते य भगवं दद्रण ‘अवसउणं जायं जं सुँडिओ भिलिओ, एयं अवसउणं
 एयस्स चेव वहाए भवउ’—त्ति कट्टु भगवं लट्टिसुट्टिपहारोहिं बहुसो ढणिंसु । अह दुच्चरलाढवारी भगवं तस्स
 देसस्स वज्जभूमिं सुब्भभूमिं च समणुपत्ते । तत्थ णं से विरुवरूपाइं तणसीयतेयफासाइं दंसमसगे य सया समिए
 सम्मं सहीअ । पंत सेज्ज पंताइ आसणाइं सेवीअ । तत्थ भगवओ व्हवे उवसणा समागया, तं जहा—दूहे भत्ते
 संपत्ते, जाणवया लूसिंसु, कुकुरा हिंसिंसु निवाडिंसु । अप्पा चेव उज्जुया जणा ल्सएण डसमाणे सुणए य
 निवारोति । वहेव उ “समणं कुकुरा डंसतु” —त्ति कट्टु सुणए छुछुकारोति । तत्थ वज्जभूमीए वहेव फरुसभासिणो
 कोहसीला वसंति । तत्थ अण्णे समणा लट्टिं नालियं च गहाय त्रिहरिंसु, तहवि ते सुणएहिं पिट्ठभागे संलुचिज्जिंसु ।
 अओ लाढेसु दुच्चरगाणि ठाणाणि संति—त्ति लोए पसिद्धं, तत्थवि अभिसमेच्च भगवं ‘साहूणं दंडो अकप्पणिज्जो’—
 त्ति कट्टु दंडरहिए वोसट्टकाए गामकडगाणं सुणगाणं च उवसग्गे अहियासीअ । संगामसीसे गागो व्व से महावीरे
 तत्थ पारए आसी । एगया तत्थ गामंतियं उपसंक्रममाणं अपत्तगाम भगवं अणारिया पडिणिक्वमित्ता एयाओ
 परं पलेहिति कहिय लूसिंसु । हयपुव्वोऽवि भगवं पुणो पुणो तत्थ विहरीअ । तत्थ केइ अणारिया भगवं
 दंडेणं केइ सुट्टिणा केइ इंताइफलेणं केइ लेखुणा केइ कवालेण हंता हंता कंदिंसु । एगया ते लुंचियपुव्वणि
 मंशूणि उट्टंभिय विरुवरूपाइं परीसहाइं दाज्जणं कायं लुंचिंसु, अहया पंसुणा उवकिरिंसु उच्छालिय णिहणिंसु,
 अदुवा आसणाओ रलइंसु, तहवि पणयासे भयवं वोसट्टकाए अपडिन्ने दुक्खं सहीअ । एवं तत्थ से सुंडे
 महात्रीरे फरुसाइं परीसहोवसगाइं पडिसेवमाणे संगामसीसे सुरो व्व अयले रीइत्था । एस विही मइमया माहणेण
 अपडिन्नेण भगवया ‘एवं सव्वेऽवि रीयंतु’—त्ति कट्टु बहुसो अणुक्कंतो ॥सू०९२॥

‘मेरे सिवाय अन्य मुनि भी इसी प्रकार विहार करें-संयम की साधना करें’ ऐसा विचार करके
 भगवान् वीर स्वामी ने वारम्बार इस आचार का पालन किया ॥ सू०९१ ॥

विषयमा राथी र्हेल विषयनेता कीडा, डेवी रीते समल शके ? इय सुंढरीओाना अल्लडलट इय आगण, भाह्य धन्दिथेना
 ळरडेराटनु लगवाने कथं शक्ति द्वारा, तेनुं शम्भन कथुं इशे ? आवा योग ब्रेल्ले साधेो डोय, अगर आवा योगमां
 ने भानता डोय तेन आवा योगनुं पारभ्य करी शके (सू०९१)

जननां प्रकल्पकारके मारुतेऽवायौ प्रवातिः प्रचसति सति अल्पेकैः केचित् भ्रमगाराः । सापत्र निर्वातेः वायुरहित
 म्यान् प्रपयन्तिः गेचे रचन्ति, क्रम्ये जनाः "संघाटीः" शीविनिवारकत्रविशेषान् प्रवेस्यामः । अविष्टाः मधिव्यामः ।
 इतिः शब्द शीविमीत्या वदन्तिः नश्यन्ति, एके अन्ये च मिस्रवः इन्धनानिः काष्ठानि समाद्भन्तः । अन्नीं प्रज्वलयन्तः
 सन्तस्तिष्ठन्ति, केऽपि "पिरिताः" रक्षाच्छन्नाः अविदुः त्वेः मशाच्छम् इमिदसंस्पर्शं सतिरिं श्रय्यामः । समर्वा
 मरिष्यामः ।" इति शोचन्तिः मनसि विचारयन्ति, तस्मिन् तादृशेः तथायूते शिथिरे शीतकाले द्रविकाः मोसाभिसापी
 मगधान्- शीवीरस्वामी अपतिः इश्लोकपरलोकाविद्यारहितः सन् विकटेः शीतमययुक्ते अनाहृते स्थाने ततः दुःसहं
 नीतं सम्यक् प्रथ्यास्तः निषाश्रयया सोढवान् । "अन्येऽमरितरेऽपि मुनपः साववः एवम्ः मद्गुणितप्रकारेण ईरताम्ः
 निरान्दु" इति क्लृप्ताः इति विचार्य अपतिः निरान्दुः मरिष्यामः । अन्तः शीवीरस्वामिना एवम्ः
 पूर्वोक्तो निधिः साधारः बहुशुभ्रः भवेत्कथः अनुकान्तः अनुग्रहाः यालिवाः । अ० ०११ ।

शीतल चायु से युक्त शिथिर श्रुत में, शीतलका के कारण मनुष्यों को कँपकंपी उत्पन्न करने वाली
 रसा बसती थी। उस समय कितने ही साधु ऐसे स्थान लोजते फिरते थे जहाँ चायु का प्रवेश न हो।
 कोई-कोई जन शीत की मीठि से कहते थे- 'इम तो शीत को रोकने वाले एक में दुक्क काँपेगे।' कई
 लोग आग में ईपन जला कर तापते थे। कोई सोचते थे- यन्न ओढ़ने से ही महाकष्टकर सर्दी सहन की
 जा सकती है। ऐसे शीतकाल में भी मौस के शमिलानी मगधान् इश्लोक-परलोकसंबंधी समस्त कामनाओं से
 दूर रह कर सर्दी के मय वाले सुखे स्थान में उस दुस्सह शीत को अचल माप से सहन करते थे।

विश्रुत उपपत्तौ शारा सहेते ऋषी मशाम छे लेने आत्मस्थान अश्रुत श्यु छे तेने आत्मान्नी स्वतत्र शक्ति,
 स्व-पर प्रमाशाने। अलु अनतवीर्य आने अनतशुभने। अनुकलन शर्तां, देक आनश्रुतार्थ जाव छि, ने देवक आत्म,
 नश्य शक्तिने निरंशु कर्ष, आश्रय वधि छे

देक श्या आने आत्मश्रया वक्षैतु अनत, आत्मश-पादाण देयक कोष छे लेनी देकदृष्टि छे, ते जने
 तेदबी प्रियाजो हरथे, शरीरने मुक्ती नाथी आश जनानी रहे, तो पक्ष, आत्मशान नहि जाव. परतु लेने
 आत्मशय यशु छे निर श्रयवाजनी लेने शिष्यसु कर्ष छे लेके आत्मशयं रहेक अनत मुजे आने अनत बीए
 उपर विधास भुजे छे ते शरी पक्ष शुभ किवा करतो करे, निर निवास भावभयं पकेबी शकथे।
 अश्रयन ते, निरकान भावे कर्ष ने अश्रयन कर्ष. ले अश्रय आत्मशयन ने शक्ति अश्रयन
 श्रयन आने छे। ते अश्रयन, तव अश्रय अश्रयनने कि-क आत्म कर्ष अश्रय आत्मशयन आने,

संप्राप्तम् । जानपदा अलूषयन्, कुकुरा अर्हिसन् न्यपातयन् । अल्पा एव ऋजुका जना लूपकान् दशतः शुनकाश्च निवारयन्ति । बहवस्तु “श्रमणं कुकुरा दशन्तु” इति कृत्वा शुनकान् लुच्छुकारयन्ति । तत्र वज्रभूमौ बहवः परुष-भाषिणः क्रोधशीला वसन्ति । तत्र अन्ये श्रमणा यष्टिं नालिकां च गृहीत्वा व्यहरन्, तथापि ते शुनकैः पृष्ठभागे समलुच्यन्त, अतो लटेषु दुश्चरकाणि स्थानानि सन्तीति लोके प्रसिद्धम् । तत्रापि अभिसमेत्य भगवान् ‘साधूनां दण्डोऽकल्पनीयः’ इति कृत्वा दण्डरहितः व्युत्सृष्टकायो ग्रामकण्टकानां शुनकानां चोपसर्गान् अध्यास्त । सङ्ग्राम-शीर्षे नाग इव स महावीरस्तत्र पारक आसीत् । एकदा तत्र ग्रामान्तिकमुपसंक्रामन्तमप्राश्राममनार्याः प्रतिनिष्क्रम्य

सेवन किया । वहाँ भगवान् पर बहुत उपसर्ग आये । जैसे-वहाँ लूखा भोजन मिला, वहाँ के लोगोंने मारपीट की, कुत्तोंने काटा और नीचे गिरा दिया । कोई धिरले सीधे लोग ही मारने वालों को और काटने वाले कुत्तों को रोकते थे । बहुतेरे तो यही सोचते थे कि इस श्रमण को कुत्ते काटें तो अच्छा, ऐसा सोच कर वे कुत्तों को लुठ-कारते थे । उस वज्रभूमि में बहुत-से खूखा बोलने वाले और क्रोधशील लोग रहते थे । दूसरे श्रमण वहाँ डंडा और लाठी लेकर विचरते थे, फिर भी कुत्ते उन्हें पीछे से नोंच लेते थे अत एव लोरुमें यह बात फल गई थी कि लाट देश में ऐसे स्थान हैं, जहाँ चलना कठिन है । वहाँ जाकर भी भगवान् ने ‘साधुओं को डंडा रखना कल्पता नहीं’ ऐसा सोच कर बिना डंडा काया की ममता त्याग कर दुर्जनों और श्वानों के उपसर्गों को सहन किया । संग्राम के बीच भाग में हाथी की भँति महावीर प्रभु उन उपसर्गों के पारगामी हुए ।

रखा हता. आ देशम, प्रभुने अशुर्थितव्या इ गो उत्पन्न तथा. अहि आहार लुप्भो-सुच्छे अत प्रात भगतो. अडीना दोडे भारपीट धष्ठी करता. नगली धार्थ्या कुतराशोने भगवान् उपर छोडी भूकता. आ कुतराशो, तेभने करडी नीचि पटडी हेता. डोर्ध विरला पुरषे न कुतराशोने छडी डाढता. पाडी तो कुतराशोने सीसकारी, भगवाननी पधवाडे होडावता अने छटा भूकता. धष्ठा अनार्यो तो अेम पशु डडेता डे, आ नवतर भाषुस कथाथी आन्ये छे ? माटे तेने अर्द्धिथी डाढे-रवाना करे. आ वज्रभूमिमा दोडे करडी भाषा जोढता हुता; तेभन वात वातमां डोधे अरार्ध उडा उडाववाणा हुता. अर्द्धि नगली कुतराशो तेभन पाणेला कुतराशो, वियुल प्रभाषुमा हटिगोव्यर यता हुतां तेथी श्रमशो अर्द्धि उडा-लाकडी साथे विहार करता हुता. तो पशु कुतराशो तेभने करडी पगमांथी भांसना दोथा डाढी नाथता. आ कारणे दोडेमा अेवी वात प्रयक्षित थर्ध हुती डे, लाट देशमां वियखुं धाशुं कक्षु छे.

भगवान् अर्द्धि आवा विकरान् प्रदेशमां आव्या छता लाकडी-उडा विगरे कर्ध पशु राथता नडि. तेजोपुं मतन्य अेषुं हतु डे ‘साधुशोने लाकडी-उडा अंध पशु राथतु कल्पतुं नथी उडा आदि राथ्या वगर आ विहार-

जाया—चतुर्भुज मगवान् पुनर्भित्तयति—“बहुकर्म कर्म मम निर्गणितव्यमस्ति, अतोऽन्यथा बहुल साटदेवं प्रणामि तत्र शिखा-निन्दनादिनिर्बहुकर्म कर्म निर्गणयित्वा” इति कृत्वा साटदेवं प्राश्रितव । तत्र प्रविष्टो मगवतो मार्गे चोरा मिस्रिवा, ते च मगवन्तं दृष्ट्वा “अपशुकं जातं यच्चिद्विदो मिस्रितः, एतवपशुकम् एतं स्वीच वधाय मत्तु” इति कृत्वा मगवन्तं यष्टिमृष्टिभारैर्विशुशोऽन्न, अप यथासाटचारी मगवान् तस्य देवस्य वधभूमिं शुभ्रभूमिं च समनुमासः । तत्र स विरूपरूपान् त्वमधीतवज-स्पर्शान् दंशमञ्जकान् च सदा समितः सम्यगा सस । मान्वा अर्थ्यां मान्वाण्यासनानि असेवत । तत्र मगवतो वरत्र उपसर्गाः समागता, तपया—रुसं मरुं

मूल का अर्थ—‘तमो मगव’ इत्यादि । तस्यभात् मगवान् ने पुन विचार किया—‘मुझे बहुत-से कर्मों की निर्गण करना है, अतः अनार्य बहुल साटदेव में जाना चाहिए । यों शिखा एवं निन्दना आदि होने से बहुत कर्मों की निर्गण होगी ।’ ऐसा सोच कर मगवान् ने साट देव में विहार करते मगवान् को मार्ग में चोर मिळे । उन्होंने मगवान् को देख कर सोचा—‘यह ईश्वरित मिस्र गया सो अपशुकुन हो गः । यह अपशुकुन इसी के वध के लिए हो ।’ इस तरह सोच कर उन्होंने ने मगवान् को सृष्टियों और सृष्टियों का प्रहार करके खूब मारा-पीटा । मगवान् ने सम्यक् प्रकार से उसका सन किया । इस के बाद उस दुग्म साट देव में विवरण करने वाले मगवान् तस देव की वसुभूमि में और शुभ्र भूमि में पहुँचे । यों मगवान् ने कंटक, शीश और तण्य आदि के सशौं को तथा बसि-मच्छर आदि के दशों को समाधि में मीन रा कर सम्यक् प्रकार से निन्दार सन किया । कष्टकर निवासस्थानों का तथा कष्टकर अन्न आदि का

भूजने अर्थ—‘तमो मगव’ अर्थात् अजवाने इरीकी विचार हयो है, बहुत भारे वषां हयोनी निजरा इरपानी पाडी छे भाटे अनाथ अदुह वाटेश्यां वरु ज्येज्ये, त्य भाडी केवषा-निय आदि धवायी वषा हयोनी निर्वद हये आवो विचार हरी, तमके वाटेश्यां विचार हयो विचार हयां आजैभां अजवानने वार वेडोने वा देवा हयो जोशेजे अजवानने ज्येष्ठ मनभां विचार हयो है आ अशिको रत्वाभां भजवाष आरे अपशुकुन क्या । आ अपशुकुन तेना वध भाटे छे । आवो निरुध्व हरी, तेजेजे, अजवान छपर वाडीजे अने अशिकोना प्रहार हयो, त्परावार जडा बादरी भार भायो वा अशु अजवाने समप्रस्थिगे सकन हरी दीधु इजने वाटेश्यां विवरणवाण अजवान आ देशनी कशक्युभमां अने शुभ्रभूमिभां पशेकी वषा आदि अजवानने हक-कांदा-कांदा जसरी-हरी तथा दंस-मच्छर आदिना विषम प्रहारना हये कप्रस्थिगत हया ते अजने तेमके अजवाने अकन हरे दीधु आ कप्रगत छपरवाना अशेया वध वषा अजवानने अकन हरी अजवानने अकन हरी

टीका—‘तओ भयवं’ इत्यादि । ततः=अनार्यदेशनेकविधोपसर्गसहानन्तरं पुनरपि भगवान् चिन्तयति=विचारयति यद्-बहुकं=प्रचुरं कर्म मम निर्जरथितव्यं=क्षणायाम् अस्ति, अतः=अस्माद्धेतोः अनार्यबहुलम्=अनार्य-प्रचुर लाटदेश=लाटाख्यं देश व्रजामि=गच्छामि, तत्र लाटदेशे हीलना-निन्दनादिभिः-तत्र-हीलना=अनादरः, निन्दना=गर्हणा-अवाच्यकथन, तदादिभिः बहुकं=बहु कर्म निर्जरथिष्यते=क्षय प्राप्स्यति” इति कृत्वा=इति विचार्य लाटदेशं प्राविशत्=लाटदेशे विहारं कृतवान् । तत्र=लाटदेशे प्रविशतो भगवतः=श्रीमहावीरस्य मार्गे चोराः मिलिताः ते=चोराश्च भगवन्तं दृष्ट्वा, अपशकुनं जातम् यत् सुण्डितो मिलितः, एतत् अपशकुनम् एतस्य सुण्डितस्यैव वधाय महावीरने वहाँ संग्राम के अग्रभाग में शूर पुरुष की तरह कठोर परीपहों और उपसर्गों को सहन करते हुए निश्चल भाव से विहार किया । ‘अन्यसुनि भी ऐसा ही करें’ इस प्रकार विचार कर माहन एवं अपतिन्न भगवान ने वारम्बार इस विधि का सेवन किया ॥सू०२॥

टीका का अर्थ—अनार्य देश में भौति-भौति के उपसर्ग सहन करने के अनन्तर भगवान् ने पुनः चिन्तन किया-मुझे अभी बहुत से कर्मों का क्षय करना है । अतएव मुझे उस लाट देश में विहार करना चाहिये, जहाँ अनार्य लोगों की बहुलता है । लाट देश में अनादर होने से और गालियाँ खाने से तथा इसी प्रकार का अन्य अमाञ्छित व्यवहार होने से मेरे बहुत कर्मों का क्षय हो जायगा । ऐसा सोचकर उन्होंने लाट देश में विहार किया । लाट देश में प्रवेश किया ही था कि मार्ग में चोर मिल गये । चोरों ने भगवान् को देखकर समझा कि हमें यह मुंडा मिला अतः अपशुकन हो गया, यह अपशुकन इसी मुंडे के वध के लिए ही; ऐसा सोचकर चोरों ने

क्यों हुने आती रीने संश्रामभूमिमा मोभरे रही क्रमोना साथे लडाज करना, योतानी वृत्तिओ जरा पक्ष छुणवा देता नहि सुनिअनेना आ धर्म छे ने आ प्रधारे तितिक्षा थशे तो देह लान भूदी जध आत्मबान प्रगट थशे ओम समए लगवाने आ आदर्श पूरा पाडये। (स०८२)

टीकानो अर्थ—अनार्य देशमा जतजताना उपसर्गो सहन कथा पक्षी लगवाने इरीथी श्रितन कथुं के ‘भारे छए धषा क्रमेना क्षय करवानो आछी छे, तेथी भारे ते लाट देशमा इरीथी विहार करवा जेधजे, ब्या अनार्य लोडो वधारे प्रभाषुमा छे लाट देशमा अनादर तिरदार थवाथी अने गाणो आवाधी तथा जे प्रधारेना गीजे अनिच्छतीय व्यवहार थवाथी मारा धषा क्रमोना क्षय थध जये’ जेवुं नियारीने तेमझे लाट देश तरफ विहार कथो लाट देशमां जेयो प्रवेश कथो के तरत ज मार्गमा चार लोडो मण्णा चारेजे लगवाने जेधनि ओम मान्थुं आ साथे सुडावाणे साथे मणवाथी आपथने अपशुकन थया आ आपथुकन भाटे आ सुंडीयो जेवुं भात ज भागे

‘एतस्मात् परं पन्नापत्वं’ इति क्वचित्वाञ्छयत्नः। इत्थार्थोऽपि भगवान् पुनः पुनस्तत्र व्यह्वनः। तत्र केचित्पुत्रायां मागस्त्वे इहनेन केचित्पुष्टिना केचित् कुन्तादिफलेन केचित् सोऽनेन केचित् कृपालेन इत्वा इत्वा अकन्दन्। एषां तेषु तेषु क्वचित्पूर्वाणि शमयूषि अष्टम्य विश्वरूपान् परीपहान् इत्वा कायमनुब्रान्, अथवा पांमुना उपाऽकित् उच्छल्य न्यग्रन्, अथवा माग्-इत्सवन्, तथाऽपि प्रमत्ताञ्चो भगवान् व्युत्प्लुत्तापोऽम्बितो द्रु त्वम साहव। एवं तत्र स संतुलो महावीरः इक्यन्त् परीपहोपसर्गान् प्रतिसेवमानः मरुत्प्रामदीपै र्शु इव अवल ऐर्षं। एष त्रिभिः मणिमठा माह्वनेन अप्रतिज्ञेन भगवता ‘एव सर्वेऽपि ईश्वारं’ इति कृत्वा बहुमुञ्जुकान्त ॥म०९२॥

एक समय भगवान् गौतम के समीप पहुँचे और गौतम में पहुँच भी नहीं पाय कि अनाय लोक वहार निकल-निकल कर ‘साग जाओ यहाँ से दूर’ ऐसा कह कर मारने लगे। जहाँ भगवान् पर पड़ले ममार किया गया था, रौं मो ने पुनः पुनः विहार करते थे। वहाँ कोई अनार्य भगवान् का हँडे से, कोई मुडी स, कोई सांके भादि से, कोई मिट्टी के डेहे स और कोई ठोकरियों से मार-मार कर स्वयं विछाते थ। कमी-कमी ने परसे नीची हुई मूर्छों को पकड़कर, नाना प्रकार के परीपह डेकर वरीर को नीचते थे, अथवा भगवान् को पूर से मार देते थे, ऊपर उछाल कर पटक देते थे, अथवा आसन से पका देते थे, तथापि निर्जरायी भगवान् कायकी समता त्याग कर तथा अपवित्र होकर दुगानों को सन कर छेते थे। इस प्रकार भगवान् भूमिमां भगवान् निवृत्ता इत्वा, इत्सु हे तेभश्चे देहनी नभत्तये त्वात्र ड्यो इतो। आधी तेजो इत्तंनो अने आनेना इत्थे सहेन इहय तपर यथा इत्वा हेम सभ्राममां दाधी शोभरे होय छ तेम भगवान् छिपयजे। इथी सभ्राममां आरण इथी सवैरुमां यारुमाभी अनी त्रया इत्वा

हेतु कि त्रयमे भगवान् होतु कि त्रय गामनी नत्तु पहेत्तया। गाममां तो पूरेश पहेत्तया पयु न इत्वा त्वां तो जनासं होहा सप्याज्जंयं अहार नीजणी ‘आहो ज-आहो व’ निवेरेत्ता शोभरे। पाठवा वात्ता। वृम जरायानी आहै वादीज्जिना मार पयु मारवा वात्ता, अन्ध अन्ध तेमने प्रभाये यथा इत्वा त्वां त्वां इरीधी तेजोके विहार इत्ये यइ इथी। आनी अरेर भूमिमां भगवानने दंभ, मुडी, लावा, इत्त, डेह, छिप्र विजेथी मारी-दूटी तेमने। इरीथी’ ज्ञावात्ता। हेतु हेतु भगव तो तेमनी बधिबी मुठिने पछी आत्ता थरीरने नीच वाणी मुठ्ठे इत्थरेक इत्थरेक तेमनी छपर मूल पूज ज्जादी तेमने पूजणी नभराणी मुठ्ठे वकी नभत्त दायकी तेमने आत्ता अन्ध आत्ता छपदी नीच पारत्ता। तेमने दंभटोणी इरी इरे हेत्त अने विमभनी अन्धाने पयु विजवा हेत्त नत्ति। अन्ध अन्ध होना अन्ध भगवान् जनासं पच्छेयानी यकी तत्तम अहेन इत्त अन्ध इत्त। तेजोके तो यमयुकेम भगवानो त्वात्र

कञ्जुकाः=कोमलप्रकृतिका जनाः ल्यपकान्=ताडमान् दशतः=दन्तैः प्रशुशरीरं विदारयतः शुनकान्=कुक्षुरांश्च निवारयन्ति=ताडनाद् ल्यपकान्, दशनात् कुक्षुराश्च प्रतिषेधन्ति । वधवो जनान्स्तु “श्रमणं कुक्षुरा दशन्तु” इति कृत्या=इति विचार्य शुनकान्=कुक्षुरान् छुछुकारयन्ति=भगवदुपरिसमाक्रमणाय प्रेरयन्ति । तत्र=तस्या वज्रभूमौ वधवो जनाः=परुषभाषिणः=कठोरभाषणशीलाः, क्रोधशीला=कोपस्वभावाः वसन्ति । तत्र-लाटदेशीयवज्रभूमौ अन्ये श्रमणाः=शाक्यादयः श्वभयनिगरणाय यष्टि=दण्डं नालिकां=स्वशरीरप्रमाणाच्चतुरङ्गुलाधिक दण्डविशेषं च गृहीत्वा न्यहरन्=विह्वतवन्तः, तथाऽपि ते श्रमणाः, शुनकैः=कुक्षुरैः पृष्ठभागे पश्चाद्भागो समलुच्यन्त=सन्दृष्टा अभवन्, अतः=अस्मात्कारणात् लाटेषु=लाटदेशीयप्रदेशेषु स्थानानि दुश्चराणि=दुर्गमाणि सन्ति, इति लोके प्रसिद्धम् । तत्रापि=तथाभूते लाटदेशेऽपि अभिसप्तये=गत्वा भगवान् ‘साधूना दण्डः अकल्पनीयः’ इति कृत्वा=इति विचार्य दण्डरहितो व्युत्पृष्टकायः=त्यक्तदेहममत्त्वः, ग्रामकूटकानाम्=दुर्जनानां शुनकानां=कुक्षुराणां च उपसर्गान् अध्यास्त=निश्चलतया सोढवान् । सङ्ग्रामशीर्ये=रणसूर्यनि नाग इव=हस्तिवत् सः=श्रमणो भगवान् महावीरः तत्र=उपसर्गविषये पारकः=पारकर्ता आसीत् ।

ऐसा सोचकर कुत्तों को छुछकारते ही थे-काटने के लिए उत्साहित ही करते थे । अधिकांश लोग उस वज्र-शुभ्रभूमि में रहस और कठोर बोल ही बोलते थे, और स्वभाव के क्रोधी थे । लाट देशकी उस वज्रभूमि में बौद्ध आदि श्रमण कुत्तों के भय से बचने के लिए डंडा लेकर और यष्टि अर्थात् अपने शरीर के प्रमाण से चार अंगुल लम्बी लकड़ी लेकर चल्ते थे, फिर भी कुत्ते पीछे की तरफ से उन श्रमणों को नौच लिया करते थे । इस कारण यह बात प्रसिद्ध हो गई थी कि लाट देग में ऐसे स्थान हैं, जहाँ चलना बड़ा कठिन है । ऐसे लाट देश में भी जाकर भगवान् ने कभी डंडा नहीं लिया । उन्होंने विचार किया कि डंडा धारण करना साधुओं को कल्पता नहीं है । भगवान् तो देहकी ममता से रहित होकर दुष्टजनो और कुत्तों के

विचारने इत्तराञ्चोने सिस्कारता हता-इरडाववाने माटे उश्केरता हता अने ते वज्रशुभ्रभूमिनां चोटा लागना बोडेते । कठोर वचनो न चोदता हता अने स्वभावये धाया न क्रोधी हता । लाट देशनी ते वज्रभूमिमां गौद्ध आदि श्रमणो इत्तराञ्चोना लथथी अयवाने माटे उडे । लधने तथा यष्टि कोटवे के चोताना शरीरना भापथी यार आंगण लांथी लाडडी लधने चालता हता, तो पशु इतरा पाछणनी गान्धुयेथी श्रमणोने इरडता हता ते कारखे आ वात प्रसिद्ध थर्ध गार्ड हती के लाट देशमा कोनी न्याञ्चो छे के न्या चालवुं पशु मुखेदे छ, कोवा लाट देशमां नधने पशु लागवाने कडी उडे । पासे राण्थे नडि । तेमखे विचार कर्ये के उडे धारणु कर्ये साधुञ्चोने उष्यते (अपते) नथी । लगवान तो डेहनी भमता विनाना थधने दुष्ट बोडे । अने इत्तराञ्चो वडे कराता उपसर्गो साइन करता हता । नेम हाथी

अवतुः=अवतु" इति कृत्वा=वति मनसि विचार्य भगवन्-श्रीवीरस्वामिने, यदियुष्टिमहारैः वदुषाः=अनेकल' भगवन्= इत्यन्वयः। अयं=अनन्तरम्, दुष्काराद्युष्टि-दुर्गमलाटदेवविचारे श्रीवीरस्वामी तस्य वेदस्य पञ्चपूर्ति-पञ्चश्रुति नामकं प्रवेक्ष्य, शुद्धश्रुतिनामकं प्रवेक्ष्य च समनुशासः=शुद्धक्रमस विचार्य गतः। तत्र-लाटदेशीयपञ्चश्रुति-शुद्धश्रुत्योः लक्ष्यं सः भगवान् श्रीस्वामी विरूपरूपान्=अनेकप्रकारान् वृष-शैल-वेजः-स्पर्शान्, तप-वृष्यस्य= वसार्थे, शीतस्य=निम्ब, तत्रस्य=उपत्यस्य च यं स्पर्शस्तान्, वन्दुन-वैश्वसकान् समिवः=न्यमितियुक्तः सन् सदा=सर्वदा सम्यक् यथावत्=सोभवान्। तथा-शान्ताय=श्रीराजलक्ष्मिनि को अर्घ्या, मन्त्रानि आसनानि च असेवत। तत्र-लाटदेशीय-पञ्चश्रुत्यो, मारतः=श्रीवीरस्वामिन यत्र उपसर्गः समागताः=समुत्पन्नाः तपया-

"तत्र भगवता स्तोत्रोत्सवः=अज्ञानादिक संभ्रास्य=ऋचम्। जानपदा=लाटदेशीयत्वा जना अक्षुण्यन्= यदियुष्टिपाठिनाज्याह्वयन्, तथा-कुपुताः अस्तिन्=अश्वत्थ, न्यपातयन्=निपातितवन्तश्च । अस्ती =रुतिपय एव श्रीवीर ऋषि को या-कार यदिति और इष्टि से भारा। वर सच उपसर्ग भगवान् ने सम्यक् प्रकार स सबन किये। इसके बाद दुर्गम लाट देश में विचार करने वाले भगवान् क्रमशः लाट देशकी वक्षश्रुतिनामक प्रवेश में तथा शुद्धश्रुति नामक प्रवेश में प्यारे। उस ऋषि और शुद्धश्रुति में भगवान् महावीर स्वामीन अनेक प्रकार के कौटो आदि के तथा स्त्री और गर्मी के एवं वैश्वसक आदि के कथों को समितियुक्त होकर, सम्यक् प्रकार से निरन्तर सदन किया। उहीने करीर को फट पहुँचाने वाले स्वामी में निवास किया, और फट कर आसनों का सेवन किया। उस लाट देशकी वक्षश्रुति एवं शुद्धश्रुति में भगवान् महावीर स्वामी को बहुत उपसर्ग पाये।

नैस-वही भगवान् को रुम्पा मूला आहार मिला। काट के लोगीन भगवान् का स्त्री-मुट्टी आदि से ठाकन किया। महावीर को कुण्ठने क्षान्त और नीच पनक दीया। वही के अधिक लोग तो, 'कुषे इस भ्रमण को काटे,'

उ ज्ञेय विचारिते कोरुके श्री अर्जुने उपसर्गवरी लाटकीजिरे तथा अक्षुण्यदुतेन मार आयो। भगवान् ते नाम अनभावे नकर भयो त्पारण्यर दुर्गम लाट देशको विचार करवा भगवान् इभयठ. लाट देशत्य वक्षश्रुति नामना प्रदेशमां तथा शुद्धश्रुति नामना प्रदेशमां पयान। ते वक्षश्रुति तथा शुद्धश्रुतिमां भगवान् महावीर स्वामीजि अनेक प्रकारमा अंटा आदिमा छरी अने जयभीना शस-पञ्चर आदिना छरीने समितियुक्त यथने सम्यक् प्रकारे निरन्तर सदन भयते तेमके करीरने इष्ट पौरुषादहार स्थानेमां निवास भयो जने इष्टकारी आकरोने। उपसर्ग सन्त्यो। ते लाट देशकी वक्षश्रुति एवं शुद्धश्रुतिमां भगवान् महावीर स्वामीने वक्ता उपसर्गो मया।

जैय है ली भगवान्ने कुषो-वही आहार भयते। लाटनी के इ जे कथनानिने लाटकी तथा मुट्टी नरु आना। तपने इष्टकारि करणमा जने नीच पयारी नाममा लाटनी के इष्टका नरु नाम अक्षुण्यने करु इष्ट

उच्छालय=ऊर्ध्वनीत्वा न्यघ्नन्=अत्ताडयन् अथवा=अथ च ते भगवन्तम् आसनात् अस्वलथयन्=पातवन्तः, तथापि=पूर्वोक्तोपसर्गोप कृतेष्वपि प्रणताशः निःस्पृहो भगवान् व्युत्सृष्टमायः-त्यक्तशरीरमोहः अप्रतिज्ञः-उद्वेलोक-परलोक-प्रतिज्ञायोजितश्च सन् दुःखं=वेदनाम् असहत्=सोढवान् । एवम्=अनेन प्रकारेण स भगवान् संवृतः=संवरयुक्तः सन् पुरुगान्=ठठारान् परीपहोपसर्गान्=शीतादियरीपहान् मानुषादि कृतानुपसर्गैश्च प्रतिसेवमानः सङ्ग्रामशीर्षे शूर इव अचलः=स्थिरः सन् एतै=विहार कृतवान् । एषः-अयं त्रिभिः=कल्पो मतिमता=बुद्धिमता माहनेन=माहने 'इत्युपदेशकेन अप्रतिज्ञेन=प्रतिज्ञारहितेन भगवता-श्रीवीरस्वामिना "एवं=मद्वत् सर्वेऽपि साधवः ईस्तां विहरन्तु" इति कृत्वा=इति विचार्य बहुशः=अनेकशः अनुक्रान्तः=अनुसृतः-पालित इति ॥मू०९२॥

मूलम्—तए गं भगव रोगेहिं अपुष्टेऽपि ओमोयारियं सेवित्था । अहय सुणगदंसणाईहिं पुष्टेवि, कास सासाइएहिं रोगेहिं अुष्टे वि भावियकाए णो से तेइच्छ साइजीअ । भगवं संसोहणं वमणं गायढ्भंगणं सिणाणं संवाहणं दंनपक्क वाळणं च कम्मबंधण परिणाय नो सेवीअ । गामधम्मआओ विरए अवाइ माहणे रीइत्था । सिंसिरम्मि

कर देने थे । अथवा धूलि से आच्छादित कर देने थे । अथवा ऊपर उछाल कर ताड़ना करते थे, अथवा आसन से नीचे गिरा देने थे । इतने सब उपसर्ग होने पर भी निःस्पृह-शरीर के प्रति निर्मम और इहलोक-परलोक संवधी प्रतिज्ञा-कामना से वर्जित प्रभु उस वेदना को सहन करते थे । इस प्रकार भगवान् ने संवर-युक्त होकर ठठार शीत उष्ण आदिकी परिपहों तथा मनुष्यादिकृत उपसर्गों को सहन करते हुए, संग्राम के अग्र-भाग में शूर पुरुष के समान, स्थिर भाव से विहार किया । इस विधिरूप का मतिमान् 'माहने' अर्थात् किसी को कष्ट मत दो, इस प्रकार का उपदेश देने वाले तथा अप्रतिज्ञ भगवान् महावीरने 'मेरे ही समान मत्र श्रमण आचरण करें' ऐसा विचार कर वार-वार पालन किया ॥मू०९२॥

त्रिविध प्रकाराना कष्टो पडोयात्ता हुता. शरीरनुं निहारथु करता अथवा धूयथी आच्छादित करी देता. अथवा उथकी उछणीने भारता हुता अथवा आसन परथी नीचे पाडी देता हुता आटला अथा उपसर्गो थवा छतां पथु निरुष्ट, शरीर प्रत्ये निर्मम अने इड्लोक-परलोक संबंधी प्रतिज्ञा-कामनाथी रक्षित प्रभु ते वेदनाने सहन करता हुता आ प्रमाणे भगवाने संवरवाणा थधने, कठोर डडी-गरभी आदिना परीपडो तथा मनुष्यादि वडे करायेला उपसर्गोने सहन करता हुता सअमना अथअलागमा रहेल वीर पुरुषनी नेम स्थिर भावे विहार कथो. "माहने" अेटवे डे डेगधने पथु न छुलो. जेयो उपदेश आपनार तथा अप्रतिज्ञ मतिमान भगवान भडावीरे "भारी नेमअ अथा श्रवथु आचरण करे" जेवुं विचारीने वारवार ते कल्प (विधि)नु पादन कथुं. (सू०९२)

उच्छात्य=ऊर्ध्वनीत्वा न्यग्रन्=अतडाडयन् अथवा=अथ च ते भगवन्तम् आसनात् अखलयन्=पातितवन्तः, तथापि=पूर्वोक्तेषु पसर्गेषु कृतेष्वपि प्रणताशः निःस्पृहो भगवान् न्युत्पृष्टक्रायः-त्यक्तशरीरसोहः अपतिज्ञः-इह्लोक-परलोक-प्रतिज्ञावर्जितश्च सन् दुर्बल=वेदनाम् असहत=सोढवान् । एवम्=अनेन प्रकारेण स भगवान् सप्रतः=संवरयुक्तः सन् पुरुषान्=कठोरान् परीषोपसर्गान्=शीतादिपरीपहान् मानुषादि कृतानुपसर्गान् प्रतिसेवमानः सद्ग्रामशीर्षे शूर इव अवलः=स्थिरः सन् एतै=त्रिहार कृतवान् । एषः=अयं विधिः=कल्पो मतिमता=बुद्धिमता साहनेन=‘माहन’ इत्युपदेशकेन अप्रतिज्ञेन=प्रतिज्ञारहितेन भगवता-श्रीवीरस्वामिना “एवं=मद्वत् सर्वेऽपि साधवः ईरतां विहरन्तु” इति कृत्वा=इति विचार्य बहुशः=अनेकशः अनुक्रान्तः=अनुसृतः-पालित इति ॥म्०९२॥

मूलम्—तए णं भगव रोगेहिं अणुद्वेवि ओमोयरियं सेवित्था । अहय मुणगदंसणाईहिं पुद्वेवि, काम सासाइहिं रोगेहिं अणुद्वे वि भाविप्राए णो से तेइच्छ साइजीअ । भगवं संसोहणं वमणं गायभंगणं सिमाणं संवाहणं दंनपम्वालणं च कम्मबंधण परिणाय नो सेवीअ । गामधम्माओ विरए अवाई माहणे रीइत्था । सिसिरम्मि

कर देने थे । अथवा श्रुति से आच्छादित कर देने थे । अथवा ऊपर उछाल कर ताड़ना करते थे, अथवा आसन से नीचे गिरा देते थे । इतने सब उपसर्ग होने पर भी निःस्पृह-शरीर के प्रति निर्मम और इह्लोक-परलोक संवधी प्रतिज्ञा-कामना से वर्जित प्रभु उस वेदना को सहन करते थे । इस प्रकार भगवान् ने संवर-युक्त होकर कठोर शीत उष्ण आदि की परीपहों तथा मनुष्यादिकृत उपसर्गों को सहन करते हुए, संग्राम के अग्र-भाग में शूर पुरुष के समान, स्थिर भाव से विहार किया । इस विधिकल्प का मतिमान् ‘माहन’ अर्थात् किसी को काट मत दो, इस प्रकार का उपदेश देने वाले तथा अपतिज्ञ भगवान् महावीरने ‘मेरे ही समान नव श्रमण आचरण करें’ ऐसा विचार कर वार-वार पालन किया ॥म्०९२॥

विधि प्रकाराना कष्टो पडोथाइता इता शरीरनुं विहारणु करता अथवा धूणथी आच्छादित करी देता इता. अथवा उथकी उछणीने भारत इता अथवा आसन परथी नीचे पाडी देता इता आटला अथा उपसर्गो थवा छतां पथु नि स्पृह, शरीर प्रत्ये निर्भम अने इह्लोक-परलोक संबंधी प्रतिसा-कामनाथी रहित प्रभु ते वेदनाने सहन करता इता आ प्रमाणे भगवाने सवरवाणा थधने, कठोर ठडी-गरमी आदिना परीषडे तथा मनुष्यादि वडे करायेला उपभोगीने सहन करता करता स अ.भना अग्रभागमा रहेल वीर पुरुषनी जेम स्थिर भावे विहार कथो. “माहन” अटले डे डेधने पथु न इथो अयेवा उपदेश आपनार तथा अप्रतिज्ञ भतिमान् भगवान् भडावीरे “भारी जेमण अथा थवथु आचरणु करे” कथुं विचारीने वारवार ते कथ्य (विधि)नु पादन कथुं. (सू०९२)

मगव छायाए आसीणे शार्दभ। गिम्हे य आयावीय, भायावे य उडुडए अन्डीअ। अः य मगवं ओयण
 : पुं कुम्मासं घेयाणि विगिग लूहाणि सीयलणि पडिसेविय अट्टमासे जाव इत्या। उओ य मगव अट्टमासं
 मास साडिए दुवे मासे छम्मासे य असणा इयं परिहाय रामोवराय अपठिने विहरित्या, पाणणेगिं गिगाण
 मन्ल ड्हेअित्या। एगया कयाचिं छ्हेय कयाचिं अट्टमेणं वसमेणं दुवाल्समणं समाहिं पेउमाणे अपडिन्ने भगव
 सुनित्या। गबा य स महावारे जो वेव पावगं सयमकासी, अन्नेहिं वा जो काहित्या, करंतंयिं गाणुनाणित्या।
 गाम जगारं वा पविस्स भगव पछाए कडे पासमेसित्या, सुविमुद्धतगेसिय आययजोगयाए सेवित्या। भित्त्वा
 यरियाए मर्मते मगवं वायसाएए रमेसिग सचे घासेसणाए चिद्धते पेहाए सयंताओ निरर्पीअ, अर य पुरओ
 ठियं समणं वा माहणं वा गामविओल्लमं वा भविहिं वा सोवार्गं वा पेहाए गिचट्टमाणे अप्पत्तियं परिहरते
 अरिसमाणे सया समिए मंदं मंदं परक्कमिय अशरय घासमेसित्या। सूर्यं वा अग्गंय वा उळं वा सुक्क वा
 सीयपिठ पुराणकुम्मासं अट्टमासं अट्टमासं पुल्लगं वा नं इद्वि लद्धं तं भावरित्या, लद्धे वा अक्खे वा पिठे दविए
 सममायेअ रीइत्या। उडुडुयाए आसणत्थे मगवं अडुडुए अपठिन्ने उड्डमभातिरियओयसकं समाहिय झाणं
 धाइत्या। छट्तमत्थेचि मगवं अक्खारिं विगयेहीं सरक्खारिं सुअमुच्छिए विपरकमाणे सधिए पमाय जो कुडित्या।
 आयसापीए आयतमोर्गं सयमेव अयिसमागम्म भमिणिच्छुडे आवकंअं अम्माड्हे मगव समिए आसी। एत्तो
 पिही मरमया माहणेण अपठिन्नेण मगत्त्या “अण्णेसि सुणिजो एव रीपुठु” ति कट्ट बहुसो अणुक्कंत्तो। ॥७०३॥

छाया—वत लच्छु मगवान् रोगैस्फुटोपि अवमोदरिक्कं सियेवे। अय च गुणकद्वयानादियि स्फुटोपि
 कासबासादिहै रोगैस्फुटोऽपि भाविअङ्कया नो स चैत्तित्यमस्मादयत। मगवान् संशोपन वमनं गात्राभ्यङ्गनं
 म्मान सत्राहन इत्तपशावन वा कर्मकरणं परिहाय नो असेषत ग्राम्यधर्माद् विरतोऽतोऽदी मान ऐवं। उशिरे च

मूक का अर्थ—‘तप ण’ इत्यादि। तदावान् मगवान् न रोगां स अस्पृष्ट होकर भी ऊनावर तप का
 सत्रन किया। इसके आतिरिक्त बानदशन भादि से स्पृष्ट होकर मो और भ्राम खासी आदि रोगों से स्पृष्ट
 न होकर माती रोगकी आच्छा का से भी मगवान् ने चिकित्सा नहीं करवाई। मयाइय का संग्राहन, वमन,
 मांसिक, स्नान, मर्दन, और वंतपावन को कर्मकरण का कारण मानकर सेवन नहीं किया। भैयुन से चित

उल्लेख अत्र—‘तप ण’ प्रिकारि अत्रवान् शत्रुअत्र न कत्वा, क्त्वा उविहारी तपुत्त तेजोत्ते आराध न भूय आ
 सिवाय तेभने पूराओ भरी क्त्वा नो कविअभां जेइ अरे न कदी अम आ आनवाही तोअय आम आम आदि होइ पव
 होवे क्त्वा नित्ते पण् अरिअभां शत्रु न शत्रु जे आरुआपी पण् धारिअ विजिया तेअवे इदि पण् भवानी नदि

भगवान् छायायामासीनोऽध्यायत्, ग्रीष्मे च आतापयत्, आतापे च उत्कृष्टक आस्त । अथ च भगवान् ओदनं मन्थुकुम्भाप चैतानि त्रीणि रूक्षाणि शीतलानि प्रतिसेव्य अष्टमासान् अयापयत् । ततश्च भगवान् अर्द्धमासं मासम्, साधिकौ द्वौ मासौ पण्मासांश्च अशनादिकं परिहाय रात्र्युषात्रमप्रतिज्ञो व्यहरत् पारणकेऽपि ग्नानानां वृभुजे । एरुदा कदापि पण्डेन कदाप्यष्टमेन दशमेन द्वादशेन समाधिं प्रेषमाणोऽप्रतिज्ञो भगवान् वृभुजे । ज्ञात्वा च न महातीरो नो एव पापक स्यमकार्षीत्, अन्यैश्च न नो कारयामास कुन्तमपि नान्वज्जानात् । ग्रामं नगरं वा प्रविश्य भगवान् परार्थीय कृतं शासमेपयामास मुञ्चिदुद्रं तमेवयिन्वा आयतयोगवया विप्रेभ्यः, भिक्षानर्थायै भ्रमन

और मौनधारा होकर माहन विचरे । जिगिर ऋतु में भगवान् ज्ञान में बैठे हुए ध्यान करते थे और ग्रीष्म ऋतु में आतापना लेते थे । आतापना लेते समय उत्कृष्टक ज्ञान से बैठते थे । भगवान् ने ओदन, मन्थु (बोर का चुरा) और कुल्हाप (उडद) इन तीन ठंडी और वाली वस्तुओं का सेवन करके आठ मास व्रिताये । भगवान् ने अर्द्धमास, मास, अर्द्धमास और छह मास तक अन्न आदि का परित्याग करके, उपतिष्ठ होकर विहार किया । पारणा के समय भी वापी भोजन किया । ऋषी नेत्र्य, ऋषी चोत्र, ऋषी पंचोत्र्य करके समाधि को देखते हुए अमतिष्ठ भगवान् ने विहार किया । पापके परिणाम को जानकर महावीरने न स्वयं पाप किया, न दूसरों से करवाया और न करते का अनुमोदन किया । ग्राम या नगर में प्रवेश करके भगवान् ने दूसरों के अर्थ बनाने गये आहार की एषणा की, और निर्दोष आहार को एषणा करके ज्ञानपूर्वक

मण विसर्जन, नभन, भास्त्रिथ, स्नान, भर्दन, दंतधावन विगिरे ने कुर्मणधनना शरत्त्वे शब्धी, तेषु सेवन तेजो करता नहि अने तेजो मैथुनथी सर्वथा विन्दत इता तेभज भीतधृतने धारषु करता इता. गिशिर ऋतुमा, तडडाभा उभा रडी आतापना लेता आतापताना समथे उच्छु आसन वापीने जेसता इता. लगवाने योअ. गोरना चूरे. अने अइ आ वषु ठडी अने वापी वस्तुजो वुं सेवन इरी आठ मास व्रिताव्या इता लगवाने पथ-वइथु मास-अही मास-अने छ मास सुधीनी तपस्था इरी विदारइथी. पाण्णाना गमथे पथु तेभने वापी गोरन क-वुं पश्युं इतु डोइ डोइ वपथे अकुम योना पाव उपवास विगिरे इरीने, द्रव्य-क्षेव डाल भाव ने जेई अप्रतिश (निश्चय रीते नहि) लगवान विदार करता इता पापना माहां परिषुभो जेई लगवाने स्वथं पाप कथुं नथी. तेभज डोइनी याने इराण्युं नथो. तेभज इरनारने अनुमोदन पावु आप्थुं नथी गांभ अगार नगरमा ल्यां ज्थां लगवान पधार्थां त्या त्यां तेभजे प्रामुक आडार अइषु कथी. प्रामुक आडार जेइडे, पोताना माटे बनानेवो नहि पषु निर्दोष आडार आवा आडारनी गवेधषु इरी, ज्ञानयोग द्वारा तेने जेई तेने उपयोग करता.

मगवान् नायसादिकान् रसैषिणः सरवान् प्रासैषणयै निष्ठतः प्रेक्ष्य स्वयं तस्मात् न्यषर्तत । अथ च पुरतः स्थित धमर्णं वा ब्राह्मणं वा ग्रामपिष्ठासर्गं वा भवित्यि वा श्वाकं वा श्वाकं वा प्रेक्ष्य निर्वर्तमानः अमत्ययं परिहरन् मर्दिमन् सदा सपितः मन्दं मन्दं पराक्रम्य अदत्र प्रासमोपयामास । मूर्धिकां वा अमृषिकं वा आर्द्रं वा शुल्कं वा शीतपिण्डं पुराणकुम्भापम् अथवा वक्त्रस्य पुलकं वा यत् किञ्चिदपि क्लृप्तं तत् आहरत् । उरुकुक्राद्यासनस्यो मगवान् अस्त्रैः कुर्योऽप्रतिष्ठ, उर्ध्वमधस्तिर्यक्तोऽरुच्यं समाधाय ध्यानमसुरायत् । छत्रस्योऽपि मगवान् अरुपायी सम्पन्न योग से उत्तमा सेवन किया । मिश्रावर्या के लिए अमण करते हुए मगवान् काक आदि प्राणियों को काल-एगवा के लिए स्थित देवकर वहाँ से लौट जाते थे । सामने लड़के हुए अमण को, द्राक्षण को, भिचारी को प्रतिधि को प्रवचन श्वाक को देवकर शपिस लौटके, अनिश्वास को उत्पन्न न करते, तथा हिसा से बचते हुए सरा समित्तिक, पीमे भीमे बसकर दूसरी नगर आहार की गवेषणा करते थे । बर्जजन से संस्कृत या अस्तकृत, गौला या युना उठा भोजन, पुराने उड़द अथवा छिलके या निस्सार अन्न-भोजन को भी मिल्गया उसी को प्राण कर लिया । मिला या न मिला तो भी संगमी मगवान् मुलविकार आदि घेत्पाएँ नहीं करते थे और अग्रनिष्ठ थे । कर्जलोक, अर्जलोक और विछेलोक के स्वरूप को जानकर ध्यान करते थे । छत्रस्य होकर भी मगवान् ने कृपायहीन, कनासक, कृन्द एवं रूप आदि में मूर्च्छां न करते हुए

भिक्षाये भ्रमण करती बभूते ने होइ स्थले 'दाजनास' अथवा होय अने ते स्थले प्राचीको आ 'अजवास'ना जोराकने देवा श्रेयं श्रेयं होय तो त्वांशी अजवान् आकार बीभा विना पाछ वणी बत्ता. आ उपरांत ने होइ स्थले अजवान् आकार भाटे प्रवेश करता अने त्वां ने तेको अमण, ब्राह्मण, विपारी, अतिथि (वजरेने उभा जेत्ता तो त्वांशी आकार बीभा विना इच्छाप पाछ वणी बत्ता. पाछ वणी बभूते पञ्च जेवी शीते आबी नीकणता के होइने पञ्च अदिनास करत न था. तेको उदाय द्विधाशी लजवा भाटे समित्तिक रबी भीमि भीमि आबी अन्न स्थले आकार अवेपण भाटे बत्ता उदा जोशय वधारदेवो कोच के वधारदेव न होय तेवो जोशय बीहो अजर कठव जोशय, अन्ना अरु वध तेना होवता अथवा अन्तहीन अशे ते इक्ष लोभन भणी अन्न तेने अजवान् अमण जोशय, अन्ना अरु वध अथव जोशय भवे के न भवे तो पञ्च तेको अमणद्विधाशी वध अवेपण क्यस्ता.

आकरे आधनशी जेसवा अजवान् इहापि पञ्च सुअनी विभूति तेम अन्न अन्न होइ श्रेयको करता नहि अने तेको अप्रतिष्ठ बत्ता. शीतलोक, अपिथोक अने तीरुजालोक अथव तीरुजालोक अथव विपारी तेको अजवान् अने उरुकुक्राद्यासन स्याथं पञ्च अजवान् इच्छाहीन अने अन्नासक अने अन्नासक रबी सन्त इप, अथ अथ अतिथि भूजोलाय करता नहि. पुरातान

भिगतयुद्धिः शब्दरूपादिषु अप्रसूच्छितो विपराक्रममाणः सकृदपि प्रमाद नाकरोत् । आत्मशांभ्या आयतयामि स्वयम् ।
अभिसमागम्य अभिनिर्गतः यावत् कथम् अमायी भगवान् समितः आसीत् । एवं विधिर्मतिमता साहनेन अपनि-
ज्ञेन भगवता महावीरेण 'अन्वेऽपि मुनय एवमीरताम्, इति कृत्वा बहुजोड्जुकान्तः ॥४०९३॥

टीका "तए णं भगवं रोगेहि" इत्यादि । ततः सलु भगवान्=श्रीवीरस्वामी रोगैः=इररादिभिः, अस्पृष्टोऽपि=
रहितोऽपि अवमोदरिक्तं=न्यूनभोजितरूपं तपः सिषेवे=सेवितवान् । अथ च=नया च शुनरुद्रगनादिभिः=कुरु
दन्ताघातादिभिः स्पृष्टोऽपि=समन्वितोऽपि कासघामादिकैः रोगैः अस्पृष्टोऽपि=रजितोऽपि=गामिगङ्गाया=आगामि-
रोगमन्देहेन तन्निवारणार्थमपि स भगवान्=चिकित्स्व=चिकित्साय=रोगप्रतिकारं नो अन्मादयन्=न अनुमोदितवान्,
-तथा=भगवान्=श्रीवीरस्वामी, संशोधनं=मलाशयादि-संशोधनं, वमनम्=गान्ति गात्राभ्यञ्जनं=गरीगभ्यङ्गं=गरीने

विशेष रूप से पराक्रम करते हुए एक चार भौ प्रमाद नहीं किया । आत्मगोधनपूर्वक स्वतः आयनयोग-ज्ञानपूर्वक
सम्यक् योग व्यापार का आश्रय लेकर यावज्जीव निरुत्तमय, अमायी और समित रहे । 'अन्य मुनि भी उली पकार
आचरण करें यह सोचकर मतिमान्, साहन अप्रतिष्ठ भगवान् ने अनेकवार इस आचार का पालन किया ॥४०९३॥

टीका का अर्थ—तव भगवान् वीरपशुने ज्वर आदि रोगों से अछूते होने पर भी ऊनोदर (भूल से
क्रम खाने रूप) तप का सेवन किया । कभी कृत्वा आदि ने काट माया तो भी तथा सांस और खांसी आदि
रोगों से रहित होने पर भी आगे कहीं ये रोग न हो जायें इस लिये उनके निवारण के हेतु भगवान् ने
चिकित्सा का कदापि अनुमोदन नहीं किया । भगवान् वीर मलाशय आदि की शुद्धि, वमन (उकट्टी-कै),

कर्म क्षय करवा भाटे पोतातु विर्यं-पराक्रम शौर्यता, अने ठोस पशु गमये प्रमादनुं वेदन करता नकि, आत्म-
शोधनमा आप्ठो भमथ गाणता. तेना सानपूर्वकं अग्रथक योगेता व्यापारनेो आश्रय लेता, अने आ प्रभाषे णपलव
सुधी निवृत्त रहीं अमायी यद्यने वर्ताता, तेम न पांथ संमिति अने नख गुप्तिना योगने धारणु करी सभय विनावता
तेवी न रति अन्य रुनिंया अभाइ अनुकरषु करथे ज्येग धारी तेजो अचं गाणतमा आदर्शरूप पोतानुं आरिच
धस्ता. आ नमुनाइप आरिच लावी पेढीने ज्येक आदर्श पुरे पाइथे ज्येम तेमनु सवेाट संतव्य वतुं. (सू०६३)
टीकाने अर्थ—भगवान् वीरप्रभुज्ये, ताव आदि रोगेथी रक्षित होवा छता इक्षत कर्मो अपावचना सेतुथी उनेादर
(भूय लागी होय तेना करतां ज्येछं पातुं) तपसुं सेवन कर्युं. इयारैक इतरा आदि करइवा छतां तथा धाम अने
उधरस आदि रोगेथी रक्षित होवा छतां पशु भविष्यमां कदाय ज्ये रोग न थाय ते भाटे तेना निवारणुना उदेश्यथी
पशु भगवाने चिकित्सातु कही पशु अनुमोदन आर्युं नई. लगवान् वीरप्रभु मणाशय आदिनी शुद्धि, वमन (उकट्टी),

तैलमर्दनं, स्नानं=मसिद्धम्, सवानं=शरीरअभ्यासोदनाय शरीरमर्दनं दन्तमसात्मनं=दंतपत्रमं च कर्मबन्धनं परि
 श्राय=दुद्धा घातिनो असेवत=न सेवितवान्। श्राय्यवर्मादि=मैथुनाद् विरत=यराभ्युत्सः अर्वादि=मौनशीलो माह्वनः
 मरिसापरायणो एतं=व्यारत्। श्चिशिरे कृतौ भगवान् छायायाश्च=दृशादीनां छायायाम्, आसीनाः=उपविशन्
 भयापयत=परमंध्यान कृतवान्, तया=श्रीमे कृतौ आतापयत्=व्यवहमार्चढावापनाम् असेवत, आतपे च उच्छुक्रुः=
 कृतोच्छुक्रासनः सन् आस्त=उपविशत्। अथ च मगवान् ओदन-मर्कं, मपु=श्वरादिचूर्मं कुरुमापं=मापं वेतानि
 श्रीभि अमानि रूपाभि=नीरतानि शीतलानि=अप्युपानि प्रतिसेव्य=मुश्च अष्टमासान् अयापयत्=व्यतिक्रातवान्।
 ततश्च मगवान्-श्रीवीरस्वामी भर्दमासे=पश, मास, साषिकौ=किञ्चिपिनाषिकौ द्वौ मासौ, पद्म मासाश्च अठनाधिकम्-
 भजन-यान-त्वादिसं-स्वादिमं परिहाय=व्यतया अपवित्र=इल्लोकफलोक्तमविश्वारविः सन् शम्भुपराप्रयन्निन्तर
 ध्यारत=संगममार्गो विहारं कृतवान्। पारजके=पि=यारभायामपि मगवान् स्नानाश्च=पुपितान् पुञ्जो=सुकृवान्।
 एकदा क्तादपि=समार्पि=पितृव्यस्वर्ता मेसमाणाः अमतिष्ठो मगवान् पळेन=पठमर्कं कृत्वा कदापि अष्टमेन=

शरीर की मालीश, स्नान, शारीरिक यकाष्ट को मिटाने के लिए मर्दन और दौरीन करने को कर्मबन्धन का
 कारण जानकर कभी सेवन नहीं करते थे। मैथुन के त्यागो, मौनी, अरिसापरायण होकर विचरते थे। शीत
 ऋतु में मगवान् इस आदि की छाया में बैठ कर धर्मध्यान में लीन रहते थे, शरीर शील्यऋतु में प्रवृद्ध सूर्य की
 भागापना छेते थे। आतापना छेते समय उरुहू भासन से बैठते थे।
 मगवान् ने ओदन (मत्त), मंपु=शोर आदि का चूरा और उद्द, इन तीन रूखे और घासी अर्को का ही
 मचन करके भाठ मरीने पिताये। मगवान् ने अपमास (एक पल), एक मास, कुछ दिन अधिक वो मास
 और छह मास तक भजन पान त्वादिस और स्वादिस आहारों का परित्याग किया और अमविष्ट होकर निन्तर
 शरीरतु भाविक, स्नान, शारीरिक शक इर करवाने आ? भजन करने बातक करवा (वदेशे किवाकोने कर्मवध
 भजन भभञ्जे ही तेषु सेवन इच्छा नहीं सिद्धने। सपशाल्पान हरी भोन धारण हरी करने अरिसापरायण्य भउने
 विवशना दत्त। इमी ऋतुभां लजवान वृक्ष काठिनी छाभां शिमीनि धर्मध्यानभां दीन रहता क्ता करने श्रीभ भतुभां
 प्रवृद्ध सूर्य की भातापना देता क्ता आतापना देवी वभते उरुहू भासने शिखता क्ता लजवाने कोठम (भाट),
 नभू (विश) आदिनि चूरे। अने अठ्ठ के मय छेप्रा अने बाधी अठ्ठो अ सेवन हरीने क्ता आश पशाय हर्वा
 लनवाने मय नास (मिक् भयवादिभू) जिक आश के भाउ उपर देठकाय विषया अने उ मास सुधी भाजन पान
 परीभ अने अरदिम का शिने। ल्पान हरी अने अरदिम (लिखित हरी अदि) अने निरत (अशर भजन पान

अष्टमभक्तं कृत्वा, कदापि दशमेन=दशमभक्तं कृत्वा, कदापि द्वादशेन=द्वादशभक्तं कृत्वा बुभुजे=बुक्तवान् । गत्वा=
पापकर्मपरिणामं दुष्टं ज्ञात्वा च सः=भगवान् महाश्रीरस्वामी गपकं=पापकर्म-प्राणातिपातादिकं नो एव=नैव स्वयम्
अकार्षीत्=कृतवान् । तथा-अर्चैर्नैश्च नो कारयामास=न कारितवान्, कृत्यन्तं=प्राणातिपातादिकं पापं कर्म कर्तुं
नान्यजानात्-नानुमोदितवान् । ग्रामं नगरं वा प्रसिद्ध्य भगवान्-श्रीश्रीरस्वामी परार्थाय=अन्यजननिमित्ताय कृतं=
निष्पादितं ग्रासम्=आहारम् एषयामास=गवेषितवान् । मुक्तिशुद्धम्=आधारुमौदोपवर्जितम् एषणीयं तं=ग्रामम्
एतद्वित्वा=गवेषयित्वा भगवान् आयतयोपतया=सम्पद्भूषणोवाहायव्यापारपूर्वकं-समभावेन मिषे=सेवितवान् ।
तथा भिक्षाचर्यायै=भिक्षार्थं भ्रमन् भगवान् रसैर्पिणो=रसेनेन्द्रियविषयलोलुपान चायमादीन्=कारुण्यतीन् सत्वान्=
विहार करते रहे । पारणामें वासी अब का सेवन किया । कभी कभी भगवान् चित्त की स्वस्थता का विचार
करके अमतिष्ठ शाय से ब्रेला करके आहार करते थे, कभी तेला करके, कभी चौला करके और कभी-
कभी पचोला करके, पाप के दुष्ट फल को जानकर महाश्रीरस्वामीने प्राणातिपात आदि पापकर्मों का स्वयं सेवन
नहीं किया, दूसरों से सेवन नहीं कराया और पापों का सेवन करने वालों का अनुमोदन नहीं किया ।

ग्राम अथवा नगर में प्रवेश करके महाश्रीरस्वामीने दूधरे रनों के लिए वनाये हुए आहार की
गवेषणा की । आधारुम आदि दोषों से रहित तथा कल्पनीय आहार की गवेषणा करके भगवान् ने उमका
सम्यक् मन वचन काय के व्यापार के साथ अर्थात् समभार से सेवन किया । भिक्षा के लिए भ्रमण करते
हुए भगवान् रस के अभिलाषी अर्थात् जिह्वा के विषय-रस के लोलुप, काक आदि प्राणियों को आहार की

पारुष्याभा वासी अन्नं सेवन कर्तुं । अर्द्ध डोर्द्ध वार भगवान् चित्तनी स्वस्थतानां विचार करीने अप्रतिश्र बावथी
छड करीने, तो क्यारेक अक्षुभ करीने, तो क्यारेक चौला (या- उपवास) करीने अने क्यारेक पंचोला (पाच उपवास)
करीने आधार लेता हुता ।

पापन दुष्ट इणने भाषीने भयानार स्वामीञ्जे प्राहृ तिपात आदि पापकर्मोनुं न तो पोते सेवन कर्तुं के
न भीज पासे सेवन करान्यु तेम अ पापोनु सेवन करनारने क्ठी अनुमोदन पषु न आप्युं ।

ग्राम अथवा नगरमा प्रवेश करीने भक्षानीर भगवाने शीन लोको भाटे जानवेस आहारनी गवेषणा करी
आधाकर्म (डेवण साधुना निमित्ते अनायकु ते) आदि द्वयो विनाना तथा इद्वे (स्वीकारी शक्य) तेवा आहारनी
गवेषणा करीने भगवाने तेदुं सम्पद् भण, वचन, कथाना व्यापार आथे ज्येद्वे के सभभावथी सेवन कर्तुं । निसांशं
भगवान् न्यारे विचरता त्यारे जे केर्द्ध रगना अ निवाषी ज्येद्वे के छरुता विषय-रसना वास्यु, अगडा (वगेरे

पापिनः प्राप्तेषणार्थे=आभारान्तेषणार्थे विच्छेदः प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा” स्वयं तस्मात्=माणिनामाहारा-षेणस्थानात् न्यबर्तव=
 परावर्तव । भय च सुरतः=स्वामनान्तपूर्वतः स्थितं भ्रमणं=आरपादिकं वा भ्रमणं वा ग्रामपिण्डान्तरणं=धीरया-
 नीचमयागनिर्वाहकं तच्छ्रुश्रामाभयिण मिश्रकवियोरं वा अतिथि=साधुं वा श्याक=वाण्डाय वा मेच्य=दृष्ट्वा तेषां
 पूर्वतः स्थित भ्रमणादीनामन्तरारो मा भूदिति शुद्धया ततो निर्वृत्तानः, तथा-जनेषु पूर्वोक्तभ्रमणादिविषयम्
 भ्रम्ययम्=अविश्वास परिहरन्=परित्यजन्, अहिसन=मणालिपातादीन् वर्जयंश्च सदा=सर्वदा समित.=ईश्यांसमि
 त्याविशुक्तः सन् मन्वं मन्वं=अनैः हने पराक्रम्य=पराहृत्य-निहलो भूत्वा अन्यम्=भारस्थाने प्राप्तम्=भारत्सु
 पपयामास=यावेपितवान् । एव भिक्षाचर्यायां तेन वृषिकं=व्यञ्जनादियुक्तं वा अमृषिकम्=न्यञ्जनादिरहित वा, आर्द्र=
 मसिद्धम् शुष्क=नीलं मर्मितवणकादिकं वा शीतपिण्डम्=पर्युपितमाहारं पुराणकुर्यात्=जीर्णमापम् अथवा-यद्वा-
 लील में स्थित देवक, स्वयं ही उस स्थान से निवृत्त हो जावे ये । इसके अतिरिक्त अपने पढ़ूँगे मे पहले से

लखे शक्य आदि भ्रमण को, श्रमण को, अथवा शील मंग कर जीवन-निर्वाह करने वाले विदमगे को,
 अथवा किसी विश्वप ग्राम का आश्रय देने वाले भिक्षुक का साधु को, या चण्डाल को दत्तकर उन भ्रमण
 आदि को मोहन-नाम में विद्व न हो जाय, ऐसा विचार करके उस स्थान से फिर जाने थे । तथा ओगो में
 उक्त भ्रमण द्राघण आदि के अविश्वास का परिहार करने हुए मणालिपात आदि पाणों से यत्ने हुए गंदे
 ईर्ष्या आदि मन्त्रेनिर्वा से सम्पन्न शक, पारं धीर फिरकर दूसरे स्थान पर आहार की गयेपणा करते थे ।
 दूसरे स्थान पर भी चारे व्यजन आदि से संस्कार किया हुआ आहार मिले या संस्कार न किया हुआ मिले,
 गीणा मिले या खुने चने आदि कृत्वा गुन्ना मिले, चासी मिले या पुराने उड़द मिश्र, चने आदि के मिश्रके

आशीकोने आकारनी घोषर्था ठोका जेता ता तेका पोते ते कथाजेथी पाछ ही कता कथा तपुपसंत पोते
 त्वां पछेथ्या पछेबां त्वां ठोका दाम्भ अदि भ्रमणने, ब्राह्मणेने अथवा श्रीपु आशीने एणमणिय द ६२२पर जिणारी
 कोने अथवा ठोइं आठ पाथेने आश्रय देनार मिश्रउने, साधुने के बांदावने कोउने ते सभय आदिने लोअनआसिभां
 विभइप न थय तेरा इरथथी विचार करीने तन्ना ते स्थानेथी पाछ ही कता कथा तथा बोधोभां पवोका सभय,
 प्राकषण आदिना अविश्वासने। त्याज इत्वा आकृतिपठ अदि पायेथी कता कथे भयां आदि अमितिआधी मुअ
 धरुन धीर धीर हीने वीउ कथाजे आकारणी अवेपणा इत्वा कता वीउ कथाजे पय आडे शाड-काउ उचितना
 आकार भये के आडे शाड-काउ विनाने। आकार भये, अग्नि आकार भये के शोउता भया आदिने। उअ-सुहा
 आकार भये चासी भये के उराका अहा भये अग्ना आदिने। त व । भये के विचारण भय भये के उअ-सुहा

वक्रसं=चणकादितुषं पुलकं=निःसारमन्त्रं वा यत् किञ्चित्=यत् किमपि कल्पनीयं लब्धं=प्राप्तं तत् स आहर्त्स्व=
 भुक्तवान् । तथा-भिक्षाचर्यायां पिण्डे=प्रासे लब्धे-प्रासे अलब्धे=प्राप्ते वा द्रविकः=संयमी स भगवान् सम-
 भावेन=लाभालाभे च तुल्यभावेन ऐतं=विहारं कृतवान् । तथा-उत्कुडुकाद्यामनस्थः=उत्कुडुकाद्यामनेन स्थाता
 भगवान्-श्रीवीरस्वामी अकौकुच्यः=मुखविकारादिरहितः अपतिल्लः=उभयलोकप्रतिज्ञावर्जितश्च सन् ऊर्ध्वम् अधस्तित्य-
 ग्नेो हस्वरूपं=लोकत्रयस्वरूपं समाधाय=विचारधानेन ज्ञात्वा ध्यानम्=धर्मध्यानम् अध्यायत=कृतवान् । छद्मस्योऽपि=
 अनुत्पन्नकेवलज्ञानोऽपि भगवान्=श्रीवीरस्वामी, अरुपायी=क्रोधादिकपायरहितः विगतयुद्धिः=युद्धिभाववर्जितः शब्द-
 रूपादिषु-शब्दरूपगन्धरसस्पर्शेषु अस्मृच्छितः=अनासक्तः विपराक्रममाणः=विशेषेणात्मसामर्थ्यं वितन्वन् सकृदपि=
 एकवारमपि, प्रमादं नाकरोत=न कृतवान् । तथा-भगवान् आत्मशोध्या=आत्मशोधनेन-आत्मशोधनपूर्वकम् आयत-
 योगम्-सम्यक् मनोवाकायव्यापार स्वयमेव=स्वत एव, अभिसमागम्य-आश्रित्य यावत्कथ=यावज्जीवम् अभिनिर्वृतः=

मिले या निःसार अन्न मिले, जो कुछ भी कल्पनीय मिल जाय उसी का आहार करते थे । भिक्षाचर्या में
 आहार मिला तो और न मिला तो संयमगील भगवान् मध्यस्थभाव में ही विचरते थे ।

उकडू आदि आसनों से स्थित भगवान् वीरप्रभु सुब आदि किसी अंग पर विकार नहीं होने देते थे ।
 इहलोक और परलोक की प्रतिज्ञा से रहित हो कर तीनों लोकों के स्वरूप का मनयोगपूर्वक चिन्तन करके धर्म-
 ध्यान में संलग्न रहते थे । यद्यपि उस समय भगवान् केवलज्ञानी नहीं-छद्मस्थ थे, फिर भी क्रोध आदि कपायों से
 रहित थे, समत्व से रहित थे और शब्द रूप गंध रस और स्पर्श रूप पाँचों इन्द्रियों के विषयों में अनासक्त थे ।
 विशेष रूप से अपनी आत्मा का सामर्थ्य प्रकट करते हुए एक वार भी भगवान् ने प्रमाद नहीं किया ।
 आत्मा की शुद्धिपूर्वक, सम्यक् मन वचन काय के व्यापार को स्वयं ही आश्रित करके भगवान् जीवन-पर्यन्त

करके जो भी क्रोध आदि आसनों की रहेता वीरप्रभु सुभ आदि कौडि पञ्च अंग पर विकार थावा हेता नहि. छुडोडक अने
 परदेडनी अनिसाथी रहित थरुने त्रुषे डोकना दनइपनु मनोयोगपूर्वक चिन्तन करीने धर्मध्यानमां दीन रहेता हुता.
 जे डे ते सभये भगवान डेवण सानी न हुता पञ्च छधस्थ हुता, तो पञ्च डोध आदि कथयो रहित हुता, सभत्व
 विनाना हुता; तेमज शुक, इप, गंध, रस अने स्पर्शइप जेम पांचे इन्द्रियोना विषयमा अनासकत हुता. विशेष
 इपथी पे ताना आत्मार्तुं सामर्थ्य प्रगट करता भगवाने जेक वार पञ्च प्रमाद सेव्यो नहि. आत्मानि शुद्धिपूर्वक,
 सम्यक् मन, वचन अने कायाना व्यापारने पोते ज आश्रित करीने भगवान आश्रवण निवृत्तिभाववाणा माया विनाना

करके जो भी क्रोध आदि आसनों की रहेता वीरप्रभु सुभ आदि कौडि पञ्च अंग पर विकार थावा हेता नहि. छुडोडक अने
 परदेडनी अनिसाथी रहित थरुने त्रुषे डोकना दनइपनु मनोयोगपूर्वक चिन्तन करीने धर्मध्यानमां दीन रहेता हुता.
 जे डे ते सभये भगवान डेवण सानी न हुता पञ्च छधस्थ हुता, तो पञ्च डोध आदि कथयो रहित हुता, सभत्व
 विनाना हुता; तेमज शुक, इप, गंध, रस अने स्पर्शइप जेम पांचे इन्द्रियोना विषयमा अनासकत हुता. विशेष
 इपथी पे ताना आत्मार्तुं सामर्थ्य प्रगट करता भगवाने जेक वार पञ्च प्रमाद सेव्यो नहि. आत्मानि शुद्धिपूर्वक,
 सम्यक् मन, वचन अने कायाना व्यापारने पोते ज आश्रित करीने भगवान आश्रवण निवृत्तिभाववाणा माया विनाना

विद्विषिभावनसम्पन्नः, अमायी=मायावर्जितः समितः=र्न्यौसमिस्थ्याद्विपञ्चसमिधियुक्तम् भासीव । एयः=पूर्वोक्तो विधिः=
 इत्यः मतिमतान्यथाश्रित्ना माहनेन=अद्विसारापणेन अमतिज्ञेन=उभयलोकप्रतिष्ठापरितेन सगवता “अन्येऽपि=
 मन्त्रितरेषुचि युनयः=साधवः एकम्माहव ईरताशु=विहरन्तु” इति कृत्वा=इति विचार्य बहुशुभः=सर्वथा अनुकान्तः=
 अनुसूताः=पाल्ति इति ॥६-१३॥

यूक्तम्—त ए नं समणे गगर्षं महावीरे सप्तवेसायो पद्विम्बितसमप पद्विम्बितसमिषा जेजेव सावस्थी गयरी
 तेजेव उवागच्छा, उवागच्छिथा तस्य विविधैर्षं वसोक्रम्येर्षं अप्यात्म मावेमाणे वसम चाउम्मात्सं ठिए । तस्य णं
 अट्टमवर्षेण एराताय विस्सुगद्धिमं पद्धिन्ने क्षालं श्रियाइ । तस्यपि विग्घे माणुस्से तेरिच्छे नाणाविदे उवसणे
 सम्य सद्ध । एवं विदेव विराजेव विहरमाणे गगर्षं एगात्सं चाउम्मात्सं वेसायीए गयरीए ठिए, तम्भो पच्छा सुसुमार
 यपरं समणुक्के, तम्भो णं विहरमाणे कोत्तबीए गयरीए समोसरिए । तस्य णं सपानीओ राया । मिगावर्ई मसिसी ।
 तीए चिनया पद्धिहारिया । राइणामभो वम्मपासणे । गुणणामा अमभो तस्स नद्धा मज्जा, सा साविया आमी ।
 अयू मिगावर्षेण रायमरिसीए सती होत्या । तस्य णं गगव पोसमुद्धाए पठिवयाए वृष्वलेचकालभावं समसस्य
 तेरसत्सु समावले इम एयाक्खं अमिगाइं अमिमाहीम । तं जरा-दुग्धभो सुण्णोणे १, वरुणियामासा २ होजा ।
 खेत्तभो दाइया कारागारे ठिया ३, तस्यपि देहलीए ४, उवदिद्धा ५, सा सुण एण पापं चार्हि एणं पाय अंतो
 श्रिया ठिया ६ मवे । काळभो तइयाए पोरिमीए अथभित्तयारेहि निन्नेवेहि ७, मायभो दाइया कयकीया
 दासिर्षं पवा रायकक्षा ८, निगठवद्धइयपाया ९, हीडियमयया १०, पदकच्छा ११, अट्टमवत्तुवा १२, अस्सुणि
 युपमाणा १३ होजा । एवारिसेण अमिग्गदेव नइ भासारे मिधिसिइ वो पालणे करिस्सामि, अन्नवा छम्मासी
 तत्र करिस्सामिधि बहु मगदं धिरव्हाए अट्टइ । गगवभो सो अमिमारो न कत्यइ परिणुयो इवइ ॥६०१३॥

निवृष्टिमात्र से सम्पन्न, माया से रहित और पाँच समिवियों से युक्त रहे । यह विधि मेघाबी, अद्विसारापण
 और इमोक्क-परमोक्क सर्वधी प्रतिष्ठा से रहित सगवत ने ‘अन्य युनि मी इसी प्रकार इस आचारका पाठन
 करें’ इस प्रकार विचार कर इस आचार का पूरी तरह पालन किया ॥६०१३॥

मन पाँच अमिठिमाधी युक्त रहा. आ प्रभावो मिघाबी, अद्विसारापण अने उड्डिओ-परवेडिअ अन्धी प्रतिष्ठाओ
 रहित सगवतने, जीव अुनिमा अन्न आ रीते आ आचारसु पाठन करे” जेअ विचारते आ आचारसु अ-
 रीते पाठन करे” (अ. ६०)

ज्या —ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरो लाटदेशात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत्र विचित्रेण तपःकर्मणा आत्मानं भावयन् दशमं चातुर्मासं स्थितः। तत्र खलु अष्टमत्तपसा एकरात्रिकीं भिक्षुप्रतिमां प्रतिपन्नो ध्यानं ध्यायति। तत्रापि दिव्यान् मानुषान् तैश्चान् नाना-विधान् उपसर्गान् सम्यग् सहते। एवं विधेन विहारेण विहरन् भगवान् एकादशं चातुर्मासं वैशाल्यां नगर्यां स्थितः। ततः पश्चात् शिशुमारं नगरं समनुभासः। ततः खलु विहरन् कौशाभ्यां नगर्यां समवसतः। तत्र खलु शतानीको राजा। मृगावती महिषी। तस्या विजया प्रतिहारिका। वादि नामको धर्मपालकः। गुप्तनामा अमात्यः; तस्य नन्दा भार्या। सा श्राविकाऽऽसीत्। असौ मृगावत्या राजमहिष्याः सखी बभूव। तत्र खलु भगवान् पौष-

मूल का अर्थ—‘त ए ण’ इत्यादि। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर लाट देश से विहार करके जहाँ श्रावस्ती नगरी थी वहाँ पधारे। पधार कर विचित्र प्रकार के तपः कर्म से आत्मा को भावित करते हुए दसवाँ चौमासा वहाँ किया। वहाँ अष्टमत्तक (तेले) के साथ एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा को अंगीकार करके भगवान् ने ध्यान किया। वहाँ भी देवों संबंधी, मनुष्यों संबंधी तथा तिर्यंचों संबंधी नाना प्रकार के उप-सर्गों को भलीभाँति सहन किया। इसी प्रकार के विहार से विहारे हुए भगवान् ने ग्यारहवें चतुर्मास वैशाली नगर में किया। तदनन्तर शिशुमार नगर में पधारे। शिशुमार नगर से विहार करके कौशाभ्यां नगरी में पधारे। वहाँ शतानीक राजा था। मृगावती महारानी थी। विजया नामकी महारानी की द्वारापालिका थी। राजा का चादी नामक धर्माध्यक्ष था, और गुप्त नामक अमात्य था। अमान्य की पत्नी का नाम नन्दा था। वह श्राविका थी। वह राजरानी मृगावती की सखी थी।

भूणने। अर्थ—‘त ए णं’ अर्थादि श्रमणु भगवान् महावीर, लाटदेशभाषी विहार करी, श्रावस्ती नगरीमा पधावां। अथम-तप विगेरेथी आत्माने भावित करी दशसु चातुर्मास त्या कथुं। अहिं अहुमनुं तप आहरी, अेक गत्रीनी लिधुपडिमा अगीकार करी, ध्यानमभ्य थया अहिं पथु, देव-मनुष्य-तिर्यंचोना उपसर्गो भत्री बांतिथी तेमणे सहं कथां आ प्रकादे विचरता. अ-थारसु यौभासु वैशाणी नगरीमा तेमणे कथुं. त्यारणाह शिशुमार नामना नगरमा तयो पधायां अने शिशुमार नगरथी बिहार करी, कौशाभ्यां नगरीमा, तेमनुं आगमन थयुं. आ कौशाभ्यां नगरीमा शतानीक नामे राण् राल्य करतक हुता तेने मृगावती नामनी राणी हुती. आ राणीने (सकथा नामनी अगदरिक्षा हुती. राभने ‘प ही’ नामने। धर्माध्यक्ष हुतो. अने ‘गुप्त’ नामने। अमात्य हुतो. अमात्यनी पत्नीनुं नाम ‘नन्दा’ हुतु आ नदा श्राविका हुती, अने महाराणी मृगावतीनी अहेनपणी हुती.

निवृत्तिभास्वम्भः, अमायी=मायावर्तितः समितः=र्यासमित्यादिपञ्चसमितियुक्तमसीत्। एषः=पूर्वोक्तो विधिः= कृत्यः मतिमता=येषांविना माहनेन=अहिंसापरायणेन अयतिभेन=उभयलोकप्रतिष्ठापरिषेन भगवता “अन्येऽपि= नदितरेऽपि मुनयः=साधवः एकै=भद्र इत्यादि=विशरन्तु” इति कृत्वा=रिति विचार्य बहुधा=सर्वथा अनुक्रान्तः= अनुवृत्तः=पाल्ति इति ॥ सू. ९.३॥

मूलम्—उप नं समणे भगवं महावीरे लक्षयेसाओ पहिभिक्षमइ पहिजिन्समिषा जेणेव सावल्पी णयरी वेणेव उवाताच्छा, उवागच्छिषा वस्व विचिचेनं वसोक्रमेवं अयाण यावेमाणे दसम चाउम्मासं ठिए। तस्य नं भट्टमववेवं एगाराय मियसुवठिम पहिवन्ते ब्रह्मं छियाइ। तस्यति दिठ्ठे माणुस्से तेरिन्ठे नयाविहे उवसणे सम्मं सइ। एवं विहेव विहारेण विहरमाणे भगवं एगारसें चाउम्मासं वेसालीए भयरीए ठिए, तसो पच्छा सुसुमारं यपरं समणुषे, तसो नं विहरमाणे कोसंबीए भयरीए समोसरिए। तस्य नं सयाणीओ राया। मियावई मरिसी। तीए वितया पहिबारिया। वाइभामओ घम्पणसगो। गुणवामा अमसो तस्स नंदा मज्जा, सा साविया माली। अय् मियावर्त्तए रायमरिसीए सही होत्वा। तस्य नं भगवं पोससुद्धाए पहिवयाए वृच्चलेयकालमावं समस्सिय वेरसतस्यु समाठसं इम एयाक्वं अभिमावीम। तं जहा=वन्वओ सुपकोणे १, बफियामासा २ होज्जा। खेचओ धारया कापागारे ठिया ३, तस्यति वेरसीए ४, उवच्छि ५, सा पुण एगं पायं बार्हि एगं पायं अंतो छिषा ठिया ६ मये। कावभो वर्याए पोरिसीए अन्नमियापरेहिं निव्वचेहिं ७, भावयो दाइया इयकीया दासिष पमा रायकळा ८, निगडदइरुयपाया ९, मुंडियमत्यया १०, बद्धकच्छा ११, भट्टमववसुषा १२, अस्वप्पि मुपमाणा १३ होज्जा। एयारितेण अभियगणेण जइ आहारो मिसिस्सइ सो पाणनं करिस्सामि, अन्तहा छम्मासी तं करिस्सामिपि इदु भगवं भिरच्छाए मइइ। भगवभो सो अभिमाहो न कृत्यइ परिपुण्यो इवइ ॥ सू. ०९.३॥

निवृत्तिभात्र से सम्पन्न, माया से रहित और पाँच समितियों से युक्त रहे। यह विधि मेधावी, अहिंसापरायण और शत्रुको-पत्नोक्त सर्वधी प्रतिष्ठा से रहित भगवान् ने ‘अन्य मुनि यो इसी प्रकार इस आचारका पालन करें’ इस प्रकार विचार कर इस आचार का पूरी तरह पालन किया ॥ सू. ०९.३॥

अन पाँच अधितिष्ठोधी सुखं इव आ प्रभासे शिवावी, अविद्यापशयण अने छिदो=परलोक सन्धी प्रतिष्ठाधी शिर कथनने प्पीब मुनिजो प्पुं आ पीते आ आचारइ पालन इइ” जेय विधाहीने आ आचारइ क प्पुं पीते पालन इइ” (स. ६३)

टीका—‘तए णं समणे भगवं’ इत्यादि । ततः लाटदेशविहरणानन्तरं खलु श्रमणो भगवान् महावीरो लाटदेशात् प्रतिनिष्क्राम्यति=प्रतिनिःसरति, प्रतिनिष्क्रम्य=प्रतिनिस्त्य यत्रैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत्र=श्रावस्तीं नगर्यां, विचित्रेण=अनेकप्रकारेण तपःकर्मणा=तपश्चरणेन आत्मानं=स्वं भावयन्=वासयन् दक्षमं चाहुमांसं स्थितः । तत्र-अष्टमतपसा=अष्टम⁺त्केन एकरात्रिकीम्=एकस्यां रात्रौ भवाम् भिक्षुप्रतिमां=मुनेर-भिग्रहविशेषम् प्रतिपन्नो ध्यानं ध्यायति=करोति । तत्रापि भगवान् श्रीमहावीरस्वामी दिव्यान्-देवकृतान्-मानुषान्-मनुष्यकृतान् तैश्चान्=तिर्यकृतान् नानाविधान्=बहुप्रकारान् उपसर्गान् सम्यक् सहते=कोधाभावैः । एवंविधेन=पूर्वोक्तप्रकारेण विहारेण विहरन्=ग्रामानुग्रामं विचरन् भगवान्-श्रीवीरस्वामी एकादशं चाहु-मांसम् वैशाल्यां नगर्यां स्थितः । ततः पश्चात्=चतुर्मासमाप्त्यनन्तरं भगवान्-शिशुमारं नगरं समनुभासः=

अभिग्रह करके भगवान् भिक्षा के लिये भ्रमण करते थे, मगर वह अभिग्रह कहीं पूरा नहीं होता था ॥ ४०९॥ टीका का अर्थ—लाट देश में विचरण करने अनन्तर श्रमण भगवान् महावीरने लाट देश से विहार किया । विहार करके जहाँ श्रावस्ती नामकी नगरी थी, वहाँ पधारे । और अनेक प्रकार के तपश्चरण से अपनी आत्मा को भावित करते हुए भगवान् ने दसवाँ चौमासा वहीं किया । वहाँ पर भगवान् ने अष्टम-भक्त (तेले) की तपस्या के साथ एक रात में पूर्ण होने वाली भिक्षुप्रतिमा-मूर्ति के त्रिशिष्ट अभिग्रह को अंगीकार करके ध्यान किया । वहाँ भी भगवान् श्रीमहावीरने देवकृत, मनुष्यकृत और तिर्यचकृत तरह-तरह के उपसर्गों को विना क्रोध के सहन किये । इसी प्रकार के विहार को अंगीकार करके एक गौव से दूसरे गौव विचरते हुए भगवान् वीर प्रभुने ग्यारवाँ चौमासा वैशाली नगरी में किया । चौमासे की समाप्ति के पश्चात्

नक्षितर, ते तपनी वृद्धि करो, छमास सुधी जेथी जवुं, खेहुं लगवाने मनथी नखी कथुं’ इत्तु. आये अलिग्रह धारखु करी, बक्षार्थे करवा इत्ता. पर तु तेनी पूर्तिना योग नखी बनता, तेभुं आहार अर्थे तु परिभ्रमणु थाहु रड्युं. (सू०६४)

टीकानो अर्थ—लाटदेशमां विचरणु कयां पछी श्रमणु लगवान महावीरे लाटदेशमाथी विहार कथो. विहार करीने न्या श्रावस्ती नगरी इत्ती त्या पधार्थो. त्या अनेक प्रकारनी तपश्चर्या करीने चोताना आत्माने भावित करता लगवाने त्या ज हससुं थोभासुं कथुं. त्यां लगवाने अष्टकृत (अष्टम)नी तपस्थानी साथे ओक रातमां पूषुं भनारी भिक्षुप्रतिमा-सुनिना विशिष्ट अलिग्रहने अंगीकार करीने ध्यान धरुं. त्यां पणु लगवान श्री महावीरे देवकृत, मनुष्य-कृत अने तिर्यचकृत अतन्वतना उपसर्गो क्रोध कथा विना सहन कथा.

आ प्रभाषे विहारने अंगीकार करीने ओक गाभथी ओले आम विचरता लगवान वीरप्रभुअे वैशाली नगरीमां

शुद्धायां प्रतिपदि द्रव्यस्यैककालमात्रमाश्रित्य प्रयोदशवस्तुसमाकुलम् इममेतदप्यम् अग्निप्रशस्नस्यस्युद्धत् । तद्यथा-
 "द्रव्यतः सूर्यकोणे १, शायिता मापा ३, मर्बेयुः । क्षेत्रतो दायिका कारागारे स्थिता ३, तत्रापि दोरस्या ४,
 सुपयिता ५, सा पुनरेक पार्वं परि" एकं पादमन्तः कृत्वा स्थिता ६ मर्बेव । काष्ठतः तृतीयस्यां पौरुष्याम् अन्य
 भित्ताचरेषु निवृत्तेषु ७, मावतः दायिका क्रयकीटा दासीत्वं माता राजकृत्या ८ निगाहद्वारस्तपादा ९ सुष्वित
 मस्तका १०, बद्धकृच्छा ११ अटमवतपोयुक्ता १२ अभूणि सुबन्ती १३ मर्बेव । एतादृशेन अग्निप्रशेय यदि आहारो
 भिक्षिष्यति, उवा पारणकं करिष्यामि, अन्यथा पम्मासीतपः करिष्यामि " इति कृत्वा मगवान् भित्तायां
 प्रष्टि । मगवतः सोऽग्निप्रशो न कुत्रापि परिपूर्णो मवति । अ० ९४ ॥

मगवान् ने पौष शुद्ध प्रतिपद् के दिन द्रव्य क्षेत्र काक मावका आश्रय छेकर तेरह बोलौवाला यह
 अग्निप्र शरण किया-द्रव्य से (१) रूप के कोने में, (२) तबाले हुए उद्ध्व हों; क्षेत्र से-(३) दोनेवाली
 कारागार में हो, (४) कारागार में भी वेहली पर हो, (५) सो भी वैठी हो, (६) वर भी एक पर बाहर और
 एक पर भीतर करके वैठी हो; काक से-(७) तीसरे प्रहर में अन्य भित्ताचरो के सैट नाने पर, माव से-
 (८) दायिका तरीदी हुए हो, दासी बन गई हो मगर रामकुमारी हो, (९) उसे शायो-यैतों में बैठी हो,
 (१०) सिर हुंका हो, (११) काँठवणी हो, (१२) तेछे के तप से युक्त हो और (१३) बौसु परा रही हो ।
 इस प्रकार के अग्निप्र से यदि आहार मिछेया तो पारणा कर्त्वा, अन्यथा छह मास का तप कर्त्वा । ऐसा

प्रशुने पीप शुद्ध लोकेभना दिवसे, द्रव्य-क्षेत्र-डाव अने बावतो विचार करी, तेर ठेकवाये। अलिअक
 धरुव ह्यो। आ अलिअकनी सरतो नीचे सुखवनी कवी —

अर्द्धन सुधी जेची, छ भासिक तपनी आराधना करीय (१) द्रव्यधी सुपधना प्रसुभा (२) ज्योडां अरुड होय,
 (३) अ पथावठी अन्ति भाषाचरमा पुरार्थ होय (४) क्षराचारमां ठेवी पर होय, (५) ते पणु वेडी होय
 (६) तेना लोके पत्र उँलशानी बदार अने जेक पत्र उँलशानी बहार होय (७) अन्य भिक्षादिना गथा पछीना
 नीने प्रकर काकतो होय (८) आपनार अन्ति वेवाती वेवाजेवी होय, बाची तरिठे तेउ लपन होय अने भूणमा
 ते शकुमारी होय, (९) तेना काय पत्रमां छेडी लपन होय, (१०) तेउ भाइ युवावेक होय (११) तने
 कणु अपपेके होय (१२) ते अपुम तपणी सुख होय (१३) ते आजोभांकी ज्मिमुने प्रवाक ववेववावती होय ।
 उपरोक्त सरतो सुख भकार आकार भवे तोव तपु पणु करी, ते आकारने करीशक सिद्धमते।

सा पुनः एकं पाद=चरणं वहिः=देहलीतो वहिः प्रदेशे एकम्=अपरं पादम् अन्तः=अभ्यन्तरप्रदेशे कृत्वा स्थिता द्व
 भवेत् । कालतोऽभिग्रहः=वृतीयस्या पौरुष्यां=द्वतीयप्रहरे अन्यभिक्षावेषु निवृत्तेषु=पराट्टयगतेषु सत्सु ७, भावतोऽ-
 भिग्रहः=दायिका=भिक्षायादात्री क्रयक्रीता=मूल्यग्रहीता तथा=दासीत्वं प्राप्ता=दासीभृता राजकन्या भवेत् ८। सा पुनः
 निगडबद्धस्तपादा=निगाडितकरचरणा ९ तथा=गुण्डितमस्तका=केशापनयतो गुण्डितशिरा १०, बद्धकृच्छा ११
 अष्टमतपोयुक्ता=अष्टमभक्त्युत्पत्स्यान्विता १२. अश्रूणि मुञ्चन्ती १३ भवेदिति । एवाद्देशेन=एवंविधेन अमि-
 ग्रहेण यदि आहारो मिलिष्यति तदा पारणकं करिष्यामि, अन्यथा=त्रयोदशवस्तुषु कस्यापि वस्तुनोऽभावेऽभिग्रहापूर्णे
 षण्मासीतपः=षण्मासिकं तपः=अनशनरूपं करिष्यामि' इति कृत्वा=एतन्मनसिकृत्य भगवान् भिक्षार्थीय=भिक्षार्थेषु
 कौशाख्याः प्रतिग्रहम् अटति=अमति, किन्तु भ्रमतो भगवतः सः=त्रयोदशवस्तुक्तोऽभिग्रहः कुत्रापि=त्रयचिदपि
 ग्रहे परिपूर्णो न भवति ॥सू०९४॥

(९) वह भी एक पैर देहली से बाहर निकाले हो और दूसरा पैर देहली के भीतर करके बैठी हो, काल से अभिग्रह बतलाते हैं-(७) तीसरे पहर अन्य भिक्षाजीवियों के लोट कर चले जाने पर, मात्र से अभिग्रह बतलाते हैं-(८) भिक्षा देने वाली खरीदी हुई हो, दासी बनी हो मगर राजाकी कन्या हो, (९) उसके हाथों-पैरों में बोटियाँ पड़ी हों, (१०) मस्तक मुंडा हुआ हो, (११) कांठ बाँधी हुई हो, (१२) तेले की तपस्या से युक्त हो और (१३) आम् बहा रही हो । इस प्रकार के अभिग्रह से अगर आहार मिलेगा तो मैं पारणा कलंगा, इन तरह बोलों में से किसी भी एक की कमी होगी और अभिग्रह पूरा न होगा तो छह मासी तपस्या कलंगा । इस प्रकार मन ही मन में निश्चय करके भगवान् भिक्षाके लिए कौशाखी के घर-घर में परिभ्रमण करते थे, परन्तु किसी भी घर में यह तरह बोल का अभिग्रह पूर्ण नहीं होता था ॥सू०९५॥

भूडेव डोय अने गीने उंभरानी अदर राथीने गेही डोय, डाणथी अलिअडु अतावे छे-(७) त्रीण पडोरे लिखुडेगना पाछा धर्यो भाद. बापथी अलिअडु अतावे छे-(८) लिखा देनारी न्यक्ति पारीहायेल डोय, राजनी डन्या डोवा छतां दासी अनी डोय (९) तेना डाथपगमा गेडिये नापेदी डोय, (१०) माथु भूडेउं डोय (११) डछेडो भाधेडो डोय (१२) अहुमनी तपस्या सडित डोय (१३) आंभमाथी आसु वडेता डोय; आ प्रमाखेना अलिअडुथी ने आडार भणथी तो हु पारथु डरीथ आ तेर गेलेमाथी ज्येकनी पथु थामी डशे अने अलिअडु पूरे नडीं थाय तो छमासी तपस्या डरीय आ प्रमाखे मनोभन निश्चय डरीने भगवान भिक्षाने माटे डोशाग्थीना धरे धरे परिअडु भथु डरता डता, पथु डेगं धरमां आ तेर गेलेना अलिअडु पथुं थतो न डते। (सू०९४)

विहारलोकमेव गतवान् । ततः सख्य विहरन् भगवान् श्रीवीरस्वामी कौशाम्बी नगरीं नगर्था समवसूत । तत्र खलु
 उदानीकी नाम राजा आसीत् । अस्य युगावती नाम महिषी=राज्ञी, वस्याः=युगावत्याः विजया नाम प्रति
 शारिकाः=द्वारपात्री, वस्य द्वातानीकराजस्य चादि नामकी धर्मपालकः=धर्मोपयसः गुप्तनामा च अमात्यः=मन्त्री
 आसीत् । वस्य=गुप्तान्तो मन्त्रिणो नन्दा नाम भार्या, सा नन्दा श्रविका=धर्मणोपासिका आसीत् । असौ=
 नन्दा युगावत्याः राजमहिल्याः सन्वी=वयस्या बभूव । तत्र=कौशाम्ब्यां नगर्था खलु भगवान्=श्रीवीरस्वामी यौग
 शुद्रायां=यौगमासस्य शुक्रपक्षीयायां प्रतिपदिविधौ द्रव्यक्षेत्रकालमात्रं समाधित्य प्रयोदशवस्तु समाकुञ्च=त्रयोदशवस्तु
 युक्तं इममठद्वर्षे=वस्यमामलसप्तम् अग्निप्रश्नम् अरुणपृक्षात्=स्वीकृतवान् । तदप्या=तत्र प्रथमं द्रव्यतोडमिप्रः प्रद
 श्यते=युष्मन्तो १ स्थिता चाप्यिवाः=स्विन्ना मापाः-‘शकुन्का’ इति मसिद्धाः २ मवेयु, क्षेत्रतोडमिप्र -दायिका=
 भिक्षादात्री कारागारे स्थिता ३ मवेत्-तथाऽपि=कारागारेऽपि देहस्यां ४=प्रश्नद्वारे उपविश्य=भामीना ५ मवेत्,

पीरमस्य वसते=वलते शिशुमार नगरं पधारे । तदनन्तरं भगवान् कौशाम्बी नगरीं पधारे । कौशाम्बी नगरं
 उदानीक नामक राजा या । युगावती नामक उदकी रानी थी । युगावती की द्वारपालिका का नाम विजया था ।
 उदानीक राजा का विजय नामक धर्मोपयस था और गुप्त नामक मंत्री था । गुप्त नामक मंत्रीकी पत्नीका
 नाम नन्दा था । नन्दा श्रविका थी और रानी युगावती की सहेली थी ।

वीर भगवान् ने यौग मास क शुक्र पक्ष की प्रतिपदा तिथि में द्रव्य क्षेत्र, दान, भावकी अपेक्षा,
 तेरह वारों से युक्त दस प्रकार का अग्निप्रश्न घाण किया । पहले द्रव्य की अपेक्षा से अग्निप्रश्न बतलाने हैं—
 (१) स्र (खनछ) के कोने में, (२) उवाळ हुए उकड़ प्रयात् पाकले हों; क्षेत्र सं अग्निप्रश्न बतलाने हैं—
 (३) भिक्षा देने वाली कारागार में स्थित हो, (४) कारागार में देहली=दरवाजे पर हो (५) सौ मी बैठी हो,

अन्वित्यस्य बोधासु हेतुं बोधासु पूर्णं क्वं पठी वीरप्रभुञ्चे विदार करता शिशुमार नगरमा पधारे त्वार
 नाह कश्चान् कौशाम्बी नगरीं पधारे गेयाम्भी नगरीमा उदानीक नामना राज वत्ता तेभने युगावती नामनी
 सखी इती युगावतीनी द्वारपालिकात् नाम विजया इति उदानीक रान्तो बादी नामतो धर्मोपयस इतो अने गुप्त नामे
 मन्त्री इतो गुप्त नामना मन्त्रीनी पत्नीत् नाम नन्दा इति नन्दा श्रविका इती अने रानी युगावतीनी विनपक्षी इती
 वीरभगवाने यौग मासना शुक्र पक्षनी पदवेनी तिथिञ्चे, दान, क्षेत्र, भाव क्ते आबनी अग्निप्रश्ने तेर आप्यतो
 बादी अग्निप्रश्ने अग्निप्रश्नं धार्य इतो पछेता इत्यनी अग्निप्रश्ने अग्निप्रश्नं क्त्वाये छे—(१) स्रपधाना युगावती
 (२) यौगोऽस्य क्षेत्रे इ नाउवाळ क्षेत्रे अग्निप्रश्नं क्त्वाये छे—(३) भिक्षा देनेारी अग्निप्रश्नं क्त्वाये छे
 क्षेत्र (४) कारागारमा पठे कश्चान्ना उदानीका इति (५) ते पक्षे अग्निप्रश्नं क्त्वाये छे (६) सौ मी बैठी हो अन्वित्य

सा पुनः एकं पाद=चरणं बहिः=देहलीतो बहिः प्रदेशे एकम्=अपरं पादम् अन्तः=अभ्यन्तरप्रदेशे कृत्वा स्थिता ६ भवेत् । कालतोऽभिग्रहः=वृतीयस्यां पौरुष्यां=वृतीयप्रहरे अन्यभिक्षाचरेषु निष्टत्पु=परावृत्त्यगतेषु सत्सु ७, भावतोऽभिग्रहः=दायिका=भिक्षायादात्री क्रयक्रीता=मूल्ययुहीता तथा=दासीत्वं प्राप्ता=दासीभूता राजकन्या भवेत् ८। सा पुनः निगडबद्धहस्तपादा=निगाहितकरचरणा ९ तथा=मुण्डितमस्तका=केशापनयतो मुण्डितशिरा १०, बद्धरुच्छा ११ अष्टमतपोयुक्ता=अष्टमभक्तरूपतपस्यान्विता १२. अश्रूणि मुञ्चन्ती १३ भवेदिति । एतादृशेन=एवंविधेन अभिग्रहेण यदि आहारो मिलिष्यति तदा पारणकं करिष्यामि, अन्यथा=त्रयोदशवस्तुषु कस्यापि वस्तुनोऽभावेऽभिग्रहापूरणे षण्मासीतपः=षाण्मासिकं तपः=अनशनरूपं करिष्यामि' इति कृत्वा=एतन्मनसिकृत्य भगवान् भिक्षार्थाय=भिक्षार्थम् नौशाब्द्याः प्रतिग्रहम् अटति=अप्रति, किन्तु भ्रमतो भगवतः सः=त्रयोदशवस्तुयुक्तोऽभिग्रहः कुत्रापि=कथंचिदपि ग्रहे परिपूर्णो न भवति ॥मू०९४॥

(९) वह भी एक पैर देहली से बाहर निकाले हो और दूसरा पैर देहली के भीतर करके बैठी हो, काल से अभिग्रह बतलाते हैं-(७) तीसरे पहर अन्य भिक्षाजीवियों के लोट कर चले जाने पर, भाव से अभिग्रह बतलाते हैं-(८) भिक्षा देने वाली खरीदी हुई हो, दासी बनी हो मगर राजाकी कन्या हो, (९) उसके हाथों-पैरों में वेड़ियाँ पड़ी हों, (१०) मस्तक मुँडा हुआ हो, (११) काँठ बाँधी हुई हो, (१२) तेले की तपस्या से युक्त हो और (१३) आँसू बहा रही हो । इस प्रकार के अभिग्रह से अगर आहार मिलेगा तो मैं पारणा कलंगा, इन तेरह बोलों में से किसी भी एक की कमी होगी और अभिग्रह पूरा न होगा तो छह मासी तपस्या कलंगा । इस प्रकार मन ही मन में निश्चय करके भगवान् भिक्षाके लिए कौशाब्दी के घर-घर में परिभ्रमण करते थे, परन्तु किसी भी घर में यह तेरह बोल का अभिग्रह पूर्ण नहीं होता था । मू०९४॥

मूडेड डोय अने अन्नि उंभरानी अहर राथीने ठेठी डोय, डाणथी अलिअडु अतावे छे-(७) त्रीळ पडोर लिशुडेना पाछा इर्या आद. लावथी अलिअडु अतावे छे-(८) लिखा हेनारी न्यड्रित पारीहायेद डोय, रान्नी इन्या डोवा छतां दासी अनी डोय (९) तेना डाययगमा अउथे नाणेडी डोय, (१०) माशुं मूडेडु डोय (११) कछोटो आधेडो डोय (१२) अडुभनी तपस्या सडित डोय (१३) आंभमाथी आसु वडुता डोय, आ प्रमाणेना अलिअडुथी ने आडार मणथे तो डुं पारथु करीश आ तेर ओदमाथी अकनी पथु आमी इथे अने अलिअडु पूरो नडीं थाय तो छमासी तपस्या करीय आ प्रमाणे मनोभन निश्चय करीने भगवान् भिक्षाने माटे डोयाअनीना धरे धरे परिभ्रमथु करता डता, पथु डेअं धरमा आ तेर ओदनेना अलिअडु पूरुं थते। न डते। (सू०९४)

सूक्तम्—एवं परदिप्यं मगवं अहमार्णं पासिष लोगा अय्यं मर्ण्यं वित्तवैति, तस्य केर एवं वयंति-
 'पस थं निपच्चु परदिप्यं अह, न उच्च भिनलं गिष्व, एत्य केणवि कारणेण हायव्व'। केर वयंति-‘उम्म-
 वणेण ममा’। अरं वयंति-अयं इत्स वि रथो शुचयरो किं पि चित्तिहं कज्जमुपिसिय अह। अणो वयंति-
 चोरोडयं, चोरिययुषियि अह। एगे वयंति-‘एसो चरिमो वित्ययरो अमिगारेण अह’। तमो पच्छा सव्वे
 जणा जाम्भियु नं पस नं तेच्छकनारे सच्चनगनीविगरे समणे मगवं मवाथीरे तुच्छकुकेण अमिगारेणं अह।
 मद्रमगा अरं नं ण परित्स मवापुतीसस अमिगार पुरिकं न सक्कामो। एव अहमण्यस्स मगरओ यंचविव
 सोत्ता छम्मात्ता सोरक्त्ता। तए थं नीए दिवसे सोहनिगहनंयतोहणपठिनिदिसम्मि अणारकलीणमवर्षण
 गोठपं कळं सोरयाद्धाओए मगवं वणावसेट्ठिणो गिरे चंदणयाओए अठीए समणुपणे। त दहूस ता चंदणा इहउडा
 विचमार्णदिया इरिसवसविसप्पमाणरियया चित्ते—

“महो पच मए पर्णं, क्विचि पुणं ममस्यिवि।
 नं इमो अतिथी पचो, कप्पकल्लो ममणणे” ॥ ९ ॥

पि चित्तिय मगवं परबेरे-जोचिय इमं यच यदंतस्स, तद्वि अर कप्पणित्तं तो मनोवति क्विं कळ
 गिण्ठ। तए थं से मगवं तस्य भारत पयागि पठिपुष्णाणि पास, अस्सुत्वं तेरसम पय न पास, वओ
 मगवं पठिणियदर। पठिणियदमार्णं मगवं दहूसं वरणा परचित्ते—

“आगमो मगवं एत्य, पच्छा एसो नियहिओ।
 क्विउक्कम्मं मए चिणं, नत्तिसमं एत्तिसं फलं” ॥ ९ ॥

अं केरिसी भवण्णा अनुष्णा अकयत्वा अइयपुष्णा अकयल्लत्तणा अकयत्तित्वा कुत्तुत्तेणं मए जम्म
 नीवीयफळे, नीए इमा एयाक्त्वा दुहरपया क्त्वा एता अभिसम्मन्नामया। मम अहुमतवपारणणे समागमो एयारिसो
 गरिचरिसिगतो महात्थी महाथीरो मगवं अपठिसाम्पियो वेच पठिणियचो। गिणामो कप्पस्य वो हयाओ अय
 ररिओ। इत्ययं वत्तरय्यं न्दंति क्त्वा सा चंदणयावाम्पाए रोउममारोअ। तए थं मगवं तेरसमं वयं पठिपुणं
 चिष्णाय पठिणियट्टिय चंदणवाम्पाए इत्यामो वफिय मासे करपेसे पठिणारिय पाण्य क्काली।
 तेणं कालेनं वेयं समएवं तस्स थं यथावहसेट्ठित्स गिराति वेवेदि पंचदिक्काए पाण्ठीकयाई। त जहा-
 न्नुयाराउडा १, दस्सरा न इत्तुमे विभाए २, वेज्जुखेव कए ३, आइयाओ इडुदीओ ४, अंतारा विपणं अगासंसि
 यथो वल्लं यथो वल्लंउडुडे ५। येना अयनय सभं पठंममम्मा चंदणवाम्पाए मरिंमं क्कट्टिय। तीए निगहव

धणद्वारंमि हत्थपाया वलय णेउरसमलंकिया जाया, केसपासो सुंदरो समुभूओ । तीए सव्वं सरिं नणात्रिह-
 वथांलंकारविभूसिय संजायं । सव्वत्थ हरिसपगरिसो जाओ । देवदुंदुहिच्चुणिं सुणिय लोगा तत्थ आगंतूण चंदण-
 चालं थुंसु, धणाव्रहसेठिस्स धणवायं दलमणा तव्वज्जं मूलं निदिंसु । तं सोऊण चंदणवाला लोगे निवारमाणी
 वदीअ-भो लोगा ! एवं मा वयतु मम उ एसेव मूला माया अणंतोवगारिणी अत्थि, जप्पभावेण अज्जमए एरिसे
 सुअवसरे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए ति ॥२०९॥

छाया—एवं प्रतिदिनं भगवन्तमन्तं दृष्ट्वा लोका अन्योऽन्यं वितर्कयन्ति तत्र केचिदेवं वदन्ति—‘एष खलु
 भिक्षुः प्रतिदिनमटति, न पुनर्भिक्षां गृह्णाति, अत्र केनापि कारणेन भवितव्यम्’ । केचिद्वदन्ति—“उन्मत्तत्वेन
 भ्रमति” । अपरे वदन्ति-अयं कस्यापि राज्ञो गुप्तवारः किमपि विशिष्टं कार्यमुद्दिश्य अटति । अन्ये वदन्ति-चौरोऽयं
 चौर्यमुद्दिश्य अटति । एके वदन्ति—‘एष चरमस्तीर्थकरोऽभिग्रहेणाटति’ ततः पश्चात् सर्वे जना अजानन्-यद् एष खलु
 कैलोक्यनाथः सर्वजगज्जीवहितकरः श्रमणो भगवान् महावीरो दुष्करदुष्करेणाभिग्रहेणाटति, मन्दभाग्या वयं यत्

मूल का अर्थ—‘एवं’ इत्यादि । इस प्रकार प्रतिदिन परिश्रमण करते हुए भगवान् को देखकर लोग
 परस्पर तर्कणा करते थे । उनमें से कोः कहते-यह भिक्षु प्रतिदिन परिश्रमण करता है, किन्तु भिक्षा नहीं
 लेता । इसमें कोई कारण होना चाहीए । कोई कहते-पागलपन के कारण घूमता है । दूसरे कहते-यह किसी
 राजा का जासूस है । किसी विशेष कार्य को लेकर घूम रहा है । कोई कहते-यह चोर है, और चोरी करने के
 उद्देश से घूम रहा है । कोई कहते-यह अन्तिम तीर्थंकर हैं, अभिग्रह के कारण घूमते हैं । तत्पश्चात् सभी
 जनों को ज्ञात हो गया कि यह तीन लोक के नाथ, जगत् के समस्त जीवों के हितकारी, श्रमण भगवान्

भूणोने अर्थ—‘एवं’ इत्यादि. आ प्रभाणु प्रतिदिन श्रमथु करता बगवानने नेध, दोडेा तर्कवितर्क करवा
 लाग्था दोडेोने डेटदोडक बाग ओदलो इतो डे, आ बिखु इ भेशा इयां करे छ परंतु बिक्षा देतो नथी, माटे डोड
 पथु डारथु सेवु नेधअं डोड डोड तो ओदता इता डे पागत्र थर्द बवाने डारथु घूम्था करे छे. डोड डोड अंभ
 पथु ओदता इता डे राननेा नसुस छे, जेथी डोड विशिष्ट कार्यने माटे अडि तडिं इयां करे छे. डोड डोड तो
 अंभ पथु ओदता डे आ साधु चार छे, अने थोरी माटे चारे तरड् नेथा करे छे. डोड डोडनुं ओदधुं अंभ पथु थनुं
 डे आ छंददा तीर्थंकर छे अने पौताने अबिअड पार पाडवा आवी रीते गभनगभन इयां करे छे लाभा वथत पड्डी
 हरेकना न्अथवामा आण्युं डे आ बिखु त्रिलोकीनाथ छे बगतना सर्वं एवेनेा इतिकारी श्रमथु बगवान महावीर छे.
 अने पौताना अबिअडनी पुतिं माटे करे छे पथु अबिअड पूरेा यतो दागतो नथी.

बहु ईदृशस्य महापुरुषस्याभिप्रायं पूर्यितुं न शक्युमः' । एतदतदो भगवतः पञ्चदशसोनाः पणमासा व्यतिक्रान्ताः । ततः बह्वृ त्रितीये दिवसे लोपनिगडध्वनप्रोटनप्रतिनिधित्वे अनादिकालीनमवबन्धनभोटन कर्तुं शोहकारस्या नीयो भगवान् कृतावशेषिणो युरे धन्वन्वालाया अन्तिके समनुभासः, त इष्टा सा चन्दना इष्टद्रुण विषा नन्दिता इषंभस्विसर्पइदया चिन्त्ययति—

“अहो पात्रं मया प्राप्तं, किञ्चित् पुष्यं ममास्त्यपि ।
यदप्यम् अविधिः प्राप्तः, फल्यद्रो ममाङ्गणे” ॥ ९ ॥ इति ।

चिन्त्यित्वा भगवन्तं प्रार्थयति—“नोचितमिदं मर्कं मन्दन्तस्य, तथापि यदि फलनीय तदा ममोपरि कृपां कृत्वा यद्भवतु” । ततः लख स भगवत्स्वप्न इन्द्रधनुदानि प्रविष्टानि पश्यति अयुरूप शयोक्यं पदं न मन्वीर्यं, और अतीव दुष्कर अभिप्राय के कारण अमण कर रहे हैं । हम लोग मन्दभाग्य हैं कि ऐसे महा पुरुष के अभिप्राय को पूरा नहीं कर सकते । इस प्रकार भगवान् को धूमते-धूमते पाँच दिन कम छ माह हो गये । तब दूसरे दिन सोरे की शेटियों को तोड़ने के स्थानापन्न अनादि कालीन संसार-बंधनों को तोड़ने के लिए शोहरकार के समान भगवान् कृतावश सठ के घर में वन्दनबाला के समीप पहुँचे । भगवान् को बलकर धन्वना इष्ट-दण्ड हुई । उसके विषय में खान्द्व हुआ । इषं स उसका इदय विक्रमित हो गया । यह सोचते हैं—

“किञ्चित् पुष्यं श्रेयं है मेरा, मुझे मिले यह पात्र मन्वान् ।
अवियि रूप में कल्पवृक्ष ही, उग आया भोगन-उपान” ॥

इस प्रकार विचार कर उसने भगवान् से प्रार्थना की—‘यह ज्ञान भगवान् के योग्य नहीं है, तथापि यदि कल्पनीय हो, तो है भगवान् । मुझ पर कृपा करके प्रदण कृपणीय ।’ तब भगवान् ने यहाँ शारद बोलों का

आ प्रभारे अपरशरवर शरवां छ अदिनाभं पांय दिवस ज्योत्सु ज्योत्सु अमर पसार धरु गये । आ व्यतीत पणतना वीने व दिवसे शेष कोक धेर आकार कर्षे अथ पक्ष्या, तो त्वां वीदानी वेदिज्याधी अधाज्येध शिथिभां अहन्यावा नामनी डेर कोक इभास्मिने तेमवे धनावक श्रेयन्ता भगानभां ज्येध अत्रवान अवे साक्षात् वीप अनी श्रेयी तैदधाने अवे अन्धि अठिक स खान्नी वेदिने तैदबावाणा श्रुकार आन्वा न कोक ! तेम अहन्यावा अत्रवानने ज्येध अनी पुष्टित धरु तेना विचभां आनद व्वापी अवे । तेज दुर्लभ विक्रमित सयु अने ते विषाववा वामी हे “कण्ठ मे पाप अत्वां पाठ वाजीने ज्येधु हे छ श्रेय पुष्यना प्रत्ये आवा अकानपात्र भारी घासे आपी यदमा ! अन्ते आ अतिवि इषंभां अथपुष्य व भारी आंजय इ पी वानभां अनी नक्षिद्रु आ प्रभारे विख्यारी तैदुं ज्ये प्रथुने प्रायना शरी हे छ अत्र वान । आ ज्योत्सुन अक्षय शरवा शैल्य नशी, अत्वां अथवा योत्सु ज्येध तो हे अत्रवान, आप अक्षेराणी करी अवे । अनी भारी प्रार्थना छ

पश्यति, ततो भगवान् प्रतिनिवर्तते । प्रतिनिवर्तमानं भगवन्तं दृष्ट्वा चन्दना परिचिन्तयति—

“ आगतो भगवानत्र, पश्चादेव निवृत्तः ।

किं दुष्कर्म मया चीर्णं, यस्येदमीदृशं फलम् ” ॥ ९ ॥

अहं कीदृशी अधन्या अपुण्या अकृतार्थो अकृतपुण्या अकृतलक्षणा अकृतविभवा, कुलञ्चं खलु मया जन्मजीवीतफलम्, यया इयमेतद्रूपा दुःखपरम्परा लब्धाः प्राप्ता अभिसमन्वागता । ममाष्टमतपः पापणके समागत एतादृशो-दृष्टिताभिग्रहो महासुनिर्महोवीरो भगवान् अप्रतिलम्बित एव प्रतिनिवृत्तः गृहाऽऽगतः, कल्पवृक्षो हस्ता-दपसृतः । हस्तगत वज्ररत्न नष्टमिति कृत्वा सा चन्दनवाला रौद्रितुमारभत । ततः खलु भगवान् त्रयोदशं पद पूर्णं होना देवा, किन्तु अस्मिन् रूपे तेरह तेरहवाँ बोल नहीं देखते । इस कारण भगवान् चापिस लोटने लगे । भगवान् को लोटते देख चन्दना सोचती है—

हाय हाय प्राणण में मेरे, रखकर वरद चरण भगवान् ।
लौट रहे है लोकनाथ यह, मैं कैसी पापों की खान ॥

मैं कैसी अधन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ । अकृताय हूँ । मैंने पुण्य नहीं किया, मैं सुलक्ष्णों से हीन हूँ, मैंने विभवा नहीं पाया । मुझे जन्म का और जीवन का भला फल नहीं मिला, जिसने इस प्रकार की दुःखपरम्परा का लाम किया, प्राणी की और सामना किया । मेरे तेले के पाणक के अत्रसर पर आये हुए ऐसे अभिग्रहारी महापुनि महावीर भगवान् आहार लिए बिना ही लौट गये, जैसे घर में आया हुआ कल्पवृक्ष ही हाथ से चला गया । हाय, हाय आया हीरा गुम हो गया । इस प्रकार विचार कर चन्दनवाला रोने लगी । उस समय भगवान् ने तेरहवाँ बोल

अर्धो भगवाने अबिभ्रक्ष्णी आर शरतो पूर्णं यती न्नेर्ध, पथु तेरभी शरत जेवामां आवी नखि, तेथी भगवान् पाछा वणवा दाव्यः भगवानेने पाछा इरता न्नेर्ध च्छन्दनवाला शोक करवा लागी के 'आगळे आवेल साक्षात् देवाधि-देव पाछा इरी रखा छे, हुं' केवी अभागाणी छु के हाथमा आवेलुं रत्न जोध छेही ! हुं' अरेअर पापणी छुं; अकृतार्थं छु, पुण्यहीन छु, विभवहीन छुं; मने मारा बन्ध अने ल्पवननु शुभ इण न भण्युं: मने अभागाणीने ल्पवनमा इ.अपर पराच्येनेने ज दास भण्ये। मारी जे कमनस्तीथी छे के मारा अहुमना पारखे आवेला आवा अभि-अही मुनि भगवान महावीर आहार विना पाछा वणी गया. धरमा आवेलु कल्पवृक्ष हाथमाथी आव्युं गयुं. अरे! मे' तो हाथमाथी आवेलुं रत्न गुमाव्युं ! आवा अक्षरने शोकविदाप करी च्छन्दनवाला रुवा लागी, अने तेनी आपमा अगळणीया आव्यां, च्छन्दनवालांनी आंभमा जया आसुनु भिडु देआयु के भगवान पाछा पधार्थ. करखु के

प्रतिपूर्णे पित्राय प्रतिनिहत्य चन्दनबालाया इत्याद् वाप्यितमाषान् कृपात्रे परिशुभं पारण्यमकार्षीत् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये तस्य ललु वनावरभेष्टिनो गुरो देवैः पञ्चदिव्यानि पञ्चटीकृवाणि । तप्या-
वसुधारा दृष्टा १, दशार्दर्यानि द्रुमनि निपातिवानि २, वेकोत्क्षेपः कृतः ३, आहवाः दुन्दुभयः ४, चन्द्रराजपि
च ललु बाकानो 'ओदानम् ओदानम्' इति वृषितं च । देवा जयस्य इव्यं मयुञ्जानाः चन्दनबालाया मरि
मानमकुर्वन् । तस्या निगडहन्यनस्याने इत्यार्दं चलयन्पुत्रसमसकृन्तं नातम् केवपाञ्चः सुन्दरः समुद्रतः ।
तस्या सर्वं शरीरं नानाविधकालङ्कारविभूषितं सजातम् । सर्वं इयंपर्योभात । देवदुन्दुभिष्वनि श्रुत्वा लोका
स्तमाऽऽज्यत्य चन्दनबालामस्तुवन्, वनावरभेष्टिने चन्दनार्दं दत्तस्तस्माद्यो मूलामनिन्दन् । तच्छ्रुत्वा चन्दनबाला
लोकान् निवारयन्ती अदत्त्- 'सो लोकाः । एवं मा चन्दन्, मम तु पर्यैव मूला माता अनन्तीपकारिणी अस्ति,
यस्यमयेव अय मया ईशः भवसरो स्रग्पः प्राप्नोऽभिसम्न्यागत इति ॥सू०९५॥

पूर्णे दुया नानकः, लौटकर चन्दनबाला के हाथ से उड्ड के बाकले करपात्र में प्रार्थन कर के पारण्यक किया ।
उस काल और उस समय, उस वनावर सेठ के घर में देवीमें पाँच दिव्य पञ्चट किये । यह इस
प्रकार-(१) सौन्यो की बर्षा हुई (२) पाँच रंग के फूलों की बर्षा हुई (३) बलों की बर्षा हुई (४) दुदुभि-
योकी ध्वनि हुई (५) 'आकाश में ओदान ओदान' का घोष हुआ । जय-जयकार करके देवीने चन्दन
बाया का मरिमा का प्रकाश किया । वेदियों की बगल उसके हाथ-पैर कर्तों और नूपुरों से झलकूट हो गये ।
सुन्दर केवपाञ्च उत्पन्न हो गया । उसका समस्त शरीर नाना प्रकार के बलों और असकारों से विभूषित
हो गया । सर्वत्र इयंका उमार था गया । देवदुन्दुभियों की ध्वनि सुनकर, लोग वहाँ भाये और चन्दनबाला की
स्तुति करने लगे । वनावर सेठ की चन्दनबाला देते हुए उसकी पत्नी मूला की निन्दा करने लगे । यह सुनकर
आंप्रभा आंसुओं के तेमना अलिखकनी तरभी शरत् दती, तेरेरेर ग्येव परिशुभं बत्ता अत्रवाने च इतभादाना कांशे
आऽऽन्य आशुभा करपात्रभा स्वीभायो अने जे रीते अशुभे दीव' तपश्चर्चाम् पाशुषु ठभुं
भा वभते चनापक शोभने त्वां पाँच दिव्यो प्रपट बध्ना, पाँच दिव्यो प्रपट बत्तां देवोके दुदुशी ध्वनि साथे
'अवचचकारनी शेषव्य करी अने च इवादाने अदिभा जाये, तेम काशनी जेदिअनेना रबाने सुवर्णभूष ठभुं अने
काशरीना अकशरी रेआकां, तेना भावाना अशने लखे सुइर रेआकवाय दितिआथर यथो, तेतु आसु कदीर विविध
प्रभारना वयो अने अकशरीकी विभूषित भुं अर्चन करी-नारे, बना वाया, रेवदुदुशीने, अचक शंकाणी शोके त्वां
उनासवा अने चन्दनबालानी प्रकष करवा अकषा, ते वभते शोके चनापक शोभने चन्दनबा अने मुला शोकाणीनी लन बा

आंप्रभा आंसुओं के तेमना अलिखकनी तरभी शरत् दती, तेरेरेर ग्येव परिशुभं बत्ता अत्रवाने च इतभादाना कांशे
आऽऽन्य आशुभा करपात्रभा स्वीभायो अने जे रीते अशुभे दीव' तपश्चर्चाम् पाशुषु ठभुं
भा वभते चनापक शोभने त्वां पाँच दिव्यो प्रपट बध्ना, पाँच दिव्यो प्रपट बत्तां देवोके दुदुशी ध्वनि साथे
'अवचचकारनी शेषव्य करी अने च इवादाने अदिभा जाये, तेम काशनी जेदिअनेना रबाने सुवर्णभूष ठभुं अने
काशरीना अकशरी रेआकां, तेना भावाना अशने लखे सुइर रेआकवाय दितिआथर यथो, तेतु आसु कदीर विविध
प्रभारना वयो अने अकशरीकी विभूषित भुं अर्चन करी-नारे, बना वाया, रेवदुदुशीने, अचक शंकाणी शोके त्वां
उनासवा अने चन्दनबालानी प्रकष करवा अकषा, ते वभते शोके चनापक शोभने चन्दनबा अने मुला शोकाणीनी लन बा

टीका—“ एवं पडिदिनं भगवं अडमाण ” इत्यादि । एवं=अनेन प्रकारेण प्रतिदिनं=दिने दिने भगवन्तं= श्रीमहावीरस्वामिनम् अटन्तं=अमन्तं दृष्ट्वा लोकाः=जनाः अन्योऽयं=परस्परं पितरुयन्ति, तत्र=त्रोकेषु केचित्= कतिपये लोकाः एव वदन्ति—“ एषः=अयं खलु भिक्षुः प्रतिदिनम् अटति=अमति, पुनः=किन्तु भिक्षां न गृह्णाति, अत्र प्रतिदिनमतोऽप्यस्य भिक्षाग्रहणाऽभावे केनापि=असदाद्यज्ञातेन कारणेन=हेतुना भवितव्यम् । केचित् वदन्ति— ‘एष भिक्षुः उन्मत्तत्वेन=जातोन्मादतया भ्रमति ’ । आरे वदन्ति—अयं कस्यापि राज्ञो गुप्तचरो वर्तते, सोऽयं स्वस्य राज्ञः किमपि विशिष्टं कार्यं शुद्ध्यै=केनापि विशिष्टकार्यप्रयोजनेन अटति । अन्ये वदन्ति—चौरोऽय व्रतते, चौर्य-शुद्ध्यै अटति । एके वदन्ति—एषः भिक्षुः चरमः=अन्तिमः—वृत्तविक्रमः, तीर्थरुः=जिनः अभिग्रहेण अटति । ततः पश्चात्=तदन्तरं सर्वे जनाः भगवन्तं श्रीवीरम् अज्ञानम्=परिचितवन्तः—“यत् एषः भिक्षुः खलु त्रैलोक्यनाथः=

चन्दनबालने उन्हें रोक दिया, और कहा-लोगों ! ऐसा न कहो । मूला माता ही मेरी महान् उपकारिणी है, जिसके प्रभाव से आज मुझे यह सुअवसर लब्ध हुआ, प्राप्त हुआ और मेरे सामने आया ॥३०९५॥

टीका का अर्थ—इस प्रकार भगवान् श्रीमहावीर को प्रतिदिन भिक्षा के लिए पर्यटन करने देवकर लोग आपस में तर्क-वितर्क करते थे । उन लोगों में से कितनेक लोग इस प्रकार कहने—यह भिक्षु प्रतिदिन भिक्षा के लिए घूमता है, मगर भिक्षा लेना नहीं है, हम में कोई न कोई कारण होना चाहीए, जो हमें मालूम नहीं पड़ता । कोई कहते—यह भिक्षु उन्मत्त होने के कारण चकर काटा करता है । दूसरे कहते—यह किसी राजा का गुप्तचर है । यह अपने राजा के किसी विशेष कार्य को लेकर घूमता है । किसीने कहा—यह चोर है और चोरी के उद्देश्य से घूमता है । कोई कोई कहते थे—यह भिक्षु चोरीसर्वे तीर्थरु हैं, और अपनी प्रतिबन्धी

करवा लागा लोकोने आ प्रमाखे भेलाता सालणी यहनमालाके तेभने अटकाण्या अने कछु डे ‘आ भूला माता न भारे महान उपकार करवावाणी छे. जेना प्रभाववडे आले भने आवे अनुपम अमसर प्राप्त थये। (सू०९५)

टीकाનો अर्थ—सामान्य जोराक ज्ये भिक्षुकु लोहन छे आबु’ लोहन ने। गमे त्याथी प्राप्त थई छे, छता आ बिछु बेर घेर आथडे छे, ने लोहन तेनी आजण धरवा छता ते डेतो नथी भाटे आ बिछुने। बुढे न धुगिढे छे। जे अर्थोमाथी अनेक प्रकारना तर्कवितर्क उला थवा लागा वात वायुवेगे प्रसरता लोको आ बिछुकनी टीका करवा लागा अने नतनतना गपगोणा डेकुवा लाग्य. आ कटपनाने। डोर्ध पणु अत छतो नछि. कदाय आ बिछुक डोर्ध इरभनने। न्युसी मनुष्य छे। तेम न कदाय चोरी करवा निभिते आरेडेर तपास पणु करी रह्यो छे।

त्रिषोक्तस्वामी, सर्वजगत्तीव्रहृत्कार=साकल्यसुखनस्यमायिकव्यवस्थाकारि भगवतो भगवान् महावीरः, दुष्टकरदुष्टद्वारेण= अतिक्रान्तिनेन अभिप्रेरहेण प्रदति इति । शतसे एवं शोचन्ति-भद्रो ! वयं=सर्वे मन्दभाग्याः=भाग्यहीनाः स्मः यन्=यस्मादेतोः सत्त्वं ईदृश्य=त्रैवावपनायत्सादि विभक्तिषु महापुरुषस्य अभिप्रेर पूरयितु=सम्पन्नं कर्षुं न यन्नुयन्=न समर्पा भवामः । एवम्=इत्यम् भट्ट=अभिप्रेरपूरण्यभिप्रेर्यै भ्रमतः भगवन्तः=भीवीरस्तामिन पञ्च दिवसोनाः=पञ्चभिर्दिनैर्न्यूनाः पष्पासाः व्यतिक्रान्ता =शयतीता अमयन् । ततः=पञ्चाहान्यूनपण्मासीष्यविक्रमणा- नन्तरं सत्त्वं द्वितीये दिग्से कोहनिगडवन्पनशोचनमतिनिधित्वे=ओहृत्प्रमानियत्रणलच्छनस्थाने, अनादिक्रान्ति मयवन्पनशोचन=अनादिकालोद्भवमवन्पनमजन कर्तुं मोहकारस्थानीयाः=साहसादुल्लयो भगवान् महावीरो यनाबह श्रेष्ठिना गुरो वन्दनशालायाः=उभान्याः रामपुरुषाः अतिके=समीपे समनुभासाः=समागत, तं=पुत्रभासं भीवीर स्वामिनं दृष्ट्वा सा वन्दन=वन्दनशाला, इष्टदृष्ट्वा=इष्टा=रिषिता, दृष्ट्वा=सन्तोष मासा विवानन्दित्वा=आनन्दितमानसा

पूर्णि के लिये भ्रमण करते हैं । कुछ दिनों बाद सभी जन वीर भगवान् से परिक्रित हो गये । जान गये कि यह सिद्ध तीन नोरु के स्वामी और संसार के माली-मात्र के कृपणकर्ता भगवन् महावीर हैं, और दुष्टकर-दुष्टकार (अप्यन्त ही कठार) अभिप्रेर के कारण भ्रमण करते हैं । जब लोगों को पता लगा तो वे इस प्रकार शरु करने लगे-आह ! हम सब अमाने हैं, जो ऐतन्निरीकीनाय महापुरुष का अभिप्रेर पूर्ण करन में समय नहीं है । इस प्रकार अभिप्रेर पूर्ण के निमित्त भिक्ता के लिए भ्रमण करने वाले भगवान् महावीर को पौच दिन कम उम मास पूर्ण हो गय । इतना समय वीर जाने के बाद, दूसर दिन, मोहकी साकल्यके वषनों को तीव्र देने के स्थानापन्न अनादि काल से चले आ रहे मत-वन्पनों को शङ्कने के लिए लुहार के समान भगवान् महावीर पनावर श्रेष्ठी के या वन्दनशाला के निकट पहुँचे । भगवान् को भाये देखकर वन्दनशाला हरित हुई, और सत्राण को मास हुई उसका विष मानन्दित हुआ । इयंभी अचिकता से इदय उल्लसन् लया ।

भाषी इतिव निरालो उपशत सञ्जनोना विद्यारथवाच पञ्च पठेते यथा श्राव्ये आ विद्यारथवाचभां अजवानने तीर्थंर तदीके धव्यधी तेभा हेध योताना अभिभक्तने धार पाठवा प्रवान करी रखा करे तेभ तेभने हाथवा भाष्टु तीर्थंरशे योताना क्रथीने तोदवा भो निनिध प्रधारना कथीरथ प्रधाथे अनाड अता कटा, जेवु भटव्य पञ्च चिकाने अकरे करी रखा कटा गाना प्रधारना अपजोधानी पञ्च शे सत्य छे ते शोधपु पञ्च सुरहेक यष्ट पञ्चु कटा आभा आभनी कथे आ निरय उपर दुनित्र भुष्ट कटी बोधे पञ्च अथी करवा करवा यारी अथा कटा, हाव्यु हे कज

हर्षवशविसर्पद्वया=हर्षाधिपथेनोच्छलद्धृदया सती चिन्तयति=मनसि विचारयति-‘अहो पत्तं’ इत्यादि-‘अहो’-इति विस्मये’ मया पात्रं=सुपात्रं प्राप्तं=लब्धम् । ममापि किञ्चित् पुण्यम् अस्ति, यत्=यस्मात् हेतोः अयं कल्पवृक्षः=कल्पवृक्षतुल्यः अतिथिः=भिक्षार्थी मुनिः ममाङ्गणे प्राप्तः=समागतः । ” इति चिन्तयित्वा भगवन्तं प्रार्थयति-हे प्रभो ! यद्यपि भदन्तस्य=कल्याणकारकस्य इदम्=एतद् भक्तम्=आहारः नोचितं=न योग्यं, तुच्छत्वात्, भवा-दश्यातियेयोग्यं तु विशिष्ट भक्तं समर्पणाय, तथापि-यदि एतत् तुच्छमपि अन्नं संतोषापहतपायिनो भवतः एषणीयेषिणः कल्पनीयम्=एषणीयं भवेत्, तदा=तर्हि ममोपरि कृपां=दयां कृत्वा एतदन्नं गृह्णातु=स्वीकरोतु भवान् । ततः खलु स भगवान्=श्रीवीरस्वामी तत्र द्वादश=अभिगृहीतेषु त्रयोदशसु पदेषु द्वादशसंख्यानि पदानि प्रतिपूर्णाणि=अविकलानि पश्यति, किन्तु तत्रैकमेव अश्रुरूप-नेत्रोदयिन्दुलक्षणं त्रयोदशं पदं न पश्यति, ततः=तस्मात् कारणत् भगवान्=श्रीवीरस्वामो प्रतिनिवर्तते=परावृत्तो भवति, प्रतिनिर्तमान भगवन्तं-श्रीवीरं दृष्ट्वा चन्दना=चन्दनवाला परिचिन्तयति=मनसि संविचारयति-‘भगवान् श्रीवीरस्वामी अत्र आगतः, पश्चात् भक्तमगृहीत्वैव एषः=श्रीवीरस्वामी

वह मन ही मन सोचती है-ब्रह्मा, आज मुझे सुभात्र की प्राप्ति हुई, इस से प्रतीत होता है कि मेरा कुछ पुण्य शेष है, जिससे कल्पवृक्ष के समान यह भिक्षार्थी श्रमण मेरे आंगन में आये है, इस प्रकार विचार कर चन्दन-वाला भगवान् से प्रार्थना करती है-‘प्रभो ! यद्यपि तुच्छ होने के कारण यह आहार आपके योग्य नहीं है; आप जैसे अतिथि को तो विशिष्ट आहार अर्पित करना उचित है; तथापि यह तुच्छ अन्न भी सन्तोषापहत भीने वाले तथा एषणीय आहारस्वीकार करने वाले आपको कल्पनीय हो तो मुझ पर दया करके इसे स्वीकार कर लीजिए ।’

तब भगवान् ग्रहण किये हुए तेरह बोलों में से बारह बोलोंकी पूर्ति हुई देखते हैं, सिर्फ वहते आँसू जो तेरहवाँ बोल था उसे नहीं देखते । अतएव भगवान् वीरस्वामी वहाँ से लौटने लगते हैं । भगवान् को लौटते देख कर चन्दनवाला मनमें विचार करती है-भगवान् श्रीवीरप्रभु यहाँ पधारें और आहार ग्रहण किये

लग छ मासने। वयत व्यतीत थतां ते वात न्युनी अने पुराणी अनी गर्ह डरी अने डालना छतडासमा नयनवा प्रकथे। दिनप्रतिदिन उपस्थित थला डोडोने। रस आ थायतमा धटवा लाग्ये। लगवान पथु धच्छित आडारने। डभणां न्नेग नथी अेम विथारी शात रडी आडार भाटे अळी मथामणु नडि डरता शातथित्ते आरभंथनमा श्यत्त परोवा लाग्या सन्ननेने मन आ वात हुडयमा थूथवा लागी डे आटआटडी। वयत पसार थर्ह गये। छता अने लगवानने धच्छित आडार आपी शक्या नडि । ते अमार अरेपर डभमाग्य छे। लगवानने तो आ थागतु ड भ डतुंज नडि डारणु डे तेमने तो आवा आना नीथे वधारे डभक्ष्य थते। डोवाथी, तेमज आरभ-स्वलावनुं प्रागथ्य ५धवाथी

निराशः=राराहस्य गतः । मया किं दुष्कर्म=दुष्कृतं=पापं चीर्णं=कृतम् यस्य=दुष्कर्मणः इहस्य अयम् फलं ज्ञातम्=
 उदयावधिकार्यामागतम् । तथा-अहं कीदृशी अपन्या=अपशस्या अपुण्या=पुण्यरीना अकृतार्या=अकृतकृत्या, अकृत
 पुण्या=अननुष्ठितपुण्यकर्म अकृतकृषणा=अज्ञातरीना=अज्ञस्तन्मक्षणवर्जिता अकृतविमन्त्रा=असम्पादितवैभवा अस्मि,
 मया लच्छ जन्ममीचीतकृष्य=जन्मनो जीनीतस्य च फलं कुसम्भं=कुसितरूपेण प्राप्तम्, यथा-अथन्यत्वादिविधि
 एषा मया इयमेतद्रूपा=ईश्वरी दुःखपरम्परा लब्ध्या=उपार्जिता, प्राप्ता=उपार्जिता सती स्वायत्तीकृता, स्वायत्ती
 भूताऽपीयं दुःखपरम्परा अभिसमन्वागता अभिः=आमिदुस्येन सम्=साहस्येन प्राप्तेः अनु=पश्चात् आगता=
 योग्यताश्रयता । तथा-मम अष्टमतपः पारणे समागत, एतादृशः=इच्छाः दुष्कर-दुष्करः शरीरान्निग्रहो महादुनि
 महावीरो भगवान् भयतिन्मन्वितः=ममकम् अमतिप्रारिह एष प्रतिनिवृत्तः पराटस्य गतः । तन्मन्ये=युवागतः=
 युवमाप्तः कल्पवृक्षः इत्वात् अपकृतः=दूरीयतः । तथा-इशागतः=इस्तस्यि एव वन्दनबाना रोदितुम्=अभूषि विमोचयितुम् आरमतः=
 त्वं नष्टम्=अपगतम् । इति कृत्या=इत्थं परिचिन्त्य सा वन्दनबाना रोदितुम्=अभूषि विमोचयितुम् आरमतः=
 आरब्धवती । ततः=वन्दनबालाया रोदनानतरं लच्छ भगवान् श्रीवीरस्वामी तत्रैव चन्दनापुरेऽप्रकृष्टयोगेकं प्रयोष्यं

विना ही लौ गये । न जाने मैंने क्या पाप-कर्म किया है, जिसका ऐसा अष्टम फल उदय में आया है !
 मैं कैसी अपत्य हूँ, पुण्यहीन हूँ, अकृतार्य हूँ । मैंने पुण्य-उपार्जन नहीं किया ! मैं दुष्कर्मणी नहीं हूँ ।
 मैंने कोई वैभव नहीं पाया ! सुभे जन्म का और जीवन का कैसा दुष्फल मिला है ! जिससे कि सुभे ऐसी
 दुःख-परम्परा की उपमन्थि हुई, प्राप्ति हुई और दुःखपरम्परा ही मेरे सन्तान आई ! अष्टमममक क पारणे के
 भवसर पर ऐसे अत्यन्त दुष्कर अभिप्राय को पारण करने वाले महादुनि महावीर पशु भाहार भिये विना ही
 बापिस लौट गये, जो मैं समझती हूँ कि घर में आया कल्पवृक्ष ही हाथ से चला गया । मातों हाथ में आया
 हुआ सर्वोत्तम शीरा गुम हो गया । इस प्रकार विचार करके चन्दनाला खन करने लगी-तसके नेत्रों से

आपसे आनन्दनी देवी वरवती देवी, छत्वां शरीर आयेतो पूरे संयोग केरुकेरु वार देवीयु हाइत छत्वां आकारनी
 प्रिय प्रमद पशु वती छत्वा ते धियेने ज्ञानयोग द्वारा विवेकशी शान्त पाया आने विचारता है, अग अन्धारे परि
 यत्र यो त्वारे अ आकारनी ज्ञेयवार्ध आयोआय यरु करे। का प्रभायु अग वर्तित वत्वा छ अद्विनाभा याव
 विनस ज्योअ श्रेतां वनवक येने त्वा ज्योआर अहं ज्ञानवानु आरभन क्यु त्वारे तेमखे अतिछत वस्तुअ सभअ
 पत्ने ज्येअ यवेदी ज्ये। परत ज्येअ गुणव वस्तुने अभाव ज्येतां ते पाछा वगन बाआ। का वस्तु ज्ये ते सुखने
 तीन उभयभा आने ते उद्वेगवती । नश्रेणतानी पछव. के अशुभयत का ज्येने अ वे। कालना पछव ज्येने

पदं=यस्तु प्रतिपूर्णं विज्ञाय प्रतिनिवृत्य=परागत्य चन्दनवालायाः हस्तात् वाष्पितमाषान्=स्विन्नमाषान् 'चाकुला'
इति भाषा प्रसिद्धान् करणत्रे=हस्तभाजने प्रतिशृङ्खल=आदाय पारणम् अकार्षीति=कृतवान् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये=श्रोमहावीरस्वामीनो भिक्षाग्रहणकालावसरे तस्य=चन्दनवालाक्रेतु-र्धनावह
श्रेष्ठिनः ग्रहे दैवैः पञ्चदिव्यानि=अनुपदं वक्ष्यमाणानि वसुधारादिकानि वस्तूनि प्रकटीकृतानि-तद्यथा-देवैः वसु-
धारा=स्वर्णदृष्टिः दृष्टा=कृताः १, दशार्द्धवर्णानि=पञ्चवर्णानि कुसुमानि-पुष्पाणि निपातितानि=दृष्टानि २, चेलोत्क्षेपः=
वह्निरर्पणं, कृतैः ३, दुन्दुभयः=भैर्यः आहताः=ताडिताः-वादिताः ४, अन्तरापि च खलु आकाशे 'अहोदानम्-
अहोदानम्' इति एतद्धचनं घुषितम्=उच्चैरुच्चारितम् ५ । ततश्च देवाः जयजय शब्दं प्रयुञ्जानाः=वदन्तः चन्दनवालाया
महिमानम्=प्रभावम् अकुर्वन्=ख्यापितवन्तः । तस्या=चन्दनवालायाः निगडवन्धनस्थाने हस्तपाद हस्तद्वयं पादद्वयं च
वलयत्रपुरसप्तलङ्कृतं=चलयाभ्यां त्रपुराभ्यां च समलङ्कृतं जातम्, मुण्डितशिरसश्च तस्याः केशपशः=केश-
नमूहः सुन्दरः=शोभनः ससुदभूतः=सजातः । तथा-तस्या=चन्दनवालायाः सर्वशरीरं नानाविधप्रखालङ्कारविभूषितं=
बहुप्रकारक-स्त्राभरणमुशोभिनं सजातम् । सर्वत्र=वर्षिभ्यन् स्थाने हर्षप्रर्पुर्पुः=आनन्दप्रतिशयो जातः लोकाः जनाः

आसू वहने लगे । चन्दनवात्रा के रुदन करन पर भगवान् शेष रहे हुए एक बोल की पूर्ति हुई जानकर
पुनः वापिस लौटे । लोटकर चन्दनवाला के हाथ से उवले हुए उडद-बाकले-करणत्र में ग्रहण किये ।

उस काल और उस समय में अर्थात् भगवान् महावीर के भिक्षा ग्रहण करने के अवसर पर चन्दन-
वाला को खरीदने वाले धनावह सेठ के घर देवीने पाँच दिव्य वस्तुएँ प्रकट कीं । वे इस प्रकार हैं—
(१) देवीने स्वर्णसुद्राओं की दृष्टि की (२) पाँच वर्ण के अचित फूलोंकी वर्षा की (३) वखोंकी वर्षा की
(४) दुन्दुभियां बजाई (५) आकाश के मध्य में 'अहो दानं, अहो दानं' का उच्चस्वर से घोष किया ।

तत्पश्चात् देवीने 'जय-जय' शब्द का प्रयोग करके चन्दनवाला की महिमा प्रसिद्ध की । चन्दन-
वाला की बेडियों की जगह दीनों हाथ कंकणों से और दीनों पैर त्रपुरों से अलंकृत हो गये । उसके मुंडित
मस्तक पर सुन्दर केश-पश उत्पन्न हो गया । सारा शरीर भक्ति=भक्ति के वखों और आभूषणों से सुशोभित

पोताना धृष्टेवने भाटे हुधयने। उल्वास उछणते होय तेनामा आ जे वाना ते। बरइ होवा धटे । उपरोक्त बाव भग-
वाने न्यारे पाछ वणती वपते ज्येथे डे तरत ज चेताने। अकिअइ पूरे थयेवो ज्येथे अने लकतने। उज्जे-सुडे। आहार
वडोरी लकतना हुधयना अने तेना ससारना तीव्र अंधने। तोडी नाप्यां तेमज लकत अंधनथाणाने भरथुना असेव्हा

देवदुन्दुभिरचिन्नि=देवदुन्दुभिसद्वर्ध भुत्वा तत्र=चन्दनविष्टितस्थाने भागस्य=चन्दनबालाम् अस्तुवन=तत्प्रभावपर्यन्त
 शक्यैः स्तुतवन्तः। तथा-धनावशोष्ठिने धन्यवाद् ददतः तद्भ्रायो=पनावहपत्नीं मूलां अनिन्दन्=विशुद्धवन्त ।
 वत=मूलानिन्दनं भुत्वा चन्दनबाला लोकात्=मूलां निन्दतो जनान् निवारयन्तो अक्षत=उक्तवती-; मो लोकाः। =
 हे जनाः! एतन्=अनेन प्रकारेण मा वदन्तु, मम तु पूषण=इयमेव मूला माता अन्तोपकारिणी=अत्यन्तोपका
 रिणी च अस्ति, यत्प्रमत्वेण अथ-अस्मिन्दिने मया ईदं=श्रीश्रीममोरभिमिश्रपूरणस्य स्वप्नर=मन्त्रमत्सद्वर्ध,
 कस्य=अपिगतं, मातृ=स्वायचीपूतः, ततश्चायम्-अभिसमन्वागतः-अभि=आभिसम्बल्येन, सं=सांगत्येन अतु=मासे
 प्रभात् आगतः=मुपाश्रदान्त साफल्यपुण्यत इति ॥६०९५॥

मूलम्-उप ऊ 'एसा वदणबाला सम्यगस्त मगवमो महावीरस्त एवमा सिस्सिणी भविस्स'-'पि भागासंसि
 देवेरि बुं। का एसा वदणबाला नीए इत्थेण मगवमो पारणा जाये-' ति तीए चरिते संखेकमो वंसिख्खार-

एगणा कोसरी नयरी नागे सयाभमो जांसं राया रंपा जयरीजायगं दधिवाणभाभिं निवं अक्कमिय दुष्णी
 ईए वंपणयरिं छुंतीअ। दधिवाणो राया पलाइयो। तयो सयाणीयरायस्स कोवि मडो दधिवाणजरायस्स पारिणी
 पामं मदिनीं पट्टयंरं पुंठिं व रंमि ठापिय कोसंभिं नयइ, मग्गे सो मणइ-इमं मदिंसिं मज्जं करिस्साभिधि।
 तमो धारिणी देवी तं पयमं सोषा निसम्म सीलमंगसएण सयणींरं अक्करिसिय मया। त ददुष मीओ सो

हो गया। सब जगह सूत्र हर्ष ही हर्ष छा गया। देवदुन्दुमी का पोप घुना, ठो सब लोग नहीं आ पहुँचे, जहाँ
 चन्दनबाबा थी और उसके प्रभावकी मईसा करने लगे। सबने घनाव सेंठ को पन्यवाद् घेरे हुए उनकी पत्नी
 मूला की निन्दा की, उसे पिक्कार दिया। मूला की निन्दा सुनकर चन्दनबाला निन्दा करने वाले लोगों को
 रोझी हुई कहने लगी-'हे मारिओ इस प्रकार मत बोलो। मूला माता ही मेरा अन्त उपकार करने वाली है,
 जिसके प्रभाव से आज मैंने-मगवान का अभिप्राय पूर्ण करने का यह शुभ अवसर लाभ किया है पाया है
 और समुत्प किया है। अर्थात् यह मूला माता का ही उपकार है कि मैं मगवान का अभिप्राय पूर्ण करके
 मुपाश्रदान का फल पा सकी ॥६०९५॥

येनाभांभी अउत्तरी. अत्राथ दुं=अना अतभां धरेवी देवार तेनी ठेकेवाती मूला भातानी निदा करवार दोठिने अउत्तरी
 अइण्णणा ठाकी हे, मारी भाताजे मने आ प्रभावे न इमुं=होव तो। दुं थी रीते आकाव अमवाननां इअ न
 डरी उअत्त। अने अउत्त भाउ हेडी देवा ठावठ पुं=उ अत्रवानना करणअभा थी रीते एत। आ अषि अयेज
 मिकनी आपनार मारी मूला भाताने नेउठे उपकार भट तेउठे भेठे छे। आअ ठठिने मूला येभावीने अइअ
 इठे ज्ञानी पटी. (६०९५)

भडो इमावि एयारिसं अकज्जं मा करिज्ज त्तिकट्टु तं वसुमई किंचिवि न भणिय कोसवीए चउप्पहे विक्कीअ ।
 विक्कायमार्णि तं एगा गणिया सुद्धं दाउं किणीअ । सा वसुमई तं गणियं भणीअ हे अंव ! कासि त ? केण
 अट्ठेण अहं तए कीणीया ? सा भणइ-अहं गणिया, मम कज्जं परपुरिसपरिरंजणं । तीए एरिसं हियय वियारणं
 अण ' वज्जपायंवि वयणं सोच्चा सा कंदिउमारभीउ । तीए अट्ठणायं सोच्चा तत्थट्ठिओ धणावहो सेट्ठी चिंतीअ-
 'इमा कस्सवि रायवरस्स ईसरस्स वा कन्ना दीसइ, मा इमा आवया भायणं होउ' ति चिंतीय सो तइच्छियं दब्बं
 सोच्चा तं कन्त वेरूण नियमणे णईअ । सेट्ठी तव्वज्जा मूला य तं गिययुच्चिंवि पालिउ पोसिउं उवक्कीअ ।

एगया गिम्हकाले अण्णभिच्चाभावे सा वसुमई सेट्ठिणा वारिज्जमाणवि गिहमगयस्स तस्स पायक्कखा-
 लणं करीअ । पाए पक्कालंतीए तीए केसपासो छुटिओ । "इमाए केसपासो उट्ठभूमीए मा पडउ" ति कट्टु तं
 सेट्ठी नियपाणिळ्ठीए धरिऊण वंधीअ । तथा गक्खट्ठिया सेट्ठिणा भज्जा मूला वसुमईए केसपासं वंथमाणं सेट्ठि
 दट्ठण चिंतीअ ।-इमं कन्नं पालिय पोसिय मए अणट्ठं कयं, जइ इमं कन्नं सेट्ठी उव्वहेज्जा तो हं अवयट्ठा चेव
 भविस्सामि, उपज्जमाणा चेव वाली उव्वसायेयवि' ति कट्टु एगया अन्नगाम गयं सेट्ठि सुणिय सा नाविएण
 तीए सिरं डुंडाविय सिल्लाए करे निगडेण पाए नियंतिय एगम्मि भूमिगिहे तं ठाविय त भूमिगह तालएण
 नियंतिय सयं तस्सि चेव गामे पिउगेह गया । सा य वसुमई तत्थ छुट्टाए पोडिज्जमाणा चिंतेइ-

“ कत्थ रायकुळं मेऽस्थि, दुइसा केरिसी इमा ।
 कि मे पुरा कयं कम्मं, विवागो जस्स ईरिसो ॥१॥ ”

एवं चिंतेमाणा 'सा कारागारसुत्तिपज्जतं त्वं करिस्सामि' ति कट्टु मर्णमि परमेष्ठिमंतं जउिउमारभीअ ।
 एवं तीए तिन्नि दिणा वइकंता । चउत्थे दिणे सेट्ठी गामंतराओ आगओ वसुमई अदट्ठण परियणे पुच्छीअ ।
 मूला निवारिया ते तं न किंपि कहीअ । तओ कुट्ठो सेट्ठी भणीअ-जाणमाणान्नि तुम्हे वसुमई न कहेह, अओ
 मज्झीगिहाओ निग्गच्छह'-त्ति सोऊण एगाए बुट्टाए दासीए 'ममं जीविएण सा जीवउ' ति कट्टु सेट्ठिणे तं
 सव्वं कहियं । तं सोऊण सेट्ठी सिग्गं तत्थ गतूणं तालगं भंजिय दारं उग्घाडिय वसुमई आसासीअ । तएणं से
 सेट्ठी गिहे न भायणं न य भत्तं कत्थवि पासइ, पसुनिमित्तं निप्फाइए वप्फिय मासे चेव तत्थ पासइ, ते अण्ण
 भायणाभावे सुप्पे गहिय तेण भत्तं वसुमईए समधिया । सयं च निगडाइ वंधणच्छेयणट्ठं लोहयारामाकारिउं
 तग्गिहे गमिअ । सा वसुमई य स वप्फियमासं सुप्पं हत्थेण गहिय चिंतीअ-इयोपुव्वं मए किंपि दाणं दाऊण
 मेव पारणणं कयं, अज्जउ न किंपि दाऊणं कहं पारेमि ? केरिसो मे दुहविवागो उदिओ, जे णं अहं एरिसं

दस सैका। अरु कस्सवि अतिरिस्स एयं मत्तं द्वाहा अरं पारणगं करेमि, तो सेयं-चि चितीय गिहदेवलीए एगं पायं नादि एगं पाय व अंता किंवा सुगिममं पासमाणी चिद्वर। सा सेच मसुमई चदणस्सेव सीयलसहा वरणेण चदनपालि नामेण पसिदि पचा ॥५०९६॥

छाया—उक्त 'एषा चन्दनवाला भ्रमणस्य मगवतो महावीरस्य, प्रथमा शिव्या भविव्यति' इति आकाशे दूषैरुपितम्। कैषा चन्दनवाला इ, यस्या इस्तेन मगवत पारणकं जातमिति-वस्याधिरि सक्षेपतो इदयते—
 एतदा कौशाम्बीनगरीनाथः श्रवानीको राजा चम्पानगरी नाथक दृषिवाहनमिषं नृपमकम्प्य दुर्नीत्या चम्पानगरीमलुष्यत्। दृषिवानो राजा पलायितः। ततः श्रवानीकराजस्य कोडपि भटो दृषिवाहनराजस्य पारिणी नान्नी मरिषी मसुमती पुत्री च रूप स्यापयित्वा कौशाम्बीं नपति, मार्गे स सम्पति—' इमा मरिषीं मार्यो हरिष्यामि ' इति। ततो पारिणी देवी तद्वचनं श्रुत्वा निद्राम्य श्रीरामभ्रमणेन स्वनिद्रामपकृत्य मृता।' तो इत्या

मूल का अर्थ—'उरण' इत्यादि। तदनन्तर आकाश में देवीने घोषणा की—'यह चन्दनवाला भ्रमण मगवान् महावीर की प्रथम शिव्या होगी।' जिसके श्राप स मगवान का पारणा हुआ, वह चन्दनवाला कौन गी? और उसका चरितसंमप में विलयाया जाता है।

एककार कौशाम्बी नगरी कं अपिपति राजा श्रवानीक ने चम्पानगरी के नाथक राजा दृषिवाहन पर आक्रमण करके दुर्नीति से चम्पानगरी का लूटा। दृषिवाहन राजा माग गया। तब श्रवानीक राजा का एक योद्धा राजा दृषिवाहन की शरीणी नामक रानी को और मसुमती नामक पुत्री को रूप में विठकार कौशाम्बी के चला। मार्ग में उसने कहा—'इस रानी को मैं अपनी पत्नी बनाऊँगा। शरीणी देवीने उसके यह वचन सुनकर और समझकर श्रीरामग होने के मय से अपनी नीम गडार लीच ली और मण स्याग दिये। शरिणी देवी को

भूनेना अर्थ—'उरण' इत्यादि का अर्थ आकाशमा हिम्य येषुका आभणनामा आवी है 'आ अ इ न व्यञ्जा भ्रमण भ्रमणान् महावीरनी प्रथम शिव्या भवे' जेवा काहे भगवाने आकार भदवु ह्यो ते अ इ न व्यञ्जा कती? तेना अक्षेप देवाक नीके मसुमतीना आये छे—

इह किं अर्थे श्रवानी नगरीना अपिपति सभ श्रवानीक अ पानशरीना नाथक राजा दृषिवाहन एपर आक्रमण तेने कानी अ पानशरीने दूरी लीपी दृषिवाहन राजा शराम छोडी नासी अये। त्यारण्यै श्रवानीक श्रवानीके शोको दृषिवाहन सभनी शोकी धारिणी जने तेनी पुत्री मसुमतीने रघुमा जेकाडी शिशुमती नगरी तरहे उपाडी अये। आराम तेके धारिणी शोकीने कसु है मं तने नारी शोकी लभनीक। आ श्रवानी शिवलजना आराम

भीतः स भटः 'इयमपि एतादृशमकार्यं मा कुर्यात्' इति कृत्वा तां वसुमतीं किञ्चिदपि न भणित्वा कौशाम्ब्या-
 श्रुत्वाप्ये व्यक्रीणात् । विक्रीयमाणां तामेका गणिका मूल्यं दत्त्वाऽक्रीणात् । सा वसुमती तां गणीकामभणत्-
 हे अम्ब ! काऽसित्त्वम् ?, केनार्थेनाहं त्वया क्रीता ?, सा भणति- 'अहं गणिका-मम कार्यं परपुरुषपरिरञ्जनम् ।
 तस्या ईदृशं हृदयविदारकमनार्यं वज्रपातमिव वचनं श्रुत्वा सा क्रन्दितुमारभत । तस्या आर्तनादं श्रुत्वा तत्रस्थितौ
 धनावहः श्रेष्ठी अचिन्तयत्- 'इयं कस्यापि राजवरस्य ईश्वरस्य वा कन्या दृश्यते, मा इयमापद्भ्राजन भवतु' इति
 चिन्तयित्वा स तद्विष्ट द्रव्यं दत्त्वा तां कन्यां गृहीत्वा निजभवेऽनयत् । श्रेष्ठी तद्भार्या मूला च तां निजपुत्री-

मृतक देवकर वह भट जराभी डरा नहीं, यह राजकुमारी भी ऐसा ही अकार्य न कर बैठे, यह सोच कर
 उसने वसुमती से कुछ भी न कहा और कौशाम्बी के चौक में लेजाकर बेच दिया । विक्रती हुई वसुमती को
 एक वेश्याने मूल्य देकर खरीदा । वसुमतीने उस वेश्या से कहा- 'माता, तुम कौन हो ? किस प्रयोजन से
 मुझे रखीदा हैं ?' वेश्या बोली- 'मैं गणिका हूँ, परपुरुषों का मनोरंजन करना मेरा कार्य है ।' गणिका के
 इस प्रकार के हृदयविदारक, अनार्य और वज्रपात के समान व्यथाजनक वचन सुनकर वह रोने लगी । उसका
 आर्तनाद सुनकर वहाँ खड़े धनावह सेठने विचार क्रियान्वयह किसी उत्तम राजा की या धनिक की कन्या
 दीखती है । यह आपत्ति का पात्र न बने तो अच्छा, ऐसा सोचकर गणिका को इच्छित धन देकर वसुमती को

राणी लम्ब करडी भरी गह. धारिणी राणीनी आवी दथा न्नेह योद्धाञ्जे विचार कथो ङे इदथ्य वसुमती यषु आ
 प्रभाणे करी भेसे तो ? आथी तेबु वसुमतीने काह पबु छुं नहि ने सीधी दोथाऱ्थी नगरीमा लह ञ्ठ तेने थोड
 वन्चे उली राथी अने तेनु दिडाम करी चैसा उपजन्था आ वसुमतीनुं वेथाषु ओड वेश्याने त्यां थयु. कारषु ङे
 तेषुीञ्जे वधादे मूथनी आऽछुणी भूङ्गी इती आ दश्य न्नेह वसुमतीञ्जे वेश्याने प्रक्ष कथो ङे 'ह माता ! तमेो दोषु
 छो अने कथा प्रयोञ्जनथी तमेो भारी भरदी करे छी ?' वेश्याञ्जे आ सावणी प्रत्युत्तर आऱ्थो ङे 'हं गणिका छ'
 अने परपुरुषोना मनोरजन माटे तारी भरदी कर छु ' गणिकातु आवु अनर्थकारी हुदयविदारक अने वज्रपात
 समान व्यथाजनक वचन सावणी वसुमती हुदयकाट इहन करवा लागी तेनुं इदपात सावणी त्यां उला रहेला
 धतावड शेड मनमा विचार करवा लाग्या ङे आ कन्या काह उत्तम राजनी अथवा काह शेडनी होवी न्नेहञ्जे, नेथी
 आ आपत्तिनु पात्र न थाय तो साइं जोटले आ वेश्याने त्यां न वेथाय ते धन्धवा योञ्ज छ ओम विचारीने ते शेड

दत्त संस्था। जह कस्सति भतिरिस्स एय मत्तं द्वा अहं पारणगं करेमि, तो सेय-पि चिठीय गिहवेहीए एगं पर्यं नाहि एगं पर्यं च भतो डिवा सुभिममं पासमणी चिट्ठह। सा भूच वसुमई चकणस्सेव सीयलसा चकणेण चहनवासिच नामेण पत्तिदि पचा ॥५०९६॥

छाया—तब: लखु 'पपा चन्दनबाला भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य प्रथमा श्रिय्या भविष्यति' इति आकाशे द्युपितम् । कैया चन्दनबाला ?, यस्या इत्येन भगवत पारणक नातमिच्छि-वस्याधरिं ससेयतो इदयते- पद्मया कौशाम्बीनगरीनायः श्रवानीको रामा चम्पानगरी नायक द्रषिवाहनमिचं दृषमकक्रम्य दुनीत्या चम्पानगरीमिच्छुवत । द्रषिवाहनो रामा पलायितः । तत श्रवानीकराजस्य कोऽपि मटो द्रषिवाहनराजस्य चारिणी नाम्नी मरिषीं वसुधरीं पुत्रीं च रमे त्यापयित्वा कौशाम्बीं नपति, मार्गे स सण्यति- 'इमां मरिषीं मार्गे करिष्यामि' इति । ततो पारिषी देवी तद्वचन श्रुत्वा निश्चम्य श्रीलमङ्गमयेन स्वलिहामपकृष्य युता' तं इष्टा

मूल का मर्थ— 'तप ष' इत्यादि । तदनन्तर आकाश में देवीने घोषणा की- 'यह चन्दनबाला भ्रमण भगवान् महावीर की प्रथम श्रिय्या होगी ।' जिसके श्राय स भगवान का पारणा हुआ, वह चन्दनबाला कौन गी ? और उसका चरितसंक्षेप में विलम्बया जाता है ।

एकवार कौशाम्बी नगरी के अधिपति रामा श्रवतीक ने चम्पानगरी के नायक राजा द्रषिवाहन पर आक्रमण करक दुर्नीति से चम्पानगरी को छुटा । द्रषिवाहन रामा माग गया । तब श्रवतीक राजा का एक योद्धा रामा द्रषिवाहन की घारीणी नामक रानी को और वसुधती नामक पुत्री को रथ में बिठवाकर कौशाम्बी ले बसा । मार्ग में उसने कहा- 'इस रानी को मैं अपनी पत्नी बनाऊँगा । घारीणी देवीने उसके यह वचन सुनकर और समझकर शीलमंग होने के मय से अपनी भीम वहार लीच ली और माज त्याग दिये । घारिणी देवी को

भूनेये अर्थ— 'तप ष' इत्यादि आ पजते आशशभ्य दिन्म येषु सभजनाभा आवी हे ' आ च इन्व्याणा अमथ अत्रवान नकावीरनी प्रथम शिभ्या धये, जेना दाधे भगवाने आकार अडखु ठये। ते य इन्व्याणा ठेयु कवी' तेना सकिप देवाव नीक्षे वसुधवामां आवे छि—
 'इहो केषु धमधे डोशाम्बी नगरीना अधिपति राज श्रवतीक हे यानगरीना नायक राजा द्रषिवाहन उपर आक्रमण ठयु' तेने कसवी च यानगरीने छुटी बीधी द्रषिवाहन राज शाल्म किठी नाथी अये। त्यारण्यइ श्रवतीक सभने। कोक योद्धो द्रषिवाहन शाल्मी शशी घारिणी अने तेनी पुत्री वसुधतीने रकमं लेधादी डोशाम्बी नगरी तरह उपरी अथी। आर्जनां तेषु भारिषी सञ्चने कषु हे छु तने भारी शशी ज्मानीक. आ शाल्मी शीकल जन्म कसकी

अन्यग्रामं गतं श्रेष्ठिनं ज्ञात्वा मा नापितेन तस्याः शिरो मुण्डयित्वा शृङ्खलाया करौ निगडेन पादौ नियन्त्रय एकस्मिन् भूमिगृहे तां स्थापयित्वा तद् भूमिगृहं तालकेन नियन्त्रय स्वयं तस्मिन्नेव ग्रामे पितृगृहं गता । सा च वसुमती तत्र भूमिगृहे क्षुधया पीड्यमाना चिन्तयति—

“ कुत्र राजकुलं मेऽस्ति, दुर्दशा कीदृशी इयम् ।
किं मे पुरा कृतं कर्म, विपाको यस्य इदृशः ॥ १ ॥ ”

एवं चिन्तयन्ती सा कारागारमुक्तिपर्यन्त तपः करिष्यामि’ इति कृत्वा मनसि परमेष्ठिमन्त्रं जपितुमारभत । एत तस्याहीणि दिनानि व्यतिक्रान्तानि । चतुर्थे दिने श्रेष्ठी ग्रामान्तरादागतौ वसुमतीमदृष्ट्वा परिजनानपृच्छत् । मूल्यानिवारितास्ते तं न किञ्चिदकथयन् । ततः क्रुद्धः श्रेष्ठी अभगत-जानाना अपि यूय वसुमतीं न दूसरे गांव गया जानकर उसने नाई से वसुमती का मस्तरु मुडवा दिया । हथकड़ियों से हाथ और वेडियों से पैर बाँधकर उसे एक भूगृह में डाक भूगृह को नाळे से बँध कर दिया । मूला स्वयं उसी ग्राम में अपने पिता के घर चली गई । वसुमती उस भूगृह (भोंवरे) में भूख और प्यास से पीडित होती हुई सोचती है—

कहाँ वह राजकुल मेरा, कहाँ यह दुर्दशा मेरी !
न जाने पूर्व के किस कर्म-का परिपाक है ऐसा !!!

इस प्रकार विचार करती हुई उसने ‘मैं कारागार से मुक्त होने तक तप करूंगी’ ऐसा निश्चय कर के मन में परमेष्ठी मंत्र का जाप करना आरंभ कर दिया । यों उसके तीन दिन बीत गये । चौथे दिन सेठ पर आये । वसुमती को न देखकर परिजनों से पूछा । मूला ने उन्हें मना कर दिया था, अतः उन्होंने कुछ

कोई कुछ वपते शोहने अडारगाम जवान थयु ते सभयने। लाल लई तेलुंके ओक उडभने ओलांथे। अने वसुमतांन मस्तरु सुंडन करावा नाथ्यु तेना डायपगमा गेडीओ। नाभी तेने बोथरामा डुसेवा भूडी अने बोथ-राने ताणु वासो चोते मेडा पर अडी गार्ड। मेडी पर आवी कपडालताथी सन्न थई चोताना पियेर पडोथी गार्ड। आ बोथरामा वसुमती भूप अने तृथाथी पीडित थई विचारवा लागी क—

“ कथा ते राजकुल माई, कथा आ दुर्दशा भारी,
कथा ओ पूर्वकर्मोके, करी छि आ दशा भारी। ”

ओटवे के ‘कथा माई राजकुण अने कथां आ बोथरानुं’ डेहथानुं ? कथा अशुल कर्मोनां आ विपाक ‘डुशे’ आम विचारे अस्ता तेलुंके ‘डेहमाथी सुकत थाडि तथा सुधी तपनी आराधना करीश’ ओवो निश्चय कथो अने आ आराधना साथे तेलुं नमस्कर भंत्रना जप शरु कथां. आम करता तेलुंके तणु दिवस पसार कथां. चौथे दिवसे शोड घेर आंथ।

मित्र पालयितुं पोषयितुं प्रारम्भमावे सा वसुमती भेष्टिना नार्यामाणाऽपि
 शरमागतस्य तस्य पश्यतालनमकरोत् । पादौ प्रनामयन्त्यास्तस्याः केशपात्रं हृष्टित “अस्या केशपात्रः
 आद्रयन्तौ मा पठु” इति कृत्वा तं भेष्टी निशपाभियष्टया धृत्वाऽभ्यावत् । तदा-गतास्तस्यिता भेष्टिनो मार्यां मूला
 वसुमत्या कश्चाप सन्नन्तं भेष्टिनं दृष्ट्वाऽन्वित्यत्-‘इमां कन्यां पामयित्वा पोषयित्वा मयाऽनर्थं कृतम्, यदि इमां
 कन्यां भेष्टि उद्वरेत् तदाऽहम् भ्रष्टस्या मविव्यामि-उत्स्यधमान एव व्याधि उपशमयितव्यः’ इति कृत्वा पृच्छत्वा

अपने घर छे आया । सेठ और सेठ की पत्नी मूला, अपनी पुत्री के समान उसका पालन-पोषण करने लगे ।
 एक बार प्रीण के समय में अन्य सेवक के अभाव में वसुमती, सेठ के द्वारा मना करने पर मी बाहर से
 घर आये हुए पनावर के पैर धोने लगी । पैर धोते समय उसका केशपात्र छूट गया । जब ‘इसका केशपात्र
 गीमीयूमि में न पड़ जाय’ ऐसा सोचकर सेठने उसे अपने हाथरूप यष्टि में छेकर बंध दिया । तब गवास में
 स्थित सेठ की पत्नी मूलाने सेठ का वसुमती का केशपात्र बंधते देखकर विचार किया-‘इस कन्या का
 पालन-पोषण करके मैंने अन्तर्प किया । कदाचित् सेठने इस कन्या के साथ विचार कर लिया तो मैं अपवस्य
 हो जाऊँगी । बोगारो को उत्सन्न होवे समय ही शान्त कर देना चाहिए ।’ इस प्रकार सोचकर एक बार सेठ को

अविवृधने समझनी, वधाइ धन व्याधी तेनी पालेबी वसुमतीने वेणवी बीधी शेळ अने तेनी पत्नी मूला तेने
 घेताना पुत्री ममान ठेठिनवा दाया.

हेठि जेके ठेठानानी वसुमती धनावक शेळ अगत्यना कामने बीधे जकार अथा कृत्य अरभी अने प्रयत्न तापने
 बीधे आङ्गणाव तेजा घरभा दाण्ड मया ते वजते हेठि पञ्च नोकर हे शेळानीनी कामनी जेवामां आवी नकि पोते अर-
 भीधी वया आङ्गण-व्याङ्गण बदा कृत्य आ जेठि वसुमती जकार अपनी अने शेठे ना पाडवा छतां घेताना सितापुरस्य
 धनावक शेळना पत्र धोवा दात्री पत्र धोती वपते वसुमतीने अजिआ छुट्ये अर्ध जराधी तेनी छटा नीधि पडी
 जराज यथे ने अरुणेशे जेवा विचारसे अजिआने घेताना काममां वधे शेठे बांधी हीधि आर सभये मूला
 शेळव जारमां जेडी कृती तेखे आ जसु नरुणेशवर निकोणु आकां तेद भन अजोले अरसु अने विचारवा
 दात्री हे आ ठ-भाउ पालन-पोषण करमाभा से अकीर एक डरी छे कदाच शेळ आ छोकरो साथे वजनशीधी
 जेठिअथे तेा आरु शेळी सिद्धि यष्टि अथे रोज अने इरमने ठेठतां कामवा जेठके । आवी विचार
 मनां आको वसुमतीव काम हाडी न्यजवा ते वरार अर्ध

अन्यग्रामं गतं श्रेष्ठिनं ज्ञात्वा सा नापितेन तस्याः शिरो मुण्डयित्वा शूलया करो निगडेन पादौ नियन्त्र्य एकस्मिन् भूमिगृहे तां स्थापयित्वा तद् भूमिगृहं तालकेन नियन्त्र्य स्वयं तस्मिन्नेव ग्रामे पितृगृहं गता । सा च वसुमती तत्र भूमिगृहे क्षुधया पीड्यमाना चिन्तयति —

“ कुत्र राजकुलं मेऽस्ति, दुर्दशा कीदृशी इयम् ।
किं मे पुरा कृतं कर्म, विपाको यस्य इदृशः ॥ १ ॥ ”

एवं चिन्तयन्ती सा कारागारमुक्तिपर्यन्त तपः करिव्यामि' इति कृत्वा मनसि परमेष्ठिमन्त्रं जपितुमारभत । एव तस्याखीणि दिनानि व्यतिक्रान्तानि । चतुर्ये दिने श्रेष्ठी ग्रामान्तरादागतो वसुमतीमदृष्ट्वा परिजनाजपृच्छत् । मूल्यानिवारितास्ते तं न किञ्चिदकथयन् । ततः क्रुद्धः श्रेष्ठी अभणत्—जानाना अपि ग्रयं वसुमतीं न दूसरे गौत्र गया जानकर उसने नाई स वसुमती का मस्तक मुडवा दिया । हथकड़ियों से हाथ और चेड़ियों से पैर बाँधकर उसे एक भूगृह में डाक भूगृह को नाके ने बंध कर दिया । मूला मयं उमी ग्राम में अपने पिता के घर चली गई । वसुमती उस भूगृह (भोंवरे) में भूख और प्यास से पीड़ित होती हुई सोचती है—

कहाँ वह राजकुल मेरा, कहाँ यह दुर्दशा मेरी !
न जाने पूर्व के किस कर्म—का परिपाक है ऐसा ! ! !

इस प्रकार विचार करती हुई उसने 'मैं कारागार से मुक्त होने तक तप रुहंगी' ऐसा निश्चय कर के मन में परमेष्ठी मंत्र का जाप करना आरंभ कर दिया । गों उमके तीन दिन बीत गये । चौथे दिन सेठ घर आये । वसुमती को न देखकर परिजनो से पूछा । मूला ने उन्हें मना कर दिया था, अतः उन्होंने कुछ

डोर्छि ओक वणते शेडेने अडारगाम न्वाचु धयु ते समथेना लास लछ तेष्ठीओ ओक इन्मभने ओलाओये अने वसुमत'ना मस्तकचु अडंन दशावा नाप्यु तेना छाथपगमा गेडीओ नाभी तेने कोथगमा इडमेला भूडी अने लोथराने ताणु वासो पोते भेडा पर थ्यडी गछि. येडी पर आवी कपडाडताथी सन्न थछि पोताना पिथेर पछोथी गछि. आ लोथरामा वसुमती भूष अने तृथाथी पीडित थछि निवारवा लागी छ—

“ क्या ते राजकुल भाई, क्या आ दुर्दशा मारो;
क्या ओ पूर्व'कमेओ, करी छे आ दशा मारो ”

ओटले छे 'क्या भाई' राजकुण अने कथां आ कोथरानुं डेहपानुं? क्या अशुला कमेनो' आ विपाक 'इथे' आम विथारे अडता तेष्ठीओ 'डेहमाथी सुकत थाड त्यां सुधी तपनी आराधना करीय' ओयो निश्चय कथेओ अने आ आराधना साथे तेष्ठी नमस्कार गानना न्वाप यार कथां. आम करता तेष्ठीओ नषु दिवस पसार कथां. थोथे दिवसे शेड घेर आओथा.

कथयत? अतो मधुसूहात् निर्गच्छत' इति भुत्वा एकया वदया दास्या 'ममजीवीतेन सा जीवतु' इति कृत्वा
 श्रेष्ठिनः तव सच कथितम्। तव भुत्वा श्रेष्ठि शीघ्र तत्र गत्वा तालकं मन्स्त्वा द्रागुध्याटप्य चसुमतीमाश्वासयत्।
 ततः तच्छ स श्रेष्ठी शूरे न भाजनं न च मक्त कुत्रापि पश्यति, पशुनिमिष निप्यादितान् बाण्यितमायानेच
 तत्र पश्यति। वेऽन्यभाजनानामात्रे शूरे शूरीत्या तेन मत्कार्यं चसुमत्यै समर्पिता, स्वयं च निगढादिषु पनरुदेवनायै
 मोक्षकारसाधारण्यं तदुपरोऽगच्छत्। सा चसुमती च स बाण्यितमाय शूरे इत्येन शूरीत्या भवितव्यत-ईत' पूर्वं
 मया किमपि दानं वरवच पारणकं कृतम्, अद्यतु न किमपि वत्सा कथं पारयामि? क्रीडलो मे बुविपाक उदितो

नहीं बतलाया। तब कुछ होकर सेठने कहा- 'सुम जानते हुए भी चसुमती के विप में नहीं बतलाते हो तो
 मेरे घर से बाहर निकल जाओ। यह सुनकर एक पृथ्वी दासीने 'मेरे जीवन से भी बच जाये' ऐसा सोचकर
 अर्थात् मेरे गाल जापूँ तो जापूँ, मगर चसुमती के गाल बच जापूँ, यह विचार कर सेठ को सब बतला
 दिया। सुनकर सेठने शीघ्र ही वहाँ जाकर, ताका तोड़कर, दार खोलकर, चसुमती को आश्वासन दिया।
 तत्पश्चात् सेठ को घर में न कोई मालम दिलाई दिया, न मोजन ही। उसे पशुओं के लिए उखाड़े हुए उहड़ ही वहाँ
 नगर आए। दूसरा भाजन न होने से उन्हें सूप में लेकर उसने मोजन के लिए चसुमती को दिये। पनाबर सेठ
 स्वयं बेहो आदि बन्वनों को सेरने के लिए छुहार का पुलाने उसके घर बला। चसुमती उपलब्ध हुए उहड़ों वाले
 सूप को हाथ में लेकर मोचने लगी- 'इसस पहले मैंने कुछ दान देकर ही पारत्या किया है। आज कुछ भी

चसुमतीने नदि देअवाधी नोकरवचने पशुपु नोकरवचने शेषशुक्ति अनाथ श्रेष्ठ बोवाधी तेजो अर्ध श्वाभ व्यापी यक्ष्य
 नदि नोकरशे वरश्री श्वाभ नदि भगतां श्रेष्ठ कोपे अशथा अने वरनां अकार श्वाभ्य श्वाभो अनेने दुःख भयो
 आ नोकरवचनेनी अकर श्रेष्ठ वृद्ध धात्री इती तेवुं लवना जेअशे पशु चसुमतीने अवाधी देवा हठ निक्षेय भये।
 भन यकभूत हरी त दासीकि शेठने अर्ध इतीतवती वाठेइ भयो। आ आठवती श्रेष्ठ बोवरा पाले पकोत्या, वाण
 तोपी चसुमतीने अकार भयी। जे नकु विवचणी शूची वरशी छे' जेअ बाणी वरमां अजने माटे शोध हरी, पशु
 कथक शैर् पशु प्रहरतु अन्न तेभने काय आणु नदि, तपस करवा हर्ता हर्ता सेअने आणुमां आचवाना अकरने
 सुवे शिठव्य जेका अरुप छाने तेमजे सुपुं काभमां वीपु, अने तेमां अरुवना अकवा कर्ष चसुमती पाले आपी
 तनी साभे भवो, 'कुं कभणु आणु छे' जेअ चसुमतीने भयी तेजो जेरी तेकवा माटे छुकारने जेताबवा अथा

चसुमती आ अरुवना अकवावाणा सुपाने काभमां कर्ष विचारवा कात्री है आअ सुभी तेा कर्ष पशु
 प्रभाना तपनी प्रीत पकेला अन्नदान आणु छे अने अन्नतु दान आया पछी अ भि पाशु कर्ष छे तेा आ

येन अहमीदृशीं दशां सम्प्राप्ता। यदि कस्या अपि अतिथये एतद् भक्तं दत्त्वा अहं पारणकं करोमि, तदा श्रेयः इति चिन्तयित्वा गृहदेहल्या एकं पादं बहि, एकं पादं च अन्तः कृत्वा मुनिमार्गं पश्यन्ती तिष्ठति। सैव वसुमती चन्दनस्यैव शीतलस्वभावत्वेन 'चन्दनबाले' ति नाम्ना प्रसिद्धिं गता ॥सू०९६॥

टीका—'तए णं' इत्यादि। ततः लखु "एषा चन्दबाला श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य प्रथमा=सर्वत आधा शिष्या भविष्यति" इति-एतद् वचनम् आकाशो देवैः घुपितम्=उच्चैरुचरितम्। एषा चन्दनबाला का? = अस्याः कः परिचयः? यस्याः=चन्दनबालायाः हस्तेन भगवतः=श्री महावीरस्वामिनः पारणकं जातम् इति= एतज्जिज्ञासूनां कृते तस्याः=चन्दबालायाः चरित्र संक्षेपतो दृश्यते, तथाहि-एकदा=एकस्मिन् समये कौशाम्बी

दान दिये विना कैसे पारणा करूं! कैसा मेरे पापकर्म का उदय आया है कि, मैं ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हुई। अगर किसी अतिथि अर्थात् महात्मा को यह भोजन देकर मैं पारणा करूं तो अच्छा। इस प्रकार विचार करके वह एक पैर घर की देहली के बाहर और एक पैर भीतर करके मुनि की राह देखती हुई बैठी। वही वसुमती चन्दन के समान शीतल स्वभाव वाली होने से 'चन्दनबाला' के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥सू०९६॥

टीका का अर्थ—भगवान् का पारणा हो जाने के पश्चात् 'यही चन्दनबाला श्रमण भगवान् महावीर की सब से पहली शिष्या होगी' इस प्रकार की घोषणा देवोंने आकाश में की। कौन थी यह चन्दनबाला? जिसके हाथ से भगवान् का पारणा हुआ, उसका परिचय क्या है, इस बात के जिज्ञासुओं के लिए चन्दनबाला का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

अहुभतपुनुं पारखुं डोछने दान हीधा विना डेवी रीते डरं? आ डोछ निविड अशुभ क्रोनि। उदय छे डे मने आवी डरंथा आप्त थरु! अत्थारे डोछ अतिथि अर्थात् भङ्गारु आवी पडे ने तेने दान दडं'ते। डेवु सारं? अने आवुं दान वेनार डोछ तथा इपने आत्थार्थि सुनि डोय ते। डेवुं सुदर! आवा प्रङ्गारनी चितपना करती अने लाव प्रगट करती ते ओछ पग उंभरानी भङ्गर अने ओछ पग उंभरानी अंहर करी सुनिनी राड जेवा दागी. वसुमतीने स्वभाव चंदन जेवो शीतण अने चंद्रमा जेवो डोउ डोवाना डारखे तेवु नाम 'चंदनबाला' पाडवामां आव्युं डरुं अने आ नामथी ते प्रसिद्धिने पाभी डती. (सू०९६)

टीकानो अर्थ—भगवाने पारखुं कथा पछी देवेजे आकाशमां जेवी घोषणा करी डे "आज चंदनबाला श्रमण भगवान भङ्गारनी सौथी पडेही शिष्या थरी." जेनां डोखे भगवाने पारखुं कथुं" जे चंदनबाला डोखु डती? जिनासुजेने आ वातने। परिस्थ करववा माटे चंदनबालानुं संक्षिप्त वृत्तांत आपवामां आवे छे—

कपयण ! सतो मद्रुयात् निर्गच्छत' इति भुक्त्वा एकया हृदया वास्या 'ममजीवीतेन सा जीवतु' इति कृत्वा
 श्रेष्ठिन' तत् सत् ऋषितम् । तत् भुक्त्वा अथि शीघ्र वष गत्वा सालक मन्द्स्त्वा शरयुष्पाटप वसुमतीमाधासयत् ।
 ततः तस्य स श्रेष्ठी श्रे ने माजनं न च मक्त कुत्रापि पश्यति, पशुनिमित्त निष्पादितान् वाप्यितमापानेव
 तत्र पश्यति । वैष्ण्वमानानामावे श्ये श्रेष्ठित्वा तेन मत्कार्ये वसुमत्यै समर्पिता, स्वयं च निगह्यादिबन्धनच्छेदनार्थे
 मोहकारमात्रापितु तद्रुहोऽगच्छत् । सा वसुमती च स वाप्यितमाप श्ये इस्तेन श्रेष्ठित्वा अचिन्त्यत्—'इत्' पूर्वे
 मया किमपि इत्तं दूरैश्च पाणकं कृतम्, अग्रतु न किमपि वत्सा क्रयं पारयामि ? कीदृशो मे दुर्विपाक उदितो

नरो बलसाया । तत्र क्रुद्ध होकर सेठने कहा—'तुम जानते हुए भी वसुमती के विषय में नहीं बतलाते हो तो
 मेरे घर से बाहर निकल जाओ । यह सुनकर एक धुँगी दासीने 'मेरे जीवन से भी बच लीये' ऐसा सोचकर
 अर्थात् मेरे प्राण जाँएँ ही जाँएँ, मगर वसुमती के प्राण बच जाँएँ, यह विचार कर सेठ को सब बतला
 दिया । सुनकर सेठन शीघ्र ही बाँ बाँ नाकर, ताला तोड़कर, शर लोलकर, वसुमती को आधासन दिया ।
 तत्पश्चात् सेठ को घर में न कोई मानन दिखाई दिया, न मोजन ही । उसे पशुओं के लिए उखाड़े हुए उडद ही बाँ
 नजर आए । दूसरा माजन न होने से उन्हें घर में छेकर उसने मोजन के लिए वसुमती को दिये । पनाबा सेठ
 स्वयं बहो आदि बन्धनों को छेदने के लिए छुटार को पुजान उसके घर चला । वसुमती उधले हुए उडदों वाले
 सुर को शय में छेकर माचन कयी—'इसस पहले मैंने कुछ दान दकर ही पाया किया है । आज कुछ भी

वसुमतीने नदि देणवाची नाशरचने पशुशु नोहस्वभने शेषशुब्दो मनाह भरेब कोनाथी तेजो हाथ ब्याप्य आपी शब्दया
 नदि नोडेश वरेशी क्वाण नदि भणवा शेष कोषि भाशया अने बरती जहार त्याशया क्वाणो सदेने दुग्म भयो
 अ ने शरभनी अहर जेक पृद धरती धती तेजो छवना जेजभे पशु वसुमतीने जन्वावी देवा हह निक्षय भयो
 भन भकण्टा हरी त धरतीजे शेडने सर्व धरतीधरती वाडेर कथो आ राकणी शेड कोपरा पसे पडोव्या, वाछ
 तेडी वसुमतीने ककार हरी वे तपु रिपवशो कृणी वरती छे जेभ कृणी बरथा अतने भाटे शोध हरी, पशु
 इयाक केस पशु प्रहार अन् तेभने काक आणु नदि, वषस हस्ता हस्तां जे सने आणुमा आपवाणा अहने
 अवे डीज्या जेध, अण बाधने तेभजे सुपशु दाशमा वीणु अने तेभा अहना आहण्य ठाँ वसुमती पसे ज्यवी
 तनी आभे पयो, 'शु' कभसां आणु छे जेभ वसुमतीने कृणी तेजो जेडी तोडया भाटे कुकारने शोधाववा जया

वसुमती आ अहना पाठवाणा सुपशने काशमां कर्ष विचारया बाणी हे आणु सुपी तो हाथ पशु
 प्रशाया वरनी श्रुति पदेबां अण्णय आणु छे अने अण्णु धन आणुमा पडी ज मे पाशु इडु' छे तो आ

चिन्तयित्वा तां वसुमतीं मार्गे स्वहृदिस्थितं किञ्चिदपि न मणित्वा=नोक्त्वा कौशाम्ब्याः चतुष्पथे व्यक्री-
 णात्=विक्रीतवान् । विक्रीयमाणां तां-वसुमतीं एका-गणिका=वेश्या मूल्यं=भटनियतं शुल्कं दत्त्वा अक्रीणात्=
 क्रीतयत् । तदनु सा वसुमती-तां गणिकां अभणत्=पृष्टवती-‘हे अम्ब ! हे मातः ! त्वं काऽसि ? केन अर्थेन=
 प्रयोजनेन अहं त्वया क्रीता ? इति-वसुमती प्रश्नानन्तरं सा गणिका भणति=उत्तरयति-अहं गणिका अस्मि,
 मम=गणिकायाः कार्यं=प्रयोजनं, परपुरुषपरिञ्जनम्-अन्यपुरुषाणां विलासहासादिभिः प्रसादनम् इति । ईदृशम्=
 एवम्विधं तस्या वेश्याया हृदयविदारकं=मनःखेदजनकम् अनार्यम्=आर्यजनानुचितं वज्रपातमिव=वज्रपतनवद्दुःसहं
 वचनं श्रुत्वा सा वसुमती क्रन्दितुं=रोदितुम् आरभत-आरब्धवती । रुदत्यास्तस्या=वसुमत्याः आर्तनादं श्रुत्वा
 तत्र=चतुष्पथे स्थितो धनावहः=धनावहनामा कश्चित् श्रेष्ठो अचिन्तयत्=चिन्तितवान्-इयम्=क्रन्दन्ती वालिका

कार्यं कर बैठे-प्राण त्याग दे ! यह सोच उसने अपने मन की कोई भी बात वसुमती से न कह कर कौशाम्बी के
 चौहारे पर ले जाकर उसे बेच दिया । विकती हुई वसुमती को योद्धा के द्वारा निश्चित किया हुआ शुल्क
 दे कर एक वेश्याने खरीद लिया । तत्पश्चात् वसुमतीने उस गणिका से पूछा-माताजी, तुम कौन हो ? और
 किस प्रयोजन से तुमने मुझे खरीदी है ? वसुमती के इस प्रश्न के पश्चात् इस गणिका ने कहा-‘मैं वेश्या हूँ ।
 वेश्या का काम है-पर-पुरुषों को प्रसन्न करना, विलास हास आदि करके उनका मनोरंजन करना ।’ हृदय को
 विदारण कर देने वाले, मनमें खेद उत्पन्न करने वाले, आर्यजनों के लिए अनुचित तथा वज्रपात की तरह
 असह्य वचन सुनकर वसुमती आक्रन्दन-रुदन करने लगी । रोती हुई वसुमती की दुःखभरी वाणी सुनकर
 उसी चौहारे पर खड़े हुए धनावह नामक एक सेठ ने विचार किया-‘आकृति से प्रतीत होता है कि रोनेवाली

अनिरन्धनीय धार्य करी जैसे-प्राथुत्थाय करे. आम् विद्यारीने तेष्णे पैताना मननी डैर्ध पथु वात वसुमतीने न
 डहेतां कौशाम्बीना योऽकमा लर्ध ङ्धने तेने वेथी दीधी अेक वेश्याये योऽद्वये नळी करवी डींभत आपीने वसुगतीने न
 परी दीधी त्यारभाह वसुमतीये ते वेश्याने पूष्पु, “ माताल्, तमे डैष्ण छो ? अने शा ड्देश्थी तमे भने
 भरीही छे ? ” वसुमतीना आ प्रश्न भाह ते गष्पुकिअे ड्धु, “ हु वेश्या छुं. पर-पुरुषेने प्रसन्न करवा, विदास
 आदि द्वारा तेभनु भनोरब्ज करवुं ते वेश्यानुं डाम छे

ईहृदय विदारण्य करनार-भनमां जेह उत्पन्न करनार, आर्यजनोने माटे अनुत्थित तथा वज्रपात जेवां
 1८ सह्य वचन सावणीने वसुमती आडेह करवा लागी रस्ती वसुमतीनी दुःखभरी वाणी सावणीने अेक योऽकमां
 कर्यो, धनावह नामना अेक शेठ विचार कर्यो, “आकृति परथी लागे छे हे आ रस्ती भाणा अंते। डैष्ण भोदा

नगरीनाय यवानीको नाम राजा चम्पानगरीनायक=चम्पानामकनगरीस्वामिन दधिवाहनाभिधं=दधिवाहन नामकं, नृपै=राजानम् अकम्प्य=सैन्यैराकम्प्य दुर्नीत्या चम्पानगरीम् अलुष्टव=छुष्टिवाचान्। दधिवाहनो राजा नुष्टन प्रारंभे चम्पानगरीतो मयावृद्धिः पलायितः। ततः यवानीकराजस्य कोऽपि=कश्चित् मटः=योद्धा दधि वाहनराजस्य पारिणीनाम्नी महिषी=राज्ञी चसुमती नाम पुत्री च स्ये स्वापस्त्रिका कौशाम्बी नयति, स मटो मार्गे मगति इमां पारिणीं महिषीं=दधिवाहनराजस्य राज्ञीम् अहं स्वकीयां मार्ग्या=स्त्रीं करिष्यामि इति। ततः=मटस्य पूर्वविवचनरूपानन्तरं सा पारिणी देवी तदवचनं श्रुत्वा निश्चय्य श्रीकमण्डमयेन स्वलिहास-अपकृत्य बलाद्युक्तो बहिर्निर्गम्य इति। तां पारिणीं यथा इन्द्रा मीतः=मयाकुल सः मटः चित्त्वयति, यत् इयमपि=चसुमत्यपि एवाहदम्=पारिणीवत् अकार्यम्=प्राणत्यागरूपम् अकर्तव्यम्=मा कुर्यात् इति

एक समय कौशाम्बी नगरी के राजा रामा यवानीक ने चम्पानगरी के स्वामी दधिवाहन राजा पर अपनी सेना के साथ आक्रमण किया और दुर्नीति का आशय लेकर चम्पानगरी को लूटा। राजा दधिवाहन चम्पानगरी में लूटपाट मारंस होने पर मयभीत होकर बाहर भाग गया। तब यवानीक का कोई योद्धा दधि वाहन राजाकी पारिणी नामक रानी का और चसुमती नामक पुत्री को स्य में पिठना कर कौशाम्बी की ओर ले चला। रास्ते में उस योद्धाने कहा-‘राजा दधिवाहन की रानी पारिणी को मैं अपनी स्त्री बनाऊगा।’ योद्धा का यह कथन पारिणी रानीने सुना और समझा। उसे श्रीक के संज्ञित होने का मय हुआ। अत एव उसने अपनी जिहा बाहर खोच ली और प्राण त्याग दिया। पारिणी को मृतक अवस्था में देखकर योद्धा मयभीत हो गया। वह सोचने लगा-‘कहीं ऐसा न हो कि यह चसुमती भी पारिणी की भाँति कोई अवाञ्छनीय

कोष्ठ वज्रत श्रेयाभ्यीनश्रीना राजा यवानीके चम्पानगरीना राजा दधिवाहनना राजा पर योतानां श्रेय-आदि आक्रमण कर्तुं अने छत्रने आशय बाधने चम्पानगरीने छुटी. य पानगरीमा छुटशह शत्रु यथा राम दधिवाहन कथयित कथने नाश्री जये ते वज्रते यवानीकने। कर्ष येदो दधिवाहन राजानी पारिणी नामनी सखीने अने चसुमती नामनी पुत्रीने सधमा यथीने श्रेयाभ्यीनी तरश्छावी जये। स्वत्ताभां ते योद्धाजे राजा दधिवाहननी राज्ञी पारिणीने कर्षुं कं छु तने भारी पत्नी जन वीद्युं। येदामु आ कथन पारिणी राज्ञीजे अकान्तं तेने योतानु स्थित नत्र यवानीके श्रेयाभ्ये, तेथी तेवि योतानी छत्र वदशए जेकी शरीने प्राणुत्सात्र क्यो। पारिणीने मृता यथाभां जेधने ते येदो कथयित कथे. तेन विना. २०१ कं अशय जेनु जने के चसुमती पञ्च पारिणीनी अत्र

चिन्तयित्वा तां वसुमतीं मार्गे स्वहृदिस्थितं किञ्चिदपि न भणित्वा=नोच्या कौशाम्भ्याः चतुष्पथे व्यक्री-
 णात्=विक्रीतवान्। विक्रीयमाणां ता-वसुमतीं एका-गणिका=वेश्या मूल्यं=भट्टनियतं शुलकं दत्त्वा अक्रीणात्=
 क्रीतवती। तदनु सा वसुमती-तां गणिकां अभणत्=पृष्टवती-'हे अम्ब ! =हे मातः ! त्वं काऽसि ? केन अर्थेन=
 प्रयोजनेन अहं त्वया क्रीता ? इति-वसुमती प्रश्नानन्तरं सा गणिका भणत्=उत्तरयति-अहं गणिका अस्मि,
 मम=गणिकायाः कार्यं=प्रयोजनं, परपुरुषपरिरञ्जनम्-अन्यपुरुषाणां विलासनासादिभिः प्रसादनम् इति। ईदृशम्=
 एवम्बिधं तस्या वेश्याया हृदयविदारकं=मनःखेदजनकम् अनार्यम्=आर्यजनानुचितं वज्रपातमिव=वज्रपतनयद्दुःसहं
 वचनं श्रुत्वा सा वसुमती क्रन्दितुं=रोदितुम् आरभत-आरब्धवती। रुदत्यास्तस्या=वसुमत्याः आर्तनादं श्रुत्वा
 तत्र=चतुष्पथे स्थितो धनावहः=धनावहनामा रुश्चित् श्रेष्ठी अचिन्तयत्=चिन्तितवान्-इयम्=क्रन्दन्ती वालिका

कार्यं कर बैठे-प्राण त्याग दे ! यह सोच उसने अपने मन की कोई भी बात वसुमती से न कह कर कौशाम्बी के
 चौरोहे पर ले जाकर उसे बेच दिया। विक्रती हुई वसुमती को योद्धा के द्वारा निश्चित क्रिया हुआ शुल्क
 दे कर एक वेश्याने खरीद लिया। तत्पश्चात् वसुमतीने उस गणिका से पूछा-माताजी, तुम कौन हो ? और
 किस प्रयोजन से तुमने मुझे खरीदी है ? वसुमती के इस प्रश्न के पश्चात् इस गणिका ने कहा-'मैं वेश्या हूँ।
 वेश्या का काम है-पर-पुरुषों को प्रसन्न करना, विलास हास आदि करके उनके उनका मनोरंजन करना।' हृदय को
 विदारण कर देने वाले, मनमें खेद उत्पन्न करने वाले, आर्यजनों के लिए अनुचित तथा वज्रपात को तरह
 असब वचन सुनकर वसुमती आक्रन्दन-रुदन करने लगी। रोती हुई वसुमती की दुःखभरी वाणी सुनकर
 उसी चौहारे पर खड़े हुए धनावह नामक एक सेठ ने विचार किया-'आकृति से प्रतीत होता है कि रोनेवाली

अनिच्छनीय कार्य करी ऐसे-प्राणत्याग करे. आभ विचारिने तेषु येताना मननी डोढ पथु वात वसुमतीने न
 डहेतां डीशारणीना थोकमा लधं न्धने तेने येथी दीधी. ओक वेश्याञ्जे थोद्धाञ्जे नळ्ळी करेदी ड्रीभत आपीने वसुगतीने
 थारी १ दीधी. त्यारथाड वसुभतीञ्जे ते वेश्याने पूछु, " माताळ, तमे कोषु छो ? अने शा उदेश्यथी तमे मने
 थारीही छे ? " वसुभतीना आ प्रश्न थाड ते गार्थीआञ्जे क्खुं, " हु वेश्या छं. पर-पुरुषोने प्रसन्न करवा, विदार
 आदि द्वारा तेमनुं मनोरंजन करवुं ते वेश्यानुं काम छे.

हृदयनुं विदारणु करनार-मनमां जेड उत्पन्न करनार, आर्थजनोने माटे अनुचिन तथा पञ्जयात जेवां
 १५. सख वचन सालणीने वसुभती आकड करवा लागी रस्ती वसुभतीनी दुःखभरी वाणी सालणीने ओज थोकमा
 कथी. धनावह नामना ओक शेठे विचार कथी, "सुभाकृति परथी लागे छे ठे आ रस्ती थाणा आंते। डोढ येटा

नानाणि राजवत्स्य=महाराजस्य ईश्वरस्य=पनिक्तस्य वा कन्या=पुत्री इत्यते=आकारेण ज्ञायते, इयं बालिका
 भास्कराजने=दुर्लभाप्रभम् मा भक्तुः इति=इत्य चिन्तयित्वा=विचार्यै सः पनावहः भेष्टी उद्विष्टं=वेश्यामिलरिपितं
 द्रव्यं=मूल्यं दत्त्वा तौ=वसुमती कन्यां=राजपुत्रीं युरीत्या=यावद्य निम्नमवने=स्वसुरे भनयत्=नीतवान् । स्वयं
 स्नयनानन्तरं भेष्टी पनावहः मूला-नाम कन्ययां=पनावहस्त्रीं च रां वसुमतीं निमग्नवीभिव=स्वकन्यावत् पालयितुं=
 रसितुं योगयितुं च उपाक्रमेताम्=भारयेते स्म ।

एष्या ग्रीष्मकाले=ग्रीष्मऋतु समये अन्यश्रुत्याभावे=अपरकिङ्कराद्रुपस्थितौ सा वसुमती, श्रेष्ठिना=पनावहेन
 चापमलाडपि ग्रामान्तरात् दृष्टम्=स्वममनम् भागतत्स्य=श्रेष्ठिन -पनावहस्य पादपक्षान्नं अकरोत्=पितृपुत्रद्वया कृत
 वती । पादौ=पनावहस्य चरणौ मसालपन्थाः उस्याः=वसुमत्याः, केउपाश्व'-केउकलापः छुटिका-पन्थान्-
 वृको नाठः । उवा अस्याः केउपाश्व आर्द्रशूनौ=पङ्क्तिवृद्धि मा पठतु । इति कुन्वा=इति विचार्यै तं=केउपाश्वं स
 सबकी यर या तो चढे राजा की या किसी पनवान् की बेटे होनी चाहिए । वर बेचारी सबकी दुस्लिनी न
 हो तो अच्छा । 'ऐसा सोचकर पनावह सेठने वेश्या का मुँहमाँगा मोल बुझाकर राजकुमारी वसुमती को छे
 लिया । वर उसे अपने घर ले गये । घर छे जाने के पश्चात् पनावह सेठ और उनकी पत्नी मूलाने वसुमती का
 अपनी ही बटी के समान पालन-पोषण करना आरंभ किया ।

एक वार ग्रीष्मऋतु का समय था, सेठ पनावह दूसरे गाँव से लौट कर अपने घर भाये थे । वर वे
 पर माय उस समय काई नौर उगस्थित नहीं था । भव एव वसुमती ही पनावह को अपना पिता समझ
 कर पैर गोने लगी । पनावहने मना किया, पर वर नहीं मानी जब वसुमती पनावह के चरण मसालन
 कर रही थी, उस समय उसका केउकलाप (जुड़ा) खुल गया । सेठ पनावहने सोचा-सके बाल कीचड़

शालनी आधवा शैव पैशादान्ती रिकरी होवी जेइजे आ विवारी वाणा इ थी न वाभ तो आउ " जेवु विवारीनि
 वेस्थाने शो आग्ना घम जुडवीने तेजे वसुमतीने वर बोधी ते तेने चोवाने वर वरि अये। वर वरि अया पछी
 पनावह शैव जने तेनी पत्नी भूढाजे वसुमतीनु चोवानी अ पुत्रीनी जेभ पावन-पोषण करवा अरिउ
 कोइवाइ ग्रीष्म ऋतुने उमभ वते पनावह शैव कीजे आम अरुनि चोवाने वर वाअ इया अमार तेजो
 पैर आग्ना त्पारे केरि नोइर वाएर न वते। तेजी वसुमती अ पनावहने चोवाना पिता अजीने तेभन पन पिता
 वाअनी पनावह न पछी, पव ते भानी नही। अन्धारे वसुमती अनावह-न वन पिती वती त्पारे तेने उवाअवा

धनावहः श्रेष्ठी, निजपणियष्टया=विकाराभावेन यष्टि तुल्याभ्यां स्वहस्ताभ्यां धृतवा=गृहीत्वा अवध्नात्=वद्धवान् । तदा गवाक्ष स्थिता=वातायनोपविष्टा श्रेष्ठिनो=धनावहस्य भार्या=मूला वसुमत्याः केशपाशं=केशकलापं वन्यन्तं श्रेष्ठिनं=धनावहं दृष्ट्वा अचिन्तयत्=मनसि विचारितवती-‘इमाम्=एतां कन्यां=वालिकां पालयित्वा पोषयित्वा च मया अनर्थम्=स्वस्यैवानिष्टं, कृतम्=सम्पादितम् कुतः ? इत्याह=‘जइ’ इत्यादि वा यदि इमां=वसुमतीं कन्यां श्रेष्ठी=मम पतिर्धनावहः उद्धरेत्=परिणयेत्, तदा=तर्हि तस्यां परिणीतायां सत्याम् अहम् अपद्रव्या=अधिकारच्युता एव भविष्यामि, तदत्र मया प्रयतनीय, येन वसुमतीं मत्पतिः परिणेतुं न शक्नुयात्, यतः-उत्पद्यमानाः=जायमान एव व्याधिः=रोगः उपशमयितव्यः=चिकित्सनीयः, इति कृत्वा=चिन्तयित्वा सा=मूला एकदा=एकस्मिन् समये अन्य-ग्रामं=ग्रामान्तरं गत श्रेष्ठिन ज्ञात्वा नापितेन तस्याः वसुमत्याः शिरो मुण्डयित्वा शृङ्गलया करौ=हस्तौ निगुडेन

चाली जमीन पर न गिर जाएँ, यह सोचकर उन्होंने निर्विकारभाव से-यष्टि (लकड़ी) के समान अपने हाथों में लेकर उसके केशपाशको बाँध दिया । उस समय धनावह शेर की पत्नी मूला खिड़की में बंठी थी । उसने वसुमती का केशकलाप बाँधते हुए धनावह को देखकर मन में विचार किया-इस लड़की का पालन-पोषण करके मैंने अपना ही अनिष्ट कर डाला है । क्यों कि इस छोरूरी के साथ मेरे पतिने विवाह कर लिया तो इसके साथ विवाह करलेने पर मैं अपद्रव्य हो जाऊँगा-अर्थात् मैं अधिकार से वंचित हो जाऊँगी । अत एव मुझे कोई ऐसा प्रयत्न करना चाहीए कि मेरे पति इस से विवाह न कर सकें । जब बीमारी उत्पन्न हो रही हो तभी उसका इलाज कर लेना ही अच्छा है । मूलाने ऐसा विचार कर लिया । कुछ ही समय के बाद उसे अचमर मिल गया । एक वार धनावह सेठ दूसरे गाँव चले गये । उन्हें वाहर गया जान कर

(अ.शे.शे.) छुटी गयी शेर धनावह ने मनमा “ तेना वाणनी लटो अहववाणी जभोन पर रजेने पडे. ” अ म विचारीने तेमहे निर्विकार भावे-यष्टि (लाकडी)ना बेवा पोताना ढाथेभां लडने ते डेशकलाप बाधी हीधो.

आ आणु तेज वधते धनावह शेठनी पत्नी मूला भारीमा भेठी हुती तेहे वसुमतीना डेशकलाप बांधता धनावहने जेया. तेहे विचारुं के “आ छिकरीनुं पावन-योषणु करवामा में माइ पोतानुं ज अनिष्ट करुं” छे. कारणु के आ कन्या यौवनना उंभरे पडोवथी छे. जे आ छिकरी साथे मारा पति लग्न करशे ते। तेनी साथे लग्न थता ज हुं अधिकार रहित भनी बधश. तेथी माइ जेवो उपाय करवो जेधजे के जेथी मारा पति तेनी साथे विवाह करी शके नहि रोग जेने इशमन उत्पन्न थता ज तेना धलाज करवो जेधजे. मूलाजे आ प्रभाहे निर्णय कर्यो. थोडा समय पछी तेने तक पणु भणी जेके वार धनावह शेठने गलिने गाम जवानुं थयुं. तेमने जेहार गयेला

पादोपरणी च निपथ्य=निगडितौ कृत्वा एकस्मिन् भूमिपुरे तां=वसुमतीं स्यापयित्वा तव्=भूमिपुरं तालकेन
 निपथ्य=नियन्त्रितं कृत्वा स्वयं तस्मिन्नेव ग्रामे=ज्ञाशास्त्री नगर्यामेव पितृपुरे गता । सा-निगडितवस्वपाशा
 वसुमती च तत्र=नियन्त्रिते भूमिपुरं द्रुपया पीडयमाना वित्तयति=मनसि विचारयति, चित्ता स्वल्पमाह-‘कस्य
 रायकृत्’ इत्यादिना-‘मे मम रागकुश्ल=दुःखसंज्ञः कुत्र=कष ! तथा इयम्=उपस्थिता मम दुर्दशा=निर्दितावस्था
 कीदृशी ? अनयोर्नस्ति किंचिदपि साम्यम् । अहा ! मे=मम पुरा=पूर्वमेव कृतम्=उपायितं कर्म=अधुमकर्म किं=
 कृप्य=पूतमस्ति’ यस्य=अधुमकर्मणः ईदृश=एवमित्ययः विपाक=दुर्दशाक्षणं फलम् उदयमागत ।” एवं चिन्तयन्ती
 सा ‘कारागारमुक्तिर्यन्तं तपः=मनश्चनलक्षणं करिव्यामि’ इति कृत्वा=इति विचार्य मनसि ‘नमो अरिहंतायं’
 पुनाने नार्द्रि से वसुमती का सिर मुठना दिया । शायं में एकफ़ी और पैरों में बेझी डाल दी । तब वसुमती को
 एक मीचरे में बंद कर दी । मीचर को ताला जड़ दिया । यह सब करके वह मूला, कीशाम्बी में ही अपने माय के
 (पिता के घर) बस दी । शायो-पैरों से जकड़ी वसुमती मीचरे में पड़ी हुई मन ही मन विचार करने
 लगी । वह क्या विचार करने लगी सो कहते हैं—

कहीं तो मरा वह रामचन्द्र-जिसमें मरा जन्म हुआ थीर कहीं यह इस समयकी मेरी दुर्दशा ? दोनोंमें
 उनिक भी समानता नहीं । आह ! पूर्व भर में मरे द्वारा उपायित अधुम कर्म न जाने कैसा है ? जिसका फल
 ऐसा मांगना पड़ रहा है । इस दुर्दशा क स्वप्न जो उदय में आया है । इस प्रकार विचार करती हुई वसुमतीने
 यह निश्चय कर लिया कि ‘अब तक मैं इस कारागार से छुटकारा न पाऊँगी तब तक अनश्चन तपस्या करूँगी ।’
 इस प्रकार विचार कर वह वसुमति ‘नमा अरिहंतायं’ इत्यादि रूप पंचपरमेष्ठी मंत्र का जाप करने लगी ।

अक्षीने भूवाजे च्चभने विधावी तेनी पासे वसुमतीगं मणु सुधावी नायु अने दाशैभ्य दाघेदी अने पजेभ्यं धेदी
 नाथी धी वसुमतीने जेठ बोधनाथं पुरी दीधी, बोधने वणु वासी धीयु आ अणु करीने ते होश्यान्धीमा ए
 पोतने पिबेर कादी जयं दाशै अने पजेधी जधावेदी वसुमती ते बोधनाथं देह-अपरशामां भनोभन विचार
 करम बाभी ते ये विचार करम बाभी ते अतवे छे—

‘अंभं भारो जे मज्जथ, नेभं भारो ज्जम येथे अने इथा आरी भा उभयवी इइशा ? अनेभां एरी
 पव उभयना नधी, अका ! पूर्वअभमा से उपलित हेरेठ आशुल कर्मं तु अकर हेना छे हे केट आणु हेण
 जेअणु परे छे । भा इइशाना इरे ए ते उदकभां अन्था छे ” भा प्रथासे विचार करपी वसुमतीने जेवे निजाम
 भी है ” अनी सुपी भा करणामांकी आरा छेडाशेने न याव लीं भापी छे अनश्चन तपस्या करीत ” भा अभाजे

आशासानन्तरं सख्यं स श्रेणी शूरो-स्वमन्त्रने मूसया पितृद्वयस्यानावसरे गुप्तस्थाने सरसितत्वत्वात् किमपि मानने-
 पात्र मन्त्रम्=मोदनादिकं च कृपापि न पश्यति, केवलं पशुनिमित्तम्=अथय निव्यादितान्=कृत्वान् वाप्यितमापान्=
 स्विस्ममापान् 'वाङ्मूला' इति माषा मसिद्धान् तत्र पश्यति, वे=वाप्यितमाषाः भन्यमागनामाये शूर्वे एव
 शूरीत्या-आदाय तेन=धनात्वेन मन्कार्थ=मोमनाय यमुमत्यै समर्पिता=दूषाः स्वयं च पनायत्रो निगठादिवन्धन
 उच्यन्ते च मोरकारम् आकारयितुम्=माहातुम् उदग्ररे आरुन्=मातवान् । सा=निगाडितवस्वपादा यमुमती च
 सवाप्यितमार्ष=वाप्यितमापसहितं शूर्प इत्येन शूरीत्यान्वितयत्-मनसि विचारितवती-दृढः पूर्वे मया किमपि
 शानम्=अनपानलाभवापरूप्य सायुम्यो इत्यत्र पारम्भकं कृतम्, अद्यह=अस्मिन् दिन तु किमपि=किञ्चिदपि
 अनादिकं हुनये न दत्त्वा कर्म=केन प्रकारेण पारयामि=पारम्भ करोमि ? मे=मम क्रीदश्च =कृत्यन्तुतो दुर्विपाकः=
 गर्हितकर्मफलम्, उद्विष्टा=उदयवाचकिकायाम् उपस्थित येन दुर्विपाकेन आ=ईश्वरीम्=एतादृशीं दासीत्यादिक्यां

मूला जय अपने पिता के घर गई थी तो बरतन-भंडि सब गुप्त जगह में रस गई थी । अतएव
 सेठ को नन्दी में न काई बरतन मिला और न मोमन ही कहीं मिल ई दिया । केवल जानवरों के लिय उबले
 हुए उड़द, जिनें जोरुभाषा में 'बाहुला' करते हैं, यही मिले । दूसरा बरतन न होने के कारण सूप में ही
 उई छेकर पनावा सेठने वह वसुमती को दिय । सेठ स्वयं बेछो बरिगह को काटने के हेतु छुबार को गुलाने के
 लिये लुहार के घा चले गये । बने हुए शायो-यैतों वाली वसुमती उबले हुए उड़द वाले सूप को हाथ में लेकर
 सोचन म्मा-रस स पहले मैंने सायुम्यो को अन्नपान लादिय और स्वादिम का तान दूर ही पारणा किया है,
 आज बिना शान दिय पारवा कैसे करूँ ? कैसा गर्हित कर्म मेरे उदय में आया है, जिसके दुर्विपाक के कारण

मूला नन्दिरे पोदावा पिताने घेर अर्ध बती ल्पारे वासणु-दुष्टेषु अथु अथा नन्दिजे भूद्विने अथ बती, तेथी
 येठने विवाषणभां डेह वासणु पेषु न नरुधु तेम न लेकन पक्ष नरदे न पक्षु हेठो दोशने भाटे व्याहेवा अड
 नेने दोषभाषणभा "वाङ्मूला" हरे छि तेन मन्था. वीरु वासणु न न-दवाधी सूपभाभा न व्याण्णा एधने धनावक रोठ
 वसुमतीने म्माभा जने शेड भवे न जेदी पजेरे तोदवानी भाटे छुडारने मोलावव भाटे छुडारने घेर म्मा. नरुडरायेव
 वाव-पनवाणी वसुमतीजे व्याहेवा आदवाणु सूपुडु वाषभां एधने विवायु" 'आ पखेलां ये सायुम्योने अन्नन,
 पान, पादिम जने स्वादिमनु शान एधने न पारवां हर्षो छि ज्पाले धान आन्धा बिना वासणु हेनी इति हरे । हेन
 कर्पावित व भर्तने आर ठव नये छि हे नेन उविधाने मन्त्रे क वाओपुषु पजेरे नजेर लेवणी आ दवा पाणी

दशम अवस्था सम्प्राप्ति=लब्धवती । यदि=चेत् कस्मै अपि अतिथये=सुनये एतद् भक्तं=शर्पस्थं वापितमाप-
रूपमशनं दत्त्वा पारणकं करोमि, ततः श्रेयः=कल्याण भवेत् । इति चिन्तयित्वा गृहदेहल्याः वहिः=वह्निर्भागे एकं
पादं=चरणं कृत्वा एकम्=अपरं पादं=चरणं च अन्तः=अन्तर्भागे कृत्वा मुनिमार्गं=मुनेरागमनं पश्यन्ती=प्रतीक्षमाणा
तिष्ठति । सैव वसुमती चन्दनस्यैव श्रोखण्डचन्दनवत् शीतलस्वभावत्वेन=शीतलप्रकृतितया 'चन्दनवाले' ति नाम्ना
प्रसिद्धिं कुर्याति प्राप्ता=लब्धवतीति ॥मू०९६॥

अंतिमो उवसगो

मूलम्—तृणं से ससणे भगवं महावीरे कोसंवीओ गयरोओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमिचा जणवय-
विहारं विहरइ । तओ पच्छा भगवं वारसमं चाउममासं चंपाए णयरीए चउममासतवेणं ठिए, तओ निक्खमिय
छम्माणियाभिहस्स गामस्स वहिया उज्जाणम्मि काउसगगे ठिए । तत्थ ण एगो गोवालो आगंतुण भगवं दड्ढेण
एव वयासी=ओ भिक्खु ! मम इमे वट्टेरे खवउ ति कहिय गामम्मि गओ । गामाओ आगमिय वट्टेरे न
पासइ, भगवं पुच्छेइ—एत्थमे वट्टा ? । ज्ञाणनिमगगे भगवं न किंचि वयइ । तओ से पुव्वभवंत्रराणुवंधिकम्मुणा
कुट्टो आसुरत्तो मिसिमिसेमाणो भगवओ कण्णेसु सरगडनामस्स कडिणरुक्खस्स कीले निम्माय कुट्टारप्पहारोण
अंतो निखणिय तेसिं उवरिभागे छेदीअ, जे णं ते न कोइ नाउं सकिज्जा न वि य निस्सारिउं । पडुस्स
इमो अट्टारसमभववड्ढकम्मुणो उदओ समुवट्ठिओ । दुरासओ सो गोवालो तओ निक्खमिय अन्नथ गओ । पडु य
तओ निक्खमिय मज्झिमपावाए णयरीए भिक्खवट्टाए अडमाणे सिद्धत्थ सेट्ठि गिहमणुपट्ठि । तत्थ णं खरगा-
भिहो विज्जो अच्छइ, सो य पडुं दडुं जाणीअ=जं एयस्स कण्णेसु केणवि सल्लाइं निखायाइं, तेणं एस पडुं

मै दासीपन आदि की इस दशा को प्राप्त हुआ हूँ, अगर मैं किसी मुनि को यह भोजन-रूप मे स्थित उड़द
अशन-देकर पारणा करूँ तो मेरा कल्याण हो जाय । इस प्रकार विचार करके वह घर की देहली से एक पैर
बाहर और दूसरा पैर अन्दर करके मुनि के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी । वही राजकुमारी वसुमती श्रोखंड
चन्दन के समान शान्त प्रकृति वाली होने के कारण 'चन्दनवाला' इस नाम से विख्यात हुई ॥मू०९६॥

छ । जे हु डेछ मुनिने आ लोअन=सूपडामा रडेल भाडेला अउइ इप अथान=वडेरारविने पारणु' थइं तो भाइ उड्याथु
थइ अथ. आ प्रभाणु विचार उदीने ते ओइ पग धरना उभरानी अडार अने फीजे पग अंइर रापीने सुानना
आगमननी राइ जेवा लागी ओ क राजकुमारी वसुमती श्रीअंड यन्दन जेवी शात स्वलाववाणी डोवाथी ते
“अइ इअथाणा”ना नाभथी प्रख्यात थइ. (सु०९६)

बलीवहों न पश्यति, भगवन्तं पृच्छति—कुत्र मे बलीमहौं ? । ध्याननिमग्नो भगवान् न किञ्चिद् वदति । ततः स पूर्वभववैरात्रुबन्धिकर्मणा क्रुद्धः आशुरक्तः मिसमिसायमानो भगवतः कर्णयोः शरकटनामनः कठिनदृशस्य कीले निर्माय कुठारप्रहारेण अन्तर्निवन्व तयोरुपरिभागावच्छिनत्, येन ते न कोऽपि ज्ञातुं शक्नुयात् नापि च निस्सारयितुम् । प्रभोरयम् अष्टादशभववद्धकर्मणउदयः समुपस्थितः । दुराशयः स गोपालः ततो निष्कम्यान्यत्र गतः प्रभुश्च ततो निष्कम्य मध्यमपापायां नगरीं भिक्षार्थाय अटन् सिद्धार्थश्रेष्ठिदृहमनुप्रविष्टः । तत्र खलु खरकामियो वैद्य आस्ते स च प्रभुं दृष्ट्वा अजानीत यत्—एतस्य कर्णयोः केनापि शल्ये निखाते, तेन एव प्रभुः

वैद्य दिवाई न दिये । भगवान् से पूछा—‘कहाँ है मेरे वैद्य ?’ ध्यानमग्न भगवान् कुछ न बोले । तब उसने पूर्वभव के वैरात्रुवधी कर्म के कारण क्रुद्ध होकर, लाल होकर और मिसमिसाते हुए शरकट नामक कठिन दृश की दो कीलें बनाकर, भगवान् के कानों में कुठार के प्रहार से अन्दर ठोंक दी, और उनके बाहर के भागों को काट डाला, जिस से किसी को गालूम न हो और कोई निकाल भी न सके । प्रभु के यह अठारहवें भव में जाँचे हुए कर्म का उदय उपस्थित हुआ । वह दुराशय गुवाल वहाँ से निकल कर अन्यत्र चला गया ।

भगवान् वहाँ से निकल कर मध्यम पापानगरी में भिक्षा के लिए अटन करते हुए सिद्धार्थ सेठ के गृह में प्रविष्ट हुए । वहाँ खरक नामक एक वैद्य था । उसने प्रभु को देखकर जान लिया कि इनके कानों में

ते गोवाणे गणहने नेयां नह्रीं तेथी तेष्णे भगवान्ते पृथुष्णे के ‘हे साधु ! मारा गणह कथां ?’ ध्यानमग्न प्रभुको क्षाधिपथु जवाग्न वाल्यो नह्रीं आथी पूर्वभवता वैरात्रुबधी कर्मना येजे, ते गोवाण क्षोधायमान थयो. क्षाधथी लाल पीणो थतो, शरकट नाम्ना कठेषु दृक्षनी क्षाणीमाथी, ये भीला गनाब्थां. आ भीलाने लगवान्ना कानमा कुक्षडाना वा पडे घोच्ची भज्यतु करी वीधा, ने ते भीलाना अक्षार देथाता बागेने क्षापी नाब्थां. आभ क्षरवानुं क्षारषु ये इतु के, आवा धार्थनी केाधने ञ्णथु थाय नह्रीं. तेभज आवा अंधेअस्ता भीलाने केाध काली पषु शडे नडि आतु निक्षायित कर्म, अक्ष्वाअे पोताना अठारमा लवसां आंधुष्णुं इतुं. ने तेने। उदय तेभने आ अंतिम भवमा ज्यथो। ने तेनु परियकव इण पषु बोगवतुं पड्युं.

आ दुराशयथी गोवाण त्यांथी निक्षणी ञ्ण, केाध अण्णइया स्थणे चाल्यो गथो. लगवान अर्द्धीथी नीक्षणी, मध्यम पावा नगरीमां निक्षार्थे अटन करतां करतां, सिद्धार्थ श्रेठने त्यां ञ्ण इयथा. आ श्रेठने त्यां ‘अरक्ष’ नामने। अेक्ष वैद्य इतो। तेष्णे प्रभुने नेतांज कानमां केाकेवां भीलाने ज्योणथी वीधा. ने विचार करतां तेने ज्यालमा आब्धु

अउभ बेयणं अणुमच इति । तए णं सो विज्जो सेहं कुरीय । पइ य गरियमिक्खे उज्जायं समणुपच । सो सद्धो विज्जो य उज्जाणे गमिय काउस्समाहियस्स पइस्स कण्णेरितो मईए जुचीए वाइ सद्धां निस्सारेति । मइ वि कीलणुदारणे पइस्स दुस्सहा बेयणा समाया, उइवि मगबं वरिमसरीरचणेण अनतबलचणेण य त उज्जायं तिणं पारं कापरमज्जुराहियासं बेयण सम्यं सरीय । तए णं से सेही विज्जो य भोसहोवयारेण सं नीखं काउ सयं गिहं गमीय । वेण कुच्चिबेज गावालो मरिय नरयं गमो । सेट्ठो विज्जो य वेण सुइ कम्मण्णा बारसमे कल्पे उववभाइ गयंतरे ॥ घ० ९७ ॥

उपमा—उठः खल्ल स श्रमणो मगवान् महावीरं कौशाम्भ्या नगर्याः मयि निष्काम्यति, मयि निष्काम्य जनपदविहारं विहरति । उठः पश्चात् मगवान् श्राद्धं चातुर्मासं चम्पार्यां नगर्यां चतुर्मासं तपसा स्थितः ततो निष्काम्य पम्पानिकामिपस्य ग्रामस्य बाबोपाने कापोस्सर्गे स्थितः तत्र खल्ल एको गोपाल भागस्य मगवन्तं इहा एवमवादीव—“सो भित्तो ! मम इमौ बलीवर्त्तौ रसतु ” इति कथयित्वा प्राप्ते गतः । ग्रामात् भागस्य

अन्तिम उपसर्ग

मूल का अर्थ—‘तए णं से’ इत्यादि । तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने कौशाम्बी नगरी से विहार किया और विहार करते हुए वे जनपद में विचरने लगे । तत्पश्चात् मगवान् चौमासी तप के साथ चम्पा नगरी में चारहवें चतुर्मास के लिए विराजे । तदनन्तर वहाँ से विहार कर पम्पानिक नामक ग्राम के पास उद्यान में कापोस्सर्ग में स्थित हुए । वहाँ एक युवाक भास्कर और मगवान् को देखकर इस प्रकार बोला— ‘दे मिट्ठु ! मेरे इन दोनों वैर्त्तोंकी रत्नवालो काना ।’ ऐसा कहकर गौत्र में चला गया । गौत्र से सोटने पर ठसे

अन्तिम उपसर्ग

पूढेनो अर्थ—‘तएण से’ अर्थात् आ पछी अमणु जएवान अहावीरं कोशाम्बी नगरीमांसी विहार करी, देशेण सुए जगमं नियस्वा वाज्जं, आरुयु चातुर्मासं करवा तेजोअरी य चानत्ररीमां पथायं ने त्वा कोभाअी तपनी आराधना करी आ चातुर्मासं पूरुं क्खुं आ कोभाअु पचारं क्खो पछी तेजो पइमाअिक नामना आअनी अकारं उक्खनमां मयैतस्सर्गं करी स्थित ममां । त्वां हाउं अिक विज्जणं आरी कएयाने देअत्तं विअव वाअी दे वे भिइइ ! ए आ भाए अन्ते अज्जेन मम १०० आमं कुरी ते आममां क्खना अथि। जाममांअी पाअ कएत्ता

बलीवहों न पश्यति, भगवन्तं पृच्छति—कुत्र मे वलीमहौं ? । ध्याननिमग्नो भगवान् न किञ्चिद् वदति । ततः स पूर्वभववैरातुबन्धिकर्मणा क्रुद्धः आशुरक्तः मिसमिसायमानो भगवतः कर्णयोः शरकटनाम्नः कठिनदृक्षस्य कीले निर्माय कुठारप्रहारेण अन्तर्निखन्य तयोरुपरिभागवच्छिन्नत्, येन ते न कोऽपि ज्ञातुं शक्नुयात् नापि च निस्सारयितुम् । प्रभोरयम् अष्टादशभबद्धकर्मणउदयः समुपस्थितः । दुराशयः स गोपालः ततो निष्क्रम्यान्यत्र गतः प्रभुश्च ततो निष्क्रम्य मध्यमपापायां नगरीया भिक्षार्थीय अटन् सिद्धार्थश्रेष्ठिग्रहमनुप्रविष्टः । तत्र खलु खरकाभियो वैद्य आस्ते स च प्रभुं दृष्टा अजानीत यत्—एतस्य कर्णयोः केनापि शल्ये निखाते, तेन एष प्रभुः

वैल दिवाई न दिये । भगवान् से पूछा—‘कहाँ है मेरे वैल ?’ ध्यानमग्न भगवान् कुछ न बोले । तब उसने पूर्वभव के वैरातुबंधी कर्म के कारण क्रुद्ध होकर, नाला होकर और मिसमिसाते हुए शरकट नामक कठिन दृक्ष की दो कीलें बनाकर, भगवान् के कानों में कुठार के प्रहार से अन्दर ठोंक दी, और उनके बाहर के भागों को काट डाला, जिस से किसी को गाल्म न हों और कोई निकाल भी न सके । प्रभु के यह अठारहवें भवमें बाँधे हुए कर्म का उदय उपस्थित हुआ । वह दुराशय गुवाल वहाँ से निकल कर अन्यत्र चला गया ।

भगवान् वहाँ से निकल कर मध्यम पापानगरी में भिक्षा के लिए अटन करते हुए सिद्धार्थ सेठ के गृह में प्रविष्ट हुए । वहाँ खरक नामक एक वैद्य था । उसने प्रभु को देखकर जान लिया कि इनके कानों में

ते गोवाणे भणहने जेयां नहीं तेथी तेथे तेथे भगवानने पूछ्युं के ‘हे साधु ! मारा भणह कथां ?’ ध्यानमग्न प्रभुजे अंधिपथु जवाभ वाल्ये नहीं आथी पूर्वभवना वैरातुबंधी कर्मना योगे, ते गोवाण क्रोधायमान थयो. काधथी लाव पीणो थतो, शरकट नामना कठेषु वृक्षनी डाणीमाथी, जे भीला यताव्यां. आ भीलाने लगवानना कानमां कुडाडाना धा वडे दोच्यी भण्णूत करी दीधा, ने ते भीलाना अहार देथाता लागीने कापी नाथ्या आम करवानुं कारथु जे इतुं के, आवा धार्थनीं केाईने भण्णु थाय नहीं. तेमज आवा अंधेस्ता भीलाने केाई काढी पथु थडे नडि आबु निडाथित कर्म, अक्षाज्ये पोताना अदारमा लवमा आंध्युं इतुं. ने तेना उदय तेमने आ अतिम भावमा ज्यथायो ने तेनुं परियकव इण पथु बोणववुं पड्यु.

आ दुराशयथी गोवाण त्यांथी निकणी जध, केाई अण्णइथा स्थजे वाल्यो गयो. लगवान अर्द्धीथी नीकणी, मध्यम पावा नगरीमां भिक्षार्थे अटन करतां करतां, सिद्धार्थ शोठने त्यां जध यइथा आ शोठने त्यां ‘अरक’ नामने। अंधे वैद्य इतो तेथे प्रभुने जेतान् कानमां केाडेलां भीलाने ज्योणभी बीधां. ने नित्यार करतां तेने ज्यथालमा आण्यु

अधुना वेदनामनुभवतीति । ततः तच्छ स वैद्यः भेदित्तिमकपयत् । मयुष्य यष्टीवमिल उधानमनुयातः । स भ्रेष्टी वैद्यश्च उधाने गत्वा कायोत्सर्गीस्थितस्य प्रमोः कर्माभ्यां महत्या युक्त्या ते कृत्ये निःसारयतः । यद्यपि कीलकक्रो-
 डरणे प्रमोः दुःसहा वेदना संजाता, तथाऽपि मगवान् चरमशरीरत्वेन अनन्तसहस्रत्वेन च ठाण्डुलज्वभां वीर्यां घोरां
 कातरजनदुरभ्यामां बदनां सम्यक् असाहत् । तत् लच्छ स भ्रेष्टी वैद्यश्च औषधोपचारेण वं नीरुजं कृत्वा स्वयङ्मगच्छताय ।
 तेन कृत्तयन गोपालो यस्वा समसं नरकं गतः भ्रेष्टी वैद्यश्च तेन शुभकम्पणा द्रष्टृत्वे कृत्ये उत्पत्नी इति प्रयात्वर ॥६०९॥

टीका—'तय न स समणे' इत्यादि । ततः लच्छ स भ्रमणा मगवान् महावीर कौशाम्ब्याः नगया
 प्रतिस्त्रिकाम्यति—प्रतिनिःसरति प्रतिनिष्कम्य=प्रतिनिःसृत्य अतपवचिहारं=देशचिहारं विहरति । तत् पश्चात्=

स्मिन्ने कीलं ठोंक दी हूँ, इस कारण मयु को शूल वेदनाका अनुभव हो रहा है । तब उस वैद्यने सठ से
 छडा । मगवान् मिला प्रारण करके उधान में आ गये । सेठने और वैद्यने उधान में जाकर कायोत्सर्ग में
 स्थित मयुके कानों से बड़ी चुक्ति के साथ उन कीलों को निकाल दिया । यद्यपि कीलों के निकालने में मयु को
 दुस्साह बंदना हुई, तथापि चरमशरीरी और अनन्तवर्मी होने के कारण मगवानने उस जाख्यव्यमान, तीय,
 पोर और फायर जनों द्वारा असह वेदना का सम्यक् प्रकार स सह लिया । तत्पश्चात् वह सेठ और वैद्य
 औषधोपचार से मगवान को निरोग करके अपने घर गये । उस कुकृत्य स गुमान मर कर नरक में गया ।
 तथा सेठ और वैद्य उस शुभ कर्मके कारण से बाराहवें दुवलोक में उत्पन्न हुए ॥६०९॥

टोका का अर्थ—उत्पश्चात् वह भ्रमण मगवान् महावीर कौशाम्बी नगरी से विहार क्रिय और विहार कर
 के ठाण्डुलज्वभाके लक्ष्मी ज्येष्ठने, दुःसहा वेदना निमित्ते आठु दुष्ट डाकं कयुं छे तेभ्य प्रभुने कटी अतुल वेदना पश्य, तेखे
 लक्ष्मी बीबी आ एव चारधी बवे ते वात येठने कही, अजवान शिक्षा अकथ कही, उधानमां पथायां ने त्वां तेजे
 पोवान्—दुनिह डाकं कयुं अत्रय डायोत्सर्गमां ठेलां रथां, तेठेलांमां येठ अने वैद्य त्वां आवी यष्टीव्या ने प्रभुना
 मनभाबी कुञ्जिपर्यंठ जीला जेथी बीबी आ जीला जेजावी पजते प्रभुने असह वेदना कही तो पश्य प्रभुज्जे,
 आनी अन्तर्वदमान—वीन अने येर वेदनाज्जोने सन्तु प्रभारे सखी बीबी जीला डाकया अने योग्य औषध उपचारे
 कहीने अजवानमा जिनने वेदनाशुद्धि जगवी येठ अने वैद्य धर तरेक पत्था, सारनरथा कर्षोना घट-भ्रमणाघात
 येक न छे तदुशार पोवान् कुञ्जिपर्यंठ हण खोत्रकथ आ जेवाजने नरकअतिमां जयु पदयु ज्यारे वैद्य तेभ्य
 येठ शुभकारिना हण ह्ये ज्यारभा टेरखी ठेपण कर्षां (६०९)

येठने अर्थ—अनुमान पश्य कया आठ ते स्थण छेठरीने उधानमा अन्व कथयिजे विहार कथाने आधुज्जिनो

तदगन्तरं भगवान्=श्रीवीरस्वामी द्वादश चतुर्मासं चम्पार्यां नगर्यां चतुर्मासतपसा=मासचतुष्टयांवाधिकेन तपसा स्थितः, चतुर्मासानन्तरं ततः=चम्पानगरीं तोनिष्क्रम्य षण्मानिकाभिधस्य=षण्मानिकनामकस्य ग्रामस्य बाह्येधाने कायोत्सर्गे स्थितः। तत्र खलु एकः=हस्त्रिंशत् गोपालः आगत्य भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनं दृष्ट्वा एवं=वक्षमाणं वचनम् अत्रादीव=उक्तवान् तथाहि “भो भिक्षो ! मम इमौ=पुरतः स्थितौ वलीवदौ=दृष्टभौ भवान् रक्षतु इति=एतद्वचनं कथायिला ग्रामे गतः। पश्चात्=ततः पश्चात् ग्रामात् तत्र आगत्य स वलीवदौ न पश्यति, ततो भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनं पृच्छति=यद् भो भिक्षो ! मे वलीवदौ कुत्र गतौ ? इति जिज्ञासायां कृतायामपि ध्याननिमग्नः=ध्यानासक्तो भगवान् श्रीवीरस्वामी न किञ्चिद् वदति=न किमप्युत्तरयति। ततः स पूर्वभवैरातुवन्धिकर्मणा क्रुद्धः=जातकोपः आथुरक्तः=शीघ्रक्रोधारुणः मिसमिसायमानः=क्रोधेन जाड्वल्यमानो भगवतः=श्रीवीरस्य कर्णयोः शरकटनामस्य

जनपद-देश में विचरने लगे। तत्पश्चात् भगवान् वीरमथु वारहर्वे चौमासे में चम्पानगरी में विराजे और चार मासकी तपस्या की। चौमासा समाप्त हो जाने पर चम्पानगरी से विहार कर षण्मानिक नामक गाँव के बाहरी वगीचे में कायोत्सर्ग में स्थित हुए। वहाँ एक गुजालने आकर भगवान् वीरमथुको देखा और इस प्रकार कहा—‘हे भिक्षु ! सामने खड़े मेरे इन दोनों वैलों की : रत्नवाली करना। यह वचन कह कर वह गाँव में चला गया। जब वह गुजाल गाँव जाकर चापिस लौटा तूतो उसे वहाँ बलूनजरू नहीं आये। तब उसने भगवान् से पूछा—‘भिक्षु, मेरे वैल कहाँ चले गये?’ इस प्रकार जिज्ञासा करने पर भी ध्यान में लीन भगवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब वह गुजाल पूर्व भवमें वैंधे हुए वैरातुबंधी कर्म के उदय से कुपित हो उठा, एकदम ही क्रोध से लाल हो गया और क्रोध से जल उठा। उसने भगवान् के दोनों कानों में शरकट

आधार छे. ते सहायार सुभ्रम भगवान् पथु अन्य स्थानोभां विररवा लाग्थे. दोशारुणी-थं पापुरी विगेरे नगरी-ओभा रक्षा भाह भगवान् ते प्रहेयभा आवेत्ता ‘षण्मानिक’ नामना गाभनी. भङ्गार कायोत्सर्ग करे स्थिर रक्षा, अर्द्ध तेभने छिड्ठेो उपमर्गं आन्थे, अने ते निपृष्ट वासुदेवना भवे श्यथा पादकना धानभा देडेहा शीशानुं परि-पक्षव इण छु. निकश्चित कर्म आधती वपते जे भावो द्वारा अंधायुं क्षोय ते भावोना रस इये ज आ कर्म परिष्णसे छे. तेना रसभां डेाड डेरक्षर पडते नथी, छा न्ने आत्मा वीथं क्षेत्तवे तो. तेना अनुभागभां डेर पडे छे. आ डेर ओट्ठेो डेरसनी तीमना महताभा डेरवाड्ढ व्य छे. पथु रस तर्षन छिडी जते नथी. निकश्चित कर्मवाणानी गति डरती नथी, पथु ञति डरी थुके छे. नरकना स्थानो सात जातनां भतावेत्ता छे. ते स्थानोनी कक्षा आत्मवोर्ध पडे नीथे आवी थुके छे, परंतु गमे तेवा प्रयासेा द्वारा पथु नरकगतिथी मुक्त थवानुं नथी.

प्रभुर्वा वदनामनुभवतीति । ततः लल्ल स वैद्यः भेष्टिनमरुपयत् । प्रभुश्च सुशीतभित्तः उद्यानमनुमसतः । स भेष्टी वैद्यश्च उद्याने गत्वा द्वायात्सर्गस्थितस्य प्रसोः क्लार्ग्यां मरुत्या युक्त्या ते इत्ये निःसारयतः । यद्यपि कीलको-
द्वारेण प्रसाः दुःसहा वेदना सजाता, तथाऽपि भगवान् चरमशरीरत्वेन अनन्तबलस्त्वेन च तादृशबलं तीव्रान् घोरां
कातरजनदुःस्वपानां वदनां सम्यक् असहत् । ततः लल्ल स भेष्टी वैद्यश्च औषधोपचारेण तं नीरुजं कृत्वा स्वशुभगच्छताम् ।
तेन कुङ्करयन गोपायो वरुचासप्तमं नरकं गत भेष्टी वैद्यश्च तेन शुभकर्मणा द्वादश कल्पे उत्पन्नो इति प्रयान्तरे ॥ सू० ९७ ॥

नीका—'एष न से समणे' इत्यादि । ततः लल्ल स भ्रमणा भगवान् महावीर कौशाम्य्याः नगर्याः
प्रतिष्ठापयति=प्रतिनिःसारति प्रतिनिष्कम्प्य=प्रतिनिष्ठस्य जनपदविहारं=देशविहारं विहरति । ततः पश्चात्=
चित्सीने शीघ्रे ठाँके ही हैं; इस कारण प्रभु को अतुल वेदनाका अनुभव हो रहा है । तब उस वैद्यने सेठ से
छत्रा । भगवान् भिक्षा ग्रहण करके उद्यान में आ गये । सेठने और वैद्यने उद्यान में जाकर कायोत्सर्ग में
स्थित प्रभुक कानों से बड़ी युक्ति के साथ उन कीलों को निकाल दिया । यद्यपि कीलों के निकालने में प्रभु को
दुस्तह वदना हुई, तथापि चरमशरीरी और अनन्तबली होने के कारण भगवानने उस जागबल्यमान, तीव्र,
घोर और कायर जनों द्वारा असह वेदना को सम्यक् प्रकार से सह लिया । तत्पश्चात् वह सेठ और वैद्य
औषधोपचार से भगवान को निराग करके अपने घर गये । उस कुङ्करप से गुवान मर कर नरक में गया ।
तथा सेठ और वैद्य उस भुभ कर्मके कारण से चारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए ॥ सू० ९७ ॥

दोकाका अर्थ—तत्पश्चात् वह भ्रमण भगवान् महावीर कौशाम्यी नगरी से विहार किये और विहार कर

के केश इत्यांभाजे बली कोने, इत्य रेवा निमित्ते आगु दुष्ट हाथं कुरु' छे तेभश्च प्रभुने धृती अल्ल वेदना पक्ष, तेवै
अणी बीषी । आ १२५ पाएथां एवै ते यात रोहने करी, कायवान भिक्षा ग्रहण करी, उद्यानभां पथायां' ने लां तेजो
पीतान्-दैनिक हाकंक्रम मुख्य भावोत्सर्गभा ठकां वहां तेठभां रोहं अने वैद्य तथा आनी पछोन्नां ने प्रभुना
भनपंकी बुक्तिपूर्क अंवा जे की बीषां आ अंशि जे आती बजते प्रभुने अल्ल वेदना बरुं तो पक्ष प्रभुज्जे,
आनी जाववकमान्-द्वीण अने घोर वेदनाकोने सभ्य प्रकारे सही बीषी । अंवा हादभा अने योग्य औषध उपस्थाशे
करिने भगवानना भनिने वेदनाशक्ति जननी रोहं अने वैद्य धर तरुणा, साधनरसा भाशेना यात-प्रभावाव
दोष छे तदुपहार पीतान् इत्युत्तरात् इत्यु शोत्रवष आ जेवाकने नरकजतिभां अगु पदमु ल्कारे वैद्य तेभश्च
रोहं मुलाशीना इत्यु शेषे ल्कारे इत्युक्तेषां देवलोके उत्पन्न बर्वा (सू० ९७)

येतिना अर्थ—अनुमोम पर घना आरु ते स्थण ठारिने उद्यान अन्व कछोले विहार करवाते कायुज्जिना

निवन्नेन एषः=अय प्रभुः श्रीवीरस्वामी अहुलां=निरुपमा दुःसहा वेदना=व्यथाम् अनुभवति इति । ततः खलु सः=
 खरकनामावैद्यः श्रेष्ठिनं=सिद्धार्थम् अकथयत्=श्रीवीरव्यथावृत्तान्तं निवेदितवान् । प्रभुश्च गृहीतमिषःसन् उद्यानम्=
 उपवनम् समनुभासः=आगतः । इतश्च सःसिद्धार्थनामकः श्रेष्ठी खरकनामा=वैद्यश्च उद्याने=उपवने गत्वा कायोत्सर्गे-
 स्थितस्य प्रभोः=श्रीवीरस्वामिनः कर्णोभ्या=कर्णद्वयात् महत्या=अति कौशलवत्या युवत्या ते=ऋणनिवाते शल्ये=
 कीलके निस्सारयतः=वह्निष्कुरतः । यद्यपि कीलकोद्धारणे=ऋणोत्थरतः कीलकचहिष्करणे प्रभोः=श्रीवीरस्वामिनः
 दुःसहा=कण्ठेन सहनीया वेदना=वीडा संजाता, तथाऽपि भगवान्=श्रीवीरस्वामी चरमशरीरत्वेन=अनन्तवलत्वेन
 च ताम् उज्ज्वलाम् उत्कृष्टाम् तीव्राम्=उग्राम् घोराम्=भयङ्कराम् कातरजनदुरध्यासाम्=कातरजनैः=अधीररुह्यैः वेदनां
 सम्यक् असहत् सोढवान् । ततःकीलकनिसारणानन्तरं खलु सिद्धार्थनामा श्रेष्ठी वैद्यः=खरकश्च औपथोपचारेण=
 कारण भगवान् अनुपम और दुस्सह वेदनाका अनुभव कर रहे हे । खरक वैद्यने यह बात सिद्धार्थ सेठ से

कही । भगवान् भिक्षा ग्रहण करके उद्यान में चले गये ।

इधर सिद्धार्थ नामक सेठ और खरक वैद्य-दोनों उद्यान में पहुँचे । भगवान् कायोत्सर्ग में स्थित थे ।
 उन्होंने ने अत्यन्त कुशलतापूर्ण युक्ति से भगवान् के दोनों कानों में से ठोकी हुई वह कीलें निकालीं । यद्यपि
 दोनों कानों में से कीलें बाहर निकालने में भगवान् को अतीव दुस्सह व्यथा हुई फिर भी चरमशरीरी अर्थात्
 तद्भवमोक्षगामी होने तथा अनन्त बल से संपन्न होने के कारण भगवान् ने उस उत्कृष्ट, उग्र भयानक और
 अधीर पुरुषों द्वारा असह वेदना को भलीभाँति सहन कर लिया । सिद्धार्थ सेठ और खरक वैद्य औपथो-

द्वैधनारने ते क्षान्ता शल्यगार इष दागे ! डोहने पणु आ वेदनातु स्वइष मभन्नयु नडि. इक्षत आ जे व पुइय-
 शाणी पुरुषेने लगवाननी वेदनानी पीडा समन्नड. आथी युक्ति-प्रयुक्ति वडे क्षान्तमार्थी पीदाञ्चोने अक्षार डाढी नाप्या
 डाढती वपते लगवानना सुभमार्थी नीकणेदी यीस ञ्छेटी वेदनापूर्वकनी तीन इती डे आसपासना प्राश्चीञ्चो धुल
 उध्या डो.डो.इति ञ्चो प्रमाञ्छे इती डे लगवाने पाडेदी यीसथी पासेना यर्वतमां यिराड पडी गध ञ्चोनी प्रभल वेदना प्रभु
 ते समथे लोगवी रखा इता. संथमी सुनिञ्चोनी शुश्रूषा तीर्थं कर गोन पणु थ धानी आपे छे, प्रपर संथमी सुनि
 डोय, साधनामां ञ्चोत्प्रेत थयेत डोय, तेमनी सेवा करवावणी व्यक्ति, त्याग भावनी धन्धुक अने पोपक डोय
 तो व्दर पुइथाडुअंधी पुइय अ धाय ते निश्चित वात छे आ अन्ने पुइथात्माञ्चो थथा समथे भरणु पामी, अच्युत
 नामना गारमां देवलोकमा देवपण्णे उत्पन्न थया.

औपपन्नयोग्य तं—श्रीबीरस्वामिन नीरुमं—निर्मयं कृत्वा स्वनिर्नं दृष्टम् आच्छवाग्—यातवन्ती। तेन कुक्षुत्येन गोपात्रः कागवसरे यत्वा सतत नरकं गतः। श्रेष्ठी=सिद्धार्थः वैष्णवः लरुकेभ्यो द्वौ काञ्चासरे कालं कृत्वा तेन शुभकर्मणा=पुण्यकर्मणा द्वादशे कृत्ये=अष्ट्युतास्ये देवलोके उपपन्नो=देवदेवोत्पन्नो ॥सू०९७॥

मूलम्—वर्णं से समणे मगधं महावीरे इरियासमिण, भाष गुच भंमपारी, अममे, अक्किषणे, अक्रोदे, अपाणे, अमाए, अब्बोदे संते, पसने, उवतवे, परिगिच्छुए, अगासवे, अगोये, छिण्णगोये, छिण्यासोए, निरुवळेवे, मायारि, भायाएए, आयओएए, आपएएओमे, समाएिपणे, कंसपायवदुक्कोए, संल इव निरंशणे, जीवो इव अयडिअपरि, अब्बकंगविज जायकूव, आइरिसकङ्गमिज पागडमावे, कुम्भोव्व दृत्तिदिए, पुबलएपव निरुवळेवे, गण्णमिज नि(लं)वणे, भबिलोव्व निरावए, वंदोएव सोमळेसे, दुरो इव विवठेए, सागरो इव गंभीरे, विइगो इव सन्धो विण्णुके, मरुो इव मण्णईये, सायसमिल्लं वुद्धरिणए, लम्मिवासिणं एगमाए, मारंडपकलीव अपमणे, कुंजरो इव सौंडीरे, वसमो इव जायएपामे, सीढो इव दुद्धरिसे, वहुचरेव सव्वफाससरे, सुदुयडुयासओ इव देयसा जलंवे वासावात्तवअं अट्टु गिन्ध हेमंतिएअ मात्सेट्टु गामे २ एगारयं गयरे २ पंधराय वासीचंणकल्पे समळेहुंणणे समदुइदुरे इव जोगयलोए अण्डिअद अगिहंसे संसाएगारगामो कम्मगिण्णयजहाए अम्मुट्टिए विअर, नत्थिणं वत्स मगपमो कल्पं पडिअवे ।

पवार से मगवान महावीर को नीरोग करके अपने २ पर चले गये। इस पापकर्म के कारण वह युवाव मृत्यु के अवसर पर मर कर साठवें नरक में गया। सेठ सिद्धार्थ और स्वर्क वैष्णव दोनों यथासमय श्रीरत्नपात्र कर उस पुण्य कर्म के उदय से बारहवें मध्युत नामक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए ॥ सू० ९७ ॥

वेरेने स्वभाव केशीबानी वाण नेवो छेअ छि नेभ केशीबानी वाण जकर नीकणतां वधवा वर आंटे छि अने तेने आशेताशे भावने नथी, अने तेभां सुपधवेअ एवअ सु तेभाधी केअ भाये नीकणी अउतु नथी ते प्रभावे वेरेनी अएरा नथवी अ एके छि अने ते वेशदुन थी इभी जेक पछी जेअ न धाता अने खोजताता अथ छि आंटे वेरेने जइवो बलाबानी अथ न राअनी; अएतु तेनी कभापना इत्तु ते निभूज अने निअं व कड व्यथ छि वीअ अणी अथ पछी नेभ तेनाभांको अदुरे इत्तवा नथी तेअ प्रभावे वेरेतु उपसभ वता ते अमी अथ छि आंटे ने अथभां वेशे उरएन कथं छेअ ते अवेतु उपसभ भावन कअभां विवेक अने अमकपुएकं करी नाअतु जेअके अन्ध जेवोभां अथवी भाअओ केनी नथी, तेअ अ एअने। एअ अवेपसभकान भावनभाव नेटवो छेता नथी। (सू. ९७)

एवंविधेन विहारेण विहरतो भगवतः अनुत्तरेण ज्ञानेन अनुत्तरेण दर्शनेन अनुत्तरेण तपसा अनुत्तरेण संयमेन अनुत्तरेण उत्थानेन अनुत्तरेण कर्मणा अनुत्तरेण वलेन अनुत्तरेण वीर्येण अनुत्तरेण पुरुषकारेण अनुत्तरेण पराक्रमेण अनुत्तरया क्षान्त्या अनुत्तरया सुत्तया अनुत्तरया लेश्यया अनुत्तरेण आर्जवेन अनुत्तरेण मार्दवेन अनुत्तरेण लावणेन अनुत्तरेण सत्येन अनुत्तरेण ध्यानेन अनुत्तरेण अध्यवसानेन आत्मानं भावयतो द्वादशवर्षाः त्रयोदशपक्षा व्यतिक्रान्ताः । त्रयोदशस्य वर्षस्य पर्याये वर्तमानानां यः स ग्रीष्मणां द्वितीयो मासः चतुर्थः पक्षः

इस प्रकार के विहार से विचरते हुए भगवान् को अनुत्तर (सर्वोत्तम) ज्ञान, अनुत्तर दर्शन, अनुत्तर तप, अनुत्तर संयम, अनुत्तर उत्थान, अनुत्तर क्रिया, अनुत्तर बल, अनुत्तर वीर्य, अनुत्तर पुरुषकार, अनुत्तर पराक्रम, अनुत्तर क्षमा, अनुत्तर निर्लोभता, अनुत्तर लेश्या, अनुत्तर आर्जव, अनुत्तर मार्दव, अनुत्तर लावण, अनुत्तर सत्य, अनुत्तर ध्यान तथा अनुत्तर अध्यवसाय से आत्मा को भावित करते करते बारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो गये । भगवान् की दीक्षा के तेरहवें वर्ष के पर्याय में वर्तमान ग्रीष्म ऋतु का जो दूसरा मास

आडी निस्नेही आदि शब्दोंको अर्थ करवासां आवे छे—

भगवान्, कासाना पात्र समान स्नेहवर्जित होवाथी, तेको निस्नेही कहेवाथा श थ समान भण रञ्जिन होवाथी तेको निरञ्जन कहेवाथा एवन्वी समान होवाथी अन्धाहन्गति कहेवाथा उत्तम सुदर्शुसमान तेमनी काथा होवाथी तेको देहीअथमान कहेवाथा. वर्षेषु समान तत्वे ने प्रभाशीत करवावाणा होवाथी, तेका तत्त्व प्रकाशक कहेवाथा अथगानी समान धन्द्रियेने गोपवावाणा होवाथी तेको गुप्तेन्द्रिय कहेवाथा. कल्पत्रयी भाइक लेप रञ्जित होवाथी निर्विष कहेवाथा आशय भाइक आधार-विनाना होवाथी, तेको निरावतंणी कहेवाथा. परमनी समान धरन्गरना होवाथी निरादथो कहेवाथा. चद्रमा समान सौम्य होवाथी तेको सौम्यदेशी गण्वाथा, सूर्यना तेज जेवुं तेमनु तेज होवाथी तेको तेजस्वी लेभाथा सागर समान होवाथी गंभीर गण्वाथ, पक्षी समान गमे त्यां जर्घ शकवावाणा होवाथी तेको सर्वतो विप्रमुक्त केंद्रपथु जातनी इकावट-वगरना लेभाथा, सुमेरुनी समान निश्चयसां अडोल होवाथी अकंप-मनाथा, शरदृक्तुना जग जेवा स्वच्छ हृदयवाणा गञ्जता, जेडाना शी गडानी समान अद्वितीय-ओक जन्म लेनार कहेवाथा, बारुपक्षी समान जगुत होवाना करण्णु तेको अप्रभन्त गण्वाथा, गज जेवा होवाथी 'वीर' कहेवाथा. वृषभ समान होवाथी वीर्यवान्-परा भी-कहेवाथा, सिद्ध समान जेरदार होवाथी अन्ये गण्वासां; पृथ्वी समान सर्वनेा बार भ्रमवावाणा होवाथी तेको सर्व-सह-सहनावी मनाथा. धी होमिला अत्रि जेवा तेजस्वी होवाथी जग्वदथमान गण्वाथा, वर्षाक्षण सिवायना श्रीणिम अने हेमतना आड मडीनाओमा गाभमा ओक रात्रि अने नगरमां पांथ रात्रि

निराजनः, श्री इरापतिरातिः, जाल्खनकमिच जातस्यः, आदर्शफलकमिच मकटमाच, कर्मच गुणेत्रिया,
 पुरुषपत्रमिच निरुपलेप, गगनमिच निरासम्बनः, मलिच इच निरालयः, चन्द्र इच सौम्यलेपयः, वर इच
 शीतनेजाः, सागर इच गंभीरः, विराग इच सर्वतो विपमुक्त, मन्दर इच अमकम्पः, शारवसल्लिमिच शुद्धद्वयः,
 नन्दगिचिपणमिच एकमात्र, मारुणपत्रीच अपमचः, कुञ्जर इच शीघ्रग्रीरः, वृषभ इच श्रावस्यामा, सिंह इच
 दुर्द्वेच वसु-रेच सर्वसंभारः, सुदुतदुःखजन इच तेजसा उचकच वर्णाशासवर्षुमप्यासु प्रेम्ण हेमन्तिकेपु
 मासेपुश्रासे २ एकुराशे नगरे २ पञ्चराश वासीचन्दनकरगः समकोटकाञ्चनः समसुलदुःखः इच लोकरालोकानप्रतिषदः
 अमतिष्ठः संसार पार गामी कर्मनिर्गोतार्योय भय्युत्थितो विहरति, नास्थि लल्लु तस्य भगवतः कुञ्चिविच मतिचन्यः ।

क्षत्रे के पात्र के समान स्नेह-चर्चित, उच के समान निर्जन, ग्रीच के समान अचगाह गति वाले, उचम
 स्वर्ग के समान देदीप्यमान, वर्षण के समान ठरगो को प्रकाशित करने वाले, कच्छय के समान गुणेत्रिय,
 कम्प-पत्र के समान उरुचय-विहीन, आकाश के समान, निरुपम्बन, पवन के समान आलपविहीन, चन्द्रमा के
 समान सौम्य छेग्या वाले, सूर्य के समान देदीप्यमान वेत्र से युक्त, सागर की तरह गभीर, पत्नी के समान
 सर्वतः विपमुक्त, सुमर की तरह अकम्प, शरद ऋतु के मन् के समान स्वच्छ-द्वय, गौडे के सींग के समान
 अद्वितीयजन छेनेवाले, मारुटु पपी के समान अपमच, गज के समान चीर, वृषभ के समान शीर्षवाच,
 सिंह के समान अजेय, पृच्छी के समान समस्त म्यश्री को सहने वाले, अच्छी तरह होमी हुई अग्नि के समान
 नेत्र से जागृत्यमान, वाकाण के सिशप शीष्म और हेमन्त के आठ महीनों में प्राप्त में एक रात्रि और
 नगर में पाँच रात्रि तक रहनेवाले, वासी-चन्दन के समान, मिट्टी और स्वर्ण को समष्टि से देखनेवाले,
 सुत-दुःख में समान, इक्षोक-रत्नकोट में भनासक, अमतिष्ठ, संसार परलामी और कर्मों को नष्ट करने के
 लिए पराक्रमशील शीघ्र विचरते वा भगवान् का कर्म भी प्रतिबन्ध नहीं था ।

निःस्नेही, निरजन, अन्धादृष्टप्रति, शैलीभमान, तरत्रभद्राद्यक, सुचेन्द्रिय, निरिभ्य, निरावहनी, निरावही, सोम्यदेशवा
 तेजस्वी, गभीर, स्वचेत, विप्रमुक्त, मध्य, स्वच्छदृष्टि, अद्वितीयकम्प, अप्रमत्त, वीर, विचयान, अल्लेय, सर्वयुक्त
 आनन्दप्रधान, वर्षाशत्रु सिन्धव शीष्म अने छेयतया म्प्य महीनामां श्राभमां लेक शक्ति अने नगरमां पाँच रात्रि
 सुधी श्रेष्ठवाण्य वासी अइन समान, भट्टी अने योगने समान इतिजे नेवार सुषुङ्कःपत्रां समान उद्वेग
 पराक्रमी आश्रित शक्ति अमतिष्ठ, अकार पाँचमासी, चरकमहील जेवा उपदेशव श्रुतौवाण्य अभय लजवान
 अन्धवीर विचरवा कम्प- प्रभुने कर्मच स्व प्रतिबन्ध इत्ये नति-

महद् दामाद्रिकं सर्वरत्नमयम् ४, एक च खलु महान्तं श्वेतं गोवर्गम् ५, एकं च खलु महत् पद्मसरः सर्वतः समन्तात् कुसुमितम् ६, एक च खलु महान्त सागरम् ऊर्मित्रीचिसहस्रकलित भुजाभ्या तीर्णम् ७, एकं च खलु महान्तं दिनकरं तेजसा ज्वलन्तम् ८, एकं च खलु महान्तं ऋग्वैदूर्यवर्णाभेन निगकेन अन्वेषण मानुषोत्तरं पर्वतं सर्वतः समन्ताद् आवेष्टितपरिवेष्टितम् ९, एक च खलु महान्तं मन्दरे पर्वते मन्दरचूलीकाया उपरि सिंहामान वरगतमात्मानं स्वप्ने दृष्टा प्रतिबुद्धः । सू०९८॥

टीका— 'तएण से समणे' इत्यादि । ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरः ईर्यासमिनः=इर्यासमिति-समन्वितः-यतनया गमनेन प्राणिगणं रक्षन्-'यावत्'-पदेन भाषासमितः, एषणासमितः, आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपासमितः, उच्चार प्रसवणश्लेषमशिक्षाणजहृषणपरिष्ठापनिकासमितः, मनोगुप्तः, वचोगुप्तः कायगुप्तः,

चित्र-विचित्र पखेवाले पुरुष-कोकिल को देखा । (४) एक महान् सर्व रत्नमय मात्रा-गुगल देवा । (५) एक विशाल श्वेत गोवर्ग देवा । (६) सब तरफ से पुष्पित एक पद्म-युक्त विंगल सरोवर देखा । (७) एक हजारों तरंगों से युक्त, महान् समुद्र को अपनी भुजाओं से पार किया देखा । (८) एक महान् तेज से जाडल्यमान सूर्य को देखा । (९) पिगलवर्ण की हरि मणि और नीलवर्ण की नीलम मणि को आभा के समान कान्तिवाजी अपनी आत से महान् मानुषोत्तर पर्वत को सब ओर से वेष्टित और परिवेष्टित देखा । (१०) मेरु पर्वत पर मन्दर-चूलिका के उपर अपने आप को एक श्रेष्ठ सिंहामान पर बैठा देखा । इस देवकर भगवान् जानुत हुए ॥प्र०९८॥

टीका का अर्थ—उस समय भगवान् महावीर ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभाण्ड-मात्रनिक्षेपासा समिति, उच्चारप्रसवणश्लेषमशिक्षाणजहृषणपरिष्ठापनिकासमिति से युक्त थे, तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति नेथु (२) एक अत्यंत सद्देह पाथवाण । पुरुष नतिना ओङ्किलने जेथे (३) एक विशाण चित्र-विचित्र पांशोवाणा नर-ओङ्किलने तेमहे जेथे. (४) एक सुवर्षभय अने रत्नमय भाषानी नेडी जेध. (५) एक विशाण सद्देह पशुवाथुं गार्थेनुं धणु देणु. (६) यारे तरङ्ग युण्येथी बरेडुं' एक विशाल पद्म सरोवर देणु. (७) इगरीशे सोणवाला महान् समुद्रने पोते लुणज्येथी तरी गया इथेय तेवु स्वप्न तेमहे जेथु. (८) महान् तेजस्वो सूर्यने जेथे (९) पीणा रगना अने लीला रगना नीलम मखिज्योनी कालिती सभान कालिवाणा आतरइथी महान् 'मानुषोत्तर' पर्वत ने यारे आण्थी विंटणाजेल जेथे. (१०) मेरु पर्वत उपरना 'मंदाश्चूलीका' नामना शिथर उपर ओङ्क उत्तम सिंहासननी उपर पोते जेठेला जेथे. या प्रभाहे देणतानी साथेर लगवान् जणुन थथा ॥सू०९८॥

टीकाने अर्थ—ते समये लगवान् महावीर ध्यांसमिति, बोधध्यानमिति, बोधध्यानमिति, आदानभाण्ड मात्र निक्षेपासा समिति, उच्चार प्रसवण श्लेषमशिक्षाणजहृषणपरिष्ठापनिकासमिति तथा गनोयुप्ति, अने वरानुयुप्ति.

वैशालयुद्धः, तस्य तस्य वैशालयुद्धस्य नवमीपक्षे तस्य ऋग्मिमकाभिपत्य ग्रामस्य गच्छे ऋजुपालिकाया नया उत्तराङ्के सामगागिमस्य गापापते क्षेत्रे शालवृक्षस्य मूले रात्रिं कायोत्सर्गो स्थितः। तत्र तस्य छद्मस्थावस्याया भ्रन्तिमरत्रे भगवान् इमान् दशमहासमान् दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः। तद्यथा—

एकं च तस्य महायुद्धस्यस्यं पुंरुहाकिंचिद् २, एकं च तस्य महासन्तं विभ्रविचित्रं पयकं पुरस्कोक्तिम् ३। एकं च तस्य और धीया पत्न-वैशाल युक्तं पत्नं वा, उस वैशाल युक्तं पत्नं की नौवीके त्रिनं गगवान् नृभिक नामकं ग्रामं के वार, ऋजुपालिका नदी के उत्तर किनारे, सामग नामक गायापरि के क्षेत्र में, शालवृक्ष के नीचे, रात्रि में, कायोत्सर्ग में स्थित हुए। छद्मस्य अवस्था ही उस अन्तिम रात्रि में भगवान् यत्र वस महास्वप्न देलकर प्रतिबुद्ध हुए। ये स्वप्न ये हैं—

(१) एकं महान् पौर दीप्त रूपं पारी शालयिशाव को स्वप्न मे परामिष देलकर प्रतिबुद्ध हुए। (२) इसी प्रकार एक अस्पत्य सप्रेक्ष पंजोनाछे पुरुष जातीय कोक्तिस् को देलकर प्रतिबुद्ध हुए। (३) एक विशाल

सुधी रहस्यवागा अपधरी ने छपधरी भगवान्को सुवाचित करन सभान्, भाटी अने शोचने सभान् दृष्टिधी ज्येनार, सुभद्र भमा सभान्, उंवेक परदेवानी अयसिनि रहित अग्रतिस-केसुंषु अवननी प्रतिमा वगरेण, सु शारणा पारयानी अने आधर्येभिया नाश करवा आटे पदाकभरीक डहेवावा

छपरवा सुवोधी निवासित ज्येव शमभु अत्रयन भद्रावीर डेवा डेवा अक्षयवशरवी आत्माने आवित करवा डेवा ते। डहे छे डे, अजुत्तर-अवोत्तम) सान्, अजुत्तर इशंन, अजुत्तर तप, अजुत्तर सुशम, अजुत्तर उत्थान, अजुत्तर शिवा, अजुत्तर लण, अजुत्तर वीर, अजुत्तर पुरुषधर अजुत्तर पराक्रम अजुत्तर क्रमा, अजुत्तर निक्षेभवा, अजुत्तर वेदस्य, अजुत्तर आर्जव, अजुत्तर भाद्रप, अजुत्तर वापव, अजुत्तर सत्य, अजुत्तर ध्यान अने अजुत्तर अभवसाये वरे धीत्तना आभाने आवित करवा डेवा। आवी शीते आत्माने आवित करवा डेवतां कश्यपेभने भार वषं अने तेर पणवाडीभा वधार कर्षजर्षा दीक्षा परमेवना तेरभा वषे श्रीभ ऋग्ने लीजे भास अने वैशु अक्षयिडि अंठडे वेद्याण सुड नवभनिया द्विष्य सावती डेवा। नृसिंह नामना आभनी अक्षार, कण्ड पावित्र नईया उत्तर शिपरे, आभन नामना आयाचयिना सेन भक्षे, आठ वृक्षनी नीक्ष, सनीया सग्ये क्षेपेरसर्जनां तेजो स्थिन वषा, आ छपरस्य अवस्थानी छेडी शानी डेवा आ शानीया सग्ये, कश्यपने इय अक्षारस्येना ज्येवा अने ज्येवानी साक्षे तेजो प्रतिबुद्ध वषा ते स्वप्ने आ प्रभाक्षि डेवा—

स्वप्नेभ्यं स्तन—(१) ज्येक भवान् अधारी रिसिपुपधारी वाक्यियाअने स्वप्नभां पाते कसन्वे छ ज्येभ कात्रवाने

धर्मध्यानानुबन्धिनी माध्यस्थ्यपरिणतिः २, तृतीया च सा सकलमनोवृत्तिनिरोधेन योगनिरोधानवस्थायामाविनी आत्मरमणरूपा । उक्तंच योगशास्त्रे—

“विमुक्तकल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।

आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता ॥१॥इति ।

तथा मनोगुप्त्या युक्तः । वचोगुप्तः—वचनगुप्तियुक्तः । तत्र वचनगुप्तिश्चतुर्विधा,

उक्तंच—“सच्चा तदेव मोसा—य, सच्चा मोसा तदेव य ।

चउत्थी असच्च मोसा उ, वयगुप्ती चउव्विहा ॥१॥” (उत्त. २४ अ.)

छाया—“सत्या तथैव गुपा च, सत्यागुपा तथैव च ।

चतुर्थ्यसत्यागुपा तु, वचोगुप्तिश्चतुर्विधा ॥१॥इति ।

अनुकूल, परलोक की साधनेवाली, धर्मध्यान के अनुकूल मध्यस्थभाव रूप परिणति, (२) समस्त मानसिक वृत्तियों के निरोध से, योगनिरोध की अवस्था में उत्पन्न होनेवाली आत्मरमणरूप प्रवृत्ति । योगशास्त्र में कहा है—

“ विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।

आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता ” ॥ १ ॥ इति ।

कल्पनाओं के जाल से सर्वथा मुक्त, तत्त्व में सुप्रतिष्ठित और आत्मारूपी उद्यान में रमण करनेवाला मन ही मनोगुप्ति है; ऐसा गुप्ति के ज्ञाताओने कहा है ॥ १ ॥

भगवान् वचनगुप्ति से भी युक्त थे । वचनगुप्तिचार प्रकार की है । कहा भी है—

अनुकूल मध्यस्थभावश्च परिणति (३) सधर्णी भानसिद्धिर्भानानिरोधथी योग निरोध अवस्थाभा उत्पन्न थनारी आत्मरमणरूप प्रवृत्ति. योगशास्त्रम १६धु' छे—

विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।

आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता ॥ १ ॥ इति ।

उत्पन्नान्धोनी भाजथी सर्वथा मुक्त, समत्वभा सुप्रतिष्ठित थने आत्माभां रमणु करनार मन न, भनोशुप्ति छे, अनु' मनोशुप्तिना अनुकूलरोधे उहेले छे. ॥१॥

लगवान वचनगुप्तिवाजा पणु इता. वचन गुप्ति थार प्रधरनी छे, उधु पणु छे—

गुप्तः, गुप्तेन्द्रिय " इत्येषां सत्त्वा", तत्र 'भाषासमितः=भाषासमितियुक्तः-भाषासमितिविष-निरवयवचनमवृष्टिः,
 तथा युक्तः, एषणासमितः=एषणायाश्च=अश्वनादिगवेषणायाम् उन्नमादि द्वित्वादिश्लेषवर्धनेन समित' =समिति
 युक्तः; आदानमाहमाभिनिकषेणवासमितः-आदाने=माहमात्रयोर्ग्रेणे माहमात्रयोः-माहस्थ=पापस्य मात्रस्य=
 त्नादिक्रमस्योपकरणस्य च, यद्वा-माहमात्रयोः-माहस्थ=त्राद्गुपकरणस्य अमत्रस्य=पापस्य वेत्युभयोः निश्रे
 षणायाम्-अत्रस्यापनायां समितः=प्रतिष्ठेत्वनदिपूर्वकमवृष्टियुक्तः, उच्चारणस्य=अभिव्यक्तिगणजष्टपरिष्ठापनिका
 समित'-तत्र-उच्चारः-पुरीयं, श्लेषा=रुफः, विद्वान्=नासिकासंज्ञं, जड्वा-अवेदकम्, एतेषां
 परिष्ठापनिकायां=परिष्ठापने समित =स्वच्छिद्यमादि दोषपरिहारपूर्वकमवृष्टियुक्तः, मनोगुप्त-मनोगुप्तिस्त्रिविधा-तत्र
 प्रथमा सा-आत्रैरेष्टस्यानुवन्विह्वलनानामभिव्योगरूपान्, द्वितीयामनोगुप्तिव-शाब्दानुसारिणी परलोकासापिनी
 और कथयति से सत्यम् ये, गुप्त ये और गुप्तेन्द्रिय ये। प्रायियों की रक्षा करते हुए यतनापूर्वक चलना
 र्थासमिति है। निर्दोष वचनों का प्रयोग करना भाषासमिति है। एषणा में अर्थात्-आहार आदि को गवेषणा में
 उदगम आदि ४२ (बपाकीस) दोषों का वर्जन करना एषणासमिति है। माह-याप तथा मात्र-वत् आदि
 उपकरणों के श्राव्य करने और रत्नने में अथवा माण्ड और वत्स आदि उपकरणों के तथा असत्र अर्थात् पात्र के
 आदान-निक्षेप में यतना करना अर्थात् प्रतिष्ठेत्वनदि पूर्वक मवृष्टि करना आदानमाहमात्रनिक्षेपवासमिति है।
 उच्चार-मन्, मत्तस्म मूत्र, श्लेष्य-रुफ, श्रियण-रेंट, जष्ट-पत्तीने का मैस, इन सब के परिष्ठापन-परठने में
 यतना करने को उच्चारमत्तमगच्छेत्प्रियणजष्टपरिष्ठापनिकासमिति कहते हैं। मगवान् मनोगुप्ति से युक्त वे।
 मनोगुप्ति तीन प्रकार की है—(१) भावप्रयान और रौरप्रयान संबंधी हृत्पयनाओं का असाव होना। (२) शब्द के

अने भाष्यप्रतिषेही अथत इत्या, गुप्त इत्या अने गुप्तेन्द्रिय इत्या, प्राचीनोनी रक्षा इत्या यतना पूर्वक व्यावृत्तु ते
 प्रथोभमिति छ, निर्दोष वचनोना प्रयोग इत्येते ते आशयमिति छ, निषेधार्थं अददे हे आहार अदिनी अवेधुत्थार्थं
 उदगम आदि इट दोषोना ल्यात्र इत्येते ते अेषण्य समिति छ कांड-यान तथा मात्र-वत् आदि उपकरणोने अक्षय
 इत्येत्थं तथा शब्दाथं अक्षय कांड के वत् आदि उपकरण तथा असत्र अददे हे यतना आदान-निक्षेपार्थं यतना
 इत्थी अददे हे प्रतिष्ठेत्वन अने प्रमात्त-न इत्थीने प्रवृत्ति इत्थी ते आदान-कांड मात्र निक्षेप्य समिति छ उच्चार
 मन् अत्रभव्य मूत्र, श्लेष्य-रुफ, श्रियण-रेंट, जष्ट-पत्तीने का मैस, छ अधाना परिष्ठापन परठवार्थं यतना इत्थी
 तेने उच्चार प्रवृत्त्य श्लेष्य-रुफ, श्रियण-रेंट, जष्ट-पत्तीने का मैस, छ अधाना परिष्ठापन अने अश्रुतिगण इत्या, अने अश्रुति गण
 प्रथानी छ—(१) भावप्रयान अथवा हृत्पयनाओं का असाव होना, परठेत्वनं व्याध्यादी परठेत्वनं

कायगुप्तिश्च—द्विधा चेष्टानिवृत्तिरुक्ता १, यथाऽऽजसं चेष्टानियमरूपा च २। तत्र परीपहोपसर्गादि सम्भवेऽपि यत् कायोत्सर्गकरणदिना कायस्य निश्चलत्वाकरणम्, सर्वयोगनिरोधावस्थायीं वा सर्वथा यत् कायचेष्टानिरोधनं सा प्रथमा १। गुरुमापृच्छश्च शरीरसंस्तरकभूम्यादि प्रतिलेखना-प्रमार्जनादिसमयोक्त-क्रियाकलापपुरस्सरं शयनासनादि विधेयम्, ततः शयनासननिक्षेपाऽऽदानादिषु स्वेच्छया चेष्टापरिहारेण नियता=शास्त्रनियमानुसारिणी या कायचेष्टा सा द्वितीयेति, उक्तं च—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुनेः।

स्थिरीभावःशरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते।१।

भगवान् कायगुप्ति से युक्त थे। कायगुप्ति दो प्रकार की है—(१) कायिक चेष्टाओं को त्याग देना और (२) चेष्टाओं का आगम के अनुसार नियमन करना। इन में परिपह उपसर्ग आदि उत्पन्न होने पर कायोत्सर्गक्रिया आदि के द्वारा शरीर को अवल कर लेना अथवा योग मात्र का निरोध हो जानेकी अवस्था में पूर्ण रूप से कायिक चेष्टा का रूक जाना प्रथम कायगुप्ति है। गुरु से आज्ञा लेकर शरीर, संथारा, भूमि आदि की प्रतिलेखना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाएँ करके ही शयन आसन आदि करना चाहिए। अतः शयन, आसन, निक्षेप और आदान आदि क्रियाओं में स्वेच्छापूर्वक चेष्टाओं का परित्याग करके शास्त्रानुसार काय की चेष्टा होना दूसरी कायगुप्ति है। कहा भी है—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुनेः।

स्थिरीभावः शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥ १ ॥

भगवान् कायगुप्तिरूपणा पशु हत्वा कायगुप्तिं ये प्रकारनी छे—(१) कायिक चेष्टाओंको त्याग करवो अने (२) चेष्टाओंको आगम प्रभावे नियमन तेमा-परिपहक उपसर्ग आदि उत्पन्न थता आगे।त्सर्ग-क्रिया आदि वडे शरीरने अथण डरी लेवुं अथवा योग भावने। निरोध थल नवानी अवस्थाभा पूरुंइये कायिक चेष्टावुं अटकी नवुं ते पछेटी कायगुप्ति छे गुरुनी आज्ञा लधने शरीर, स थारो, भूमि आदिनी प्रतिलेखना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाया कर्गने न शयन आसन आदि कर्षुं ओठये. तेथी शयन, आसन, निक्षेप, अने आदानआदि क्रियाओंमां स्वेच्छापूर्वक चेष्टाओंको परित्याग करीने शास्त्रानुसार कायनी थोटा होवी ते थोछ कायगुप्ति छे. कछुं पशु छे—

“उपसर्ग प्रसंगेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुनेः।

स्थिरीभावः शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥

श्रमयैः—वचोगुप्तिः=वचनगुप्तिवृत्तिषा—सत्या, मृषा, सत्यामृषा, असत्यामृषापावेति । अथ मात्रः—जीव-प्रति-
 'अथ जीव' इति कृपन सत्यवचनम् १, जीव प्रति-‘अथमजीवः’ इति कथने मृषावचनम् २, ‘अथास्मिन् नगरे
 ‘अतं नाम्ना जाणाः’ इति पूर्वनिर्णय कथने सत्यामृषावचनम् ३, ‘आम’समागत’ इति कथन न सत्यं नापि
 मृषेति, असत्यामृषावचनम् ४, इति चतुर्विध वचनयागनिष्ठविवेचोपतिरिति । एवं चतुर्विधवचोपति युक्तः ।
 यद्वा-कुठलानां वचसाप् उदीरणम् अकुठलानां च निवचन वचोगुप्तिः, तथा युक्त इति । कायगुप्तियुक्तः । तत्र

“सथा तरेव मोसा य, सथा मोसा तरेव य ।

चउत्पी असथ मोसा उ, वयगुणी चउत्थिवा” ॥ १” इति ।

(१) मस्यवचनगुप्ति (२) मृषावचनगुप्ति (३) सत्यामृषावचनगुप्ति और (४) चौथा असत्यामृषावचनगुप्ति, इस प्रकार वचनगुप्ति चार प्रकार की है ॥ १ ॥

इसका अविश्राय यह है-वचन चार प्रकारका है, जैसे—जीव को ‘यह जीव है’ ऐसा कहना सत्यवचन है । जीव को यह भ्रमीव है’ ऐसा कहना मृषावचन है । ‘आन इस नगर में सौ बालकनये’ इस प्रकार पढ़छे निर्भय क्रिय विना ही कहना सत्यामृषावचन है । ‘गौव आ गया’ इस प्रकार का कहना न सत्य है, न मृषा (असत्य) है, इस लिये यह असत्यामृषावचन-अथशारमापा है । इन चारों प्रकार क वचन योग के त्याग को वचनगुप्ति है । कहते अथवा-पक्षस्त वचनों का प्रयोग करना और अपक्षस्तवचनों का त्याग करना वचनगुप्ति है । भगवान् इस वचनगुप्ति से युक्त थे ।

“सथा तरेव मेसा च, सथा मोसा तरेव य ।

चउत्पी असथ मोसा उ, वयगुणी चउत्थिवा” ॥ १ ॥ इति ।

१) यत्ना वचन गुप्ति (२) मृषा वचन गुप्ति (३) सत्यामृषा वचन गुप्ति अने (४) असत्यामृषावचन गुप्ति, का प्रभावे वचनगुप्ति चार प्रकारनी छे । (१) तनेषा आ छे वचन चार प्रकारनी छे, जेभहे-उचने, आ छे, आ छे, जेभ छडेपु ते सत्य वचन छे उचने, आ छे, जेभ छडेपु ते मृषावचन छे । ‘आले आ नगरभां मे ग्याने १० म्हा’ आ प्रभावे पड़ेका निवचन हवा विना छडेपु ते सत्यामृषा वचन छे । ‘आम आनी अमु’ आ प्रभावे छडेपु ते सत्य वचन नही अने मृषा (असत्य) पवु नही, तेही ते असत्यामृषा वचन छे जो यारे प्रभावी वचन जेअना त्यागने वचन गुप्ति जेउछे छे जेभ छडे छे अथवा प्रशस्त वचनेनी प्रयोग करेवा अने अपक्षस्त वचनेनी भाग करेवा ते वचन छे काअवचन आ वचनगुप्तिव्याजना कवा ।

कायगुप्तिश्च—द्विधा चेष्टानिष्ठति रूपा १, यथाऽऽगमं चेष्टानियमरूपा च २ । तत्र परीपहोपसर्गादि सम्भवेऽपि यत् कायोत्सर्गकरणादिना कायस्य निश्चलत्वरूपम्, सर्वयोगनिरोधोद्यथायां वा सर्वथा यत् कायचेष्टानिरोधनं सा प्रथमा १ । गुरुमापृच्छथ शरीरसंस्तारकभूम्यादि प्रतिलेखना—प्रमार्जनादिसमयोक्त—क्रियाकलापपुरस्सरं शयनासनादि विधेयम्, ततः शयनासननिक्षेपाऽऽदानादिषु स्वेच्छया चेष्टापरिहारेण नियता=शास्त्रनियमानुसारिणी या कायचेष्टा सा द्वितीयेति, उक्तं च—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुषो मुनेः ।

स्थिरीभावःशरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥

भगवान् कायगुप्ति से युक्त थे । कायगुप्ति दो प्रकार की है—(१) कायिक चेष्टाओं को त्याग देना और (२) चेष्टाओं का आगम के अनुसार नियमन करना । इन में परिपह उपसर्ग आदि उत्पन्न होने पर कायोत्सर्गक्रिया आदि के द्वारा शरीर को अचल कर लेना अथवा योग मात्र का निरोध हो जानेकी अवस्था में पूर्ण रूप से कायिक चेष्टा का रुक जाना प्रथम कायगुप्ति है । गुरु से आज्ञा लेकर शरीर, संथारा, भूमि आदि की प्रतिलेखना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाएँ करके ही शयन आसन आदि करना चाहिए । अतः शयन, आसन, निक्षेप और आदान आदि क्रियाओं में स्वेच्छापूर्वक चेष्टाओं का परित्याग करके शास्त्रानुसार काय की चेष्टा होना दूसरी कायगुप्ति है । कहा भी है—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुषो मुनेः ।

स्थिरीभावः शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥ १ ॥

भगवान् कायगुप्तिवशात् पथ ७८५ कायशुप्ति ये प्रकारनी छे—(१) अधिक चेष्टाओंको त्याग करवे। अने (२) चेष्टाओंको आगम प्रमाणे नियमन तेमां—परिपह उपसर्ग आदि उत्पन्न थता कोत्सर्ग—क्रिया आदि बडे शरीरने अयण करी देवुं अथवा योग मात्रने। निरोध थथ जवानी अवस्थाभा पूरुईये कायिक चेष्टातुं अटकी जवुं ते पछेवली कायशुप्ति छे. शुरुनी आज्ञा लछिने शरीर, स थारो, भूमि आदिनी प्रतिलेखना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाथा करीने ज शयन आसन आदि कखुं नोछेते तेथी शयन, आसन, निक्षेप, अने आहानआदि क्रियाओंमां स्वेच्छापूर्वक चेष्टाओंको परित्याग करीने शास्त्रानुसार कायनी चेष्टा छे। वी ते थली७ कायशुप्ति छे. कखुं पथ छे—

“उपसर्ग प्रसंगेपि, कायोत्सर्गजुषो मुनेः ।

स्थिरीभाव शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥

अथनाऽऽसन निक्षेपा, -ऽऽथानसंक्रमणेषु च ।

स्यानेषु वेष्टा नियमः, कायगुण्विस्तु सा परा ॥२॥ इति ।

मग्नतो गुरोरेसावाद् द्वितीया कायगुण्विर्गमनापृच्छयैव बोध्याः । एवं द्विविधकायगुण्वियुक्तः । अथ एष-गुण्वः= मनोरथ-कायगुण्वियुक्तः । तथा-गुण्वेन्द्रियः=स्व स्व विषयतो निष्परीतेन्द्रियः=अधीकृतेन्द्रिय इत्यर्थः । इति यावत्स्व गप्रहीत विचक्षणम् । तथा-गुण्वध्रमचारी-गुण्वः=रहितः-अध्रमचारः=पावञ्जीवनं मैपुनविरययससम्भवाः-ध्रमणाः= ध्रमचर्यस्य षट्पुत्रवत्स्य चारः=अनुष्ठानं सेवनम् अस्यास्तीति गुण्वध्रमचारो-यावञ्जीवितमैपुननिवृत्ति इति भाषः ।

अथनासर्नानसपाऽऽथान संक्रमणेषु च

स्यानेषु वेष्टानियमः, कायगुण्विस्तु सा परा ॥ २ ॥

उपसर्ग का प्रसंग होने पर भी कायोत्सर्ग को सेवन करने वाले मुनि के शरीर का स्थिर होना प्रथम काय गुणव इत्यन्वयी है ॥ १ ॥

अथन, भासन, निक्षेप (किसी वस्तु को रत्नना), आधान (ग्रहण करना) तथा संक्रमण (इधर-उधर करना) आदि स्थानों में वेष्टा का नियम होना दूसरी कायगुण्वि है ॥ २ ॥

मग्नान्त के गुरु का अभाव या, अथ एव उनकी कायगुण्वि गुरु को बिना पूछे ही जान लेनी पारीए । इस प्रकार वे दोनों प्रकार की कायगुण्वि से युक्त थे । इन तीनों गुण्वियों से युक्त होने के कारण वे गुण्व थे । तथा गुण्वेन्द्रिय ये-विषयों में गहव होनेवाली इन्द्रियों का निरोध कर चूक थे ।

मग्नान्त गुण्व ध्रमचारी थे । अर्थात् यावञ्जीवन मैपुनस्तपागस्य वीषे ध्रमचर्यमहावत का अनुष्ठान करनेवाले थे ।

अथनासर्नानसपाऽऽथान संक्रमणेषु च

स्यानेषु वेष्टानियमः कायगुण्विस्तु सा परा ॥ २ ॥

उपसर्गना प्रसंगे एव उपोत्सर्ग सेवन करनेवा मुनिना गरीस्तु स्थिर होवु ते पठेही भाष्यमुसि कहेबाव छ ॥१॥ अथन, भासन, निक्षेप (किसी वस्तु में राखणी), आधान (ग्रहण करवु) तथा संक्रमण (ज्याम तेम करवु) आदि स्थानों में वेष्टान नियमन होवु ते वीज्य भाष्यमुसि छ कात्रवानने गुरु न कथा तेही तेमनी भाष्यमुसि अरुने पुत्रवा विनानी धमण्ड बेवी जेधजे. आ हीते तेज्य जन्ने प्रकसनी भाष्यमुसिप्राणा कथा जे तखे अतिप्राणा होबाकी तेज्य अथन कथा तथा अतिन्द्रिय कथा नियमों में प्रवृत्त बनारी अतिन्द्रिये नियम करी बाधा कथा कात्रवान अथन मग्नचारी कथा कहेते है आसर्नान अथन संक्रमण कथा कात्रवान करवु अनुष्ठान करनेवा कथा अथन

तथा-अमसः=ममत्पारहितः, अकिञ्चनः=निष्किञ्चनः, अक्रोधः=क्रोधरहितः, त. ग. अमानः=मानरहितः, अमायः=मायावर्जितः, अलोभः=निर्लोभः तथा-शान्तः=अन्तर्द्वेषी, प्रशान्तः=वह्निहत्या, उपशान्तः=उभयहत्या, परिनिर्द्वैतः=सर्वसन्तापरहितः, अनासन्नः=आसन्नवर्जितः, अग्रन्थः=वाह्याग्रन्तरग्रन्थरहितः, छिन्नग्रन्थः=परित्यक्तद्रव्यभावग्रन्थः, छिन्नस्रोताः=विनाशितासन्न कारणः, निरुपलेपः=द्रव्यभावमलवर्जितः, तथा-आत्मस्थितः=आत्मनि स्थितः-आत्मनिष्ठः, यद्वा-‘आयद्विष्टे’ इत्यस्य ‘आत्मर्थिकः’ इतिच्छाया, तत्पक्षे-आत्मैवार्थः-प्रयोजनम् आत्मार्थः, सोऽस्त्यस्येत्यात्मार्थिकः, यद्वा-आत्मानमर्थयतीति आत्मार्थी स एवाऽऽत्मार्थिकः-आत्माभिलाषी=आत्मकल्याणोत्सुकः, तथा-आत्महितः=पड्जीव-निकाय परिपालकः, तथा-आत्मज्योतिष्कः-आत्मैवज्योतिः-आलोको यस्य स आत्मज्योतिष्कः, यद्वा-‘आयजोइए’ इत्यस्य ‘आत्मर्थिकः’ इतिच्छाया, तत्पक्षे-आत्मवशाली। तथा-समाधिप्राप्तः=सम्पद्यद्भोक्षमार्गा-

तथा- ममत्ता से रहित थे। अकिञ्चन थे, क्रोध मान माया और लोभ से रहित थे। अन्तर्द्वैति से शान्त थे, बाहर से प्रशान्त थे, और भीतर बाहर से उपशान्त थे। सब प्रकार के सन्ताप से रहित थे। आसन्न से रहित थे। वाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि से रहित थे। द्रव्य-भाव ग्रन्थ (परिग्रह) के त्यागी थे। आसन्न के कारणों को नष्ट कर चुके थे। द्रव्य और मात्रामत्र से वर्जित थे। आत्मनिष्ठ थे। अथवा ‘आयद्विष्टे’ की ‘आत्मार्थिक’ ऐसी छाया होती है। इसका अर्थ है-आत्मार्थी, आत्म कल्याण के इच्छुक, भगवान् आत्महित-पड्जीवनिकाय के परिपालक थे। आयजोइए-आत्मज्योतिवाले थे, अथवा आत्मयोगिक अर्थात् मन वचन तथा काययोग को वश में करनेवाले थे। आत्मबल से सम्पन्न थे। समाधि-भोक्षमार्ग में स्थित थे।

विद्वानां हता, अकिञ्चन हता क्रोध, मान, माया अने लोभधी रहित हता. आन्तर्द्वैत्तियो शान्त हता, भ्रष्टरथी प्रशांत हता अने अंदर तथा भ्रष्टरथी उपशांत हता. यथा प्रकारना संतापधी रहित हता. आसन्नवधी रहित हता. आद्य अने आभ्यन्तर ग्रन्थिधी रहित हता. द्रव्य-भाव ग्रन्थ (परिग्रह) ना त्यागी हता. आसन्नना कारणोना नाश करी चुक्या हता. द्रव्य अने भाव भगधी रहित हता आत्मनिष्ठ हता. अथवा ‘आयद्विष्टे’ नी ‘आत्मार्थिक’ जेवी छाया होय छे. तेना अर्थ छे-आत्मार्थी, आत्मालिखार्थी, जोटवे छे-सुमुख हता. लगवान आत्मरहित छल्लवनिधायना परिपादक हता. आयजोइए-आत्मन्थोतिवाणा अथवा आत्मयोगीक जोटवे छे मन, वचन, तथा काययोगने वश करनार हता आत्मभगधी स पन्न हता. समाधि-भोक्षमार्गभा स्थिन हता. क्रोशानां पादनी जेम

बस्थितः, तथा-त्रास्वपात्रमिव=क्रीडस्वपात्रवत् मुक्तसौम्यः=स्नेहजनितः, शृङ्गरेव=शृङ्गरेवत् निरञ्जनः=निर्मलः, तथा
 जीवस्व=जीववत् अमतिरगतमिति=अच्छिद्यगतमिति, जात्यञ्जनकमिव=उचममदुर्बलवत् जातरुगः=दुस्वस्वसम्पन्नः, आदर्श-
 कलकमिव=दर्पण फलकवत् प्रकटभावः=प्रकाशितनोवागोपादि सकम्पदायः, कूर्मरेव=कच्छपवत् गुणोद्भियः=
 वशीकृतोत्प्रेर्य, पुष्करपत्रमिव क्लमपत्रवत्, निरुपलेपः=स्वजनापिज्वररहितः, गगनमिव=आकाशवत्, निराल
 म्भनः=कुप्रामगनाराधाम्भनवजितः। मञ्जिल इव=वायुवत् निरालम्बः=निर्गुहः, चन्द्र इव=चन्द्रवत् सौम्यश्लथः=अनु-
 पतापहेतुमनः परित्यागपारकः, वृक्ष इव=वृक्षवत् दीप्ततेजाः=द्रव्यत् शरीरदीप्त्या भावतो ज्ञानेन देवीप्यमानः,
 सागर इव=समुद्रवत् गम्भीरः=वैष्वोक्तदि कारणसंयोगेभ्यो निर्दिष्टकारित्वः, विहग इव=यस्यैवत् सर्वतो विप
 मुक्तः=निवन्धनः, मन्दर इव=मन्दरपर्वतवत् अमकम्पः=परीपहोपसर्गपवनेरचलितः, शारदन्तकमिव=शारदन्तजलवत्

कृत्सि के पाष के समान स्नेह (राग) से रहित थे। ईल के समान निर्मल थे। जीव के समान अछिद्य-
 म्भाष गतिपाळे थे। उचम स्वर्ण के समान सुन्दर रूप थे। दर्पण-फलक के समान जीव-मनीष समस्त
 पदार्थों को प्रकाशित करनेपाळे थे। कच्छपे के समान इन्द्रियों को रूप करनेपाळे थे। कलक के पत्रे के
 समान राजत आदि को आसक्ति से रहित थे। आकाश के समान कुल, ग्राम, नगर आदि का आलवन नहीं
 छेते थे। पतन के समान घर रहित थे। चन्द्रमा के समान सौम्य छेदपावाळे अर्थात् कृपादिजन्यस्तत्तापसे
 रहित मानसिक परिणाम के धाक थे। गर्भ के समान दीप्ततेज थे। अर्थात् द्रव्य से शारीरिक दीप्ति से और
 मात्र से ज्ञान से दृढीप्यमान थे। सागर के समान गंभीर थे। इर्ष-शोक आदि के कारणों का सयोग होने
 पर मौ रिकार-विहीन विचाराळे थे। परीके समान पत्र प्रकार के वनपत्तों म मुक्त थे। मेरु शैल के समान
 पर्वतपर और उपसर्ग स्त्री पवन से सहायमान नहीं होने थे। वारवृक्ष के जड़ के समान निर्विक विज थे।

श्लोक (२४) विनाश कदा शयना लेवा निर्माण कदा ह्यवना लेवा ऋद्धिजि अत्राप अतिवाणा कदा उत्तम
 सुवक्ष लेवा सुहृ इषणा कदा इर्षयनी नेम लुभ ऋद्धि सुमस्त पराशोने प्रशशित करनार कदा काञ्चयनी
 नेम पीतानी अन्निनेने ज्ञेवावतार-वशा करनार कदा इभणानी याननी नेम स्वचन ऋद्धिनी ऋशक्ति विनाश कदा
 आशयनी नेम कुण, शोभ, नजर आदिपु अत्रस अत्र होता नही पवतनी नेम गुह विनाश कदा अन्त्रमानी नेम
 शोभ शेरशयणाळ जेटहे हे होषादिजन्य यदापही रक्षित मानसिक परिवर्तमान धारक कदा सुखनी नेम दीप्ततेज
 वणा कदा जेटहे हे इन्मषी शारीरिक दीप्तिवशी जने वावषी ज्ञान वहे हेदीप्यमान कदा साजरा नेवा जवरीर
 कदा इर्ष-शोक आदिना धारकोनेने अत्राप कदा हत्तं पक्ष निर्दिष्टार विचयवना कदा पशुनी नेम ऋषी भातनी
 जन्मनाशी मुक्त कदा मरि परितनी नेम परीपह कने उपसर्ग इपी पवनशी यक्षाभमान कदा नही, शारदन्त-

शुद्धहृदयः=निर्मलचित्तः, खड्गिविषाणमिव एकजातः=एकः=प्रधानःजातः=उत्पन्नः। तथा-भारण्डपक्षीव=भारण्ड-
नामकपक्षिवत् अप्रमत्तः=प्रमादरहितः; कुञ्जर इव=हस्तिवत् शौण्डीरः=शूरः-पराक्रमी, तथा-वृषभ इव=बली-
वर्धवत्, जातस्थामा=उत्पन्नवीर्यः, सिंह इव=सिंहवत्, दुर्धर्षः=अपराजेयः, वसुन्धरेव=पृथिवीवत् सर्वस्पर्शसहः;=
शीतोष्णादि सकल स्पर्शसहनशीलः; तथा-सुहृत्सहताशन इव=निक्षिप्तदृतादि वह्निरिव तेजसा=प्रकाशेन ज्वलन्=
दीप्यमानः; तथा-वर्षावासवर्ज=वर्षावास विहाय=वर्षाकालिकमासचतुष्टयं परित्यज्य तदतिरिक्तेषु अप्राप्तु त्रैष्व-
हेमन्त-ऋतु सम्बन्धिषु मासेषु ग्रामे २=एकरात्रव=नगरे २=पञ्चरात्रम्, तथा-वासीचन्दनकल्पः-वासीव वासीताम्-
अपकारिणमित्यर्थः; चन्दनमिव उपकारकत्वेन कल्पयति=मन्यते-इति वासीचन्दनकल्पः। उक्तञ्च—

“यो मामपकरोत्येप तत्त्वेनोपकरोत्यसौ।

शिरामोक्षाद्युपायेन कुर्वाण इव नीरुजम् ॥”

गैडा क सींग के समान ये रागादि कौ की सहायता से रहित होने के कारण, एक स्वरूप थे। भारंड नामक पक्षी के समान प्रमादरहित थे। हाथी के समान पराक्रमी थे। वृषभ के समान वीर्यशाली थे। सिंह के समान अजेय थे। पृथ्वी के समान सर्वसह-शीत-उष्ण आदि सकल स्पर्शों को सहन करनेवाले थे। जिस में वीकी आहुति दी गई हो ऐसी अग्नि के समान तेजोमय थे। वर्षावास-वर्षाऋतु के चार मासों के सिवाय ग्रीष्म और हेमन्त ऋतुओं के आठ महिनों में, ग्राम में एक रात और नगर में पाँच रात से अधिक नहीं ठहरते थे। भगवान् वासो चन्दन कल्प थे अर्थात् वसूले के समान अर्थात् अपकारी पुरूप को भी चन्दन के समान उपकारक मानते थे। जैसे कहा है—

“ यो मामपकरोत्येप, तत्त्वेनोपकरोत्यसौ ।

शिरामोक्षाद्युपायेन, कुर्वाण इव नीरुजम् ” ॥ इति ॥

जण नेवा निर्भेज व्यत्तवाणा इता गेडाना शिगडानी नेम अके ज आदित्तीय उत्पन्न थयेल इता. लारंड नामना पक्षीना नेवा प्रमाद रहित इता. हाथी नेवा पराक्रमी इता वृषभनी नेम वीर्यवान इता. सिंह नेवा अजेय इता. पृथ्वीनी नेम सर्वसह-शीत, उष्ण आदि सकल स्पर्शोनि सहन करनार इता. नेवा धीनी आहुति अपाछिडाय जेवा अग्नि नेवा तेजस्वी इता वर्षावास-वर्षाऋतुना चार महीनाओ सिवाय ग्रीष्म अने हेमन्त ऋतुओना आठ महिनाओमा गाममा अके रात अने नगरमा पाय रातथी वधादे रहेता नई. लगवान वासी चन्दन इत्य इता, जेटदे डे वासलानी नेम अपकारी पुरुषे। पक्ष प्रभुने चन्दननी नेम उपकारक मानता इता नेमडे उल्लुं छु—

अथवा-नास्यामपकारिणां चन्दनस्य कस्य इष-येव इव उपकारित्वेन यो वर्तते स वासीचन्दनकस्यः । उक्तञ्च—
 “अपकारपरेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।

सुरभी करोति वासी, मलयजमपि तप्तमाजमपि ॥” इत्येवमभूत् ।
 तथा-समलोष्टकाश्चनः=सुस्यापाणाद्विखण्ड-सुसर्षणयोः साम्यदर्शी, समसुल्लसुःस्वाः=सुलसुःस्वे तुल्ये जानानि;

अैसे क्षिरामोक्ष-चढी हुई नस के उठारने आदि उपायों से रोगी को निरोगी करनेवाला उपकारक होता है, उसी प्रकार जो मेरा अपकार करता है, वह वास्तव में उपकार करता है । अथवा=वासी अर्थात् अपकारी बटुला के प्रति जो चन्दन के जेव (लण्ड) के समान उपकारी क रूप में वर्चोच करता है, अर्थात् अपकारी का भी उपकार करता है, वह वासी चन्दनकस्य कहलाता है । कहा भी है—

“अपकारपरेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।

सुरभी करोति वासी, मलयजमपि तप्तमाजमपि” ॥१॥ इति ॥

मगान् पुरुष, अपकार करनेवाले का भी उपकार ही करते हैं । जैसे मत्स्यज चन्दन छीना जाता हुआ भी पनूछे को सुगंधित ही करता है ॥ मगवान् उसे ‘वासीचन्दनकस्य’ थे । तथा-मगवान् मिट्टी एवं पाषाण के टुकड़े को तथा सोने को समान दृष्टि से देखते थे । सुल-दुःल को समान समझते थे । इह लोके में यद्—

“या मामपकरात्स्य, तद्वेनोपकरोत्यसौ ।

क्षिरामोक्षापुपायेन, कुर्वाण इव नीकग्रम् ।

नेम शिशोशिक्ष—जेठवे के अडि अथवा नखने ठीलाप्य आदि उपयोक्ष रोगीने नीशोगी करनार उपकारक थाय छि, जेव प्रभावे ने भाश पर अपकार करे छि, ते वास्तवमां तो उपकार करे छि । अथवा वासी जेठवे के अपकारी चंडवा भूत्ये ने चन्दनना दुकधानी नेम उपकारी इरे वनाव करे छि, जेठवे के अपकारी उपर पख उपकार करे छि, ते वासी चन्दन करप हडेवाय छि कसु पख छि—

“अपकारपरेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।

सुरभीकरोति वासी, मलयजमपि तप्तमाजमपि ॥१॥” इति

“नेम मलयज-चन्दन करप छवां पख चंडवाने सुगंधित करे छि तेम अमान् तुल्य अपकार करनार उपर पख उपकार करे छि” मगवान् जेवा ‘वासीचन्दनकस्य’ कवा, ववा अमान् भाडी अने पकसली दुकधानी तथा चंडवाने मगंधिल जेवा कवा सुल-दुःलने अमान् अथवा कवा, आ चंडवान पर-शक्ति आदिनी तवा पकसली

इह्लोकपरलोकप्रतिबद्धः=इह्लोकसम्बन्धिषु यशःकीर्त्यादिषु परलोकसम्बन्धिषु स्वर्गीयसुखादिज्वासक्तिरहितः
 अग्रतिज्ञः=इह्लोकपरलोकप्रतिज्ञारहितः, ससारपारगामी=संसारमहासमुद्रपारकर्त्ता, तथा-कर्मनिर्घातनार्थायिकर्मणां
 समूलनाशं कर्मम् अभ्युत्थितः=उद्यतश्च सन् विहरति। इत्थ तस्य विहरतः भगवतः खलु कुत्र चित्=कस्मिंश्चि-
 तस्थाने प्रतिबन्धः=अवरोधो नास्ति।

एवंविधेन=एतादृशेन विहारेण=जनपदविचरणेन विहरतः=विचरतो भगवतः श्रीवीरस्वामिनः अनुचरेण=
 लोकोचरेण सर्वाविशयिना ज्ञानेन, तथा अनुचरेण दर्शनेन=जीवादिपदार्थानां श्रद्धानेन तथा अनुचरेण तपसा=
 द्वादश विधानशानादिरूपेण, अनुचरेण समयेन=सप्तदशविधेन, अनुचरेण उत्थानेन=उद्यमेन अनुचरेण कर्मणा=
 क्रियया, अनुचरेण बलेन=शारीरशक्त्युपचयेन, अनुचरेण वीर्येण=आत्मजनितसामर्थ्यविशेषेण, अनुचरेण पुरुष-
 कारेण=पौरुषेण, अनुचरेण पराक्रमेण=मामर्थ्येन, अनुचरया क्षान्त्या=सामर्थ्ये सत्यपि परापकारसहनरूपया
 क्षमया, अनुचरया मुक्त्या=निर्लोभतया, अनुचरया लेख्यया=शुक्लक्षणया, अनुचरेण आर्जवेन=सरलत्वेन अनु-

कीर्ति आदि की तथा पारलौकिक-स्वर्ग आदि के सुखों की आसक्ति से रहित थे। इह्लोकपरलोक संबंधी
 प्रतिज्ञा से रहित थे। संसार रूपी महासमुद्र के पारगामी थे। कर्मोंका समूल उन्मूलन करने के लिए उद्यत
 होकर विचरते थे। इस प्रकार विचरते हुए भगवान् को किसी भी स्थान पर प्रतिबन्ध नहीं था।

अनुत्तर अर्थात् लोकोत्तर-सर्वोत्कृष्ट ज्ञान, अनुत्तर दर्शन (जीव आदिपदार्थों का श्रद्धान), अनुत्तर बारह
 प्रकार के अनशन आदि तप, सत्सरह प्रकार के अनुत्तर उत्थान-उद्यम, अनुत्तर कर्म-क्रिया, अनुत्तरवल-
 शारीरिक शक्ति का उपचय, अनुत्तर वीर्य-आत्मजनित सामर्थ्य, अनुत्तर पुरुषकार-पुरुषार्थ, अनुत्तर पराक्रम
 शक्ति, अनुत्तर क्षमा (सामर्थ्य होने पर भी पर के किये अपकार को सहन कर लेना), अनुत्तर मुक्ति-निर्लो-
 भता, अनुत्तर शुक्लेश्या, जीव के शुभपरिणाम, अनुत्तर मृदुता, अनुत्तर लाभ्य। द्रव्य से अल्प उपाधि और

स्वर्ग आदि सुखोनी आ-कृत्वा रहित होता आ लोक परलोक संबंधी प्रतिज्ञा रहित होता. ससाररूपी महा-
 सागरना पारगामी होता कर्मोने भूणभाषी व छेहवोने तत्पर यधने विररता हुता आ प्रभाषे विररता भगवानने
 डोर्ध पषु स्थाने प्रतिबन्ध न इतो अनुत्तर ओटले के लोकोत्तर-सर्वोत्कृष्ट ज्ञान, अनुत्तर दर्शन (एव आदि पदार्थोनुं
 श्रद्धान) अनुत्तर गार प्रकारना अनशन आदि तप, सत्तर प्रकारना अनुत्तर सथम, अनुत्तर उत्थान-उद्यम. अनुत्तर
 कर्म-क्रिया, अनुत्तर भण, -शारीरिक शक्तिने उपचय, अनुत्तर वीर्य-आत्मजनित सामर्थ्य, अनुत्तर पुरुषकार-पुरुषार्थ
 अनुत्तर पराक्रम-शक्ति अनुत्तर क्षमा। (सामर्थ्य होवा छता पषु भीष्मके डडेन अपकार सहन करवा) अनुत्तर रुकित,

तेषु दशसु महास्वप्नेषु एकं च खलु महान्तं=विशालं घोरदीप्तरूपधरं भयङ्कररूपधारिणं तालपिशाचं= तालवृक्षवदीर्घतरपिशाचं पराजितम्=स्वस्य पराक्रमेण अभिभूतं, स्वप्ने दृष्टा प्रतिबुद्धः=जागरितः। इति प्रथमः स्वप्नः। एवम्=अनेन प्रकारेण एकं च खलु महाशुक्लपक्षम्=अतिशुक्लपक्षयुक्तं पुंस्कोकिलं=पुरुषजातीयं कोकिलं दृष्टा प्रतिबुद्ध इति पूर्वेषु सम्बन्धः। इति द्वितीयः।

तथा—एकं च खलु महान्तं=विशालं चित्रविचित्रपक्षकं चित्रेण=चित्रकर्मणा विचित्रौ=विचित्रवर्णवन्तौ पक्षौ यस्य तं तथा भूतं बहुविधवर्णयुक्तपक्षवन्तं पुंस्कोकिलं दृष्टा प्रतिबुद्धः। इति तृतीयः। एकं च खलु महद्= विशालं सर्वरत्नमयं दामद्विकं=मालाद्वयं दृष्टा प्रतिबुद्धः इति चतुर्थः। एकं च खलु महान्तं श्वेतं=शुक्लवर्णं गोवर्गं= गोसमूहं दृष्टा प्रतिबुद्धः इति पञ्चमः। एकं च खलु महत्=दीर्घं पद्मसरः=रत्नमालाङ्कृतजलाशयं सर्वतः=समन्तात् कुसुमैर्वाप्यम् दृष्टा प्रतिबुद्धः इति षष्ठः। एकं च खलु महान्तं सागरम् ऊर्मित्रीचिसहस्रकलितम्- ऊर्मिणां=महातरङ्गणा वीचिनां=साधारणतरङ्गणां च सहस्रैः कलितं=युक्तं सुजाभ्यां=बाहुभ्यां तीर्णं=पारित दृष्टा

१. प्रथम स्वप्न—उन दस स्वप्नों में से पहले स्वप्न में एक विशाल तथा भयानक-भयंकर रूपवाले ताल-पिशाच (ताड के सदृश खूब लम्बे पिशाच) को अपने पराक्रम से पराजित हुआ देखा। २. द्वितीय स्वप्न—दूसी प्रकार एक अत्यन्त सफेद पंखों से युक्त पुरुषजाति के कोकिल को देखकर जागे। ३. तीसरा स्वप्न—एक विशाल चित्रविचित्र-चित्रों से विचित्र होने के कारण अनेक वर्ण के पखौवाले, अर्थात् नाना प्रकार के वर्णों से युक्त पंखवाले पुरुष-कोकिल को देखकर जागे। ४. चौथा स्वप्न—एक बड़े सर्वरत्नमय मालाओं के युगल को देखकर जागे। ५. पाँचवाँ स्वप्न—सफेद रंग की गायों के एक समूह को देखकर जागे। ६. छठवाँ स्वप्न—एक विशाल पद्मसरोवर को देखा, जो सब तरफ से कमलों से छाया हुआ था। ७. सातवाँ स्वप्न—हजारों लहरों से युक्त एक महासागर को अपनी सुजाओं से पार कर दिया देखा। ८. आठवाँ स्वप्न—तेज से

१ प्रथम स्वप्न-ते दस स्वप्न-ओमाथी प्रथम स्वप्न-मालागवाने ओक विशाल तथा भयानक रूपवाला तालपिशाच-ताडना केवा भूष दाया पिशाचने पोताना पराक्रमी पराजित थतो ज्येथो २. भीष्णुं स्वप्न-ओक प्रमाथे ओक अत्यन्त सफेद पाणोवाणा नरन्तरिना डेयदने ज्येथो. ३. त्रीष्णुं स्वप्न-ओक विशाल चित्रविचित्र-विचित्रोथी चित्रित डेवाने डारिष्णु अनेक रंगनी पाणोवाणा, ओटवे डे विवध प्रकारना वरुष्वाणी पाणोवाणा नर-डेयदने ज्येथो. ४. चोथु स्वप्न-ओक मोटा सर्वरत्नमय भाणओानी जेडी ज्येथ प. पाथ्युं स्वप्न-सफेद रंगनी गायीना ओक समूहने ज्येथो ६. छठु स्वप्न-ओक विशाल पद्मसरोवरने ज्येथुं जे आरे भाण्युओे कभोथी छवायेथुं ६पुं. ७ सतसु स्वप्न-डंभरे। भोणओोवाणी ओक महासागरने पोतानी भुणओोथी पार करता पोताने ज्येथ. ८. आठसु

प्रतिबुद्ध इति सप्तम । एक च गन्तु तेजसा वदन्त्य द्वीप्यमानं महान्तं=विशाल दिनकरे=सूर्ये इन्द्रा प्रतिबुद्धः
 इत्यष्टमः । एकं च गन्तु महान्त-हरिवैदूर्यर्णामेन-हरिः=पिप्पलवर्णो माणो, वैदूर्य=नीलवर्णो मणिः, तदपसम्ब
 न्निर्नोर्णोतिव भ्रामा=कान्तिर्यस्य तद् हरिवैदूर्यर्णामं तेन तयायुतेन निजकेन=स्वकीयेन अभ्रमण=आतडी'
 इति मायामयिदेन, मानुषोत्तरं पर्वतं सर्वतः समन्तान् आवेष्टितपरियेष्टितम्=आवेष्टितं=सामान्यतोवेष्टितं परि
 चष्टितम्=सर्वत्रावेष्टित इन्द्रा प्रतिबुद्ध इति नवम । तथा एकं च गन्तु महान्त मन्दरे=मन्दरचूलिकायाः उपरि=
 मरुचुक्रोपरि विहासतनुरगत=भेद्युसिहासनास्थितम् आत्मान=स्यं स्पन्दे इन्द्रा प्रतिबुद्ध इति दशमः ॥४०९८॥

मूयम् पृषति ण इत महायुष्मिाण के महाबल पृषविचिविसेस मन्वृषि सो कृषिज्जइ-

जन्मं समयेण मगवया महावीरेण युवित्ते महायारादिषुल्लवरे तान्पिसाप परानिए दिट्ठे तेणं मगव
 मोरणिज्जं कम्म म्मभओ उग्याइस्सइ १ । जं णं युविच्छिपपत्तगे पुसकओइले दिट्ठे, मगवं सुक्क क्षामोत्तरए
 विहरिस्सइ २ । जं ण विमविचिच परत्तग पुसकओइले दिट्ठे, तेणं मगवं ससमयपरसमइय दुत्ताल्लसंगे गणिपिट्ठग
 भागविसइ परविसइइ इतिसइइ इतिसइइ ३ । जं ण सत्त्व रयणासयं दामदुगे दिट्ठ
 तय मगव भगारअम्मं अक्कागयस्समति बुचिइं वम्मं भापविसइइ ४ । जं णं सेयगोक्कगो दिट्ठो, तेणं वाउअण्णा
 इअं सप ठाविसइइ ५ । जं णं पउमसरं दिट्ठं तेणं मक्खववाणमतनइसिय वमाप्पियपि चउअ्विरे देवे
 भागविसइइ ६ । जं णं मरासापरा युयाइं तिण्णो दिट्ठो, तेणं अक्कादीय अक्कवदग्गं वाउतं संसारसागरं
 तारिसइइ ७ । जं ण तयया जयया ण्णिपरा दिट्ठो, तेणं अणुत्तरं कसिणं पडिपुण्णं अक्काइयं निरावरण
 क्कवत्तराणाणं देणं समुप्पज्जिसइइ ८ । जं षं हरियइत्तियवनामेण त्तियणेणं अनेव माणुसुत्तरे पव्वए सक्खओ

नागग्नयमान चिगाइ मयं को वत्ता । ० नौर्त्ता स्वम--ठरि (विगलपूर्ण की)) मणि और वैदूर्य (नीलेवर्ण की)
 मणि के वर्ण के समान कान्तिरावी अपनी आंत-मोठड़ी से मानुषोत्तर पर्वत को चारों तरफ से सामान्य
 रूप से आवेष्टित प्रार बिणो स्य से परिवेष्टित देखा । १० वृत्सो स्वम--यावान् मेरु पर्वत की चोटी पर
 श्रेष्ठ विहासन पर स्थित, अपने भाप का देखा । यह वृत्स स्वम देवस्वर मगवान् जायुत हुए ॥४०९८॥

४०९-तेजसी अन्ववभयान विद्यान स्यन्ति जेसा. ६ नयसु स्वप्न-हरि (निगल वजु नी) मणी जने वैदूर्य (नील-
 वर्णनी) मणीया वजु लेकी क्षान्तिमणो योत्तान अंतरेपरी भी भाणुयोत्तर अर्त्तने भारे तरेकी सामान्यदरे वी ट्ठारिरे
 अने विमवरे परिवेष्टित जेले १० इअसु स्वम-ज्जे, मकान मरे परत्तनां शिअइ पर के इत्तिसिहने योत्तान
 जीपयया मया का इव अत्ता जेअने मगवयन जेअया ॥ ४०९८-८

यत्सल्लु श्वेतगोवर्णो हृष्टस्तेन चतुर्वर्ण्यैर्हर्म्यं संघं स्थापयिष्यति ५। यत्सल्लु पशसरो हृष्ट तेन भवन्नपति
 म्यन्तरयौतिषिकं वैमानिकेति चतुर्विधान् देवान् आस्थापयिष्यति ६। ६। यत्सल्लु महासागरो मुनाभ्यां तीर्णो
 हृष्टः, तेनानादिभ्यन्तद्वयं चतुरन्तर्सागराणां वरिष्यति ७। यत् सल्लु तेजसा ज्वलन् विनकरो हृष्टः, तेन
 भवन्तमनुजर्तं हृष्टं प्रतिपूर्णाभ्याहृत निराकरणं केवलचरानन्दकर्मं समुप्यत्स्यते ८। यत्सल्लु हरिवैतुर्यवर्णभेन
 निजकेनाशेष_मानुषोत्तरः पर्वत_सर्वत_समन्वाद् आबोष्टितपरिबोष्टिता हृष्टः, तेन मगवतः कीर्तिकर्णद्वन्द्व
 भ्योकाः सदचमनुप्रासुरे लोके गास्यते ९। यत्सल्लु मन्दरे पर्वते मन्दरचुम्बिकाया उपरि सिंहासनवरागतः

पर्वे इम प्रकार दो तरह के धर्मों की कल्पन करेंगे। (५) श्वेत रंग की गायों का समूह देला, उससे मगवान्
 चतुर्वर्ण्यं से युक्त संघ-भ्रमण, भ्रमणी, भ्रातृक और धार्मिकारूप चार तीर्थ-की स्थापना करेंगे। (६) पर्वों से
 युक्त सरोवर दलने से मगवान् भवन्नपति, व्यन्त, श्यौतिषिक और वैमानिक-इन चार प्रकार के देवों को
 मरुण्य करेंगे। (७) महासागर को मुनाओं से पार किया देला, इससे मगवान् अनादि अनन्त चारगति
 रूप संसार समुद्र को पार करेंगे। (८) तेज से जागबल्यमान सूर्य को देलने से मगवान् को अनन्त, अनुचर,
 प्रतिपूण, भ्रमणियाती और भावरब रहित श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलज्ञान प्राप्त होंगे। (९) हरि मणि और
 वैदूर्य मणि की आगा के समान अपनी आंत से मानुषोत्तर पर्वत को आवेष्टित और परिबोष्टित देला, उसके
 पक्ष स्वरूप मगवान् की कौर्ति, एवं, शब्द और श्लोक देवों मनुष्यों-एवं असुरों सहित लोक में गये जायेंगे।
 (१०) मरु पर्वत पर मेरु की बोटी के ऊपर श्रेष्ठ सिंहासन पर अपने आपको बैठा देला, उसके फलस्वरूप

अपने धर्मोनु कथन कश्छे (१) वाक्यसे स्वप्ने श्वेतर अनी आयेना धवुने देववाधी अगवान् वास्वधुंवाला धर्मनी
 स्थापना कश्छे जेठे दे ताधु-आधी आबध अने भाविध रुपी वीरनी स्थापना कश्छे (६) छु स्वप्ने इभोलाबाध
 अश्वर देववाधी, अगवान् भवन्नपति, अश्वर लोकेतिषिक अने वैमानिक देवोने उपदेश आपश्छे (७) आतसे
 स्वप्ने भकोसागरने, स्वमुज्जो वदे पार कश्छे जेवाधी अनादि-अनन्त-अनुत्तरिदृष अथार अयुद्धने तेजो पार
 पाभ्ये (८) आइसे स्वप्ने तेजोमय सूर्यने जेवाधी अगवान्, अनन्त, अनुत्तर, प्रतिपूण, अप्रतिघाती, अने निराशरधु
 अथ केवणज्ञान अने देवणदर्शनने प्राप्त कश्छे (९) नवम स्वप्ने हरि नामना मणि अने विद्यम जेठे
 वै, अमृतीनी प्रतिघाणं शिवायना आंतराधी वादेबाधु विद्याजिह्व अनुरोत्तर आइने देववाधी अगवाननी कौर्ति,
 एवं गुण अने श्लोक देवा अनुक्ये अने अनुक्ये अने अनुक्ये स्वप्ने अथ पर्वतना निअर नि

आत्मा दृष्टः, तेन भगवान् सदेव-मनुजासुरायाः परिपदो मध्यगतः केवलप्रहसं धर्ममाख्याययिष्यति प्ररूपयिष्यति दर्शयिष्यति निर्देशयिष्यति उपदर्शयिष्यति । १० ॥ सू० ९९ ॥

टीका—'एएसि णं दसमहासुविणाणं' इत्यादि । एतेषा पूर्वोक्तानां भगवद्दृष्टानां खलु दश महास्वप्नानां कः= कथंभूतः महालयः=अतिमहान् फलवृत्तिविशेषः=फलोपस्थितिविशेषो भवति इति जिज्ञासायां स कथ्यते तथाहि— यत् खलु श्रमणेन भगवता महावीरेण स्वप्ने घोरदीप्तरूपधरः तालपिशाचः पराजितो दृष्टः, तेन भगवान् मोहनीयं कर्म मूलात् उद्घातयिष्यति=उन्मूलयिष्यति १ । इति प्रथमं महास्वप्नफलम् १ । यत् खलु शुक्रपक्षकः= श्वेतपक्षवान् पुँस्कोकिलो भगवता दृष्टः, तेन भगवान् शुक्रध्यानोपगतः=शुक्रध्यानानवस्थितः सन् विहरिष्यति २ । इति द्वितीयम् ॥ यत् खलु चित्रचित्रपक्षकः पुँस्कोकिलो भगवता स्वप्ने दृष्टः, तेन भगवान् स्वसमयपरसमयिकम्

भगवान् देवों, मनुष्यों और असुरों सहित समवसरणपरिपद् के मध्य में विराजमान होकर केवलियों द्वारा प्ररूपित धर्म का उपदेश करेंगे, धर्मकी प्रज्ञापना, प्ररूपणा, दर्शना, निर्दर्शना और उपदर्शना करेंगे ॥ सू० ९९ ॥ टीका का अर्थ—भगवान् द्वारा देखे गये इन पूर्वोक्त दश महास्वप्नों का क्या अतिमहान् फल होगा? इस प्रकार की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) होने पर उसफल को कहते हैं । यथा—

(१) श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्न में जो भयंकर और प्रचण्डरूप वाले ताड़ जैसे पिशाच को पराजित किया देखा, उससे भगवान् मोहनीय कर्म को मूल से उखाड़ेंगे । यह पहले महास्वप्न का फल है । (२) भगवानने जा श्वेत पंखीवाला पुरुष-कोकिल देखा, उससे भगवान् शुक्रध्यान में लीन होकर चित्रेंगे । यह दूसरे महास्वप्न का फल है । (३) भगवानने जो चित्र-चित्र पंखीवाला पुरुषकोकिल स्वप्न में देखा,

उपर आइव थयेव योताने जेवाथी लगवान, देव-मनुष्य अने तिर्यचोर्ता र स्थिदभा जेसी-डेवला प्रद्विपित धर्मने उपदेश करथे, ने धर्मनी प्रज्ञापना-दर्शन-निदर्शन अने उपदर्शन-दि. पाथ रीति न.ति समभवथे. (सू०९९)

टीकाने अर्थ—भगवाने जेव्हां ते पूर्वोक्त दस महास्वप्नोपु शु अतिमहान् दृण भणथे? आ प्रकाशनी जिज्ञासा थता ते इणने आ प्रभाहे वषुधे छे—(१) श्रमणु लगवान महावीरे स्वप्नभा ने लयान्ठ अने प्रथउ इयवाणा ताउ जेवा पिथ चने इरान्थे जेने भाव जे छे के तेथी लगवान मोहनीय कर्मने भणभार्थो उपाडी नाथथे आ पडेवा महास्वप्नुं इण छे. (२) लगवाने ने श्वेत पंखीवाला नर-कोकिलने जेयो. तेने भाव जे छे के लगवान

स्वसिद्धान्त-परसिद्धान्तसमन्वित द्वादशार्थ-शादधानि अज्ञानि यस्मिन् स तथा तं गणित्पिटकं-गणिनाम्-आचार्याणां पिटक इव-रत्नापारमरूपेण य स तं भास्यापणिय्यति-सामान्यतया कथयिय्यति, तथा-प्रज्ञापणिय्यति-वचन पर्यायेण नामादिभेदेन वा कथयिय्यति, तथा-प्ररूपणिय्यति-स्वरूपतः कथयिय्यति, तथा-दर्शयिय्यति-उपमानोपमेयमावादिमि कथयिय्यति, तथा-निदर्शयिय्यति-परातृकमया मध्यकस्यापारोक्षया वा निश्चयेन पुन पुनर्दर्शयिय्यति, तथा-उपदर्शयिय्यति-उत्पन्न-निगमनाभ्यां सकलमयाभिमायतो वा निश्चङ्कं श्रिय्युद्धो व्यवस्था पथिय्यति इति तथीयम् ३। यत् सकल सर्वैतलमयं दामादिकं इष्टं, तेन मगवान्-भीचीरस्वामी आचार्यम्-शुद्धधर्मम् अन्तगारधर्म-मुनिपरममिति द्वित्रिभिः-द्विप्रकारं धर्मम् आस्थापणिय्यति-सामान्यतया विज्ञेयतया च कथयिय्यति, तथा-प्रज्ञापणिय्यति, प्ररूपणिय्यति, निदर्शयिय्यति, उपदर्शयिय्यति, इति चतुर्थम् ४। यत् सकल श्वेत

उत्तसे मगवान् स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त से युक्त शारद अर्थात् गणित्पिटक (आचार्यों के लिए रत्नों की पेटो के समान आचारार्ग आदि) का सामान्य विज्ञेयस्व स कथन करेंगे, पयापयवाची शब्दों से अपना नामादि यैवों से प्रज्ञापन करेंगे, स्वस्व स प्ररूपण करेंगे, उपमान-उपमेय मात्र आदि दिवाकर कथन करेंगे, पर की श्रुतकम्या से या मध्यमीचों के कल्याण की अपेक्षा से निश्चयपूर्वक पुन पुनः द्विसारोंगे, तथा उपनय और निग मन के साथ अथवा समी नयों के दृष्टिकोण से, श्रियों की बुद्धि में निश्चङ्क स्व से प्रसाँगे यह तीसरे स्वस का फल है। (४) मगवान् ने समस्त रत्नोंवाले मालायुगल को देखा, उससे मगवान् शुद्धधर्म और मुनिपरम दो प्रकार के धर्म का सामान्य और विज्ञेयस्व से कथन करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे, प्ररूपण करेंगे, दर्शित करेंगे, निदर्शित करेंगे और उपदर्शित करेंगे यह चीजे महास्वम के फल है। (५) मगवान् ने जो श्वेत गोवर्ग (गायों का

शुद्धकमानां तीन श्रुति विद्येश्चे, आ गीला महास्वपन्त इण छे (३) अत्रवाने ले श्रित-विश्रित पाञ्चोवाजा नर-शेकवने ज्येथ, अत्रवान स्वसिद्धान्त अने परसिद्धान्तको युक्त पार अ ओवाणा अविपिटक (आचार्यानि आठे रत्नोनी पेटो अमान आचारार्ग आदि)तु कामान्य विज्ञेयश्रुती इकन करेशे, परमिवाची श्रुतीवाची अथवा नाथादि सेठोची प्रज्ञापन करेशे, स्वश्रुती प्रश्रुषा करेशे, उपमान उपमेय आन आदि जटावीने इकन करेशे, गीलानी अतुत पावो हे जल लोवाना इकालुनी अपेक्षाके निश्चयपूर्वक इरी इरीने अत्तकेशे, तथा उपनय अने निअभगनी आथे अथवा जथा नथोना दृष्टिकालुची, श्रियोनी बुद्धिमां नि-श्रुती प्रश्रुषा आ नील स्वपन्तु इण छे (४) अत्रवाने सभस्त रत्नोवाजी अणुनी जेरी जोरु तेना काव जे छे हे अत्रवान शुद्धधर्म अने मुनिपरम अने वे प्रशस्त पत्रतु आमान् अने विज्ञेयश्रुती इकन करेशे, प्रज्ञापन करेशे प्रश्रुषा करेशे, इदित करेशे, निदर्शित करेशे, आ श्रुथया अदर्शयन्तु इण छे

गोवर्गो दृष्टः, तेन चतुर्वर्ष्याऽऽकीर्णं=चत्वारोवर्षाश्चातुर्वर्ष्य=श्रमण-श्रमणी-श्रावक-श्राविकाश्च, तम आकाश-युक्तं संघं स्थापयिष्यति, इति पञ्चमम् ५। यत् खलु पत्रसरो दृष्टं तेन भगवान् भगवन्पतिव्यन्तरज्योतिषिक चैमानिकेति चतुर्विधान् देवान् आख्यापयिष्यति-प्रज्ञापयिष्यति, दर्शयिष्यति, निदर्शयिष्यति उपदर्शयिष्यति-इति षष्ठम् ६। यत् खलु महासागरो भुजाभ्यां तीर्णो दृष्टः, तेन अनादिकम् आदिर्वर्जितम् अनवदशम्=अन्तरहितं. चातुरन्तसंसार-सागरं=चतुरर्गतिकसंसाररूपसमुद्रं तरिष्यति, इति सप्तमम् ७। यत् खलु तेजसा ज्वलन् दिनकरः=सूर्यो दृष्टः, तेन भगवतः श्रीवीरप्रभोः अनुत्तरम्=प्रधान. कृत्स्न-सकलम्-अखण्डम्-सर्वपदार्थावगाहनात् केवलवज्जानदर्शनमपि कृत्स्नं व्यपदिश्यते, एवं प्रतिपूर्णम्=सकलाज्ञसम्पन्नम्, अव्याहृतम्=व्याघ्रातवर्जितम्, निराकरणम्-आवर्णरहितं च केवलवज्जानदर्शन-केवलवज्जानं-केवलवज्जानं च समुत्पत्स्यते-इत्यष्टमं ८। यत् खलु हरिरेडुर्वर्ष्याभिन निज-

खंड) देखा, उससे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चार प्रकार के संघ की स्थापना करेंगे यह पाँचवें महास्वप्न का फल है। (६) पर्वों से युक्त जो सरोवर देखा, उससे भगवान् भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक और चैमानिक, इन चार प्रकार के देवों को सामान्य-विगौरूप से उपदेश करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे, परलपण करेंगे, दर्शित, निदर्शित तथा उपदर्शित करेंगे, यह छठे महास्वप्न का फल है। (७) भगवान् ने महासमुद्र को भुजाओं से तिरा देखा, उससे आदि तथा अन्त से रहित, चार गतिवाले संसार रूप समुद्र को पार करेंगे यह सातवें महास्वप्न का फल है। (८) भगवानने तेज से देदीप्यमान मूर्य देखा. उससे भगवान् को प्रधान, सम्पूर्ण एवं समस्त पदार्थों को जानने के कारण अकिल (कृत्स्न) प्रतिपूर्ण (सकल अंशोंसे युक्त) सब प्रकार को रक्षात्रटों से रहित तथा आवरण रहित केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति होगी यह आठवें

(५) लगवाने ने श्वेत गोवर्ग (गाथोनुं धथु) दृष्ट्युं तेना भाव अे छे डे साधु, साध्वी, श्रावक अने श्राविकाश्च थार प्रक्षरना सधनी स्थापना करेशे आ पाथमा महास्वप्ननु इण छे (६) पञ्चोवाणु ने सरोवर जेथुं, तेना भाव अे छे डे लगवान भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक, अने चैमानिक अे थार प्रक्षरना देवाने सामान्य विशेष इथरी उपदेशे आथथे, प्रज्ञापन करेशे, दर्शित, निदर्शित तथा उपदर्शित करेशे. आ छुगु महास्वप्ननु इण छे. (७) लगवाने महासागरने पोतानी भूलाओ वडे पार करेशे, तेना भाव अे छे डे आदिं तथा अन्तविनामा थार गतिवाणा संसार इथी सागरने पोते पार करेशे. आ सातमा महास्वप्ननु इण छे. (८) लगवाने तेज्ज्या देहिथमान सूर्य जेथे, तेना भाव अे छे डे लगवानने प्रधान, संपूर्ण अने सकण पद्दार्थोने ज्ञाथुवाने क्षरेशे अविडल (क्षुत्स्न), प्रतिपूर्ण (सकल अशोवाणु) अधी जतनी सजवठो निनानु तथा आवरथु विनानु डेवणसान प्राप्त थथे. आ आठमा महास्वप्ननु

केनात्रेण मनुष्योचर' पर्वतः सर्वतः समन्तात् आवेष्टितपरिवेष्टितो दृष्टः, तेन भगवतः-धीवीरस्वामिन कीर्ति
 वर्षेच्छम्भोका-उग्र-कीर्तिः-“अदो भयं पुण्यभागी” त्यादि सर्वभ्यापि साधुवाद , वर्षः=एकदिन्यापिसाधुवाद ;
 शब्दः=यर्षदिन्यापिसाधुवाद; श्लोकाः-उग्रैव एणवर्षेणं चैते स देवमनुजाऽधुरे=देवमनुज्याहुरसरित्तलोके=
 सुवने मनुष्यादिभिः गात्पठे-इति नभस्य ९। यह लख मन्दरे पर्वते मन्दरपूरिकाया उपरि सिंहासनवर गत
 आस्ता दृष्टः, तेन भगवान् भीवीरपद्म स देवमनुजाहुरायाः देवमनुज्याहुरसरितायाः परिपदः=समायाः मध्य
 गतः=मध्य विराजित सन् केवस्मिन्नन्व=सशमरूपितं वर्षेय आस्यापयिष्यति, प्रज्ञापयिष्यति, प्रख्यापयिष्यति,
 दर्शयिष्यति निदर्शयिष्यति, उपदर्शयिष्यति' एषां पदानां व्याख्यासिम्नेनेव यत्ने कृतेति सिंहावलोकन्यायेन-
 साऽपसोहनीयेति वक्ष्यम महात्मसफसम् १०। अष्ट०९५॥

भगवतः का फल है। (९) भगवान् ने जो हरिमणि और वैदूर्यमणि की कान्ति के समान अपनी आँत से
 मनुष्योचर पर्वत को सब तरफ से आवेष्टित और परिवेष्टित देला, उससे समस्त लोक में-देवों मनुष्यों
 एवं असुरों सहित सम्पूर्ण लोक में भगवान् की कीर्ति का गान होगा। वर्ष, शब्द और श्लोक का भी गान
 होगा। 'अथा यह पुण्यशाली है' इत्यादि सभी विश्वाओं में व्याप्त होनेवाले साधुवाद-प्रशंसावचनों को कीर्ति
 कहते हैं। एक विश्वा में व्याप्त होनेवाला साधुवाद 'वर्ष' कहा जाता है। प्राची विश्वा में फैरने वाला साधु
 वाद शब्द कहा जाता है। और जिस स्थान पर व्यक्ति हो, वही उसके गुणों का बन्दन होना श्लोक
 कहा जाता है। यह नीचे महात्मस का फल है। येक पर्वत पर, येक पर्वत की धूमिका के ऊपर उषम सिंहासन
 पर अपने माफको बैठा देला उससे भगवान् वीरपद्म देवों मनुष्यों एवं असुरों सहित समा के मध्य में
 विराजित होकर सर्वत्र मरूपित वस का कपन, प्रज्ञापन, प्रख्यापन, प्रख्यापन, प्रख्यापन, निदर्शित और उप

द्वय छे (६) भगवाने ने बीटा रज्जय जने वैदूर्य भवनी कान्ति जेबा योवाना ज्वांतरशशयी मनुष्योचर परीतने
 अभी तपशशी आवेष्टित जने भस्विष्टि जेथे, तेना भाव जे छे हे शक्य लोकभा देवा मनुष्ये जने अभ्युदय अद्वित
 स पूर्व लोकभा जत्राननी कीर्ति प्रशये वरुं शक्य जने श्लोकभा पद्य गीत जयथे। अहा ज्वा उपदेशणी छे”
 इत्यादि अहनी दिवाजिभा प्रशरनाय साधुवाद-प्रशंसावचनोने कीर्ति, कहे छे जेक विश्वाभा प्रशरनाय साधुवादने
 “वर्ष” कहे छे अर्धी दिवाभा होलावनाय साधुवादेन कण कहे छे जने जे स्थाने व्यक्त होव त्याव तेना उज्वाना
 पञ्चाय भाव तेने श्लोक” कहे छे ज्वा नवभा अहास्वप्न छे (१०) शिबे पर्वत पर शिबे पर्वतना शिबेर उपर
 उग्रतम सिंहासन पर पीतने ज्वानेवा जेबा, तेना भाव जे छे हे भगवान् अकालीन स्वामी देवा मनुष्ये जने
 असुरे। अद्विजनी अर्धभा निरकलने सर्वत्र प्रकृति प्रथम ज्ञान प्रकाश, प्रखण्ड शक्ति, जपने इजित जने उपदेशित

मूलम्—तए णं तस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स तवसंजममाराहेमाणस्स वारसेहि वासेहि तेरसेहि परखेहि वीइकंतेहि तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे, तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दममीपक्खेणं सुव्वण्णं दिवसेणं विजएणं, मुहुत्तेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पारणगामिणोए छायाए वियत्ताए पोरिसीए तत्थ गौदोहियाए उकुड्डयाए निसिज्जाए आयावणं आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं उट्टजाणु अहोसिरस्स झान्णकोट्टोवगयस्स सुक्कञ्जाणं तरियाए वट्टमाणस्स निव्वाणे कम्मिणे पडिपुण्णे अब्बाहए निरावणे अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे ।

तए ण स भगवं अरहा जिणे जाए केवली सव्वण्णु सव्वदरिसीसदेवमणुयासुरस्स लोयस्स आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं सुतं पीयं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोरुम्मं लवियं कहियं माणसियंति सव्वे पज्जाए जाणइ पासइ । सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

तए णं मणस्स भगवओ महावीरस्स केवलवरणाणदंसणुपत्तिसए सव्वेहि भवणवइ—वाणमंतर जोइसिय—कक्कहे उप्पिजलगाभूए यात्रि होत्था ॥सू०१००॥

छाया—ततः खलु तस्य श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तपः संयममाराधयतः द्वादशसु वर्षेषु त्रयोदशसु पक्षेषु च व्यतिक्रान्तेषु त्रयोदशस्य वर्षस्य पर्याये वर्तमानस्य यः सः ग्रीष्मणां द्वितीयो मासः चतुर्थः पक्षः वैशाखशुद्धः, तस्य खलु वैशाखशुद्धस्य दशमीपक्षे सुव्रते दिवसे विजये मुहूर्ते हस्तोत्तरासु नक्षत्रे योगसुपगते

दर्शित करेंगे। इन पदों की व्याख्या इसी सूत्र में पहले की जा चुकी है। अतः सिंहावलोकन—न्याय से वही व्याख्या देखलेनी चाहिए। यह दमवें महास्वस का फल है ॥सू०९९॥

मूल का अर्थ—‘तएण’ इत्यादि। उस समय श्रमण भगवान् महावीर को तप संयम की आराधना करते हुए बारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो चुके थे। तेरहवाँ वर्ष चल् रहा था। ग्रीष्म ऋतु का दूसरा महीना था, चौथा पक्ष—वैशाख शुद्ध पक्ष था। उस वैशाख शुद्ध पक्ष की दसमी तिथि थी। सुव्रत दिवस,

इसमें जो पदोनी व्याख्या आल सूत्रमां पडिवा इरायेव छि. तेथी सिंहावलोक्कन—न्यायथी छ्णामुओच्चे ओण व्याख्या नोए देवी नोएओ. आ हसमा मइलवपननु इण छि. ॥सू०९९॥

मूलनी अर्थ—‘तएण’ इत्यादि श्रमणु भगवान् महावीरने तप संयमनी आराधना इस्तां, आर वर्षं अने तेर पथवाड्या व्यतीत थथा इता, ने तेरेसु वर्षं आलतुं इत्तं. ग्रीष्मऋतुने आल्ले भइत्तेने, योथुं पथवाडिडुसु

प्राचीनाभिनयान्यां छायायां व्यङ्ग्यायां गौक्यायां तत्र गौरीशिक्या तच्छुद्ध्या आतापनाम् आतापयतः
 पठेन मत्तेनाज्यानकेन कर्षनान्नाचः क्षिरसो ध्यानकोष्टोपगतस्य शुक्लध्यानान्तरिकायां वर्तमानस्य निर्वाणं कुत्स
 प्रतिपूर्णाभ्याइव निराश्रयमन्तमनुचरं केशवन्नादानदर्शनं समुत्पन्नम् ।

ततः लक्ष्मणं स भगवान् अर्चन् अिनो जातः सर्वेश्वरी सर्वेश्वः सर्वेश्वरीं सदेवमनुजासुरस्य लोकास्य आगतिं
 गतिं स्थितिं रूपकमनुपपातं शुक्ल पीठं कूर्चं प्रतिसेवितुम् आधिक्यं रत्नं कर्म लपितं कथितं मानसिकमिति सर्वान्
 पर्यायान् जानाति पश्यति । सर्वभोगे सर्वधीवानां सर्वमावान् जानानः पश्यन् विहरति ।

विजय सुहृत्, उचरा फाल्गुनी नक्षत्र का योग था। छाया पूर्ण दिखा की और इस रही थी। व्यक्त नामक
 पौकरी थी अर्थात् दिन का वीसरा पहर था ऐसे समय में भगवान् गौरीश नामक उरुहू आसन से स्थित
 होकर आतापना छे रहे थे। वीचिहार पण्यक्त (पेछे) की तपस्या थी। मनु ने दोनों घुटने ऊपर कर
 रखे थे और मल्लक नीचे की ओर डुका रखता था। स्थानरूपी कोष्ठ में प्राप्त थे। शुक्लध्यान की आन्तरिका में
 वर्तमान थे। उस समय भगवान् को मुक्ति के हेतुयुक्त, अचिक्रम, प्रतिपूर्णा, अक्याबाध, शनावरण, सन्त तथा
 मनुष्य केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। तब यह सत्त्वान् अर्चन् और जिन हो गये। केवली,
 सर्वज्ञ और सर्वेश्वरी हो गए। देवीं मनुष्यों और आसुरों सहित सोरु की भागति, गति, स्थिति, व्यवन तथा
 उपपात की और साथे, पीये, किये, सेवन किये को, प्रकट कर्म को, पारस्परिक सापण को, कथन को,
 मनोगत साध को, इस प्रकार सब पर्यायों को जानते और देखने लगे। समस्त लोक में, सब नीचों के

जेठके वैशाख शुद्ध चतुर्थी की थी। ते दिवसे शुद्ध पक्षमें इशमे दिवस आनी रबी होता। साथे साथे दिवस पक्ष साथे,
 विष्णुसुहृत् अने उचराशरभुनी नक्षत्रने योग होता दिवसने नीचे प्रकर आबतो होता। आ समये भाजवान्,
 जेठके नामध उरु आसन ब्रह्मवीरका होता ते आसने स्थित कर्म, 'आतापना' देवा होता। सुविधि आकाशना
 त्याज साथे तेभसे उभनी तपस्या आहरी की थी। मनुके जने घुटके उपर घेताना साथ शक्यतां कर्ता अने मनु
 नीचे कुंज उ उरु ध्यानना शेषाभा भरतुव होता ते बभते तेजे शुद्धध्यानभां आशु कथेवा होता आ समये
 प्रभुने मुक्तिना हेतुयुक्त, अचिक्रम, प्रतिपूर्णा, अक्याबाध, शनावरण, सन्त, अने अदुत्तर जेवु देवमान-हेतुवकथन
 उरुय वरु देवण सान-देवज इत्यन उरुय कता अत्रवान् आहत्त एत-देवकी शक्यतां। तेजे सर्वेश्वर अने
 सर्वेश्वरी कथा तेजे देव-भगुव-विश्वेश्वर अधिकत वेदान्त एतेनी, आश्रयति, अति, स्थिति व्यवन, उपपात, विवेक

ततः सखु श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य केवलवरज्ञानदर्शनोत्पत्तिसमये सर्वैः भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिषिक-विमानवासिभिः देवैश्च देवीभिश्च उपयद्भिश्च उत्पत्तद्भिश्च एको महान् दिव्यो देवोद्द्योतो देवसन्निपातः देवफलकः उपिञ्जलकभूतथापि वभूव ॥सू०१०॥

टीका—'तए णं तस्स' इत्यादि । ततः=महास्वप्नदशकदर्शनानन्तरं खलु श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तपः संयमं=तपोद्वादशविधं संयमं सप्तदशविधं समाराधयतः=सम्यक् प्रकारेण कुर्वती द्वादशसु वर्षेषु त्रयोदशसु पक्षेषु च अर्थात्-सार्धपण्णमासाधिकेषु द्वादशवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु=व्यतीतेषु सत्सु, त्रयोदशस्य वर्षस्य पर्याये=संयमपर्याये वर्तमानस्य, यः सः ग्रीष्मर्णां=ग्रीष्मऋतुसम्बन्धी द्वितीयो मासः चतुर्थः पक्षो वैशाखशुद्धः, तस्य खलु वैशाखशुद्धस्य दशमीपक्षे=दशम्या तियौ सुव्रते=सुव्रतनामके दिवसे, विजये सुहर्ते, हस्तोत्तरासु नक्षत्रे-

सभी भावों को जानते हुए तथा देखते हुए विचरने लगे । तब श्रमण भगवान् महावीर के केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति के समय में, सब भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक तथा विमानवासी देवों और देवियों के आने-जाने से एक महान् दिव्य देव प्रकाश हुआ, देवोंका संगम हुआ, कल-कल नाद हुआ और देवों की बहुत बढ़ी भीड़ हुई ॥सू०१०॥

टोका का अर्थ—दस महास्वप्न देखने के पश्चात्, तप संयम की आराधना करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को दीक्षा अंगीकार किये, वारह वर्ष और तेरह पक्ष अर्थात् साढ़े वारह वर्ष और पन्द्रह दिन बीत जाने पर संयम-पर्याय का तेरहवाँ वर्ष चलता था, उस समय ग्रीष्मऋतु संबंधी दूसरा मास और चौथा पक्ष-वैशाख शुद्ध पक्ष था । उस वैशाख शुद्ध पक्ष की दशमी तिथि में, सुव्रत नामक दिवस में, विजय सुहर्ते में,

अर्थात्जाने ऋषुवा अने हेभवा लाग्या. हरेक छुवनो भान-पान आनिनी क्थिआयो पषु, तेभना गान दाश ज्थुआती जन्ती इती. प्रगटकर्म रइसुयकर्म, परस्परना लाषुओ, कथन अने भनोगत भावो विगेरेने तेओ ऋषुवा तेभज हेभता थका नियरवा लाअ्या. त्यारे श्रमणु लगवान महावीरने केवणसान-केवणदर्शन उत्पन्न थता भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषिक तथा विमानवासी देव-हेवज्जिओ आपवा लाग्या आ अवररवरने परिष्णामि, ओक भडान दिव्य देव प्रकाश पडवा लाग्यो हेवोना संघ 'कदा-कदा' अवाज करतो लगवानना दर्शन करवा लीड करी रह्यो छतो. (सू०१००)

विशेषार्थ—भगवानने उत्र तप-संयमनी आराधनाना अते, साडभार वर्ष अने पहर दिवसनो वभत पूरो थयो इते। आ सयमनी छेडवी अवस्थामा, तेभने जे हथ मडास्वप्नोने। अनुभव थयो इते, ते तेभना निरावरणीय गानना उवाडनी पूर्वभूमिकाउ दिवदर्शन इतु. आ स्वप्नो सुभद अनुभवना आगाडीये इता. आ स्वप्नोलाह पषु

ततः त्वत्तु स भगवान् अर्हन्=अशोकादिप्रातिहार्ययोग्यः जिनि=रागद्वेषजेता जातः, पुनः कादृशा जात इत्याह-केवली=केवलज्ञानसम्पन्नः, सर्वज्ञः=सर्वपदार्थज्ञः, सर्वदर्शी=सर्वपदार्थदर्शकः, तथा-सदेवमनुजासुरस्य लोकस्य आगति-भवान्तरात् गति-भवान्तरे स्थिति च्यवनं=देवलोकात्तियगनेरेषु अवतरणम् उपपातं=मनुष्यतिर्यगायुः, समाप्त्यनन्तरं देवचोक्रं नरके वा उत्पत्तिम्, भुक्तं=स्वादितमोदनादिकं पीतं=पानविषयीकृतं जलदुग्धादिकम्, कृतं=चौर्यादिकं प्रतिसेवितं दोषादिकम् आविष्कर्म=प्रकटकृतं रहः कर्म=प्रच्छन्नकृतं, लपितं=परस्परभाषितं कथितं= कंचिज्जन प्रति एकाकिनोक्तम्, मानसिकम्-मनोगतं दुःखसुखादिकम् इति-एतत्प्रकारान् सर्वान् पर्यायान् जानाति=

उसी समय भगवान् को निर्वाण-मोक्ष का कारण, कृत्स्न-सकल पदार्थों को जानने के कारण सम्पूर्ण या अखण्ड, प्रतिपूर्ण-समस्त अंशों से युक्त, अव्याहत-व्याघातो से रहित, आवरणहीन, अनन्त-अनन्त वस्तुओं को जानने-वाला तथा अनुचरसर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ ।

तत्र भगवान् अर्हन् अर्थात् अशोकदृश आदि आठ प्रातिहार्यों के योग्य तथा जिन-राग-द्वेष के विजेता हो गये । और केवली=केवलज्ञानसम्पन्न, सर्वज्ञ-पदार्थों के ज्ञाता, तथा सर्वदर्शी=सभी पदार्थों को देखनेवाले हो गये । तथा देवों, मनुष्यों और अशुरों सहित लोक की आगति=भवान्तर से आना, गति-भवान्तर में जाना, च्यवन देवलोक से तिर्यक् और मनुष्य भगवों में अवतरित होना, उपपात-मनुष्य या तिर्यक् के भव की समाप्ति के पश्चात् देवलोक या नरक में उत्पन्न होना, भुक्त-खाया हुआ औदन आदि, पीत-पिया हुआ जल, दूध आदि, कृत-किया हुआ काम-चोरी आदि, प्रतिसेवित-सेवन किया हुआ दोष आदि, प्रकटकर्म, गुप्तकर्म, लपित-पारस्परिक भाषण, कथित-किसी के प्रति अकेले द्वारा किया हुआ कथन, मानसिक-मन के सुखदुःख

डरी, देवता आत्म अवलोकने एवं स्थिर थाय छे आ क्रियाओ पड़ेला अने धीन शुकदधानना पाया उपर थाय छे आ धीन पाथाना अत समये, अने धीन पाथाना पड़ेला समये, निर्वाणानु कारणुष्ठ, समस्त अशोधी युक्त, अव्याहत अने आधातो रहित, निरवरणुवाणुं अनंत वस्तुओना सूक्ष्म पथोथो अने तेनी इपांतर अवस्थाओने भवुवाणु, अनुत्तर देवण शान-देवददर्शन, भगव नने प्राप्त थयुः आ प्राप्त थतां अशोकदृश आदि आठ मडा प्रति-क्षयो योग्य भगवान थया. राग-द्वेषेना क्षय करवावाणा 'जिन' थया देवज्ञान संपन्न, सर्व पदार्थोना ज्ञाता अने द्रष्टा थया. सर्वजगतवासी ज तु एवोनी सकल अवस्थाओ अने तेना रुचांतरोने भगवान भवुवा-देषवावाणा थया. तेसज ७८ पथोथोना सूक्ष्म भावोने पणु भवुवा-देषवावाणा थया. पैताने शानुणु अने निबनही स्वभाव, जे अन ता-क्षाधी अप्रगत छेता. ते प्रगत थयो. आने क्षीधि अनंत सुभ जे ढकाइ रहैलुं छतुं ते अक्षर आण्यु; पैतानी दृष्टि

तए णं से समणे भगव महावीरे तओ पडिणिवखमइ, पडिणिवखमिचा जणवयविहारं विहरइ । तेणं कालेण तेणं समएणं पावापुरीणामं णयरी होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धा । तत्थ णं पावाए पुरीए सीहसेणो णाम राया होत्था, महयाडिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे । तस्सणं सीहसेणस्स रण्णो सीलसेणा णामं देवी, इत्थिवालो णामं पुत्तो जुत्तरया होत्था । तीए णं पावाए पुरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सव्वोउय पुफ्फ फलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे महासेणं नामं उज्जाणे होत्था । तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महासेणे उज्जाणे समोसठे ॥सू०१०१॥

छाया—ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीर उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः आत्मानं लोकं च अभीसमीक्ष्य योजनविस्वारिण्या स्व स्व भाषा परिणामिन्या वाण्या पूर्वं देवेभ्यः पश्चात् मनुष्येभ्यो धर्ममाह्वयाति । तत्र भगवतः सा धर्मदेशना तीर्थकरकल्पपरिपालनाय जाता, न केनापि तत्र विरतिः प्रतिपन्ना । नो खलु एवं कस्यपि तीर्थकरस्य भूतपूर्वस्य, अतः एतच्चतुर्थमाश्रयं जातम् ।

मूल का अर्थ—‘तए ण’ इत्यादि । तत्पश्चात् उन उत्पन्न ज्ञान-दर्शन को धारण करनेवाले श्रमण भगवान् महावीरने आत्मा को और लोक को परिपूर्ण तथा यथार्थ रूप से जानकर, एक योजन तक फैलनेवाली और (श्रोताओं की) अपनी-अपनी भाषा में परिणत हो जानेवाली वाणी से, पहले देवों को और फिर मनुष्यों को धर्म का उपदेश दिया । वहाँ भगवान की वह धर्मदेशना तीर्थकरों के कल्प का पालन करने के लिए ही हुई । वहाँ किसीने विरति अंगीकार नहीं की । ऐसा किसी भी तीर्थकर के विषय में नहीं हुआ था । अत एव यह चौथा आश्रय हुआ ।

भूणोः अर्थ—‘तएणं’ उत्पन्नादि ‘उत्पन्न नाथु इंससुधरे अरुद्धञ्जि डेववी’ श्रमणु भगवान महावीर स्व अने परना यथार्थं भाषुङ्कार भन्था. आ शाननी साथे, तेभने अदौकिक दिव्यवाणीनी यथु प्राप्ति थइ आ वाथुीतु श्रवणु, ओक थोअन सुधी थइ थइतु इतुं तेभज आ वाषुीनो प्रलाव जेवो इतो के सर्व प्राषुीओ आ वाथुी द्वारा व्यक्त थता भावेने पोतपोतानी भाषाओभा समओ थइतता आ वाषुीद्वारा भगवाने पडेदां देवोने त्पारभाह मनुष्योने उपदेश आये आ धर्म देशना अगाठना तीर्थकरोना ‘पर परा’तुं यादान कस्वा पूरतीज निवडी आ धर्म देशनामां इअइ पइा एवे विरति वीधी नथी. आवो अनानव भगवान महावीरनी भाषतमां तेभज अनंत तीर्थ करोना व्यवहारमां पडेदांहेवेज भन्थो तेथी ते थोथु आश्रयं थयुं.

ततः तल्लु स भयको भगवान् महावीरस्ततः यतिनिक्रामदि, यतिनिक्राम्य जनपदविहारं विहरति, तस्मिन् काले तस्मिन् समय पावापुरी नाम नगरी आसीत् ऋद्धस्त्रिमितसमुद्रा। तत्र तल्लु पावायां पुष्या सिंहासेनो नाम राजाऽसीत् महाशिवन्महाशयन्यरपुरेन्द्रसारः। तस्य तल्लु सिंहासेनस्य राज्ञः शीलसेना नाम देवी, इतिपावो नाम पुषो युवराज आसीत्। तस्याः तल्लु पावायाः पुष्याः बरिः उधरवीरस्ये दिग्गमे सर्वधुक पुष्पकसमुद्रं तस्य नन्दनवनकालं महासेनं नामोद्यानमासीत्। तस्मिन् काले तस्मिन् समये भयको भगवान् महावीरो महासेने उद्याने समयस्ततः ॥१०१॥

टीका—“वृष णं से समणे भगवं” इत्यादि। ततः तल्लु स भयगो भगवान् महावीरः उत्सफ्रान्तदङ्गैर्न

उत्सवात् भयण भगवान् महावीर यौ से विहार करके जनपद में विचरने लगे। उस काल और उस समय में पावापुरी नगरी थी। वर ऋद्धन्कैवे-कैवे भवनों से युक्त, स्थिमित-स्पर्शक के मय से रहित और समुद्र धन-धान्य की समृद्धि से युक्त थी। उस पावापुरी नगरी में सिंहासेन नामक राजा था। वर महाशिवान्, महाशय्य, मेक और मोन्द्र पर्वत के समान श्रेष्ठ था। उस सिंहासेन राजा की शीलसेना नाम की रानी थी। इतिपाल नामक पुत्र युवराज था। उस पावापुरी के बाहर उधर-पूर्व दिशा में, सब ऋद्धुकी के पुष्पों तथा फलों से समृद्ध, रमणीय, नन्दनवन के समान प्रकाशवाला महासेन नामक उद्यान था। उस काल और उस समय ये भयण भगवान् महावीर महासेन उद्यान में पचारे ॥१०१॥

टीका का अर्थ—उस समय उत्पन्न हुए ब्रह्मदर्शन के धारक भयण भगवान् महावीरने आत्मा को-अपने त्प्राथमी अथवा अत्रयान भकावीर अतुष्टये विकार इतवां इत्प, पावापुरीनामनी नगरीमा पथाया आ नगरी नक-केटवे तेषां उवा, उवा भवना रेखेवा रिमित-केटवे इव-पर भुना भवती विभुष्य इती, समुद्र-केटवे धन अने भा-वशी समुद्र दयेती इत आ नगरीमा सिंहासेन नामतो राजा राज्य इत्पेता, आ राजा महाशिवान् आर, महाशय्य भिरे अने भवेन्द्र पर्वत समान श्रेष्ठ इतो आ अन्वने शील नामनी राजी इती, तेषञ्च इतिपाव नामतो पुत्र इतो अ्य पुने युवराज्य प्राप्त इरेष्ठ इत आ पावानगरीनी अकार, इत्तर पूर्व दिशायां केटवे प्रान्तोद्यमां यत्तुत्तुत्तुना पुष्या अने इयोषण्य जेठ समुद्र अने रमणीय उद्यान केष्ठ आ उद्याननी योषा नन्दनवन कपी इती, आ उद्यानतु नाम ‘महासेन’ शब्दार्थमां आऽतु इतु आकार अने आ उत्सये अत्रयान भकावीर आ उद्यानमा पथाया, (सं० १०१)

विद्योषा—आरका अत्रयान जेना यान उद्यानतु आरक अत्रय अत्रयान भकावीर, पंच अस्तिपाव्युय

धरः-उत्पन्नस्य=जातस्य=केवलज्ञानस्य दर्शनस्य च धर=धारकः आत्मानं=स्वं, लोकं=पञ्चास्तिकाय-
 लक्षणं च अभिसमीक्ष्य=यथावद् विज्ञाय योजनविस्तारिण्या=योजनप्रमाणप्रदेशव्यापिन्या स्व स्व भाषापरिणामिन्या=
 देवमनुष्यतिर्थभाषातया परिणतीभवन्त्या वाण्या=वाचा पूर्व=सर्वतः प्रथमं देवैःभ्यः=देवानुद्दिश्य प्रथात्=अनन्तरम्
 मनुष्यैःभ्यः=मनुष्यानुद्दिश्य धर्मम् आख्याति=उपदिशति । तत्र=सदेवाहुरपरनुजाया परिपदि भगवतो या धर्मदेशना
 जाता सा=धर्मदेशना केवलं तीर्थकरकल्पपरिपालनाय जाता, तत्र-धर्मदेशनायां केनापि जीवेन विरतिः=विरक्तिः,
 सावधव्यापारनिष्ठतिलक्षणा न प्रतिपन्वान्न स्वीकृता । एवम्=तीर्थकरस्य धर्मदेशनायां सत्यां कस्यापि विरत्य-
 स्वीकरणं खलु श्रीमहावीर्यीतिरिक्तस्य कस्यापि तीर्थकरस्य-जिनस्य परिपदि नो भूतपूर्वेषु-पूर्वं न भूतम् । अतः=

और पचास्तिकाय रूप लोक के स्वरूप को यथावत् जान करके, एक योजन प्रमाणप्रदेश तक व्याप्त हो जानेवाली,
 तथा देवो मनुष्यों और तिर्यचों की अपनी भाषा में परिणत हो जानेवाली वाणी से पहले देवों को
 लक्ष्य करके और फिर मनुष्यों को लक्ष्य करके धर्म का उपदेश दिया ।

सुरों, अहुरों और मनुष्यों की उस परिपद में भगवान् की जो धर्मदेशना हुई, वह धर्मदेशना केवल
 तीर्थकरों के कल्प-सर्पांश का पालन करने के लिए ही हुई । उस धर्मदेशना के होने पर किसी भी जीवने
 विरति-सावधव्यापार के परित्याग रूप विरति-अंगीकार नहीं की । तीर्थकर की धर्मदेशना हो और कोई भी
 जीव विरती अंगिकार न करे, यह घटना श्री महावीर के सिवाय किसी भी तीर्थकर की परिपद में कभी
 घटीत नहीं हुई थी । अर्थात् तीर्थकरों की देशना अमोघ होती है । उसे श्रवण कर कोई न कोई भव्य जीव
 अवश्य ही संयम अंगीकार करता है । परन्तु महावीर स्वामी की यह देशना इस रूप में खाली गई । यह

लोकने देखावाला था. जेनी वाष्ठा अेक योजन सुभी सलगाथ अेवा वाष्ठी-प्रलाचक अन्या. आ वाष्ठीनुं व्यापकपणुं
 आरे दिथायोमा असरित छुटु. भाषाना सर्व पुद्गल्लो अुही रीते इयातर थर् थडे, अेवा अलौकिक शब्दो
 इपि परमाशुभो आ वाष्ठीमा जोडवाथा छुता अने भाषाना पुद्गल्लोनेो उत्पाह-व्यथ अपाटाणध थर् रडेतं, धुवपषामं
 स्थिर थये जतां छुतां तेने वीधे आष्ठी वाष्ठी अथ इये नीकलती अने तेना वडुनतेा भवाड सलंगरीते अ डित थया
 विना, अेक योजन सुधी आरे भाजु वडेतो. आवो तो ते वजतनेा अमल वाष्ठी भवाड विचार इये गोडवाड, लजवानना
 अथमांशी नीकल्या डरते ! आवी वाष्ठी द्वारा, लगवान् डेवोने अलुलक्षी तेभने जोध आपता तेभज त्पार पछी भनुथ
 तरड लक्ष करी, तेभने अलुलक्षी धर्मनेो उपदेश आपता छुता. आ पडेल वडुली जे धर्म देशना आपवाभं आवी
 छुती, तेनु लक्ष्यांक डेवल अतीत तीर्थ डरोनी परंपराना पालन पूरतुंज छुटु. अगाडिना तीर्थ डरोनी वाष्ठी, डेवलज्ञान
 थया पछी छुटती छुती त्त्यारे, धष्ठा सुलभ जोधी लुवेा संसारथी विरकत थता छुता.

अभूत्सूर्यत्वाद् इतोः एतद् चतुर्थ-द्वन्द्वानामाद्यर्थाणां उपसर्गः १, गर्भरणम् २, स्त्रीतीर्थकरत्वात् ३, अमावित्वा-
परिपद् ४, कृत्वस्यापरकङ्गाः-अपरकङ्गाः (अपरमरुचिणीगमनम् ५, मूलरूपेणावतरणं चन्द्रसूर्ययोः ६, हरिपञ्चमोत्पत्तिः ७,
चमरोत्पातः ८, अष्टदशसिद्धाः, अस्यवेद्यु पूसा १०, इत्येतेषां मध्ये परिपद्भाववित्त्वकर्मं चतुर्थम् आभार्यं जातम् ।

वतः=परमैद्वनानन्तरं सत्त्वं स भ्रमणो भगवान् महावीरः, तथः=साकृत्समूहान्मनभदेशात् प्रतिनिक्रामयित्वा
प्रतिनिसर्त्तवति, प्रतिनिक्रम्य=प्रतिनिक्रम्य जनपद्विहारं-जनपदो-देशो विधीयतेविचर्यते यत्र विहारणेन-गमनेन
तत्रजनपद्विहारं यथास्थापयया विहरति=विचरति, यद्वा-जनपद्विहारं विहरति-करोति । घातुनामनेकार्षणत्वाद्यर्थान्तर
हृत्ते र्षं करोत्यर्थो बाध्यः । तस्मिन् काले तस्मिन् समये 'पापापुरी' नामनगरी अस्तीति-पापापुरी 'पा'
इति पापाद् पाठि-सतीति पापा, घृणोदरादित्वात्सिद्धिः । सा घातो घृते षेति पापापुरी एतन्नाम्नी नगरी,

अभूत्पूर्वं घटना र्थी । अत एव दस मच्छेरो में यह र्थीया बन्देरा है । दस मच्छेरे ये है--(१) उपसर्ग होना
(२) गर्भका संहरण होना (३) स्त्रीका तीर्थकर होना (४) अमावित परिपद् होना । (५) कृत्व का अपर
ईका नामक यावत्कीर्तिबर्ता राजभानी में जाना (६) चन्द्र और सूर्यका असली रूप में समनसरण में आना ।
(७) हरिचन्द्रकृष्ण की उत्पत्ति (८) घमर का उताव (९) एकसौ आठ जीवों का एक ही समय में सिद्ध होना
और (१०) असत्यों की पूजा होना । इन दस मच्छेरो में अमावित परिपद् रूप चौथा मच्छेरा हुआ ।

परमैद्वना के बाद यह समय भगवान् महावीर साकृत्स के मूल के निष्कटवर्ती प्रदेष्टसे निकछे और
निकट कर जनपद-विहार करने लगे-देश में विचरने लगे । उस काल उस समय में पापापुरी नामकनगरी थी ।

अमरु अत्रवना महावीरनी वशी उपरान्त वे वसुधाधोने प्राप्त करी गयीं न हवीं, वेतु मारुण, तेषा रीते अशुच्य
छि पक्षेण मरुतु ले के शोभा आरानु मरुतु प्राणम उरु यशु कतु पांचमां आरानु मरुतु । प्रभाव व्यभतो हतेतु
तेषी मरुतु प्रभावने पशु दुर्लभ शोभीयतु आशु शोषां शीतु मारुण ते वपतना लुचोनी वायुप्रत पशु तेषार न
दोष । न्य उपपदान न आशु शोष, त्वां प्रत्यङ्ग निमित्तो पशु शु करी गये । लुचोनी भूमि म विराजीयतुने शोभ
न शवाने मारुते, अत्रवतनुत शोषणीय कारुणी भूमिप्रभां पशवणी, ते नील अणी अशु कणी त्वा लुचोने, अकं-
रुनी उपपन्न पत्रव न्हि शोषने मरुते पशु, आ लुचोने, निरती इयावका मरुतेण पशु, मरुतु उपपन्न न शत
शाशु शोष, नीशु मरुतु त्वां पक्षेण लुचोनी अवस्थिति न्हि पाठी शोष, असे ते मरुतेण अतर्भूत क्षम करी रक्षा
दोष पशु लेकवात तो आनीत मरु छि के महावीरनी प्रथम मरुती, अत्रमरुतु अनी नही । आ घटनाने अमरुतु
शोष आशुते रीति शाशुओं नरुतुमां आशु छि

सेयं सम्प्रति पावापुरीतिकथ्यते, सा कीदृशी ? इत्याह—ऋद्धस्तिमितसमृद्धा—तत्र—ऋद्धा—नमःस्पर्शिवहुलप्रासाद-
 युक्ता बहुलजनसंकुला च, स्तिमिता=स्वपरचक्रभरहिता, समृद्धा=धनधान्यादिपरिपूर्णा, अत्र—त्रिपदकर्मधारयः।
 तत्र—तस्यां खलु पापायां पुत्रीं सिंहसेनो नाम राजा आसीत्, स कीदृशः ? इत्याह—‘महाहिमवन्महामलयमन्दर-
 महेन्द्रसारः—महाहिमवन्महामलयमन्दरमहेन्द्राणां पर्वतानां सार इव सारो यस्य स तथा—लोकमर्यादाकारित्वेन
 महाहिमवत्सदृशः, प्रसृतयशःश्रीर्तित्वेन महामलयतुल्यः, दृढ़प्रतिज्ञत्वेन कर्तव्यदिदर्शकत्वेन च मेरुमहेन्द्रसदृश

पाप से रक्षा करनेवाली होने से पापा कहलाती है। आजकल वह ‘पावापुरी’ है। वह नगरी कैसी थी,
 सो कहते हैं—वह ऋद्धा—आकाश को स्पर्श करनेवाले बहुत से प्रासादों से युक्त थी और जनों की बहुलता से
 व्याप्त थी, तथा स्तिमिता स्व-परचक्र के भय से रहित थी। और समृद्धा—धन-धान्य आदि से भरी—पूरी थी।

उस पावापुरी नगरी में सिंहसेन नामक राजा था। लोकमर्यादा की स्थापना करनेवाला होने के कारण महाहिमवान् पर्वत के
 सार के समान सारवाला था। लोकमर्यादा की स्थापना करनेवाला होने के कारण महाहिमवान् पर्वत के
 समान था। उसको यश—श्रीर्ति सर्वत्र फैली हुई थी, अतः महामलय पर्वत के समान था। दृढ़ प्रतिज्ञ होने
 तथा कर्तव्य रूपी दिशाओं का दर्शक होने के कारण मेरु और महेन्द्र के समान था। सिंहसेन राजा की

तीर्थ-क्षेत्रीणी वाष्पी अने देशनानो विचार प्रवास, अटलो अधि अनेधेय होय छे के, तेनु श्रवण थतां अन्य
 लोको अदृश्य सयम अने चिस्तीपण्णोने अ गिडार करे छे. जेम अथाढ मासतो वरसाढ अेधधारे वरसी, पृथ्वीनी अंद्दर
 पोतानो जद प्रवाड हाथल करी दे छे, तेम अगवान तीर्थ-क्षेत्रीणी वाष्पी पण्णु, ताती तेजवती होए अथुल विचारो ने
 क्षण्य वारमा पढावी नाणे छे. ने ससारना लावोने इगाववामा अन्य लुधने सक्षयक गने छे.

इस आश्चर्यरूप घटनाओंमा आ योथी आश्चर्यरूप घटना छे, जेने जैनशास्त्रोभां ‘अच्छेरा’ कहेवामां आवे
 छे. आ इश अच्छेराओ नीचि प्रभाण्णे छे— (१) पड़ेलु अच्छेइं अेके अगवान महावीर ने उपसर्गो थया. आवा उप-
 सर्गो केहं पण्णु तीर्थ-क्षेत्रोने थया होय तेम जण्णुतुं नथी. तेथी ते आश्चर्यभूत गणाय छे, अने अे तीव कर्म-बंधननुं
 परिशाम छे. (२) भीण्णु अच्छेइं अेके अगवाननुं गलंडाग दरभान इरण्णु थलुं आवु आगमन तीर्थ-क्षेत्रोने होए नहि
 छता पण्णु ते थयु तेथी आश्चर्य गणायुं (३) नीण्णु स्त्रीनुं तीर्थ कर पण्णे थयु. (४) योथुं अलावित परिषद्—बोधना
 इल रूडित अनेवी पड़ेवी परिषद्. (५) पायसुं श्री कृष्ण महाशरज्जनुं ‘अपर कंठा’ नामनी राजधानी जे धातकी
 अ डमा आवेवी छे त्यां जनुं, द्रैपहीनु त्यां इरणा थयुं इतुं. वासुदेव पोतानी भूमिनी सीमा केहं पण्णु अेहो वटावी
 शकता नथी. छता द्रैपहीने त्याथी लाववा माटे अने पाडवेतुं काम करमा माटे श्री कृष्णशरज्जने त्यां जनु पण्णु

इत्यर्थः । तस्य लक्ष्म सिंहसेनस्य राज्ञः श्रीलक्ष्मसेना नाम देवी=मरिची भीमतीव, तथा=स्तिपालो नाम वल्लुभः युवराजः आसीत् । तस्याः लक्ष्म पापायाः पुत्र्याः शरिः तपस्योरस्त्ये=उचरार्थान्तराळे दिग्मार्गे=ईशानकोणे सर्वदुःखपुण्यफलसमुद्भूत=वसन्त्यादि पदभ्रष्टं सम्मन्विषुष्यफलसमुत्पन्नं, रम्ये=सुन्दरं नन्दनवनप्रकाशं=नन्दनवनमधुर्यं, महासेनं नाम=महासेननामकम् उपास्य आसीत् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये=सिंहसेनराजशासनकालावसरे भ्रमणो भगवान् महाशरीरः, महासेनोपासने समबद्धः=विहारक्रमेण समागतः ॥सू०१०१॥

मन्त्र—वेणं काष्ठेणं तेण समपणं शीए पाणाए पुरीए एगस्स सोमिलाभिइस्स वंमणस्स जज्जवाडे जन्तकम्ममि समागया रिठ मज्झु सामा यक्कणाण षडणं येयाण इहासपंचमाण निर्वट्टुद्धम्भं संसोवणाण सार सार सारया वारया वारया, सडगनी सडित्ठं चित्तारया संत्वाणे चित्तलाणे सिपत्ताकप्पे वागरणे छडे निरुडे जोरसायणे अन्नेसु य षडुत्तं वंमज्जाएसु परिव्याएसु नएसु सुपरिचिहिया सव्वविहियुद्धिनिठणा जज्जकम्मनिठणा इइयुग्गिमिणो एगास माएवा सपसयसिस्स परिवारेण परिबुढा जन्तकम्मनिठणा तस्य जणं कुञ्चिति । तथा

श्रीलक्ष्मसेना नामको रानी थी । इस्तिपाल नामक तसका पुत्र युवराज था । उस पापापुरी के उचर-पूर्व सिंहा के अन्तराल में, ईशान क्रम में, वसन्त आदिछातों मधुओं संबंधी फूलों शीर फलों से सम्पन्न, रमणीक एवं नन्दनवन के समान महासेन नामक उद्यान था । उस काल, उस समय में, अर्थात् सिंहसेन राजा के शासन-काल के अवसर पर भ्रमण भगवान् महाशरीर क्रमशः विहार करते हुए महासेन उद्यान में पधारे ॥सू०१०१॥

६८ (६) छत्र-चक्र अने सुनं देवे, पोवाणा असक स्वर्णपे डोर्ष पण वअते तीर्त्तरेणा सभवसरखोभां आवत्ता न नबी छत्र अजवान भदावीरेना सभवसखाभां तेभय आणु सुधु (७) यातयु इरिपय इरिपनी उरचत्ति, सुअदि व्याना जेक कुअरने ज्जि वावी तेभांभी कर्ष, ते जेक अन्नेना भूत वात जन्ती । (८) आणुयु य्थेन्त्र ने भाएवा, अमरेन्त्रे अडान उरवात भवाअये, ते पण जेक आदीर्षं भाएक जीया छ अमरेन्त्रे नीवेनी भरतीना भएवी छे अने य्थेन्त्रे पडेवा देवदोअने भएवी छे छत्रं अमरेन्त्रे तेनी याये सुअ इएवा वएए कथा. (९) नवयु जेकी याये जेकर अमयभां जेकये आणु छत्रे, चिद्धजतिने पाआ, ते पण आदीर्षं भाएक य्थोअ. (१०) इययु आ यासन्नाभां आस यत्ति जेनी पूज जएवतां काव तेना उणु जेन जएवा । ते जेक अमरेन्त्रे छे अजवान त्वांभी नीकणी. सुभुअ जेनी पावापुरी नगरीभां पधारी आदिने राअ चिद्धसेन ते वअते अडालववान अने सुनं प्राअरेण आणुपिणी यज्जन् जेया अणुते. ते नअरीभां जेक भदासेन नामय उद्यान केटु ते पण अथ उद्यानेनां उअय जेकीयि जणुयु केटु (सू०१०१)

अणुणे वि तस्य वहेवे उवञ्जाया-गगा-शरीय-क्रोसिय-पेल-संडिड-पारासज्ज-भरदाज-वस्सिसय-सावणिय-
 मेतेज्जां-गिरस-कासव-कञ्चायण-दक्खायण-सारव्वयायण-सोनगायण-नाडायण-जातायणा-स्सायणा-दब्भायणा-
 चारायणा-काविय-वोहियो-वमन्नवा-तेज्जपभिइओ मिलिया होजा ॥सू०१०२॥

छाया - तस्मिन् काले तस्मिन् समये तस्यां पापायां पुर्याम् एकस्य सोमिलाभियस्य ब्राह्मणस्य यज्ञपाटे
 यज्ञकर्मणि समागताः ऋषयः समाथर्वणां चतुर्णां वेदानाम् इतिहासपञ्चमानां नियन्तु पठानां साद्रोपाङ्गानां
 सरहस्यानां स्मारका वारका धारका पडङ्गविदः पष्ठितन्त्रविशारदा संख्याने शिक्षणे शिक्षाकल्पे व्याकरणे
 छन्दसि निरुक्ते ज्योतिषामयने अन्येषु च बहुषु ब्राह्मण्येषु पारित्राजकेषु नयेषु सुपरिनिष्ठिताः सर्वविधयुद्धि-
 निष्णा यज्ञकर्मनिष्णा इन्द्रभूतिप्रभृतय एकादश ब्राह्मणाः स्व स्व परिवारेण परिचिता यज्ञ कुर्वन्ति । तथा
 अन्येऽपि तत्र बहव उपाध्यायः-गार्ग्य-हरीत-कौशिक-पैल-शाण्डिल्य-पाराशर्य-भारद्वाज-यात्य-सावर्ण्य-मैत्रेया-

मूल का अर्थ — 'तेण कालेण' इत्यादि । उस काल और समय में, पावापुरी में, किसी सोमिल नामक
 ब्राह्मण के यज्ञ के पाठे-महोत्से में, यज्ञ-कर्म में आये हुए अंगोपांग सहित तथा रहस्य सहित ऋग्वेद,
 यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद; इन चारों वेदों के, पाँचवें इतिहास के और छठे निघंटु के स्मारक (दूसरों को
 याद करानेवाले), वारक (अशुद्ध पाठ को रोकनेवाले) और धारक (अर्थ के ज्ञाता), छहों अंगों के ज्ञाता,
 पष्ठितन्त्र (सांख्यशास्त्र) में विशारद, गणित में शिक्षण में, शिक्षा में कल्प में, व्याकरण में, छन्द में, निरुक्त में,
 ज्योतिष में तथा अन्य बहुत-से ब्राह्मणों के ज्ञानों में तथा परिव्राजकों के आचारशास्त्र में कुशल, सब प्रकारकी
 बुद्धियों से सम्पन्न यज्ञकर्म में निष्णु इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण. अपने-अपने शिष्य परिवार सहित यज्ञ
 कर रहे थे । इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से उपाध्याय वहाँ इकट्ठे हुए थे । यथा गार्ग्य, हारित, कौशिक,

भूणतो अर्थ " तेण कालेण " इत्यादि-त क्षणे अने ते सभये पावापुरीमा ढोछ ओमिद नामना ब्राह्मणुना यज्ञना
 वाडामां, यज्ञ-कर्ममा आवेद अ गोगांग सडित तथा रहस्य सडित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अने अथर्ववेद अे चारे
 वेदोना, पाथमा छतिहासना अने छुग निघटुना स्मारक (भीजने याद करावनार) वारक (अशुद्ध पाठने रोकनारा),
 अने धारक (अर्थने नबुनारा), छये अ गोगना नबुकार, षण्टि तंत्र (सांख्य शास्त्र)मा विशारद, गणितमां, शिक्षुमां,
 शिक्षामा, कल्पमा, व्याकरणुमा, छदमा, निरुक्तमां, ज्योतिषमां तथा ब्राह्मणाना भीज धणु शाओमा तथा परिव्राजुओना
 आथार शास्त्रमा नियुषु, गधा प्रकारनी बुद्धिओथी स पत्त, यज्ञ कर्ममां नियुषुा इन्द्रभूति आदि अजिपार ब्राह्मण योत-
 पोतानां शिष्य परिनार साथे यज्ञ करता हता. तेभना सिवाय भीज धणु साथे अे उपाध्याये त्या ओकेव थया हता जेभहे-

त्रिरस-क्राशयण-काल्यायण-वाशायण-शारद्वतायण-शौनकायण-नाशायण-ब्राह्मण-वायण-दार्माण्य-धारायण-
 काव्य-नीचो-न्यमन्यता-वेपमश्रुतयो मिलिता अमश्रुत ॥सू०१०२॥

टीका—'तेषु काठेषु तेण समएव' इत्यादि । तास्मिन् काठे तस्मिन् समये तस्यां पापायां=पापा
 नाम्नां पुर्य्याम् एवस्य सोमिष्वाभिषय=सोमिष्वाभयस्य ब्राह्मणस्य यज्ञपाठ-यज्ञस्थाने यज्ञकर्मणि-यज्ञक्रिया
 याम् समागताः ऋग्यजुस्तामार्ष्यां चतुर्णां वेदानाम् इतिहास पञ्चमानाम् निघण्टु पद्यानां-निघण्टुः=वैदिककोषः=
 स पठो येषां तेषां च श्राद्धाणां साहोपाह्वानाम्-अहोपाह्वसहितानाम्-छन्दः कव्यव्यौत्पि-व्याकरण-निरुक्त-
 विज्ञास्याह्वदृक्तसहितानां तथा-छन्दःमश्रुत्यङ्गीयुतशास्त्रसहितानां वेत्यर्थः, सरस्थानां=दरभयसहितानाम्-सारांश
 सहितानामित्यर्थः, स्मारकाः=नरेणां जनानां स्मारयितारः, वारकाः=अयुद्धपाठनियेषकाः, वारकाः=एतत्प्रतिपाद्या
 णेषु, श्राद्धिक्य, पाराशर्य, मारद्वान्, चारस्य, सारवर्ण्य, अत्रेय, आंगिरस, काश्यप, कात्यायन, दार्माण्य, चारायण,
 काण, बौध्द, औपमन्यव, अत्रेय आदि ॥सू०१०२॥

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में, उस पाषाणुरी में एक सोमिक नामक ब्राह्मण के यज्ञ
 स्थल में, यज्ञ-क्रिया के लिए आये हुए इन्द्रश्रुति आदि ग्यारह ब्राह्मण अपने-अपने स्थित्य-परिवार युक्त होकर
 यज्ञ कर रहे थे । वे ब्राह्मण ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चारों वेदों में, पाँचमें इतिहास में और छठे
 निघण्टु (वैदिक कोष) में कुल दे । वे छन्द कव्य व्योत्पि व्याकरण निरुक्त तथा श्रुति, इन छहों अंगों
 सहित तथा रस्य-सारांश सहित वेदों के स्मारक थे, अर्थात् अन्य लोगों को याद कराने वाले थे, वारक थे
 अर्थात् अशुद्ध उच्चारण करने वालोंको रोकने थे, और वारक थे, अर्थात् इनके अधिषेय अर्थ को धारण करने=

अथ, क्वरीत, वेदिक पैर, श्राद्धिक, पाराशर्य, मारद्वान्, चारस्य, सारवर्ण्य, अत्रेय आंगिरस, काश्यप, कात्यायन, दार्माण्य,
 चारायण, दौध, औपमन्यव, अत्रेय आदि ॥सू०१०२॥

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में, उस पाषाणुरी में एक सोमिक नामक ब्राह्मण के यज्ञ
 स्थल में, यज्ञ-क्रिया के लिए आये हुए इन्द्रश्रुति आदि ग्यारह ब्राह्मण अपने-अपने स्थित्य-परिवार युक्त होकर
 यज्ञ कर रहे थे । वे ब्राह्मण ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चारों वेदों में, पाँचमें इतिहास में और छठे
 निघण्टु (वैदिक कोष) में कुल दे । वे छन्द कव्य व्योत्पि व्याकरण निरुक्त तथा श्रुति, इन छहों अंगों
 सहित तथा रस्य-सारांश सहित वेदों के स्मारक थे, अर्थात् अन्य लोगों को याद कराने वाले थे, वारक थे
 अर्थात् अशुद्ध उच्चारण करने वालोंको रोकने थे, और वारक थे, अर्थात् इनके अधिषेय अर्थ को धारण करने=

र्थानां धारण कर्तारः, पडङ्गविदः=उद्दः-प्रश्रुतिपडङ्गज्ञाः, पष्ठितत्रविशारदाः=सांख्यशास्त्रनिपुणाः; संख्याने गणित-
 शास्त्रे शिक्षणे=अध्यापने शिक्षाकल्पे=शिक्षायां कल्पेवेत्यर्थः; व्याकरणे=शब्दशास्त्रे छन्दसि=छन्दः शास्त्रे निरुक्ते=
 निरुक्ताख्ये वेदाङ्गभूते शास्त्रे ज्योतिषामयने=ज्योतिषशास्त्रे अन्येषु च=शिक्षादिभिन्नेषु च बहुषु=अनेकेषु ब्राह्मण्येषु
 ब्राह्मणसम्बन्धिषु शास्त्रेषु, परिव्राजकेषु=परिव्राजकसम्बन्धिषु नयेषु-आचारशास्त्रेषु परिनिष्ठिताः-अतिनिपुणाः;
 तथा-सर्वविधबुद्धिनिपुणाः=तात्कालिकप्रदार्थावगाह्यात्मकबुद्धि भविष्यत्प्रदार्थावगाह्यात्मकमति-नवनवप्रदार्थोद्भाव-
 नकरात्मक प्रज्ञारूपबुद्धित्रयेण प्राप्तकौशलाः; यज्ञकर्मनिपुणाः=यज्ञक्रियाकुशलाः; इन्द्रभूतिप्रभृतयः=इन्द्रभूत्यादयः;
 एकादश=एकादशसंख्यकाः ब्राह्मणाः मन्त्र स्व परिवारेण=निज निज शिष्यरूपवृन्देन, परिष्ठिताः परिवेष्टिताः; तत्र-
 पापपुरोस्थयज्ञस्थाने यज्ञ कुर्वन्ति । तथा अन्येऽपि तत्र=यज्ञकर्मणि वहव उपाध्यायाः-गार्ग्य-ह्यरित-कौशिक-पैल-
 शाण्डिल्य-पाराशर्य-भार्द्वाज-वात्स्य-सावर्ण्य-मैत्रेया-द्विरस-काश्यप-कात्यायन-दाक्षायण-शारद्वतायन-शौनका-

समझने वाले थे । छन्द आदि छहों अंगों के ज्ञाता थे । सांख्यशास्त्र में निष्णात थे । गणित में, शिक्षण (अध्यापन)
 में, शिक्षा में, कल्प में, व्याकरण शास्त्र में, छन्द शास्त्र में, निरुक्त-निरुक्त नामक=वेद के अंगरूप शास्त्र में,
 ज्योतिषशास्त्र में, तथा इनके अतिरिक्त दूसरे बहुत से ब्राह्मणों के शास्त्रों में और परिव्राजकों संबंधी
 आचारशास्त्र में अति निपुण थे । सब प्रकारकी बुद्धियों में निपुण थे । तात्कालिक वातको जानने वाली बुद्धि
 भविष्यत् की बात को सगहलेने वाली मति, और नयी-नयी बात को खोज निकाल लेनेवाली सूक्ष्मरूप
 प्रज्ञा=इस तीन प्रकार की बुद्धि में उन्हें कुशलता प्राप्त थी । वे यज्ञके अनुष्ठान में कुशल थे । इन्द्रभूति आदि ग्यारह
 ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्यान्य उपाध्याय भी उस यज्ञ में सम्मिलित हुए थे । उनमें से कुछ यह हैं-गार्ग्य,

इत्ता, अेटडे डे तेभना अक्रिधेय अथने धारथु डरनार-समञ्जनार इत्ता. छंद आदि छये अंगोना ञ्भुडार इत्ता. सांख्य
 शास्त्रमा निष्णान इत्ता. गणितमा, शिक्षथु (अध्यापन)मा शिक्षामां, डल्पमा व्याकरथुशास्त्रमा, छंद शास्त्रमां, निरुक्त
 (निरुक्त नामना वेदना अंग इप शास्त्र)मा, ज्ये.नेिष शास्त्रमां अने तेना सिवाथ ग्रहथोना भीमं धषां अे शास्त्रोमां
 अने परिवाग्रेडा संबंधी आचार शास्त्रमां निपुथु इत्ता अथा प्रडारनी युद्धियोमां निपुथु इत्ता. ताःकालिक वातने
 ञ्भुवानी युद्धि, भविष्यनी वातने समञ्जवानी भति, अने नवी नवी वातने शोधी डानारी सूळ इप प्रसा अे त्रथु
 प्रडारनी युद्धिमां तेमथे निपुशता मेणवी इत्ती. ते यज्ञना अनुष्ठानमां कुशण इत्ता. इन्द्रभूति आदि अगियार प्राहथो
 सिवाथ भीम धषा उपाध्यायो पथु यज्ञमां अेकडा थथा इत्ता. तेओमांधी डेटाडकनां नाम नीथे प्रमाथे छि-गार्ग्य,

यन्-नाडायन्-जातायना-धायन्-शर्मायन् चारायण-काप्य-वैश्वी-यमन्यवन्-श्रेयमस्तवयः-नाग्यो हरित कौशिकः
 पैन्ः श्वादिभ्यः पाराश्र्वयः मारद्रावो वात्स्य सावर्थो भैश्वेयः भाद्रिरसः काश्यपः कात्यायनो-वासायणः
 श्राद्धायायनः शौनकायनो नाडायनो जातायनः आश्वायनो दार्मायनः चारायन् काप्यो वौष्यः श्रौपमन्यव
 भाश्वेयः मयूतो-भाद्री येषां ते तवायुता मिथिवाः=एकत्रिता भवन् ॥सू० १०२॥

मूल्म्-वेण काळेभं वेणं समएणं पाचाए पुरीए समणस्स भगवओ महावीरस्स देवेहि समोस्सरणं
 थिरइय, व जहा-वाठकुमारा देवा जोय्ण-परिमिय भूमिभंढाओ संबट्ठवाउणा कयधरमवधीय त विसोहेति ।
 मेठकुमारा देवा अचिचं जल वरिस्सति । अण्णे देवा पत्तागतिंणं रएति, उत्व पढमे सुवण्णकंपुरसोहिय रुण-
 सात्तं १, वीय रयणकंपुरसोहिय सुवण्णसात्त २, वइय वज्जमणिकंपुरसोहिय रयणसात्तं ३, उत्व वउम्ह्ठी इवा
 समाएच्छति । अस्सोगरुवत्त-उफुट्टि-विउण्णुणि-चायरफलिइ सीहातण-मामंढत्तुदुहि आयवषणी अक्कुमहा-
 पाठिहारियाणी सयज्जगणीयमनोहराणि पाठम्भविंहु । कहिं वि रयणएच-रयणपुण्ण-रयणफलासंक्रिया रक्खा,
 कहिं वि वेकलियसंक्रिसामायुमी । कहिं वि नीलमणिणमपुमी, कहिं वि फलिइमा, कहिं वि जोई रयणमया, कहिं
 वि पउमरागमया, कहिं वि कंयवसंक्रसा कहिं वि वाल्हरियसमा, कहिं वि तक्काणासनिहा, कहिं वि
 विउण्णुकोइसमण्णपुमापुमी मवीअ । तस्स य वउरिस पण्णवीसण्णवीसजोय्णपरिमिय लिखे ईश्रीइमारिदुक्किमवल
 वेरादिवादि उवादिमा उस्सविंहु । सोप सुवण्णइगोमविंहु । पाउसाइया छ उठणो पाउम्भविंहु । कंद्यरिय
 विउण्णुकोइमणिणेहिंतो वि अर्भवत्तण्णफाट्टिगुणिया मिण्णपहा पमावीअ । तत्य समोस्सरणपुमीए सग्गाओवि
 अर्भवत्तुणिया पुसमाभासी ॥सू० १०३॥

प्राया-वस्मिन् काळे वस्मिन् समये पाथायां पुयी धयजस्य भगवतो महावीरस्य वै समवसरणं विरचित,
 तपया-पायुकुमारा देवा योजनपरिमियमिण्णुसात्त सयचंक्रवायुना कवचरमपनीय तव् विओपयन्ति । येयकुमारा
 शरीर, कौशिक, पैव, श्वादिभ्य, पाराश्र्वय, मारद्राव, वात्स्य, सावर्थ, भैश्वेय, भाद्रिरस, काश्यप, कात्यायन,
 वासायन्, श्राद्धायायन, शौनकायन, नाडायन, जातायन, आश्वायन, दार्मायन, चारायण, काप्य, वौष्य, श्रौप
 मन्यव, भाश्वेय इति ॥सू० १०२॥

शरीर, कौशिक पैव श्वादिभ्य, पाराश्र्वय, मारद्राव, वात्स्य सावर्थ, भैश्वेय, भाद्रिरस, काश्यप, कात्यायन, श्राद्धायायन, शौनकायन, नाडायन, जातायन, आश्वायन, दार्मायन, चारायण, काप्य, वौष्य, श्रौप
 मन्यव, भाश्वेय इति ॥सू० १०२॥

देवा अचिन्तं जलं वर्षन्ति । अन्ये देवाः प्राकारात्रिकं रचयन्ति, तत्र-प्रथमं सुवर्णकङ्कुरशोभितं रूप्यसालं १, द्वितीयं रत्नकङ्कुरशोभितं सुवर्णसालं २, तृतीयं वज्रमणिङ्कुरशोभितं रत्नसालम् ३ । तत्र चतुष्पष्टिरिन्द्राः समा-
गच्छन्ति । अशोकवृक्ष १-पुष्पवृष्टि २-दिव्यध्वनि ३-चामर ४-स्फटिकसिंहासन ५-भामण्डल ६-दुन्दुभ्या ७-
तपत्राणि ८ अष्टमहाप्रातिहार्याणि सकलजगज्जीवमनोहराणि प्रादुरभवन् । कुत्रचिद् रत्नपत्र-रत्नपुष्प-रत्नफला-
लङ्कृतावृक्षाः, कुत्रचिद् वैदूर्यसंकाशाभूमिः, कुत्रचिन्नीलमणिप्रभाभूमिः, कुत्रचित् स्फटिकाभा, कुत्रचिद् ज्योती-

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि=उस काल और उस समय में पावापुरी में, देवोंने श्रमण भगवान् महावीर के समवसरणकी रचनाकी । वह इस प्रकार=वायु कुमार देवोंने एक योजन परिमित भूमंडल से, संवर्तक वायु के द्वारा कूडा-कचरा हटाकर उसकी सफाईकी । मेघकुमार देवोंने अचित्तजल कीवर्षाकी । दूसरे देवोंने तीन प्रकार (चहार दीवारियाँ) बनाये । उनमें पहला स्वर्ण के कंगूरों से शोभित चांदीका प्राकार गढ़ बनाया । दूसरा रत्नोंके कंगूरों से शोभित स्वर्णका प्राकार बनाया । तीसरां हीरोंके कंगूरों से सुशोभित रत्नों का प्राकार बनाया । वहां चौंसठ इन्द्र आये । (१) अशोकवृक्ष (२) अचित् पुष्पवृष्टि (३) दिव्यध्वनि (४) चामर (५) स्फटिकका सिंहासन (६) भामण्डल (७) दुन्दुभी और (८) आतपत्र=छत्र, यह जगत् के समस्त जीवों के मनको हरनेवाले आठ महाप्रातिहार्य प्रकट हुए ।

कहीं-कहीं रत्नोंके षत्तो पाले, कहीं रत्नोंके फूलोंवाले तो कहीं-कहीं रत्नोंके फलोंवाले वृक्ष थे । कहीं-कहीं वैदूर्य के समान भूमिथी तो कहीं नीलमणिकी प्रमावाली थी । कहीं स्फटिक के समान उज्ज्वल

भूणेतो अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि. ते क्षण अने ते सभये, पावापुरी नगरीमा, देवेअे श्रमणु भगवान् भडावीरना सभवसरणुनी रचना करी डेवा प्रधारनी रचना करी ते डह छे डे-वायुकुमार देवेअे अेक अेक येअेन सुधी थारे तरङ्गनी भूमिने, संवर्त्तक वायुद्वारा, साइ करी ते न्भीन उपरना कथारने वाणीथिणी अेक तरङ्ग हूर डेअी हीथि. मेघकुमार देवेअे, अचित्त जणती वधो करी अन्ध देवेअे त्रणु प्रधारना थार थार हरवाज सडित गढे थानान्था. पडिहा प्रधारना गढे थान्हीना डेत। आ गढना हरवाजने सेनाना डंगारं करवामा आव्थां डतां. थीज प्रधारने गढ सुवर्णुनेो थना-ववाभां आव्थेो डते. तेना डंगारं रनेनाथी शथुगारवामा आव्थां डतां. त्रीज प्रधारने गढ रत्नेनेो थनाववाभां आव्थेो डते। तेना डंगारा डिरा भाथेडनां डतां. आ सभवसरणुभां, थोसठ धन्द्रेो डान्तर रथा डता आ धन्द्रेअे, सभस्त थवेना मनने डरी डे तेव, आठ भडाप्रतिडार्य प्रगट कथो. नेना नाम आ प्रभाथे छे. (१) अशोकवृक्ष (२) अचित्त पुष्पवृष्टि (३) दिव्यध्वनि (४) चामर (५) स्फटिक रत्ननुं सिंहासन (६) भामंडण (७) दुंदुभी (८) आतपत्र(छत्र).

रत्नमयी, कुत्रचित् पधरागमयी, कुत्रचित् काञ्चनसंकाशा, कुत्रचित् शम्भसूर्यसमा, कुत्रचित् तख्यारुणसंनिभा,
 कुत्रचिद्विद्युत्कोटिसमममा भूमिरभवत् । तस्य च चतुर्दिशि पद्मविश्रुति-यञ्चविश्रुति योजनपरिमिते क्षेत्रे इति
 मीथिमारिदुर्मिसत्सैरापिभ्याप्युपायवपशाभ्यन्त । लोकाः सुलमागिनोऽभवन् । माहृढादिकाः पृथुः कृतव प्रापुर
 भवन् । चन्द्रसूर्यसिद्धकोटिमणिगणेभ्योऽपि अनन्तान्तकोटियुगिता भिनप्रथा प्रामासत् । तत्र समवसरणयूयो
 स्वर्गादपि अनन्तयुगिता धुपमाऽऽसीत् ॥ प्र० १०३ ॥

टीका—'तेन' कालेण तेन समर्थं' इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये पापार्थां पुंया भ्रमजस्य सगवतो
 महागोरस्य समरसार्ण देवैरिचितं=विशेषेण निर्मितम्, तद्यथा-रि-प्रयमतो वायुकुमारा देवाः योजनपरिमितभूमि
 तो कर्षी भ्याति रत्नमयी । कर्षी पधराग के वर्ण की तो कर्षी स्वर्ण के समान । कर्षी बाल-सूर्यके सहस्र तो
 कर्षी तका सूर्य के वर्ण के समान थी । कर्षी कर्षी का भूमितल कोटि-कोटि विद्युत् की बीतीके सहस्र स्योतिर्मय
 था । समरसार्ण से पषोत्तर २ योजन की दूरी तक, चारों दिशाओंमें इति, सीवि, महामारी, दुर्मिस, चैर, आपि,
 ज्यपि और उपाधि उपशान्त हो गई थी । सभी लोग सुखी हो गये थे । वर्षा आदि छत्रों ऋषुयें प्रकट
 हो गई थी । भिन भगवान् की प्रभा करोड़ों चन्द्रमा, मर्य विद्युत् और मणिगणों से मी अनन्तान्त करोड़ोंयुणी
 प्रकाशित हो रही थी । समवसरण भूमि की शोभा स्वर्ण से मी अनन्तयुणी थी (ख० १०३)

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में, पावापुरी में भ्रमण भगवान् महावीर के समवसरणका
 देवोंने निर्माण किया । वह इस प्रकार-सब से पहले वायुकुमार देवोंने एक योजन भयात् चार कोस के

देवों के स्वर्गोत्थे रत्नोना पांढरावाण, तो देवों देवावे रत्नोना भूदोवाण, तो देवों देवावे रत्नोना देववाण
 वृक्ष दोपचार्य आन्ध्र देवा देवों भूमि वेदुरेत्तल नेवी देवी, देवों भूमि नीकभभविना तेच नेवी देवी देवों भूमि
 रक्षितरत्न सभान उन्ववण नखावी, तेमच देवों भूमिने प्रभाय रत्नमय भासते देतो देवों भूमितण पधराग
 भविन वर्णों नेवु बीसठ देवों भूमि नर प्रभााना सुदोचर यमु वाचवु तो देवों स्थग भूभासुतना सुयें सभ
 प्रभासठ देवों देवों पशतक शोथे रिपतय बभकस नेवु भाववसभान देव्याठ देवु सभपधरावणी आरे जावु
 पश्चीय-पश्चीय योजन सुधी, छवि, सीवि, महाभारी, भकरी, देवोश च्छेत्त, दुष्भण लभाय सुद, ज्यपि, ज्यपि,
 वेर, ज्यपि विनेरे उपशान्त कर्षी तथा देवा ज्य प्रदेष्टेना यनं भूमिक सुप्रभम भनी प्रये। यश्व-वधत ज्यदिछले
 सुयोजिने प्रभाय नखावा नाये। जगवानने प्रनाय, शोशेय इमा, शोशेय सुयें जने विद्युत् तेमच भविजोशी पञ्च
 ज्यदिछापक प्रभायमान नखाते देतो सभभभरवणी भूमि स्वर्णकी पञ्च जग नखावी देवा... (ख० १०३)

मण्डलात्=क्रोशचष्टयपरिमितभूमण्डलात् सर्वतर्कवायुना=सर्वतर्कनामकपवनद्वारा कचवरम् अपनीय=निःसार्य तद्= योजनपरिमितभूमण्डलं विशोध्यन्ति=सम्मार्जयन्ति । तत्संमार्जनानन्तरं मेघकुमारा देवास्तत्राचिच्चं=प्रासुकं जलं वर्षन्ति=मुच्यन्ति, अन्ये देवाः प्राकारत्रिकम्=त्रीन् प्रकारान् रचयन्ति-कुर्वन्ति, तत्र=त्रिषु प्राकारेषु मध्ये प्रथमम्-आदौ सुवर्णम्बुशोभितं-स्वर्णनिर्मितकृषिशीर्षकालङ्कृतं रूप्यसालं=रजतप्राकारं रचयन्ति ? । द्वितीयं रत्नम्बुशोभितं-रत्नमयकृषिशीर्षकालङ्कृतं सुवर्णसालं=स्वर्णमयं प्राकारं रचयन्ति २, तृतीयं मणिकम्बुशोभितं=वज्रमणि-शोभितं=रत्नमयकृषिशीर्षकालङ्कृतं रत्नसालं-रत्नमयं-प्राकारं रचयन्ति ३ । तत्र-समवसरणे चतुष्पष्टिः=चतुष्पष्टिसंख्यकाः मयकृषिशीर्षकविभूषितं

वेरे में से, संवर्चक नामक वायु के द्वारा सारे ऋडे कचरेको हटा दिया । एक योजन परिमित भूमिमंडल एकदम साफ सुथरा हो गया । जब भूमि स्वच्छ हो गई तो मेघकुमार देवोंने अचित्त जलकी वर्षाकी, जिससे धूल बैठ गई और पृथ्वी शीतल हो गई । तदनन्तर अन्यान्य देवोंने तीन प्राकारों (गह) की रचना की । तीन प्राकारों में पहला चांदी का था और उस पर सोने के कंगूरे शोभायमान हो रहे थे । दूसरा प्राकार सोनेका था और उस पर रत्नों के कंगूरे शोभित थे । तीसरा रत्नोंका था और उस पर वज्रमणि के कंगूरे अपनी अनुपम शोभा प्रकट कर रहे थे ।

विशेष थं-समवसरण्यु ने तीन पारिभाषिक शब्दकम, 'समेो सरण्यु' कहे छे. तेने आनेो अर्थ अवेो नीकणे छि के, हरेक प्राणी लूत-लूत-सरवने 'समान शंणु', भली रहे छे. ओकरु भूमि उपर तमाम प्राणीओंं समस्त प्रकारना अने बिन्न बिन्न प्रकारना वेरलावेनु विस्मरथ करी, समान भूमिका उपर सर्व ओकरु थाय छि ओटले वसी रहे छे तेना लावेो पणु आमाथी नीकणे छि आइपरात धर्मोपदेश भाटे सवो-कृष्ट शोभा स्थान ! अवेो लान पणु अण्ट थाय छे. आ सलास्थाननु निमोथ भनुण्यनी शक्ति गडार छे. तेछुं निर्मोणु अइछुत शक्तिवाणा हेवो वडे करवामां आवे छे. साइसूरीमां ओकरु रण पणु दृष्टिगेअर थती न इती तेना उपर हेवी शक्ति वरु सुगंधित द्रव्यो भिश्रि अचित्त जलनेो छटकाव करवामां आव्यो इतेो. आ छटकावना दीधि, पृथ्वीमांथी उणु-शीतभिश्चित लवानी दाइरीओ इटती तेथी ते. सर्वने पुथनुमा अने हिलने आनंदायक अनी रहेती. आ कार्यं भाह अन्य हेवोअे तणु प्रकारना गढनी रचना करी, 'ससोमरण्यु'ने कृत्रिम नगर अनावधानी योजना छाय छे. इकरु ओटलोअ छाय छे के, आ कृतिम नगरमां इकत 'धर्मदेशना' अ थई शकै धीछु केछ धारीरिडि के मानसिक प्रवृत्तिनुं आ धाम न हेतुं.

आ समवसरण्युने प्रवेशद्वारवाणि गह चांहीनेो अनाव्यो इतेो. ते गढनी शोलामां वृद्धि करवा, कांगरां भूकवामां आव्यो इता. आ कांगरां सोनानां हुतां. अनुकुंसे आगण जतां सोनानेो गह अनाववामां आव्यो इतेो. जेनेो हरेवले

इन्द्रा=युक्ताय इन्द्राः समागच्छन्ति-आयान्ति । तया=समवसरणे अशोकृतस्य १-पुण्यवृष्टि २-विष्वक्पत्निसि ३-
 वामर ४-स्फटिक सिंहासन ५-मामण्डल =-दुन्दुभ्या ७ उदरप्राणि-रुच-मशोकृतसः १, पुण्यवृष्टिः २, विष्व-
 पत्निः ३, वामरं ४, स्फटिकसिंहासन=स्फटिकमणिमयं सिंहासनम् ५, मामण्डलं=युतिमण्डलम् ६, दुन्दुभिसि=मेरी ७,
 मातपत्रे-उग्रम् ८ चैवानि, अष्टमहामाविद्यायोगि-अष्टसंस्थानि महात्वि-अस्त्रोक्तानि माविद्यायोगि सङ्कल
 जगज्जीवमानाहादि-सकलानां जगज्जीवानां चित्तहरणकारकानि वस्तूनि मादुरभवत्=मण्डली यशुः । पुनरपि
 समवसरणदार्ता र्णयति-कुञ्चयित्=समवसरणस्य क्रमिश्चिरमदेवे रत्नपत्र-रत्नपुण्य-रत्नफलसङ्कटाः=रत्नमयपत्र-
 पुण्यसैर्भिषुषिणा =द्वसाः मादुरभवत्, कुञ्चयित् युमिः=युयिषीवैदूर्यसंकाशाः=वैदूर्यमणिमयत्वन हरितकपर्णा, कुप्र

उत्स समवसरण में वक्र आदि चौसठ इन्द्र उपस्थित थे । उत्स समवसरण में (१) अशोकृतस (२) अचिप
 पुण्यवृष्टि (३) विष्व-पत्नि (४) वामर (५) स्फटिकका सिंहासन (६) मा मण्डल (७) दुन्दुमी [मेरी] और
 (८) उग्र, यह संसार के समस्त नीचों के विष को हराव करने वाले अष्ट महान् यलौकिक-विष्य प्राति-
 हार्य मण्डल हुए । समवसरणकी शोभा का और भी वर्णन करते हैं-समवसरण के किसी भाग में रत्नमय
 पर्णोवाछे हल थे, किसी भाग में रत्नमय पुष्पों वाछे हल थे और कहीं-कहीं पर रत्नमय फलों से विभूषित
 हल सुजागित हो रहे थे । समवसरण की युमि कहीं वैदूर्यमणिमय होने से अतुल्य इरीसिमाको घाणव किये

यस्य सुवर्णभूषणं अने अलया हांसस रत्नोद्गी सव्यभारवाभा आल्यां क्वां. कष्टु पञ्च आसल बधनां जिठ नील जडनी
 रत्नानां इवभा आशी क्वां. आ अस्तु निर्भोवु प्रवेशद्वार साधे रत्नोदु जनावेकु क्वां अने तेना उपर विविध
 प्रकाशना भुविभानां हांसरां इवभा आल्यां क्वां. आ तस्य त्रु तेना प्रवेशद्वारा साधे पञ्चार इवां यशुः, धमं
 देवनानां सभास ७५ वरु इणं यथागु क्वां आ अशियासुरवृत्ती रत्नना देववृत्त के ज्येष्ठ जयवावा साधु, त्यां आठ
 प्रकाशनी यलौकिक वस्तुनां इतिवोचर क्वां क्वां (१) कल्पानना शरीरधी पार अद्यो ह्येवा अश्याःवृक्ष, (२) अश्वेत
 इत्येनी वृष्टि (३) शिव्य-पत्नि, (४) वामर (५) अदिक सिंहासन (६) तेभना युञ्ज उपर प्रस्थी रत्नव आभ ७५,
 (७) देवदुहली (८) उग्र उपर ज्ञेय तस्य ज्ञेय,

आ सुमवसरणनी योकात् इरी वर्णन इवभा आवे छे-समवसरणमां देहेर रत्नभक्त पत्रो पुण्या अने इयोवाका
 वृष्टिदु आशेषणु वरुके क्वां तेषु धरातक अने सपानी विविध रत्नोना वेल्थो विविध प्रकाशो आपटी क्वां जेटेदे
 ममवसरणुना होठ आशयं कल्पव चरुहांजना तो होठ आशयं रत्नभक्त इयोवाका तो होठ आशयं रत्नभक्त इयो-
 वांनो वृषी क्वां. त्यानी अग्निदे आभ होठ देहाके वेल्थ भय केल्थो अतुल्य अस्तिरज धारणु इतेना इतेना होठ

चिद् नीलमणिप्रभा=नीलमणिमयत्वेन नौलवर्णां, कुत्रचित् भूमिः स्फटिकाभा=स्फटिकमयत्वेन धवलकान्ति-
 मती, कुत्रचित् भूमिः ज्योतीरत्नमयी, कुत्रचित् भूमिः पद्मरागमयी-पद्मरागमणिमयत्वेन रक्तवर्णां, कुत्रचित्
 भूमिः काञ्चनसङ्काशा-स्वर्णमयत्वेन ईपद्रक्तपीतवर्णां, कुत्रचित् भूमिः वाल्मूर्यसमा=सद्य उदित सूर्यवत् अतिरक्त-
 वर्णां, कुत्रचित् भूमिः तरुणारुणसङ्काशा=नाभ्याह्नि सूर्यसमप्रभा, कुत्रचित् भूमिर्विद्युत्कोटिसमप्रभा=कोटिसंख्य
 विद्युत्सदृशप्रभा अभवत्-जाता । तस्य=समवर्णस्य च चतुर्दिशि=चतसृषु दिशु पञ्चविंशति योजनपरिमिते=
 शतकोशशतकोश परिमिते क्षेत्रे इति-गीतिमारि दुर्भिक्षैराऽऽधिध्याऽधुपाययः इतयः-अतिदृष्टयनाट्टिमृषिक
 शलभशुक्राट्यासन्नराजरूपाः पद्मविधाः, भीतिः-भयं, मारि=निपूचिका, दुर्मिसं, वरं, आधिः=मानमीव्यथा,
 व्याधिः=शारीररूपीडा, उपाधिः=उपसर्गः-देवमनुष्यतिर्यागधुपद्रवैश्चेते उपाशाम्यन=उपशान्ताः, लोकाः=सर्वे

थी, कहीं नीलमणिमय होने के कारण निलिमा से युक्त थी कहीं स्फटिकमय होने से धवल थी तो कहीं ज्योति-
 रत्नमयी होने से भास्वर हो रही थी । कहीं पद्मरागमणिमयी होने से अच्छी लालिमा से व्याप्त भी तो कहीं
 स्वर्णमयी-हल्की पीत वर्णकी थी । भूमि का कोई भाग वाल्मूर्य के समान एरुद्रम रक्तवर्ण था तो कोई भूमिभाग
 मध्याह्नकाब्दीन सूर्य के सदृश प्रभा से युक्त था । कहीं-कहीं की भूमि करोड़ों विजलियोंकी प्रभा जैसी प्रभा से
 आलोकित थी । समवसरण से चहुँ और सौ-सौ की दूरी तक के क्षेत्र में इति नहीं थी, अतिदृष्टि, १
 अनाट्टि, २ चूहोका उपद्रव ३ टिट्टियोंका उपद्रव ४ तोतोका उपद्रव ५ और समीप में दूसरे राजाका उपद्रव
 ये छद्म तरह की इतियाँ हैं । इनका भय का अभाव था, अथवा इतियों का भय नहीं था । महामारी
 (विश्वचिका), दुष्काल, वैर, आधि (मानसिक पीडा), व्याधि (शारीरिक व्यथा). उपाधि (देव मनुष्य तथा

ठेकावे नीलमणिमय होवाने कीधि नीलिमायुक्त हुते, के.ड.ठेकावे स्फटिकमय होवाथी सईध हुते, के.ड.ठेकावे ज्योति
 रत्नमय होवाथी भास्वर हुते। के.ड.ठेकावे पद्मराग मणिमय होवाथी अनोथी लालिमाथी व्याप्त हुते। के.ड.ठेकावे
 सुवर्णमय होवाथी हल्का पीणावर्णुवाणे। हुते। के.ड.ठेकावे वाल्मूर्यनी समान अत्यत लालवर्णुवाणे। हुते। के.ड.ठेकावे
 मध्याह्नकाब्दीन सूर्यनी समान प्रभाववाणे। हुते। के.ड.ठेकावे गाणसूर्यनी समान अत्यत लालवर्णुवाणे। हुते। के.ड.ठेकावे
 समवसरणुनी इरती थारे आणुजे, सो सो गाड सुधी, के.ड.ठेकावे पञ्चविंशति योजनपरिमिते पडता

न.डी. 'धति' कोटवे कोक नतने। उपद्रव आ धनिना छ प्रकार छे (१) अतिदृष्टि (२) अनाट्टि (३) उदरडाओ। (४)
 न.डी (५) पोपटने। उपद्रव, (६) दुश्मन राजसुं यडी आवधुं. आ उपरांत आधि (म नसि) यडी धि (शारीर)

ननाः सुलभागिना=सुलिनः बाढा, माहृढादिकाः=माहृह-यर्षा-शरद्रेमन्तवसन्तप्रीत्या षट्=षट्संख्यका ऋतवः
 प्रादुरभवन्=माहृर्मुताः । अथ समयसरणे स्वर्णसिंहासनानीनस्य श्रीमहावीरस्वामिन प्रभां वर्षयति-वन्त्रसूर्य
 विद्युत्कोटिमगिणेशोऽपि-कोटिसंस्पर्शमन्त्रेभ्यः सूर्येभ्यः तावतीभ्यो विद्युत्प्रभो मयिसमूहेभ्यश्चापि-अन्नन्त्या-
 नन्वडोदियुधिवा जिनप्रभा=श्रीमहावीरभिनस्य प्रभा प्रामासत=प्रामासिता, तत्र-समयसरणयुगौ स्वर्गोदोऽपि=
 स्वर्गोदोऽपि अन्तन्तगुणित्वा=अन्तन्तगुणरिषिका सुपमान=परमशोभा आसीत् ।।सू०१०३।।

मूलम्—यसि ठारिसंगंसि समोसरणसि समासीणस्स भगवभो दंसवहं धम्मवेसथा सवणह व मक्खाव
 षागमतर भोरसिय विमायवासिभो देवा य देवीभो य निय निय परिचार परिखुढा सञ्चदिए सख्यदुईए पक्काए
 छाणए भवीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वणए छेसाए दसरिसो उज्जोवेमाणा पमासेमाणा समावणति । ते दहदूए
 जससडडट्टिया जन्तमाणो सब्बे माहणा परोपरं एवमाइसंसि एव भासंसि एवं पण्णेति एव पक्खित्ति-भो भो
 सोया ! पासंहु जन्तप्यमाचं, के वं इमे देवा य देवीमा य नन्वदंसणहं इविससएशहं व निय निय विमाणेरि
 निय निय इड्डीदिएरि सब्बलं समावणति । तस्यद्विया सोया अत्थेस्य मणुमनिय एवं संसु-ज इमे माहणा
 पणा कयक्खिया कयपुण्या कयसत्तमा य जेमिं जसत्तदे देवा य देवीभो य सब्बलं समावणति ।।सू०१०४।।

विर्यव कुन उपसर्ग) सव शान्त हो गय ये । इस प्रकार की शान्ति होने से सभी लोग सुखी हो गये थे ।
 माहृह-चां, शरद, शिशिर रेमन्त वसन्त और ग्रीष्म-यह छह ऋतुएँ प्रकट हो गई थी ।

समयसरण में स्वर्ण के सिंहासन पर सिंहासित श्रीमहावीर स्वामी की प्रभा का वर्णन करते हैं—काटि
 वन्त्रो, सूर्यो, विमयिण्यौ और मयिण्यौ क सप्तुहो स भो अन्तानन्तगुणो प्रभा जिन भगवान् महावीर की उव्
 मासित हो रही थी । यह समयसरण स्वर्णकोट स जी अन्तगुणित परमशोभा से सुशोभित हो रहा था ।।सू०१०३।।

पीया), तथापि (आश्लिभ पीया) शब्ध दृष्टिअेव्यर शर्तानं इत्वा शरद, शिशिर, रेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म अने वर्षा आ
 छन्दे ऋतुअेनोः प्रभाव अिध्व यध योतये तानी विशिष्यत्वा, त्वां अतावी रक्षो इतो अेटेह त्वां आवत्ता देव-अनुग्रह
 अने तिर-अने डोड पञ्च अेह ऋतुने उक्ताट युज्जी पको न इतेह तेने दपि, तेभने त्वांती इवा सर्वथा अजु-
 इण ककुवाडी तेजे अेभात्र चित्ते अजवाननी वाचाने आकणी शर्तवा इतां सभसख्यना सिंहासन उपर जिरादेव
 अश्वान म्हावीरने देह के डि सध, अइ विपुन अने भुज्जिअेना सभुअेधी पञ्च वर्षा अन्तितवादेह देभाते इतो
 देहभां आ सभसख्यनुने शोभा स्वर्णनी शोभाने पञ्च टाकर भाए तेवी अजपभ अने अकखन् इती (सू० १०३)

छाया—तस्मिन् तादृशो समवसरणे समासीनस्य भगवतो दर्शनार्थं धर्मदेशना श्रवणार्थं च भवनपति
 व्यन्तर ज्योतिषिक विमानवासिनो देवाश्च देव्यश्च निज निज परिचारपरिवृताः सर्वद्वयौ सर्वधृत्या, प्रभया
 छायया अर्चिषा दिव्येन तेजसा दिव्यया लेश्य या दशदिशो उद्योतयन्तः प्रभासयन्तः समावयान्ति, तान् दृष्ट्वा यज्ञ-
 पाटस्थिता यज्ञयाजिनः सर्वे ब्राह्मणाः परस्परमेवमाख्यान्ति, एवं भाषन्ते एवं प्रज्ञापयन्ति, एवं प्ररूपयन्ति
 भो भो लोकाः! पश्यन्तु यज्ञप्रभाव, येन इमे देवाश्च देव्यश्च यज्ञदर्शनार्थं हृत्त्रिव्यग्रहणार्थं च निज निज विमानै
 निज निज सर्वैकद्वयादिकैः साक्षात् समागच्छन्ति । तत्र स्थिता लोका आश्चर्यकमनुभूय एवमवादिषुः यद् इमे

मूलका अर्थ—‘तंसि तारिमगंसि’ इत्यादि । उस दिव्य समवसरण में विराजमान भगवान् के दर्शन के
 लिये तथा धर्मदेशना श्रवण करने के लिए भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक और विमानवासी देव और देवियाँ
 झुंड के झुंड अपने-अपने परिचार के साथ समस्त ऋद्धि से सर्व द्युति से सबप्रकार के विमानों की दीप्तियाँ से
 दिव्य शोभाओं से शरीर पर धारण किये हुवे सर्व प्रकार के आभूषणों के तेज की ज्वालाओं से शरीर
 समर्पित दिव्य प्रभाओं से दिव्यशरीर की कांतियों से दशों दिशाओं को उद्योतित करते हुवे विशेषरूपसे प्रकाश
 युक्त होकर आते हैं । उन्हें देख कर यज्ञ स्थल में स्थित यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले सभी ब्राह्मण आपस में
 इस प्रकार कहने लगे, इस प्रकार भाषण करने लगे, इस प्रकार प्रज्ञापन करने लगे और इस प्रकार प्ररूपणा
 करने लगे—हे महाब्रुभावो ! देखो यज्ञ के प्रभाव को ! यह देव और देवियाँ यज्ञ को देखने के लिए और
 हविष्य को ग्रहण करने के लिए अपने-अपने विमानों और अपनी-अपनी ऋद्धि के साथ साक्षात् आ रहे हैं ।

भूगते। अर्थ—‘तंसितारिसगंसि’ इत्यादि आ दिव्य समवसरणुमां भीरजता लगवानना दर्शन भाटे तथा तेमने।
 धर्मोपदेश सांभगवा सारुं लवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक अने विमानवासी देवे अने देवीको। योत-योताना परिवार
 साथे त्या आवी रहा इता। तेको योतानी साथे योतानी रिद्धि-समृद्धिथी सर्व प्रकाशवा द्युतिथी, तमाम प्रकारना
 विमानोनी दीप्तीयोथी, दिव्य शोभाकोथी, शरीर पर धारणु करेले तमाम प्रकारना आभूषणु-धरेषाकोना तेजनी
 न्वादाकोथी, शरीरनी दिव्य प्रभाकोथी, दिव्य शरीरनी कातीकोथी उद्योतित करता थका अने विशेषरूपथी प्रकाशयुक्त
 थक आवी रहा इता। आवी रीते, देवी अलकाशेथी अलदृष्ट, अने आभुषणुथी विभक्ति अेवा देव-देवीकोने आवतां
 लेध, यम करवावाणा सर्वथाहाणु, अहरोअहर आ प्रभाणु कुडेवा ला-या, आ प्रकारि निवेद करवा लाया।
 आ प्रभाणु साक्षी पुरवा लाया। आ प्रकारि सलाषणु करवा लाग्तां के, ‘अछि यज्ञार्थी’को ! यज्ञने प्रभाव तो
 रको ! सर्व देव-देवीको। आ यज्ञने लेवा भाटे तेने प्रसाह अने इविष लेवा भाटे सर्व परिवार अने ऋद्धि

जना सुखभागिनः=सुखिन जाताः, माहृढाद्रिकाः=माहृढ-वर्षा-शरेद्वेगन्तवसन्तद्रीप्याः पट्ट=पट्टसंलक्षका क्रुसभः प्रादुरभवन्=प्रादुर्भूता । अथ समयसरणे स्वर्णसिंहासनासीनस्य श्रीमहावीरस्वामिनः प्रमां वर्षयति-वयत्रसूर्ये विद्युत्कोटिमणिगणेष्वोडपि-कोटिसंलक्ष्येष्वत्रेभ्य सूर्येभ्यः तावतीत्यो विद्युद्भ्रुषो मणिसमूहेभ्यश्चापि-भ्रमन्तान्-ननुकोटियुञ्जिता निनप्रमा=श्रीमहावीरमिनस्य प्रमा प्रामासत=भामासिता, तत्र-समयसरणयुसौ स्वर्गतोडोडपि=स्वर्गनोकोटोडपि भ्रमन्तयुञ्जिता=भ्रमन्तयुगीरधिकका सुप्रमा=परमशोभा आसीत् ॥धृ०१०३॥

युक्म-वंसि वारिसगसि समोसरण्यसि समासीणस्य मगवधो दंसबद्ध धम्मदेसणा सबद्ध ष मवणधर शाप्रमतर नोसिय विमाणवासिगो देवा य देवीभो य निय निय परिवार पशुिहुडा सम्बद्धिप सम्बद्धुर्यप पम्नाए छायाए मधीए विस्वेषं वेणं दिवाए छेसाए दसदिसो उज्जोबेमणा पम्नासेमणा समावजति । ते दहदुणं जम्माहृदिया जन्मनाणो सन्धे माहणा परोपरं एवमाहवसति एवं मासति एवं पण्यवेति एव परुविति-मो मो सोपा ! पाल्लु जन्मण्यमावं, वे गं इमे देवा य देवीया य जन्मदंसणं इविससगएण्ह च निय निय विमाणेरि निय निय इहरीदिएरि सबलं समावजति । तस्यद्विया कोया अक्खेत्य मणुमधिय एवं वइसु-ज इमे माहणा पम्ना कयकिया कयपुण्या कयल्लतमा य जेतं जइसाहे देवा य देवीभो य सबलं समावजति ॥धृ०१०४॥

तिर्यक् कुन उपसर्गो) सब शान्त हो गये थे । इस प्रकार की शान्ति होने से सभी लोग सुखी हो गये थे । प्रादुर-वर्षा, शरद, त्रिभिर रेमन्त रसा । और ग्रीष्म-यह छह ऋतुएँ प्रकट हो गई थी ।

ममरसएणं स्वर्णं के सिंहासन पर रिगानमान भोगहावीर स्वामी की प्रमा का बर्णन करते हैं-कोटि वन्त्रो, सूर्यो, विमलियो और मणियो क तयुडो स भी भ्रमन्तानन्तणुयो प्रमा मिन मगयान् मरावीर की तव् मासित हो रही थी । यह समयसएण स्वर्गोडोड से भी भ्रमन्तयुणित परमशोभा से सुषामित हा रहा था ॥धृ०१०३॥

पीडा) उपाधि (आश्लिष पीडा) इयाय दृष्टिजोवर देवान कटा शरद शिशिर, हेमन्त, वसंत, श्रुभ्रम अने वर्षो अ। उभे ऋतुजोने प्रभाव जोडन सह पोतपे वानी विशिष्टता त्या जतावी रको हते। जेटसे त्वां आयाता देव-अनुभ्रम अने तिरि-अने देह पणु जोड ऋतुणै उकणाट युक्वी रको न हते। तेने बाधि, तेभने त्वांनी हवा सयथा अणु-दूत अणुवाची तेजे। जोडाथ बिसे जन्मवानी वयुने यांकाणी शरतां हतां सभसएणुना सिंहासन उपर विशद्वेव बनवान भडावीरने देह इटि सए अर दिवुन अने भविज्जोना समुहोषी पणु वधारे भन्तिवजो। हेआता हते। देहर्मा अथ सभसएणुवर्णने शोभा अन्वर्णनी शोभा अन्वर्णनी पणु उअर अरे तेवी अन्वर्णन अने अणुधर हती। (धृ० १०३)

छाया—तस्मिन् तादृशे समवसरणे समासीनस्य भगवतो दर्शनार्थं धर्मदेशना श्रवणार्थं च भवनपति
व्यन्तर ज्योतिषिक विमानवासिनो देवाश्च देव्यश्च निज निज परिवारपरिवृताः सर्वद्वयां सर्वधुल्या, प्रभया
छायया अर्चिपा दिव्येन तेजसा दिव्यया लेश्य या दशदिशो उद्योतयन्तः प्रभासयन्तः समावयान्ति, तान् दृष्ट्वा यज्ञ-
पाटस्थिता यज्ञयाजिनः सर्वे ब्राह्मणाः परस्परमेवमाख्यान्ति, एवं मापस्ते एवं प्रज्ञापयन्ति, एवं प्ररूपयन्ति
भो भो लोकाः ! पश्यन्तु यज्ञप्रभावा, येन इमे देवाश्च देव्यश्च यज्ञदर्शनार्थं हविष्यग्रहणार्थं च निज निज विमाने
निज निज सर्वैकद्वयादिकैः साक्षात् समागच्छन्ति । तत्र स्थिता लोका आश्चर्यकमनुभूय एवमत्रादिपुः यद् इमे

मूलका अर्थ—‘तंसि तारिमांसि’ इत्यादि । उस दिव्य समवसरण में विराजमान भगवान् के दर्शन के
लिये तथा धर्मदेशना श्रवण करने के लिए भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक और विमानवासी देव और देवियाँ
शुंड के शुंड अपने-अपने परिवार के साथ समस्त ऋद्धि से सर्व धुति से सबप्रकार के विमानों की दीप्तियाँ से
दिव्य शोभाओं से शरीर पर धारण किये हुवे सर्व प्रकार के आभूषणों के तेज की ज्वालाओं से शरीर
सम्बन्धि दिव्य प्रभाओं से दिव्यशरीर की कांतीयों से दशों दिशाओं को उद्योतित करते हुवे विशेषरूपसे प्रकाश
युक्त होकर आते हैं । उन्हें देख कर यज्ञ स्थल में स्थित यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले सभी ब्राह्मण आपस में
इस प्रकार कहने लगे, इस प्रकार भाषण करने लगे, इस प्रकार प्रज्ञापन करने लगे और इस प्रकार प्ररूपणा
करने लगे—हे महाब्रह्मणो ! देखो यज्ञ के प्रभाव को ! यह देव और देवियाँ यज्ञ को देखने के लिए और
हविष्य को ग्रहण करने के लिए अपने-अपने विमानों और अपनी-अपनी ऋद्धि के साथ साक्षात् आ रहे हैं !

भूयानो अर्थ—‘तंसितारिसगंसि’ इत्यादि आ दिव्य समवसरणुभा गीराजता लगवानना दर्शन माटे तथा तेभने
धर्मोपदेश सांभागवा सारु लवनयति, व्यन्तर, ज्योतिषिक अने विमानवासी हेवा अने देवीञ्चो। पोत-पोताना परिवार
साथे त्या आवी रखा हुता तेञ्चो। पोतानी साथे पोतानी रिद्धि-सभ्रद्धिथी सर्व प्रधारना दुतिथी, तभाम प्रधारना
विमानानी हीन्तीयोथी, दिव्य शोभाञ्चोथी, शरीर पर धारणु इरेद तभाम प्रधारना आभूषणो-धरेषुञ्चो। तेजनी
ज्वालाञ्चोथी, शरीरनी दिव्य प्रभाञ्चोथी, दिव्य शरीरनी कातीञ्चोथी उद्योतित करता थका अने विशेषरूपथी प्रकाशयुक्त
थध आवी रखा हुता। आवी रीते, देवी अलकादेशी अलंकृत, अने आभूषणोथी विभवित जेवा देव-देवीञ्चोने आवतां
जेध, यस करवावाणा सर्वथादेषु, अहंदाअहंर आ प्रभाषु इहेवा दा-थ; आ प्रकारे निवेह करवा लाञ्चो।
आ प्रभाषु साक्षी पुरवा लाञ्चो आ प्रकारे सभाषणो करवा लाञ्चो ऊ, “अहे। यज्ञार्थीञ्चो ! यज्ञने प्रभाव तो
रुञ्चो ! सर्व देव-देवीञ्चो। आ यज्ञने जेवा माटे तेने। प्रसाह अने उविष देवा माटे सर्व परिवार अने ऋद्धि

ब्राह्मणा पन्थाः कृतकृत्याः कृतपुण्याः कृतपुत्रगाथ, येषां यज्ञपाटे देवाश्च देव्यश्च सासात् समावयन्ति ।। सू० १०४।।
 टीका— 'वसि ऋषिसगति इत्यादि । तस्मिन् तादृशे=श्लोकिके समसकरणे समासीनस्य=उपविष्टस्य
 भारत भीमशरीरस्त्वामिनः, इदंनार्य=दर्शनार्थं वर्ध्मदशनाभरणार्थं च=धर्मोपदेशभरणाय च मसनपति=व्यन्तर-
 उद्योगिपिक-विमानवासिनो देवाः देवपथ निज निज परिचारपरिहताः सर्वश्रेष्ठ्या=देवोचितया विमानपरिवारादि
 सर्वश्रेष्ठ्या संपुण्या=सर्वकान्त्या दिव्यप्रमया=विमानद्वीप्या दिव्यछायाप=दिव्यशामया अर्चिष्या=दिव्यशरीरस्य
 रत्नादिकेनात्रयया दिव्येन वैज्रसा=शरीरसम्पत्ति रोषिषा=प्रमाणेन वा दिव्यया छेदयथा=दिव्यशरीरकाल्या दश
 दिना उयातपन्ताः=सर्वदिनी प्रकाशकरणेन उद्योतयन्त प्रभासयन्तः=प्रकाशयन्त समावयन्ति=समायान्ति, प्रसूतमीपे
 आगच्छन्तीत्यर्थः तान् समागच्छन्तः सपरिवारान्=देवान् दृष्ट्वा यज्ञपाटस्थिताः=यज्ञस्थाने स्थिता यज्ञयाजिनः=

र्षी श्री लोग उरस्थित प, व या श्राव्य दे व हर बोले-यह ब्राह्मण वन्द्य है, पुण्यवान् है और सुभाषण है
 जिनके यह स्थान में सासात् देवों और देवियों का आगमन हो रहा है ।। सू० १०४।।
 टीका का अर्थ—उस पूर्वोक्त श्लोकिक रचना से युक्त समसकरण में विराजमान भीमशरीर स्वामी के
 दर्शनार्थं और धर्मोपदेश को सुनने के अर्थं मसनपति, व्यन्तर, ह्योतिष्ठ तथा वैमानिक देव और देवियों
 अपने-अपने परिवार सहित तथा अपने-अपने वैमन के साथ आ रहे थे । उन्हें सपरिवार आते देखे यज्ञ

आश्री नारी रहा छे ।" ने ने लोक अनुभव त्वां उपस्थित ध्येस हतो ते आ साकणी अ अक्षरयुग्म यष्टं ज्येष्ठवा
 वाञ्छा हे आ प्रकृतेः धन्वधाने पत्र छे । आ यज्ञार्थोऽप्युपयथाजी अने सुभाष्योवाणा छे । हे नेना यज्ञमां
 आशात् देव-देवीभि आवी रहा छे । (ध०-१०४)
 विशेषार्थ—समवसवसुनी रचना पुर देवोऽने जनानी हती अने ते स्थाना इशवाभां देवोऽने अत्यंत श्रेष्ठभवा
 वारां हनीं । शश्व हे ईन्द्रो तथा अन्य अमृति देवा तीर्थं इशना यशोऽयं आत्म स्वपुत्रिं आशुवाणा हवा
 तथा देवीभिने अस्तिभाव तेभवा पर अध्याप्रवे वशी इतो हतो अने हीषि आरस्तवपुत्री वावी अक्षणा तेजो
 त्वाधी आवी रहा हवा परतु सभ्य अने अश्विनो वास उवावी दोहने रश्मि इशवाण्य पव आ इजिथार्थं
 पवा पश्या छे आ यज्ञार्थोऽने भनोऽक भवा शोतिव यशोऽने अश्विन यणववा पुशोऽक हतो तेमां हेऽहं नचीनवा
 तो हती अ नक्षि । परतु इ-वनी दोहो आश्रित सुजोने अ इच्छे छे इच्छे आ सुष्वासास्वी पर अणु अणु
 अर्थात् इय अतथाभां वसी रहेछ छे ते ते ते जिन शब्दोने आन अणु अणु अणु नधी तेभवा ते आन इशवा
 वाणा निभवा दोष छे । आशी यज्ञार्थोऽप्ये तानी अहंसा जनारण उपस्थित भवेना वे होने, आशुखिने इश

याज्ञिकाः सर्वे ब्राह्मणाः परस्परम् अन्योऽन्यम् एवं-वक्ष्यमाणं वचनम् आख्यान्ति=सामान्यतो वदन्ति, एवं भाषन्ते=भावव्यञ्जनपूर्वकं वदन्ति एवं प्रज्ञापयन्ति=विशेषतः कथयन्ति, एव परूपयन्ति=हेतुद्वयान्तप्रदर्शनपुरस्सर-वृत्तन्ति, तथाहि भो भो लोकाः ! भवन्तः यज्ञप्रभावं पश्यन्तु, येन=यज्ञप्रभावेण इमे=एते देवाश्च देव्यश्च यज्ञ-दर्शनार्थं हविष्यग्रहणार्थं=पायमघृतादि वह्निहुतपदार्थस्वीकारार्थं च निज निज विमानैः निज निज सर्वैकद्वयादिकैः साक्षात्-प्रत्यक्षं समागच्छन्ति, तत्रस्थिताः यज्ञपाटके स्थिता यज्ञदर्शनार्थिनो लोका आश्चर्यरुम्=विस्मयम् अनु-भूय-प्राप्य-विस्मिताः सन्तः एषम्=वक्ष्यमाणं वचनम् अत्रादिपुः-उक्तवन्तः-तथाहि-यद् इमे=एते याज्ञिकाः ब्राह्मणाः धन्याः=प्रशंसनीयाः कृतकृत्या =सम्पादितस्वकर्तव्याः कृतपुण्याः=कृतमुकृताः, कृतलक्षणाः=प्रशस्त-हस्तरैवारिरूपलक्षणवन्तः सन्ति। येषां याज्ञिकानां ब्राह्मणानां यज्ञवाटे=यज्ञस्थाने देवाश्च देव्यश्च साक्षात्-प्रत्यक्षं यथास्यात्तथा समावयन्ति=समायान्ति ॥सू०१०४॥

मूलम्—एवं परोपरं कृहमाणेषु समाणेषु एत्थंतरे ते देवा जन्वाडयं चउय अगो पट्टिया। तं ददृणं

ते जन्वाडगो माहणा निक्कंपा नित्तेया ओमंथिय वयननयण कमला दीणविणयणया संजाया एत्थंतरे अंतरा आगासंसि देवेहि धुहं-तं जहा—

के वाडे में उपस्थित यज्ञकर्म करनेवाले सभी ब्राह्मण परस्पर इस प्रकार सामान्यरूप से कहने लगे, मात्र प्रकट करके कहने लगे, विशेषरूप-से कहने लगे, और हेतु तथा दृष्टान्त दे-देकर कहने लगे—'महाब्रुभावो ! यज्ञ के प्रभाव को तो देखो ! यह देव और देवियों यज्ञ के दर्शन के लिए और हविष्य (अग्नि में होमे हुए खीर घृत आदि पदार्थों) को स्वीकार करने के लिए अपने-अपने विमानों से और अपने-अपने वैभव के साथ प्रत्यक्ष आ रहे हैं।' यज्ञ के वाडे में उपस्थित यज्ञदर्शक लोग यह अचरज देखकर विस्मित रह गये और कहने लगे-यह याज्ञिय ब्राह्मण धन्य है-प्रशंसनीय हैं, कृतकृत्य हैं, कृतपुण्य हैं और मुक्तक्षणां से सम्पन्न है। इन के यज्ञस्थल में देवों और देवियों का प्रत्यक्ष आगमन हो रहा है। ॥सू०१०४॥

करी रहा हुता है, देवोतु बूथ आपथा यज्ञना हुतल्लोम न्नेवा गाटे तेभज भीर धृत आदि पदाथेनि प्रसाद देवा साइ पोतपोताना विमाने। अने वैलव साथे आवी रहूं छे. आ वणते त्या हुणर रडेली न्नमेदनीञ्जे देवोतुं आगमन न्नेध आश्चर्य अने विस्मय पामीने कडेवा लाग्या डे आ यासिड थासुत्तोने धन्य छे, तेका प्रथ सनीय छे कृतकृत्य छे. कृत पुण्य छे अने सुलक्षणे। श्री स पन्न छे. हे नेथी तेभनां यज्ञस्थणे देवदेवीञ्जे प्रत्यक्ष हुणर थाप छे. (सू०-१०५)

“नो मो फ्माय मषय्य मएए एण, भागाय निब्बइ सुरियइ सत्यवाहं ।
 नो भं अणायणियओ सिरिन्दमानो, लोगोवयारकरणे गवओ निणिदो ॥१॥

एवं सोऽथा लक्ष्मिचं कससिय पुब्बं ताव गोयमगोचा इंदुर्यं नर्मं माढो रूढो कुदो आसुरचो मिसिमिसे
 माणो एवं ययासी-अम्ममि चिन्तमाणे अओ को इमो पासढो समासिययिषिढो, जो अपाणं सन्वणुं सब्ब
 शरिसिं क्खेइ, न सज्जेइ सो ? हीसइ, इमो को वि धुचो क्खडमाळिमो इदमाळिमो । अणेण सन्वणुचस्स
 भाडवर्ं इरिसिय इदनाल्पयोगेण देवाणि वचिया, ज इमे देवा जअवाड संगोचंग वेयणुं मव परिहाय तस्य
 गच्छंति । एएसिं इदि विपज्जाओ जामो, जे ण इमे वित्यज्ज चय्य गोप्यजसमभिलसमाणा चायसाविव,
 मळ चय्य यकमभिलसमाणा मंडूगाविव, वंदण चय्य दुगंगमभिलसमाणा मसितयाविव, सहरारं
 चय्य बभूरामिलसमाणा उहाविव, सुज्जणसांसे चय्य अंधयारमभिलसमाणा उव्वगाविव नयवाढं
 चय्य धुचधुसगच्छंति । सांघं जारिसो देवो वारिसावेच तस्स सेवणा । नो ण इमे देवा, देवामासा
 एव । ममरा सहरार मंजरीए गुंजंति, चायसा निवतरम्मि । अत्थु, तइ वि अं तस्स सन्वणुचाव्व
 पूरिस्सामि । इरिणो सीरेण, तिमिरं मयस्सेण, सक्को वरिणा, विधीविया सयुरेण, नागो गक्खेण, पन्चओ
 पक्खेण, मेसो इज्जेण सदिं अुक्खिठ किं सक्खे ! । एवं वेच एमो इदनाळिमो ममतिए लक्ष्मिं चिद्धिउं नो
 सक्खे ! अहुणेअ अं तयतिए गमिय व धुण पात मिणेमि । सुज्जंतिए वज्जोअस्स यरागस्स का गयणा ।
 अं नो कस्सपि साहसं पठियिस्सामि किं अंधयारण्यसासे मुज्जो अन्न पठिरवइ ? अओ सियमेच गच्छामि ।
 एं परिचितिय पोत्ययारखो क्कंइउ वदनासण्यमणीं विं पीयसें विं जणोवधीयवियुसिय ऊंयरोह-हे सरस्सई
 क्खामए ! हे वाविसयलच्छीकेयण ! हे वाइइइक्खवाढयंतणवालग ! हे वाइवाएणविभाएणपचाणण ! वाइ
 स्सयियिधुउळ्खीगराल्खी ! वाइसीहा द्वाय ! वाइनिजयविसाय ! वाइविदभूताळ ! वाइसिरुकरालहाळ !
 वाइकयणीकांडलसठणक्खियाण ! वाइठमत्योमनिरसणपवंबमवंड ! वाइ गोहूमेसणपासाणचक्का ! वाइयामपठमुगर !
 वाइठक्खदिनमणी ! वाइरक्खुम्मूळ्खचारण ! वाइदइयदेवर्वा ! वाइमासणनेरम ! वाइकंसंसादि ! वाइइरियमिगारि !
 वाइअरनेरुएन ! वाइदुमक्खमणी ! वाइइययसक्खर ! वाइसमइपज्जांअदीयण ! वाइक्खपुढामणि ! पंडिय
 निरोमणी ! विमियाणेगेवाहाय ! सद्धसरस्सईसुण्णाय ! दुरीक्खयारराखुमेस ! इषाएनसं गार्थवेदिं पंचसय
 सीसेदिं पविडुओ अयअयसेरेदिं सरिज्जमाओ पधुसमीये समणुपणे । तय गत्थेण सो समोसएण समिदिं पधुयेय
 च पिलोअयं विअपथिं पगिययिषो संसामो ॥अ०१०५॥

छाया—एव परस्परं कथयत्सु सत्सु अत्रान्तरे ते देवा यज्ञपादं त्यक्त्वाऽग्रे प्रस्थिताः । तद् दृष्ट्वा ते यज्ञयाजिनो ब्राह्मणा निष्कम्पा निस्तेजसः अवमथितवदननयनकमला दीनविवर्णवदनाः संजाताः । अत्रान्तरे अन्तरा आकाशे देवैर्षुष्ट, तद्यथा—

“भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन,

मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।

यः खलु जगत्त्रयहितः श्री बद्धमानो,—

लोकोपकारकरुणैकव्रतो जिनेन्द्रः ॥१॥”

एवं श्रुत्वा क्षणमात्रमुच्छ्वस्य पूर्वं तावद् गौनमगोत्रइन्द्रभूतिर्नाम ब्राह्मणो रुरः क्रुद्धः आशुरक्तो मिम-
मूल का अर्थ—‘एवं परोपरं’ इत्यादि । वे परस्पर इस प्रकार कह ही रहे थे । कि इस बीच देव यज्ञ-
स्थान को छोड़ कर आगे घबहे गये । यह देखकर याज्ञिक ब्राह्मण स्तब्ध रह गये, निस्तेज रह गये, उनके
नेत्र और मुख रूपी कमल पुरझा गये, चेहरे पर दैन्य और फीकापन आ गया । इसी समय आकाश में
देवीने घोषणा की—

“ तज प्रमाद आकर भजलो इनको हे भाई ।

हैं मुक्ति-पुरी के सार्थवाह ये अति सुखदाई ।

श्रीवर्धमान जिन अखिल लोक के हे हितकारी,

सकल जीव उपकार-सदा शुभव्रत के धारी ” ॥१॥

यह सुनकर क्षणमात्र ठंडी सांस लेकर सत्र से पहले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण रुर हुए,

भूणेतो अर्थ—‘एवं परोपरं’ इत्यादि आ यज्ञार्थीओ परस्पर ओ प्रभाषि बोलता हुता ऊँ अष्टधामा द्वेवा
यसस्थान ओणगीने आगण आल्या गया आभ थवार्थी तेओ स्तब्ध बानी गया, निस्तेज थर्ध गया. तेओना सुभ
करम धं गया, अने थडेर ओपर हीनता अने दिशाय जश्वावा लागी. आ वभते अ तरिक्षभा द्वेधी घोषणा अने गेणी
अवाणे थवा लाया, तेम ज हिन्य पोकारो सलणावा भांडथा ऊँ—‘हे लाइओ ! तमे प्रमाद तल आ व्यक्तितने
लग्वा भाडो, तेतुं बजन मुक्तिपुरीना सधवारा समान छे. आ लग्न अत्यंत सुप्रकार्ध अने कड्याबुझारी छे आ
वर्धमान ‘जिन’ अथिब्र दोडभां हितकारी अने सकल ल्योना ओपकारी छे, तेमज तेओ शुल व्रतधारी पणु छे. ”

योताना यज्ञनी प्रसंशाने अहले महावीरनी प्रसथा सांलथी तेओनी गज्जबज कुदती छातीनां पाटीयां वेसवा

“मो मो प्माय मतइय मपइ एणं, आगथ निच्छइ पुरिषइ सत्यवाइ।
 नो न जगणययिओ सिरिद्धमाणो, लोकोवयारकरणे गवओ भिषिओ ॥१॥

एवं सोऽत्रा लणमिष ऊत्ससिय पुब्बं ताव गोयमगोयो इंदुर्यै नामं माणपो ख्ठो इन्द्रो भासुक्वो भित्तिमित्से
 मागो एवं वयासी-अर्द्धमि चिज्जमाणे अओ को इमो पासढो समासियथिंढो, जो अप्पाणं सक्कणुं सक्क
 हरिसिं क्खेइ, न क्खइ सो ? दीसइ, इमो को वि घुषो क्खत्तजालिओ इदनाळिओ। अणेण सक्कणुत्तस
 आइवं इरिसिय इदगाक्कप्पभोगेण देवावि वंघिया, न इमे देवा जअवाड सगोचग वेयणुं मंच परिहाय तुत्थ
 गच्छंति। एएत्ति बुद्धि विपज्जासो जाओ, जे न इमे वित्तान्त्त वाय गोप्पजक्कमभिलसमाणा वायसाविच,
 जंअं वाय यक्कमभिलसमाणा मंडूगाविच, चंदण चइय दुग्गंघमभिल्लसमाणा मवित्तयाविच, सएयारं
 वाय वन्नुएमभिल्लसमाणा उदाविच, सुज्जयगतं वाय अपयारमभिलसमाणा उक्खगाविच जअवाडं
 वाय पुत्तपुग्गच्छंति। सब जारिसो देवो वारिसावेव तस्स सेवगा। नो न इमे देवा, येथामासा
 एव। मपरा सएयार मंत्रीए गुत्तंवि, वायसा निवत्तवस्मि। अत्थु, एह वि अइं तस्स सक्कणुत्तगम्बं
 चूरिस्सामि। इरिणो सीरिय, तिभिरं मवल्लेण, सक्कमो वयिण्णा, पिपीळिया समुणेण, नागो गरुडेण, पक्कवो
 वज्जेण, मेसो इंदुरेण सदिं जुग्गिठ किं सक्खे ?। एतं चेव एसो इदमाळिओ मर्मतिए लणपि चिद्धिउं नो
 त्थेइ। अट्टणेअ अइं नयतिए गभिय व घुत्त एत जिणेमि। सुज्जंतिए लक्खोअस्स वरागस्स का गय्णा।
 मां नो रुत्थपि सारजं पडिक्खिस्सामि किं अंनयाएप्पमासे सुत्तो अन्त पट्टिवव ? अओ सिम्पमेव गच्छामि।
 एवं परिचिंथिय पोत्थयएयो क्कन्डडु दग्गासज्जयाणीं विं पीयरेहिं नण्णोववीयविपुसिय कंपरोह-रे सरस्सई
 कंतामण ! रे वापिमयक्कच्छीकेयण ! रे चाइइइक्काइयवण्णामग ! रे वाइवाएण्णिआरणपंवाणण ! चाइ
 स्मरियमिपुत्तुत्तुगीमगात्थी ! चासीरा द्वायय ! वाइमियविसारय ! चाइविदपूवाक ! चाइसिरक्कालक्काल !
 चाइक्कयमीकाडंढणक्किचान ! चाइवमत्थोमनिरसणपक्कंभक्क ! चाइ गोइमपेसणपासाणपक्का ! चाइयामयड्डुगार !
 चाइउत्तुगदिनमणी ! चाइपच्छुम्मूक्कण्णारण ! चाइइइक्कदेवई ! चाइमासाणनेरम ! चाइकत्तंसासि ! चाइइण्णिमिगारि !
 चाइअअरंद्धरन ! चाइअइमत्तमणी ! चाइरिययत्तट्टपर ! चाइसक्कएक्कअत्तदीपग ! चाइक्कच्छुआमपि ! णंठिय
 भिरोमणी ! चिमिणणेणवाइवाय ! स्सट्टसरस्सईपुत्तसाय ! इतीक्कयावराक्क्युमेस ! इक्काअत्तं गायेतेहिं पंचसय
 मीमहिं पतिवुठो नयअयसरेहिं सरिज्जमाणो पक्कसमीने समथुपत्तो। तत्थ गव्ण सेा समोसएण सभिट्ठि पक्कुत्थेय
 व वित्थोइयं किम्मयमि वयिणपिण्णो सेनाओ ॥ए०१०५॥

छाया—एव परस्परं कथयत्सु सत्सु अत्रान्तरे ते देवा यज्ञपाटकं त्यक्त्वाऽग्रे प्रस्थिताः । तद् दृष्ट्वा ते यज्ञयाजिनो ब्राह्मणा निष्कम्पा निस्तेजसः अवमथितवदननयनकमला दीनविवर्णवदनाः संजाताः । अत्रान्तरे अन्तरा आकाशे देवैर्वृष्ट, तद्यथा—

“भो भो प्रमादमवधूय भजन्वमेन,

मागत्य निर्धृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।

यः खलु जगत्त्रयहितः श्री बर्द्धमानो,—
लोकोपकारकरौकत्रवो जिनेन्द्रः ॥१॥”

एवं श्रुत्वा क्षणमात्रमुच्छ्वस्य पूर्वं तावद् गौतमगोत्रइन्द्रभूतिर्नाम ब्राह्मणो रष्टः क्रुद्धः आशुरक्तो मिस-
मूल का अर्थ—‘एवं परोपरं’ इत्यादि । वे परस्पर इस प्रकार कह ही रहे थे । कि इस बीच देव यज्ञ-
स्थान को छोड़ कर आगे चले गये । यह देखकर याज्ञिक ब्राह्मण स्तब्ध रह गये, निस्तेज रह गये, उनके
नेत्र और मुख रूपी कमल सुरक्षा गये, चेहरे पर दैन्य और फीकापन आ गया । इसी समय आकाश में
देवीने घोषणा की—

“ तज प्रमाद आकर भजलो इनको हे भाई ।
हैं मुक्ति-पुरी के सार्थवाह ये अति सुखदाई ।
श्रीवर्धमान जिन अखिल लोक के हैं हितकारी,
सकल जीव उपकार-सदा शुभव्रत के धारी ” ॥१॥

यह सुनकर क्षणमात्र ठंडी सास लेकर सब से पहले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण रष्ट हुए,

भूणोने अर्थ—‘एवं परोपरं’ इत्यादि आ यज्ञार्थीको परस्पर ये प्रभाषि बोलता हुता है ओटदामां द्वेषे
यसस्थान कोण गीने आगण ब्याख्या गया आभ थवाथी तेओ स्तब्ध भनी गया, निस्तेज थई गया. तेओना मुअ
करम छ गया, अने यहेरा उपर हीनता अने क्षिप्रश बथुना लागी. आ वभते अ तरिक्षमा द्वैवी घोषणा अने गेणी
अवाणे थवा दाआ, तेम न् किव थोडोरो सलणावा भांडया है—‘हे लाइओ ! तरे प्रमाद तए आ व्यङ्कितने
बज्जवा भाडे, तेजुं बज्जन मुक्तिपुरीना सधवारा समान छि. आ बज्जन अत्यंत सुभदार्य अने इध्याबुडारी छि आ
वर्धमान ‘जिन’ अण्डित लोकभां हितकारी अने सकल लोयोना उपकारी छि, तेमन तेओ शुल व्रतधारी पशु छि.”

योताना यज्ञनी प्रसंशाने भइये भडावीरनी प्रसंश सांभणी तेओनी गज्जण कुलती छातीनां पाटीयां भेसवा

मित्रायमान एवमादीन् मयि चिदमानेऽन्यः काऽयं पापण्ड समाभिविशिष्टः, य आत्मानं सर्वत्र सर्वदर्शिनं
 कथयति, न सञ्चते स ? इत्यतेऽयं काऽपि धूर्तः कस्यनालिककेन्द्रनासिकः। अनेन सर्वज्ञत्वस्याहम्परं
 दर्शयित्वा इन्द्रनासमयोगेण देवा अपि वञ्चिता, यत् इमे देवा यज्ञपाठं साहोपाह्नयेवम् मां ष परिहाय
 तत्र गच्छन्ति। एतेषां बुद्धि विपर्ययिता जातः, येन इमे तीर्थजल त्यक्त्वा गोप्यवसममिस्रयन्तो
 वायसा इव, जल त्यक्त्वा स्थलममिलयन्तो मच्छूकाइव, चन्दनं त्यक्त्वा दूर्गधममिलयन्तो मसिका
 इव साहकारं त्यक्त्वा रूर्ध्वममिलयन्त उट्टा इव, सूर्यमकाशं त्यक्त्वाऽन्यकारममिलयन्त उड्डका इव,
 यज्ञपाठं त्यक्त्वा पूर्णमुपागच्छन्ति। सत्यम्, याज्ञको देवास्ताइशा एव तस्य सेवकाः। नो सन्निभे देवा,
 देवानामासा एव। अमराः साहकारमश्रयी गुब्रन्ति वायसा निवन्तरी। अस्तु, तथाऽप्यह तस्य सर्वज्ञत्वगर्भं

कुद्द इष्ट, माल हो उठे और मिसमिमाते हुए इस प्रकार बोले—‘मेरे मीजूद् राते, दूसरा कौन है यह
 पालण्ड और विशिष्टादी, नो अपने आप को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी करता है? प्रतीत होता है, यह
 कोई पूर्वज्ञपटनाम् रचनेवाला इन्द्रनासिया है। इसने सर्वज्ञता का आहम्पर विलाकर, इन्द्रनाल का
 मयोग करके, देवों को मी ठग लिया है। इसी से ये देव यज्ञपाठे को और सांगोपांग देवों के वेधा
 मुष्टको छोड कर वहाँ ना रहे हैं। इनका सिर फिर मया है, इसी से ये तीर्थों के जलको त्याग कर
 गोप्यदं जगदी अमिलपा करनेवाल कौओं की तरह, जल को त्याग कर परल की कामना करनेवाले
 मँडकों की तरह, चंदन को त्याग कर मन्म की इच्छा करनेवाली मखिलयों की तरह, आम को त्याग कर
 र्धूम ही अमिलपा करनेवाले कटों की तरह, और सूर्य के आलोक को त्याग कर अंधकार की
 अभिमिया करनेवासे उच्छुओं की तरह, यज्ञ की भूमि को त्याग कर पूर्व के पास जा रहा है।

भावः। आस इमान् बाण्डे। तेजोऽर्थां प्रथम जीवत वेदानी न-द्रष्टि नाभने प्रथम्यु बोधाभमान कर्त्त बावपीठे। जनी
 गये। अने ते प्रोधयेथधी धमपण्डा इते। देवना बाण्डे हे—‘भारी इयानिमा अवेते ते वन्नि हेणु छे ले येताने
 सपु अने सव इर्धी भानी रको छे। जेभ बात्रे छे हे अहर हेर्ध पाण्डी अने विद डावडी तेमअ पून अने षपट
 जनी छे-अजण रवी रको जेभ। ते तो सव सेने आस नर करी अ-अजणने प्रथेण करी। सर्व देव-देवीजाने पणु
 इनी रको छे। जधी देवे वजना वाभने तेमअ अजिचंचं ववेहेने अकथवाजण भने रवु ल्पणे भाजण वाइवा
 वाभ छे देवेनां भाष्य हेरी अना छे हे तीर्थरचने छे ही आशयना पवनीनी उअज करी रका छे। अा देवा वु

चूरिष्यामि। हरिणः सिंहन, तिमिरं भास्करेण, शलभा वहिना, पिपीलिका समुद्रेण, नागो गरुडेन, पर्वतो वज्रेण,
मेघः कुञ्जरेण सार्धं योद्धुं किं शक्नोति? एवमेवैव ऐन्द्रजालिकी ममान्तिके क्षणमपि स्यादं नो शक्नोति। अयुनै-
वाहं तदन्तिके गत्वा तं धूर्त्तं पराजयामि। सूर्यान्तिके खद्योतस्य वराकस्य का गणना?। अहं न कस्यापि
साहाय्यं प्रतिक्षिष्ये, किमन्धकारपणशो सूर्योऽन्यं प्रतीक्षते? अतःशीघ्रमेव गच्छामि। एवमुक्त्वा पुस्तकद्वस्तः

सच है, जैसे देव वैसे उस के सेवक! निश्चय ही ये देव नहीं, देवाभास (झूठे देव-देवसारीखे प्रतीत होने-
वाले) हैं। भ्रमर आम की मंजरी पर गुंजार करते हैं, कौवे नीम के पेड़ पर। खैर, फिर भी मैं उसके
सर्वज्ञता के अहंकार को चूर-चूर करूंगा। क्या हिरन सिंह के साथ, तिमिर भास्कर के साथ, पतंग आग के
साथ, चिड़टी समुद्र के साथ, सर्प गरुड़ के साथ, पर्वत वज्र के साथ और मेढा हाथी के साथ युद्ध कर
सकता है? कभि नहीं कर सकता है। इसी प्रकार वह इन्द्रजालिया मेरे सामने पल भर भी नहीं उठर
कता। अभी इसी समय मैं उसके पास जाकर उस घर्न की बोलती बंध करता हूँ। सूर्य के समक्ष वेचारे
जुगनु की क्या गिनती! मैं किसी की सहायता की प्रतीक्षा नहीं करूंगा। अन्धकार का नाश करने में सूर्य को
क्या किसी की प्रतीक्षा करनी होती है? अतएव मैं शीघ्र ही जाता हूँ।

गणक्षेनो स्वाह द्वेनार कागडा नेवा देभाय छि। पाष्ठीने त्वाग करी जभीननी वांछना करनार मेंछंड नेवा ज्वाथा
छि। य इननी गंधने तल्ल भजनी गध देवावाणी माभीओ नेवा आ देवा लागे छि। आंभावृक्षने बहद्वे कांटावाणा
भावणनी अंभना करवावाणा गिंट नेवा तेओ देभाय छि। सूर्यना तेजने त्वाग करीअंधकारनी छुंछा करनार
धुवडे नेवा आ देवा देभाय छि। अदेअर तेओ यसननी पवित्र भूमिने छाडीने धूर्तनी धूर्तशाणासां ज्ध रखा छे।
भराभर छे, नेवा देव, तेवा पूजरा।

निश्चयही ज्वाथाय छि के आ देवा नथी, पषु देवभास-जोटा देव छे, जरी वात छि के लभराओ आंभानी मंजरी
उपर शुभ्रव करे छे अने कागडाओ लींभडाना आड पर का-का करे छे जेर, हु तेनी सर्वसता अने अड ताना
यूरेचुरा करी नाभीश। शुं डरथु इसड साथे जेद करी शके? शुं अंधकार सूर्यनी साथे छुंरिखिअ करी शके? शुं पर्वत
पतंगीओ आग उपर लुत भेगवी शके? शुं कीडी समुद्र पाष्ठी पी शके? शुं अंधकार सूर्यनी साथे गडने छरावी शके? शुं पर्वत
वजने तोडी शके? शुं मेंडु डाथी साथे युद्ध करी शके? आवी रीते आ छुंन्द्रजगीओ मारी साथे ओक पण पषु टडी
शकथे नहि। डभथा ज हु तेनी पासे ज्ध, तेनी गेलानी अंध करानी हठ! सूर्यना तेज आगण भीथारा आगि-
यानी शी वशात? हुं डाधर्नी पषु सकायता आ काममां धुंछते नथी, शु अंधकारनेा नाश करवामां सूर्य डाधर्नी
नाड जेते। कथे? भाटे डवे हुं शीघ्र त्यां ज्ध पडोअुं।

मित्सायमान एरमवादीव मयि विषमामेज्यः क्रोड्यं पापण्डः समाश्रितवितण्डः, य आत्मानं सर्वं सर्वदंष्ट्रिनं
 कृषयति, न कञ्चते सः? इत्येतैर्यक्रोडयि पूर्वैः रूपटमालिकपेन्द्रनासिकः। अनेन सर्वज्ञत्वस्याहम्बरं
 दर्शयित्वा इन्द्रनासमयोगेण देवा अपि वञ्चिताः, यत् इमे देवा यज्ञपाठं साहोपाह्वेवदस्य मां च परिहाय
 तत्र गच्छन्ति। एतेषां बुद्धि विषयांसा जावः, यन इमे तीर्थजस्य स्यक्त्वा गोप्यदजलममिलयन्तो
 वायसा इव, जस त्यज्वा स्वसममिलयन्तो मधूकाश्व, बन्दनं त्यक्त्वा दूर्गधममिलयन्तो मक्षिका
 इव सत्कारं त्यज्वा वधूरममिलयन्त उच्छ्वा इव, सूर्यप्रकाशं त्यक्त्वाऽन्धकारममिलयन्त उच्छ्वा इव,
 यज्ञपाठं त्यक्त्वा धूर्लघुगाच्छन्ति। सत्यम्, यादञ्चो देवास्त्राहृष्टा एव तस्य सेवकाः। नो लस्विमे देवाः,
 देवानामासा एव। भ्रमरा सत्कारमङ्गीषो गुह्रन्ति वायसा निम्बतरौ। भस्तु, तयाऽप्यह तस्य सर्वज्ञत्वगर्वं

कुन्द हुए, लस हो उठे और मिसमिगते हुए इस प्रकार बोले—'मेरे मौजूद रहते, दूसरा कौन है या
 पानच और वितण्डासारी, जो अपने भाप को सर्वज्ञ और सर्वश्री करता है? प्रतीव होता है, या
 कोई पूर्वरूपटमाल रत्नेवाला इन्द्रनासिया है। इसने सर्वज्ञता का आहम्बर दिसाकर, इन्द्रजाल का
 प्रयोग करके, देवों को भी ठग लिया है। इसी से ये देव यज्ञपाठे को और सांगोपांग वेदों के वेचा
 मुहूर्तों जोड़ कर नहीं जा रहे हैं। इनका सिर फिर मया है, इसी से ये तीर्थ के जलछो त्याग कर
 गोप्यद के जलछी अमिक्षपा करनेवाळ कर्मों की तरह, जस को त्याग कर यल की कामना करनेवाळे
 मंडहों की तरह, बंदन को त्याग कर मन की इच्छा करनेवाली मक्सियों की तरह, आम को त्याग कर
 वधूल की अमिक्षपा करनेवाळे कंटों की तरह, और सूर्य के आसोक को त्याग कर अंधकार की
 अमिक्षपा करनेवाळे उच्छुर्मों की तरह, यज्ञ की धूमि को त्याग कर धूर्ल के पास जा रहा हैं।

वाग्ना। आस देवाना वाग्ने। तेज्याश्री प्रथम गोपम वेदी उच्छ्रुति नाभने। आसवु होवाभमान यत् वावपिदि। वनी
 अये। अने ते होधावेशधी धमपजडा इतो। योडवा वाग्ने के—'आशी इयानिभां जेवा ते वनि होवु छे छे येताने
 सभंज अने सर्वदर्शी आनी रको छे। जेभ बात्रे छे केअर होड पाभ दी अने बिद हावाही तेभभ धूर्ल अने इपट-
 वनी छत्रभज रबी रको होव। ते तो सर्वज्ञते आस करे करी छत्रभजने प्रयोग करी सर्व देव-देवीअने यवु
 इनी रको छे। य बी देवे बसना वाग्ने तेभ र अविद्याभंग वेदोने अक्षयवाणा अने यवु रकछने आजग वाग्ना
 ब्य छे देवेना भुष्य करी अना छे के तीर्थ रग्ने छे ही आशाना पाळीन। भुष्य करी रका छे। अय देवा वुड

वादिबूथमष्टमणे ! वादिद्वयशलयवर ! वादिश्लभमज्जलदीपक ! वादिचक्रचूडामणे ! पण्डितशिरोमणे ! विजितानेक-
 वादिवाद ! लब्धसरस्वती सुप्रसाद ! दूरीकृतपरगर्वोन्मेष ! इत्यादिशयोगायद्धिः पञ्चशतशिल्पैः परिष्ठितो जय-
 जय शब्दैः शब्दायमानः प्रशुसमीपे समनुप्राप्तः । तत्र गत्वा स समप्रसरणसमृद्धिं प्रश्रुतेजश्च विलोक्य क्रिमेतदिति
 चकितचित्संजातः ॥सू० १०५॥

टीका—‘एवं परोपर’ इत्यादि । एवम्—अनुपदसुक्तं वचनं, परस्परम्—अन्योऽन्यं, कथयत्यु=वदत्युसत्यु
 अत्रान्तरे=एतस्मिन्मध्ये ते=सपरिवारा विमानमारूढाः समन्तरन्तोदेवाः, यज्ञपाठकं=यज्ञस्थानं त्यज्या=अतिक्रम्य
 अग्रे प्रस्थिताः प्रयाताः । तद् दृष्ट्वा ते यज्ञयाजिनो=याज्ञिकाः, ब्राह्मणाः, निरुम्पाः=सन्ध्याः, निम्तेजसः=तेजो रहिताः,
 लिए देवेन्द्र ! हे वादी-शाशक नरेण ! हे वादी-रूपी हरिणों के सिंह । हे वादी रूपी
 ज्वर के लिए ज्वरकुश । हे वादि-समूह को पराजित करनेवाले श्रेष्ठ मनु ! हे वादियों के हृदय में तुमने
 वाले तीखे शल्य ! हे वादी रूपी पतंगों के लिए जलते दीपक ! वादिकचक्रचूडामणि ! हे पण्डित शिरो-
 मणि । हे अनेक वादियों के वाद को विजय करनेवाले ! हे सरस्वती मा सुमताद पानेवाले ! हे अन्य
 विद्वानों के गर्व की वृद्धि को दूर करनेवाले ’’ इस प्रकार के योगोगान के साथ इन्द्रभूति ब्राह्मण प्रभु के
 पास पहुँचे । वहाँ पहुँच कर समवसरण की समृद्धि और प्रभु मा तेज देवकर वर ‘यह क्या !’ इस प्रकार
 चकित-चित्त हो गये ॥सू० १०५॥

टीका का अर्थ—जब वे पूर्वोक्त वचन आपस में कह रहे थे, उसी बीच जगरिचाण और विमानों पर
 आरूढ वे आते हुए देव यज्ञभूमि को लान कर आगे चले गये । यह देवकर ने यज्ञकर्ता ब्राह्मण स्तब्ध-
 देवेन्द्र ! हे वादि शाशक नरेण ! हे वादि-कंस-कृष्ण ! हे वादि-इन्द्रोत्तम विंदा ! हे वादि इपी तास्ता नाथ भाडे
 न्वरंशुक्य औषध समान ! हे वादि समूहने पराजित करवायाणा गर्दल ! हे वादिना यनीश्या वायवायाणा तीक्ष्ण शल्य ! हे
 वादि इपी पतंगोने लक्ष्म करवायाणा दीपक ! हे वादि यज्ञ-नृपभूमि ! हे पण्डित सिद्धेभ्यः ! हे वादि विरय
 विजेता ! हे सरस्वती देवीना वृथाशील ! विद्वानेना गर्धने तोडमार सुपंच यथान ! ” आमा यज्ञोगान करारने
 इन्द्रभूति पोताना शिथ्य यशुहायनी साथे प्रभु पाने पक्षेन्थे । त्वां पक्षेन्वता न पश्चमन्वत्पुं भव्य अने तेनेनयय
 दर्शन लेछे तेओ गथा अकित चित्त गनी गथा. (सू० १०५)

विशेषार्थ—न्यादे ब्राह्मणोच्चे ज्येष्ठुं कं देवो तो यज्ञभूमिने वसानी तेरी पण्य ब्राह्मण रभी रया छे, त्वादे तेओ
 निराय धर्छ गथा. तेभनी सुभनी कान्नि ओछी वया अगी तेओने पोतानी भनिंश अने कीर्ति ओछा वनां यज्याया.

कण्ठलुप्तमांसनापान्निभिः पीताम्बरैः यज्ञोपवीतविभूषितसव्यकन्धरै - हे सरस्वतीकृष्णामरण ! हे वादिविजय
 लम्पीकेतव ! हे वादितुलकपाटयन्त्रणतालक ! हे वादिवाराणविदारण पञ्चानन ! वाद्यैर्धर्यस्मिन्बुलुकीकरागस्तै !
 वादिसिद्धाष्टापर ! वादिविजयविशारद ! नादितुल्यभूषाल ! वादिसिरःकरालकाल ! वादिकदलीकाण्डलुल्लङ्घनकृपाण !
 वादिवमस्तोमिनिरसनमचण्डमार्षण्ड ! वादिगोभूमपेपणपायाजचक ! वाद्यमयदुम्भर ! वाद्युद्धमदिनमणे ! वादिद्विसौ
 मूलनवारण ! वादितैत्यवेवपने ! वादिस्नासनलेख ! वादिरंसकसारै ! वादिहरिणसुगारै ! वादिवल्कराङ्कुञ्ज !

इस प्रकार कह कर और पुस्तक हाथ में लेकर गौवसौ क्षिप्यों के साथ मग्न के निकट जाने को
 रवाना हुए । उनके क्षिप्य कमण्डलु और धर्म का आसन हाथ में लिए हुए थे । पीताम्बर पहने थे । उनका
 बायाँ कंधा यज्ञोपवीत से सुशोभित हो रहा था, वे अपने गुरु-इन्द्रभूति का इस प्रकार यज्ञोगान कर रहे थे
 और नयनयकार करते जा रहये । - हे सरस्वती कृती कृष्णामरणवाले ! हे वादी-विजय की लक्ष्मी के लज्ज !
 हे वादीर्या के मूत्र कृपी डार को बच कर देनेवाले वाले ! हे वादी कृपी इस्वी या विदारण करनेवाले ।
 पंचानन ! हे वादियों क ऐश्वर्य कृपी सागर को बुझू में पी जानेवाले अण्ण्वि ! हे वादि-सिंहों के लिए
 अष्टापरद ! हे वादिविजय सिद्धापर ! हे वादितुल्यभूषण ! हे वादियों के सिर के चिकराल काल ! हे वादी कृपी
 कृष्णियों को काटनेवाले के लिए कृपाण-तलवार ! हे वादि-जम के समूह को नष्ट करनेवाले मचण्ड मार्षण्ड !
 हे वादियों कृपी नेत्रुओं को पिलने के स्थिर पायाज चक ! हे वादिया कृपी कृचे पड़ों के लिए मुद्गार !
 हे वादी कृपी उच्छ्रां क क्षिय मय ! हे वादि-त्रुसों का उल्लाह फूँकनेवाले गजराज ! हे वादी कृपी देरियों के

का प्रभुवै अक्षरान् कान्, दाघमां पुरस्कृच्छ, पांचवना शिष्यना अनुवाचने छाने प्रभु पासे नवा ते रवाना
 यथा तेना पदुमिष्ये तेभन्तु कभगण अने इभन्तु आचन दाघमा पक्षयु उतु पीताम्बर धारण क्युं उतु तेना
 दाघिा अथो यज्ञोपवीत वडे शोभी रह्यो उतेना पौचाना छरु 'इन्द्रभूतिना यज्ञोगान अने कृष्णव्यकार श्लाघावते। तेना
 शिष्य समुदाय पक्ष तेनी साथे साथी रह्यो उते। यज्ञोगान देवा नकारना उतय, ते कडे छे - " हे सरस्वती कृपी
 कठिने धारण करवावाणा ! हे वादी-विजयनी कृष्णीना प्यरूप ! हे वादिज्ञाना अथ कृपी दाशेने जय करवावाणा !
 हे वादी कृपी क्षीर्ण विदारण करवावाणा पञ्चानन देवशी सिद्ध अमान ! हे वादिज्ञाना अश्वर्य कृपी सागरने शोणनि
 पी न्यवावाणा अगस्त्य मुनि ! हे वादि कृपी सिद्धना अष्टापर ! हे वादि विजय विशारद ! हे वादितुल्य भूषण !
 हे वादिज्ञाना जल अमान ! हे वादि कृपी कृषी कृष्णी कृष्णपावणी तलवार अमान ! हे वादि कृपी अक्षराने नष्ट
 करवावाणा अश्वर्य ! हे वादि कृपी वडने पीतनवाणी वडी अमान ! हे वादि कृपी अन्ना घनने शोणनर प्रहसर अमान !
 हे वादि कृपी धरयेना श्वर्य अमान ! हे वादि कृपी वडने कृष्णी इडी देना अण्णपाण अमान ! हे वादि कृपी देयेना

रष्टः=अन्तर्हितक्रोधः, ततः कुब्जः=स्फुरितारधरतया व्यक्तक्रोधः, आधुरक्तः=शीघ्रक्रोधारुणनयनः, मिसमिसायमानः=क्रोधेन जाञ्जल्यमानः एवं=वश्यमाणं वचनम् अत्रादीत्—“मयि-इन्द्रभूतौ विद्यमाने=तिष्ठति सचि, अन्यः=मद्भिन्नः कः=अपरिचितः अयम्=एवः पापण्डः=विदम्बनः समाश्रितवितण्डः=वितण्डात्रादी वर्तते, यः आत्मानं-सर्वज्ञं=सकलपदार्थज्ञानवन्त सर्वदर्शिनं=सकलपदार्थप्रत्यक्षीकारिणं कथयति=लोकसमक्षे वदति, स न लज्जते । अनेन=पापण्डिना एवं सर्वज्ञं=सकलपदार्थज्ञानवान् ऐन्द्रजालिकः=मायावी दृश्यते=अनुमीयते । अनेन=पापण्डिना अयं कोऽपि धूर्तः कपटजालिकः=कपटजालवान् ऐन्द्रजालिकः=मायावी दृश्यते=अनुमीयते । अनेन=पापण्डिना सर्वज्ञत्वस्य=सकलपदार्थज्ञानशालितायाः सूक्ष्म आडम्बरं=प्रपञ्चं दर्शयित्वा=प्रकाश्य इन्द्रजालप्रयोगेण=मायायाविस्तारणया देवा अपि वञ्चिताः=छलिताः, यत्=यस्माद् वञ्चनात् हेतोः इमे=एते देवाः यज्ञपाठकं=यज्ञस्थानं

देवों की इस प्रकार की घोषणा को सुनकर, क्षणभर ऊँची भास लेकर, सब से पहले गीतमगोत्र में उत्पन्न इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ । होठ फड़कने लगे-अतःक्रोध प्रकट हो गया । उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये । वह मिसमिसाने लगे-क्रोध से जलने लगे और इस प्रकार वचन बोले-मेरे विद्यमान रहते, यह दूसरा कौन पाखंडी और वितंडात्रादी है जो आपको सर्वज्ञ-सब पदार्थों का ज्ञाता और सर्वदर्शी-सब पदार्थों को साक्षात्कार करनेवाला-कहलाता है? लोगों के सामने ऐसा कहते उसे लज्जा नहीं आती? जान पड़ता है, यह कोई कपटजाल रचनेवाला मायावी है! इव पाखंडीने सर्वज्ञता को प्रकट करनेवाला प्रपंच रचकर, इन्द्रजाल फैलाकर देवों को भी छल लिया है-देव भी इसके चक्कर में आ गये

देवोनी या प्रभाषेनी घोषणा सांख्यी, तेजो वधारे, शुभयथुभां पडथा. तेभने लाशुं डे, जे आनेो उपाय नडि करवासा आवे तो धर्मेना डालु आपणा ड्वाथभाथी सरी पड्शे! तभाभ यसाथीज्जोभा, धंन्द्रभूतिने धालु लागी आण्यु. तेना कुंधनी सीभा वधी गड डारथु डे तेमं भान ते वणतना सभाज्जभां अद्वितीय डुं. तेमं सान विथाण अने अप्रतिम डु तेना प्रभाव थारेभाशु पडी न्हो डुतो तेवु वड्थायुं लललला दलिलणाज्जोने डं ड्वाथी नाथुं. तेनी इरिड्वाड डरी थडे तेम ते वणतनासभाज्जभां, डोड दृष्टिगोथार थुं न डुं. तेनी विद्वता, लापाओ उपरनेो डथु, तेमज्ज भासाविडि ओण्णसनी तुलना थड् थडे तेम न डुती. तेने मन, भगवान पाथ डी अने विं ड्वावी ज्जथाता. आ उपरंत, भगवाने लोकेने धंन्द्रज्जण द्वारा वश ड्यां छे, तेम तेने ज्जथाया डरवु डुं. तेथी भगवान 'भायावी भूतणुं' छे' तेम तेनी भान्थता डुती मनुष्य स्वलाव जेट्ठो गंधा लोणेो अने सरण डोय छे डे, तेने वथ डरवाभा अजी मडेतत पडती नथी; पथु देवा जे थुंर अने द्वाक्षिड्य युडत डोय छे, तेओ पथु आ धंन्द्रज्जगियाती ज्जगमां सपडड गथा! मारुं सान अगाध अने असीम छे, तेमज्ज थार वेडोना भूणभूत अर्थे अने तेना रड्थने भाषुवावाणुं छे, वणी वेडना अं गो-

अवस्थितवदनवनकमलाः=अवमदितवसुवनेत्रफलसा, दीनविवर्णवदनाः=न्ययुक्तनिव्यमसुखाः संनवाः। अत्रान्तरे-
 प्राणमन्त्रक समये भन्तराऽऽकाये=गानमन्त्रे देवैः पुषितम्=उवैरुश्चारितम्-किमित्यार-वययेस्यादि-ववारि-

मो मी-भष्याः। युष्म प्रमादम् अवधूय=द्रीकृत्य निर्वृतिपुरी=मोसपुत्री प्रति सार्थवारम् एनम्=
 धीरुदमानमर्षु भागत्य मनभयम्=सेषभम्। यः धीवर्यमानस्वामी भगत्वपरितः=श्लोककल्प्याणकारी, लोकपोष
 कारकरुणैक्य-जनानामुद्वारणमार्गोपदेशस्योपकारकरणे प्रथाननियमधरः, जिनेन्द्रः=रागद्वेषनयिना सामान्य
 केवलिनो स्वामी वास्ति।

परम्-इत्यतरेषुपुषितं वचनं भुत्वा=भक्तगोचरीकृत्य सक्षमापम् उच्छ्वस्य-उर्ध्ववास शुशीला, पूर्व-सर्वतः
 प्रथम वावत् मन्येव्यवदत्तुः सत्तु गीतमगोत्रः=गीतमगोत्रोत्पन्नः, इन्द्रधृतिः=वदरास्यः नाम=मस्तिदो प्राज्ञाणाः
 सप्त रश्मयः, वैजोहीन हो गये। उनके मुल और नेत्र कुम्बला गये। उनके चेहरे पर दीनता प्रकल्पने
 लगी। मुल फीका पद गया। षण प्राज्ञण इस प्रकार खेद-स्त्रि हो रहे थे, उसी समय आकाश के
 मध्य में देवीने उग्र स्वर से घोषणा की। वह घोषणा क्या थी, सो कहते हैं—

‘मो मय्य वीनो! तुम प्रमाद का परित्याग करके, मोस रूमी नगरी के लिए सार्थवार के समान
 भीरुप्रमान मगधान को आहूत मनो, इनकी सेवा करो। यह धीरुवर्धमानस्वामी त्रिभाक के कल्याणकारी हैं,
 मनुष्यों के उदार के मार्ग का उपदेश देन रूप उपकार करती ही इनका प्रथान प्रव-नियम है। यह जिनो=
 रागन्देष को भीतनेवाले सामान्य केशवियों के स्वामी हैं।’

आ उपशान देवीनी घोषणु तेभना आंभकवामां आवती. आनी घोषणु कने उद्वारवमा, तेजो उठेवा स भगवाभा हे—
 ‘हे भन्व लये। तमे तमाशी निद्रा उदारो! आवो अनुत्वं अवसर इरी इरी नकि आवे! अय अपूर्वं अवसरतो
 व न वरि इत्वाणु साधि। शिश इपी नत्ररीमां न्य नो आ सर्वेदुष्ट सवद्यो तभने भजी अये छे। आत्माने अनत
 दुष्ट आस्थावणु भाभ तभारे आंजलि आवति उय रई छे। भजनवन वर्धमान स्वाभिन कने, तेनी उपासना इये.
 आ भजनने अनत अ ध्याजो वेदी, उदुष्ट आत्मभवेतिने प्रभटानी छे तेभ न स आरना त्रिविध वाचत
 यभन इरुं छे तभारे आ ससानी आज करती अणुआत्मांवी उअरु घोष तो, तेभने उचयेय आंभयो। तेभना
 उभनेना निवार इये। अय भजनवने देवे, नये होइतुं छित वरु छे स आरना अपर पर दुःखीमांवी भूटवानी
 तेजो वरयेय अपपी रक्ष छे इअरु हे तेजो जे आ कानधया, स्वयं प्राप्त इरी छे तजो जे सज-देव निक्षर आदिने
 भाजो भाभ इयो छे तेजो आभन्व आअपुष्टयोभां पण केषवा भावे छे

तस्य देवस्य सेवकाः अपि तादृशाः=वदन्तुः रूपाः एव भवन्ति। इमे खलु देवानो सन्ति, किन्तु देवामसाः-
 देववदन्त्ये केचित् सन्ति। अमराः सहकारमज्ञयाम्-आम्रमज्ञया गुञ्जति-मधुरमव्यक्तं शब्दं कुर्वन्ति, वायसाः-
 कामाः निम्बतरौ=निम्बवृक्षेऽवुरागं कुर्वन्ति, अस्तु=एतद्भवतु तथापि=देवानां धूर्तपार्श्वे गमनेऽपि, अहम् तस्य
 धूर्तस्य सर्वज्ञत्वार्थं=सर्ववित्त्वजनितदृक्कारं, चूरिष्यामि=मर्दयिष्यामि। हरिणः=मृगः सिंहेन किं योधुं शक्नोति ?
 धूर्तस्य सर्वज्ञत्वार्थं=सर्ववित्त्वजनितदृक्कारं, चूरिष्यामि=मर्दयिष्यामि। हरिणः=मृगः सिंहेन किं योधुं शक्नोति सह,
 धूर्तस्य सर्वज्ञत्वार्थं=सर्ववित्त्वजनितदृक्कारं, चूरिष्यामि=मर्दयिष्यामि। हरिणः=मृगः सिंहेन किं योधुं शक्नोति सह,
 इत्युत्तरेणान्वयः, एवमग्रेऽपि, तिमिरम्=अन्धकारः, भास्करेण=सूर्येण सह, शलभः पतङ्गो वह्निना=अग्निना सह,
 पिपीलिका समुद्रेण सह, नागः=सर्पः, गरुडेन=यक्षिराजेन सह, पर्वतो वज्रेण सह, मेघः=मेघः कुञ्जरेण=हस्तिना
 सार्धं=सह योधुं=एवं कर्तुं किं शक्नोति ? अपि तु न शक्नोति, एवमेव=पूर्वरीत्यैव एवः=अयम् ऐन्द्रजालिकः=
 मायावी, मस-अन्तिके=सन्निधौ क्षणमपिस्थानं नो शक्नोति। अयुनैव=अस्मिन्नेकाले अहम्-तदन्तिके=धूर्त-
 पार्श्वे गत्वा तं=छलितदेवादं, धूर्तं=मायाविनं, पराजयामि=परास्तं करोमि। सूर्यान्तिके सूर्यसमक्षे स्वद्योतस्य
 वरारुस्य=मन्दस्य का गणना ? न गणनेतिभावः। अहम्=ऋष्यापि विदुषःसाहाय्यं=साहायताम् न प्रतीक्षिष्ये=

नहीं। निरसन्देह ये देव नहीं, देवाभास हैं-देव जैसे प्रतीत होनेवाले कोई और ही हैं। अमर आम्र की
 मंजरी पर गुनगुनाते हैं, परन्तु काक नीमके पेड़को ही पसंद करते हैं। खैर, देवों को उस छलियों के पास
 जाने दो, पर मैं उस छलिया के सर्वज्ञत्व के घमंड को खंड कर दूंगा। हरिण की क्या शक्ति जो वह
 सिंह के साथ युद्ध करे ? इसी प्रकार अंधकार, सूर्य के साथ, पतंग-अग्नि के साथ, चिड़टी सागर के साथ,
 सौंप गरुड़ के साथ, पर्वत वज्र के साथ और मेढा हाथी के साथ क्या युद्ध कर सकता है ? नहीं, कदापि
 नहीं। इसी प्रकार वह धूर्त इन्द्रजालिया मेरे समक्ष क्षणभर भी नहीं टिक सकता। मैं अभी उस धूर्त के
 पास जाकर देवादिकों को भी छलनेवाले मायावी को परास्त करता हूँ। सूर्य के सामने वेचारा जुगट्ट-आग्या

दिया नथी पशु देवाभास छे, ओटले देव जेवा जथाता आ कोर्ध भीज्जज छे. लभराओ आआनी मांजरी पर
 शुभरन करे छे पशु डागडाओ दीआडाना आडने ज परस छे. जेर। देवाने ते धूर्तनी पासे जेवा दे। पशु
 छे तेनी पासे जेर्ध तेनी सर्वज्ञताना बुद्ध उडाडी दधय। शु डरबिधुं सिंइनी साथे युद्ध करी शके छे ?
 जेवी ज रीते अंधकार सूर्यनी साथे पांगिया अजिनी साथे डीडी समुद्रनी साथे, सर्प गरुडनी साथे, पर्वत
 वज्रनी साथे अने मेढा हाथीनी साथे शु युद्ध करी शके छे ? कदापि नडिं. आनी ज रीते ते धूर्त धं-
 जणिजे भारी सामे ओक क्षणभर पशु टकी शकवाने नथी. इं डमथां ज तेनी पासे जेर्ध देवाने पशु डगवावानी
 तेनी धूर्तवाने-सुबदी करी नाथीश। सूर्यनी सामे जियारे आगीथे शुं वस्तु छे ? ओटले कोर्ध नडिं. भारे भीज्जनी

निरोधकेत्यर्थः। हे वादिचारणाधिद्वारणपञ्चानन !-वादिचारणाः=परवादिरूपा मत्तमतद्गजाः, तेषां विदारणे=कुम्भदलने पञ्चानन=सिंह परचादिविधामददूरीकारक ! इत्यर्थः। हे वाधैश्वर्यसिन्धुखुलुकीकराऽऽगस्ते !-वादिनां यत् ऐश्वर्यं=विद्वज्जनाग्राण्यत्वं तदेव सिन्धुः=समुद्रः, तस्य खुलुकीकरणे अगस्ते=अगस्तिरूप !-अनायासकृतदुर्घपरवादिराजायेत्यर्थः। हे वादिनिष्ठापटापद !-वादिन एव सिंहास्तेपां कृते अष्टापद=शरभ !-वादिविक्रमविनाशकेत्यर्थः ! हे वादिजियविशारद !-वादिविजयकरणे परमदक्ष ! हे वादिदृन्द्भूपाल !-परचादिद्रस्युदमनार्थधृतमचण्डतर्कदण्डेत्यर्थः। हे वादिसिरः करालकाल ! वादिनां शिरस्सु करालकाल=मचण्डकालतुल्य ! हे वादिकदलीकाण्डखण्डनकृपाण ! वादिरूपाणा कदलीकाण्डानां ऋण्डने कृपाण-खड्गरूप !-अनायासेन सकलवादिमानविच्छेदनसमर्थेत्यर्थः। तथा-हे वादितमस्तोमनिरसन प्रचण्डमार्तण्ड !-वादिन एव तमस्तोमाः=अन्यकारस्वरूपाः, तन्निरसने=दूरीकरणे प्रचण्डमार्तण्ड=प्रखरसूर्य !-स्वभभावदूरीकृतसकलवादिसमुद्देश्यर्थः। हे वादि गोधूमपेपणा-

वादियों की बोलती बंद कर देने वाले ! हे प्रतिवादी रूपी मदीन्मत्त हाथियों के कुंभस्थलों को विदारण करने वाले सिंह ! हे प्रतिवादियों के ऐश्वर्य-विद्वानों में अग्राण्यता रूपी सागर को एफ ही खुलू में सोलजाने वाले अगस्ति अर्थात् दुर्दान्तवादियों को अनायास ही-खुदकियों में जीत लेने वाले ! हे वादियों रूपी सिंहों के पराक्रम को नष्ट कर देने वाले अष्टापद ! वादियों को परास्त कर देने में दक्ष ! हे वादी रूपी खुदरों का दमन करने के लिए मचण्ड तर्क रूपी दंड धारण करने वाले ! हे वादियों के सिर के विराल काल ! हे वादी रूपी कदलियों के खण्डखण्ड कर देने के लिए कृपाण, अर्थात् अनायास ही वादियों का मानमर्दन करने वाले ! हे वादी रूपी सघन अधकार का निवारण करने के लिये प्रखर सूर्य ! हे प्रतिवादी रूपी गेहूँओं को

ये ताना गुरुनी प्रतिष्ठा, अन्वेष्य शुभ, दलीशैलुं सामर्थ्यंभ्युं, वाहि तरक्षते। प्रभाव, नीडरता, शैली, आवडत, विषयने शुद्ध करवानी शक्ति, विषयता नुस्यथनी आरधार उत्तरी जनावाणी तीम्युद्धि, अनेक दृष्टिगिंदुओ वरे पोताग विषयने अने धारणांने मन्भूत करवानु पराक्रम विगेरेना शुभगानो करतां, आ टोणु पसार थवा लायु. सिद्ध अने छाथीनी उपमा, अधकार अने सूर्य, घटा अने लाकडी वृक्ष अने गजराज, देव अने दानय, कुंस अने कृष्ण, सिद्ध अने मृगला, कदली अने कृपाय, धुवड अने सूर्य, सिद्ध अने अष्टापद, जवर अने जवरकुश विगेरेनी उपमा अने उपमेयने आधार लध पोताना गुरु आ धन्द्भण्णियाने जडर परास्त करये जेवा हंभी अने षगड्येजोर उद्दगारे साथे आ शिष्यमंडल आलपुं डतुं.

शुभमास्तेषां भस्मीकरणे प्रज्वल्यदीपकम्=प्रज्वलप्रदीपस्वरूप ।=भस्मीकृतसकलवादि यज्ञः शरीरेत्यर्थः । तथा--हे वादिचक्र-
 चूडामणे । वादिचक्र=वादिसमूहस्तस्य चूडामणे । सकलशास्त्रार्थकलकुशलाग्रणचेत्यर्थः । तथा--हे पण्डितशिरोमणे ।=
 विद्वज्जनशिरोमणिस्वरूप । तथा हे विजितानेकत्रादिवाद । विजितोऽनेकत्रादिनां=सकलत्रादिनां वादः=शास्त्रार्थत्रिचारे
 येन स तथा तत्संबुद्धौ=सर्वदा शास्त्रार्थविजयिन्मित्यर्थः । तथा--हे लब्धसरस्वतीसुप्रसाद ।=लब्धः=प्राप्तः सरस्वत्याः=
 विधाधिदेवतायाः सुप्रसादः=सुप्रसन्नता येन स तथा तत्संबुद्धौ, हे सरस्वतीकृपापात्रेत्यर्थः । तथा हे दूरीकृतापरागर्भो-
 न्मेप ।=दूरीकृतः=विनाशितः अपरेपापु=ग्रन्थेषां पण्डिताना गर्भोन्मेपः पाण्डित्याहङ्कारवृद्धिर्येन स तथा-तत्संबुद्धौ,
 दलितसकलपण्डित-पाण्डित्यदर्पेत्यर्थः । इत्यादि यज्ञो गायद्भिः=कीर्तयद्भिः पञ्चशतशिल्पैः परिवृतो 'जय जय' शब्दैः
 शब्दायमानः प्रभुसमीपे=श्रीवीरप्रभु-पार्श्वे समनुप्राप्तः=गतः । तत्र=प्रभुपार्श्वे गत्वा स इन्द्रभूतिः समवसरणसमृद्धिं
 प्रभुतेजश्चविलोक्य=दृष्ट्वा 'किमेतम् ?' इति वदन् चक्रिन्नाचिचः=विस्मितमानसः संजातः ॥श्रु०१०५॥

गणधरवाद

मूलम्--तेषां कालेणं तेषां समरणं समणे भगवन् महावीरे तं इन्द्रभूहं=भो गोयमगोत्ता इन्द्रभूहं इति संवोहिय
 वादियों के यज्ञ रूपी शरीर का विनाश करनेवाले ! हे वादि चक्र चूडामणि-सकलशास्त्रों में अर्थों और कलाओं में
 कुशल जनो में अग्रगण्य ! हे विद्वज्जन-शिरोमणि ! हे सकल वादियों के वाद को जीतनेवाले ! हे विद्या की
 अधिष्ठात्री देवता के कृपाभाजन ! हे अन्य विद्वानों के गर्व की वृद्धि को, विनष्ट करनेवाले ! अर्थात् सब
 पण्डितों की पण्डितार्ई के गर्व को खर्व करनेवाले ! इस प्रकार पाँचसौ शिष्यों द्वारा किये जाते यज्ञोगान और
 जय-त्रयकार के साथ इन्द्रभूति भगवान् के पास पहुँचे । वहाँ पहुँच कर समवसरण की लोकोत्तर विभूति को
 और प्रभु के तेज को देखकर चकित रह गये । सोचने लगे-यह क्या ? ॥श्रु०१०५॥

नवी वांन करता आ शिष्ये अभवसरथु नल्लु आनी पळोत्या त्या तेआ सभवरथुन। अद्वितीय रचना, अतुपुस
 शैला अने अपूर्वकृतिते नेह उधाई गया । दिग्भूद थई गया । आपो दादी रही ! येा वडासी रहा । हातमा आगणी
 धाली गया ! आगण थालता लोडोत्तर पुरुष-लगवानेने कुथनवर्षो देह अने तेनु दाडित्य नेह तेआ शानशुध
 ओई मेहा ! तेभनु तेज, प्रलाय अने सुप उपर तरती तनभनाटवाणी नौभयता नेह तेभनेा गर्व गणवा भाड्यो !
 ओश्वनी पाराशीशीनु अतर धटवा लाग्यु ! आ थधु नेह, भर्षी, अनुभवी तेआ विचारवा दाड्या अने 'हाथडारा'नेा
 निसाये। तेओना सुथभाथी नीडगवा भाड्यो ! (श्रु०१०५)

पापाणशक !-वादिस्था ये गोपयाः सत्येपणे=वूर्णाकरणे पापाणशक !-यद्द-वूर्णांकुत्तरवादिमाभेस्यर्थः । तथा-
 हे वापामपद्भुत्तर ।-वादिन एव भाग्यटाः=अपकथटास्त्ववूर्णने भुत्तरतुल्य । वादिविदवाडामिमानचूर्णाकारकेत्यर्थः ।
 तथा-हे वायुनुद्धदिनमणे ।-वादि न एव उक्कास्तोपां कृते दिनमणे=सूर्यरूप । परवाशितर्कदृष्टिबिनाइकेत्यर्थः ।
 तथा-हे वादिद्वयो मूलनकारण ।-वादिन एव वृथास्तेपासुन्मूलने वारण=जाकरूप । वादिमानोन्मूलन समर्थेत्स्यर्थः ।
 तथा-हे वादिद्वैत्यदेवपते=वादिरूपत्वां वैरयानां परामकरणे देवपते ।=देवेन्द्र । तथा-हे वादिद्वैशासननेत्र ।-वादिनां
 नासन=स्वाधीनी काले नरेश्वरानरूप । तथा हे वादिकंसंसार=वादिन एव कंसस्वरमने कंसारे ।=कृप्याक्यम् ।
 तथा-हे वादिहरिणमगारे ।-वादिन एव हरिणास्तेषा कृते मगारे=सिंहस्वरूप ।=स्वसिंहानावविभ्रासित
 सद्युग्यरूपवादिस्मारेत्स्यर्थ । तथा-हे वादिज्वलकराकुड ।-वादिन एव ज्वराल्दुपसमने ज्वराकुड=ज्वराकुड
 नामकौपस्य । तथा-हे वादियूयमण्डमणे=वादिस्मृतिवैदावणे भण्डमण्ड । हे वादिद्वयशक्यवर ।=स्वमगाडपादि-
 त्यप्रमाणेन वादिद्वयान्तरतपीडाकाले लीस्थानत्यस्वरूपेत्स्यर्थ । तथा-हे वादियकमपज्वलरीपक ।-वादिन एव

पिस डामने के किं वकी के समान ! हे प्रतिवादी रूपी कचे वहाँ के लिये सुदुगर के समान वादीयो की
 विद्वत्ता का पूरा-पूर कर देनेवाले ! हे वादी रूपी उल्लूकों के लिए सूर्य अर्थात् प्रतिवादीयों की तर्क-दृष्टि को
 नष्ट कर देनेवाले ! हे वादी रूपी दूबों जे उ गड गिरानेवाले गमराम, अर्थात् वादियों का मानमदन करने
 वाल ! हे वादी रूपी दानवों का परामर करनेवाले देवेन्द्र ! हे प्रतिवादीओं को अपन अपिन करनेवाले
 नरेन्द्र ! हे वादी रूपी कंस के लिए कृप्या सनान ! हे अपने सिंहानर से समस्त वादी रूप सुगों को मयमीत
 कर देनेवाले सिंह ! हे वादी रूपी ज्वर का निवारण करने के लिए ज्वराकुड नामक औषध ! हे वादियों के
 मयूर का परानित करानेवाले मगात्र मण्ड ! हे अपने मकाड पाठिस्य के प्रभाव से प्रतिवादियों के अन्तःकरण
 में सदैव सङ्कननेवाले कौने ! हे प्रतिवादी रूपी पतंगों को मस्र करनेवाले जलते दीपक, अर्थात् प्रति

भाषा उपभोगे उपरान्त प्रतिवादीयोंने इसकावार्ता योत्ताना उल्लेखनी तीव शक्ति रहेही छे तेतु आभम्भ
 प्रत्ये इत्था थाक्का जग बत्वा. जेभ पतत्र अग्निभां शरीर यत्तुभां, अज्ञानी प्रतिभं प्रदम वरु अथ छे तेभ
 आ 'सर्वभूत' पत्र अन्धारा उरुनी आरण पराक्य पाभरी । शस्त्रु हे तेज्जि, सडव थाओ अने तेना अर्थभां पार
 जग छे तन्नाभ उवाञ्जिना अज्वर छे प्रतिभां विज्ञेभलि छे, अविधानी देवीतु हुपाकाकन छे बिद्यागेना अर्णत
 1.4.5.6.7.8.9.10.11.12.13.14.15.16.17.18.19.20.21.22.23.24.25.26.27.28.29.30.31.32.33.34.35.36.37.38.39.40.41.42.43.44.45.46.47.48.49.50.51.52.53.54.55.56.57.58.59.60.61.62.63.64.65.66.67.68.69.70.71.72.73.74.75.76.77.78.79.80.81.82.83.84.85.86.87.88.89.90.91.92.93.94.95.96.97.98.99.100.

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरस्तमिन्द्रभृति 'भो गौतमगोत्र ! इन्द्रभृते ?' इति संबोध्य हितया सुखया मधुरया वाण्याऽभाषत । भगवतो वचनं श्रुत्वा स पुनरतीव चकितचित्तो जातः—
 ब्रह्मो ! अनेन मम नाम कथं ज्ञातम् ? एवं विचार्य मनसि तेन समाहितम्—किमत्राश्चर्यकं यज्जगत्प्रसिद्धस्य त्रिजगद्गुरो मम नाम को न जानाति ? मम मनसि यः संशयो वर्त्तते तं यहि कथयति छिनत्ति च तदा आश्चर्यं गण्यते । एवं विचारयन्तं भगवानकथयत्—गौतम ! तव मनसि एतादृश संशयो वर्त्तते यत्—जीवो-

गणधरवाद

मूल का अर्थ—'तेणं कालेणं' इत्यादि । उस काल और समय में श्रमण भगवान् महावीरने उन इन्द्रभृति से 'हे गौतम गोत्रीय इन्द्रभृति !' इस प्रकार संबोधन करके हितरूप, सुखरूप और मधुरवाणी से भाषण किया । भगवान् का कथन सुनकर इन्द्रभृति और अधिक चकितचित्त हुए । सोचने लगे—'आश्चर्य है कि इन्होंने मेरा नाम कैसे जान लिया ?' फिर मन ही मन समाधान कर लिया—इस में विस्मय की बात ही कौन-सी है ? मैं जगत् में प्रसिद्ध हूँ और तीनों जगत् का गुरु हूँ । मेरा नाम कौन नहीं जानता ? हाँ, मेरे मन में जो संशय विद्यमान है, उसे बतला दें और उसका निवारण कर दें तो मैं आश्चर्य मानूँ ।

इस प्रकार विचार करते हुए इन्द्रभृति से भगवान् ने कहा—गौतम ! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि

गणधरवाद

भूणो अर्थ—'तेण कालेणं' धत्यादि । ते काण अनेते समये श्रमण भगवान् महावीरे, गौतम गोत्री ध-द्रभृतिने संबोधीने, हितकर, सुभकर अने शांतिकारक, भीही मधुरी वाष्पिने उच्यारी । भगवाननी शांति प्रियवाष्पिनुं श्रवणु करवाथी, तेसु यित्त यकित्त थयु तेसज पोतासुं नाम, तेभना ञ्णुवाभा आवतां तेने आश्चर्यं पणु थयुं. 'हुं' जगत प्रसिद्ध छं; त्थे जगतने गुरु छुं. तो मार नाम केणु नथी ञ्णुत्तुं ? आवा तेना सुद्ध ञ्णुत्तुपणुने दीधि विरमय यामवा नेसुं' छेज नहि । परंतु जे आ व्यकित्त, मारा भनमा रडेल श कानुं दर्शन कशवे अने तेनुं निवारणु करे, तो काठक आश्चर्यं यामवा नेसु भइ ।'

ध-द्रभृति आवी रीते विचार करतो હતો ત્યાજ ભગવાનેના પ્રશ્ન આવી પડ્યો કે " હે ગૌતમ ! તારા મનમાં 'જીવ'ના અસ્તિત્વ સંબંધી શંકા છે એ વાત ધરાણર છે ? અને તારા મનમાં 'જીવ'ના વિદ્યમાન પણા વિષે શંકા

वियाए सुहाए महुआए शाणीए मासीध । मगवभो बणं सोबा सो पुणो भाई बगिय विचो जाओ । 'अहो !
 भणेण मम नामं छई जायं ?' एवं वियारिय मयंसि तेण समाहिय कियेत्त अरुणेरा-मं जगपसिद्धस्स विज
 गगुरुस्स मग्ग नामं को न जग्ग ! मग्ग मणसि जो संसओ वद्ध-वं ब्र कहेर छिद्ध य, तागे अरुणेरे गणिज्जइ ।
 एवं वियारेमाणं त मगव क्वीध-गोयमा ! दुग्ग मयंसि एपारिसो संसओ वद्ध-अ जीओ अत्थि बो वा ? ।
 जभा वेएसु-“विद्वानपनएवेथ्यो धूतेभ्यः सयुथाप पुनस्तान्येवाद् विनश्यति-न प्रेत्यसद्भाऽस्ति”पि कुरिय
 मत्थि । अस्स विसए कुरेमि-दुम वेयपपाण अत्थ सम्म न जणासि-भीओ अत्थि, जो विचयेयण विष्णाण
 सन्नाएअबभेहि जामिज्जइ । जइ जीओ न सिया ताहे पुणपावायं कत्ता को मये ! दुग्ग जन्मदागारकज्जकारणस्स
 निमित्त हो होज्जा ! तसत्तयेविधुसं-“सत्तै अयमात्माद्धानमय ” अओ सिद्ध जीओ अत्थिपि । इबाइ पडुवणं
 सोया तस्स पिच्छं नळे लणमिद, सुज्जोदये विमिरमिच्च वितामणिम्मि दारिद्रमिव गळियं । तेभ सम्मत्त पच ।
 सएण सं मगव फेइ नमंसइ, वदिषा नमसिणा एवं वयासी-मदंठ ! रुक्खस्स उषचं माविं वामणजणो
 विव भाई माग्गदो तुम्हं परिविल्लं समागओ, सामी ! जो वए मम पविओहो इओ तेणं संसाराओ विरत्तोपिइ
 अओ म पव्याणिय दुःखन्परंपरा उवाओ मत्तसायराओ तारेइ ।

तएणं मणणे मगवं मागवीरे 'इमो मे पडमो गगहरो भविस्सा'पि क्खु त पवसयसिस्स सद्धियं निपाइ
 तयेण पव्वाओपंथ ।

तेणं काळणं तेभं समएण गांयगाचे इदधुई भणगारे समगस्स मगवओ महावीरस्स जेहे भवेवामी
 नाए शरियासमिए मासासामिए एसयासामिए आयाणभंडमवनिखेवणासमिए उबारपासवणखेखज्जसिधायण
 पछिआभियासामिए मगसमिए वयसमिए कायसमिए मण्णुचे वयगुचे कायगुचे गुण गुणिएदिए गुणबंधमयारी
 चाइरणेज्जु तवस्सी तंठिल्लमे जिइदिए सोरी आभियाणे अपुस्सुए अवरिद्धे ससामणएण इणमेव निमंय
 पावण्य पुरओ क्खु विहरए ।

तेमं इदधुणामं आगारे गोयमागेते सुपुरसेरे समवउरसंठाज सठिए वक्खरिसइ नारायणसंयपणे
 कज्जपुमगानियसपग्गोरे उग्गतवे दिसतवे वणतवे महातवे उराठे घोरे घोराणे घोरावस्सी घोराबंधे
 यामी उण्णुग्गीरे संविचयिउलेउलेस्से चउरमपुग्गी चउरमाणोवगए सक्खल्लरसिधिय्याई समणस्स मगवओ
 महावीरस्स अट्टरसामेते उट्टमाण अदोसिरे क्षायकोट्टोवगए संमयेण वक्खा अप्पामं पावेमाले विहरए ॥सु०१०६॥

तेन सम्यक्त्वं प्राप्तम् । ततः खलु स भगवन्तं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीव—भदन्त ! वृक्षस्योच्चत्वं मातु वामनजन इवाहं मतिमन्दस्त्वां परीक्षितुं समागतः । स्वामिन् ! यस्त्वया महं प्रतिबोधो दत्तः, तेन कृतकृत्यः संसाराद्विरक्तोऽस्मि, अतो मां प्रब्राज्य दुःखपरम्पराकुलाद् भवसागरात् तारय ।

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरः 'अय मे प्रथमो गणधरो भविष्यति' इति कृत्वा तं पञ्चशतशिष्य-सहितं निजहस्तेन प्राब्राजयत् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये गौतमगोत्र इन्द्रभूतिरनगरो श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी अनगरो जातः । ईर्यासमितः भाषासमितः एषणासमितः आदानभाण्डामात्रनिक्षेणासमितः उच्चारप्रस्रवणश्लेष्म विद्वान्जणजष्टपरिष्ठापनिकासमितः वाक्समितः कायसमितः, मनोगुप्तः वाणुप्तः कायगुप्तः गुप्तः गुप्तेन्द्रियः गुप्त-

लिया । तत्पश्चात् इन्द्रभूति ने भगवाञ्च को वन्दना कि, नमस्कार क्रिया । वन्दना—नमस्कार कर के इस प्रकार कथा—भदन्त ! मैं मंदमति आपको परीक्षा करने आया था, मानो जैसे वामन, वृक्षकी ऊंचाई नापने चला हो । स्वामिन् ! आपने मुझे जो बोध वीज दिया है, उससे मैं कृतार्थ हुआ और संसार से विरक्त हुआ हूँ । अतः मुझे दीक्षित करके अमल दुःखोकी परम्परा से व्याकुल इस संसार-सागर से तार दीजिए, तब श्रमण भगवान् महावीरने 'यह मेरा प्रथम गणधर होगा' इस प्रकार कहकर पाँच सौ शिष्यों सहित इन्द्रभूति को अपने हाथ से दीक्षा दी उस काल और उस समय गौतमगोत्रीय इन्द्रभूतिअनगर श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी अनगर हुए । ईर्यासमिति, भाषासमिति एषणासमिति, आदानमान्डमात्रनिक्षेणासमिति, उच्चारप्रस्रवण श्लेषमशिद्वान्जणजष्टपरिष्ठापन समिति, मनःसमिति वचनसमिति, कायसमिति, मनवचन कायकी गुप्ति से गुप्त

गरीर्थाह ईर थाय छे तेम सत्य ज्ञाननी सभरथु थता तेनुं भित्थालिमान अब्बोप थधं गथुं. तेथु थोडी वात-थीतभा सवस्व अलषु करी दीधु त्थारभाह धन्द्रभूतिअे लगवानने वदना—नमस्कार कथो, अने ओलवा लाग्थो. उे 'हे लदन्त ! हुं सह बुद्धिवाणे! आपनी परीक्षा करवा आव्थो इतो अल्ले वामन आडनी उथाधने भापवा आव्थो डोथ ! हे स्वामिन् ! आपे ने मने बोध आव्थो. तेना वडे हुं कृतार्थ थथे छु ने ससारथी विरति पाग्थो छुं; माटे मने दीक्षित करी ड थनी पर पराइय अेवा आ स सारभाथी मने सुकत करे.' 'आ मारे! प्रथम गळुधर थथे' अेम कडी पायसे शिथना परिवार सहित धन्द्रभूति आह्मथुने लगवाने दीक्षा आपी ते सभधे गौतमगोत्री धन्द्रभूति अलुगार श्रमथु लगवान महावीरना न्येष्ठ शिथ अन्था. धथोसभिति, भाषा सभिति, अेषथुसभिति, आदान भांडधान निक्षेपथुा सभिति, उन्थारप्रस्रवणश्लेषमशिद्वान्जणजष्टपरिष्ठापनसभिति युक्त अन्था सभनशुमि, वयनशुमि अने

जति न का ? पतो वेदेषु—“विज्ञानपनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्पाप पुनस्तान्येवानुविनश्यति न भेस्यस्रष्टाजस्ति” इति इयितमस्ति । अत्र विषये कथयामि—त्वं वेदपदानामर्थे सम्पत् न जानासि । जीबोऽस्ति, यच्चिकेतन्वय-विज्ञान-संज्ञादिसप्तैवाप्ये । यदि जीवो न स्यात् तथा पुण्यपापयोः कर्मा को भवेत् ? तत्र यत्र दानादिकार्य-कारणस्य निमित्त को भवेत् ? तत्र शस्त्रेऽप्युक्तम्—“सैव भयमात्मा ज्ञानमयः” अतः सिद्धम्—जीबोऽस्तीति । इत्यादि प्रश्नान्नं मुस्ता तस्य मिथ्यात्वं प्रष्टे सर्वत्रमिष यूयैवये विमिरामिष, चिन्तामयी दारिद्र्यमिष गस्तिवम् ।

जीव है या नहीं है ? क्यों कि वेदों में ऐसा कहा है कि “विज्ञानपनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्पाप पुनस्तान्येवानु विनश्यति, न भेस्य संज्ञाजस्ति” इति । अर्थात् विज्ञानपन ही इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं में लीन हो जाता है । परलोक संज्ञा नहीं है ।” इस विषय में मैं ऐसा करता हूँ कि तुम वेद के पदों का सही अर्थ नहीं जानते । जीव का अस्तित्व है; जो विषय, चैतन्य, विज्ञान तथा सप्ता स्वर्णों से जाता जाता है । यदि जीव न हो तो पुण्य-पाप का कर्मा कौन है ? तुम्हारे यत्र दान आदि कार्य करने का निमित्त कौन है ? तुम्हारे ज्ञान में भी कहा है—‘सैव भयमात्मा ज्ञानमयः’ इति । अर्थात् ‘यद् भास्मा निषय ही ज्ञानमय है ।’ अतः सिद्ध हुआ कि जीव है । इत्यादि प्रश्न के ज्ञान सुनकर इन्द्रधृति का मिथ्यात्व, बाल में त्मक की भाँति, यूयैवये में अक्षकार की तरह तथा चिन्तामयि रत्न की उपलक्षिप होने पर दृष्टिवा की तरह गल गया । उन्हींने सम्यक्त्व प्राप्त कर

पशु रहे वेद’ वेदवाच्य’ पशु भेजुह छे । आ वेदवाच्य जेभ रहे छे हे “विज्ञानपनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्पाप पुनस्तान्येवानुविनश्यति, न भेस्य संज्ञाजस्ति” इति विज्ञानपनअ आ भूतोकी उपपन्न थाय छे, जने ते विज्ञानपन पाशु प्राप्तिभां अ लीन यशु ज्ञय छे, जने तेकी, आ विज्ञानपनभां परलोक संज्ञा नहीं, आ प्रभावेणु वेद वाच्य, छे ते पशुभार नो ।’ आ प्रभावेना वेदवाच्यय पुनःअकार्यु इरी, अजवान ओतभने रहे छे हे, “ हे ओतम । म आ वेदवाच्यने जयई ज्ञावेतो नहीं भाटे छु ते तभने सुभजणु छु हे एवय अस्तित्व छे भास्यु हे आ ‘विषयान पशु विषय, चैतन्य, विज्ञान तथा सप्ता स्वर्णो द्वारा आवृी यक्षय छे ” जे एकनी उवाची न कोय तो पुनःअपने ठवी कौने गज्जेयो । तथास यद, दान विवेरे जयई हरवाणया निमित्तयय होखु छे । तथास वेद वाच्यभां हक्यु छे हे ‘आ आरथा निकयकी ज्ञानमय छे अर्थात् आ आरथा युव ज्ञानपिद अ छे आकी सिद्ध थाय छे हे इरेक प्राकृभां एव नामय तत्त भेजुह छे

आ प्रजरे प्रभुनी वचन बाँकणी छे अस्तिज विज्ञान पाणीभां भीमनी आरके ज्ञाननी यशु यूपनि अभास यतां जेभ अक्षकार इरे यशु ज्ञय छे तेम तेन विज्ञान नःअ यशु जेभ चित्तमन्नीनी उपलक्षि यता

तेन सम्यक्त्वं प्राप्तम् । ततः खलु स भगवन्तं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत-भदन्त ! वृक्षस्योच्चत्वं मातु वामनजन इवाहं मतिमन्दस्त्वां परीक्षितुं समागतः । स्वामिन् ! यस्त्वया महं प्रतिबोधो दत्तः, तेन कुतकृत्यः संसाराद्विरक्तोऽस्मि, अतो मां प्रताप्य दुःखपरम्पराकुलाद् भवसागरात् तारय ।

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरः 'अय मे प्रथमो गणधरो भविष्यति' इतिकृत्वा तं पञ्चशतशिष्य-सहित निजहस्तेन प्रात्राजयत् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये गौतमगोत्र इन्द्रभूतिरनगारो श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी अनगारो जातः । ईर्यासमितः भाषासमितः एषणासमितः आदानभाण्डामात्रनिक्षेपणासमितः उच्चारप्रस्रवणश्लेष्म शिङ्घाणजलपूरिष्ठापनिकासमितः वाक्समितः कायसमितः, मनोगुप्तः वागुप्तः कायगुप्तः गुप्तः गुप्तेन्द्रियः गुप्त-

लिया । तत्पश्चात् इन्द्रभूति ने भगवान् को वन्दना कि, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार कर के इस प्रकार कहा-भदन्त ! मैं मंदमति आपको परीक्षा करने आया था, मानो जैसे वामन, वृक्षकी ऊचाई नापने चला हो ! स्वामिन् ! आपने मुझे जो बोध बीज दिया है, उससे मैं कृतार्थ हुआ और संसार से विरक्त हुआ हूँ । अतः मुझे दीक्षित करके अमल्य दुःखोकी परम्परा से व्याकुल इस संसार-सागर से तार दीजिए, तब श्रमण भगवान् महावीरने 'यह मेरा प्रथम गणधर होगा' इस प्रकार कहकर पाँच सौ शिष्यों सहित इन्द्रभूतिको अपने हाथ से दीक्षा दी उस काल और उस समय गौतमगोत्रीय इन्द्रभूतिअनगार श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी अनगार हुए । ईर्यासमिति, भाषासमिति एषणासमिति, आदानभान्डमात्रनिक्षेपणासमिति, उच्चारप्रस्रवण श्लेष्मशिङ्घाणजलपूरिष्ठापन समिति, मनःसमिति वचनसमिति, कायसमिति, मनवचन कायकी गुप्ति से गुप्त

गरीभाई हर थाय छ तेम सत्य ज्ञाननी समज्जथु थता तेनु' मिथ्यालिभान अदोप थई गथु'. तेथे थोडी वात-चीतमा सर्वस्व अक्षु करी दीधु त्थारथाइ इन्द्रभूतिजे लगवानेने वदना-नमस्कार कर्यो, अने थोदवा लाज्ये । छे लदन्त ! हुं भइ थुद्धिवाणे आपनी परीक्षा करवा आन्थे ।ते। जण्ठे वामन आऽनी उन्थाधने मापवां आदथे । छे स्वामिन् ! आये जे भने थोध आन्थे तेना वडे हुं कृतार्थ थयो छु ने संसारथी विरति पान्थे । छं, माटे भने दीक्षित करी इ अननी पर पराइप जेवा आ स सारमाथी भने युक्त करे।" 'आ मांशे प्रथम गणधर थये' जेम कही पायसे। शिष्यना परिवार सडित ईन्द्रभूति आद्वखुने लगवाने दीक्षा आपी. ते समये गौतमगोत्री इन्द्रभूति अखुगार श्रमणु लगवान महावीरना ज्येष्ठ शिष्य अन्या. धर्योसमिति, लाषा समिति, ओषथ्यासमिति, आदान लाऽपत्र निक्षेपथा। समिति, उच्चारप्रस्रवणश्लेष्मशिङ्घाणजलपूरिष्ठापनसमिति युक्त अन्या मनशुसि, वचनशुसि अने

ग्रामपारि त्यागी बने लखुः तपस्वी सान्निधमः जितोत्रिया शोषिः अनिदानः श्रयोःस्तुषयः (अबशुद्धिः)
 अन्तरितः सुभामप्यतः इदमेव नैर्द्वयं प्रपन्नं पुरतः कृत्वा विहरति । स लख इन्द्रयुतिमानगारो गौतमगोषः
 ससोःसेषः समवदुरसस्रस्वानसंस्थितः इन्द्रकृपमनारावसंननः कनकफुलकनिकपपचारैः उग्रतपाः विसुतपाः
 उग्रतपाः महातपाः उदारः पौरः पौरगुणः योःतपस्वी पोरप्रभचयवासी उत्सवधरीरः संसिद्धिपुखवेकोष्ठेभ्यः
 चतुर्दशपूर्वो बहुशानोपगतः सवौशरसनिपाठी भ्रमबन्धु मगबलो महावीरस्यादूरसामने ऊर्ध्वनादुरपःशिराः
 ध्यानकोष्ठोपगतः सयमेन तपसा आत्मानं मापयमानो विहरति ॥ सु०१०६॥

गुप्तोत्रिय गुप्तप्रभचारी त्यागी, बनक्रीकृष्णार्थी वनस्पति के समान पाप से लजित होनेवाछे, तपस्वी, समा
 करने में समर्थ, जितोत्रिय, विचित्रोपक, निदान रहित, उत्पुङ्गा रहित, अन्तरित (स्थिर), समीचीन संयम में
 बिन हुए । इसी नियन्त्र प्रपन्न को आगे ढाके विषयने सने । यह गौतमगोषीय इन्द्रयुति नामक अनगार
 सात शप ऊंचे, समवदुरस्र सस्यानबाछे तथा वक्रकृपम नारावसंनन से सम्पन्न थे । सुपर्णके दुकडेकी
 क्सीटीपर पिसी हुई रेखा के समान तथा कनककी केसरके समान गौर र्ण थे । उग्रतपस्वी, दीप्त तपस्वी,
 उग्रतपस्वी, महातपस्वी, उदार, पौर, योरगुणी, योःतपस्वी पोरप्रभचारी, देशको मयसा से रहित, विशाल-
 रनोकेश्याको संसिद्धि करके रहनेवाछे, चौदश पूर्वों के ढावा वार ढानों से युक्त और समस्त अस्तरो के
 ढावा थे । भ्रमण भगवान् महावीर से न अधिक दूर और न अधिक समीप में ऊपर घुटने और नीचा सिर किये
 गये स्थान स्त्री कोष्ठ में मात होकर संयम और तपसे आत्मा को माणित करते हुए विचरने लगे ॥ सु०१०६॥

महाशुशिनपु धारक अन्य अुत्पेन्द्रिय, गुप्तप्रभचारी, त्यागी, पाषण्डि, तपस्वी, कनककी, उत्पुङ्ग, चित्तशोभक,
 निदानविहीन, उत्पुङ्गा रहित विहर करने सक्ती अन्य आधी काष्ठ प्रपन्न भाग्य कुशलानी निष्क प्रपन्नने
 शिशोभारं श्री तेजो विवरथा ध्यात्वा आ जीवभगेनी उन्त्रयुति कृष्णमार, सात ढाकीनी उर्ध्वार्धवाण्य कृता
 तेभुत्त शरीरिष्ठ इव समवदुरस्र सस्यानवाणु कृत तेभेना शारीरिष्ठ मधि वक्ष्यपकननाशक सङ्कननवाद्यो कृता
 तेभेना वर्षे इसोगी उपर सेतुं कथमधी नेवेः कृदि धाम तेवा र मनो वठवजो यकथरुति कृता तेभ ए इयवनी
 अरर रहेव हेसपु ए नेवेः वैशा-वधुभिरिषा रजनेना कृता तेजो उव तपस्वी, दीप्त तपस्वी, दीप्ततपस्वी अने
 भदानतपस्वी अन्ना तेजो उदार शौर, म्हाशुची अने म्हाकाशमार्धं यथा रेकनी भभवा रहित अनी, विशाल
 तेजोःस्थान्य धारक अष्टतेभ ए तेन वक्ष्येव्य श्रस सभी कोष्ठ पूर्वय सावा क्मा धार ज्ञानना भवती अने सुभस्त
 अक्षरशानोभा नियुत्त अन्ना तेजो अरवाननी अधीप रही विमरपुष्टि कृता कृता ध्यानभां बीन रही य वम,
 तप अने कावधी आरमाने आनित श्री विवरथा क्मा. (स०१०६)

टीका—“तेणं कालेण तेणं समएणं” इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये=सपरिवारस्येन्द्रभूतेः प्रभुपात्रे समागमनकालावसरे श्रमणो भगवान् महावीरः, तं=सगर्वपुण्यगतम्, इन्द्रभूतिं “भो गौतमगोत्रोत्पन्न ! हे गौतम-गोत्रोत्पन्न ! इन्द्रभूते !” इति एतत्पदेन सम्बोध्य=अभिबुलीकृत्य हितया=कल्याणकारिण्या सुखया=धुखजनिकया, मधुरया=मिष्टया वाण्या अभाषत, सः इन्द्रभूतिः भगवतः=श्रीमहावीरस्वामिनः, वचनं=गोत्रनामोच्चारणं श्रुत्वा, पुनः=भूयः, अतीव=अत्यन्तं चकितचित्तः=विस्मितमनाः जातः, ‘अहो-आश्चर्यम् अनेन-महावीरेण मम=अपरिचितस्य नाम, कथं=केन प्रकारेण ज्ञातम्?’ एवम्=इत्थं मनसि विचार्य=विविच्य तेन=इन्द्रभूतिना समाहितम्-स्वमनसि स्वयमेव समाधानं कृतम्-अत्र=मम नामगोत्रज्ञाने किमाश्चर्यम्? को त्रिस्मयः? यत्=यस्माद्धेतोः जगत्प्रसिद्धस्य त्रिजगद्गुरोः=लोकत्रयगुरोः मम नाम कः=वालो युवा वा सग्विरो वा न जानाति?, अपि तु आवालं प्रसिद्धं मन्नामगोत्र सर्वोऽपि जनो जानाति । यदि मम मनसि यः संशयो वर्तते स कथयति, च-पुनः छिनचि=दूरी करोति

टीका का अर्थ—उस काल में और उस समय में, अर्थात् जब इन्द्रभूति अपने शिष्यपरिवार के साथ, गर्व सहित, भगवान् महावीर के समीप पहुँचे तब, भगवान् ‘हे गौतम, गोत्र में उत्पन्न इन्द्रभूति । इस पद से संबोधित कर के कल्याणकारिणी सुखकारिणी और मधुर वाणी से बोले । भगवान् के द्वारा किया गया अपने नाम और गोत्र का उच्चारण सुनकर इन्द्रभूति के मन में अत्यन्त आश्चर्य हुआ । वह साचने लगे कि महावीरने मुझ अपरिचित का नाम-गोत्र कैसे जाना? ऐसा सोचकर फिर इन्द्रभूतिने अपने मन में समाधान कर लिया कि मेरा नाम-गोत्र जानलेने में आश्चर्य क्या है? मैं जगत् में विख्यात हूँ, और तीनों लोकों का गुरु हूँ । कौन बालक, युवक और वृद्ध है जो मेरा नाम न जानता हो? हाँ, आश्चर्य तो तब गिनुगा जब यह मेरे मन में जो संशय है, उसको कह दें और उसका निवारण भी कर दें ।

टीकानो अर्थ—ते काले अने ते समये कोटले डे न्यारे धन्द्रभूति पोताना (शिष्य) रिवातनी आथे गर्व अहित भगवान् महावीरनी पासे पहुँचया त्यारे भगवाने “हे गौतमगोत्री धन्द्रभूति” अये पहथी संबोधिते कल्याणकारी, अथकारी अने मधुर वाणीशी बोधया भगवान् द्वारा करायेद पोताना नाम अने गोत्रनु उच्चारण्यु साभजीने धन्द्रभूतिना मनमा धल्लु आश्चर्य थयुं ते विचारवा लाग्या डे भगवाने अपरिचित अेषा भाइं नाम-गोत्र डेनी रीते बाण्युं? अेषु विचारिने डरी धन्द्रभूतिअये पोताना मननुं समाधान कथुं” डे नाम-गोत्र बाण्युवामा नवाध थो छि? डे न्यगतमां विख्यात छु अने त्रये बोडकेना गुरु छुं: अेषो कथे प्राणक, युवक अने वृद्ध छे डे अे मइं नाम नहो बाण्युतो, बोधय? छ, नवाध तो त्यारे मानीथ न्यारे ते भारा मनमां अे संशय छे तेने कही दे अने तेअु निवारण्यु पण्यु करी नाअे

प, उदा आशय गण्यते । एवम्-इत्यं विचारयन्तु तस्मिन्-इन्द्रयुतिं मयावान् भक्षयन्त-उक्तवान्-गीतम् । इन्द्रयुते !
 तव मनसि एतादृशः-वत्सपानमङ्कारकः संशयो वर्तते, यत्-जीवोऽस्ति नचा ?, यतो वेद्ये-“विज्ञानयनएवैतेभ्यो
 भूतेभ्यः स्मृत्याय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति” इति-इत्थं कथितम्-उक्तम् अस्ति । अत्र-अस्मिन् विषये
 कथयामि त्वम् वेद्यदाना-वेदोक्तदानाम् अर्थ सम्पत्-यथार्थतया न जानासि, तव ज्ञातोऽर्थः-“विज्ञानमेवयथा
 नन्दादिरूपत्वात् विज्ञानयनः स एव एतेभ्यः प्रत्यक्षतः परिच्छिद्यमानस्वरूपेभ्य पृथिव्यादिकक्षणेषु भूयो भूतेभ्यः
 समुत्पत्-उत्पद्य पुनस्तान्येवानुविनश्यति-एवैवाद्यकक्षयतया संसीनो मयतीति भावः । न प्रत्य संज्ञाऽस्ति-पृथ्वा
 पुनर्न म मेतरेषु पश्यते तत्संज्ञा-पलोकसंज्ञा नास्तीति भावः । एतेन जीनो नास्ति, इति त्वं मन्यसे । यथार्थ-
 स्त्वयम्-विज्ञानयनएवेतिज्ञानोपयोगदर्शनेपयोगरूपं विज्ञानं ततोऽन्यत्वात् आत्मा विज्ञानयनः, प्रतिभवेत्

गौतम इन्द्रयुतिं यत् सोच ही रहे ये किं भगवान्ने उनसे कथा हे गौतम-इन्द्रयुति । तुम्हारे मन में यह
 संदेह है कि जीव (आत्मा) का अस्तित्व है या नहीं है ? क्यों कि वेदों में ‘विज्ञानयन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः
 समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति’ ‘विज्ञानयन आत्मा’ यूलों से उत्पन्न होकर उन्हीं में लीन हो जाता
 है, परन्तु कथं नहीं है? ऐसा कथा है । मैं इस विषय में कथा है तुम वेद-युक्तोका वास्तविक अर्थ नहीं जानते ।
 उक्त वेदान्तय का तुम्हारा जाना हुआ अर्थ यह है-‘यने भानन्द’ आदि स्वरूप होने के कारण विज्ञान ही
 विज्ञानयन कहलाता है । यह विज्ञानयन ही प्रत्यक्ष से प्रतीत होमेपाठे पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न होकर, भूतों
 में ही अल्पकक्ष से लीन हो जाता है । यद्यु के बाद फिर बन्य लेना प्रेत्य कहलाता है । ऐसी प्रेत्यसंज्ञा
 अर्थात् परलोकसंज्ञा नहीं है । इससे तुम मानते हो कि जीव नहीं है । इस वाक्य का वास्तविक अर्थ यह है

गौतम इन्द्रयुतिं आत्म विचारता अहंता त्वादे भगवाने तेभ्यो-“हे गौतम ! इन्द्रयुतिं तमाशा भनभा
 आ अहे उ हे एव (आत्मा) अस्तित्व उ हे नहीं ? आशु हे वेदोभा ज्ये उहे उ हे-“विज्ञानयन एवै
 तेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति । अति विज्ञानयन आत्मा भूतोभी उत्पन्न भूतिने
 वेदभाभा अ एव अर्थ उ, परलोकात्ता नहीं उ आ विषयभा उहे उ हे तमे वेद-परोना वास्तविक अर्थ
 जानता नहीं, पृथोका वेदभाभने तमे सम्येव अर्थ आ उ-“यन आन इ आदि स्वयं होवाने आशु विज्ञान अ
 विज्ञानयन उहेवा उ ते विज्ञानयन अ अल्पकक्षी प्रतीत बनार पृथ्वी आदि पृथोभी उत्पन्न भूतिने वेदोभा अ
 अल्पकक्ष से लीन अर्थ उ अर्थ उही ही अ म देवा प्रेत्य उ ज्योभी प्रेत्यवा अहे उ हे परलोका-
 नभनयन अत्ता नहीं, वेही तमे भाता उ हे एव नहीं, अ यथाभने वास्तविक अर्थ आ उ-अन्येभ्यो अने

मनन्तविज्ञानपर्यायसघातात्मकत्वाद्वा आत्मा विज्ञानघन एव, सोऽयमात्मा एतेभ्यो भूतेभ्यः पृथिव्युदकादिभ्यः सस्रुत्थाय घटविज्ञानपरिणतो हि आत्मा घटाद् भवति तद्विज्ञानक्षयोपशमस्य तत्राऽऽक्षेपात्, अन्यथा निरालम्ब-नतया तस्यालीकृताप्रसक्तिः स्यादिति तेभ्यः पृथिव्युदकादिभ्यो भूतेभ्यः कथंचिदुत्पद्य, पुनः उत्पन्न्यन्तरम् तान्येव भूतानि=पृथिव्यादीनि श्रुन्विनश्यति तेषु त्रिभूतेषु भूतेषु आत्माऽपि तद्विज्ञानघनात्मना उपरमते, अन्य-विज्ञानात्मना उत्पद्यते, यद्वा-व्यवहितेषु तेषु सामान्यचैतन्यरूपतयाऽवतिष्ठते, इति न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति=प्राकृतिक-घटादि विज्ञानसंज्ञाऽवतिष्ठते इति ।” एतेन जीवोऽस्तीति मतं सिध्यति । यः=जीवः चित्तचैतन्यविज्ञानसंज्ञा-दिलक्षणैः-चित्तम्=अन्तःकरणविशेषः, चैतन्यं=चेतनत्वं-संज्ञानकर्तृत्वम्, विज्ञानं=विशिष्ट, ज्ञानं, संज्ञा=वेष्टा इत्या-

ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगरूप विज्ञान विज्ञानघन कहलाता है । विज्ञान से अभिन्न होनेके कारण आत्मा विज्ञानघन है । अथवा आत्मा का एक-एक प्रदेश अनन्त विज्ञान-पर्यायोका समूहरूप है, इसकारण आत्मा विज्ञान घन ही है । यह आत्मा अर्थात् विज्ञानघन भूतों से उत्पन्न होता है, क्योंकि घट के कारण आत्मा घटविज्ञानरूप परिणति से युक्त होता है क्योंकि-घटविज्ञान के क्षयोपशमका अर्थात् घटविज्ञान के आवरण के क्षयोपशम का वहाँ आप्नेम होता है; अन्यथा निर्मिथय होने के कारण उसमें मिथ्यापन का प्रसंग ही जायगा । अत एव पृथ्वी आदि भूतों से कथंचित् उत्पन्न होकर, बाद में आत्मा भी, उन भूतों के नष्ट हो जाने पर, उस भूत विज्ञानघनरूप पर्याय से नष्ट हो जाता है । अथवा भूतों के अलग हो जाने पर सामान्य चैतन्य के रूप में स्थिर रहता है, अतः उसकी प्रेत्यसंज्ञा नहीं है, अर्थात् प्राकृतिक घटादि विज्ञानकी संज्ञा उसमें नहीं रहती है । इससे जीव है यही मत सिद्ध होता है । अन्तःकरण को चित्त कहते हैं चेतनके भावको चैतन्य कहते हैं,

वर्धनोपयोग इय निज्ञान विज्ञानघन कडेवाय छे विज्ञानथी अलिख डेवाथी आत्मा विज्ञानघन छे अथवा आत्मानो ओइ ओइ प्रदेश अनन्त विज्ञान-पर्यायोना समूइइय छे, ते कारणे आत्मा विज्ञानघन छे छे. आ आत्मा ओटले डे विज्ञानघन भूतांथो उत्पन्न थाय छे, कारणे डे घटनं कारणे आत्मा घटविज्ञान इय परिचित्तवाणि डोय छे कारणे डे घटविज्ञानना क्षयोपशमने ओटले डे घटविज्ञानना आवरणना क्षयोपशमने तथा आक्षेप डोय छे, नईं तो निविषय डेवाने कारणे तेमा मिथ्यापथानो प्रमग थय थय तेथी पृथ्वी आदि भूतोथी कथांइ उत्पन्न थयने पथी आत्मा पथ ते भूतोना नाथ थता ते भूत-विज्ञानघन इय पर्यायथी नाथ पांमे छे अथवा भूतो आलग थतां सामान्य चैत-न्यना इये स्थिर रहे छे, तेथे तेनी प्रेत्य संज्ञा नथी ओटले प्राकृतिक घटादि विज्ञाननी संज्ञा तेमां रहेती नथी, तेथी छे अ अ मत सिद्ध थाय छे. अंतःकरणने चित्त कडे छे चैतन्य कडे छे ओटले डे संज्ञानेना

दिनी यानि लक्षणाणि=लक्ष्यते, अत्रिषादिषुक्षणस्यमाणत्वाच्चीनोऽस्तीति सिष्यति ।
 पुनपि नीरसापनोपायमाह-‘ज्वा’ इत्यादि । यदि जीवो न स्यात्तन्न भवेत् तदा=वर्ति-जीवाऽस्तस्ये पुष्य-
 पापयोः कर्त्ता कः=जीवातिरिक्तो भवेत्? अपि तु न कोऽपिभवेत्, नरि पुष्यपापान्नुक्तस्यपापारो जीवं विना
 सम्भवति तस्मात् पुष्यपापध्वस्त्याच्चीनोऽस्तीति सिष्यति । पुनर्जीनोऽस्तीति मंतं पुष्याति ‘कुष्क’ इत्यादि-
 तत्रासितस्य यद्भदानादिकार्यकरणस्य निमित्तं जीवं विना को भवेत्? अपि तु जीव एव तत्करणनिमित्त भवितु
 मर्ति, व्यापारस्य जीवापीनत्वात् तस्माच्चीनोऽस्तीति सिष्यति । इत्थ जीवास्तित्व साधयित्वा सम्मति वेदप्रमाणेन
 तत्साधयितुमाह-‘वैष सत्ये चि’ इत्यादि-उत्र श्लोऽपि उक्तमस्ति-“सर्वे भ्रयमारामा ज्ञानमयः” सा=विषादि

अर्थात् संज्ञान का जो कर्त्ता हो कर चैतन्य है । विशिष्ट ज्ञान विज्ञान करभाता है । चेट्टा सत्ता करलाठी है ।
 इन विष, चैतन्य, विज्ञान और सत्ता आदि लक्षणों से जीव का ज्ञान होता है, इससे जीवकी सिद्धि होती है ।
 मीरक्री सिद्धिका दूसरा उपाय बतलाते है-भगवन्जीव न हो तो पुष्य और पाप का कर्त्ता जीव के
 अविरिक्त दूसरा दैन होगा? अर्थात् कोई भी नहीं हो सकता । जीव के विना पुष्य-पाप को उत्पन्न
 करनेवाला व्यापार संभव नहीं है । इसलिये पुष्य-पापका कर्त्ता होने स जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है ।
 जीव ह इस मत को फिर पुष्ट करते है-तुम्हारे माने हुए यद्भदान आदि कार्यों के करने का निमित्त,
 जीव के प्रमाण में, कौन होगा ! जीव ही उन कार्यों के करनेका निमित्त हो सकता है, क्यों कि व्यापार
 बीव ह मनीन है । इससे मी जीव है, यह सिद्ध होता है । इस प्रकार जीवका अस्तित्व सिद्ध करके अब
 बर के प्रमाण से उसे सिद्ध करने के लिए करते हैं-तुम्हारे शब्दमें मी कहा है-“सर्वे भ्रयमात्मा ज्ञानमयः”

ने हवा होय तं चैतन्य छे विशिष्ट ज्ञान विज्ञान न भवेत्वाय छे ज्येथा ससा कहेवाय छे ज्ये विषय, चैतन्य, विज्ञान
 अने ससा आदि लक्षणेधी एतत्तु ज्ञान बाध छे तेषी एतनी सिद्धि बाध छे
 एतनी सिद्धि (साजित्वा)ने लीने उपाय जनावे छे-जे एत न होय तो पुष्य अने आपनेो हवा एत सिवाय
 तेषी पुष्य-पापनेो हवा होवाधी एतत्तु अस्तित्व सिद्ध बाध छे एत छे आ भवते ही एत हरे छे-तसे मानेक
 यद्भदान आदि शेषी भस्वत्तु ज्ञानमय एतनी अज्ञानमा होय हरी छे एत न ते शेषी भस्वत्तु निमित्त कोट्ट शर
 छे कारण है व्यापार एतने आपीन छे तेषी यथ एत छे की सिद्ध बाध छे आ नीने एतत्तु अस्तित्व सिद्ध
 इतीने कवे वेदना यथावकी तेने। अह इतने पाठे कहे छे-तभावा साशब्दं पश्य कहेक छे-‘सर्वे भ्रयमात्मा ज्ञानमयः’

लक्षणलक्ष्यमाणोऽवयम्=एष आत्मा-जीवः, ज्ञानमयः=ज्ञानघनरूपः इति, अतः जीवोऽस्तीति मतं सिद्धम् ।-
 इत्यादि प्रयुक्चनं श्रुत्वा तस्य=इन्द्रभूतेः मिथ्यात्वं जले लवणमिव सूर्योदये तिमिरमिव, चिन्तामणौ दारिद्र्य-
 मिव गलितं=नष्टम् । तेन मय्यर्त्वं प्राप्तम् । ततः खलु सः=इन्द्रभूतिः भगवन्तः=श्रीमहावीरप्रभुं वदन्ते नमस्यति,
 वन्दिष्या नमस्यित्वा, एवं वक्ष्यमाणं वचनम् अत्रादीत-हे भदन्त ! वृक्षस्य उच्चत्वम् मातुं=परिच्छेत्तुं वामनजन
 इव अहम् मत्तिमन्दः=अल्पबुद्धिः त्वा=सर्वज्ञं श्री वीरस्वामिनं परीक्षितुं समागतः । हे स्वामिन् ! यस्त्वया मह्यं
 प्रतिबोधो दत्तः, तेन=प्रतिबोधेन अहं ससाराद् विरक्तो जातोऽस्मि । अतः=सांसारिकविषयतो विरक्तत्वात् मां
 प्रवाज्य=रीक्षित्वा दुःखपरम्पराऽऽकुलात्=अनेक दुःखयुक्तात् भवसागरात्=संसारसमुद्रान् तारय ।

ततः-खलु श्रमणो भगवान् महावीरः “अगम्=इन्द्रभूतिः मे=मम प्रथम=अघः, गणधरो भविष्यति ”
 इति कृत्वा तम्=इन्द्रभूतिं पञ्चशतशिष्यसहितं निजहस्तेन-प्रात्राजयत्=रीक्षितवान् ।

चित्त आदि लक्षणों से प्रतीत होनेवाला यह आत्मा ज्ञानघनरूप है । अतःजीव है, यह मत सिद्ध हुआ ।
 इत्यादि प्रभु के वचनोंको सुनकर इन्द्रभक्तिका मिथ्यात्व उसी प्रकार गल गया, जैसे जल में लवण गल जाता
 है, सूर्यका उदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है और चिन्तामणि की प्राप्ति हो जाने पर दारिद्रता का नाश
 हो जाता है । इसी तरह इन्द्रभूति को सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गई ।

तदपश्चात् इन्द्रभूति ने भगवान् महावीर को वन्दन और नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस
 प्रकार कहा-भगवन् । जैसे वामन-छोटि कायवाला वृक्ष की ऊँचाई को मापने के लिए चले, उसी प्रकार
 मैं मति हीन आप सर्वज्ञकी परीक्षा करनेवाला था ! हे भगवान् ! आपने मुझे जो बोध दिया है, उस से
 मैं कृतकृत्य हो गया । मैं संसार से विरक्त हो गया हूँ । विरक्त होने के कारण मुझे दीक्षा प्रदान करके

चित्त आदि लक्षणोत्थी प्रतीत बनार आ आत्मा ज्ञानघन रूप छे तेथी एव छे अये मत सिद्ध थयो. धत्थाहि प्रभुनां
 वयने सांख्यीने इन्द्रश्रुतित्तु मिथ्यात्व औञ्ज प्रभाषे औगणी गथु के नेम पाणीमां भोडु औगणी जय छि,
 सूर्येना उदय थता अंधकार नाथ पाये छे अते चिन्तामणी मणतां नेम दक्षिता नाथ पाये छे. इन्द्रभूतिने सम्यक्-
 त्वनी प्राप्ति थत् त्वाख्यां इन्द्रश्रुतिके भगवान भडावीरने वंदना अने नमस्कार कयां वन्दन-नमस्कार करीते आ
 प्रभाषे कथु-भगवन् ! नेम वागन वृक्षनी उथार्ध मापवाने भाटे जय तेम हुं. भक्तिहीन आप सर्वसनी परीक्षा करवा
 आन्थो डतो छे प्रलो ! आपे मने ने बोध आन्थो छे तेथी हुं. कृतकृत्य थयो. छुं. हुं. संसारथी निरक्त थर्ध गथो छुं.
 विरक्त थवते कारणे मने हीक्षा आपीने इन्धेथी लरेव आ संसार इधी सागरभांथी तादे त्वादे भगवान भडावीर
 थयो. इन्द्रभूति भाडे पहिलो गणधर थयो.” अये कडीने पायसे थिथ्यो साथे इन्द्रभूतिने पेताने डथे हीक्षा आपी

दिनी यानि सप्तधा निःस्वरूपाणि वैर्भावयते=अस्पृष्टे, अतश्चिषादिब्रह्मणस्यमाणस्याञ्जीवोऽस्तीति सिद्ध्यति ।
 पुनरपि नीचसाधनोपायमाह-‘नर’ इत्यादि । यदि जीवो न स्यात्स्व न भवेत् तदा=वर्हि=जीवाऽसत्त्वे पुण्य-
 पापयोः कर्त्ता कः=मीचातिक्रिको भवेत्? अपि तु न कोऽपि भवेत्, नहि पुण्यापादुक्तस्योपायो जीवं विना
 सम्भवति तस्मात् शुण्यापादुक्तस्योऽस्तीति सिद्ध्यति । पुनर्मीचोऽस्तीति मतं पुण्याति ‘कुष्क’ इत्यादि-
 त्वाग्निमतस्य यज्ञदानादिकार्यकारणस्य निमित्त जीवं विना को भवेत्? अपि तु नीच एव उत्तराणनिमित्त भवितु
 मर्हति, व्यापारस्य जीवापीनत्वात् तस्माञ्जीवोऽस्तीतिसिद्ध्यति । इयं जीवास्तित्व साधयित्वा सम्पत्ति वेदममाणेन
 तस्माद्यथितुमाह-‘तद्य सत्य पि’ इत्यादि-उत्त शालेऽपि उत्कमस्ति-“सुवे अयमात्मा ज्ञानमयः” सः=विषादि

भर्वात् संभान का नो कर्त्ता हो यद चैतन्य है । विच्छिन्न ज्ञान विज्ञान कहलाता है । चेष्टा संज्ञा कहलाती है ।
 इन विषय, चैतन्य, विज्ञान और सत्ता आदि सत्तलों से जीव का ज्ञान होता है, इससे जीवकी सिद्धि होती है ।
 श्रीवक्त्री सिद्धिका दूसरा उपाय बतलाते हैं-अगर नीच न हो तो पुण्य और पाप का कर्त्ता जीव के
 भवित्क दूसरा यौन होगा? भर्वात् कोर्त्ता भी नहीं हो सकता । जीव के विना पुण्य-पाप को उत्पन्न
 करनेवाया व्यापार संभव नहीं है । इसकिय पुण्य-पापका कर्त्ता होने से जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है ।
 नीच ह इस मत को फिर गृह करते हैं-दुम्भारे माने हुए यज्ञदान आदि कार्यों के करने का निमित्त,
 जीव के समान में, कौन होगा? जीव ही उन कार्यों के करनेका निमित्त हो सकता है, क्यों कि व्यापार
 जीव के अर्धीन है । इससे मी जीव है, यह सिद्ध होता है । इस प्रकार जीवका अस्तित्व सिद्ध करके अब
 वेद के प्रमत्त से उसे सिद्ध करने के लिए करते हैं-दुम्भारे शकमें मी कहा है-“सुवे अयमात्मा ज्ञानमयः”

ने कर्त्ता होय तं चैतन्य छे विच्छिन्न ज्ञान विज्ञान भवेवाय छे ब्रह्म सः सा भवेवाय छे जे विषय, चैतन्य, विज्ञान
 अने सत्ता आदि लक्षणेधी लक्षण ज्ञान बाध छे तेधी लक्षणी सिद्धि बाध छे

लक्षणी सिद्धि (आग्निवीनि) नीचि उपाय जनावे छे-जे लक्ष न होय तो पुन्य अने पापने कर्त्ता लक्ष सिद्धाव
 तेधी पुन्य-पापने कर्त्ता होय तं चैतन्य पण्य अने लक्ष न होय तो पुन्य अने पापने उत्पन्न अनाद व्यापार अस्तित्व नही,
 यज्ञदान आदि शरीरी कर्त्तव्य लक्षण अस्तित्व सिद्ध बाध छे लक्ष छे आ भवने शरी पुण्य अने शरी अने अने अने
 छे शरीर के व्यापार लक्षने आधीन छे तेधी यज्ञ लक्ष छे जे सिद्ध बाध छे आ शरी लक्षण अस्तित्व सिद्ध
 इतने अने वेदना प्रमाणधी तेने। अद इतने आटे अटे छे-उपायका व्यापार पण्य अने लक्ष छे-‘सुवे अयमात्मा ज्ञानमयः’

लक्षणलक्ष्यमाणोऽद्यम्=एव आत्मा-जीवः, ज्ञानमयः=ज्ञानधनरूपः इति, अतः जीवोऽस्तीति मतं सिद्धम् ।-
 इत्यादि प्रयुक्त्वनं श्रुत्वा तस्य=इन्द्रभूतेः मिथ्यात्वं जले लवणमिव सूर्योदये तिमिरमिव, चिन्तामणौ दारिद्र्य-
 मिव गलित=नष्टम् । तेन मम्यत्त्वं प्राप्तम् । ततः खलु सः=इन्द्रभूतिः भगवन्तः=श्रीमहावीरप्रभुं वदन्ते नमस्यति,
 वन्दित्वा नमस्यत्वा, एवं वक्ष्यमाणं वचनम् अत्रादीत्-हे भदन्त ! वृक्षस्य उच्चत्वम् मातुं=परिच्छेत्तुं वामनजन
 इव अहम् मतिमन्दः=अल्पबुद्धिः तत्रा=सर्वज्ञं श्री वीरस्वामिनं परीक्षितुं समागतः । हे स्वामिन् ! यस्त्वया महां
 प्रतिबोधो दत्तः, तेन=प्रतिबोधेन अह संसाराद् विरक्तो जातोऽस्मि । अतः=सांसारिकविषयतो विरक्तत्वात् मां
 प्रताप्य=रीक्षित्वा दुःखपरम्पराऽऽकुलात्=अनेक दुःखयुक्तात् भवसागरात्=संसारसमुद्रात् तारय ।

ततः-खलु श्रमणो भगवान् महावीरः “अगम्=इन्द्रभूतिः मे=मम प्रथम=आद्यः, गणधरो भविष्यति ”
 इति कृत्वा तप्त=इन्द्रभूतिं पञ्चशतशिव्यसहित निजहस्तेन-प्रात्राजयत्=दीक्षितवान् ।

चित्त आदि लक्षणों से प्रतीत होनेवाला यह आत्मा ज्ञानधनरूप है । अतःजीव है, यह मत सिद्ध हुआ ।
 इत्यादि प्रभु के वचनोंको सुनकर इन्द्रभक्तिका मिथ्यात्व उसी प्रकार गल गया, जैसे जल में लवण गल जाता
 है, सूर्यका उदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है और चिन्तामणि की प्राप्ति हो जाने पर दरिद्रता का नाश
 हो जाता है । इसी तरह इन्द्रभूति को सम्यक्तत्वकी प्राप्ति हो गई ।

तत्पश्चात् इन्द्रभूति ने भगवान् महावीर को वन्दन और नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस
 प्रकार कहा-भगवन् । जैसे वामन-छोटि कायवाला वृक्ष की ऊँचाई को मापने के लिए चले, उसी प्रकार
 मैं मति हीन आप सर्वज्ञकी परीक्षा करनेवाला था ! हे भगवान् ! आपने मुझे जो बोध दिया है, उस से
 मैं कृतकृत्य हो गया । मैं संसार से विरक्त हो गया हूँ । विरक्त होने के कारण मुझे दीक्षा प्रदान करके

चित्त आदि लक्षणैश्वरी प्रतीत धनार आ आत्मा ज्ञानधन रूप छे तेशी एव छे अये मन सिद्ध थयो. धन्यादि प्रभुना
 वचनेन सावणीने धन्द्रभूतितु मिथ्यात्व व्येक प्रमाण्ये जोगणी गथु डे नेम पाणीमा भोडु जोगणी नय छे,
 सूयनेनो उदय अता अंधकार नाश थामे छे अते चिन्तामणी भणतां नेम हरिता नाश थामे छे. धन्द्रभूतिने सम्यक्-
 त्वनी प्राप्ति थर्त्त त्पारभाह धन्द्रभूतिअये भगवान भडावीरने वंदना अने नमस्कार कथां वदन्-नमस्कार करीने आ
 प्रमाण्ये कथुं-भगवन् ! नेम वामन वृक्षनी उचाई मापवाने माटे नय तेम हु भनिहीन आप सर्वज्ञनी परीक्षा करवा
 आण्ये इतो. छे प्रबो ! आपे मने ने जोध आण्ये छे तेशी हुं कृतकृत्य थयो. छुं : हुं संसारथी विरक्त थर्त्त गयो छु.
 विरक्त थवाने कान्ये मने दीक्षा आपीने हु जोगथी लरेल आ संसार र्थी सागरमांथी तारे त्पारे भगवान भडावीरे
 “आ धन्द्रभूति भारे पडेले गथुधर थशे” अयेम कडीने पायसेा शिष्ये साथे धन्द्रभूतिने पोताने हाथे दीक्षा आपी.

वस्मिन् काले तस्मिन् समये गौतमगोत्र इन्द्रमूर्तिनगरः भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठः=संवत् प्रथमः अन्वेषासी=शिव्यो जातः। स कीदृशः इत्याह 'इरियासमिप' इत्यादि। इरियासमित=इरियासमित्यायुक्तः, मापासमितः, एपपासमितः आदानमाणाप्रनिक्षेपणासमितः उच्चारणसकणश्लेष्यशिक्षण जह्यपरिष्ठापनिकासमितः, मनःसमितः, वाचसमितः, कायसमितः, मनोगुप्तः, गुप्तः, सुप्तेन्द्रियः, गुप्तस्रजचारी" एतेषामीर्यासमितादि गुप्तस्रजचारिपर्यन्तानां पदानां व्याख्यास्य बहुसंज्ञास्यैकैकशततम-१७४ सूत्र टीकातोऽवसेया। तथा-त्यागी=त्यागचीनः, वने लङ्कुः=वनस्यलङ्कुवनस्यतिविक्षेपकत्वात्त्यागचीनः। सपत्नी-पष्टष्टमादितपभयार्थं

दुःखों से भरे हुए इस संसार क्पी सागर से हृष्टे तार वीजिए। तब भ्रमण भगवान् महावीर ने 'यह इन्द्रसूति मेरा प्रथम गणधर इगा' इस-प्रकार ज्ञान से देखकर पांच सौ शिव्यों सहितइन्द्रसूति को अपने हाथ से दीक्षा प्रदान की।

उस काल और उस समय में गौतम गोत्रीय इन्द्रसूति अनगार भ्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ-तप से प्रथम-शिव्य हुए। वह कैसे थे, सो कहते हैं-वह इरियासमित थे अर्थात् इरियासमिति से युक्त थे। इसी प्रकार आयासमिति, एपपासमिति, आदानमाणाप्रनिक्षेपणासमिति थे, उच्चारण-सकण श्लेष्यशिक्षणजह्य परिष्ठापनिका समिति थे, मनःसमिति थे, मनोगुप्त अर्थात् मनोगुप्ति से युक्त थे, इसी प्रकार इतनगुप्त थे, कायगुप्त थे, गुप्त थे, सुप्तेन्द्रिय थे, गुप्तस्रजचारी थे। इरियासमिति से छेकर गुप्तस्रजचारी तक के पदानां अर्थ १७४ वें सूत्र की टीका के हिन्दी भाषानुवाद से ज्ञान लेना चाहीए। वह त्यागी-त्याग चीन थे। वनमें जो साजसजी नामन वनःपति होती है, उसके समान वापमय व्यापारों से लज्जाधील-संकोच

ते कथे अने ते अमरे गोमानजोतीव ईन्द्रभूत आनुवार शमयु भगवान् महावीरना ज्येष्ठ-सोधी परेहा शिव्य यथा तेजा देवा देवा ते शक्रे छे-ते इवोचमिति देवा जेटहे के ईशोचमितिभी सुजत देवा, जेब प्रभावे भाषासमिति, जेबपुा अमिति आदान आदाननिक्षेपयुक् अमिति देवा, उच्चारणसकणश्लेष्यशिक्षणजह्यपरिष्ठापनिकासमिति देवा, मनःसमिति देवा वचन अमिति देवा, शक्यमिति देवा, मनोगुप्त जेटहे भनोगुप्तिभी सुजत देवा, जेब प्रभावे वचन सुप्त देवा, शक्युप्त देवा, सुप्त देवा, सुप्तेन्द्रिय देवा, गुप्त प्रकस्यारी देवा, ईशोचमितिभी भंदिने उपप्रास्यचारी सुधीना परेना अर्थ १७४व्यां सूत्रनी टीकाना अनुवादी भाषानुवादी अमल देवा जेहके ते त्यागी-त्यागचीन देवा, वनमं जे वाचपती नामनी व स्थिति वाच छे तेनी जेभ पापमय व्यापारीभी लज्जाधील-

सम्पन्न; क्षान्तिक्षमः=क्षमागुणेन परापकारसहनवार, जितेन्द्रियः=वशीकृतेन्द्रियगणः, शोधिः=अन्तःकरणशोधकः, अनिदानः=निदानवर्जितः, अर्थौत्सुक्यः=औत्सुक्यवर्जितः, अत्वरितः=वेगवर्जितः-स्थिर इत्यर्थः, सुश्रामण्यरतः=समीचीनसाध्वाचारपरायणः, इदमेव नैर्ग्रन्थ=निर्ग्रन्थसम्बन्धि प्रवचनं पुरतः=अग्रे कृत्वा निहरति ।

सः-युहीतदीक्षः खलु इन्द्रभूतिरनगारः गौतमगोत्रः सप्तोत्सहः-सप्तहस्तपरिमितोच्छ्रितदेहः, समचतुरस्रसंस्थान-संस्थितः-समाः=तुल्याः-अन्युनाधिकाः चतस्रोऽस्यो-हस्तपादोपर्यधोरूपपात्रारोऽपि विभागाः यस्य तव समचतुरसं=तुल्यारोहपरिणाहं, तच्च संस्थानम्-आकारविशेषः इति समचतुरस्रसंस्थानं, तेन संस्थितः=युक्तः, तथा वज्रऋषभनाराचसंहननः-वज्रं=कीलिकाकारमस्थि, ऋषभः-तदुपरि-परिवेष्टनपट्टाकृतिकोऽस्थिविशेषः, नाराचम्=उभयतो मर्कटवन्धः, तथा च द्वयोरस्थनोरुभयतो मर्कटवन्धनेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थना परिवेष्टितयो

शील थे । बेला तेजा आदि भी तपश्चर्चा से युक्त थे । क्षमाशील होने के कारण दूसरोंके द्वारा कृत अपकारों को सह लेते थे । इन्द्रियोंकी वश में कर चुके थे । अन्तःकरण के शोधक थे । निदान (नियाना) अर्थोंव आगामी काल संबंधी विषयोंकी वृष्णा से रहित थे । उत्कंठा से रहित थे । स्थिर थे । और समीचीन साधु-आचार में तत्पर थे । इसी निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे करके विधरते थे ।

वह इन्द्रभूति अनगार गौतम गोत्रीय सात हाथ के ढँचे शरीर वाले थे । समचतुरस्र संस्थानवाले थे । हाथ, पैर, ऊपर और नीचे के चारो भाग जिसके समान हों उसको समचतुरस्र कहते हैं । ऐसे आकार विशेषको समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं । उनका वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन था । कीली के आकारकी हड्डी वज्र कहलाती है । उसके ऊपर वेष्टन-पट्ट की आकृति की हड्डी को ऋषभ कहते हैं । दोनों ओर के हड्डी से मर्कट वधको नाराच कहते हैं । अतः दोनों तरफसे मर्कटबंध से बंधी हुई और पट्टकी आकृतिकी तीसरी

स डे यशील हुता. छठ, अठम आहिनी तपस्याथी युक्त हुता क्षमाशील होवाने दीधि भील क्षान्तःकरण अपकारोने सहन करी देता हुता छन्द्रीयोने वध करी यूकथा हुता अतःकरुना शोधक हुता निदान (नियाना), अटठे डे भविष्य कृण स अर्ध विषयोनी तुषाथी रहित हुता, उत्कंठाथी रहित हुता स्थिर हुता अने समीचीन साधु-आचारभां तत्पर हुता अने निर्ग्रन्थ प्रवचनेने आगण करीने विधरता हुता.

ते गौतम गोत्रीय छन्दर्भूति अष्टगार सात हाथ उंथा शरीरवाणा हुता समचतुरस्र संस्थानवाणा हुता. हाथ, पैर, ऊपर अने निचेनी चारो भाग जेने समान होथ तेने समचतुरस्र कहे छे. जेवा आकार विशेषने समचतुरस्र संस्थान कहे छे. तेभने वज्रऋषभनाराच संहनन छुटु. भीलीना आकारना छुडकाने वज्र कहे छे. तेना ऊपर वेष्टनपट्टनी आकृतिना छुडकाने ऋषभ कहे छे. गन्ने तरफना मर्कट बंधने नाराच कहे छे. तेथी गन्ने तरफथी

शरीर तदस्वियप्रय पुनरपि हवीकृष्टं तत्र निखात कीलिकाकारं वचनामकमस्यि यत्र भवति तत् वल्लक्ष्णमनाराधय, तत् सहनन-सहन्य-वे-हवीकृष्टं शरीरपुष्टलायन तत् संहननम्-अस्थिनिययो यस्य स वल्लक्ष्णमनाराधयसंहननः। तथा-हननक्षुल्लकनिकषपधगौरः कनकस्य-दुर्गणस्य पुलकः-सल्लभ्यं, तस्य निकष-आणानिघृष्टरेखा, 'पद्म'-सन्धेन पत्रकिञ्चत्कं धवते, तेन पद्म-पत्रकिञ्चत्कं च, तद्वद् गौरः-अणानिघृष्टसुवर्गरेखाकमलकिञ्चत्कवद्गौरवर्णं इत्यर्थो, यद्वा-हनकस्य सुवर्णस्य पुनक-न्यारो वर्णाविश्रयः, तत्पमानो यो निकष-आणानिघृष्टसुवर्गरेखा, तस्य यत् पश्म-वद्भुक्तं तद्वद् गौरः-अणानिघृष्टानेक सुवर्गरेखाबाह्यविक्रिययुक्तगौरशरीरः, उग्रतया-उग्रम् उच्छ्रुटं प्रहृष्ट परिणामत्वात्पारणाश्री विविचामिग्रहत्वात् अमपृथग्यमनश्ननादि इत्यश्वत्विचं तपो यस्य स तथा-वीज्रतयवर्षाधानं,

श्रेष्ठि त्वी दुरं होलौ इद्वीयोके ऊपर, उन तीनोंको फिर भी अधिक हृदकरने के लिए जहाँ काली के आकार की वज्र नामक अस्थि सर्गी हुई हो, वह वल्लक्ष्णम नाराध करलाता है। जिसके द्वारा शरीर के पुरुषगन्ध हृद किये जायें, उस अस्थि निचय-इद्वीयोके रचना-विशेषको संहनन कइये। ऐसा वल्लक्ष्णमनाराध सानन इन्द्रवृत्ति अनगारको प्राप्त या। उनका शरीर पसा गौर-वर्षया जैसे स्वर्णके लंब को कसौटी पर धिगन स मुनवती और चमकती हुई रेखा होती है, अथवा जैसे कमल का किञ्चुक होता है। भूमिमाय यह कि उनका नरीर कसौटी पर पिसे स्वर्ण की रेना और कमल के केसर के समान चमकीला एवं गौर वर्ण का या। अथवा कसौटी पर पिसे स्वर्ण की मोक रेखाओं के समान गोरे शरीरवाले ये। बढ़ते हुए परिणामों के कारण तथा पारणादि में विविच प्रकार क अमिग्रह करने के कारण उनका मनअन आदि बार प्रकार का तप उच्छ्रुट या, अत वे उग्रतपस्वी ये। वही दुरं तपस्यावान् होने से दीप्ततपस्वी वे। अधिक तपस्या

भवत अथकी अर्पित्री अने पुत्री आभूतिग्य त्रीव्य बाह्यार्थी वीटोयेल अने बाह्यार्थी उपर, अने नखेने शरीरकी ६६ अथाने भाटे अन्तर्भी अर्पित्रीना आभारतु वल्ल नामत अस्थि बाह्येह कोष ते वल्लक्ष्णमन-नाराध कइवाय छे अनेना बास शरीरिना पुनर ६६ इत्येक, ते अस्थि निचय-बाह्यार्थी रचना विशेषने संहनन कइये छे अतु वल्लक्ष्णम नामय संहनन ईन्द्रवृत्ति आवुधारने प्राप्त कइयेह अतु तेभ्यु यवीर अतु गौर-वर्णं अतु ई नेम सोनाना दुर्गयने कसौटी पर वल्लक्ष्णमि सोनेरी अने कसौटी रेखा बाव छे, अथवा अने कसौटी रेखा अने अणाने पद्मवर्णं अतु छे वारपद्मं अतु ई तेभ्यु शरीर परेखा सुवर्णनी अनेर रेखाअर्पित्री अथवा अनेर कसौटी रेखा अथवा कसौटी पर

अथवा अथ पश्चिमिने बावये तका पारणादिना विचित्र प्रकाशय अभिप्रक अस्थाने बावये तेभ्यु अन्तःअन आदि बार अभातु तत्र उच्छ्रुट अतु, तेभी तन्नि अथ तपस्वी कया वधारे तपस्यावाला शिवाधी दीप्त तपस्वी कया शरीर

दीप्तपाः=समिद्धतपश्चर्यावान्, महातपाः=वृहत्तपश्चर्यावान्, उदारः=सकलजीवैः सहमैत्रीभावात्, वीरः=परीपहो-
 पसर्गकषायशत्रुप्रणाशविधौ भयानकः, वीरगुणः=वीरा=कातरैर्दुश्चराः गुणाः=मूलगुणा यस्य स तथा, वीरतपस्वी=
 दुश्चरतपोधारी, वीरब्रह्मचर्यवासी=कातरदुश्चरब्रह्मचर्यवासी कठिनब्रह्मचर्यधारणधीरः, उत्तिष्ठशरीरः=त्यक्तदेहा-
 भिमानः, शरीरसंस्कारवर्जितो वा संक्षिप्तविपुलतेजोलेख्यः=शरीरान्तर्लीनतेजोलेखयावान्-विशिष्टतपोजनितलब्धि-
 विशेषसमुपन्वतेजोज्ज्वलावान्, चतुर्दशपूर्वी=चतुर्दशानां पूर्याणा धारकः, चतुर्ज्ञानोपगतः=मति-शुत्यवधि-मनःपर्याय-
 ज्ञानसम्पन्नः, सर्वाक्षरसंनिपाती=सकलद्वर्णावगाहिवुद्धिः=सर्वाक्षरप्रवेशिकारिवुद्धिः, धमणस्य भगवतो महावीरस्य
 अदूरसामन्ते-नातिदूरे नातिसमीपे-उचितस्थाने ऊर्ध्वजानुः=उपरिकृतजानुः, अधः शिराः=नन्रीकृतमस्तकः,
 ध्यानकोट्योपगतः=ध्यायते-चिन्त्यतेऽनेनेति ध्यानम्-एरुस्मिन् वस्तुनि तदेकग्रतया चित्तस्यावस्थापनम् ध्यानं कोष्ट

करने के कारण महातपस्वी थे। प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव रखने के कारण उदार थे। परीपह, उपसर्ग
 एवं कषाय रूपी शत्रुओं को नष्ट करने में भयानक होने से वीर थे। वह वीर (कायरोंद्वारा दुष्कर) मूल
 गुणों से युक्त होने से वीर गुणवान् थे। दुश्चर तपश्चरण के धारक थे। कायरजनों द्वारा आचरण न किये जा
 सकने योग्य ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। उन्होंने देहाभ्यास का त्याग कर दिया था, अथवा वे शरीर के
 संस्कार (श्रृंगार) से रहित थे। त्रिशिष्ट तपस्या से प्राप्त हुई विशाल तेजोलेख्या नामकलब्धि उन्होंने शरीर में ही
 लीन (छीपा) कर रखी थी। चौदह पूर्वों के धारक थे। मति-शुत-अवधि-मनः पर्यवज्ञान से युक्त थे। उनकी बुद्धि
 समस्त अक्षरों में प्रवेश करनेवाली थी। वह भगवान् से न अधिक दूर रहते और न अत्यन्त समीप ही रहते थे।
 उचित स्थान पर रहते थे। वहाँ घुटने ऊपर कर के तथा मस्तक नमस्कर ध्यान रूपी कोष्ट को प्राप्त थे।

भोटी तपस्या करवाने कारणे महातपस्वी होता प्राणी मात्र तरश्च भिन्नभाव राधता होवाथी उदार हुता परिशुद्ध, उपसर्गं
 अने कषाय इपी शत्रुयोने नाश करवाभां लथानक होवाथी वीर हुता. ते वीर (कायरे द्वाश दुष्कर) भण शुशोवाणा
 होवाथी वीर शुशवान हुता दुश्चर तपश्चर्यनु धारक हुता कायर भाषुसोद्वारा आचरी न अक्षय जोवा प्रब्रथर्थनु
 पालन करता हुता. तेमहे देहाभ्यासने त्याग क्यो हुते, अथवा तेजो शरीरना संस्कार (श्रृंगार)धी रक्षित हुता.
 विशिष्ट तपस्या वडे प्राप्त थयेल विशाण तेजेयेस्था नामनी लब्धि तेमहे शरीरभां ल लीन करी हीधी हुती. औह
 पूर्वोना धारक हुता. मति, शुत, अवधि अने मन पर्यवज्ञानधी युक्त हुता. तेमनी बुद्धि समस्त अक्षरोभा प्रवेश
 करनाशी हुती. ते लगवानधी वधारे दूर पथु न रहेता अने अन्यत नष्टक पथु न रहेता-उचित स्थान पर रहेता
 हुता त्यां घुटणे उपर करीने तथा मस्तक नभावीने ध्यान इपी कोष्टके प्राप्त हुता. कोष्ठ पथु अेक वस्तुभां ओकायता-

एर ध्यानकोष्ठ, तमुपगतं, यया कोष्ठगतं धान्यं विकीर्णं न भवति तथैव ध्यानतः इन्द्रियान्तः कारणवृत्तयो बहिनं पान्तीति मात्रं, नियन्त्रितचित्तवृत्तिमानित्यर्थः । संयमेन-ससदसदचित्तविवेन, तपसा=द्रावस्रविवेन आत्मानं भाषय-मानः=वासयन् विररति ॥सू०१०६॥

मूलम्—एण अमिापूर्व माहणो सम्भविज्जापारगो इदमूर्ख्ण चित्तेरु संधं सो मां इंदजालिओ दोसा । अणेण मम माया इदमूर्ध बविओ । अहुणा मंरं गच्छामि अत्तज्जणुं अण्यणं तत्त्वणुं मण्यमाणं तं युज परा निणिय मायाए बचियं मच्छमाएरं पठिणियेट्ठेमिचि चियारिय पंचसयसिस्सेहिं पठिओ सो सगंधं पडुसमीवे पत्तो । तं मगरं नामसंययनित्तैसणुवं संबोहिय एष वयासी-मो अणियूर्ध । तुक्खमणंसि कम्मवित्तए संसओ वधइ-न कम्म अत्थि वा नत्थि ? “पुकपएवेद U सर्वं यदमुत यष मान्यं” इचार वेययणणाओ सत्वं अप्यावेव न कम्मं । जईकम्म मये तारे पवत्ताइएणमाणेणं त सम्मसिया, त नत्थि ? जइकम्मं मभिनइ तारे वेण सुणेण इणुणा एर अयुचस्स जीवस्स इइ ज्ञा ? अहुणस्स जीवस्स सुवाओ कम्मओ उववायाणुमाहा इइ होउं सज्जा ? जहा भाणसो तमाएणा न छिज्जइ, चदणेण नोवत्तिवज्जइ चि, तं मिच्छा, अइसयणाणियो कम्म एववत्तणेण पासंठि, छठमत्वाउ जीवाणं वेचिष पासिय त अणुमाणेण जाणति । कम्मस्स विचिचयाए वेव पाणीयं सुइइइइमात्ता सपज्जंठे, ममो कोरं जीवो राया इवइ, कोरं आसो गओ वा तस्स चारणो इवइ, कोरि पयाइ, कोरं छत्तापारगो इवइ । एवं कोवि सुयत्तामो भिप्पसागो होइ, जो अरोरच अट्टमाणो वि भिक्खं न मइ । जमगतमणं वइइमाणणां पोयवणियाणं मग्गे एगो सरइ, एगो सव्वमि पुठइ । पयारिसाणं कज्जाणं किमी मी एक वत्तु में एकाग्रतापूर्वक चित्त का स्थिर होना ध्यान कहलाता है । वे उसी ध्यान स्वी कोष्ठ (कोठी) में स्थित थे । अर्थात् जैसे कोठी में रहा हुआ पान इधर-उधर फिरता नहीं है, उसी प्रकार ध्यान करने से इन्द्रियों की तथा मन की वृत्ति बाहर नहीं जाती है । आठव्य यह है कि इन्द्रवृत्ति अनगार ने अपने चित्त की वृत्ति को नियंत्रित कर लिया था । वे सत्तरह प्रकार के संयम और द्वादश प्रकार के तप से आत्मा को माहित करते हुए विचरने लगे ॥सू०१०६॥

यइ भिणियु शिरर देवु तेने ध्यान इके छे ते जेअ ध्यान इपी इअइ (किंठि)भा रहेव उवा जेठवे इ नेअ देडिअं रहेव अत्ताअ म्पम तेम वेसावु नथी जेअ प्रभाजे ध्यान अरुचओ छिन्देओनी तथा अतनी वृत्ति अकार अवी नसी आशय जेठे इ ई-इ-इ-इ अणुचारे योतानी चित्तनी वृत्तिने नियन्त्रित इही बीपी इवी, तेज्जा अत्तर प्रकाशना सु बम अने नार प्रकाशना तप वडे आ अने नाजित्त इत्ता विवक्का कात्था. (सू०१०६)

कारणं कर्मचैव, नो णं कारणे णं विणा किपि कज्जं संपज्जाए । अहं य जहा सुत्तस्स चडस्स अमुत्तेण आगामेण सह संबंधो तथा कम्मणो जीवेण सह । जहा य मुत्तेहि नाणाचिहेहि मज्जेहि, ओसहेहि य अमुत्तस्स जीवस्स उक्वाओ अणुगगहो य हवंतो लोए दीसड, तहेव अमुत्तस्स जीवस्स मुत्तेण कम्मणा उक्वाओ अणुगगहो य मुणेववो । अहं य वेयपएसु वि न कत्थइ कम्मणो निसेहो, तेण कम्मं अत्थि ति सिद्धं । एवं पट्टवयणेण संसयम्मि छिबम्मि समाणे हट्टट्टो अग्निभूई वि पंचसयस्सिस्स सहियो पवाइओ ॥ग्र०१०७॥

छाया—ततः खलु अग्निभूतिर्ब्रह्मणः सर्वविद्यापारगः इन्द्रभूतिरि चिन्त्यति=सत्य, स महान् ऐन्द्र-जालिको दृश्यते । अनेन मम भ्राता इन्द्रभूतिर्विश्वितः । अनुनाहं गच्छामि, अमर्षतमालमानं सर्वत्र मन्यमानं तं धूर्त्तं पराजित्य सायया वञ्चितं मम भ्रातरं प्रतिनिवर्त्तयामीति विचार्य पञ्चशतशिल्पिः परिश्रुतः सर्गं प्रसूयामीपे प्रातः । तं भगवान् नामसंशयनिर्देशपूर्वं संवोऽथैवमादीत्—ओ अग्निभूते ! तत्र मर्त्तानि कर्मविषये संग्रयो वर्त्तते, यत्-कर्मस्ति वा नास्ति ? पुरुष एवेद °U° सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं” इत्यादि वेदरत्नान् सर्वमालम्बेन न

मूल का जर्म—‘तर्पणं’ इत्यादि । तत्प्रधान् समस्त विद्याओं में पांशुं अतिश्रुति व्रातगने इन्द्रभूति के समान विचार किया—सचमुच, वह तो बड़ा भारी इन्द्रमालिन्या दीतना है ! अपने मेरे भाई इन्द्रभूति को भी अपनी जाल में फसा लिया ! अब मैं जाता हूँ और अर्चन किन्तु अपने आपको सर्वत्र माननेवाले उस धूर्त्त को पराजित करके छल करके-उल्ले हूए अपने भाई को वापिस लाता हूँ । इस प्रकार विचार कर वह अपने पाँचसौ शिल्पियों के साथ, गर्व सहित प्रभु के समीप पहुँचा । भगवान् ने उनके नाम और मंत्राय का उल्लेख करके संवोभन करते हुए कहा—हे अग्निभूते ! तुम्हारे मन में कर्म के विषय में संग्रय है कि कर्म है या नहीं है ? ‘पुरुष एवेद °U° सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्’ इति । अर्थात् ‘यह सब पुरुष ही है

भूतानो अर्थ—‘तर्पणं’ इत्यादि. समस्त विद्याओमा पारगत ओवा अग्निभूति ब्राह्मणे, इन्द्रभूतिना लेवोन् विचार कयो के, भरे भर ! आ पुरुष इन्द्रब्रह्मदीयोग देपाय छे । तेहे तो, मारा भाई इन्द्रभूति लेवाने यधु, पोताना क्षसदाभा नेडी हीधा डवे हु त्या ञढ ! अने पोताने सर्वस भानता ओवा ठगने प-ल्यत करी, मारा नयेठ बाधने अकत करी, साथे बेतो आयु ! आ प्रकारे निर्णय करी पोताना पांथमो शिष्येना परिवार साथे गर्व सहित प्रभु अग्नीये पछो=थे वागवाने तेजुं नाम अने गशयनेो लट्टेअ-करी, तेने अयोध्या, ने डकेवा लाया हे,—हे अग्निभूति ! एवम अन्तर्मा कर्मस्य धी सशय छे के नडि ? कर्म डगे के डेम तेवी शंका छुं सेवी रक्षो छे के नडि ?

કર્મ । યદિ કર્મ મરેવત્ પ્રત્યક્ષાદિમમાજેન તદ્ વસ્ત્વં સ્યાત્, તન્માસ્તિ । યદિ કર્મ મન્યતે, તદ્વા તેન મૂર્ષેન કર્મણા સાઃ પ્રમૂર્ષસ્ય જીવસ્ય કૃયં સમ્બન્ધો મરેવત્ । અમૂર્ષસ્ય જીવસ્ય મૂર્ષાત્ કર્મણઃ ઉપચારાત્પ્રપ્તૌ કૃયં મરિત્વં શ્વનુચારામ્ ? યથા-આકાશઃ સહ્યાગાદિના ન ઝિયતે, વચ્ચનેન નોપસ્થિપ્યતે इति । તન્મિધ્યા, અરિ ક્ષયકાનિનઃ કર્મ પ્રવૃત્તત્વેન પર્યન્તિ, છદ્મસ્યાસ્તુ જીવાનો વૈવિધ્યં દ્વિપ્રાનુમાનેન તદ્ જ્ઞાનન્તિ । કર્મણો વિચિત્રત્વેષુ પ્રાપિનાં સુલુદુઃસારાદિમાયાઃ સંપત્યે યથ ક્ષમિજીવો રાજા મરવિત્, કશ્ચિદ્ અથો ગજો યા તસ્ય

જો છે, હો સુકા રે ઔર જો હોનેવાજા છે ।' इस वेद-वचन से सब कुछ आत्मा ही है, कर्म नहीं । यदि कर्म होता तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उसकी उपलब्धि होती । परन्तु उपलब्धि नहीं होती, अतः कर्म नहीं है । यदि कर्म माना जाय तो मूर्च्छ कर्म के साथ अमूर्च्छ जीव का संबंध कैसे हो ? मूर्च्छ कर्म से अमूर्च्छ जीव का उपाधात और अनुग्रह कैसे हो सकता है ? जैसे आकाश सब्ज आदि से नहीं काटा जा सकता, और चन्दन आदि से लसि नहीं किया जा सकता । किन्तु इस प्रकार सोचना मिथ्या है । अविश्वय शानी प्रत्यक्ष प्रमाण से कर्मों को देखते हैं और अत्यन्त जीवों की विविधता को देखकर अनुमान से कर्म को जानते हैं । कर्म की विविधता से ही प्राणियों में सुल-सु-स कि अवस्था उत्पन्न होती है । कोई जीव राजा

“પુરુષ પુવેદ ં સર્વં યદ્ મૂત યદ્ મૂત યદ્ માલ્યમ્” અર્થાત-આ અજતર્થાં ને પુરુષ છે તે જ પુરુષ છે, ને યદ્ અર્થ અર્થ છે, અને આવીશાને યથાના છે તે અર્થ પુરુષ જ છે ! આ વેદ વચનથી, વને એવુ જ્ઞાન પ્રાપ્તુર્જન યદુ છે કે આ અજત આત્મામય છે કર્મ જેવુ કાંઇ છે જ નહિ. ” એ કર્મનું વિશ્વાનપણુ હોવ તે, પ્રત્યક્ષ આદિ પ્રમાણે દ્વારા અજ્ઞાયા વિના શ્વેત નહિ પણ તેની ઉપલબ્ધિ થતી નથી આટલે જેવુ કાંઈ છે જ નહિ. એ કલાશ ‘કર્મ’ અનવામાં આવે તે, અમૂર્ષ્ જીવની સાથે મૂર્ષનિ તે અર્થ ઠેકી રીતે હોઈ શકે ? ” “ મૂર્ષ કર્મ દ્વારા, અમૂર્ષ આત્માનો ઉપચાત છે અનુમદ ઠેકી રીતે જવાબ ? જેમ આકાશ અમૃત છે, તેને મૂર્ષ એવા વ્યક્ત આદિથી કાપી શકાય નહિ જેમ ચકન મૂત છે તે તે, અમૂર્ષ એવા આકાશને જેવુ નથી, તેમ આત્મા અમૂર્ષ છે, જાને કર્મ મૂર્ષ છે, તે મૂર્ષ પદાર્થ અમૂર્ષ સાથે ઠેકી રીતે એક રૂપ યદ્ શકે ? કુ આવા પ્રકારના વાર્શ મત્વો વતેછ તે જરાબર છે ને ? વેદના યજ્ઞો વ ઉપર પ્રમાણે અર્થ કરે છે તે પણ જરાબર છે ને ? ”

અગ્નિવિદ્યે હાશર્મા પ્રવુષ્ટર આખે અને ને ને ઉપર પ્રમાણે તેના અભિપ્રાયે હતા તેની કલુષાત કરી અનથાને વગતે જ્ઞાન આપી શકુ છે આવા વારા અભિપ્રાયે યોગ છે અવિશ્વાય જ્ઞાની પુરુષો, પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ વડે કમોને રહે છે; જાને અકષયજ્ઞાની જીવોની વિવિધતા એક અનુમાનપણુ કર્મને અર્થે છે કર્મની વિવિધતાને જીવે પ્રાણીજીવમાં સુલુદુઃસારના આવા ઉત્પન્ન થાય છે કાંઈ જુન એ શબ્દ થાય તે, કાંઈ હાથી કે ઘોડા યદ્ તે જાનન

वाहनं भवति, कश्चिद् पदातिः, कश्चिच्छत्रधारको भवति । एवं कश्चिद् छुत्क्षामो भवति योऽहोरात्रमटन्त्सपि भिक्षां न लभते । युगपद् व्यवहरमाणानां पोतवर्णिजां मध्ये एकस्तरति, एकः समुद्रे वृडति । एतादृशां कार्याणां कारणं कर्मैः, नो खलु कारणेन विना किमपि कार्यं संपद्यते । अथ च यथा मूर्त्तस्य घटस्यामूर्त्तेन आकाशेन सह सम्बन्धस्तथा कर्मणो जीवेन सह । यथा च मूर्त्तेर्नानाविधैर्मत्रैः, औपधैश्चापूर्त्तस्य जीवस्योपघातोऽनुग्रहश्च भवन् लोके दृश्यते तथैव अपूर्त्तस्य जीवस्य मूर्त्तेन कर्मणा उपघातोऽनुग्रहश्च ज्ञातव्यः । अथ च वेदपदेऽपि न कुत्रापि कर्मणो निषेधस्तेन कर्मास्तीतिसिद्धम् । एवं प्रभुवचनेन संशये छिन्ने सति हृष्टुष्टोऽग्निभूतिरपि पञ्च-शतशिष्यसहितः प्रव्रजितः ॥मू०१०७॥

होता है, कोई हाथी अथवा कोई घोडा होकर उसका वाहन बनता है । कोई पैदल चलता है, कोई छत्र धारण करता है । इसी प्रकार कोई भूख से दुर्बल होता है, और दिन-रात भटकता हुआ भी भीख नहीं पाता ! एक साथ व्यापार करनेवाले नौका-वर्णिकों में से एक पार पहुँच जाता है, और एक समुद्र में डूब जाता है । इन सब कार्यों का कारण कर्म ही है, क्योंकि कारण के बिना कोई भी कार्य उत्पन्न नहीं होता । और, जैसे मूर्त्त घटका अमूर्त्त आकाश के साथ संबंध होता है, उसी प्रकार कर्म का जीव के साथ । जैसे नाना प्रकार के मूर्त्त मद्यो से और मूर्त्त औषधों से जीव का उपघात और अनुग्रह होता हुआ लोक में देखा जाता है, उसी प्रकार अमूर्त्त जीव का मूर्त्त कर्म के द्वारा उपघात और अनुग्रह जानना चाहिए । इसके अतिरिक्त वेद-पदों में भी कहीं भी कर्म का निषेध नहीं किया गया है, अतः कर्म है, यह सिद्ध हुआ । इस प्रकार प्रभु के कथन से संशय दूर हा जाने पर हर्षित और संतुष्ट हुए अग्निभूति भी अपने पाँचसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ॥मू०१०७॥

वाहनं अने छि. कर्मनी विचित्रता ने वीधि डोई पगे चाले छि, तो डोई भाथे छत्र धारणु कराये छे कर्मना वीधि, डोई छुपथे दुर्बल मानव शरी माटे दिन रात लटके छे छता तेने पेट पूरु' मगलु नथी'

कोई साथे अने कोक न समथे व्यापार करवाना वेपारीओमां कोक पार पाये छि, त्यादे भीजे डूभी जाय छि आ तमामगु भूणलतु डारणु कर्मोदय छे डोई पणु कार्यनी पछवाडे डारणु तो डोखु' नेऽय्ये; डारणु विना कार्यं गनलु नथी. जेम मूर्त्त घडाने संगंध व्यभूर्त्त आकाश साथे थाय छे तेम कर्मने संगंध आत्मा साथे गन्धाय छे जेम मूर्त्त स्वइयी मध अने मूर्त्त स्वइयी आंधवियो वडे छवने उपघात अने अनुग्रह थाय छि, तेम न गन्धाय निषेध करवाना आन्थे नथी, माटे कर्म छे ते भिक वस्तु छे आ प्रमाणे प्रभुना कथनथी संशय हर थतां ते डर्षित थथे। सलु थथ तेबे पणु पेताना पाथगे शिष्येना समुदाय साथे दीक्षा वडणु करी. (सं०१०७)

टीका—“तए प अग्निभूई माहणे” इत्यादि । तवः=इन्द्रभूतेवींसाप्रधानन्तरं स्वच्छ अग्निभूतिमाहणः सर्वं विद्यापारागः=समस्तविद्यापारागतः, इन्द्रभूतिविष विन्त्ययति-सत्यम्=व्ययार्थम् सः=महावीरो महान् ऐन्द्रजासिकः=मायावी इत्येते । अनेन मम भ्राता=इन्द्रभूतिः वञ्चितः=छलिता अयुना अयम् गच्छसि, गत्वा च अस्वर्गं सन्वमपि आत्माने=स्व सर्वं मन्यमान व भूते पराश्रित्य=प्रास्तीकृत्य मायाया वञ्चितं मम भ्रातरं पतिनिवर्तयामि=अनयामि इति विचार्य पञ्चशतश्रित्यैः-परहितः सर्वं ययास्यात्पया प्रहसमीये=भीमहावीरयार्ये माताः=मातः तयः=अग्निभूतिं मगवान्-भीमहावीरं मय्क नामसंज्ञानिर्देशरूपैः=वहीयनाम तवृहस्पत्यितसंज्ञयवृत्तयुरस्सरं सम्बोध्य एवं=वस्तुमात्रे वचनम् अशरीर-उक्तवान्, तथा हि-‘मो अग्निभूते । तव मनसि कर्मविषये संशयो वर्तते’ यत् कर्म अस्ति वा-अथवा नास्ति ? यतो वेदवचनमिदमस्ति-“पुरुष एवेद U सर्वं यदभूत् यच्च माव्यम्”

टीका का अर्थ—इन्द्रभूति की वीसा के पभाव सब विद्याओं में निपुण अग्निभूति ब्राह्मण ने इन्द्रभूति के समान विचार किया-सब है यह महावीर महान् नानाश्रिया दिखाई देता है । उसने मेरे भाई इन्द्रभूति को भी छत्र लिया । अब मैं जाता हूँ और असन्न होने पर भी अपने को सर्वत्र समझनेवाले उस मायावी को परास्त करके माया से ठगे हुए अपने बन्धु इन्द्रभूति को वापिस लाता हूँ । इस प्रकार विचार कर वह अग्निभूति अपने पंचसी श्रित्यों के साथ, अभिमान सहित, मगवान् के समीप गये । मगवान् ने अग्निभूति का नाम लेकर तथा उनके हृदय में स्थित सन्देह को दूधित करते हुए, संशोधन किया और इस प्रकार कहा—‘हे अग्निभूति ! तुम्हारे मन में कर्म के विषय में सन्देह रहता है कि कर्म है अथवा नहीं है ?’ वेद का वचन है कि—“पुरुष एवेद U सर्वं यत् भूतं यच्च माव्यम्” । इस वाक्य का आशय यह है कि यह जो वर्तमान है,

टीका का अर्थ—इन्द्रभूति की वीसा पत्नी विष्णोभां निपुण अग्निभूति ब्राह्मणे इन्द्रभूतिमा ह्येः विचार इयो हे वात अत्रर सान्नी छ हे ते महावीर कोइ भवान् उ इच्छणी वागे छ तेव्हे भास आर्ध इन्द्रभूतिमा ह्येः विचार इन्नी वीसा हवे तु आर्ध छ अने अस्वर्गस कोवा छत्तां भवु येताने अस्वर्ग सम्भवानर आभावाने पराश्र वहीने आभावो इनासेला मात आभाणे पाछो वावीने अ पीय आ प्रभासे निवृत्त हरिने ते अग्निभूति येतानां पावसे। अत्रवाने अग्निभूतिने तेना नामची अज्ञापन हरिने तथा तेभान् इहमभां रहेवा अरेकने अरेकने अरेकने अत्रवाने आ प्रभासे इवु—हे अग्निभूति ! वभास भनभां इहना विषयभां अरेक रहे छि हे इहना हे नधी । वेदु वचन

अत्र-‘इदं’ शब्दोत्तरमनुस्वार एव सकारे परे °U° कारत्वमायकः, तेन यदिदं=वर्तमानं, यत् मूर्तम्=अनीतम् यत् भाव्यं=भविष्यत् तत् सर्वं वस्तु पुरुष एव, एवकारोऽत्र कर्मादिवस्तुनिषेधार्थः, तेन पुरुषातिरिक्तं किञ्चिदपि वस्तु नास्तीत्यर्थः। इत्यादि वेदवचनात् सर्वमात्मैव=भूत भवद्भविष्यत् सर्वं वस्तु आत्मैव न तु आत्मानिरिक्तं किञ्चिदपि वस्तु विद्यते, ततश्च कर्मापि न विद्यते इति। यदि=चेत् कर्म भवेत्, तदा तत् कर्मप्रत्यक्षादिप्रमाणेन लभ्यं स्यात्, तन्नास्ति=प्रत्यक्षादिप्रमाणेन तदुपपन्नञ्चिर्न भवति। यदि कश्चित् मन्यते, तदा तेन मूर्तेन कर्मणा सह अपूर्तस्य जीवस्य कथं=केन प्रकारेण सम्बन्धो भवेत्? मूर्तोमूर्तयोः परस्परं सम्बन्धोसम्भवात्। तथा-अपूर्तस्य जीवस्य मूर्तात् कर्मण उपघातानुग्रहौ-तत्रोपघातः-नरफनिगोदादिगतिप्रवर्तनेन पीडनम्-अनुग्रहं-स्वर्गादिगतिप्रवर्तनेन सौख्योपभोगश्चेत्येतौ कथं=केन प्रकारेण भवितुं शक्नुयाताम्? मूर्तोमूर्तयोस्त्वान्योपघातका-

जो भूत है और जो भावी है, वह सभी वस्तु पुरुष (आत्मा) ही है। यहाँ ‘पुरुष’ शब्द के पश्चात् प्रयुक्त हुआ ‘एव’ (ही) कर्म आदि वस्तुओं का निषेध करने के लिये है, तो अभिप्राय यह निकला कि पुरुष के अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं है। इत्यादि वेद-वचन के अनुसार जो हुआ, जो है और जो होगा, वह सब वस्तु आत्मा ही है। आत्मा से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं है, अत एव कर्म का भी अस्तित्व नहीं है। कर्म होता तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उसकी प्रतीति होती, किन्तु प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से कर्म की प्रतीति नहीं होती। फिर भी कदाचित् कर्म का अस्तित्व मान लिया जाय तो मूर्त्त कर्म के साथ अपूर्त्त जीव का सवध किस प्रकार हो सकता है? मूर्त्त और अपूर्त्त का आपस में संबंध संभव नहीं है। इस के अतिरिक्त अपूर्त्त आत्मा का मूर्त्त कर्म से उपगान-नरक-निगोद आदि गतियों में ले जाकर पीडा पहुँचाना-और अनुग्रह स्वर्ग आदि गति में पहुँचा कर सुख का उपभोग कराना-कैसे हो सकता है? यह संभव नहीं कि मूर्त्त और

छे अने ने लावी छे, ते अधी वस्तु पुरुष (आत्मा)ए छे “पुरुष” शब्दनी पाछ्ण वपरायेद ‘एव’ (ही) कर्म आदि वस्तुओनो निषेध करवाने भाटे छे. तेथी तात्पर्य अे नीकण्यु डे पुरुषना सिवाय डेअर् पशु वस्तु नथी. धत्यादि वेदवचन प्रभाणे ने थयु, ने छे अने ने थये, अधी वस्तु आत्मा ए छे आत्माथी बिन भीजे डेअ पदार्थ नथी तेथी कर्मनु पशु अस्तित्व नथी. कर्म डेअत तो प्रत्यक्ष आदि प्रभाणोथी तेनी प्रतीति थात, पशु प्रत्यक्ष आदि डेअ पशु प्रभाणोथी कर्मनी प्रतीति थनी नथी. छता पशु कदाय कर्मनु अस्तित्व मानी येवामां आवे तो मूर्त्त कर्मनी साथे अपूर्त्त छवनेो स अध डेवी रीते डेअ शके? मूर्त्त अने अपूर्त्तनो आन्धेन्य मंअध संभवी शके नडी. तडपरात अपूर्त्त आत्मानो मूर्त्त उपघात-नरक-निगोद आदि गनियोमां लक्ष जअने पीडा पडोथाडवी अने अनुग्रह-स्वर्ग आदि गतिमा पडोथाडीने सुअनेो उपभोग करानयो ते डेवी रीते डेअ शके? अे संभवित नथी डे मूर्त्त अने

दुःखान्तरारुत्सासम्भवत्, तत्र दृष्टान्तद्वयान्यस्मरति-‘यदे’-स्यादि-यया-आकाशः तद्गूगायिना न छिद्यते,
 तथा-बन्धनेन-पृष्ठबन्धन इव इत्येन नोपस्थित्ये इति । एतत् अन्विभूतिमनोगतं सञ्चयमुपपाद्य वनिराकर्षुमाह-
 ‘तस्मिच्छा’ इत्यादि । हे भगिनियूते ! तव-वचनं यत् मिथ्या, यस्मादेतौः अतिशय-दुःखानि-सर्वेषां प्रत्यक्षसर्वेन-
 साक्षात्कारेण कर्म कथयन्ति, वटपत्तारिषत् करामकरुवद्वा । छपस्यास्तु जीवानां वैचित्र्यं-गतिवैचित्र्यं इष्टा अनु-
 मानेन तव-कर्म जानन्ति । तृपारि अनुमानप्रयोग-जीवाः कर्मवन्तो गतिवैचित्र्यादिति । तथा-कर्मणोर्विचित्र-
 तयै-वैकल्यप्रणयैव तादृशकर्मवलां प्राणीनां-जीवानां सुखदुःखादिभावः विचित्राः सम्पद्यन्ते । यत-यस्मात्
 कारणात् कोऽपि जीवः राजा भवति, कश्चित्-कोऽपि जीवः अन्धः, कोऽपि गजो वा मृत्वा तस्य-राजः याने
 कर्मते में से एक उपपात्य हो और दूसरा उसका उपयोगकर्ता हो, तथा एक अनुग्रह हो और दूसरा अनुग्रहकर्ता हो ।
 इस विषय में दृष्टान्त देते हैं । यया-आकाश तलवार, आदि के द्वारा काम नहीं जा सकता और बन्धनगति
 के छेप से छेपा नहीं जा सकता ।

इस प्रकार अन्विभूति के मनोगत संक्षेप का समर्थन करके उसका निराकरण करने के लिये कहते हैं-
 हे अन्विभूति, तुम्हारा यह मत मिथ्या है। क्यों कि-सर्वत्र कर्म को प्रत्यक्ष से देखते हैं, जैसे घट पट
 आदि को अथवा इपेली पर रखके औरछे को देखते हैं। अल्प पुरुष जीवों की गति आदि की-विलक्षणता
 को देख कर अनुमान प्रमाण से कर्म को जानते हैं। अनुमान का प्रयोग इस प्रकार है-जीव कर्म से युक्त है,
 क्यों कि उनकी गति में विचित्रता देखी जाती है। यया-कर्म की विचित्रता-मिश्रता के कारण ही, विचित्र
 कर्मवाले प्राणियों के सुख-दुःख आदि विचित्र मान लिये होते हैं, क्यों कि कोई जीव राजा होता है, कोई
 घोड़ा होता है और कोई शायी होता है। घोड़ा या शायी होकर राजा का वाहन बनता है। कोई जीव उस
 अमृतभाषी जेठ उपवास होय अने गीशु तेज उपवास होय तथा जेठ अनुग्रह होय अने गीशु अनुग्रह
 होय आदि दृष्टान्त आये हैं,-नेम आकाश तलवार आदि द्वारा शायी शक्य नहीं तेज-शुभ्र शक्य अने गीशु अनुग्रह
 के अन्विभूति, तथाशे आ मत मिथ्या है कारण हे सर्वत्र, कर्मने प्रत्यक्ष ही देखे छे, नेम पट पट आदिने अथवा
 शैलीमां शक्ये आभणने सुखे छे अल्प पुरुष जीवोनी गति आदिनी विचित्रताने जेठने अनुमान प्रमाण ही
 कर्मने ज्ञाने छे अनुमानने प्रयोग आ प्रमाणे छे-एव कर्म ही सुख छे, शक्य हे तेमनी गतिमा विचित्रता देणाम
 छे तथा कर्मनी विचित्रता-विसतने कथ्ये अ विचित्रकर्मणाम प्राणीजिनां सुख-दुःख आदि विचित्र काय उपपात
 यय छे कारण हे जेठ एव राजा यय छे जेठ शक्ये काय छे अने जेठ जेठ जेठ जेठ जेठ जेठ जेठ जेठ जेठ जेठ जेठ

भवति, कश्चित्-जीव तस्यैव रात्रिः पदातिर्भवति, कश्चित् नीचः छत्रधारको भवति, एवम् इत्थं कश्चित् जीवनः क्षुत्क्षामः=क्षुधापीडितो भवति, यः=क्षुत्क्षामः कर्मवैचित्र्यात् अहोरात्रम् अटन्त्यपि=अमन्त्यपि भिक्षां न लभते, तथा-‘जमगसमगं’ युगपत्-एकत्राले व्यग्रहरमाणानां पोतत्रिणिनां मध्ये एकस्तरति=समुद्रपारं गच्छति, एकः= अपरः समुद्रे बुडति-निमज्जति, एतादृशाम् विचित्राणां कार्याणां कारणं कर्मैव, न तु कर्मोत्पत्तिकं किमपि लक्ष्यते । ननु पूर्वोक्तानां कार्याणां स्वाभाविकत्वमिति तत्कारणतया कर्मस्वीकरणं व्यर्थमितिचेत्तत्राह—
 स स्वभावः किं वस्तु, अवस्तु वा ? यदि-अस्तु तदा तस्मात्कार्योत्पत्तिर्न कदापि भवितुमर्हति । यदि वस्तु तर्हि स किं मूर्तोऽमूर्तो वा ? । अमूर्तस्तदात्मान्तानुसारेण तस्मात् मूर्तकार्याणामुत्पत्तिर्भवतु नार्हति । यदि मूर्त-स्तदा स कर्मैवेति मनसि निश्चयाह-‘नो खलु’ इत्यादि ।

राजाका प्यादा होता है और कोई उसका छत्रधारक-उस पर छत्र तानने वाला होता है । इसी प्रकार कोई जीव भू-न से पीड़ित होता है, जो अपने कर्म की विचित्रता के कारण दिन और रात भीख के लिए भटकता फिरता है, फिर भी भीख नहीं पाता । तथा-एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका-व्यापारियों में से एक सकुशल समुद्र पार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है । इन सब विचित्र कार्यों का कारण कर्म ही है; कर्म के सिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता ।

शंका—पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वमान से ही होते हैं अतएव कर्म को उनका कारण मानना व्यर्थ है ।
 समाधान तुम स्वमान को विचित्र कार्यों का कारण कहते हो तो यताओ कि स्वमान क्या है ? वह कोई वस्तु है या अवस्तु ? अगर अवस्तु है तो उससे कार्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकती । वस्तु है तो मूर्त

राज्यं वाहन गने छे कोइ एव ते राज्ञो पायदण सैनिक थय छे अने कोइ तेनो छत्रधारक-तेना पर छत्र धारण करवना थय छे. ओज प्रभासे कोइ एव भूथथी पीडाय छे, जे योताना कर्मनी विचित्रताने कारखे हिवस अने रात बीथने माटे लटके छे ते पषु बीअभां कंई पाभते। नथी तथा ओक ज सभये व्यापार करनार वषाणुभा सक्षर करता वेपारीओ.माथी ओक सकुशल समुद्रपार करे छे अने बीने समुद्रभा ज सूणीअय छे ओ अथा विचित्र कार्यों का कारण कर्म अ छे, कर्मना सिवय भीणु कंई पषु लागतु नथी

शंका-पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभावथी ज थय छे तथी कर्मने तेनुं कारण मानवुं ते व्यर्थ छे.

समाधान-तम स्वभावने विचित्र कार्यों का कारण कहे छे। ताताने के स्वभाव थुं छे ? ते कोइ वस्तु छे के वस्तु ? जे अवनस्तु होय तो तेनाथी कार्योंनी उत्पत्ति थय शकती नथी जे वस्तु होय तो मूर्त छे के अमूर्त ? जे

नृपामात्रुप्राकरतासम्भवात्, तत्र दृष्टान्तद्वय परस्यति-‘यथे’-स्यादि-यथा-आकाशः लङ्गादिना न छिद्यते,
 तथा-बन्धनेन-दृष्टान्त इव द्रव्येन नोपलियते इति। एवम् अग्निमूतिमनोगतं संशयद्वयसाथ उन्निराकर्तुमाह-
 ‘तमिच्छा’ इत्यादि। हे भग्नियूते ! तव-वच मत् मिथ्या, यस्माद्धेतोः अतिशय-ज्ञानिनः=सर्वज्ञाः प्रत्यक्षरवेन-
 सागतकारेण कर्म पश्यन्ति, घटपटादिवत् करामकसद्भा। छयस्यास्तु जीवानां वैचित्र्य-गतिवैलक्षण्यं दृष्टा अनु-
 मानेन तव-कर्म जानन्ति। तथाहि अनुमानप्रयोगः-जीवाः कर्मवन्तो गतिवैचित्र्यादिति। तथा-कर्मणोवैचित्र्य-
 तयै-वैकस्यैवैव तारश्चकर्मवतां मार्णानां=जीवानां सुखदुःखादिमावाः विचित्राः सम्पद्यन्ते। यतः=यस्मात्
 फारणात् क्रीडपि जीवः राजा मरति, कश्चित्-क्रीडपि जीवः अश्वः, कोऽपि गजो वा मूत्वा तस्य-राजः पाहनें
 अमृतं में से एक उपयात्य हो और दूसरा उसका उपयातक हो, तथा एक अनुप्राप्त हो और दूसरा अनुप्राप्तक हो।
 इस विषय में दृष्टान्त देते हैं। यथा-आकाश वस्त्रार, मादि के द्वारा काटा नहीं जा सकता और चन्दनादि
 के छेप से छेपा नहीं जा सकता।

इस प्रकार अग्निभूति के मनोगत संशय का समर्थन करके उसका निराकरण करने के लिये करते हैं-
 हे अग्निभूति, तुम्हारा यह मत मिथ्या है। क्यों कि-सर्वज्ञ कर्म को प्रत्यक्ष से देखते हैं, जैसे घट पट
 मादि को अथवा हथेली पर रखके आंखे को देखते हैं। अल्पज्ञ पुरुष जीवों की गति आदि की-विलक्षणता
 को देख कर अनुमान प्रमाण से कर्म को जानते हैं। अनुमान का प्रयोग इस प्रकार है-जीव कर्म से युक्त हैं,
 क्यों कि उनकी गति में विचित्रता देखी जाती है। तथा-कर्म की विचित्रता-प्रकृता के कारण ही, विचित्र
 कर्मवाच्य मामियों के सुख-दुःख आदि विचित्र मात्र उत्पन्न होते हैं, क्यों कि कोई जीव राजा होता है, कोई
 पौट्टा होता है और कोई हाथी होता है। घोटा या हाथी होकर राजा का पाहन बनता है। कोई जीव उस

अनुभव भी कुछ उपवाच्य होन करने भी कुछ तेज उपवाच्य होय तथा कुछ अनुप्राप्त होय अने भी कुछ अनुप्राप्त
 होय आ विधे द्यांत आये छे हे,--नेम आकाश वक्षार आदि द्वारा हाथी शकट नशी तेमज शीथ छव इत्यादिना दोषधी
 वेपी शकट नशी आ प्रभावे अभिभूतिना भनोगत सुखदुःख समर्थन करीने तेनु निराशरुष करवाने माटे हरे छे-
 हे अभिभूति तथासा आ भत मिथ्या छे हास्य हे अर्थन, कर्मने प्रत्यक्षधी सुखे छे, नेम पर पर आदिने कर्मवा
 दयेवीमा शरैत व्यभणने सुखे छे अशक्य पुरुष लोचनी गति आदिदि विषयवृत्ताने लोचने अनुमान प्रभावा
 कर्मने बले छे अनुमानने प्रयोग आ प्रभावे छे-एव कर्मधी सुख छे, हास्य हे तेमनी अतिमा विचित्रता हेआय
 छे तथा कर्मनी विचित्रता-भित्तवने हास्ये न विचित्रता-प्रयोग आदि विचित्रता हेआय
 यान छे हास्य हे हेतु एव राजा साध छे हाई घोडे साध छे अने हेतु घोडे साध छे हास्य हे हास्य

भवति, कश्चित्-जीव तस्यैव राज्ञः पदातिर्भवति, कश्चित् जीवः कश्चित् जीवः
 शुक्लामः=शुधापीडितो भवति, यः=शुक्लामः कर्मवैचित्र्यात् अहोरात्रम् अहोरात्रम् अहोरात्रम् अहोरात्रम् अहोरात्रम्
 तथा-‘जमगसमग’ युगपत्-एककाले व्यग्रहरमाणानां पौतत्रिजां मध्ये एकस्तरति=समुद्रधारं गच्छति, एकः=
 अपरः समुद्रे बुडति-निमज्जति, एतादृशम् विचित्राणां कार्याणां कारणं कर्मैव, न तु कर्मानिरिक्तं किमपि
 लक्ष्यते । ननु पूर्वोक्तानां कार्याणां स्वाभाविकत्वमिति तत्कारणतया कर्मस्वीकरणं व्यर्थमितिवचनाह—

स स्वभावः किं वस्तु, अवस्तु वा ? यदि-अस्तु तदा तस्मात्कार्योत्पत्तिर्न कदापि भवितुमर्हति । यदि वस्तु
 तर्हि स किं पूर्वोक्तो वा ? । अपूर्वतदात्मनस्तासुरेण तस्मात् पूर्वकार्याणामुत्पत्तिर्भवतु नार्हति । यदि पूर्व-
 स्तदा स कर्मवैचैति मनसि निधायान्न-‘नो सल्लु’ इत्यादि ।

राजा का प्यादा होता है और कोई उसका छत्रधारक-उम पर छत्र तानने वाला होता है । इसी प्रकार कोई
 जीव भू-उ से पीड़ित होता है, जो अपने कर्म की विचित्रता के कारण दिन और रात भीख के लिए भट-
 कता फिरता है, फिर भी भीख नहीं पाता । तथा-एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका-व्यापारियों में
 से एक सकुशल समुद्र पार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है । इन सब विचित्र कार्यों का
 कारण कर्म ही है; कर्म के सिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता ।

शंका—पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभाव से ही होते हैं अतएव कर्म को उनका कारण मानना व्यर्थ है ।
 समाधान तुम स्वभाव की विचित्र कार्यों का कारण कहते हो तो बताओ कि स्वभाव क्या है ? वह
 कोई वस्तु है या अवस्तु ? अगर अवस्तु है तो उससे कार्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकती । वस्तु है तो मूर्ते

राज्यं वाहन गने छे केछ छत्र ते राजने। पायदण सेनिक थाय छे अने केछ तेने। छत्रधारक-तेना पर छत्र धारण
 करावना थाय छे अने प्रभाणे केछ छत्र भूथी पीडाय छे, ने पोताना कर्मनी विचित्रताने कारणे हिवस अने रात
 बीथने भाटे लटक छे ते पथ बीथमा कंछ पाभते नथी तथा अेक न समये व्यापार करनार वहाणुमां गकर करता
 वेपानीये। माथी अेक सकुशण समुद्र पार करे छे अने बीजे समुद्रमा न डूबीलय छे अे अथा विचित्र कार्यों का कारण
 कर्म न छे, कर्मनः सिवाय अण्ये कछ पथ लागतु नथी

शंका-पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभावથી न थाय छे तेथी कर्मने तेनु कारण मानवुं ते व्यर्थ छे.
 समाधान-तमें स्वभावने विचित्र कार्यों का कारण कहा है। तो बताओ कि स्वभाव क्या है ? तो कहो वस्तु है कि
 वस्तु ? जो अवस्तु होय तो तेनाथी कार्यों की उत्पत्ति यह शकती नथी जो वस्तु होय तो भूत' छे के आभूत' ? जो

दशाहाश्राकत्वात्सम्भवात्, तत्र द्धान्तमुपन्यास्यति-‘यथे’-स्यादि-यया-आकाशः सङ्गादिना न छिद्यते,
 तथा-पञ्चनेन-सृष्ट्यन्वय इव द्रव्येन नोपलियते इति । एतस् अग्निभूतिमनोगत संश्रययुस्याय वन्निराकारुर्मुहारा-
 ‘वस्मिच्छा’ इत्यादि । हे भग्निभूते ! तत्त्व-तव यत् सिध्या, यस्माद्धोः भविष्य-ज्ञानिनः-सर्वज्ञाः मत्पत्यत्वेन-
 साक्षात्कारेण कर्म पश्यन्ति, घटपद्मद्विपद् कुरामकचक्रवदा । छपस्यास्तु जीवानां वैचित्र्य-गतिवैषम्यं इष्टा अनु-
 मानेन तत्-कर्म जानन्ति । तथाहि अनुमानप्रयोग-जीवाः कर्मवन्तो गतिवैचित्र्यादिति । तथा-कर्मणोविचित्र
 तयै-वैषम्येनैव तास्वकर्मवत्तां प्राणीनां-जीवानां सुखदुःखविभावाः विचित्राः सम्पद्यन्ते । यत्-यस्मात्
 कारणात् कोऽपि नीचः रामा मर्त्ति, कश्चित्-कोऽपि जीवः अश्वः, कोऽपि गजो वा सूत्रा तस्य-राजः प्राहने
 भर्तृ में से एक उपधात्य हो और दूसरा उसका उपधातक हो, तथा एक अनुप्रास हो और दूसरा अनुप्रासक हो ।
 इस विषय में द्धान्त देते हैं । यया-आकाश तलवार, आदि के द्वारा काटा नहीं जा सकता और चन्द्रनादि
 के छेप से छेपा नहीं जा सकता ।

इस प्रकार अग्निभूति के मनोगत संश्रय का समर्थन करके उसका निराकरण करने के लिये कहते हैं-
 हे भग्निभूति, तुम्हारा यह मत मिथ्या है । क्यों कि-सर्वज्ञ कर्म को मत्पत्य से देखते हैं, जैसे घट पट
 को देख कर अनुमान प्रमाण से कर्म को जानते हैं । अनुमान का प्रयोग इस प्रकार है-नीच कर्म से युक्त है
 क्यों कि उनकी गति में विचित्रता देखी जाती है । तथा-कर्म को विचित्रता-मिथ्या के कारण ही, विचित्र
 कर्मवाले प्राणियों के सुख-दुःख आदि विचित्र मान लिये जाते हैं, क्यों कि कोई जीव रामा होता है, कोई
 घोड़ा होता है और कोई हाथी होता है । घोड़ा या हाथी होकर रामा का वाहन बनता है । कोई जीव उस

अभूत भंगी जो उपवास होकर जाने बीछू तैरु उपवास होय तथा जोड अनुप्रास होय अने बीछू अनुप्रासक
 होय आ विरे द्धान्त आये छे छे, अश्व आकाश तलवार आदि द्वारा अश्वी शशवत् नधी तेम अश्वी अश्वनादिना देखी
 देखी शशवत् नधी आ प्रभावे अग्निभूतिना मनोगत स शशवत् समर्थन करीने तैरु निराशय अश्वाने आटे अहे छे-
 हे अग्निभूति, तमासे आ भत मिथ्या छे अश्व छे अश्व छे, कर्मने प्रत्यक्षी देखे छे, जेभ घट पट आदिने अश्ववा
 देखीनां शयेल आभयाने बुझे छे अश्वय पुरुष सुखोनी अति आदिनी विषयवताने कोर्तने अनुमान प्रमाण
 कर्मने बुझे छे अनुमानने प्रयोग आ प्रभावे छे-अश्व कर्मधी सुख छे, अश्व के तेभनी अतिमा विचित्रता देखाय
 छे तथा कर्मनी विचित्रता-मिथ्याने आश्वे अ विचित्र-अश्वानां सुख-दुःख आदि विचित्र भाव छे अने अश्व
 आने छे अश्व के हेतु अश्व शय आने छे, हेतु कोरे अश्व छे अने अश्व आने छे

भवति, कश्चित्-जीव तस्यैव राज्ञः पदातिर्भवति, कश्चित् जीवः छत्रधारको भवति, एवम् इत्थं कश्चित् जीवः
 सुत्सामः=सुधापीडितो भवति, यः=सुत्सामः कर्मवैचित्र्यात् अहोरात्रम् अटन्त्सामि=अमन्त्सामि भिक्षां न लभते,
 तथा-‘जमगसमगं’ युगपत्-एककाले व्यवहरमाणानां पोतयिजां मध्ये एकस्तरति=समुद्रपारं गच्छति, एकः=
 अपरः समुद्रे बुडति-निमज्जति, एतादृशाम् त्रिविधाणां कार्याणां कारणं कर्मैव, न तु कर्मानिरिक्तं किमपि
 लक्ष्यते । ननु पूर्वोक्तानां कार्याणां स्वाभाविकत्वमिति तत्कारणतया कर्मस्वीकरणं व्यर्थमितिवेत्तवह—
 स स्वभावः किं वस्तु, अवस्तु वा ? यदि-अवस्तु तदा तस्मात्कार्योत्पत्तिर्न कदापि भवितुमर्हति । यदि वस्तु
 तर्हि स किं मूर्तोऽमूर्तो वा ? । अमूर्तस्तदात्मतानुसारेण तस्मात् मूर्तकार्याणामुत्पत्तिर्भवतुं नार्हति । यदि मूर्त-
 स्तदा स कर्मैवेति मनसि निश्चयाह-‘नो खलु’ इत्यादि ।

राजाका क्यादा होता है और कोई उसका छत्रधारक-उम पर छत्र तानने वाला होता है । इसी प्रकार कोई
 जीव भू न से पीड़ित होता है, जो अपने कर्म की विचित्रता के कारण दिन और रात भीख के लिए भट-
 कता फिरता है, फिर भी भीख नहीं पाता । तथा-एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका-व्यापारिकों में
 से एक सकुशल समुद्र पार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है । इन सब विचित्र कार्यों का
 कारण कर्म ही है; कर्म के सिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता ।

शका—पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभाव से ही होते हैं अतएव कर्म को उनका कारण मानना व्यर्थ है ।
 समाधान तुम स्वभाव को विचित्र कार्यों का कारण कहते हो तो बताओ कि स्वभाव क्या है ? वह
 कोई वस्तु है या अवस्तु ? अगर अवस्तु है तो उससे कार्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकती । वस्तु है तो मूर्त

राजतुं वाहन गने छे कोछ छत्र ते राजन्तो पायदण सैनिक थाय छे अने कोछ तेतो छत्रधाणक-तेना पर छत्र धारण्यु
 करावनार थाय छे ओज प्रभाण्ये कोछ छत्र भूथथी पीडाय छे, ने पोताना कर्मनी विचित्रताने कारण्ये हिवस अने रात
 कीअने माटे लटके छे ते पण्यु बीअभा कछ पाभतो नथी तथा ओके न सभये व्यापार करनार वडाथुमां सक्कर करता
 वेपारीओ.माथी ओके सकुथण समुद्रपार करे छे अने बीन्ने समुद्रभा न डूभी जाय छे ओ अधा विचित्र अर्थोनुं कारण्यु
 कर्म न छे, कर्मनः सिवय गीण्यु कछ पण्यु दागतु नथी

यथा-पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभावथी न थाय छे तथी कर्मने तेनुं कारण्यु मान्युं ते व्यर्थ छे.
 समाधान-तमे स्वभावने विचित्र अर्थोनु कारण्यु छो छे । अतावे को स्वभाव थुं छे ? ते कोछ वस्तु छे के
 अवस्तु ? ओ अवस्तु होय तो तेनाथी अर्थोनी उत्पत्ति थय शकती नथी ओ वस्तु होय तो भूत छे के अमूर्त ? ओ

किमपि पश्यन्ति कार्यं कारणेन विना—कारणभावै नो सम्पद्यते, अपितु कारणैव किमपि कार्यं सम्पद्यते
 प्रजा नीवानां रात्रत्यादि विचित्रकार्योणां कारणतया कर्म स्वीकारणीयमेवेति पर्यवसितम् । इत्थं कर्मणाः सत्ता-
 प्रुष्पाय सम्भति पूर्णपूर्वो कर्मनीचयो सम्बन्धं युक्तता साधयति—‘आ व’ इत्यादि ।

अथ व-यथा पूर्णस्य पटस्य अपूर्तेन आकारेण सार सम्बन्धः, तथा—नेत्रेण प्रकारेण मूर्तस्य कर्मणः अपूर्तेन
 नीचेन सार सम्बन्धो बोध्यः । तथा व-पूर्तैः नानाविधैः—अनेकप्रकारैः मयेमीषस्य उपचातः—वैकल्यादि दोषजननेन
 हानिमवति । तदुक्तम्—

ये या अपूर्तैः अथ अपूर्तैः ते तुम्हारे मरानुसार वष मूर्त कार्यों को उत्पन्न नहीं कर सकता । अगर
 मूर्त है ता फिर वष कर्म हो है । इसी बात को मन में छेकर करते हैं—‘नो सखु’ इत्यादि ।

ए पट प्रादि कीई मी काय कारण के विना उत्पन्न नहीं हो सकता । कारण से ही कोई कार्य उत्पन्न
 होता है । अतः मीतों के राजा होने प्रादि विचित्र कार्यों का कारण कर्म स्वीकार करना चाहिए । इस प्रकार
 कर्म की सत्ता मिदु कर के अब मूर्त कर्म और अपूर्त मीच का संबंध युक्ति से सिद्ध करते हैं—‘आ व’ इत्यादि ।

जैसे मूर्त ए का अपूर्त आकार के साथ सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार मूर्त कर्म का अपूर्त मीच के
 साथ संबंध समग्र लेना चाहिए । अथा-अथ नाना प्रकार के मूर्त मयों के द्वारा मीच का उपपाय (विरूपता
 प्रादि दायों की उत्पत्ति होने से हानि) होती है । कहा मी है—

अनर्तं दोर तो तयारा मत प्रथये ते मूर्त मयोने उत्पन्न हरी यद्यते नशी. ने मूर्तं दोष तो पछी ते कर्म व
 छ. के व बादने अनर्थां हथिने हके छे—‘नो सखु’ इत्यादि

पटपट आदि होई वषु कर्म कारणविना उत्पन्न यद्य यद्यतां नशी. आरुषुषी व होई कर्म उत्पन्न बाध छे तेभी
 एवोतु बाध वषु आदि विचित्र मयोने मारुषु कर्मने स्वीकारसु न्येधमे का प्रभावे कर्मनी सत्ता सिद्ध हरीने
 इवे मूर्त कर्म कने अपूर्त एवने। स लघ बुद्धिधरी (बुद्धि हरी छे—‘अवृत्त’ इत्यादि

नेम मूर्त धयने। अपूर्त आकारानी साधे स म म दोष छे, के व प्रथये मूर्त कर्मने अपूर्त एवनी साधे
 स लघ स म ए दोषो न्येधमे. अथवा नेम विविध प्रकारना मूर्त मयोने द्वारा एवने। उत्पन्न। (विरूपता आदि दोषोनी
 उत्पत्ति पन थी कानी) स म छे हरी वषु छे—

वैरुच्यं व्याधिपिण्डः स्वजनपरिभवः कार्यकालातिपातो,

विद्वेशो ज्ञाननाशः स्मृतिमतिहरणं विप्रयोगश्चसद्भिः ।

पारुष्यं नीचसेवा कुल-वल-तुलना धर्म-कामा-र्थहानिः,

कष्टं भोः ! षोडशैते निरूपचयकरा मद्यपानस्य दोषाः ॥१॥ इति ।

अपि च—श्रूयते च ऋषिमद्याव प्राप्तयुयोक्तिर्महातपाः ।

स्वर्गाङ्गनाभिराक्षितो मूर्खवन्निधनं गतः ॥ १ ॥

क्रिचेह बहुनोक्तेन प्रत्यक्षेणैव दृश्यते ।

दोषोऽस्य वर्तमानेऽपि तथा भण्डनलक्षणः ॥ २ ॥ इति ।

“वैरुच्यं व्याधिपिण्डः स्वजनपरिभवः कार्यकालातिपातो,

विद्वेषो ज्ञाननाशः स्मृतिमतिहरणं विप्रयोगश्च सद्भिः ।

पारुष्यं नीचसेवा कुलवलतुलना धर्मकामार्थहानिः,

कष्टं भोः ! षोडशैते निरूपचयकरा मद्यपानस्य दोषाः” ॥१॥इति ।

अर्थाव-‘मदिरापान से हानिकर यह सोलह दोष उत्पन्न होते हैं-विरूपता १, नाना प्रकार की व्याधियाँ २, सजनों के द्वारा तिरस्कार ३, कार्य-फल की वर्चस्वी ४, विद्वेष ५, ज्ञान का नाश ६, स्मरण-शक्ति और बुद्धि की हानि ७, सजनों से अलग्ग ८, खलापन ९, नीचों की सेवा १०, कुल ११, वल १२, तुलना १३, धर्म १४, काम १५, और अर्थ १६, की हानि” । और मी कहा है—

वैरुच्यं व्याधिपिण्डः स्वजनपरिभवः कार्यकालातिपातो,

विद्वेषो ज्ञाननाशः स्मृतिमतिहरणं विप्रयोगश्च सद्भिः ।

पारुष्यं नीचसेवा कुल-वल-तुलना धर्मकामार्थहानिः,

कष्टं भोः ! षोडशैते निरूपचयकरा मद्यपानस्य दोषाः ॥ इति ।

येटवे के महिरा पीनाशी आ सोण हानिकारक दोषो उत्पन्न थाय छे. (१) विरूपता (२) विविध प्रकारनी व्यधियो (३) स्वजनो द्वारा तिरस्कार (४) कार्य फलकी बरथाही (५) विद्वेष (६) ज्ञाननो नाश (७) स्मरण शक्ति अने बुद्धिनी हानि (८) सज्जनोशी विपृटापणुं (९) कठोरपणुं (१०) नीच छोडानी सेवा (११) कुल, (१२) वल, (१३) तुलना (१४) धर्म, (१५) काम अने (१६) अर्थनी हानी थीणु पषु कहेव छे हे—

एतद्विषय विदग्निगामिरस्मद्राचार्यचरणकृताचारमिगमिदृष्या भ्यालयाविमृषिस्य दृष्टवैकालिक दृष्टस्य पञ्चमेऽरण्ययने
 द्वितीयादेऽस्य 'सुरं वा मेरुं वाति' इत्यादि पदं विरुद्धमिति गाथानां भ्यालयाऽऽजलोक्तीयेति ।

तथा-यूर्ध्वनांतादिरेपदैरमूर्धस्य स्त्रीस्य अनुग्रहः=रोगान्नाशकसुषुप्तादिजननेनोपकारो यथा भवति, एषैव
 भ्रमूर्धस्य स्त्रीस्य तेन प्रकाशयेत् अमूर्धस्य स्त्रीस्य पूर्वैर्न कर्मणा उपवातोऽनुग्रहश्च इत्यर्थः इति । एवं दृष्टान्तो
 पन्यासपूर्वकं कर्मास्तिरुद्रपदस्योक्तिपुष्टेः परममान्यप्रमाणपददर्शनाय प्राह-'आह यं' इत्यादि ।

“अयते च ऋषिर्मयात्, प्राहस्योविमंहावपाः ।
 स्वर्गोऽनामिरासितो मूर्ध्वचन्निषनं गतः ॥१॥
 इति चेह बहुनोक्तेन, प्रत्यक्षैवेव इत्यते ।
 दोषोऽस्य वक्ष्यमानोऽपि तथा महानसम्पन्नः” ॥२॥ इति ।

अर्थात्—सुता जाता है कि ज्ञान-अयोविमात् और महावपस्वी ऋषि की मदिरा पान के कारण अस्-
 राभों से अभिभूत होकर मूर्ध्व मनुष्य की तरह मूर्ध के प्राप्त बने ॥१॥ इस विषय में अधिक कहने से क्या
 काम ? पक्षपात की सुलाई तो पलमात में ही प्रत्यक्ष देखी जाती है । छत्रापी सर्वत्र सोझा जाता है । २॥
 इस विषय में विद्वान् निगामुर्धों को मेरे शुक्र पुरुष आचार्य श्री यासीलामनी महाराज की बनाई हुई
 आचारमभिमनूपा नामक टीकावाले दृष्टवैकालिक ग्रन्थ के सूत्रके सूत्रके अर्थग्रन्थ के दूसरे लोकक की 'सुरं वा मेरुं
 वाति' इत्यादि छत्रापीतों आदि गाथाओं की व्याख्या देख लेनी चाहिए ।

अयते च ऋषिर्मयात् प्राहस्योविमंहावपाः ।
 स्वर्गोऽनामिरासितो मूर्ध्वचन्निषनं गतः ॥१॥
 इति चेह बहुनोक्तेन प्रत्यक्षैवेव इत्यते ।
 दोषोऽस्य वक्ष्यमानोऽपि तथा माहानसम्पन्नः ॥२॥ इति ।

अेदो है—आत्मगथाओं काव छे हे ज्ञान-अयोविमात् प्र मजने भद्रा तपस्वी ऋषि पञ्च मदीरा पानने काएवे का-
 राभोकी अकिष्ट बाने भूर्ध अनुभन्नी लेभ भोतने देणीये व-भाछे ॥ १ ॥
 अ्य (नरे वभादे कडेवामी शे। बाभ । अविशायाननी पु। उ। ते। वटं भाव हाकभ पव प्रत्यक्ष हेभाब छे शशनी
 नपि निहाय छे (नो। बा-आ। विषयभां विधिपु निःश्रद्धा धराकभादे पूर्य काभादे श्री वासीलाक मद्दाराके एवेव
 अयवामणि प्रकषा' नोभनी टीकावा। दृष्टवैकालिक सुतना पांभनां अयनना मीन उडेवनी सुरंवा मेरुं वाति' इत्यादि
 छत्रीतमी आदि आभाजेनी-व्याख्या देख लेवी अेदो छे—प्रहासक) तथा लेभ (वाक्य प्रहासनी भूटं) मीनाभको। श्री

अथ च तत्र परममान्येषु वेदप्रदेऽपि=वेदेष्वपि कुत्रापि=कस्मिंश्चिदपि स्थले कर्मणो नियधो नास्ति । तेन=वेदेषु कर्मणो निषेधाभावेन 'कर्म अस्ति इति सिद्धम् । एवम्=उत्तरूपेण प्रशुक्चनेन कर्मास्तित्व-विषयके संशये छिन्ने सति हृष्टुष्टः=अतिप्रसन्नः सन् अग्निभूतिरपि इन्द्रभूतिवत् पञ्चशतशिव्यसहितः प्रव्रजितः=श्रीमहा-वीरहस्ताद् दीक्षितो जातः ॥मृ०१०७॥

मूलम्—तए णं वाउभूई विप्पो 'दुवेवि भायरा पव्वइय' चि जागिऊण चित्तेइ-सच्चमेसो सव्वण्णू दीसइ, जण्यभावेण ममं दोवि भायरा तयंतिए पव्वइया । अओ अहमवि तत्थ गमिय समयणोगयं तज्जीव तच्छरीर-विसय संसय अवाकरेमिचि कट्टु सो चि पंचसयसिस्सपरिखुडो पहुसमीवे समणुपत्तो पट्टु तं नामसंसयनिदेस-पुवं वयइ-ओ वाउभूई ! तुञ्जमणंसि संदेहो वट्टइ-जं सरीरं तं चेव जीवो । नो अन्तो तव्वइरित्तो कोवि जीरो पचक्खाइपमाणेण तं उवलंभाभाया । जल्लुब्बुओ विव सो सरीराओ उपज्जाए सरीरे चेव विलिज्जइ । अओ नत्थि अओ कोपि पयथो जो परलोए गच्छेज्जा । "विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः" इच्चाइ वेयवयणंपि अत्तथे माण । एत्थ बुच्चइ सव्यपाणिणं देसओ जीवो पचक्खो अत्थि चेव, जओ सोमइआ इणुणाणं पचक्ख-

तथा-जिस प्रकार नाना प्रकार की मूर्त औषधों से अमूर्त जीव का अनुग्रह होता है-रोग का नाश होता है, बल-पुष्टि आदि की उत्पत्ति होकर उपकार होता है, उसी प्रकार अमूर्त जीव का मूर्त कर्म से भी उपघात और अनुग्रह जान लेना चाहीए । इस प्रकार दृष्टान्तों से कर्म का अस्तित्व दिखला कर अग्निभूति के परममान्य प्रमाण को प्रदर्शित करने के लिये कहते हैं—

इस के सिवाय तुम्हारे अतिशय मान्य वेदों में भी, किसी भी स्थान पर कर्म का नियध नहीं है । वेदों में कर्म का निषेध न होने से भी 'कर्म है' यह सिद्ध होता है । इस प्रकार प्रशु केकथन से कर्म के अस्तित्व संबंधी संशय के दूर हो जाने पर हृष्ट-उष्ट हुए अग्निभूति ने भी, इन्द्रभूति के समान, पाँच सौ शिव्यों सहित श्रीमहावीर प्रशु के हाथ से दीक्षा ग्रहण करली ॥मृ०१०७॥

अमूर्त एवमेव अनुग्रह थाय छे-रोगनो नाश थाय छे, जण-पुष्टि आदिनी उपत्ति थयने उपकार थाय छे, जेज प्रभाण्णे अमूर्त एवमेव कर्मथी पणु उपघात अनुग्रह ण्ण्णी देवेो जेधजे. आ प्रभाण्णे इधत्तोथी कर्मजुं अस्तित्व यानावीने अग्नेभूतिना परम मान्य प्रभाण्णेने प्रदर्शित करवाने भाटे कडे छे-आ सिवाय अतिशय मान्य वेदोभा पणु केध पणु स्थाने कर्मनो निषेध नथी, वेदोभा कर्मनो निषेध न डेवाथी पणु "कर्म छे" ते सिद्ध थाय छे. आ प्रभाण्णेना प्रणुना कथनथी उर्ध्वं आने सतोप धामेल आशिभूतिमे पणु, धन्द्रभूतिनी जेम, पांथसेा शिणेो साथे श्री महावीर प्रणुने डेथे इक्षा अंडणु करी (सू० १०७)

चरणं संबद्ध भवति । सो जीवो वैर्दिन्द्रियैर्विो पुरं भवति । मनो जया इदियाइ नस्सति तथा सो वं वं इदियं सत्त, नरा-एसो सरो मए पुणं सुणियो, एय वत्तुमायं मए पुवं विद्धं, एतो गंधो मए पुव्व अयाओ, एसो महर विचारसो मए पुवं आसाएओ, एसो मिउकखवढाफासो मए पुवं पुडो आसी । एव पवारो ओ अणुत्तोवव, सो जीवं विना कस्स होजा ? तुम्ह सत्ये वि पुवं—

“सत्येन लभ्यस्त्वपसा देययश्चर्येण नित्यं ग्योतिर्मयो वि शुद्धोयं पश्यन्ति वीरा यवयः संयतात्मानः” इति । मर सरीरओ अन्नो काचि जीवो न इवेच्च तावे “सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण एपलभ्यः” इएकं संगच्छेज्ज । मनो सिद्धे सरीरओ मिल्नो अन्नो जीवो भवतिचि । एव पडुकणुणेण छिन्नसंसभो पडिबुद्धो वाउभूई वि पंथ सपत्तिससैरे पव्वइओ ॥ ६०१-०८॥

अप्या—उतः लखु वायुभुविर्मिः ‘द्राचपि चातरौ म्रक्रिवौ’ इति श्रुत्वा चिन्तयति-सत्यम्, एय सर्वज्ञो इयते, यममयेण मम द्राचपि चातरौ तरत्रिके मत्रिवौ । अतोऽश्नपि उत्र गत्वा समनोगत उज्जीव उच्छरीरवियय सञ्चयमपाह्रोमीति कृत्वा सोऽपि पञ्चशतद्विषयपरिहृतः मनुसमीये समनुमाप्तः । ममुत्वं नाम सञ्चयनिर्देशपूर्वं इदति-मो ! वायुपूते ! त्वमनसि संदेहो वतते-यव शरीरं तदेव जीयं, नान्यस्वप्नपरिहृत्क-

मून का अर्थ—उत्र वायुभुवि म्नाह्नने ‘गरे दोनों माई दीक्षित हो गये’ यह ज्ञान कर विचार किया- सचमुच हा यह सर्वज्ञ मवीत होते हैं जिस सर्वज्ञता के प्रभाव से मेरे दोनों माई उनके पास दीक्षित हुए हैं। अत एव मैं भी यही जाकर ‘मरने मनमें स्थित ‘उज्जीव-उच्छरीर’ भयावृत्त वही जीव और वही शरीर है- भिन्न नहीं, इस विषय फ संशय का निवारण कर्है । इस तरह विचार कर वह भी अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ मरु के पास पहुँचे । मनु ने उन के नाम का और सञ्चय का उल्लेख कर के कहा-हे वायुभुवि ! तुम्हारे

भूषणे। अथ—त्वारण्ये वायुभुवि श्लाघे वायु के, आधिका दीक्षित यह अथा छि आ आशानी तेने प्रतीति यर्ह के इतर ‘वदमान स्वामी’ सर्वज्ञ कल्या छि तेनी सुच कता ने दीधि, मारा जन्ने आधिका, अ साएधी विरका यथा, आटे मारो य राय पव्व तां अर्हं व्यक्त करे अने तेधी हु पव्व निवृत्तु । मारो सञ्चय जेवो छि के ‘तज्जीय उच्छरीर’ अशोत एव छि तेव शरीर छि अने शरीर छि तेव एव छि आ अन्ने जिन-नशी पव्व जेअ छि, आनी हागतु सभाधान वर्धमान’ पसे अर्हं इरी ज्ञानु । आ प्रभावे विचारश्चत जनी निर्णय इओ अने पेताना पञ्चशे विषय श्रुतय आये प्रकृती सभिये अ पथा ते इवाना यथा प्रकृती सभिय आनी अथास्थित स्थान पर जेअ त्वाए पडी अणुज, तेअनी उरर हाथ इरी तेअअ अरा नाथान अर्हं अने इतिने तेअअ अने शरीर

कोऽपि जीवः, प्रत्यक्षादि प्रमाणेन तदुपलम्भमाभावात् । जलबुद्बुद इव स शरीराद् उत्पद्यते शरीर एव विलीयते । अतो नास्ति अन्यःकोऽपि पदार्थो यः पर्लोके गच्छेत् । विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः” इत्यादि वेदवचनमपि अत्रार्थे मानम् । अत्रोच्यते—सर्वमाणिनां देशतो जीवः प्रत्यक्षोऽस्त्येव, स स्पृत्यादि गुणानां प्रत्यक्षत्वेन संवि-
दस्ति, स जीवो देहेन्द्रियेभ्यः पृथगस्ति । यतो तदा इन्द्रियाणि नश्यन्ति तदा स तं तमिन्द्रियार्थं स्मरति, यथा एव शब्दो मया पूर्वं श्रुतः, एतद् वस्तु जातं मया पूर्वं दृष्टम् २, एव गन्धो मया पूर्वमाघ्रातः ३, एव मधुर-
तित्तादि रसो मया पूर्वमास्वादितः ४, एव मृदुकर्कशादि स्पर्शो मया पूर्वं स्पृष्ट आसीत् । एवं प्रकारो योऽनुभवो

मन में सन्देह है कि जो शरीर है वही जीव है । शरीर से भिन्न कोई जीव नहीं है, क्यों कि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उसका उपलभ नहीं होता । जल के बुलबुले के समान जीव शरीर से उत्पन्न होता है । और शरीर में हा विलीन हो जाता है । अत एव उससे भिन्न कोई पदार्थ नहीं जो पर्लोक में जाता हो । ‘विज्ञान-
घनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः’ इत्यादि (पूर्वोद्धित) वेद-वचन भी इस विषय में प्रमाण है । अर्थात् पौचभूतों से यह आत्मा उत्पन्न होता है, और पौच भूतो में ही मिल जाता है ।

इस का समाधान यह है—सभी प्राणियों को देश से जीव का प्रत्यक्ष होता ही है । वह जीव मृत्ति आदि गुणों का साक्षात् ज्ञाता है । वह जीव शरीर तथा इन्द्रियों से भिन्न है; क्यों कि जीव, इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर भी, इन्द्रियों द्वारा जाने हुए विषयों का स्मरण करता है । जैसे—वह शब्द मैंने पहले सुना था; वे वस्तुएँ मैंने पहले देखी थीं; वह गंध मैंने पहले सूंघी थी; वह मधुर और तिक्त रस मैंने पहले चखा था; वह

बोध्य है ‘ जो योग्याऽरहेली शुक, सबा समक्ष प्रगट करी “ तारा मनभा सहेह छे के, एव अने शरीर बुद्ध नथी, पथु बोध्य छे के रथु के प्रत्यक्ष आदि प्रमाण वडे, तेनी ज्यलब्धि अर्श शकती नथी जलना परपोटा समान, एव शरीरमा उत्पन्न थाथ छे अने तेभाज निलय थाथ छे. शरीरथी केअर्श लिध पदार्थ छे ज नडि. के परलोकाभा जते। डोय । ‘विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः.” इत्यादि आ वेदवाक्यो वडे, तु तारी मान्यता ने पुष्टि आपे छे. ”

उपर द्वापेवेली वायुभूतनी मान्यताने निर्भूण करवा, लगवान समाधान आपे छे के, सर्व प्राणीओ बुद्ध बुद्ध बाये छे, ते तेतु प्रमाण छे. एवमा स्मृति विगेरे शुष्ण रहेला छे, ते तेनी भीए प्रत्यक्षता छे. इन्द्रियो अने शरीरनी रचना लिन्न जथाथ छे, ते पथु तेना पुरावो छे काणु के इन्द्रियोना नाश थातां पथु, इन्द्रियो द्वारा जथाथेल विषयोनी स्मृति रहे छे. पडेला सालेवेला शब्दो, पडेवी हेभाकेल वस्तुओ, अशाड सू धाकेल पदार्थो,

भरति, सो जीव त्रिना कस्य भवत् ।। तत्र शक्येऽप्युक्तम्—सत्येन लभ्यस्वपसा षोप ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो
 रि शुद्धो य पश्यन्ति पीरा यतयः सयतात्मानः” इति । यदि शरीरात् अन्य कोऽपि जीवो न मवेच्छा “सत्येन
 उपमा ब्रह्मचर्येण एषलभ्यः” इति कथ संगच्छेत ? अतः सिद्ध शरीरात् अन्य भिन्नोऽप्यो जीवोऽस्तीति । एवं प्रसु-
 पकनेन छिन्नसंशयः प्रतिशुद्धो वायुमविरपि पंचसवश्रित्यै प्रमथितः ॥सू०१०८॥

टीका—‘एष णं वातधूरि विषो’ इत्यादि । उतः लख वायुयुगिर्विषः द्रावपि आतरो मवजिर्लो” इति
 ब्राह्मना मनसि चिन्तयति-तयारि-‘सत्यम्, एषाः=मीमहावीरस्वामी सर्वज्ञो दृश्यते, यममावेण मम द्रावपि
 कोपल या फठोर मादि सर्वे मैने परेछे छुआ या । इस प्रकार का जो स्तरण होता है, वह जीव के
 सिवाय किस को होगा ? तुम्हारे श्राद्ध में भी कड़ा है—

सत्येन लभ्यस्वपसा षोप ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो रि शुद्धो यं
 पश्यन्ति पीरा यतय सयतात्मानः’ इति ।

भयोत्-‘यह नित्य, उद्योति स्वरूप और निर्मल आत्मा, सत्य, तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा उपलब्ध
 होता है, जिसे पीर तथा सयमान् यति ही देखते हैं।’ यदि जीव तृणक न हो तो यह कवन कैसे संगत
 होगा ? इस से सिद्ध है कि जीव शरीर से भिन्न और स्वतंत्र है । प्रसु के इस प्रकार के कथन से वायुयुति का
 संशय छिन्न हो गया । वह प्रतियुद्ध हुआ और यौच सौ शिष्यों के साथ दीक्षित हुआ ॥सू०१०८॥

टीका का अर्थ—‘मेरे लोगों माई महावीर स्वामी के तमीप दीक्षित हो गये’ ऐसा जान कर वायुयुति
 प्राप्ति मन ही मन विचार करते हैं—सच है,—मीमहावीर स्वामी सर्वज्ञ माकुम होते हैं । यह उनकी सर्वज्ञता का ही
 प्रत्यक्षि विवेक बाजिषा रसेा, शंकर-मुत्तण विवेक स्फोटिषा स्पष्टी, न्यारे याद शरीजे छिजे त्यारे स्मरषुभां

भावे छि का ‘स्मरण एव सिवाय होने थाव । तथाशा शारुभां पञ्च शङ्कु छि है—‘सत्येन लभ्यस्वपसा षोप
 ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो रि शुद्धो य पश्यन्ति पीरा यतयः सयतात्मानः” अति आ नित्य न्योति स्वक्षय निर्भण
 आत्मा, अल-तप आने ब्रह्मचर्यद्वारा उपलब्ध थाव छि ने ने आत्माने भीर वीर सभगवान यति जोष शङ्के छि ।
 जे एव शुद्धो न दोष ते, आ शंभन देवी रीते अ मत अद्यय । आशी शिव थाव छि है, एव शरीरशी भिन्न
 आने भवत छि प्रभुना आना प्रकथनशी वायुयुतिना स अम इर शये, ने प्रतिशाथ पाभी, प्रसु आगण दीक्षा देवा
 त्पार शेषे अत्रयाने पञ्च श्रेय्य जवसर लार्ज, तेभने पांशये शिभोनी साङ्गे दीक्षा आपी दीक्षित थ्या. (सू०१०८)
 निशेषाह—‘ई-त्रभूति आने आग्निभूतनी प्रतिधा शची इती, उर्वा तेजे। पञ्च प्रभावित शरु स आरशी विभक्त
 अ-या. भाटे आ पुरेण ईष आभान् शोभने। तशी पञ्च अशुभन विधानेना शरु शोये। जोये। न्म आरा ज-ने

भ्रातरौ सद्दन्विके प्रव्रजितौ । अतोऽहमपि तत्र गत्वा स्वमनोगत तज्जीवतच्छरीरविषयं=जीव-शरीरैक्यविषयकं संशयम् अपाकरोमि, इति कृत्वा=इत्येतद्विचिन्त्य सौऽपि=वायुभूतिरपि पञ्चशतशिष्यपरिवृतः प्रभुसमीपे समनुप्राप्तः= समागतः । प्रभुः तं=वायुभूतिं नामसंशयनिर्देशार्थं=तन्नाम तन्मनोगतसंशयनिर्देशपुरस्सरं वदति-भौ वायुभूते । तत्र मनसि संदेहो वर्तते-यत् शरीरं तदेव जीवः । तद्व्यतिरिक्तः=शरीरभिन्नः अन्यः कोऽपि जीवो नास्ति, प्रत्य-क्षादिप्रमाणेन तदुपलम्भाभावात् । जलबुद्बुद इव=जलबुद्बुदवत् स=जीवः शरीरात् उत्पद्यते उत्पन्नः सन् शरीरे एव विलीयते=विलीनो भवति । अतो नास्ति अन्यः=शरीरातिरिक्तः कोऽपि पदार्थः=जीवपदार्थः, यः परलोके गच्छेत् ? । 'विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इत्यादि=विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः ससुत्थाय पुनस्तान्येव अनु-विनश्यति-इति वेदवचनमपि अत्रार्थे=शरीरजैक्यविषये मान=प्रमाणम् । अयं भावः=विज्ञानघनो=जीव एतेभ्यो

प्रभाव है-कि मेरे दोनों भाई उनके समीप दीक्षित हो गये हैं । अत एव मैं भी उनके पास जाकर अपने मन के 'वही जीव वही शरीर' अर्थात् जीव और शरीर विषयक एकता संबंधी सशय का समाधान प्राप्त करूँ । इस प्रकार विचार कर वायुभूति भी अपने पाँचसौ शिष्यों को साथ लेकर भगवान् के समीप आये । भगवान् ने वायुभूति के नाम और संशय का उल्लेख करते हुए कहा-हे वायुभूति ! तुम्हारे मन में यह सन्देह बैठा हुआ है कि-'जो शरीर है वही जीव है । शरीर से भिन्न जीव अलग नहीं है, क्यों कि प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से जीव की प्रतीति नहीं होती । जैसे जल का बुद्बुद जल से ही उत्पन्न होता है और जल में लीन हो जाता है, जल से अलग उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, इसी प्रकार जीव भी शरीर से उत्पन्न होता है और शरीर में ही विलीन हो जाता है । अतः शरीर से भिन्न कोई जीव पदार्थ नहीं है जो मृत्यु के पश्चात् परलोक में जाय । 'विज्ञानघन ही इन पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न होकर उन्हीं में लीन हो जाता है' यह वेद-वाक्य भी जीव और शरीर की एकता के विषय में प्रमाण है ।

बाधकोनी-अने आभारा अधानी नरे नरे शकाको अमने सुअवे छे, ते षधी शकाको अनुकुसे निर्भूण थती न्दथ छे एवमु अस्तित्व अने कर्महुं डोवापणुं, आ अन्ने शकाको आभारा मनमा वरतती इती, तेनु निवाग्धु आ व्यस्तिक्ये सयेट कथन द्वारा करी आप्पा पछी, मने पथु थोडी थोडी श्रद्धा तेना पर आवती न्दथ छे. माटे हुं पथु भारी शंका तेनी आगण प्रदशित करी, तेना खुवासो भेणुवु । आहुं विधारी ते प्रभु पासे गयो व्येटवे 'शरीर अने एव' ओकन् छे ते नतनी तेमनी शका, प्रभुके स्वयं प्रगट करी आथी वायुभूतिने पोताना मननी वात ओमछे डेवी रीते बाणी ते न्दथ विरमथ थयो. लगवाने, एवोनी र्मुथि, एसासा, शिकीषा, एगमिषा, आशंसा विजेरे शुषोना

भवति, सो मोक्षं विना कस्य भवेत् ।। तत्र शब्देऽप्युक्तम्—सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो
 रि शुद्धो य पश्यन्ति पीरा यतय सयतात्मानः” इति । यदि शरीराद् अन्यः कोऽपि नीचो न मवेष्टवा “सत्येन
 तपसा ब्रह्मचर्येण एपकस्याः” इति कथ संगच्छेत ? अतः सिद्ध शरीरात् भिन्नोऽन्यो नीचोऽस्तीति । एवं प्रसु-
 चवनेन छिन्नसंशयः प्रविशुद्धो वायुस्त्वरिपि पचतश्चिद्व्यैः प्रव्रजितः ॥५०१०८॥

टीका—‘तए नं चातर्थाई विष्णो’ इत्यादि । ततः लक्ष वायुसृष्टिर्विषयः ब्राह्मणि आतरो मव्रजितौ” इति
 भाष्या मनसि चिन्त्ययति—उयाहि—‘सत्यम्, एषः—भीमशारीरस्वामी सर्वज्ञो इत्येते, यस्याभाषेण मम ब्राह्मणि

कोमल या फळोर भादि सर्वं मैने परेछे छुआ या । इस प्रकार का जो स्तरण होता है, वह जीव के
 सिषाय शिष्य को होगा । तुम्हारे ज्ञान में भी कदा है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो रि शुद्धो य
 पश्यन्ति पीरा यतयः संयतात्मानः’ इति ।

अर्थात्—‘यह नित्य, उद्योति स्वरूप और निर्मल भावमा, सत्य, तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा उपलब्ध
 होता है, जिसे पीर तथा सयमान् यति ही देखते हैं।’ यदि नीच पृथक् न हा तो यर कयन कैसे संगत
 होगा ? इस से सिद्ध है कि नीच शरीर से भिन्न और स्वतंत्र है । प्रसु के इस प्रकार के कयन से वायुसृति का
 संशय जिन्न हो गया । वह प्रविशुद्ध हुआ और वाँच सौ छिद्व्यो के साथ दीप्ति हुआ ॥५०१०८॥

टीका का अर्थ—‘मेरे दोनो माँ मातावीर स्वामी के तमीप दीक्षित हो गये’ ऐसा जान कर वायुसृति
 ब्राह्मण मन ही मन विचार करते हैं—सच है,—भीमशारीर स्वामी सर्वज्ञ माक्स पोते हैं । यह उनकी सर्वज्ञता का ही

पट्याभिप्रा विवेक बायेबा रहे, छेदर—मुवण विवेक रभशब्देबा स्थी, ब्यारे यह शरीजे छेजे त्यारे स्मरभूमां
 आवे छे आ ‘स्मरभू’ छव विषय मैने थाथी तभाग शास्त्रमां पक्ष छे छे—‘सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव
 ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मया रि शुद्धो य पश्यन्ति पीरा यतयः सयतात्मानः” छति आ नित्य ब्येति स्वरूप निर्भण
 आत्म, सच—तप अने ब्रह्मचर्यदास उपलब्ध थाथ छे ने ने आत्माने धीर-वीर सभयान बति मोक्ष यहे छे’
 ने छव सुठो न छेय ते, आ कयन ईवी रीते सस्त अक्षय । आशी सिद्ध थाथ छे छे, छव शरीरमी भिन्न
 अने भवत छे प्रभुआ आन प्रवचनमी वायुसृतिना सयथ इर थये। ने प्रतिभाष थाभी, प्रसु व्याजण दीक्षा देवा
 ५५१ थये अजयने स्तु येअ अचरर जर्वु तेभने थांबेसा शिष्योनी आबे दीक्षा आपी दीक्षित थये। (सु०१०८)
 विद्येभाष—छे—इच्छति अने अजिन्सृतिने प्रतिभा बची छती छती। पक्ष प्रकाशित यर सकारमी निरक्ष
 अन्ध। भाटे आ गुण हेतु थाभाअ बाँकने। नबी पक्ष अचरभत विज्ञानेया थापे छेवे। केजे। ५५१ भाश। अन्ने

आतरी तदन्विके प्रव्रजितौ । अतोऽहमपि तत्र गत्वा स्वमनोगत तज्जीवतच्छरीरविषयं=जीव-शरीरैक्यविषयकं
 संशयम् अपाकरोमि, इति कृत्वा=इत्येतद्विचिन्त्य सौऽपि=वायुभूतिरपि पञ्चशतशिष्यपरिष्ठतः प्रथुसमीपे समनुप्राप्तः=
 समागतः । प्रथुः तं=वायुभूतिं नामसंशयनिर्देशपूर्व=तन्नाम तन्मनोगतसंशयनिर्देशपुरस्सरं वदति=भो वायुभूते । तव
 मनसि संदेहो वर्तते=यत् शरीरं तदेव जीवः । तद्व्यतिरिक्तः=शरीरभिन्नः अन्यः कोऽपि जीवो नास्ति, प्रत्य-
 क्षादिप्रमाणेन तदुपलम्भाभावात् । जलबुद्बुद इव=जलबुद्बुदवत् स=जीवः शरीरात् उत्पद्यते उत्पन्नः सन् शरीरे
 एव विलीयते=विलीनो भवति । अतो नास्ति अन्यः=शरीरातिरिक्तः कोऽपि पदार्थः=जीवपदार्थः, यः परलोके
 गच्छेत् ? । 'विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इत्यादि=विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः ससुत्थाय पुनस्तान्येव अनु-
 विनश्यति=इति वेदवचनमपि अत्रार्थे=शरीरजीवैक्यविषये मान=प्रमाणम् । अयं भावः=विज्ञानघनो=जीव एतेभ्यो

प्रभाव है-कि मेरे दोनों भाई उनके समीप दीक्षित हो गये हैं । अत एव मैं भी उनके पास जाकर अपने
 मन के 'वही जीव षडी शरीर' अर्थात् जीव और शरीर विषयक एकता संबंधी सशय का समाधान प्राप्त
 करूँ । इस प्रकार विचार कर वायुभूति भी अपने पाँचसौ शिष्यों को साथ लेकर भगवान् के समीप आये ।
 भगवान् ने वायुभूति के नाम और संशय का उल्लेख करते हुए कहा-हे वायुभूति ! तुम्हारे मन में यह
 सन्देह बैठा हुआ है कि-'जो शरीर है वही जीव है । शरीर से भिन्न जीव अलग नहीं है, क्यों कि प्रत्यक्ष
 आदि किसी भी प्रमाण से जीव की प्रतीति नहीं होती । जैसे जल का बुद्बुद जल से ही उत्पन्न होता है
 और जल में लीन हो जाता है, जल से अलग उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, इसी प्रकार जीव भी
 शरीर से उत्पन्न होता है और शरीर में ही विलीन हो जाता है । अतः शरीर से भिन्न कोई जीव पदार्थ
 नहीं है जो मृत्यु के पश्चात् परलोक में जाय । 'विज्ञानघन ही इन पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न होकर उन्हीं
 में लीन हो जाता है' यह वेद-वाक्य भी जीव और शरीर की एकता के विषय में प्रमाण है ।

बाध्यमाने-अने अभारा अधानी ने ने शक्यो अभने सुअवे छे, ते मधी शक्यो अनुकुसे निर्भूण शती न्य छे
 एवमु अस्तिव अने कर्मसु डेवापद्युं, आ भन्ने शक्यो अभारा मनभा वरतती इती, तेतु निवारण्य आ व्यक्तिये
 सद्योऽ कथन द्वारा करी आर्या पछी, मने पद्यु शेडी शेडी श्रद्धा तेना पर आनती न्य छे. भाटे हुं पद्यु भारी शंका
 तेनी आगण प्रदर्शित करी, तेना पुढासा भेणु । आउ विधारी ते प्रभु पासे गये अेटवे 'शरीर अने एव' अेकअ
 छे ते नतनी तेमनी शंका, प्रभुअे स्वयं प्रगट करी. आथी वायुभूतिने पोताना मन्नी वात अेमअे डेवी रीते
 भाडी ते नेछ विस्मय थयो. लगवाने, एवोनी स्थिति, एसासा, विडीषा, एगमिषा, आशंसा विगेरे शुषोना

पूतेभ्याः=दुग्धियादिभ्य उल्पाय-उल्पाय पुनस्तान्वेव भूतानि अनुविनस्पतिन्वेषु पूतेष्वेव विभीनो भवतीति ।
 अभोष्यते=अस्मिन् पिपये प्रतिविधीयते-सर्वभाषिनां जीवो देवश्च प्रत्यसोऽस्त्येव, यत्-स जीवः स्पृत्यादिगुणानां
 स्पृति-भिक्षासा-चिकोर्पा-भिक्षामिषा-ऽऽदंसादिनां गुणानां प्रत्यस्तत्वेन सषित्-द्राता अस्ति । स-जीव देवेन्द्रि
 येभ्यः पूयश्च अस्ति, कृता ! इत्याह-‘यत्’ इत्यादि-यतः इन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि यथा नश्यन्ति-न्याषिसञ्चारि
 भित्तिन्क्यते तथा-इन्द्रियोपातारस्यायास्य सः-आत्मा स त्वं पूर्वमनुपूर्वं इन्द्रियार्थे-श्रुत्यादिकं स्मरति । एतदेव
 विश्वघटे-‘जरे’ त्यादिना, यथा एषः-शब्दः मया पूर्वन्माह श्रुतः । तथा-एतदन्वयं वनमवनवसनादि वस्तु-
 जातं-मया पूर्वं ह्यम् । तथा एव गन्धः सुगन्धैर्गन्धिनां मया पूर्वम् आप्रातः । तथा-एषः मधुरवित्कादिरसः
 मया पूर्वं मास्वारितः ४ । तथा-यतः मृदुर्कृष्णादि स्पृशः मया पूर्वं स्पृष्टः ५ आसीदिति सक्त्र सयोजनीयम्,
 एवं प्रकारः स्तुमसो यो भवति सोऽनुमसो जीवं विना कस्य भवेत् ? अयि तु जीवाविरक्तस्य न कस्यापि,
 अनुमसस्य जीवश्च्युत्वादिति । पुनरप्याह-‘तुञ्ज सरयेति’ इत्यादि । तव आश्लेषपि उक्तमस्ति, यत्-‘सत्येन

तुम्हारे इस मन्त्र का समाधान इस प्रकार है-सब जीवों को अन्तः जीव प्रत्यक्ष होता ही है; क्यों कि
 जीव स्थिति आदि भर्गाव-स्थिति, निद्रामा, चिकोर्पा, जिगमिषा, आनंता आदि गुणों का प्रत्यक्ष रूप से
 प्राण है। यह जीव देह स और इन्द्रियां स भिन्न हैं क्यों कि जब श्याषि या श्लश आदि के आपात कौराह
 किसी फाल्य स इन्द्रियों नष्ट हो जाती हैं, तब इन्द्रियों के उपायात की स्थिति में भी आत्मा पहले अनुभव
 करने पहले गन्ध यदि विषयों का स्मरण करता है। इसी रूपन का स्पष्टीकरण करते हैं-‘जैसे ‘वह शब्द
 मैंने पहले (शेष इन्द्रिय का उपायात होने स पूर्व) सुना था ! यह वन मवन वसन (वस्त्र) आदि वस्तु-समूह
 मैंने पहले देना था । यह सुगन्ध या सुगन्ध मैंने पहले सूची थी । वह मीठा का तिवत् रस मैंने पहले
 आस्तादन किया था । यह कोमल या कठोर स्पृश मैंने पहले छुआ था।’ इस प्रकार का जो स्मरण होता
 है, यह स्मरण जीव के सिवाय और किससे होगा ! जीव के सिवाय और किसी का नहीं हो सकता, क्यों कि
 अनुभव का कर्ता जीव ही है। और भी कहते हैं-‘तुम्हारे श्वाभ में भी कहा है कि-‘यह नित्य, ज्योतिर्मय और

उद्देश्य करी समझ लो है, आ लधा श्लेष ४४ शरीरशरीरी उदरन शर्ष शक्य नथी, शरश्च ठे आ श्लेष, शैतना
 यद्विवाजा अने शैतना शक्तिशी कश्पर ठे त्वादे ४४मां शैतना शक्ति निष्ठुव नथी, ते आ श्लेष ४४भाषी
 देवी रीते उदुकाव पाभी यहे ? भादे आ श्लेष्याण्यं श्रवतक, शरीरत-नथी, तदन शिन्न अने निशण्य ठे इन्द्रियो
 दाश भेगवेव समपक्य, इन्द्रियो श्रव्य वना छतां समपक्यभा नथी यहे ठे आ स्मरश्च यद्वि श्रवनी ठे, ४४
 शरीरनी नथी भादे श्रव अने श्वाभ अने शिस्त ठे

लभ्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धो य पश्यन्ति धीरा यतयः संयतात्मानः इति । अयं भावः—एषः—अग्रम् नित्यं—नित्यः, छान्दस्तत्त्वानुसक्तवस्, शाश्वतः, ज्योतिर्मयः—ज्योतिः स्वरूपः, शुद्धः—निर्मलः आत्मा सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण लभ्यः—प्राप्यः यस्मै—आत्मानम् धीराः—धैर्यवन्तः जितेन्द्रिया इत्यर्थः; संयतात्मानः—कूर्मवत् तत्तद्विद्विषयार्थेषु निग्रहीतमनसः; यतयः—सुनयः पश्यन्ति—साक्षात्कर्तुंतीति । यदि शरीरात् अन्यः—पृथक् जीवो न भवेत्, तदा 'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव ब्रह्मचर्येण' इति वेदवचनं कथं संगच्छेत? अतः शरीराद् भिन्नो जीवोऽस्ति' इति सिद्धं भवति । एवं प्रशुश्रवणेन छिन्नसंशयः—प्रतिबुद्धो चायुश्रुतिरपि पञ्चशतशिष्यैः सह प्रव्रजितः । म० १०८॥

निर्मल आत्मा सत्य से, तप से तथा ब्रह्मचर्य से उपलब्ध होता है; जिसको धैर्यवान्—जितेन्द्रिय तथा संय- तात्मा—पूर्व की तरह इन्द्रियों के रिपयों से मन को निग्रहीत करने वाले—मुनि ही साक्षात् कर सकते हैं।' यदि शरीर से पृथक् जीव न हो तो वेद का यह वाक्य किस प्रकार संगत होगा? इस से सिद्ध है कि शरीर से भिन्न जीव की सत्ता है। इस प्रकार प्रशु से चायुश्रुति का संशय दूर गया। वह आपने पाँच सौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ॥ म० १०८॥

तमाना शास्त्रोभा पण्डु क्लृष्टे छे डे संयत आभाष्ये योतानी छन्द्रीयोने काच्यगानी भाक्क गोळवी तेमळ मनने विषये माथी ज्येची लक्षणे योताने। साक्षात्कार करवे ज्येछ्ये आ अशु प्रत्यक्ष प्रभाष्येइय हेवाधी एव अने काया बुदा छे ज्येभ सिद्ध थाय छे लगवाननी आवी अपूर्व वाणीसु श्रवणु थता वायुभूतना अतर्गत लाये। डेवी रीते पडटाया ते डडे छे डे—

‘हेछ एव ज्येक इये कासे छे अज्ञान वडे, क्रियांनी प्रवृत्ति पणु तेथी तेभ थाय छे।
एवनी उपत्ति अने रोग शैक डु.भ भुल्यु,
हेछने स्वभाव एवपदमा बधाय छे।
ज्येवे जे अनादि ज्येक इपने। मिथ्याएव लाव,
रा.निना वयने। वडे हूर थर्छ ज्यय छे
कासे जड ज्यैतन्यने। प्रगट स्वभाव जिनन,
अन्ने इण्ये। निज निज इये स्थित थाय छे।
जड ने ज्यैतन्य अन्ने इण्यने। स्वभाव जिनन,

મૂલ્ય—૮૫૧ ની વિચવાસિદ્ધો મારણો વિ વિમરિસા—જ રૂપે વેચણવી સરુના મહાર્પદિયા તબો વિ માયરા
 ઢિન્ન ણિય ણિય સંસયા ણ્ચાયા, અબો રૂનો કોતિ અલ્લોરૂઓ મહાયુરિસો પઠિમાસર, તયંવિય અરમણિ
 ગચ્છામિ, જર સો મમં સંસયં ષેરસર, ઠારે અરમણિ પવ્વરૂસામિવિ ક્કુદ્ડુ સો વિ પંચસયસિસસપરિવાર
 પવિલ્લે પહુસમીપે સમાગચ્છર । પહુય ત નામસંસયનિરેસપુલ્લં આમાસે—મે વિયયા ? તુચ્છમણસિ—‘પુરૂચી
 આર પંચપૂયા ન સંતિ, તેસિ જા રૂમા પહીરૂં જાયર સા જાલ પંચોચ મિચ્છા, ણય સચ્ચ જયં મુણં વદર
 “સ્વમોપમ વે સકલં” રૂચાર વેચયણાઓ પિ—સંસઓ વદર સો મિચ્છા । અરૂ પંર ઠારે મુચ્છણપસિદ્ધા મુમિયા
 મુમિમા—પયસ્યા કઠં દીસંદુ ? । વેપસુ વિ શુભ—“પુપિચી દેવતા—માયો વેવતા” રૂચાર, અલ્લો પુરૂચી આર પંચ-
 ચૂયાર સંતિ પિ સિદ્ધં । પચ સોચા નિસમ્મ ઢિન્નસંસઓ વિયણો વિ પંચસયસીસેરિ પહુસમીવે પલ્લવઓ । મૂ૦૧૦૯।

છાયા—વંજ: સલ્લ કગકામિયો દ્વાષણો વિપુલ્લવિ, —ચરૂ રૂપે વેદપ્રયીસ્વરૂપા મહાર્પણિદ્ધતાસ્રયોડપિ ધ્રાતર
 ઢિન્ન નિજ નિજ સંકયા પવ્રજિવાં; મવોડયં ક્રોડપિ અઝૌકિકો મહારુણ: પતિમાસરે, તવન્તિકે મહમપિ

સુપ્રતિપલ્લે બન્ને ભેને સમબલ ઇ

સ્વરૂપ ચેતન નિજ ૧૨૬ છે સ અંધે આચ;

આરથવા તે સેષ પલ પદ્ય પદ્યભાંધ ઇ

એવે અનુભવને પ્રાગય ઉલ્લાસિત સયો;

બરૂચી ઉશાચી તેને આત્મવૃત્તિ યાય છે

શાક ની વિચારો શાકા, સ્વરૂપે શાકાવા એવા,

નિર્મૂંચનેા પચ ભવ અતનેા ઉપાક છે

૭૫૧ પ્રમાણેની અટરધારા વાપુષ્ટિની મનોભૂમિશા ૭૫૧ ઠી આપતાં, આનરૂચી તેમ્ તેમ્ રૂલાવા લામ્મુ
 તેવે સમય મતનેા પ્રચાર નહિ કરવા ભગવાનની પાસે પાંચએ સિચ્ચો સાથે રીક્ષા અક્રૂષુ કરી

કોટિ વર્ષેમ્ સ્વપ્ન પલ્લ, અનુત સતાં સમાચ;

તેમ વિભાવ આનારિનેા, શાન સતાં રૂર સાચ.

આ પ્રમાણે વાપુષ્ટિ અનુત સતાં રૂ ખુભવ કરવા વરૂ વળ્લા; અને પોવાની આમ—અસ્તિવિતિને પોવાનામ
 વાગવા ઠીખત બન્ને (૧૮૦૧૦૮)

गच्छामि । यदि स मम संशयं छेत्स्यति तदाऽऽमपि प्रव्रजिष्यामीति कृत्वा सोऽपि पंचशतशिष्यपरिचारपरिवृतः प्रभुसमीपे समागच्छति । प्रभुश्च त नामसंशयनिर्देशपूर्वमाकारयति—ओ व्यक्त ! तव मनसि पृथिव्यादिपञ्चभूतानि न सन्ति, तेषां या-इयं प्रतीतिर्जायते सा जलचन्द्रान्मिथ्या । एतत्सर्वं जगत् शून्यं वर्त्तते—“स्वोपमं वै सकलम्” इत्यादि वेदवचनादिति संशयो वर्त्तते । स मिथ्या । यद्येवं तदा भुवनप्रसिद्धाः स्वप्नास्वप्नपदार्थाः कथं दृश्येरन् ? वेदेऽप्युक्तम्—“पृथिवी देवता आपो देवता” इत्यादि । अतः पृथिव्यादिपञ्चभूतानि सन्तीति सिद्धम् । एवं श्रुत्वा निशम्य छिन्नसंशयो व्यक्तोऽपि पञ्चशतशिष्यैः प्रभुसमीपे प्रव्रजितः ॥मू०१०९॥

मूल का अर्थ—‘तए णं’ इत्यादि । तत्पश्चात् व्यक्त नामक ब्राह्मण ने विचार किया—‘यह वेदव्रथी के समान महापण्डित तीनों भाई अपने-अपने संशय का निवारण कर के दीक्षित हो गये हैं । मालूम होता है, वह कोई अलौकिक महापुरुष हैं, मैं भी उन महापुरुष के पास जाऊँ । अगर वह मेरे संशय को दूर कर देंगे तो तो मैं भी दीक्षित हो जाऊँगा । ऐसा सोच कर वह भी पाँचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप गये । प्रभु ने उन्हें नाम और संशय का उल्लेख करके कहा—हे व्यक्त ! तुम्हारे मनमें यह संशय है कि पृथ्वी आदि पाँच भूत नहीं हैं, उनकी जो प्रतीति होती है सो जल-चन्द्र के समान मिथ्या है । यह समस्त जगत् शून्य रूप है । वेद में भी कहा है—‘स्वोपमं वै सकलम्’ इति । अर्थात्-सब कुछ स्वप्न के समान है ।’ तुम्हारा यह विचार मिथ्या है । अगर ऐसा हो तो तीन लोक में प्रसिद्ध स्वप्न-अस्वप्न गंधर्वनगर आदि पदार्थ क्यों दिखाई

मूणने अर्थ—‘तए णं, धरत्यादि त्या-ग्राह ०यकत नामना यथा ग्राह्ये विचार कथो के आ अह त्रथु वेद समान महापण्डितो तेभज सगासहोदरो पोतपोताना संशयोचुं निवारणु करी दीक्षित यथा ! आ उपरथी भाहुम पडे छे के ते डोड अलौकिक पुरुष छे । हु पणु तेभनी पासे ञड’ । कदाच ते भारी शंकाते निवारणे तो हु’ पणु तेभनी पासे दीक्षा-पर्याय धारणु करीश. आम विचारी ते पथ पायसो शिष्यो साथे प्रभु पासे पडोथी गयो. प्रभुये तेना नाम अने सशयनेो उल्लेख करी कहुं के ‘हे व्यक्त ! तारा भनभा ज्येवो संशय छे के ‘पृथिवी आदि पाय भूतो इथे के नडि ? अने जे होय तो पण ञण-यद्र समान भिथ्या छे, तेभज आ समस्त जगत शून्य इप छे वेदमा पणु कहु छे के—“ स्वोपमं वै सकलम् ” तमाम स्वभवत् छे. आ गंधी गाभतोमां तने यका उडी छे ते वात डीक छे ने ? व्यक्ते जवाण वाण्यो के ‘हा, तेभज छे, भने उपरनी वानेमां गाढ शंकाओ वते’ छे’ भगवाने तेना मनउ समाधान करवा कहु के ‘आ तारी मान्यता भूतलदेही छे. जे तारा कडेवा सुज्जअ आ गधु’ त्रजे लोकमा हेआता नगर आदि तेभज अन्य पदार्थो स्वभवत् छि; तो तेनजरानजर डेम हेभाय छे ?

टाका—'वर्ण गणपणामरा' इत्यादि । ततः=वायुमुत्पन्नजनानन्तरं खलु व्यक्ताभिः=व्यक्तनामा द्वापणां विद्युन्निविनास्मि यत् इमेन्द्रप्रणयनिभूति-गण्डमूतयः श्वेतप्रसीस्वक्याः=सुरयजुस्सामेति त्रेदप्रयी तस्वक्या मापणपिठताः त्रयोदशि श्रुतः किन्त्वा निम निम संख्या=विगत स्यद्भवत वेदाः। प्रवृजिताः । अतोऽयं क्रोडपि अर्धशिक्रः=योकोपरो मरापुराः प्रतिपासते । तदन्तिक श्वेतमपि गच्छामि । यदि सः मम सञ्चयं=संदेहं ऐस्सपि । कदा भवामपि प्रयग्नित्यामि इति कृत्वा=इति पराश्रय्य सोऽपि पञ्चशत-शिल्प्यपरिवारपरिष्ठतः सन् प्रथममीषे समागच्छति, प्रथम तस्वक्यां नामसञ्चयनिर्देशपूर्वमापाते-सम्बोधयति, तथाहि-भो व्यक्त ! तव

दूते है ? वेदा मं मी कदा है—'पृथिवी देवता आपो देवता' अर्थात्-पृथिवी देवता है, जस देवता है, इत्यादि । 'भूतः पृथिवी आदि पंच भूत हैं, यह सिद्ध हुआ । ऐसा सुन कर और हृदय में धारण करके, किन्तु संशय निवृण हो गया है, ऐसे यह व्यक्त मी पंचमी शिल्पी के साथ प्रभु के साथ विस्तित हो गये । सू० १०९॥

टीका का अर्थ—'गण्डमूति के दीक्षित हो जाने के पश्चात् व्यक्त नामक द्वापण ने विचार किया-इन्द्र भूति, अग्निमूति और गण्डमूति, यह तीनों महापंडित तीन वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद-स्वल्प वे । यह तीन सार्धं भगने-भगने मनोगत संदेहों के दूर कर के दीक्षित हो गये । इस कारण यह-प्राचीर-क्रोड़ योमाकर मरापुर्य प्रतीत होते हैं । मैं मी उन के निकट जाऊँ । यदि उन्हीं ने मेरी शंका का निवारण कर दिया वा म मी दीक्षा प्रार्थना कर रूँगा । इस प्रकार विचार कर व्यक्त पण्डित मी अपने पंच सौ ऋतेशसिवां की साथ छेकर भगवान् के निकट पहुँचे । भगवान् ने व्यक्त का नामोषाण करते हुए तथा उनके मन का राश्य प्रकाशित करते हुए इस प्रकार खरीपन किया-है व्यक्त ! तुम्हारे अन्तःकरणमें ऐसा

देवतां पञ्च अहं छे है—'पृथ्वी देवता, आपो देवता' आ पृथ्वी अहं देवता छ अने ऋण पञ्च देवता छि, तेभी अने सिद्ध भाष छे है पृथ्वी आदि पञ्चभूतको विमान छि वेदव्यक्तने आवा सवणे। अबे भण्तां तेनी मिथ्या भान्ता आरभ थअ अर्थ, तेने पञ्च स सार उपर वेराग्य भावता पांयसे। शिल्पीनी साथे प्रभुनी अन्वीषे ते शिद्धित थये। (सू० १०६)

विशेष—'अग्निमूति-अग्निमूति अने वायुभूति नये सभा सङ्घोकर उता तेमन् पंडित तहीथ थये तेजो पक्षाता उता, तेजो वेदप्रवी स्वरूप उता आ ननु प्रथम पंडितो पञ्च ब्रह्म आन स्वाभी आश्रण नथी पञ्जा, ने आरि तेमन् इथन तेमने प्रथम अजे पितृ' इति त्पारेण आत्माध साधना तेजो निष्ठा चला उहे । आर्थी अने सभाम्ब छे है 'महावीर' दोशेणर पुत्र देना आरभे अने अर्पिति साथ छे है पञ्च तेमनी निकट जाऊँ, अने आ स शारनी लक्षणतानी अत वायु आणु विचारि 'अग्नि पंडित पञ्च पानानी छे थये। आ-भवातु निराश्रय थोपवा पांयसे। शिल्पी साथे उपचये।

मनसि-पृथिव्यादि पञ्चभूतानि न सन्ति, तेषां-पृथिव्यादिभूतानां या इयम् प्रतीतिः=अनुभवो जायते सा जल-चन्द्रवत्-जले प्रतिबिम्बितश्चन्द्र इव मिथ्या यतः एतत्=दृश्यमान सर्वं निःशेषं जगत् शून्यं वर्तते । तत्र प्रमाणमुप-न्यस्यति='स्वप्नोपमं वै सकलम्' इति । सकलं=दृश्यमानं सर्वं स्वप्नोपमम्=स्वप्नदृष्टपदार्थवत् अस्ति वै=निश्चयेन, न तु सत्यमित्यर्थः, इत्यादि वेदवचनात्, इति इत्थं तत्र मनसि संशयो वर्तते । सः मिथ्या अस्ति । तथाहि-यदि एवं-पृथिव्यादिभूतपञ्चकाभावः स्यात्, तदा सुवनप्रसिद्धाः=सकललोकप्रख्याताः स्वप्नास्वप्नपदार्थाः-स्वप्ना-वस्थायो गजतुरगादयः, अस्मावस्थाया गन्धर्वनगरादयश्चपदार्थाः कथं-केन प्रकारेण दृश्येरन्=दृष्टिषिष्यतया-संशय है कि-पृथिवी आदि पाँच भूतों की सत्ता नहीं है । इन पाँचों भूतों की जो प्रतीति होती है, वह जल में प्रतिबिम्बित होनेवाले चन्द्रमा की प्रतीति की तरह भ्रान्ति मात्र है । यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् शून्य है । इस विषय में प्रमाण देते हैं—'स्वप्नोपमं वै सकलम्' अर्थात्-'निश्चय ही सभी कुछ स्वप्न के सदृश है ।' जैसे स्वप्न में विविध प्रकार के पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु उनकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है, उसी प्रकार जगत् में दिखाई देनेवाले विविध पदार्थों की भी वास्तविक सत्ता नहीं है । वेद के उक्त वाक्य से इसी मत को सिद्धि होती है ।

तुम्हारा यह सशय मिथ्या है । अगर पाँचों भूतों का अभाव हो और यह जगत् शून्य-रूपा ही तो लोक में प्रसिद्ध स्वप्न अस्वप्न के अर्थात्-स्वप्न के गजतुरगादि, अस्वप्न के गन्धर्वनगरादिपदार्थ क्यों अनुभव में आवे ?

लगवाने तेना मनमा रडेही शक्रने पोताना ज्ञान द्वारा ज़ाही दीधी अने 'इधुं' डे 'ताराभा ओ ज्ञतनो आबिप्राय वरती रह्यो छ डे पृथ्वी आदि पांच जेतो आ जगतमा छेज नछि परंतु जेम जणमां थंद्रनु' प्रतिषिंभ देभाय छ, ने ते जणने अद्रमाज छे जेम आपणे भानीजे छीजे तम थंद्रमानी प्रतीति माइक आ पृथ्वी आदिनु देभाउ' ते पणु ओक आनि-भाव छे ! आ जगत शून्य इणज छे ! अन्तिपणु आ सर्व पदार्थो देभाय छे, अन्ति-पणुज सगा सडोहरो देभाय छे । वास्तविक रीते तो आ वधु देभाय छे ते कल्पनानेज ससार छे. "कल्पनाथीज डिलो थयो छे अने कल्पना थसी जतां शून्यपणुं ज बासे छे जेम स्वप्नमां सकल पदार्थो दृष्टिगोचर थाय छे अने लोगवाय छे तने वास्तविक माना तेना रस शून्याय छे, भित्र दुश्मनने लेह जसुयाय छे. पणु स्वप्न थसी जतां डाई पणु देभाउ नथी आ ओक जम डते। जेम ज़ाही आपणे निद्रामा सूई जधजे छीजे अगर निद्रामांशी जगृत थधजे छीजे तेम आ संसार पणु ओक दीर्घ स्वप्नु छे जेटडे जगने जेतो अगर मसु वधते आमानु' डाई आपणुने जथाउ नथी तेथी से' आ जेहुं' जेयुं' तेवा जम उपस्थित थाय छे."

जुमरविषयाः क्रियेरह १, किं तदाभिमते वेदेऽपि पृथिव्यादिपुतपद्मकास्त्वित्त्वम् उक्तम्, तथाहि-‘पृथिवी देवता, आपो देवता’ इत्यादि अथः वेदेऽपि पृथिव्यादिपुतपद्मकास्त्वित्त्वमित्त्वित्त्वानात् पृथिव्यादिपुतपद्मकास्तित्त्वानि सन्ति, इति सिद्धम् । एवं मृत्वा-सामान्यतः भस्मगोवीर्यित्वं निवन्म्य-कशायोवाभ्यां विशेषतो द्विविनित्यम्, छिन्नसञ्चयो-व्यक्तोऽपि पद्मसञ्चयैः सह, मसुसमीये मवन्गिराः ।।४०१०१।।

जाडय यह है कि-सुम् कहते हो कि यह सब अल-वन्त्र के समान प्रान्त हैं; किन्तु कहीं न कहीं पारम्परिक होने पर ही इसी जगह उसकी श्रान्ति होती है । आकाश में वास्तविक वन्त्र न रोना तो जल में वन्त्रमा का घम भी न होता । जगत् के पदायों को स्वमष्ट पदायों के समान कहना भी ठीक नहीं, क्यों कि जगत् घमस्वा में वास्तविक रूप से पदायों का र्द्धन न होता तो स्वम में वह कैसे दिखाई देते ? जिस वस्तु का सर्वथा भ्रमण है, वह स्वम में भी नहीं दीखती । इसके अतिरिक्त स्वमष्ट पदायों में अर्थकिया नहीं होती, अथ एव उन्हें कथयित्त्व असत् मान भी लिया जाय तो भी जगत् अस्या में दिखाई देने वाले जिन पदायों में अर्थकिया होती है, उन्हें किस प्रकार मिथ्या-असत् माना जा सकता है ? इसके अतिरिक्त तुम्हारे प्रमाण मृत माने हुए वैश्व में भी तो पाँच मृतों का अस्तित्व कहा है । यथा-पृथिवी देवता है, जल देवता है, इत्यादि ।

अथचने तेनेः एव प्रमाद्येनेः अत एव ली लर्ष समभवत् कस्य हे मा त्वारी यधी आन्वता सन्धधी वेजनी छे स्वन्धमा तो केड पद्य पदाथेनी कथानी बच्चाती न नधी, त्वारे आ अत्रतमा तु वेड, द्यधी, अरेड, अरेड्योते, नधी, तत्राव विनेर अनेक पदाथे कथा तस्य अन्ति छे अने आकाशमां कद्र न होव तो शु ते अणमां देभाड शके ? स्वन्धमां पद्य ने ने पद्ये वास्तविक रीते श्रेण्ड छे तेथी न ते पदाथे स्वन्धमां भासे छे अने पदाथेजु अतिर न होव तो ते पदाथे केवी रीत देभाड शके ? स्वन्धमां ने ने पदाथे आकाश तरीडे अणव छे ते आकाशी पदाथेमां अर्धकिना केटी नधी, तेथी स्वन्ध अड तेने तेने अच्चातं नधी, त्वारे सवाशना अर्ध पदाथे अर्धकिनास पन् छे आटे न ते देभाथ येअ छे अने तेमज अस्तित्वपद्य वास्तविक रीते डरेड छे ‘आकाश’ अने मूण वस्तु नधी, अथी प्रतिभिअ छे आटे ते अर्धकिना सपेनधी अर्ध पदाथं अर्धकिनास पन् छे डरेड छे अने अर्थपरिवाह किना सञ्चित न अर्ध पदाथ अनेधमां अच्चे छे अने केड किना छे ते ते अर्ध सङ्ग छे, निरर्थक नधी, अपरी अर्धकिमाने वीपि तेम इव एअ, वरुँ, अथ विवेधेमां हेरशर कथा डरे छे आटे न पद्यी अर्ध पदाथे अथअन्य नधी पद्य वास्तविक छे वेडमां अथ अ पदाथेने देवनी कथामां अर्थ अ हे अस्त्वे अ पदाथेने

मूलम्—चतुरो वि पंडिया पद्मसमीचे पञ्चइयत्ति क्षुण्णिय उवज्जाओ सुहम्माभिहो पंडिओ वि नियससय-
 पंचसयसिसपरिखुओ पद्मस्स अंतिए समागओ । पद्म य तं कहेइ—भो सुहम्मा ! तुज्जमणंसि एयारिसो
 छेयणहं पंचसयसिसपरिखुओ पद्मस्स अंतिए समागओ । पद्म य तं कहेइ—भो सुहम्मा ! तुज्जमणंसि एयारिसो
 संसओ वट्टइ—जो इह भवे जारिसो होइ सो परभववि तारिसो चेव होउं उपपज्जइ, जहा साल्लिवणेणं साली चेव
 उपपज्जति, नो जवाइयं । “पुरुषो वै पुरुषस्त्वमश्नुते पशवः पशुन्वयम्” इच्चाइ वेयवयणाओत्ति । तं भिच्छा,—जो
 महवाइ गुणजुत्तो मणुस्साउ वंधइ सो पुगो मणुस्सत्तणेण उपपज्जइ । जो उ मायाभिच्छाइ गुणजुत्तो होइ सो
 मणुस्सत्तणेण नो उपपज्जइ, तिरियत्तणेण उपपज्जइ । जं कठिज्जइ—‘कारणाणुसारं चेव कज्जं हवइ’ तं सच्चं कितु
 अणेण एवं न सिज्जइ ज जहारुवो वट्टमाणभवो तहारुवो चेव आगामी भवो भविस्सइ, जओ वट्टमाणणागय
 भवानं परोप्परं कज्जकारणभावो नत्थि अओ ‘अणागयभवस्स कारणं वट्टमाणभवो अत्थि इमो पञ्चओ भम-
 भरिओ, वट्टमाणभवे जस्स जीवस्स जारिसा अज्जवसाया हवंति तयज्जवसायरूक्कारणाणुसारमेव जीवाणं
 अणागयभवस्स आऊवंधइ, तं वद्धउरूक्कारणमणुसरीय चेव अणागयभवो भवइ ।

जइ कारणाणुसारमेव कज्जं होजा तथा गोमयाइओ विच्छियाईणं उपपत्ती नो संभवेज्जा, इयकहणंपि न
 संगथं, जओ गोमयाइयं विच्छियाईणं जीबुपत्तीए कारण नत्थि तं तु केवलं तेसिं सरीरुपत्तीए चेव कारणं, गोमया-
 इरूक्कारणस्स विच्छियाइसरीरूक्कज्जस्स य अणुरूक्कया अत्थिचेव, जओ गोमयाइए रूक्कसाइ पुगलणं जे
 गुणा होति ते चेव गुणा विच्छियाइ सरीरेविउवल्लभंति । एवं कज्जकारणाणं अणुरूक्कयासांगारे, वि एयं न सिज्जइ जं-
 जहा पुण्यभवो तहेव उत्तरभवो वि होइ । वेएसु वि वुत्तं—“श्रृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दग्धते” इच्चाइ । अओ भवंतरे
 वेसारिस्सं भवइ जीवस्सत्ति सिद्धं । एवं सोऊथ नट्टसंदेहो सोवि पंचसयसिस्सेहिं पद्मसमीचे पञ्चइओ ॥५॥मू०११०॥

जव वेद में भी पाँचों भूतों का अस्तित्व प्रतिपादन किया गया है तो यह सिद्ध हुआ कि पाँच भूत हैं ।
 यह कथन सामान्य रूप से श्रवण करके और जहापोह द्वारा विशेषरूप से हृदय में निश्चित करके
 व्यक्त भी संशय निवृत्त होने पर पाँचसौ ऋषियों के साथ भगवान् के समीप प्रव्रजित हो गये ॥मू०-१०९॥

शक्ति अटली अधी होय छे छे तेने मानवी हेवी शक्ति तरीछे ओणजे छे अटला भाटे न आ पांथ मडाभूतेनी
 पछवाडे ‘दुवना’ शब्द भूइयो छे. आ पहार्यो चेतानी शक्तिन द्वारा गभे तेवुं इयांतर करी शुक्रे छे अरे अेक
 अणुभात्रमां तीन शक्ति रहेली छे, तो स्कंधानी तो वात न कथा रही ? आथी आ पांथ भूते। स्वसिद्ध थाय
 छे. आहुं अपूर्व सामर्थ्य नऽ द्रन्धेमा होय छे तेवुं कथन मडावीर स्वाभीना स्वयंभुपेथी सांभगतां तेभना शब्दोभां
 ‘व्यक्त’ने श्रद्धा उत्पन्न थर्ह ने ते पथु पांथसे। शिष्ये।नी साथे हीक्षित थये। (सू०१०८)

छापा—'नस्यारोऽपि पण्डिता मधुसमीपे प्रव्रजिताः' इति श्रुत्वा उपाध्यायः सुप्रसर्माभिषः पण्डितोऽपि निजसंशयच्छन्दार्थं पद्मश्रुतद्विव्यपरिहृतः प्रसन्नश्च तं कथयति—सो सुप्रसर्त ! तव मनसि एवाह्य सद्यो बर्षते य इह मये पाह्यो भवति स परमकेरुपि तारुह्य एव भूत्वोत्सपते, यथा श्राद्धिषपनेन श्रास्य प्रसात्पद्यन्ते नो यथादिकम् । "पुरुषो वै पुरुषत्वनमनुते पशवःपशुत्वम्" इत्यादि वेदवचनानिदिति । तस्मिन्त्या, यो मार्दवादिगुणयुक्तो मनुष्यायुर्ब्रह्माति स पुनर्मनुष्यत्वेनोत्सपद्यते । यस्म मायामिच्छ्यादिगुणयुक्तो भवति स मनुष्यत्वेन नोत्सपद्यते, त्रिपैतन्वेन उत्सपद्यते । यत् कथ्यते—“कारणानुसाराद्येव कार्यं भवति” तत्सत्यं, किन्तु—भनेन एव न सिष्यति

मूल का अर्थ—'चउरो चि' इत्यादि । 'इन्द्रभृति, अग्निभृति, वायुभृति और ब्यक्त चारों ही पण्डित दीक्षित हो गये !' यह सुनकर उपाध्याय सुप्रसर्मा नामक पण्डित भी अपने संशयको छेड़ने के लिए पाँचसौ शिष्यों क साथ मसुक पाठ पढ़ने । पढ़ने उन से कहा—हे सुप्रसर्त ! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि जो और इस मय में जैसा होता है, परमय में भी वैसा ही होकर उत्सप होता है, जैसे शालि बाने से शालि ही उगते हैं, जो (यद) आदि नहीं । वेद-वचन भी ऐसा है कि—'पुरुषो वै पुरुषत्वमनुते पशवः पशुत्वम्' इति । अर्थात्-पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त होता है और पशु पशुत्व को ही प्राप्त होता है ।'

तुम्हारा यह विचार मिच्छ्या है । जो मृदुता आदि गुणों से युक्त जोव मनुष्यायु का बन्धन करता है, वह मनुष्य रूप से उत्सप होता है । जो तीव्रतर माया-मिच्छ्यात्न आदि गुणों से युक्त होता है, मनुष्य रूप से उत्सप नरि होता, किन्तु विवेक रूप से उत्सप होता है, यह जो कहा जाता है कि कारण के अनुस्य ही

भुजते अर्भ—'चउरो चि' इत्यादि ईन्द्रभृति, अग्निभृति, वायुभृति अने ब्यक्तको "आरे पण्डित इक्षित यदु-अथा" की आज्ञाणी उपाध्याय सुप्रसर्मा नामका पण्डित पशु योताना स शशोना निवाशयु आरे पाँचसौ शिष्योंनी साथे प्रसुनी पाये पढाया, प्रसुजे तेने मनु-के सुप्रसर्मा ! तमारा मनमा जेवो स यव छे-ने एव आ शवमां देवो होव छे परभवमां पशु ते जेवो-व भृति-व मे छे, नेभ आदि बानवाणी आदि-व छे छे छे, पशु-अव आदि-अवता नबी वेद-वचन-पशु जेवु छे छे-
 "पुरुषो वै पुरुषत्वमनुते पशवः पशुत्वम्" कीटरे छे पुरुषने पुरुषत्व भान्द थाव छे अने पशु, पशुत्वेन-व पाये छे तमारे आ विचार भिन्ना छे मृदुता आदि शब्दोपी सुकं जेवो-ने एव मनुष्य आशुना अ प आदि छे, ते मनुष्यपि उत्सप थाव छे-ने तीव्रतर माया-मिच्छ्यात्न आदि शब्दोपी सुकं थाव छे, ते मनुष्यपि उत्सप-अवता नबी यव तिर्ष-अपि उत्सप थाव छे जेभ-ने-हेवोव छे छे मारवने अमनुष्य भाव थाव छे ते नशरार छे पशु

यत्-यथारूपो वर्त्तमानभवस्वत्थारूप एव आगामी भवो भविष्यति, यतो वर्त्तमानाऽऽनागतभवयोः परस्परं कार्य-कारणभावो नास्ति, अतः-‘अनागतभवस्य कारणं वर्त्तमान भवोऽस्ति’ अयं प्रत्ययो भ्रमभूतः, वर्त्तमानभवे यस्य जीवस्य यादृशा अध्यवसाया भवन्ति तदध्यवसायरूपकारणानुसारमेव जीवानामनागतभवस्यायुर्बध्यते, तद् वज्रा-यूरूपकारणमनुष्ठेयवानागतभवे भवति ।

‘यदि कारणानुसारमेवकार्यं भवेत्तदा गोमयादितो वृश्चिकादीनाद्युत्पत्ति नो संभवेत्’ इतिकथनमपि न संगतं, यतो गोमयादिकं वृश्चिकादीनां जीवात्पत्तौ कारणं नास्ति, तनु केवलं तेषां शरीरोत्पत्तवेव कारणम्, गोमयादिरूप कारणस्य वृश्चिकादि शरीररूपकार्यस्य चानुरूपताऽस्त्येव, यतो गोमयादिकं रूपसादिपुद्गलानां ये गुणा भवन्ति त एव गुणावृश्चिकादिशरीरेऽप्युपलभ्यन्ते । एवं कार्यकारणयोरानुरूपता स्वीकारेऽपि एतन्न सिध्यति यत्-कार्यं होता है, सो ठीक है, किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जैसा वर्त्तमान भव है वैसा ही आगामी भव होगा, क्योंकि वर्त्तमान भव और आगामी भव में परस्पर कार्य कारणभाव नहीं है । अर्थात् आगामी भवका कारण वर्त्तमान भव है, यह समझना भ्रम पूर्ण है । वर्त्तमान भव में, जीस जीव के परिणाम-अध्यवसाय जैसे होते हैं, उन्ही अध्यवसाय रूप कारण के अनुसार आगामी भव की आयु बंधती है और वज्र आयु रूप कारण के अनुसार ही आगामी भव होता है । अगर कारण के अनुसार ही कार्य होता तो गोबर आदि से वृश्चिक आदि की उत्पत्ति संभव न होती । यह कथन भी संगत नहीं है, क्योंकि गोबर आदि, वृश्चिक आदि के जीवकी उत्पत्ति में कारण नहीं हैं, सिर्फ वृश्चिक आदि के शरीर की उत्पत्ति में ही कारण होते हैं । और गोबर आदि रूप कारण तथा वृश्चिक जादि शरीर रूप कार्य में अनुरूपता है ही । गोबर आदि में रूप, रस, आदि पुद्गल के जो गुण होते हैं, वही गुण वृश्चिक आदि के शरीर में भी पाये जाते हैं ।

तथा ये सिद्ध शतु नथी के नेवो वर्त्तमान लव छि, अवेव न आगामी लव छशे, कारथु के वर्त्तमान लव अने आगामी लवमा परस्पर कार्य-कारणभाव नथा ओटले के आगामी लवतुं कारथु वर्त्तमान लव छे, अेभ भानतुं ते अमलथुं छे. वर्त्तमान लवमा, ने एवना परिष्काम-अध्यवसाय नेवा होय छि, अेव अध्यवसायइय कारथुने अनुसार आगामी लवनेो आयुमध अ धाय छे. अने आयुमधना कारथु अभाषिे न आगामी लव थाय छि “जे कारथुने अनुसार न कार्य शतु होय तो छाथ-वगेरेमाथा वी छी वगेरेनी उत्पत्ति संलनी न शकत” आ अथन पथ असगत छि. कारथुके छाषु आदि, वी छी आदिना एवनी उत्पत्तिनुं कारथु नथी, पथ अंत वी छी आदिना शरीरनी उत्पत्तिना कारथइय होय छि. अने छाषु आदिइय कारथथा वी छी आदि शरीरइय कार्यमां अनुइपता छि न. छाषु आदिमां इय, रस, आदि पुधलताना ने शुषु होय छि, ते न शुषु वी छी आदिनां शरीरमा पथु होय छे. आ

यथा पूर्वमनस्यैषौषधमनोऽपि भवति । वेदेष्वप्युक्तम्—“शृगालो वै एष जायते य ससुरीषो दण्डते” इत्यादि, भवते भवान्तरे वैसाहस्यमपि भवति श्रीबस्येति सिद्धम् । एवं श्रुत्वा नष्टसर्वैः सोऽपि पञ्चदशतन्त्रियः प्रहस्यमीपे प्रव्रजितः ॥सू०११०॥

टीका—“चतुरोऽपि पंडित्या” इत्यादि । “वत्सारोऽपि—इन्द्रभूत्यमिश्रुति, वायुश्रुति, व्यक्तमिषाः पण्डिताः प्रहस्यमीपे प्रव्रजिताः इति श्रुत्वा उपाध्यायः सुधर्माभिः पण्डितोऽपि निजसस्यचक्षेत्रनार्थं पञ्चदशतन्त्रियपरिवृतः प्रमोदन्तिके समागत । प्रहस्य तं=समागतं सुधर्माभिः पण्डितं कथयति सो सुधर्मन् । तत्र मनसि एतादृशान्=शुद्धुपदं बस्यमानस्वरूपः संशयो रह्यते, तथाहि यो=नीचः इह मये=अस्मिन् जन्मनि पाहस्यः=पाहस्योनिपातो भवति, इत प्रकार कार्य-कारण की अनुकम्पता स्वीकार कर लेने पर भी यह सिद्ध नहीं होता कि बीसा पूर्व मंत्र है, वैसा ही तपत्र मंत्र भी होता है । वेदोंमें भी कहा है—“शृगालो वै एष जायते यः ससुरीषो दण्डते” इति । भ्रातृ-श्री मनुष्य मूल सहित जन्माया जाता है, यह निश्चय ही शृगाल के रूप में उत्पन्न होता है, इत्यादि । इससे सिद्ध है कि भवान्तर में नीच विद्वद्भ्य रूप से भी उत्पन्न होता है । यह रूपन मुनकर सुधर्मा उपाध्याय का संशय नष्ट हो गया । यह पंचसती श्रितियों के साथ प्रव्रजित हो गये ॥सू०११०॥

टीका का अर्थ—इन्द्रश्रुति भ्रातृ चारों पण्डित मनु के समीप प्रव्रजित हो गये, यह मुनकर उपाध्याय सुधर्मा नामक विद्वान्त्री अपने सस्य को दूर करने के लिये पंचसती श्रितियों को साथ लेकर भगवान् के निष्टट गये । भगवान् ने अपने समीप आये सुधर्मा पण्डित से कहा—हे सुधर्मन् ! तुम्हारे शिष्य में ऐसा संशय है कि—जो नीच इस मंत्र में जिस योनि को प्राप्त है, वह नीच भगामी मंत्र में भी उसी योनि का

प्रभवे तर्क-शरणावृत्ति अनुकम्पता स्वीकार की वामी यत्र के सिद्ध मनु नहीं है जेव्हा पूर्व भव दोष छे तेव्हा ज्ञानार्थी भव मनु दोष छे वेदोर्मा यत्र शब्द छे—“शृगालो वै एष जायते यः ससुरीषो दण्डते” जेठवे छे ने मनुष्य भज साथे ब्रह्मावक छे, ते अपश्य शिष्याज इये कथय साथ छे इत्यादि. तेथो सिद्ध साथ छे छे बीजान भवता एव शुद्धा इये यत्र उरध्वन साथ छे आ इधन शंकराजिने सुधर्मा उपाध्यायतेप सद्य नाश पाभ्ये. तेभवे पंचसती श्रित्ये साथे बीषा वीषी ॥सू०११०॥

टीकाके अर्थ—छ शक्ति कादि कारे चरितोन्ने प्रभुनी पासो बीषा वीषी जे शंकराजिने उपाध्याय सुधर्मा नामना विद्वान् पक्ष शैतान्ना कथयते इह इत्थं आटे पंचसती श्रित्येनी साथे भगवान्नी पासो अथा. भगवान्ने शैतानी पासो कानिच सुधर्मा पीडतने छे—हे सुधर्मा ! तमारा अन्तर्मा जेव्हा सद्य छे छे ने एव आ जन्मों जे भ्रातृ

सः-जीवः परभवेऽपि=भवान्तररेऽपि तादृश एव=तादृशयोनिमानेन भूत्वा उत्पद्यते । यथा-येन प्रकारेण शालि-
 वपनेन शालय एव उत्पद्यन्ते, नतु-तदतिरिक्त यत्रादिकम् । अयं तत्र संशयः-“पुरुषो वै पुरुषत्वमभ्यनुते पशवःपशु-
 त्वम्-पुरुषः=पुमान् पुरुषत्वं वै=पुंस्त्वमेव अभ्यनुते=माप्नोति, पशवः=चतुष्पदाः पशुत्व वै=चतुष्पदत्वमेव अभ्यनुते=
 प्राप्नुवन्ति, न तु विपरीतां योनिम्-इत्यादि वेदवचनाद्स्तीति । तत्=तत्र मत मिथ्या वृत्ते, तथाहि-यो=जीवो सार्द-
 वादि गुणयुक्तो भवति स मनुष्यायुः=मनुष्योनियोग्यायुः वञ्चति सः-वद्भ्रमनुष्यायुर्जीवः मनुष्यत्वेन उत्पद्यते ।
 तु-पुनः यो-जीवः, मायामिथ्यादि गुणयुक्तो भवति, सः-मनुष्यत्वेन नोत्पद्यते, अपि तु तिर्यग्त्वेन उत्पद्यते ।
 यत्-कथ्यते ‘कारणाद्गुणारमेव=कारणादुत्पद्यते कार्यं भवति-तत् सत्यं, किन्तु प्रसङ्गमपि भवति, तथाहि-
 आमत्तंडुलजलस्य यत्रेकत्रिंशति पर्यन्तं प्रक्षेपः तत्र ‘तान्दलिया’ इति प्रसिद्धस्य शाकत्रिशेषस्य उत्पत्तिर्जायते यथावा

होकर उत्पन्न होता है । जैसे शालि नामक धान्य बोने से शालि ही उगते हैं, उसके अतिरिक्त जी आदि नहीं
 उगते । तुम्हें यह संशय वेदके इस वाक्यके कारण है कि—“पुरुषो वै पुरुषत्वमभ्यनुते पशवः पशुत्वम्”
 निश्चय ही पुरुष पुरुषपन को ही प्राप्त करता है—और पशु पशुपन को ही प्राप्त होते हैं ।’

सुम्हारा यह मत सिद्ध है, क्योंकि कि जीव मार्दव (नम्रता) आदि गुणों से युक्त होता है, वह मनुष्य
 योनि के योग्य आयु को वाँधता है और मनुष्यायु वाँधने चाला मनुष्य रूप में उत्पन्न होता है, किन्तु जो
 जीव माया-आदि गुणों से युक्त होता है, वह मनुष्य रूप से उत्पन्न नहीं होता, किन्तु तिर्यच रूप से
 उत्पन्न होता है । जो कहा जाता है कि ‘कारण के अनुरूप ही कार्य होता है,’ वह मत्य है, परन्तु इतने से
 वर्त्तमान भवका सादृश्य भविष्यत्कालिक भव में सिद्ध नहीं होता है । वर्त्तमान भव, भविष्यत् भव का कारण
 होता है-यह जो मत है वह भ्रान्तिपूर्ण ही है । वर्त्तमान भव भविष्यद् भव का कारण नहीं होता है, परन्तु

पाश्वे छे, ते एव आगामी लवमा पशु तेज योनिमा उत्पन्न थाय छे, नेम शालि नामनु’ अनाज वाववाथी
 शालि न् उगे छे, ते सिवाय न्व आदि उगतां नथी वेदता आ वाड्यते अरब्धे तभने अे संशय थयो छे--
 “पुरुषो वै पुरुषत्वमभ्यनुते पशवः पशुत्वम्”-अथश्च पुरुष पुरुषपणाने पासे छे अने पशु पशुपणाने पासे छे.
 तमाशे आ मत मिथ्या छे, अरब्धु के ने एव सार्दव (नम्रता) आदि शुष्णवाणो डोय छे, ते मनुष्योनिने योग्य
 आशु-अन्ध पाधे छे, अने मनुष्यायु आधनार मनुष्य इपे उत्पन्न थाय छे, पशु ने एव माया-मिथ्यात्व आदि
 शुष्णवाणो डोय छे, ते मनुष्य इपे उत्पन्न थते नथी, पशु तिर्यच इपे उत्पन्न थाय छे. अरब्धने अनुस्यन्य धाम
 थाय छे अेम ने ढडेवाय छे ते सत्य छे, पशु जेटलाथी वर्त्तमान लवनी बविष्यद्राणता लव साधेनी समानता
 सिद्ध थरी नथी वर्त्तमान लव, लविष्यता लवनु’ अरब्धु डोय छे अेयो ने मत छे ते प्राभक्ष छे. वर्त्तमान लव

पतनादिदग्धवेष-योगात्कन्दलीकाध्वस्योत्पत्तिर्भवति अथवा सतराश्रीषितं क्रांत्त्यपात्रस्य द्रुवं सद्यो त्रिपायते इत्यादि,
 अपि च सर्वमानवसहाय्यमनामिति मध्ये न सिध्यति, यतो वर्षमानवनागवतमयीः कार्यकारणभात्रो नास्ति ।
 सर्वमानवयोगानागतमत्स्य कारणं मत्वीति यन्मते तद् भ्रान्तिपूर्णमेव, परन्तु सर्वमानवमेव यादृशा अच्यवसाया
 मचन्ति, साहाय्यवसायरूप कारणानुसारमेव जीवा अनागतमत्स्यन्वित्यक्रमाद्युज्यन्ति, तदनुस्य एव जीवाना
 मनागतमत्तो मत्ति । किंच कारणानुरूपकार्यस्वीकारे गोमयादितो द्वयिकादीनामृत्पचिर्न समवेत् इति यदुच्यते,
 तदप्यसमीचीनमेव, यतो गोमयादिकं द्वयिकादीनां श्रीगोस्पृशौ न कारण्य, किन्तु वेपां शरीरोत्सर्वावेव कार
 णम् । गोमयादिरूप कारणस्य, द्वयिकादि शरीरस्य कार्यस्य च आनुक्यमस्त्येव, यतो गोमयादौ स्पर्सादि
 पुद्गलानां ये गणा मचन्ति त एव गुणा द्वयिकादि शरीरोत्स्युपलभ्यन्ते । इत्थं च कार्यकारणयोरानुक्यस्वीकारोऽपि
 यादवः पूर्वमत्साहस्य एव उधरमचोऽपि भवतीति न सिध्यति । इत् न ममैवाभिमतम्, अपि तु वेदेऽप्युक्तमस्ति-

सर्वमानव मत्तं नितस प्रकार के अच्यवसाय होते हैं, उस प्रकार के अच्यवसायरूप कारण के अनुसार ही
 जीव मविव्यक्तकालिक मत्त सम्बन्धी आयु बँधते हैं और तदनुसार ही जीवों को मविव्यक्तकालिक मत्त होता है ।
 तथा-कारण के अनुसार कार्य स्वीकार करने पर गोमय (गोबर) यादि से द्वयिक यादि ही उत्पत्ति की
 संभावना नहीं है, पर जो कदा जाता है, सो भी असंभव है; क्योंकि कि गोबर प्रादि द्वयिकादि के जीव की
 उत्पत्ति में कारण नहीं है, किन्तु उनके शरीर को उत्पत्ति में ही कारण है । गोमयादि रूप कारण और
 द्वयिकादि के शरीर रूप कार्य में साहस्य है ही, क्योंकि कि गोबर प्रादि पुद्गलों के जो गुण हैं
 च ही गुण द्वयिकादि शरीर में भी उपलभ्य होते हैं । इस प्रकार कार्यकारण में साहस्य स्वीकार करने पर भी
 प्रीसा पूर्वमेव होता है वैसे ही उत्तर मत्त भी होता है' यह सिद्ध नहीं होता ।

अविच्यवना अत्रुतु दारुण होता नभी पक्ष पतमान अवमं ने प्रशानना अंधवसाय होता है, ते प्रशानना अंधवसायद्वय
 दारुण प्रभावे च अविच्यवना अव सवधी आयु नाथि है अने ते प्रभावे च अनेते अविच्यवनाते अव होता है
 तथा दारुणते अत्रुद्वय अच्यवना स्विकार अनां छात्रु आदिधी वीछी आदिनी उत्पत्तिनी अवचना होती नभी,
 अने ने अद्वैतव है ते पक्ष अच्यवत है दारुण के छात्रु वनेर वीछी अनेरेना अच्यवना उत्पत्तिना दारुणद्वय
 नभी पक्ष तेभना शरीरनी उत्पत्तिना दारुणद्वय है छात्रु आदि रूप दारुण अने वीछी आदिनां
 शरीरद्वय अर्थमं आहस्य (सभानता) है च, दारुण के छात्रु आदिमं रूप, रस आदि पुच्यदीना ने सुत्रु है तेच
 सुत्रु वीछी आदिनां शरीरमं पक्ष होता है अने प्रभावे दारुण अच्यवना आहस्य अनां पक्ष "नेवे" पक्ष'
 अने होता है तेवे उत्तरकव होता है' के सिद्ध मत्त नभी अविच्यवना नभी, पक्ष वेमं पक्ष अत्रु छे-

“श्रृगालो वै एष जायते, यः सपुरीपो दब्यते” यः सपुरीपः विष्ठासहितः दब्यते—भस्मी क्रियते सः—श्रृगालो वै=शृगाल एव जायते—इत्यादि, अतो ‘भवान्तरे जीवस्य वैसादृश्य भवति’ इति सिद्धम् । एवम्=पूर्वोक्तं भीवीर-वचनं श्रुत्वा नष्टमन्देहः=छिन्नसंशयः सोऽपि=सुधर्माऽपि पञ्चतशिल्यैः सह प्रथममीपे प्रवर्तितः ॥५॥सू०११०॥

मूलम्—तए ण उवञ्जायं सुहम्म पवइयं सोऊण मंडिओनि अहुइइसयसीसेहिं परिवुडो पट्टुसमीवें समणु-पत्तो । पट्टुय तं कहेइ—ओ मंडिया ! तुञ्ज मणंसि वंथमोक्खरिसओ संसओ वट्टइ—जं ‘जीवस्स वंथो मोक्खो य हवइ न वा ।’ ‘स एप विणुणो विखुनं वथ्यते संसरति या मुच्यते मोचयति वा’ इच्चाइ वेयवयणाओ जीवस्स न वंथो न मोक्खो । जइ वंथो मन्निजइ ताहे सो अणाइओ वा ? पन्छाजाओ वा ? जए अणाइओ ताहे सो न छुट्टिजइ—जो अणाइओ सो अणंताओ हवइ तिसयणा । जइ पच्छाजाओ ताहे कया जाओ ? कह छुट्टिजइ ? त्ति । त मिच्छा । लोए जीवा अमुहकम्मवंथेण दुहं, सुहकम्मवंथेण सुहं पत्ता दीसंति, सयलकम्म-छेएण जीवो मोक्खं पावइत्ति लोए पसिद्धं । ‘अणावंथो न छुट्टिजइ’ त्ति जं तए कहियं तंपि मिच्छा, जओ लोए सुवणस्स महियाए य जो अणाई संवंथो सो छुट्टिजइ चेव । तवसत्थेसुवि’ वुत्तं—“ममेति वथ्यते जन्तु-निर्ममेति प्रमुच्यते” इच्चाइ । पुणोवि—

“ मन एव मनुष्याणा कारणं, वन्यमोक्षयोः ।
वन्याय विषयासक्त, सुतयै निर्विषयं मनः ” ॥ १ ॥ इच्चाइ ।

अओ सिद्धं जीवस्स वंथो मोक्खो य हवइ ति । एव सोचा त्रिभिन्नो छिन्न संसओ वडिबुद्धो मंडिओ वि अशुद्ध सयसीसेहिं षण्वइओ ।

यह केवल मेरा ही अभिमत नहीं है, किन्तु वेद में भी कहा है—“श्रृगालो वै एष जायते यः सपुरीपो दब्यते” इति । जो मनुष्य विष्ठा सहित जलाया जाता है वह निश्चय ही श्रृगाल रूप में उत्पन्न होता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि भवान्तर में विसदृशता भी होती है । इस प्रकार के श्रीमहावीर के वचन गुनकर सुधर्मा भी छिन्नसंशय हो गये । वह भी अपने पंचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप दीक्षित हो गये ॥प्र०११०॥

“श्रृगालो वै एष जायते यः सपुरीपो दब्यते” ने मनुष्य भग्न सहित अलावाय छे ते चोद्धम शिथण इपे उरपन्न थाय छे तेथी अ सिद्ध थाय छे डे लवान्तरमा विसदृशता पथु डेय छे आ प्रभाणु श्री भड्ढावीरनां वयने । सांलण्ढीने सुधर्माना सशथनु पथु निवारसु थर्ध गथुः तेभण्णे पथु पोतानां पायसो शिष्ये । सहित प्रभु पासे दीक्षा शडथु करी. ॥सू०११०॥

मंदिर्यं पश्य त्रयं साधा मोरिय पुषो वि नियससपछेयणहं अयुहसयसीसेहिं वरिहो पृह समीचे
 पणो । व पि पृह एत्र वंर करैर-नो मोरियपुचा । कुण्डमणसि एयारिसो ससओ वहर-अ देवा न सति
 'को ज्ञानाति मायोपमान गीर्वाणान् इन्द्र यम वरुण कुयेरादीन्' इर वपणाओ । तं मिच्छा वेएवि-"स एए
 यप्रपुपी यप्रमानोऽउसा स्वर्गोळकं गच्छति" इर वरणं निज्जर । अइ देवा न भवेज्जा तारे देवछोगोपि
 न भवेज्जा, एवं सर "स्वर्गोळकं गच्छति" इदं वरणं कइ संगच्छेज्जा । एरणं कहेणं वेवाणं सणा सिज्जर ।
 अण्णउ वाव सत्यवर्णं, पसठ इमाए परिसाए डिए इवार देवे । पञ्चकलं एए देवा दीराति । एवं पणुसस
 वरणं सोपा निताम्भ मोरियपुको छिन्नसंसभो अयुह सयसीसेहिं पन्चइओ । ॥२०१११॥

छाया- तवः तन्नु उपाध्यायं सुधर्मोर्भं मद्रजितं धुर्या मण्डिकोऽपि भद्रैरुचर्यैश्चतस्रिज्यैः परित्तवः मसु
 समीचे समनुभासः । मद्रुध तं कययनि-भो मण्डिक । तत्र मनोस पंभमोसपिययः संखयो वचते, यत्-जीवस्य
 बन्धो मोक्षव यचति न वा ? "स एए विणुणो विमुनें वर्यते संसरति वा सुख्यते मोचयति वा" इत्यादि
 वेदवचनास्त्रीवस्य न बन्धो न मोक्षः । यदि वन्धो मन्यते तदा स भनादिको वा पश्चाज्जातो वा ? यए-
 नादिरुस्यदा स न छुट्येत "योऽनादिकः सोऽनन्तकः" इति वचनात् । यदि पश्चाज्जातरुदा कदा जातः ? कय

मसु का अय- 'वर्णं' इत्यादि । तस्यथात् उपाध्याय सुधर्मां को वीक्षित हुआ मुनकर मण्डिक भी
 सादेवीनतीं चित्त्यों के साथ सागवान के पास गये । भगवान ने मण्डिक से कहा--'हे मण्डिक ! तुम्हारे मन में
 पन्थ और माप के विषय में संशय है-कि कीव को बन्ध और मोक्ष होता है पा नहीं ? ' स एए विणुणो
 विमुनें वर्यते संसरति वा सुख्यते मोचयति वा ' यह निर्णय और व्यापक आत्मा न कह होती है न रांतरण
 करती है, न मुक्त होती है न किसी को मुक्त करती है । इत्यादि वेदवाक्य से न जीव का बन्ध होता है,
 न मोक्ष होता है । यदि बन्ध माना जाय तो वह अनादि है मयका पीछे से उत्पन्न हुआ है ? अगर अनादि

भूजनेा कर्ष 'वचर्णं' प्रियादि सुधर्मां नाशना उपेध्यायने जणुभार वधेक्ष सांभणो, अदिठ नाभनेा विद्वान
 ध्याक्यु पन्थ आदानवसेा शिष्येना पस्तिार धाई, भगवान् सुभीष गये। तेने अजिाधी वान इवां, भगवान् वाक्या
 है दे अदिठ । सु तारा भवतां अय भने शोक्ष स अन्धी यथा छे ? एव ने अंध शोक्ष छेय है नदि । अा
 निर्जुंयुं अने अ्यापथ आत्मा जघतेा नधी क वारभां इरतेा नधी तेभए युक्त पण डेतो। नधी अने डेतने युक्त
 करी पवु यजेता नधी। तारा वेदवाक्यभां " स एए विणुणो विमुनें वर्यते संसरति वा सुख्यते मोचयति वा"
 अा प्रभावे उ गडे छे है एवनेा शोक्ष है अय छेतो अ नधी तारा भत जेवा छे है अने अन्ध भानवाभा

छुटयत इति, लोके जीवा अशुभकर्मवन्धनेन दुःखं, शुभकर्मवन्धनेन सुखं प्राप्ता इत्यन्ते, सकलकर्मवन्धनेन जीवो मोक्षं प्राप्नोतीति प्रसिद्धम् । अनादिवन्धो न छुटयते, इति वचन्या कथितं तदपि भिद्य्या । यतो लोके स्वर्णस्य मृत्तिकायाश्च योऽनादिः सम्बन्धः स छुटयत एव । तत्र शास्त्रेऽप्युक्तम्—“ममेति वध्यते जन्तु-निर्ममेति प्रमुच्यते ॥” इत्यादि । पुनरपि—

“मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।

बन्धाय विषयासक्तं, मुक्त्यै निर्विषयं मनः” ॥ १ ॥ इत्यादि ।

अतः सिद्धं जीवस्य बन्धो मोक्षश्च भवतीति । एवं श्रुत्वा विस्मितश्चिन्तनसंग्रहः प्रतिबुद्धो मण्डिकोपि अर्द्ध-है तो वह कभी छूटना नहीं चाहीये, क्यों कि यह कहा गया है कि ‘जो अनादि होता है, वह अनन्त होता है।’ अगर बाद में उत्पन्न हुआ तो कब उत्पन्न हुआ? और कैसे छूटता है? यह मत मिथ्या है, क्यों कि लोक में जीव अशुभ कर्म-बंध से दुःख को और शुभ कर्म-बंध से सुख को प्राप्त करते देखे जाते हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि समस्त कर्मों का नाश होने से जीव मोक्ष प्राप्त करता है ।

अनादि बंध छूटता नहीं, ऐसा हमने कहा सो भी मिथ्या है, क्यों कि लोक में स्वर्ण और मृत्तिका का जो अनादि संबंध है, वह छूटता ही है । “ममेति वध्यते जन्तुर्निर्ममेति प्रमुच्यते” इति । अर्थात्—“ममत्व के कारण जीव को बन्धन होता है और ममता से रहित जीव मोक्ष पाता है” इत्यादि और भी कहा है—

“मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयोः ।

बन्धाय विषयासक्तं, मुक्त्यै निर्विषयं मनः” ॥ १ ॥

आये तो आ ‘बन्ध’ने अनादि मानवे पड़े, तो तेना अंत छोड़ शक्ये नहिं करण्यु के ले गामत अनादि होय, ते अनन्त होवनी लेईको. अगर एवनेना बंध आदिवाणे भाने। तो, थ्यारे बंधनी उत्पत्ति थई? तेमज ते थ्यारे अने डेवी रीते छटी शक्ये? छपर प्रभाबेने। तारे। मत प्रवर्ती रह्यो छे परंतु ते मत मिथ्या छे. करण्यु के संसारमां ले सुभ होयवे छे ते शुभ कर्मने। बंध छे; अने इ.थ होगवे छे, ते पाप कर्म (अशुभ)ने। बंध छे, अने आ समस्त शुभाशुभ कर्मने। नाश थता, एव सुकृत थाय छे. ने मोक्षनी प्राप्ति करे छे. ते कछुं के, अनादिबंध छूटे नहिं, ते पण्यु भेदु छे. करण्यु के आ जगतमां. कंधन अने भाटीने। संयोग अनादिने छे, छता ते छटी गथ छे; तो ‘कर्म’ पण्यु जंड इंधनी सूक्ष्म रण छे, भाटे ते पण्यु छूटुं थवुं लेईको. भूणभूत वात जे छे के “ममेति वध्यते जन्तु निर्ममेति प्रमुच्यते” एवना। ममत्व लावने बीधे बंध थाय छे; अने ममत्व लाव छूटतां एवने। मोक्ष थाय छे. इरी पण्यु कछुं छे—

मण्डिक पत्रान्वितं शुल्वा मौर्यपुत्रोऽपि निनसशयच्छेदनायस्य-भ्रष्टं बहुयुद्धतथिव्यैः परिहृतः प्रमुसमीपे प्राप्त ।
तमपि मष्टीकमेव कल्पयति-मो मौर्यपुत्र । तत्र मनसि एषाहृष्ट संशयो वसति यत् देवान न सन्ति-“को जानाति
मायोपमान् गीर्षीगान् इन्द्र-यम-रक्ष्य-कुबेरादीन्” इति वचनात् । तन्मिथ्या । वदन्ति-“स एष यज्ञपुत्री यत्र
मानोऽञ्जसा स्वर्गलोके गच्छति” इति वचनं विद्यत । यदि देवान न मवेयुस्तदा देवलोकोऽपि न भवेत् ।

मर्षान्-“मन ही मनुष्यों के बन्व और मोक्ष का कारण है । विषयों में आसक्त मन बच का और
विषयों से निवृत्त मन मुक्ति का कारण होता है” इत्यादि । इस स जीव को बच और मोक्ष होता है, यह
भिद्द हुआ । इस प्रकार सुनकर मण्डिक बह्नि हुए । उनका सन्नय दूर हो गया । उन्हें प्रतिबोध प्राप्त हुआ ।
हे मी सादेडीनसौ शिव्यों सहित दीसित हो गय ।

मण्डिक को दीक्षीत हुए सुनकर मौर्यपुत्र मी मसना सन्नय निवारण करने के लिए सांटे दीनसौ शिव्यों के
परिचार सहित मष्ट के पास आया । मसुने उनसे मी ऐसा कहा-हे मौर्यपुत्र ! तुम्हारे मन में ऐसा सन्देह है
कि केच नहीं है क्यों कि-“को जानाति मायोपमान् गीर्षीगान्” मर्षान्-‘माया के समान इन्द्र, यम, वरुण
और इन्द्र आदि देवों का कौन जानता है?’ ऐसा कहा गया है ।

तुम्हारा यह विचार मिथ्या है । वद में मी यह शाय है-‘स एष यज्ञपुत्री यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं

“मन एव मनुष्याणां, कारणं वन्यमोक्षयो ।

इ-शाय निरपासक्त, मुक्तये निरिपयं मन ” ॥ १ ॥ इति ।

आ जय जने शोकन्य भासकुव ‘भन’ छे विषयोभां जे ‘भन’ आसक्ति शये तो ‘भन’ जय उरे छे, जने
वे विषयोभी निवृत्त रहे छे तो अजिने यारे छे ज्यभी लवने जय जने शोक्ष छे ते आधीत यथ छे

ज्यम साधनी भक्ति वाञ्छन यथे. तेना जम ज्यभी अथे. ते प्रतिबोध यामता साधनयसो शिष्यो साथे
कीकृत यथे. भक्तिने प्रतिबोध यामथे जेई मौर्यपुत्र पय्य येताना साधनयसो शिष्योना परिचार साथे यजान्य
निवाशन ज्ये’ प्रभु पसे अथे. प्रभुने बप तेने एलय है “हे मौर्यपुत्र ! तमाश दिवभां ज्येरी यथा छे हे ‘वृ’
नभी नये देवाने (अन्द्र यम, वरुण, इन्द्रेर विजिरेने) आधानी आने छे ते यात जशान छे ने ? परतु आ जातेने
तभने सदेह छे ते जस्यने छे वे-वाडय पय्य हहे छे है “स एष यज्ञपुत्री यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति”

एवं सति “स्वर्गलोकं गच्छति” इ; वचनं कथं संगच्छेत ? । एतेन वाक्येन देवानां सत्ता सिध्यति । तिष्ठतु तावच्छास्त्रवचन, पश्यतु अस्यां परिपदि स्थितान् इन्द्रादिदेवान् । प्रत्यक्षमेते देवा दृश्यन्ते । एवं प्रभोर्वचनं श्रुत्वा=निशम्य मौर्यपुत्रः छिन्नसंशयोऽर्द्धचतुर्थशतशिल्पे प्रव्रजितः ॥सू०११॥

टीका—‘तए णं उचञ्जायं सुहम्मं’ इत्यादि । ततः खलु उपाध्यायं सुधर्माणं प्रव्रजितं श्रुत्वा मण्डिकोऽपि अर्धचतुर्थशतशिल्पैः=सार्द्धनिशतशिल्पैः परिवेष्टितः प्रभुसमीपे समनुप्राप्तः । प्रभुश्च तं=मण्डिकं कथयति, तथाहि—भो मण्डिक ! तव मनसि वन्धमोक्षविषयः संशयो वर्तते—संशयस्वरूपमाह—यदित्यादिना, यत्-जीवस्य वन्धो

गच्छति’ अर्थात्—यज्ञरूप आयुध (सस्त्र)वाला यज्ञकर्त्ता शीघ्र ही स्वर्गलोक में जाता है।’ यदि देव न होते तो देवलोक भी न होता ! ऐसी स्थिति में स्वर्ग लोकमें जाता है’ यह कथन कैसे संगत हो सकता है ? इस वाक्य से देवों की सत्ता सिद्ध होती है । परन्तु शास्त्र के वाक्य को रहने दो, इसी परिपद् में स्थित इन्द्र आदि देवों को देख लो । यह देव प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहे हैं । प्रभु के इस प्रकार वचन सुनकर और समझकर मौर्यपुत्र भी छिन्न संशय होकर साढे तीनसौ शिल्पों के साथ दीक्षित हो गये ॥११॥

टोका का अर्थ—तपश्चात् उपाध्याय सुधर्मा को प्रव्रजित हुआ सुनकर मण्डिक भी साढे तीनसौ शिल्पों के परिचार के साथ भगवान् के समीप पहुँचे । भगवान् ने मण्डिक से कहा—हे मण्डिक ! तुम्हारे मनमें वन्ध-मोक्ष-विषयक संशय है । उस संशयका स्वरूप बतलाते हैं—जीव का बंध और मोक्ष होता है या नहीं ? तुम्हारे इस

यस्यैव आयुधवाणा, यश्चकृती शीघ्रपण्डे स्वर्गमां न्य छे ने तमोरा कडेवा सुब्ध देव न छाय तो देवलोक पण्डु न छोयो नेछ्यो, तो आ ‘स्वर्ग’ इपी कथन ने वेह-वाक्यमां कडेवामां आयुं छे ते तमारा कथन साथे डेवी रीते गधयेसतु छे ? आ वेह-वाक्यथी न सिद्ध थाथ छे डे देवो छे अने देवोनी सत्ता पण्डु छे. शास्त्रनी वातने तमे अक्षयु न करे तो पण्डु आ यस्मिद्दमां ने देवो साक्षात् गेह छे तेने नेछ् द्यो. प्रभुनुं आयुं वचन साभणी मौर्यपुत्र पण्डु संशय न्दित थयो ने साडात्रणुसो शिण्यो साथे तेण्डे पण्डु अनन्त्या अंगीकार करी (सू०१११)

विशेषार्थ—‘सुधर्मा’ नेवा विद्वान् उपाध्याय पण्डु लगवानती वार्त्ताथी यदित थथा अम न्णुवाथी मण्डिक पण्डु येताना साडात्रणुसो शिण्योना समूह साथे लगवान तरइ न्वा स्वाना थयो. लगवाने तेना मननी सपाटी पर तरता भावने नेछ् दीधा, ने ते भावोमा गध-मोक्ष इपी शक्यो उठती इती ते तेमण्डे न्णु छे दीधी. लगवाने ते शक्योने आगण करी मण्डिकने कहुं डे तने एवना गध अने मोक्षनी श्रेणी भेटी लागे छे ? ने तुं गध अने

सोऽनन्तकः, यः=पदार्थः अनादिकः=आदि रहितो भवति सः अनन्तकः-अन्तरहितः-नित्योऽपि भवति, इति वचनात् । एवं च नित्यस्य सदास्थायित्वात् अनादिको जीवन्धो न छिद्येतेति पर्यवसितम् । अथ द्वितीयविकल्पितं खण्डयितुमाह-‘यदि पश्चाज्जातः’ इत्यादिना-यदि पश्चात् जीवस्य वन्धो जातः तदा=पश्चाद्वन्धविकल्पात् कदा=कस्मिन् काले सजातः? कथ-केन प्रकारेण च स लुटयते? छिद्यते? अत्र नास्ति किमपि प्रत्युत्तरे। अतो जीवस्य नास्ति वन्धो न चापि मोक्ष इति पर्यवसितम् । इदं यत्तव मतं तन्मिथ्या। यतो चोक्ते जीवाः अशुभकर्म-बन्धनेन तत्कर्मजनित दुःखं प्राप्ता दृश्यन्ते’ इति परेण सम्बन्धते, एवं शुभकर्मबन्धनेन जीवाः सुखं प्राप्ताः दृश्यन्ते । तथा सकलकर्मछेदेन-कर्मफलापस्य ध्यानानलेन भस्मसात्करणेन जीवः सुखदुःखनिबिचीभूत-शुभाशुभकर्मकृतवन्धनाभावात् मोक्ष=मुक्तिं प्राप्नोति इति प्रसिद्धम् । तथा-‘अनादिवन्धो न

क्यों कि जो पदार्थ आदि-रहित होता है, वह अन्तरहित भी होता है। इस तरह जो नित्य होता है वह सदैव बना रहता है, अतएव अनादिकालीन जीव का बंध नष्ट नहीं होना चाहिए। अब दूसरे विकल्प का खंडन करने के लिए कहते हैं-अगर जीव का बंध पश्चात् उत्पन्न हुआ है तो वह किस समय हुआ? और किस प्रकार लुटता है? इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं है। अत एव सिद्ध हुआ कि जीव का बंध और मोक्ष नहीं होता।

यह जो तुम्हारा मत है सो मिथ्या है, क्यों कि लोक में प्रसिद्ध है कि जीव अशुभ कर्म-बंधन के कारण, उस कर्मजनित दुःख के भागी देखे जाते हैं, और शुभकर्म बंध के कारण जीव सुख के भागी देखे जाते हैं। तथा ध्यान रूपी अग्नि से समस्त कर्म समूह को भस्म कर देने के कारण, जीव सुख और दुःख के कारणभूत शुभ एवं अशुभ कर्मों से होनेवाले बंध का अभाव होने से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

अर्थात्—येक राक छे अने येक राज छे अने शण्ठथी नीचपणुं, उंचपणुं, कुइपणुं, सुरपणुं अमे धणुं विचित्रपणुं छे, अने ओयो ने लेह रछे छे ते-सर्वं सभानता नथी, तेज शुभाशुभ कर्मनो अंध छे, अमे सिद्ध थाम छे, केम के आन्धु विना आर्थनी उत्पत्ति थती नथो. शुभ कर्म करे तो तेथी देवादि गतिभा तेजुं शुभ क्षण लोअये. अने अशुभ कर्म करे तो नरकादि गतिने विधे तेजु अशुभ क्षण लोअये. तने कर्मनो अंध सभनन्थो. छेवे ते अंधना विरोधी स्वभावने मोक्ष कछे छे. ने ने कारणो वडे अंध थाय छे ते ते कारणोने छेदवाथी मोक्ष मार्ग आवी भणे छे अने लवनेो अंत आवी न्थ छे. कर्मना अंधनमां रागद्वेष अने अज्ञान याथाइये छे. आ त्रणुं अेकत्व अे कर्मनी गाठ छे आ त्रणु विना कर्मनो अंध थाय न नछि; अने आ त्रणुथी निवृत्ति करवी ते ‘मोक्ष’ कछेवाय.

छुटपणे' इति यवया कथितं, तदपि मिथ्या ! यत् लोके सुवर्णस्य मृषिकायाश्च परस्परं योजनादिः=प्रवाहा
 पेतयाज्जादिकावागतः सम्बन्धो भवति, स छुटपणे एव । एतन्मेष जीवस्यापि अनादिबन्धो निस्संशय छुटपणे
 इति बोध्यम् । अत्र विषये तु बहुशुद्धयुक्तमस्ति- 'ममति बध्यते जन्तुः' इत्यादि । अथ मावाः-जन्तुः मम=
 मदीयम् एतत्पुत्रदारादिकम् इति स्वीकुर्वन् सन् ममता रन्वा बध्यते=बन्धं याति, पुन स जीव निर्ममेति-
 'मम पुत्रदारादिकं नास्तीति ममत्वमकुर्वन् प्रसूयते इति । इतोऽन्यदपि तुव आत्त बन्धमोक्षपरं प्रभूतं बचन
 मस्ति । तदेव दर्शयितुमाह- 'पुनरपि' इत्यादि । पुनरपि तुव आत्ते मोक्तं- 'मन एव मनुज्याणाम्' इत्यादि ।
 मनुज्याणां-बन्ध-मोक्षयोः, कारण-मन एव=अन्तःकरणविशेष एव, न तु तदन्यः कोऽपि पदार्थस्तयोः कारण
 मस्ति । तत्र विषयासक्तं मनः नीवस्य बन्धाय-चतुर्गोत्रिकसत्सारापरिभ्रमणाय भवति । तथा-निर्विययम्=इन्द्रिय
 विषयासक्तिरहित मनस्तु सुषुप्ते=नीवस्य मोक्षाय-मन्त्रभ्रमणरिभ्रमणाय भवतीत्यादि । भवतो जीवस्य बन्धो मोक्षश्च
 भवतीति सिद्धम् । एवं श्रुत्वा त्रिस्मित-छिन्नश्रयः सन् मतिपुदो भूत्वा मच्छिकोपि भ्र्द्वचतुयंश्रुतसिद्धैः सह प्रयत्नितः ।
 ननु-प्रसिद्धिमुक्त्वा कर्म संबन्धादस्य को विशेषः ? उच्यते-स कर्मसत्ता गोचरः, अयं तु तस्मिन् सत्यपि
 जीवकर्मसंयोग गोचरोऽस्तीति विशेषो शावक्यः ।

तुमने कहा कि अनादि बंध प्रकृता नहीं है, तो भी मिथ्या है । लोक में सोने और मीठी का परस्पर
 जो मत्वाही प्रपेसा से अनादिकालीन संबंध है, वह छूट ही जाता है । इसी प्रकार नीव का भी कर्मों के
 साथ का अनादि सम्बन्ध आत्मपदेन छूट जाता है । इस विषय में तुम्हारे आश में भी कहा है-जब जीव
 'यह पुष्कलत्र आदि मेरे हैं' ऐसा मानते हैं तो ममता ही रस्सी से बँपता है और जब जीव यह समझ
 लेता है कि 'पुत्र कलत्र आदि मेरे नहीं हैं' तो ममत्व से रहित होकर मुक्त होता है । इसके अतिरिक्त भी
 बंध-मोक्ष का समर्थन करानेवाले बहुत से बचन तुम्हारे आश में विद्यमान हैं । कहा भी है- 'मनुज्यों के बंध
 और मोक्ष का कारण मन ही है, मन के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है । विषयों में आसक्त मन चार
 गति रूप संसार भ्रमण का कारण होता है । तथा इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति से रहित मन नीव के मोक्ष-
 मन्त्र भ्रमण के मन्त्र का कारण होता है ।' इससे सिद्ध हुआ कि नीव को बंध और मोक्ष होता है ।

भिक्षु केने ? आत्माने । यत् आत्मा जेवा छी ते ते ठके छे हे 'ध्यातु रूप, अनिगधी, कित्त-अभय, स्वभावमय,
 अन्य सर्व बिकल्प अने देहादि अशियोजना आत्मासधो संकट जेवा 'इवण' जेठे शुद्ध आत्मा' भा इत्या आर
 इवभां प्रदीप ते भिक्षु भाले अने भा इथा' आर यव जेठे 'भिक्षु' घये। ठकेवापु,

“मण्डिक मि” इत्यादि । गण्डिकं प्रव्रजितं श्रुत्वा मौर्यपुत्रोऽपि निजसंशयच्छेदनाथम् अद्धचतुशतशतशिल्प्यः= पञ्चाशदुरचशतत्रय-परिमितशिल्प्यैः परिहृतः सन् प्रभुसमीपे प्राप्तः । तमपि प्रभुः एवं-वक्ष्यमाणं वचनं कथयति- भो मौर्यपुत्र । तव मनसि एतादृशः संशयो वर्तते, यत् देवाः न सन्ति, तत्र प्रमाणतयोपन्यस्तं वचनं प्रकटयति-“को जानाति” इत्यादि । मायोपमान्=मायावत् अलीकान् इन्द्र-यम-वरुण-कुबेरादीन् गीर्वाणान्=देवान्

इस प्रकार सुनकर मण्डिक विस्मित हुए । उनका संशय दूर हो गया । वह प्रतिबोध प्राप्त करके अपने साठेतीन सौ शिल्पियोंके साथ दीक्षित हो गये ।

शंका-अग्निभूति द्वारा किये गये कर्म-विषयक संशय से इस संशय में क्या अन्तर है ? समाधान-अग्निभूतिको कर्म के अस्तित्व में ही सन्देह था । पर मण्डिक कर्मका अस्तित्व तो मानते थे किन्तु जीव और कर्म के संयोग के संबंध में शंकित थे । यही दोनों में अन्तर है ।

मण्डिक को दीक्षित हुआ सुनकर मौर्यपुत्र भी अपने संशय का निवारण करने के लिए अपने तीन सौ पचास शिल्पियों के साथ भगवान् के समीप पहुँचे । उन्हें भी भगवान् ने आगे कहे वचन कहे-हे मौर्यपुत्र ! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि देव नहीं है । इस विषय में प्रमाणरूप से प्रयुक्त वचन प्रकट करते हैं-‘माया के समान मिथ्या इन्द्र, यम, वरुण, और कुबेर आदि देवों को कौन देखता है !’ इस कथन से देव नहीं हैं, ऐसा सिद्ध होता है । किन्तु तुम्हारा देवों को स्वीकार न करना मिथ्या है, क्यों कि वेद में भी ऐसा कहा है कि-‘ यह यज्ञ रूपी शस्त्रवाला यजमान-यज्ञकर्त्ता शीघ्र ही स्वर्गलोक में जाता है ।’

लगवाने गंध अने मोक्षनुं कथन, मार्ग अने शुद्धता अे त्रुष्टे अतावता भडिक विस्मित थथे अने प्रव्रन्या अंगिकार करी ते विरक्त भन्यो. तेना साडात्रुष्टो शिल्पोअे पथु तेज मार्ग अडुषु क्यो

शंका-अग्निभूतिनी कर्म स अंधनी अने भडिकनी कर्म-अंध संधनी शंकाअेभा शु करक छे ?

समाधान-अग्निभूतिने तो अुह ‘कर्म’भंज सडेह छतो. तेने मन ‘कर्म’ नेवुं कर्ष छेअ नडि अेभ दागतु. परंतु भडिक ‘कर्म’ना अस्तित्वने स्वीकारतो छतो, पथु एव अने कर्मनो संध थतो लुथे के केभ ? तेनी शंका ते सेवी रह्यो. छतो आ अनेभा आटलुं अंतर छे.

भडिकने प्रव्रलत थथेह जषी भौर्यपुत्र पथु पोतानी शकाना निवारणु अर्थे साडात्रुष्टो शिल्पो साथे उषडथे. भौर्यपुत्रनी शंका ‘देव’नुं अस्तित्व छे के नडि ते आणतनुं छतुं. तेनु कहेवुं छतुं के आ अंधा धन्द्रो-यभ कुशेर वरुथु आदिने केषु जेथा छे ? तेनी शकाना निवारणु अर्थे लगवाने वेद-वाक्यनो हाथडे। टाकी अताअ्यो। ने स्वर्गनी

को जानादि=नस्यशात्मश्चाननविषयी करोति" इति वचनात् देवा न सन्वीति । तन्मिथ्या-तद्-देवामानस्वी
 कारणं तत्र मिथ्या । यतो वेदेऽपि "स एष यथायुधी यजमानोऽङ्गसा स्वर्गलोकं गच्छति" सः एषः-अप्ये
 यथायुधी=यागरूपब्रह्मवान् यजमानः=यज्ञकर्त्ता-अङ्गसा=धीर्न स्वर्गलोकं गच्छति इति-एतद् वचन विपत्ते । यदि
 देवा न मरेयुः तदा देवलोकोऽपि न भवेत् । एवं सति 'स्वर्गलोकं गच्छति' इत्य-एतद् वचन कथं संगच्छेत् ?
 तस्वीकारे तु देवलोकं तस्मैऽपि देवानामपि सिद्धिः पर्यवसिता । इत्युक्त्यागममाणेन देवान् साधयित्वा
 सम्यग् प्रत्यक्षममाणेन तान् साधयति-अच्छत् इत्यादि । भास्वा=विष्णु वायव्यं ब्रह्मवचनम् ; परमहं मवान्
 प्रत्यक्षतोऽस्यां परिपदि स्थितान्=विद्यमानान् इन्द्रादिवेदान इति । एवं यमोर्वचनं युत्वा=सामान्यतः श्रवण
 गोपरीकृत्य, निष्पत्य=उत्तरापोहराम्यां विद्येयवो इति निश्चित्य=योर्न्युपम छिन्नसंशयः सन् अर्द्धवर्णस्यवृत्तित्येः
 सार प्रयनितः ॥सू० १११॥

मूलम्-भोरियपुत्रं पञ्चमं द्युमिं अर्कपिञ्जो चितेर-ओ जो वस्स समीये गओ सो सो पुणो न निव्वसो ।
 सवेसिं ससओ वेण छिओ । सव्वे वि य पव्वइया । मओ अपि गच्छामि ससयं उदेमिचि कट्टु विसय
 सीससइओ पडुसमीये सपओ । तं वुहं मगव वपर-मो मर्कपिया ! तुक्कमणंसि इमो ससओ अस्सि ज
 नेरइया न संति "न इवै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति" इवार वयमओ पि तं मिच्छा । नारया सति वेव,
 न व्व ते एस्व भागच्छंति, नो नं मजुस्सा तस्य गमि उं सक्वति । अरसयमाजिओ से पव्वससणेण पासंति ।
 तव सत्थंमि वि-"नारको वै एण जायते यः यद्रान्मममाति" एयारिस पक्क लम्भइ, ज्ञानारगा न मविज्जा

आर देव न होते तो देवलोक मी न होता । ऐसी स्थिति में 'स्वर्गलोक में जाता है', यह वाक्य कैसे ठीक
 बैठ सकता है ! इस वाक्य को स्वीकार करने पर देवलोक और देवलोक में रहनेवाले देवों की मी सिद्धि हो
 गई । इस प्रकार भाग्य प्रयाण से देवों की सत्ता का सापन करके अब प्रत्यक्ष ममाम् से सापन करते हैं कि
 'आज्ञा सचनों को जाने दो, तुम इस परिपद में बैठे हुए इन्द्र आदि देवों को प्रत्यक्ष देखलो' । इस प्रकार
 मरु के कथन सुनकर तथा ऊहापोह करके विनैरूपसे हृदय में निश्चित कर के मीर्यपुत्र सदेव-रचित हो
 कर साठे तीन सौ शिष्यों सहित वीसीत हो गये ॥सू०-१११॥

दशावी जवावी दीपी ने ने शुभ भट न्ये भम सवधी होम ते सव्वं हव्वेओपु बसाध पव्वन इमार देवअतिमा
 व्वपि उं म्म वेदनी पव्व भजवाने इरी म्मा उपशत तेभनी पस्सिभइमां भावेव्वा देवानी व्वाव्वरी जवावी तेनी य इ
 निरुणं इरी, भाओ ते पव्वान्मा साकाव्वुत्तिसा । शुभ्भ अमुपम आरे इक्षित अउं भजवानो भाआओ निक्कएव वाव्व । (सू० १११)

ताहे 'सुहृन्मभक्त्वगो नारगो होइ' त्ति वक्क कह सगच्छिज्जा ? । अणेण सिद्धं गारगा संति त्ति । एव सोच्चा अकंपिओ वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ ॥८॥

'अकंपिओ वि पव्वइओ' त्ति जाणिय पुण्णापावसंदेहजुओ 'अयल-भाया' इय नामगो पंडिओ वि तिसयसीसेहिं परिखुडो प्हूसमीवे समागओ । त दट्टुणं भगवं एवं वयासी-भो अयल-भाया ! तव हिययंसि र्मो संसओ वट्ठ-जं पुण्णमेव पक्किट्टं संतं पक्किट्टं सुहस्सं हेऊ ? तमेव य अवचीय माणमच्चंत थोवावत्थं संतं दुहस्सहेऊ ? उय तय इरिचं पावं किपि वत्थु अत्थि ? अहया एगमेव उभयरूवं ? उभयंपि संतं तं वा अत्थि ? उय पुरिसा इरिचं अन्नं किपि नत्थि ? जओ वेएसु कहियं 'पुरुप एवेद °U° सर्वं यदभूतं यच्च भाव्यं' इच्चाइ त्ति । तं मिन्छा । इहलोए पुण्णापावफलं पच्चकवं लविग्वज्जइ, एवं ववहारओ वि पत्तिज्जइ-जं पुण्णस्स फलं दीहा उय लच्छी रूवारोणा-सुकुलजम्मइ, पावस्स य तव्वित्रीयं अपा उयाइफलं, इय पुण्णं पावं च संतं तं वियाणाहि 'पुरुप एवेदं इच्चेयम्मि विसए अग्निभूःपण्हे जं मए कहिय तं चेव घुणेयव्वं । तव सिद्धते वि पुण्णं पावं च संतं तत्तणेण गहियं, तं जहा—“पुण्यः पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा” इच्चाइ । अणेण सिद्धं पुण्णं पावं च उभ यमवि संतं तं वत्थु विज्जइ । इय सुणिय छिन्न संसओ अयलभाया वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ । सू० ? ? २॥

छाया—मौर्यपुत्रं प्रव्रजितं श्रुत्वा-अकम्पितः चिन्तयति-यो यस्तस्य समीपे गतः स स पुनर्न निवृत्तः; सर्वेषा संशयस्तेन छिन्नः; सर्वेऽपि च प्रव्रजिता अतोऽहमपि गच्छामि संशयं छेदयामीति कृत्वा त्रिशत-शिष्य-सहितः प्रभुसमीपे संप्राप्तः । तं दृष्ट्वा भगवान् वदति-भो अकम्पित ! तव मनसि अयं संशयोऽस्ति, यत्-नैरयिका

मूल का अर्थ—'मोरियपुत्र' इत्यादि-मौर्यपुत्र को प्रव्रजित हुआ सुनकर अकम्पित ने सोचा-जो जो उनके पास गया सो वापिस न लौटा । उन्हो ने सभी का संशय दूर कर दिया । सभी दीक्षित हो गये । तो मैं भी जाऊँ और अपने संशय का निवारण करूँ ।' इस प्रकार विचार कर तीनसौ शिष्यों के साथ वह महावीरमनु के समीप पहुँचा । अकम्पित को देखकर भगवान् ने कहा-हे अकम्पित ! तुम्हारे मन में यह

भणने। अर्थ—'मोरियपुत्रं' धत्त्वाहि भौरिय युवने अवन्तित थयेद भष्ठी, अकंपिते विचार कयो डे, ने ने तेनी यासे गथा, ते पाछा वणता न नथी तेष्से तो, सर्वना संशय हर कथो. हर थतां तेष्सा दीक्षित थइ, आत्म अधारथा तरइ वणी गया. डे पण्ण भठ' अने मारी शकथोने हर कइ ! आभ विचारी वण्णो शिष्यो साथे ते प्रभु समीपे पडोअथे। पडोअथतां वेत्त न प्रभुओ तेने प्रश्न कथो डे "डे अकंपित ! तारा मनमां स'देइ छे डे नारकीना

न सन्ति "न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति" इत्यादि पथनादिति, तमिथ्या, नारकाः सन्त्येव न पुनस्त्ये
 ज्याऽऽगाच्छन्ति, नो तल्ल मनुष्यास्तमगन्तु इच्छुवन्ति । अविश्वयज्ञानिनस्तान् मस्यसस्त्रेन पश्यन्ति । तत्र
 श्राद्धेऽपि—"नारको वै एष जायते यः शूद्रान्ममभाति" एतादृश वाक्य सम्यक्ते । यदि नारका न मवेयुस्तथा
 'शूद्रान्ममशको नारको मभवि' इति वाक्यं कथं संगच्छेत ? अनेन सिद्ध 'नारकाः सन्ती' ति । एवं श्रुत्वा
 अक्षमिणोऽपि विश्वतश्चिन्त्यैः प्रव्रजिताः ।

'अक्षमिणोऽपि प्रव्रजिताः' इति ज्ञात्वा पुण्यापसन्देयश्रुतोऽवलघ्नोऽपि नामकः पाण्डितोऽपि विश्वतश्चिन्त्यैः
 परिहृतः मनुसमीपे समागतः । उ इष्टा मगनामेवमभादिव-मो अवलघ्नः तत्र इत्येज्यं संशयो वसंते यत्-
 सन्देह इ किं नारक जीव नहीं है, क्यों कि श्राद्ध में कहा है- 'न ह वै प्रेत्य नरके नारकाःसन्ति' इति ।
 अर्थात्-परमव में, नरकमें नारक नहीं है ।' उन्वारा यह मत मिथ्या है । नारक तो हैं ही, किन्तु वे यहीं आते
 नहीं हैं और न मनुष्य ही वीं जा सकते हैं । फिर मी लोकोचरजानी उन्हें मत्पस रूपसे देखते हैं ।
 दुम्भारे ज्ञान में मी ऐसा वाक्य देला है कि नारको वै एष जायते यः शूद्रान्ममनासि' इति अर्थात्-
 मो शूद्र का अन्न खाता है, वह नारकरूप में उत्पन्न होता है । अगर नारक न होते तो 'शूद्र का अन्न खाने
 वाला नारक होता है, यह कैसे संगत होता ? इससे नारको का अस्तित्व सिद्ध होता है । इस प्रकार
 मुक्तकर अक्षमिण मी तीनसौ शिष्यों के साथ मनु के पास गये । उन्हें देखकर मगवान ने ऐसा कहा है

'अक्षमिण मी दीनसौ हो गये' यह जान कर पुण्य-गण के विषय में सन्देह रहनेवाले अवलघ्नाना
 नामक पण्डित मी दीनसौ शिष्यों के साथ मनु के पास गये । उन्हें देखकर मगवान ने ऐसा कहा है
 लवे। उद्ये हे ठेय ? श्रावण हे वारा श्राद्धमें जेवु पाश्च छे हे- "न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति" ।
 परमवमथं नरभमं नाश्च नश्चि" आ वारु अतन्न मिथ्या छे नाशरी छे । पशु तेजा अर्धी आवदा नश्चि; तेमल
 भयंन पशु त्वा क्थं अन्ते नश्चि ते। तत्र शोकेचर पुल्ये तेभने अत्तकपवे जेध वषा छे तथ्यास श्राद्धमं जेवु
 वाश्च पशु जेवमं अये छे के, "नारको वै एष जायते यः शूद्रान्ममभाति" इति, अशोच-ने यद्दुःख अन्न पाय
 छे, ते नारशीपवे क्लेश्य थाव छे" जे नाशरीना लवे न होव, ते आ वाश्चनी अत्तक ठेवी गीते यद्दुःखे ? आटे सिद्ध थाव
 छे के, नारशीना लवेऽपि अस्तित्व छे आउ यक्षणी, अक्षपित पशु येताना त्रयसे शिष्यो आश्चि अक्षुण्णार शये
 आक्षपितनी दीक्षा सधर्णी, पुण्य-पापमं बरेके साधवावे। अक्षणाथावा नाभने। पंडित पशु त्रयसे शिष्यो
 आश्चि अशुनी पासे अये। तेने जेधं सवयते अक्ष इमी हे । हे अक्षणाथावा । वारा भनमं जेनी भा-य-नी यद्दु अक्ष

पुण्यमेव प्रकृष्ट सत् प्रकृष्टसुखस्य हेतुः, तदेव चाऽप्यचीयमानमत्यन्तस्तोकावस्थं सत् दुःखस्य हेतुः ? उत तद-
 त्तिरिक्तं पापं किमपि वस्तु अस्ति ? अथवा एकमेवोभयरूपम् ? उभयमपि स्वतन्त्रं वाऽस्ति ? उत पुरुषातिरिक्तं
 किमपि नास्ति, यतो वेदेषु कथितं “ पुरुष एवेदं °U° सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं ” इत्यादीति, तन्मिथ्या ।
 इह लोके पुण्य-पापफलं प्रत्यक्षं लक्ष्यते । एवं व्यवहारतोऽपि प्रतीयते-यत् पुण्यस्य फलम् दीर्घायुष्क-लक्ष्मी-
 रूपा-ऽऽरोग्य-सुकुलजन्मादि, पापस्य च तद्विपरीतमल्पायुष्कादि फलम्, इति पुण्य पापं च स्वतन्त्रं विजानीहि,
 ‘पुरुष एवेदं’ मित्येतास्मिन् विषये अग्निभूतिप्रश्ने यन्मया कथितं तदेव ज्ञातव्यम् । तत्र सिद्धान्तोऽपि पुण्यं पापं

अवलम्बता ! तुम्हारे हृदय में ऐसा सन्देह है कि पूण्य ही जब प्रकर्ष को प्राप्त होता है तो प्रकृष्ट सुख का हेतु
 हो जाता है और जब वही अपकर्ष को प्राप्त होकर अत्यन्त अल्प होता है तो दुःख का कारण बनजाता है,
 अथवा पुण्य में भिन्न पाप कोई अलग वस्तु है ? अथवा एक ही वस्तु उभयरूप है ? या दोनों स्वतंत्र है ?
 या पुरुष (आत्मा) के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ? क्यों कि वेदों में कहा है-‘ पुरुष एवेदं °U° सर्वं
 यद्भूतं यच्च भाव्यम् ’-इति । अर्थात्-‘ यह सब पुरुष ही है जो ही हुआ है, और जो होगा ।’ इत्यादि ।

तुम्हारा यह सशय निराधार है । इस लोके में पुण्य और पाप का फल प्रत्यक्ष दिग्विई दे रहा है । इसके
 अनिर्दिक्त व्यवहार से भी प्रतीत होता है कि दीर्घ आयु, लक्ष्मी, सुन्दर रूप, आरोग्य, सुकुल में जन्म आदि
 पुण्य का फल है, और पाप का फल इससे विपरीत अल्पायु आदि है । इस लिए पुण्य और पाप को स्वतंत्र
 समझो । ‘यह सब पुरुष ही है’ इस विषय में अग्निभूति के प्रश्न के उत्तर में मैंने जो कहा है, वही यहाँ

छं के, ज्यारे पुष्ट धातु वधी नय, त्यारे धलुं सुभ आवी भणे छं, कोटवे धणु। सुभना हेतुइय भने छे. अने
 न्याः धटतु नय ने अल्प थर्ध नय, त्यारे ते पुष्टय, पापतुं कारणु अनी नय छे ? आ उपरात शुं तुं कोभ पथ
 मानी रथो छे के, पाप नेवु केछं तत्त पुष्टयथी निराणु नथी, अथवा आ कोक तत्त अने इय छे ? तेभज अंन्ने
 अलन-अलन छं ? आथी वणी आगण वधी तु कोभ मानी रथो छे के आ जगतमा ‘आत्मा’ सिवाय भीनि केछ
 पदार्थ नथी ? कारणु के वेहवाक्य कोभ के छे के आ जगत केवण प्रहमभय छे, प्रहमभय कतुं ने प्रहमभय रथेथे ?
 तेने पथु तु कोभ ज गाने छे ? केभ कोभ ज ने ? तारा आचा प्रकारना तभाम अलिप्रयो निराधार छे. आलोकिमां
 पुष्ट-पापना इणे प्रत्यक्ष हेभाय छे आ सिवाय थवइकारमा पथु हेभाय छे के दीर्घआयु, लक्ष्मी, सुंदर इय,
 आरोग्य, सारा कुलमा जन्म आदि पुष्टयना इण छे. अने आनाथी विपरीतावाणुं अल्प आयु विगेरे पापाना
 इणइय छे, माटे पुष्टय अने पापने स्वतंत्र समजवा जेछंको. समस्त जगत ‘आत्मभय छे’ को विषयमां अग्निभूतिना
 प्रश्नः ने उत्तर देवाये। इतो ते उत्तरथी समजथु करी लेवी. तभारा सिद्धांतमां पथु पुष्टय अने पापने स्वतंत्रपथे

व म्पुण्यत्वेन शरीरं, तपसा—“पुण्यः पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा” इत्यादि। अनेन सिद्ध-पुण्यं पापं च उभयमपि स्वतन्त्र वस्तु विद्यते। इति श्रुत्या विभ्रमसंशयोऽवलघाटाऽपि विश्रुतश्चित्यैः प्रवर्जितः। म्पु० ११२॥

टीका—“मोरियुषुषं पंचायथं” इत्यादि। मोर्युषुषं प्रवर्जितं श्रुत्या अकर्मितः—अकर्मितनामा पवित्रः चिन्तयति। तथाहि—यो यस्तस्य समीपे गतः स सः पुनस्त्वतो न निवृत्तः—न पराश्रयाऽऽगतः। सर्वेषां संशयः येन छिन्नः—दूरीकृतः, सर्वेऽपि च तस्याभ्यं प्रयत्निताः। अतोऽहमपि गच्छामि, स्वकीय संशयं छेद्यामि, इति कृत्या—एतद् विषयं विश्रुतश्चित्यसहितः प्रशुसमीपे सम्प्राप्तः। तम् दृष्ट्वा मगवान् वदति—मो अकर्मितः! न इ वै प्रेष्य नारकाः सन्ति’ प्रेत्य—परमये नरके—निरये नारकाः—नैरपिका नरकोत्पन्ना भीषा न वै—नैव

समस्त छेना चाहिण। तुम्हारे सिद्धान्त में भी पुण्य और पाप को स्वतंत्ररूप में ही अंगीकार किया है। जैसे—‘पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः पापेन कर्मणा’ इति। अर्थात्—‘पुण्यकर्मसे पुण्यवान् होता है’ और पापकर्मसे पापवान् होता है इत्यादि। इस से सिद्ध है कि पुण्य और पाप—दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं। यह सुनकर अचलघाता का संशय भी छिन्न हो गया। वह अपने तीनसौ शिष्यों के साथ वीसित हो गये। म्पु० ११२॥

टीका का अर्थ—मोर्युषुष को वीसित हुआ मुनकर अकर्मित नामक पवित्र विचार करने लगे—मो जो भी महावीर क पास गया, वह वह लौटकर वापिस नहीं आया। तुम्होंने सभी के संशय का निवारण कर दिया और सभी उनके समीप वीसित हो गये। तो मैं भी क्यों न जाऊँ और अपने संशय का निवारण करूँ? इस तरह विचार कर अकर्मित पवित्र मगवान् के पास अपने तीनसौ शिष्यों के परिचार को साथ लेकर पहुँचे। उन्हें बेलकर मगवान् ने कहा—वै अकर्मित! ‘परमभ में, नरक में नारक—नरकनीच नहीं हैं। इस

अभीष्टार करवार्थ आना है। नेम है—‘पुण्य पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा’ जो—वै उक्त कर्मधी युपपदान वदथ छि अने भाषकर्मधी पापवन वनाथ छि आधी सिद्ध थाथ छि छे पुण्य अने पाप अने स्वतंत्र पदार्थ छि आणु साधनी अकर्मणाताना कथाथ छिवाथ अथे अने ते पण्य येताना तनुयेथे शिष्ये आथे वीसित थथे। (म्पु० ११२)

मोर्युषुष निदेशने विभावार्थं प्रवृत्ता अथे आवातां अकर्मिता मनोभावो पण्य वदवाथ तेना आत्मा पण्य कर्मणी छिअरे। नारकीना अथे छि के नकि तवी अठा सेवते ते अजवान् पासे आनी पछोअथे। अजवान् तेने अमनअन्तु के नारकीना अथे आधी आनी अकता नथी। भाषणु है तेवेतुं शरीर जेणु छेअ छि के नरक अकार अथं अकताअ नथी। तेम अ अकि आणु अणु इर छि तेम अ अहीन छि तेकी मानअ नेम त्वा अथं अकतो नथी; तेम अ तेमो पण्य आधी आनी पण्य अकता नथी। आठवा अथा आवाअअन भाउ हैवी अकित जेअरे जण्यार अकि बोधी जेअरे ते तेमन्तार्थं नथी छेअनी।

सन्ति, 'ह' इति वाक्यालङ्कारे। इत्यादि वचनात्-तव मनसि अयं संशयोऽस्ति, यत्- 'नैरयिका न सन्ति' इति। इदं यत् तव मतं-तत् मिथ्या। यतः नारकाः सन्त्येव, किन्तु ते अत्र-अस्मिन् लोके पुनर्न आगच्छन्ति। तत्र-नरके मनुष्याः गन्तुं न शक्नुवन्ति। अतिशयशानिनः तान्-नरकवर्तिनो नारकान्-नरकजीवान् प्रत्यक्षत्वेन-केवलज्ञानालोकेन साक्षात्कारेण पश्यन्ति। तव शास्त्रेऽपि "नारको वै एष जायते यः शूद्रान्ममभ्र्नाति" "यो द्विजः शूद्रान्मम् अभ्र्नाति शुक्ले एषः-असौ शूद्रान्ममभ्र्नात् नारकः-नरकोत्पादी जायते वै-ममत्येव" एतादृक् वाक्यं लभ्यते। यदि नारका न भवेयुः तदा 'शूद्रान्ममभ्र्नात् नारको भवति' इति वाक्यं कथं-केन प्रकारेण संगच्छेत। अनेन 'नारकाः सन्ति' इति मतं सिद्धम्। एवं श्रुत्वा अकम्पितोऽपि त्रिशतसिन्धैः सह प्रव्रजितः। ८।

'अकम्पिओ वि' इत्यादि- 'अकम्पितोऽपि प्रव्रजितः' इति ज्ञात्वा-पुण्यपापसन्देहयुतः-पुण्यपापत्रिपये सन्देहवान् अचलभ्राता-इति नामकः पण्डितोऽपि त्रिशतसिन्धैः परिहृतः सन् प्रभुसमीपे समागतः। तं दृष्ट्वा वेदवाक्य से तुम्हारे मनमें यह संशय है कि नारक नहीं है। लेकिन तुम्हारा यह मत मिथ्या है। नारक तो हैं, पर वे इस लोक में आते नहीं हैं और मनुष्य नरक में (इस शरीर से) नहीं जा सकते। हाँ, अतिशय ज्ञानी नरक के जीवों-नारकों को केवल ज्ञान से प्रत्यक्ष देखते हैं। तुम्हारे शास्त्र में भी ऐसा वाक्य मिलता है कि-"नारको वै एष जायते यः शूद्रान्ममभ्र्नाति" जो ब्राह्मण शूद्र का अन्न खाता है, वह नरक में नारक के रूप में उत्पन्न होता ही है। अगर नारक न होते तो 'शूद्रान्-भोजी नारक होता है' यह वाक्य कैसे संगत होता? इससे सिद्ध है कि नारक जीवों की सत्ता है। ऐसा सुनकर अकम्पित भी तीनसो शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ॥ ८ ॥

अकम्पित भी दीक्षित हो गये, यह जानकर पुण्य-पाप के त्रिपय में सन्देहवाले अचलभ्राता नामक

आ उपरांत तज्यो परमाधर्मी देवोनी अधीनतामा रहेवा छे. तेज्यो पापना छहये, त्यांनी क्षेत्रवेहना उपरात परधर्मीना प्रडादे। सतत अधोधयथ्ये सह्या न करे छे, आथी तेज्यो अर्ही आवी श्रुता नथी; तेम नर भार आडे काध सूरजुं पथ नथी अने परमधर्मीना तंत्र नीचथी धडीअेक पथु अणगा थल थकता नथी. नारकेजुं अस्तित्व छे अेम वेहोतुं पथु कथन छे. " नारको वै एष जायते य. शूद्रान्ममभ्र्नाति " अेटवे ने शूद्रजुं अन्न आय ते नारक थाय छे अगर नारक नर्ही होत ते। आ वाक्य केवी शीते सुसंग अनत ? तेथी सिद्ध थाय छे के नारक छेवोनी सत्ता छे. आवी अपूर्ण वाणीश्री अकम्पित पिण्णी गये। अने चोताना म्शुसे। शिष्यो साथे ते पथु दीक्षित थल गये. १८। अकम्पितजुं प्रमनन सांखणी पुइथ-पाप अे अेक न तत्व छे अेवी भान्धतावाणा अथजभ्राता नामना पंडित

मगवान् एवम् अन्नादीन्—“मो अवलम्बताः! तत्र इत्ये अर्थ संशयो वर्तते यत्—‘पुण्यमेव मनुष्येभ्यः’ अविश्रयित
सत् पशुसुखस्य हेतुः—कारण भवति! तदेव=पुण्यमेव व=तुनः, अन्वीयमानैः—सीयमाणान्, अत एव स्त्रीका
वस्त्रम्=अन्वीयमानान् सत् दुःखस्य हेतुर्भवति! उत आरोहस्ति तद्विरिक्तं=पुण्यमिन्नं किमपि किञ्चित् वस्तु
अस्ति=विषये! अथवा एवमेव=पुण्यपापयोरेकतामेव उभयस्या=पुण्यपापयोभयकम् विषये! यद्वा—उभयमपि द्वय
मपि—पुण्यं पापं च स्वतन्त्रव्यारस्यरानपेक्ष-पुण्यं अस्ति? उत—यद्वा—शुरुपातिरिक्तं=पुरुपापमिन्नं=आत्ममिन्नम्
किमपि=किञ्चिदपि पुण्यपापादि वस्तु नास्ति? यत्—यस्मात्—शुरुपातिरिक्तस्य कस्यापि पदार्थस्य सत्त्वाभावात्तदेतो
वेदेषु कथितम्, तथाहि—‘शुरुपा एवेदः’ सत्रं यद् भूतं यत्र माग्यम्’ यत् इदं=वर्तमानं, यद् भूतं=व्यतीतं,
यत्र भाग्यम् गतिव्यत्, तत्—सर्वं वस्तु पुरुष एव=आत्मेव, न तदतिरिक्तं पुण्यपापादि किमपि वस्तु विद्यते’
इत्यथ ” इत्यादि। इति=इत्थं तत्र मनसि पुण्यपापविषये संशयोऽस्ति। तन्मिथ्या,। यतः—“इलोके=अस्मिन्
माके पुण्य-पापकर्म=दुःखदुःकृतकर्म परिणामः प्रत्यक्षं=साक्षात्कृतस्यै=इत्यते। एष व्यक्तात्तोऽपि प्रतीयते=
द्रागते, यत्—पुण्यस्य फलम्—नीर्पापक-कस्मी-स्या-ऽऽरोगयसुकुल भन्नादि, अय पापस्य च तद्विपरीतम् अस्या-

वन्दित मी भवने तीनसी अवेधासियों सचित मगवान् के पास पहुँचे। उन्हें देखकर मगवान् ने इस प्रकार
कहा—दे अवलम्बता! तुम्हारे अन्तःकरण में यह संशय है कि पुण्य ही अथ पशु (उत्त कौटिका)
होता है तो यह दुःख का कारण होता है और जब यही पुण्य फल जाता है, और अन्त्य राता है तब
इस का कारण बन जाता है! अथवा पाप, पुण्य से भिन्न कुछ स्वतंत्र वस्तु है? अथवा पुण्य अथवा पाप का
कोई एक ही स्वरूप है! या दोनों परस्पर निरपेक्ष स्वतंत्र हैं? अथ च आत्मा के अविरिक पुण्य-पाप
कोई वस्तु नहीं है! क्यों कि वेद में यह कहा गया है कि—‘मो वर्तमान है, जो अतीत में था, और भविष्यत् में
होता यह सब एक (आत्मा) ही है, आत्मा से भिन्न पुण्य-पाप आदि कोई पदार्थ नहीं है।
तुम्हारे मन में ऐसा संशय है किन्तु यह मिथ्या है। इस संसार में पुण्य और पाप का फल प्रत्यक्ष
दिखाई दे रहा है। अतः तब से ही प्रतीत होता है कि पुण्य का फल दीर्घजीवन, सन्तो, समीप्यस्वरूप,
अथवा अवेधासिने आदि कुछ अन्तर्गत फल पशुओं, तेना जित्वांत जेवां हतो हे अन्तरे एवम् एवम् इतिमां
प्रवर्तित एवम् हे त्वारे ते सुखद भाग्य जने छे अने पुण्य वस्तु अथ अन्तर अथ अन्तरे एवम् इतिमां
भाष्य जने छे अन्तरे तारीने अन्तरेभावा जेव इव भावते हतो,
अन्तर्गत तेने प्रत्यक्षदर्शक जलम् अन्तर्गत ते हे एवे सुखमय स्थिति अन्तर्गत रहा छे ते पुण्यमना

शुक्रादि=अल्पाद्युक्तवद्विद्रय-रूपत्व-सरोगतत्व-दुष्कृत्व-जन्ममृत्तिफलम् । इति मायुक्तानां पुण्यपापफलानां
 प्रत्यक्षलक्ष्यमाणत्वेन व्यवहारतश्च प्रतीयमानत्वेन च पुण्यं पापं च विना दीर्घायुष्कृत्वादि स्तोकायुष्करमादिरूप-
 फलानुपपत्त्या पुण्य-पापं च स्वतन्त्रं-परस्परानपेक्षि-पृथक् पृथक् विजानीहि । “पुरुष एवेद’ मित्येतस्मिन् विषये
 अग्निभूतिप्रश्ने यत्-समाधानवचनं कथितम्-तदेवात्रापि ज्ञातव्यम्, तत्र सिद्धान्तैऽपि-पुण्यं पाप चैत्युभयं स्वतन्त्र-

नीरोगता और सख्खल में जन्म आदि है, और पाप का फल इन से उल्टा-अल्पायु, दरिद्रता, कुरूपता, रूणता
 और असख्खल में जन्म आदि हैं। इस प्रकार पुण्य और पाप के फल साक्षात् दिग्वाई देते हैं और व्यव-
 हार से यह प्रतीत होता है कि पुण्य के विना दीर्घायु आदि तथा पाप के विना अल्पायु आदि सुफल और
 दुष्फल नहीं हो सकते, अत एव पुण्य और पाप को पर्याय की अपेक्षा स्वतंत्र-परस्पर निरपेक्ष, पृथक्-
 पृथक् हैं। यही मानना चाहिए। तथा कारण में भेद न हो तो कार्य में भेद नहीं हो सकता। सुम और
 दुःख परस्पर विरुद्ध दो कार्य हैं, अतः उनका कारण भी परस्पर विरुद्ध और अलग-अलग होना चाहिए।
 पुण्य-पाप को अभिन्न मानोगे तो उससे सुख-दुःख रूप दो कार्य नहीं होंगे; अथवा सुखदुःख को भी अभिन्न
 ही मानना पड़ेगा। किन्तु सुख और दुःख को अभिन्न मानना प्रतीत से वाधित है। जैसे दीपक की मदन्ता
 अन्धकार को उत्पन्न नहीं करती उसी प्रकार पुण्य की मदन्ता दुःख को उत्पन्न नहीं कर सकती।

‘यह सब पुरुष ही है’ इत्यादि वाक्य के विषय में जो तुम्हें सन्देह है उसका समाधान अग्निभूति के
 प्रश्न में जो समाधान मैने किया है, वही यहाँ भी समझ लेना। इसके अतिरिक्त तुम्हारे आश्रम में भी पुण्य
 क्षण इपे छि अपने दुःखमय स्थिति आद्य के वधारे ते गधु पापना क्षण इपे छिय छि पुण्य अने पापेनो। उदय
 साथे साथे पशु वस्तते छिय छि अेक आगतमा पुण्यना क्षण इपे सुअने। अनुगत धने। छिय छि, त्पारे साथे साथे श्रील
 आगतमा पापना उदये दुःख वेदते छिय छि. दैमे टके सुणी ग्पते: एव, गैरा-छोकरा तेम न शारीरिक् वेदनाने उदये
 ई अ अनुगतते। माळुम पडे छि. माटे पुण्य-पापनी पयथि, स्वतंत्र, परस्पर निरपेक्ष अने पृथक् पृथक् छिय छि.

जे कारुण्यमा बौद न होव तो, कार्यमां बौद पडतो नथी सुअ अने दुःख अंन्ते परस्पर विरोधी सर्वइपे छे.
 माटे तेना कारुण्यो पशु, परस्पर विरुद्ध होवा जेछि, अेटवे अटा/ अलग होवा जेछि. जे पुण्य पाप अंन्ते
 अेक माने, तो तेना सुअ अने दुःख अने परिणामे। उदाहरणमां छार्थ शक नैछि. माटे ते अशिन्न नशी, पशु
 विन्न छे. हीपकनी भंढता, आंधकार ने उत्पन्न करी शकती नथी, तेम पुण्यनी भंढता दुःखने उत्पन्न करी शकती नथी

रत्न स्त्रीत-स्त्रीकृतम्, तद्यथा-“पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः पापेन कर्मणा” शीघ्रः-पुण्येन शुभकर्मणा पुण्यः-
 पुण्यवान् मरिचि, पापेन-अशुभकर्मणा पापः-पापवान् मरिचि, ‘पुण्यः, पापः’ इत्युभयप्रत्ययवर्धोऽर्थमादित्वात्पु
 प्रत्ययः। येन पुण्यपापद्वययोः स्त्रीवरदेवसि विभोध्यनिम्नत्वाद्युत्सम्। यद्वा-नैविक्रमयोगत्वाद्युत्सम्, तेन पुण्यं
 पापं वेत्सुमर्षं शुभाशुभकर्मणा अपतीत्यर्थः। इत्यादि। अनेन पुण्य पापं वेत्सुमर्षमपि स्मृतन्व वस्तु विद्यते इति
 सिद्धम्। एव मगदती वचनं भुत्वा छिन्नसन्धयः सन् अन्वयघाटासि प्रिश्रवस्त्रियैः सह प्रवर्जितः। ॥४०११२॥

युष्म्-येयको वि नियसंसयजेयबहुं तिसयसीसेरिं पारिबुहो षड् समीचे समागसो। अगर्भं वप्य-
 भो जेयन्वा। तप प्रभंसि इमो संसओ षड्-परकोगो नत्वि। अमो वेपसु करियं-“विद्वानयनपरेतेभ्यो यूतेभ्यः
 समुत्पाय पुनस्तान्येचद्विचिनश्चति न मेस्संज्ञासति” इषार। तं मिच्छा। परकोगो अत्विचेव अन्वाहा नायमेवसस
 वानस मातरकभुदुदपाणे सभा क्त्वं मवे?। तप सिद्धेति वि बुध-“यं यं वासपि स्मरन् मावं त्यनस्यन्ते कछेवत्सु।
 और पाप दोनों को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। कहा है-“पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः पापेन कर्मणा”
 अर्थात्-मीव शुभ कर्म से पुण्यवान् होता है और अशुभ कर्म से पापवान् होता है। ऐसा मानने पर वाक्य का
 कर्षं या दोषा-शुभ कर्म से पुण्य और अशुभ कर्म से पाप होता है।’

इससे यह सिद्ध हुआ कि पुण्य और पाप-दोनों सर्वत्र वस्तुएँ हैं। आशय यह है कि अर्थात् मान में
 कोई भी दो प्रकार्य सर्वथा मिला या सर्वथा अभिन्न नहीं होते, तथापि अवसन्नाता के मामले हुए सर्वथा
 अवेदपस का निरास करने के लिए यहाँ केवल भेद-पस का समर्थन किया गया है। द्रव्य की अपेक्षा दोनों में
 भेद ही है, अनेकान्तवाद के ज्ञाताओं को यह समझना कठिन नहीं। मगवान् के यह वचन सुनकर अन्वय
 प्राणा का संसय छिन्न हो गया। पर भी अपने हीनता सिद्धियों के साथ दीक्षित हो गये ॥४०११२॥

तथाशान्तरमशाशोभं षड् पुनश्च अनेन उपपन्न तत्त्वोने दुर्वा अर्थात् छे. नेभो-“पुण्यः पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन
 कर्मणा” सेटो वरु हावावाणा, पुनश्च उपपन्नं वरे छे अने तेने स्वर्गिभ सुभोनी आप्ति भाव छे, तेम तभास
 वाशोभं निर्दोशन छे अभास भव प्रभावो, केयं पण् वि पयोशो सर्वथा भित्त छे सर्वथा अन्वित ज्ञानां नशी.
 छत्वा, अन्वयकातानो सट्टेके ने सर्वथा अन्वित पण्नेना वते, तेने निर्दोशन कर्मा, अने इरेक प्थाशने न्नेकतिक नदि
 पण् अनेकिक इति न्नेका, अन्वयने अन्वय प्थापी वती।

अप हीते ध्याताने अनेकित्तु एचिनु ज्ञान प्राप्य वतां, अन्वयकाताना नैशव्य ने पाशो, अने स्वयं वक्षित वये।
 २७ (४०११२)

तं तमेवैति कौन्तेय ! सदा तद्भावभावितः” इच्छाह । अथो सिद्धं परलोगो अस्थिति । एवं सोचा निसम्म छिन्नसंसथो मेयज्जीवि तिसयसीसेहिं पवइओ ॥१०॥

तं पवइयं सोचा एगारसमो णंडिओ पभासाभिहोवि तिसयसीससहिओ निससंसायवणयणत्थं पहुसमीवे समणुपत्तो । पहुणा य सो आभट्ठो-भो पभासा ! तव मणंसि इमो संसओ वट्टइ-जं निव्वाणं अस्थि नस्थि वा ? जइ अस्थि किं संसारभावो चेव निव्वाणं ? अह वा दीव सिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं ? जइ संसाराभावो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे ते वेयविरुद्धं भवइ, वेएसु कहिय-“जरामर्थं वै तत्सर्वं यदग्निहोत्रम् ” इति । अणेण जीवस्स संसाराभावो न भवइत्ति । जइ दीव सिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे जीवाभावो पसज्जइत्ति । ते भिच्छा । निव्वाणं ति मोक्खो ति वा एगट्ठा ! मोक्खो उवट्टस्सेव हवइ । जीवो हि कम्मोहिं वट्ठो अओ तस्स पयणविसेसाओ मोक्खो भवइ चेव । अस्स विसए मंडिय पण्हे सव्वं कहियं, तं धारेयव्वं तवसत्थे पि वुत्तं-“द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च । तत्र परं “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” ति । अणेण मोक्खस्स सत्ता सिज्जइ । अओ सिद्धं मोक्खो अस्थि ति । एवं सोचा छिन्नसंसथो पभासोवि तिसयसीसेहिं पवइओ ॥११॥

एत्थ संगहणीगाहादुगं-

जीवेथे कम्मविसए, तज्जीवय तच्छरीरं भूँए य ।

तारिसय जम्मजोणी परे भवे, वंधमुक्खे य ॥ १ ॥

देव नेरइये पुणे, परलोए तह य होइ निव्वाणे ।

एगारसावि संशयच्छेए पत्ता गणहरत्तं ॥ २ ॥इइ॥

को गणहरो कइसंखेहिं सीसेहिं पवइओत्ति-पडिवाइया संगहणी गाहा -

पंचसयो पंचण्हं, दोण्ह चिय होइ सद्धतिसयो य ।

सेसाणं च चउण्हं, निसओ तिसओ हवइ गच्छो ॥ १ ॥

एवं पहुसमीवे सव्वे घोयालसया दिया पवइया ॥मृ०११३॥

॥ इय गणहरवाओ ॥

छाया-मेतार्योऽपि निज संशयच्छेदनार्थं त्रिशतशिष्यैः परित्तः प्रभुसमीपे समागतः । भगवान् तं वदति-
भो मेतार्य ! तव मनसि अयं संशयो वर्त्तते, परलोको नास्ति । यतो वेदेषु कथितम्-“विज्ञानघनएवैतेभ्यो

रत्नेन शरीरं-स्वीकृत्य, तद्यथा-“पुण्यः पुण्येन कर्मणा पाप पापेन कर्मणा” शीघ्र-पुण्येन शुभकर्मणा पुण्य-पुण्यवान् मरति, पापेन-अशुभकर्मणा पाप-पापवान् मरति, ‘पुण्य’, पाप’ इत्युभयप्रमत्तर्थीयोऽर्थमादिस्तावच्च मत्स्य’ । तेन पुण्यपापद्वन्द्वयोः ह्रीवत्केऽपि विशेष्यनिघ्नत्वायुंस्त्वम् । यद्वा-वैदिकप्रयोगत्वायुंस्त्वम्, तेन पुण्य पापं वेत्सुमर्थं शुभाशुभकर्मण्योः मरतीत्यर्थः । इत्यादि । अनेन पुण्य पापं वेत्सुमयमपि स्वतन्त्र वस्तु विपरीते इति सिद्धम् । एवं मगद्वौ बचनं युक्त्वा छिन्नसद्वय’ सन् मन्त्रलघाताऽपि प्रिशतत्रयैः सह मन्त्रजित् । ॥४००११२॥

मूलम्—मेयञ्चो वि नियसंसयद्येणहं विसयसीसेरि पांरुहो पद्म समीरे समागयो । मगदं वय-मो मेयञ्चा । तव मर्णसि इमो ससमो वृद्ध-परलोगो नस्यि । अमो वेपसु करियं-“विश्रानपनएवैभ्यो यूतेभ्यः सधुत्थाप पुनस्तान्वेवावुनितपथि न मेत्यसङ्गासि” इत्यादि । तं निञ्चा । परलोगो मत्येवेव मन्नाप मायमेसस्त बालस्य माउपणदुपाणो सभा करं मये ? । तव सिद्धेरे वि कुष-“यं ये वाऽपि स्माल मां स्पनस्यते कलेवरम् । और पाप दोनीं को सर्वत्र स्वीकार किया गया है । कता है-“पुण्यः पुण्येन कर्मणा. पापः पापेन कर्मणा” मर्णाद-शीघ्र शुभ कर्म से पुण्यवान् होता है और अशुभ कर्म से पापवान् होता है । ऐसा मानने पर वाक्य का अर्थ यह होया-‘शुभ कर्म से पुण्य और अशुभ कर्म से पाप होता है।’

इससे यह सिद्ध हुआ कि पुण्य और पाप-दोनों स्वतंत्र वस्तुएँ हैं । आशय यह है कि आरित मन में कोई भी दो पदार्थ सर्वथा मिला या सर्वथा अमिश्र नहीं होते, तथापि मक्खन्नाटा के मामले हुए सर्वथा अवेदपक्ष का निरास करने के लिए यहाँ केवल भेद-पक्ष का समर्थन किया गया है । द्रव्य की अपेक्षा दोनों में अवेद ही है, अनेकान्वयार्थ के ज्ञाताओं को यह समझना कठिन नहीं । मगद्वार के यह बचन मुनिकर मक्खन्नाटा का संक्षेप छिन्न हो गया । यह भी अनेने तीनसौ शिष्यों के साथ शीघ्रित हो गये ॥४००११२॥

तयारा आश्रम आश्रमों पञ्च पुण्य अने पापना वर्तयेने शुर्वा जपदां छे. नेभडे-“पुण्य, पुण्येन कर्मणा, पाप पापेन कर्मणा” केरुडे बस भवपण्ण, पुण्य उपायन करे छे. अने तेने स्मर्त्तिय सुखेनी प्राप्ति थाव छे, तेभ तयारा आश्रमों निरुंयन छे अथारा भत प्रभावे होउ पञ्च से पदावो. सर्वथा मिला छे सवथा अमिश्र होनां नशी. ७५५, मक्खन्नाटाणे उरुडे ने सर्वथा मक्खे पङ्कणे इत्ये, तेने निर्भुंल भस्व, अने इरेठ पदाधने जेहांति नहु पञ्च अनेके निके छिन्ने जेवथ, सन्वाने अथकञ्च आपी इत्ये

अप शीते यत्तने अनेहांद छिन्ने अंन प्राप्य यतां, अथकथाय वैराज्य ने पावये, अने स्वयं वीक्षित थये. तेनी साथ तेना नक्खेसा सिधेजेने पञ्च बीजा वडन भनी (५०११२)

तं प्रवृजितं श्रुत्वा एकादशः पण्डितः प्रभासाभिधोऽपि त्रिशतशिष्यसहितो निजसंशयापनयनार्थं प्रभु-
 समीपे समनुप्रासः । प्रशुणा च स आमापितः—ओ प्रभास ! तव मनसि अयं संशयो वर्तते, यत्निर्वाणम्
 अस्ति ? नास्ति वा ? यद्यस्ति, किं ससाराभाव एव निर्वाणम् ? अथवा दीपशिखाया इव जीवस्य नाशो निर्वा-
 णम् ? । यदि संसारभावो निर्वाणं मन्यते, तदा तद् वेदविरुद्धं भवति । वेदेषु कथितम्—“जरामर्यं वै तत्सर्वम्
 अग्निहोत्रम्” इति । अनेन जीवस्य ससाराभावो न भवतीति । यदि दीपशिखाया इव जीवस्य नाशो निर्वाणं
 मन्यते, तदा जीवाभावः प्रसज्जते—इति । तन्मिथ्या । निर्वाणमिति मोक्ष इति वा एकार्यौ । मोक्षस्तु वद्वस्यैव ।

अत एव परलोक का अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए । इस कथन को कानों से सुनकर और हृदय में धारण करके संशय छिन्न हो जाने पर मेतार्थ भी तीनसौ शिष्यों सहित दीक्षित हो गये ।

मेतार्थ को दीक्षित हुआ सुनकर ग्यारहवें पण्डित प्रभास भी तीनसौ शिष्यों सहित अपना संशय दूर करने के लिए प्रभु के पास पहुँचे । प्रभुने उनसे कहा—हे प्रभास ! तुम्हारे मन में यह संशय है कि निर्वाण है या नहीं ? अगर है तो क्या संसार का अभाव ही निर्वाण है ? अथवा दीपक की शिखा के समान जीव का नाश ही जाना निर्वाण है ? अगर संसार का अभाव निर्वाण माना जाय तो वह वेद से विरुद्ध है । वेदों में कहा है ‘जरामर्यं—वै तत्सर्वं यदग्निहोत्रम्’ इति । अर्थात्—‘यह जो अग्निहोत्र है सो सब जरा—मरण के लिये है ।’ इस से प्रतीत होता है कि जीव के संसार का अभाव नहीं होता है । अगर दीपक की लौके समान जीव का नाश होना निर्वाण माना जाय तो जीव के अभाव का प्रसंग आता है ।

परलोक अस्तित्व स्वीकारवानु रहें छे आ उपदेशथी मेतार्थं तुं मन पीगणी गयुं. अने पोताना त्रभुसो शिष्यो साथे तेषु दीक्षा अंगीकार करी.

मेतार्थ सुनने पछ, दीक्षा दीधी छे जेभ जल्पी अग्यारमा पडित प्रभास पण, त्रभुसो शिष्यो साथे, पोतानी मान्यतानु स्पष्टीकरुण्य गेणववा साइ त्रभु पासे जवा रवाना थयो त्रभुज्ये तेनी मान्यता ज्ञानद्वारा जल्पी दीधी; ने ‘निर्वाणु’ नथी तेम तेनी मान्यतानी तेषु रक्षुथात करी. आ साथे तेनु पीणु पण्ये ओ भंतव्य-हुतुं के, संसारना अभाव तेनुं नाम ‘निर्वाणु’ छे. तेभज, जेभ दिवानी शिष्यानी समान जवनो नाथ थयो ते ‘निर्वाणु’ कडेवाय छे

भगवान, उपर वरुणुवेद तेना विचारो ने निर्भूण करवा, समज्ज आये छे के, वेदोक्ति ‘जरामर्यं वै तत्सर्वं यदग्निहोत्रम्’ धति अर्थात्—आजे अग्निहोत्र छे, जधु जरा—मरणु भाटे छे आथी प्रतीत थाय छे के, जवने संसारना अभाव नथी. जे दीपक समान जवनो नाथने निर्वाणु तरीके मानवासां आवे तो, जवनो अभाव मान-

भूतेभ्यः सद्गुण्याय पुनस्तान्येवानुविनययति न प्रेत्यसद्भाडस्ति इत्यादि । वृत्तिव्या । परलोकोऽस्त्येव, अन्यथा जातमात्रस्य चालस्य माहस्त्वानुगुणाने सत्तथा कर्षं मर्षेव ? एष सिद्धात्तेऽप्युक्तम्—

“यं यं प्राप्तं स्मरन्तित्वं त्यक्त्यप्येते कळेवरस्य ।
 सं क्षमेवैति कौन्तेय ! सदा वद्भाषमाश्रितः” ॥ १ ॥ इत्यादि ।

मूषका अर्थ—‘भयञ्जो वि’ इत्यादि । मेवार्थं मो अपने संक्षय को दूर करने के लिए वीनसौ शिष्यों के साथ मर्ष के समीप पहुँचे । भगवान् ने उनसे कहा—ये मेवार्थ ! तुम्हारे मन में यह संक्षय है कि परलोक नहीं है ? क्यों कि वेदों में ऐसा कहा है—‘विद्वानपनपनैवैतेभ्यो भूतेभ्यः सद्गुण्याय पुनस्तान्येवानु विनययति न प्रेत्यसद्भाडस्ति’ इति । अर्थात्-विद्वानपन आत्मा इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उनकी में लीन हो जाता है । परमोक संज्ञा नहीं है, इत्यादि ।

दुष्कारा यह संक्षय निराकार है । परमोक-पुनर्जन्म है ही, अन्यथा तस्मात् उत्पन्न बालकको माता के खन का दूध पीन की इच्छा (या प्रुद्धि) कैसे होती ? तुम्हारे सिद्धान्त में भी कहा है—

“यं यं वापि स्मरन्तं त्यक्त्यप्येते कळेवरस्य ।
 व संक्षेपि कौन्तेय, सदा वद्भाषमाश्रितः ॥ इति ।

अर्थात्—हे भर्तुन ! जीव अतिस समय में जिन जिन भाषों का स्मरण-मिन्तन कराया हुआ करीर बनता है, उन भाषों से माश्रित रह जीव उन्नी-उन्नी मार का मास होता है ॥ १ ॥

भूतको अर्थ ‘मेयञ्जो वि’ अर्थात् भिताई भिताई’ पत्र पीताना सद्यश्च निसाक्षश्च योऽपवा, प्रभु पासे अङ्गुली शिभी साई आनी पळेम्बो भिताई-नी यथा से कवी के, ‘परदोड’ उच्यं नदि धारण्डे वेदोर्भां ज्येवु डडेनाडु छे डे “विद्वानपनपनैवैतेभ्यो भूतेभ्यः सद्गुण्याय पुनस्तान्येवानु विनययति, न प्रेत्य संभाडस्ति” इति, अर्थात्-विद्वानपन आत्मा अतरेव, श्रुतीभांभी उत्पन्न भव छे, ने ते भूतोभांभी सभाड भव छे आटे ‘परदोड’ अहा नक्षी विवेरे वभासी आ भा-नवा पाका विनानी छे परदोड-पुनर्जन्म य विवेरे पव छे अने ते न बोध ती, ताकाजिड करवा बरेव वाजने, आटावु स्तनपान करवा हेम छण्डा धार्ये वभासा अिदांतभां पवु डडु छे डे,

“यं यं वापि स्मरन्तं माव, त्यक्त्यप्येते कळेवरस्य ।
 सं क्षमेवैति कौन्तेय ! सदा वद्भाषमाश्रितः” ॥ इति

अर्थात्—हे भर्तुन ! जब जबसे छण अने ने पावे अने लेने सभाषण-वित्तन डरे छे, ने तेपु सभाषण-वित्तन इत्यां पीतानु यशीर तरे छे, तेने भावो सभाषण अने अित्तन अनेने ते छण इरी अपवरे छे आटे

देवे नैरधिके पुण्ये परत्वीके तथा च भवति निर्योगे ।

एकदशमपि संशयच्छेदे प्राप्ता गणधरह्यम् ॥२॥ इति ।

की गणधरः कृतिसंलभ्यैः शिष्यैः प्रवृजित इति प्रतिपादिका संग्रहणी गाथा—
पञ्चशतः पश्चानां द्वयोश्चैव भवति सार्द्धत्रिशतश्च ।
त्रेपाणां च चतुर्णां त्रिशतः त्रिशतो भवति गणः ॥१॥

एते प्रकृतसमीपे सर्वे चतुश्चत्वारिंशच्छतानि द्विजाः प्रवृजिताः ॥११३॥

॥ इति गणधरवादः ॥

देवेनैरुप्य पुण्ये, परलोए तह य होइ निव्वाणे ।

एगारसापि संसयच्छेए पत्ता गणहरत्त ॥ २ ॥ इति ।

अर्थात्—ग्यारह गणधर को निम्नलिखित ग्यारह त्रियुगों में सन्देह थे—(१) इन्द्रश्रुति को जीव के विषय में (२) अग्निश्रुति को कर्म के विषय में (३) वायुश्रुति को तज्जीव-तच्छरीर (वही जीव वही शरीर) के विषय में (४) व्यक्त को श्रुतों के विषय में (५) सुधर्मा को पूर्वभव सरीखे उत्तरभव के विषय में (६) मण्डिक को वन्द-मोक्ष के विषय में (७) सौर्यपुत्र को देवों के विषय में (८) अक्रम्पित को नारको के विषय में (९) अचल-साता को पुण्य-पाप के विषय में (१०) मेतार्य को परलोक के विषय में और (११) प्रभास को मोक्ष के विषय संशय था । संशय का हटवन होने पर ग्यारहों गणधर-पद को प्राप्त हुए ॥ १-२ ॥

देवे नैरुप्यपुण्ये, परलोए तह य होइ निव्वाणे ।

एगारसापि संसयच्छेए पत्ता गणहरत्त (२) इति

अर्थात्—अग्यार गणधरोंने निचे दफ्ता मुअअ, अग्यार विषयोमां शंका-इती (१) धन्द्रश्रुतिने 'एव'ना विषयमां, (२) अग्निश्रुतिने 'अभ' आणतमां (३) वायुश्रुति ने तळ्ळव आने तच्छरीरमां ओट्ठे जे शरीर छे तेज्ज एव से आ विषयमां, (४) व्यक्तने पांय गइआते आणतमां, (५) सुधर्माने पूर्वभव जेवोळ उत्तरभव होय तेने दागलां विषयमां, (६) मंडिकने अंध-मोक्ष संबंधी, (७) सौर्यपुत्रने 'देवो' संबंधी, (८) अक्रंयितने 'नारकी'ना गोशुभयक्षा विषे, (९) अचलवाता ने युश्य-पाप ने दागते, (१०) मेतार्यने परलोक संबंधी, (११) प्रभासने मोक्षनी आणतमां संशय इती.

नीची रि कर्ममिर्षदा; अतस्तस्य प्रयत्नापिनोपान्मोषो मन्त्रयेच । अस्य विषये मण्डिक्यम्भने सर्वे कथितं तद्व
 पारिवर्ष्यम् । तत्र शक्रेऽप्युक्तम्—'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च' । तत्र परं—'सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म' इति । अनेन
 मोक्षस्य सत्ता सिद्धयति । अथा सिद्धं मोक्षोऽस्तीति । एवं भुत्वा छिन्नसंशयः प्रमासोऽपि सिद्धवक्षित्यैः प्रकथितः ॥११॥
 अत्र संप्रश्नी गाथा इत्यम्—

नीचे व कर्मविषये, तज्जीवक तच्छरीरे—यूते च ।
 तादृशक जन्मयोनी परे भेदे, बन्धमोक्षो च ॥१॥

तुम्भारा या सुन्दर निराधार है । निर्वाण और मोक्ष दोनों एक ही अर्थ की बतलाने चाहे कष्ट है ।
 बद्ध जोष का ही मोक्ष होता है । जीव कर्मों से बद्ध है, अतः प्रयत्न—बिषय से उसका मोक्ष होता ही है ।
 मोक्ष के विषय में मण्डिक के मन्त्र में कहा है, यह सब समझ लेना चाहिए । तुम्हारे शत्रु में भी कहा है—
 'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च । तत्र परं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इति । अर्थात्—दो प्रकार के ब्रह्म सत्य,
 ज्ञान और अनन्त स्वरूप हैं । इन से मोक्ष की सत्ता सिद्ध होती है । अतः मोक्ष का सद्भाव सिद्ध हुआ ।
 इस प्रकार युनकर प्रयास भी सख्य-निवृत्त होकर तीनती छिव्यों के साथ वीक्षित हो गये ।

किस गजधर का हीन शत्रुय या ? इस विषय में यहाँ दो सप्रणिगी गायार्थ हैं—

“ श्रीचे य कम्मविसयं, तज्जीव य तच्छरीर यूए य ।
 तारिसय जम्मयोनी परे भवे षंपसुनखे य ॥ १ ॥

यानो प्रस ग उपस्थित थाय छे भाटे ताशे आ सुदिक प्रथा वनरतो छे । निवोद्य ज्ञान मोक्ष अनि केडर्य अशु
 जताववाजा फ्याववात्थक शब्दो छे ने एव जेअल्ले छे । तेनोअ मोक्ष होय । एव इभीवटे जेधारेक होय
 तेनोअ विशेष अन्तो वडे मोक्ष अथ शक्रे शकणी आगतभा छु भनपर भकिने ने इवीवो वडे अमन्ववाभा
 आ यो, ते इवीवो अर्द्धी सब अमन्व देवी । तमाश शाअभा यव अक्षु छे के, 'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र
 परं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इति अशोत-वे प्रकाशना प्रका अज्ञवा कीडले कोठ 'परप्रका जने पीला अपरप्रका'
 आ जन्नेभा परप्रका, उत्त, ज्ञान जने अतत स्वक्षुपी छे आकी 'शिक्षनी' । सुदुभाव सिद्ध थाय छे आना अक्षितीक
 प्रचयन दास, प्रकाशतो सदाच दनी जये, जने तज्जोसा शिष्यो आये ते विधीत अथा इभा अक्षुभने इयो सदाच
 इतो । आ निरवभा अर्द्धी वे सत्रदिदी आशालो आपवाभा आवे छे—

नीचे य कम्मविसये तज्जीव य तच्छरीर यूए य ।
 तारिसयजम्मयोनी परेभवे षंप सुपखे य (१) ॥

टीका—'मैयज्जोड्डी'-त्यादि । मेटायोंडपि निवसंक्षयच्छेदनायै त्रिद्विदशिव्यैः परिहृतः प्रसुसमीये समागत' । मगषान्-ठ ववति-मो मेतार्य ! ठष मनसि अकं-वसमण सवयो वरते, तयारि-परलोको नास्ति, यतो

कोन गणपर फितने दिव्यों के साथ वीसिठ हुए, यह कहने वाली संव्रणनी गाया यह है—
पंषसयो पंषण, दोषं चिय होए सव तिसयो य ।

सेसार्न ष चठणं, विसयो विसयो इव गच्छो ॥ इति ।

अर्थात्-भार्य के पाँच (गणपरों) के पाँच-पाँचसौ, दो के साठेतीनसौ-साठेतीनसौ और शेष चार के तीन-तीनसौ दिव्यों का समुदाय था । १ । इस प्रकार प्रसु के समीप सष चवालीससौ ब्राह्मण (गणपरों के) दिव्य मी उस समय वीसिठ हुए । अर्थात् सष चवालीससौ ग्यारह (४४११) वीसिठ हुए ॥ मू० ११३ ॥

॥ गणपरवार समाप्त ॥

टीका का अर्थ—मेटार्य मी अपना संश्रय छेदन करने के लिए अपने तीनसौ दिव्यों के साथ प्रसु के समीप आये । मगषान् ने उनसे कहा—हे मेतार्य ! तुम्हारे मन में यह संश्रय विद्यमान है कि-परलोक नहीं है ;

आ अन्वारे आणव्यो पिताना विषयो अवधी ने ने श्वाको तेजो सेवी रखा हवा ते ते श्वाकोण
अध्विगत निशक्षरु बटां तेजो तीनवैशान्ने पात्रमा सुआरनी कपरताने लक्ष्मी, तेजो वीक्षित थं अवुपर
ष ने प्राप्त यथा कथा कथा अवुपरश डेटेटेव शिष्यो आधे वीक्षित यथां ते अतावपावणी सुश्रद्धुषी आधा अदि
हठेवामां आवे छि—

“पंषसमो पंषां, दोषं चिय होय सव तिसमो य ।
सेसार्ण ष चठणं, विसमो इव गच्छो ॥” इति

वार्था—शुभ्रातना पावअवुपरश, पाँचसो-पाँचसो शिष्यो आधि छि आशानक्षसो आधे अने लार्थीना आशे
त्रक्षसो शिष्योना अमुप्राध आधि वीक्षा धारण करी आ अथाव्ये प्रभु पासे अथा मणी सुभाणीधसो आणव्योको
अटवै अन्वारे ववुपरशोनी आधे अथा सुभाणीधसो ने अत्रिबार आणव्योजे वीक्षा पनां अत्रिबार करी (सू०-११३)
॥ अवुपरवार स पूर्यं ॥

दीधने अर्थ—रोलापं पण पिताना अ अथना निवपण्ण पटे पिताना तक्षसो शिष्यो आधि प्रभुनी पासे अणव्यो
अत्रवाने तेने कसु-के अत्रापं । तप्राध अनमं जे सयव छि हे-परलोक नहीं, अत्रवु हे दोरामां हठेव छि हे

वेदेषु कथितम्—‘विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति’ इत्यादि । एतद्विवरणमिन्द्रभूतिप्रसङ्गे कृतमिति ततोऽवसेयम् । इति यन्मन्यसे तत् मिथ्या । परलोकोऽस्त्येव, अन्यया-जातमात्रस्य वालस्य मातृस्तनदुग्धपाने संज्ञा कथं भवेत् ? । परलोकस्वीकारे तु पूर्वभवानुभूतदुग्धपानस्यानुभवाद्भवति मातृस्तन्यपानचेष्टा वालस्य । तत्र सिद्धान्तेऽप्युक्तम्—“यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते क्लेश्वरम् । ते तमेवैति कौन्तेय ! सदा तद्भावभावितः । १ ।’ हे कौन्तेय ! जीवः अन्ते=मरणकाले यं यं वाऽपि भाव स्मरन्=चिन्तयन् क्लेश्वर=शरीरं त्यजति, स सदा तद्भावभावितः=अन्तकालचिन्तितभाववासितः सन् त तमेव=अन्त स्मृतमेवामुक्रममुकं भावम् एति=प्राप्नोति । इत्यर्थः । १ । इत्यादि वचनमुक्तम्, अतः परलोकोऽस्तीति स्वीकरणीयम् । एवं श्रुत्वा=सामान्यतः श्रवणगोचरीकृत्य, निशम्य=विशेषतो हृद्यवधार्य छिन्नसंशयः सन् मेता-योऽपि त्रिशतशिल्पैः प्रव्रजितः । १० ।

क्यों कि वेदों में कहा है कि विज्ञानघन आत्मा ही इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं भूतों में लीन हो जाता है, परलोक नहीं है, इत्यादि । (इस वाक्य का विवरण इन्द्रभूति के प्रकरण में किया जा चुका है, वहीं से जान लेना चाहिए) हे मेतार्य ! ऐसा तुम मानते हो सो मिथ्या है । परलोक का अदृश्य अस्तित्व है । अगर परलोक न होता तो तत्काल जन्मे हुए बालकों को माता के स्तन का दूध पीने की बुद्धि कैसे होती ? परलोक स्वीकार करने पर तो पूर्वभ्रत के दुग्धपान का संस्कार से माता का स्तनपान करने की चेष्टा संगत हो जाती है । तुम्हारे सिद्धान्त में भी कहा है—हे अर्जुन ! जीव मरणकाल में जिन-जिन भावों का स्मरणचिन्तन करता हुआ शरीर का परित्याग करता है, वह अन्तिम समय में चिन्तन किये हुए उन्हीं भावों से भावित-वासित होकर उसी-उसी भाव को प्राप्त करता है । इत्यादि । अत एव परलोक को स्वीकार करना चाहिए ।

विज्ञानघन आत्मा जो भूतों से उत्पन्न થઇને કરી જોઈ જૂતામા લીન થઈ જાય છે, પરલોક નથી, ઈત્યાદિ (આ વાક્યનું વિવેચન ઇન્દ્રભૂતિના પ્રકરણમા કરાઈ ગયું છે તેમાંથી બેઈ લેવું) હે મેતાર્ય ! જોવું તમે માને છે તે વ્યર્થ છે પરલોકનું અસ્તિત્વ બદર છે જો પરલોક ન હોત તો ઉરતના બન્નેલા બાગડને માતાના સ્તનનુ દૂધ પીવાની બુદ્ધિ કેવી રીતે હોત ? પરલોક સ્વીકારતા તો પૂર્વભવના દૂધ પીવાના સંસ્કારથી માતાનુ સ્તન-પાન કરવાની ચેષ્ટા સંગત થઈ જાય છે. તમારા સિદ્ધાંતમા પણ કહેલ છે—‘હે અર્જુન ! જીવ મરણકાળે જે જે ભાવેનું સ્મરણ-ચિન્તન કરતા શરીરનો પરિત્યાગ કરે છે, તે અન્તિમ સમયમાં ચિન્તિત ભાવેથી ભાવિત-વાસિત થઈને તે તે ભાવને પ્રાપ્ત કરે છે” ઈત્યાદિ. તેથી પરલોકને સ્વીકારવો બેઈજો.

तं मेतार्यं प्रयजितं भुत्वा एकादशः पण्डितः प्रमातामिषीऽपि=प्रमासनामकोऽपि त्रिभुवश्चिद्यसवितो
 निजसंशयापनयनार्थे=स्वसंशयच्छेदनार्थे प्रभुसमीपे=मी महावीरप्रभुपात्रे समनुमासः=समागतः। प्रभुणा व स
 प्रयाम प्रामागतः=उक्तः-यो प्रमास ! तव मनसि अयं संक्षयो वर्धते-यत् निर्वाणम् अस्ति । नास्ति वा ? इति ।
 यदि निर्वाणमस्ति, तदा तन्निर्वाणं किं संसारमात्र एव=वस्तुर्गतिभ्रमणकषणसंसारोऽप्यतिरेव-शुद्धात्मस्वरूपेऽवस्था-
 नमव ? अथवा-दीपनिर्वाणा नाश इव=सर्वथाऽभाववत् अथित्य नाशः=सर्वथाऽभाव एव निर्वाणम् ? अत्र
 द्विविधे पक्ष-यदि संसारमात्रो निर्वाणम्-इति प्रथमः पक्षो मन्यते, तदा तद् वेदविरुद्धं मभवति। यतो
 बरेण कथितम्-“आरामं वै तत्सर्वं यदेतदनिर्वाणम्” इति। अयमर्थः-यदेतत्-अनेकविषयम् अग्निहोत्र
 तत्सर्वं नरामयम्=त्रारामरत्ननिमित्तमिति। अनेन वैश्वर्चनेन नीचस्य संसारमात्रो न मवनीत्युपलभ्यते। यदि
 इत्त प्रकार सुनकर और विज्ञाप रूप से अन्तःकरण में कारण करके मेतार्यं मी छिन्नसंशय होकर
 चीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गया। १०।

मेताव को दीक्षित हुआ सुनकर ग्यारहवें प्रमास नामक पण्डित मी चीनसौ अन्तेवासियों सहित अपने
 मंदिर को दूर करने के लिए श्रीमहावीर स्वामी के समीप पहुँचें। मगवान प्रमास से बोले-हे प्रमास !
 तुम्हारे मन में यह संशय है कि निर्वाण है अथवा नहीं ? अगर निर्वाण है तो क्या वह संसार का अभाव ही
 है, अर्थात् चार गणियों में भ्रमण रूप संसार का एक मात्रा-शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना ही है ?
 अपना दीपक ही जित्वा के नाश के समान शीव का सर्वथा अभाव हो जाना ही निर्वाण है ? इन दोनों
 पक्षों में स यदि संसार का अभाव निर्वाण है, यह पहला पक्ष माना जाय तो वह वेद से विरुद्ध है, क्योंकि कि
 शर्दों में कहा है कि-“यह जो नागा प्रकार का अग्नि होत्र है, यह समी जरा और मरण का कारण है।”

आ प्रभाषि आकण्ठीने जने विद्ये ३३ अथाशेषमां भारु कर्हिने येताथ षण् सयशरुदित यधने तवसे।
 शिष्यो आरे दीक्षित कथ्य. १०

शेषाथने दीक्षित कथेत् आकण्ठीने अविद्यारमा प्रकाश नाभना पठित पण तवसे अतिपश्रिडे। आरे
 शेषाथना स संशय इर कराने आटे श्रीमहावीर स्वामी पासे जथा अत्रथाने प्रकाशने महु-रे प्रकाश ! तभावा
 अनां जे अशय छे ते निवाण छे ते नथी ? जे निर्वाण बोध ते शु ते सधारने अकाश व छे जेदरे
 छे अर अतिबोधां अमणु इव असार आदही क्यु-शुद्ध आरभरुपमां स्थित यणु व छे ने ? अथवा दीपकनी
 अथोतन नाशनी जे अवनो। अथवा अकाश कर्ष अथे जे व निर्वाण छे ? जे जने पक्षोभाधी जे सधारने
 अकाश निर्वाण छे जे पड़ेहा पक्ष अवनवाभां अवि ता ते वेदनी विरुद्ध छे शरुक् छे वेदोभां कथेत् छे-“आ

दीपशिखाया नाश इव जीवस्य नाशो निर्वाणम्-इति द्वितीयः पक्षो मन्यते, तदा जीवभावः=जीवस्य सर्वथोच्छेदः प्रसज्यते? इति तत्र निर्वाणविषये संशयोऽस्ति। तन्मिथ्या=तदेतत्तत्र संशयजालं मिथ्याज्ञाननिवृत्तिमितम्। यतो-निर्वाणमिति मोक्ष इति च एकाग्रौ। मोक्षस्तु वद्धस्यैव भवति। जीवस्तु कर्मभिः=अनादिकालतो ज्ञानावरणीयादिकर्मभिर्वद्धः, अतः प्रयत्नविशेषात्तस्य मोक्षो भवत्येव। अस्य विषये मण्डिकप्रश्ने सर्वे कथितं, तत एव त्वया धारयितव्यम्। नाहमेव व्रथीमि, तत्र गालेऽप्युक्तम्-'द्वे व्रथणी' इत्यादि। अयमर्थः-परम्

इस वेद-वाक्य से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि जीव के ससार का अभाव हो ही नहीं सकता। अगर दीपशिखा के नष्ट हो जाने के समान निर्वाण-मोक्ष-माना जाय तो जीव के सर्वथा अभाव की अग्निष्ठापत्ति होती है। निर्वाण के विषय में तुम्हें यह सस्य है। यह संशय मिथ्याज्ञान से उत्पन्न हुआ है। क्यों कि निर्वाण और मोक्ष, दोनों एकार्थवाचक शब्द है। मोक्ष वद्ध का ही होता है। जोव अनादि काल से ज्ञानावरणीय आदि कर्मों से वद्ध है, अतः विशेष प्रयत्न करने से उसका मोक्ष होता ही है। उस विषय में मण्डिक के प्रश्न में जो कहा है, वह सब यहाँ भी समझ लेना चाहिए।

अभिप्राय यह है कि ज्ञानावरणीय आदि कर्मों से जब आत्मा मुक्त हो जाता है तो उस में औपाधिक भाव-कर्मजनित विकार भी नहीं रहते। उस समय आत्मा अपने वास्तविक शुद्ध चैतन्यस्वरूप को प्राप्त करता है। जन्म जरा और मरण से सर्वथा रहित हो जाता है। यही मोक्ष का स्वरूप है। 'अग्निहोत्र जरा मरण का कारण है' इस कथन से यह सिद्ध नहीं होता कि जीव के जरा-मरण का अभाव हो ही नहीं

ले विविध प्रकारता अशिखित छे ते तथा जरा अने भरषुतु कारषु छे." आ वेदनाकथथी तो जे न सिद्ध थाय छे के एवने संसारने आभाव छार्थ शकतो न थी ले दीप-शिख ना नाश थवा सभान निवोले-मोक्ष बनाय तो एवना सर्वथा बलावती अतिशयपत्ति नडे छे. निर्वाणना विषयमां तभने आ मंथय छे. आ मथय मिथ्याज्ञानधी उत्पन्न थये छे. कारषु के निर्वाण अने मोक्ष अे अन्ने अेकार्थवाचक शण्ठे छे. मोक्ष गद्धने। (अंधाथेव) न थाय छे एव अनादि कणथी ज्ञानवरणीय आदि कुत्रोक्षो गद्ध छे तेथी विशेष प्रयत्न करवाधी तेने। मोक्ष थाय छे न. आ विषयमां मडिकना प्रश्नमा ने कछुं छे ते गधुं अर्धी पणु सभए वैकुं लेधअे.

तात्पर्य अे छे के ज्ञानवरणीय आदि कुत्रोक्षी न्यारे आत्मा सुकृत थर्ध जाय छे तो तेमां औपाधिक भाव-कर्मजनित विकार पणु र्हेतो नथी ते सभये आत्मा पोताना वास्तविक शुद्ध चैतन्य स्वरूपने प्राप्त करी ले छे. जन्म, जरा अने भरषुथी तदन रक्षित थर्ध जाय छे अे न मोक्षतुं स्वरूप छे. "अग्निहोत्र जरा-मरणतुं कारषु छे" आ कथ थी अे साभित थतुं नथी के एवने जरा-मरणने। अभाव थर्ध शकतो न थरी, आ वाक्यमां तो प्रति-

अत्र-एतेषामेकादशगणधराणां सशयविषये संग्रहणीगाथाद्वयम्—‘जीवे’ इत्यादि । इन्द्रभूतेः जीवे-जीव-
 विषये संशयः १ । कर्मविषये अग्निभूतेः २ । तज्जीव तच्छरीरे=तज्जीवतच्छरीरविषये संशयो वायुभूतेः ३ । भूते=
 पञ्चभूतविषये संशयो व्यक्तस्य ४ । परमये तादृशकजनमयोर्नौ यो जीव इह शवे यादृशो भवति स परमभवेऽपि
 तादृश एव भवति, इति त्रिपयकः संशयः सुधर्मणः ५ । बन्धमोक्षे=बन्धमोक्षविषये मण्डिकस्य संशयः ६ ।
 देवविषये सशयो मौर्यपुत्रस्य ७ । नैरधिके=नारकविषये संशयोऽकम्पितस्य ८ । पुण्ये=पुण्यविषये-उपलक्षणात्
 पापे च संशयः अचलभ्रातुः ९ । परलोके=परलोकविषये संशयो मेतार्यस्य १० । तथा च निर्वाणे=मोक्षविषये
 संशयः प्रभासस्य ११ । इति ।

एते=इन्द्रभूत्यादिप्रभासान्ता एकादशापि गणधराः स्व स्व संशयच्छेदे सति गणधरत्वं प्राप्ता इति ।

प्रभास भी छिन्नसंशय होकर अपने तीनसौ शिष्यों के साथ प्रभु के पास प्रव्रजित हो गये ।

इन ग्यारह गणधरों के संशय के विषय में दौ संग्रहणी गाथाएँ हैं—(१) इन्द्रभूति को जीव के विषय में संशय
 था । (२) अग्निभूति को कर्म के विषय में संशय था । (३) वायुभूति को वही जीव है और वही शरीर है,
 ऐसा संशय था । (४) व्यक्त को पाँच भूतों के विषय में संशय था । (५) सुधर्मा को यह संशय था कि
 जो जीव इस भव में जैसा है, परभव में भी वैसा ही जन्मता है । (६) मण्डिक को बन्ध और मोक्ष के
 विषय में संशय था । (७) मौर्यपुत्र को देवों के अस्तित्व के विषय में संशय था । (८) अकम्पित के
 नारकों के विषय में संशय था । (९) अचलभ्राता को पुण्य-पाप संबंधी संशय था । (१०) मेतार्य को
 परलोक में संशय था और (११) प्रभास को मोक्ष के अस्तित्व में संशय था । इन्द्रभूति से लेकर प्रभास

तक संशयरहित रहने योताना त्रयुसे शिष्यो साथे प्रभु पासे दीक्षा लीथी ।

ये अगिथार गणधराना संशयना विषयमा ये अत्रदृष्टि गाथाया छि—(१) इन्द्रभूतिने एवना विषयमां
 संशय छतो. (२) अग्निभूतिने कर्मना विषयमां संशय छतो. (३) वायुभूतिने एव एव छे अने एव शरीर
 छे कोवो सशय छतो. (४) व्यक्तने पांच भूताना विषयमां संशय छतो. (५) सुधर्माने कोवो सशय छतो. (६) ये
 एव आ लवमा कोवो छि, परलवमा पणु तेवो ज् जन्मे छि. (६) भंडिकने बंध अने मोक्षना विषयमां संशय
 छतो. (७) मौर्यपुत्रने देवाना अस्तित्वना विषयमां संशय छतो. (८) अकम्पितने नारकीना विषयमां संशय छतो.
 (९) अचलभ्राताने पुन्य-पापना विषयमा संशय छतो. (१०) मेतार्यने परलोकने विषे संशय छतो. (११) प्रभासने
 मोक्षना अस्तित्व विषे संशय छतो. इन्द्रभूतिथी मांडीने प्रभास सुधीना ते अगिथारे गणधर योतयेताने संशय

को गणघरः कवितंरूपकैः द्विव्यैः प्रवृत्तित इति प्रविपादिका सप्रारब्धी गाथा—

‘पंच सयाह’ इत्यादि । पञ्चानां गणघरगाथा=न्द्र-मृत्युग्निमृति-वायुमृति-व्यक्त-सुषर्मागाम् प्रत्येकं पञ्चशततः पञ्चशततसस्यकः पञ्चशततसस्यकः शिव्याणां गणो मन्वति । ततः परयोद्वयोः=मृच्छिकर्मोययोः प्रत्येकं सार्द्धशिवतः=सार्द्धशिवतसस्यकः सार्धशिवतसस्यकः शिव्याणां गणो मन्वति । शेषाणां=वदशिरिकानां चतुर्णां=मृच्छिम्यितावस्रप्रहृतेयार्थमभासानां प्रत्येकं शिवतः शिवतः=शिवतसस्यकः शिव्याणां गणो मन्वतीति । एषः=अनेन प्रकारेण मनुसमीये सर्वे चतुर्भस्वारिष्वज्ज्वालि=चतुर्भस्वारिष्वज्ज्वातसस्यका द्विजा=गणघर शिव्या अपि प्रवृत्तिना इति ।।सू०११॥

॥ इति गणघरवाद् ॥

मूकम्—तेषां काठेयं तेषां समएव चरणपाला मगवन्तो केवल्युप्यपि विष्णाय पवञ्च गीतं उक्थिष्या समागो पद्म समीपे संपन्ना । सा य पद्म आदक्षित्वा पदभित्पण करे, करिषा क्वंर नर्मस, संविषा नमसिषा एवं ययासी-रज्जुमि नं मते ! ससारमठखिगाई देवाणुपियालं अतिप एव्वातं । तए ज समणे मगवं मशानीरे तं क्वंज सक या ग्यारहो गणघर अपना अपना संशय दूर होने पर गणघरता-गणघरपद्वी को प्राप्त हुए ।

कौन गणघर कियेने शिव्यों के साथ दीक्षित हुए, यह बतलाने वाली सप्रारब्धी गाथा है—

इन्द्रमृति, मन्त्रिमृति, वायुमृति, व्यक्त और सुषर्मा इन पांच गणघरों का प्रत्येक के वैच-दौवसो शिव्यों का गण था । इनके बाद दो-मृच्छिक और मौर्यपुत्र का प्रत्येक के सार्वहीनसो शिव्यों का गण था । त्रय वार-अकम्पित, शकलत्राता, मेतार्य और ममास का तीन-चीनसो शिव्यों का सप्रह था । इस प्रकार मनु के पास सब मिलकर चत्वारसीससो द्विज गणघरों के शिव्य भी दीक्षित हुए थे ।।सू०११॥

॥ गणघरवाद् समाप्त ॥

इह यदा त्र्युधरता-त्र्युधरणी पदवी प्राप्तः

इयं त्र्युधर इतरका शिव्यो आदि दीक्षित यथा ते अथावतार्हा स त्र्युधरीगाथा आ प्रभावे ऐ-सं-प्रभृति, मन्त्रिमृति, मन्त्रिमृति, अष्टा अने सुषर्मा ले पावे त्र्युधरार्थं प्रयेतुं पञ्चशो-पाञ्चशोऽतु शिष्यगणु क्वं ल्वाण्वाः भक्ति अने भौव पुत्र अ लने-भ न ग इरेक्य साधनज्ज्वालेतु विष्णुअणु क्वं आशिना व्वा-अडम्भित, अज्ज्वात्वा, शेतान् इतरे प्रकाश ले इरेहते। त्र्युधरे त्र्युधरे शिव्योऽने सभुं क्ता आ प्रभावे प्रभुनी पावे अथा भणीने सुभाणीभवे। काश्वेऽने आ अशीआः त्र्युधरे-तया शिव्यो क्ता तेऽने दीक्षित बया क्ता ।।(सू०११३)

॥ त्र्युधरवाद् समाप्त ॥

वालं अग्रेऋतं अन्नाथो बहूओ उग्गभोगरायण्णामच्चपभिर्इणं कन्नाओ पव्वावेइ । पुणो य बहवे उग्गभोगाङ्कुलप्यधुरा नरा नारीओ य पंचाणुव्हयं सत्तसिक्खलाव्हयं एवं दुवालसविहं गिद्धिम्मं पडिवज्जिय समणोवासया जाया । तएणं से समणे भगवं महावीरे तित्थयर नामगोय कम्मकखवणहं समणसमणीसावयसाविथारूवं चउन्विहं संयं ठाविय इंदभूइपभिर्इणं गणहराणं—उप्पन्ने वा विगमे वा धुवे वा' इय तिवइं दलइ । एयाए तिवईए गणहरा दुवालसंगं गणिपिडंगं विरयंति । एवं एगारसण्हं गणहराणं नव गणा जाया तं जहा—सत्तण्हं गणहराणं परोप्पर-भिन्न चायणाए सत्तगणा जाया । अर्कपियायलभायाणं दुण्हंपि परोप्परं समाणवायणयाए एगो गणो जाओ । एवं मेयज्जपभासाणं दुण्हंपि एगवायणयाए एगो गणो जाओ । एवं नव गणा संभूया ।

तएणं से समणे भगवं महावीरे मज्झिम पात्रपुरोओ पडिनिकखमइ, पडिनिकखमिसा अणेने भविए पडिवोहमाणे जणवयविहारं विहरइ । एवं अणेनेसु देसेसु विहरमाणे भगवं जणाणं अण्णाणदेण्णामवणीय ते णाणाइसंपत्तिजुए करीअ । जहा अवरम्मिपगासमाणो भाणू अधयारमवणीय जगं हरिसेइ तथा जगभाणू भगवं मिच्छचांधयारमवणीय णाणप्यगासेण जग हरिसीअ । भवक्खवपडिए भविए णाणरज्जुणा वाहिं उद्वरीअ । भगवं जले धरो व असोहधम्मदेसणाभियधाराए पुहविं सिंचीअ ।

एवं विहारं विहरमाणस्स भगवत्थो एगचत्तालीसं चाउम्मासा पडिणुणा, तं जहा—एगो पढमो चाउ-म्मासो अत्थियगामे १ । एगो धंणा गयरीए २, दुवे पिट्टवंपाणयरीए ४ । वारस वेसालो गयरी वाणिय-ग्गामनिस्साए १६ । चउइस रायगिह णगर चालदणाम य पुरसाहानिस्साए ३० । छ मिहिलाए ३६ । दुवे महिलपुरे ३८ । एगो आलंभियाए गयरीए ३९, एगो सावत्थीए गयरीए ४० । एगो वज्जभूमि नामगे अणा-रिय देसे जाओ ४१ । एवं एगचत्तालीसा चाउम्मासा भगवओ पडिणुणा ४१ । तएणं जणवयविहारं विहरमाणे भगवं अपच्छिमं चायालीसइमं चाउम्मासं पात्रपुरीए हत्थिपालरणो रज्जुगसालाए जुणाए ठिए ॥सू०११४॥

छाया—तस्मिन् काले तरिस्मन् समये चन्दनवाला भगवतः केवलोत्पत्तिं विज्ञाय प्रव्रज्या ग्रहीदुमुत्कण्ठिता सती प्रभु समीपे संप्राप्ता । सा च प्रभुमादक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्सियत्वा

मूल का अर्थ—'तेणं कालेण' इत्यादि । उस काल और उस समय में चन्दनवाला भगवान् महावीरप्रभु को केवली हुए जानकर दीक्षा ग्रहण करने के लिये उत्कण्ठित हुई प्रभु के समीप पहुँची । उसने प्रभु को आदक्षिण-

भूणनेो अर्थ—'तेणं कालेण' इत्यादि ते आगे अने ते समये चंदनवाला भगवानने देवण शाननी भासि थरु ओभ नाथी दीक्षा अइथु करवा उधत अनी, अने प्रभुनी पासि आवी पडोथी. तेथुत्थि प्रभुने आदक्षिणु प्रदक्षिणु-

परमगदीर-र-गमि सतु मदन । मंसारमगादिनाडं देवानुपियाणामन्तिके मय
 मगान् महाशीरः नं चन्दनशालाम्रे करुण अन्या बहीः उग्रभोगराजन्यामाल्यमथुनी
 पुन्य शत उग्रभणादिदृन्मयुगा नरा नायंम पञ्चाशुनतिक सप्तसिंहास्रविक्रम एवं द्वादश
 भयनोपागहा गणा ।

वल्लु श्रमणो
 †
 †: प्रयानपयति ।
 शिवम प्रविषय

न न तु म श्रमणा मगवान् महाशीरस्वीर्यैरुनामयोमकर्मसंपण्यार्थे श्रमणश्रमणी श्रावकश्राविकास्यं
 पुरीरं मीं व्यापयित्वा इन्द्रयुविमथुभियो गणपरेभ्य -“उत्सभो वा विगमो वा धुको वा” इति त्रिपदी
 ददाति । एतया त्रिपदा गणपरा' द्वादशात्र गणपितकं विरचयन्ति । एवं एकादशानां गणपरणां नव गणा
 मूनिवारुह इन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया-‘मगवान् ! सत्तार के मय से उद्विग्न होकर
 मैं देवानुपिय क मपीर मयगया भीकार करना चाहती हूँ । तब श्रमण मगवान् महाशीरने चन्दनबाला को
 भाग करत और मी बहुत मी उग्रवंत, भोगवंत, राजन्वयंश की तथा अमाल्य आदिकों की कन्याओं को
 गीतित किया । फिर बहुत से उग्रदुल, भोगदुल आदिमें जन्म हुए नरों तथा नारियोंने पाँच अणुव्रत एवं
 गान विलासनाय-आह मगर क सुरस्य यमं का स्वीकार किया, और उन्होंने श्रावक-श्राविका का पद पाया ।

गन्ययत् श्रमण मगवान् महाशीरने मार्यकर नाम गोन का हाय करने के लिए साधु, साध्वी श्रावक
 और शारिण क वृत्तिय मय की स्थापना करके इन्द्रयुति आदि गणपरीं को ‘उत्साद, व्यय और द्रौव्य’
 इस प्रकार की त्रिपदी प्रदान की । इस त्रिपदी के आधार से गणपरींने द्वादशाग गणपिटक की रचना की ।

पूरं बह नभश्चर इती निवेदन क्युं हे-हे भजपत्त । स आधी उद्विग पात्री आपनी अमीष वीक्षा अजीकार
 इवा भातु तु अमणु कभवाने अकसर लक्ष्मी अ भति आपी अने खडनवाणधनी वीक्षा यत्ता बक्षी उअवशी,
 वे भवथी अने शकनवशीनी इन्नामे तम न आभास विनेरनी पुत्रील्लोमे असाश छोडी प्रमणया अजीकार इरी,
 अ उरं ग उअतु, सोअतु विनेरनी नर-पारील्लोमे पाय अतुवत अने आत शिक्षावत जेभ वार प्रदापना
 कनपरीं इकाय कयं अमीकार इवी अने कभवाने व्याय नर-नारील्लोमे आउ अने आविहाय अर्युण क्युं
 न्वाभकरीं उरनाथ-येअने कय हाय अरे अनयने क्यु-अनी अने आविहाय अर्युण क्युं
 इरी १२-१३वीं क-अन्ति निनेर अणुपर देवाने उत्साद, व्यय अने श्रौच-आदिम ३३ अटुविष अयनी स्थापना
 आधार उअपरेमे कायायि अतिथिपानी रचना इती

जाता., तद्वथा-समाना गणधराणा परस्परभिन्नवाचनया समगणा जाताः। अकम्पिता-ऽचलभ्रान्तोर्द्वयोरपि परस्पर समानवाचनया एको गणो जातः। एवं मेतार्यप्रभासयोर्द्वयोरपि एकत्राचनया एको गणो जातः। एवं नव गणा संभूताः।

ततः खलु स श्रमणो भगवान् महावीरो मध्यमपापापुरितः प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य अनेकान् भक्तान् प्रतिबोधयन् जनपदविहारं विहरति। एतन्नेकेषु देशेषु विहरन् भगवान् जनानामज्ञानैदन्यमपनीय तान् ज्ञानादिसम्पत्तियुतानकरोत्। यथा-अम्बरे प्रकाशमानो भानुरन्धकारमपनीय जगद् हर्षयति, तथा जगद्भानुभगवान् मिथ्यात्वान्धकारमपनीय ज्ञानप्रकाशेन जगद् अहर्षयत्। भवकूपपतितान् भक्तिकान् ज्ञानरज्ज्वा बहिरुदधत्। भगवान् जलधर इव असौघधर्मदेशनामृतधारया पृथिवीम् असिञ्चत्।

ग्यारह गणधरों के नौ गण हुए। वे इस प्रकार-सात गणधरों की भिन्न भिन्न वाचनाएँ होने से सात गण हुए। अकम्पित और अचलभ्रान्त-दोनों की परस्पर समान वाचना होने से एक गण हुआ। इस प्रकार मेतार्य और प्रभास दोनों की भी एक ही वाचना होने से एक गण हुआ। इस प्रकार नौ गण हुए।

तदन्तर श्रमण भगवान् महावीर मध्यम पावापुरी से विहार कर अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए जनपद-विहार विचरने लगे। इस प्रकार अनेक देशों में विहार करते हुए भगवान् ने लोगों की अज्ञान रूपी दरिद्रता को दूर करके उन्हें ज्ञानादि की सम्पत्ति से युक्त किया। जैसे आकाश में प्रकाशमान होता हुआ सन्तु अंधकार को दूर करके जगत को हर्षित करता है, उसी प्रकार जगद्भानु भगवान् ने मिथ्यात्व रूपी अंधकार का निवारण करके ज्ञानके आलोक से लोक को आह्लादित किया। भव रूपी कूप में पड़े हुवे

आ अगीत्यार गणधर देवेना नव गच्छ थया सात गणुधरेनी बुद्धी बुद्धी वाचन्या होवाने डारणु सात गच्छ गणुथा. अकम्पित अने अचलभ्रान्ता गन्नेनी परस्पर समान वांयना होवाथी तेओने। ओक गच्छ थये। आ प्रकारे मेतार्य अने प्रभास गन्नेनी ओक ज वाचन्या होवाथी तेभने। पणु ओक गच्छ गणुथये। आ प्रकारे अगियार गणुधरेना नव गच्छ थया

त्यारपथी श्रमणु भगवान् महावीर मध्यम पावापुरीथी विहार करी अनेक भन्थ लुथेने प्रतिओध होता देता जनपदभां विथरवा ताअ्या आ प्रभाणु अनेक देशोभा विहार करी लगवाने होडोनी अज्ञानरूपी दरिद्रता हर करी. अने गानादि संपत्तिं हान कथुं. जेभ आकाशभां प्रकाशित थतो सूर्य अंधकारने हर करी जगतने आनंदित गनावे छ तेम जगतभानु लगवाने [मथ्यात्वइथी अंधकारनुं निवारणु करी ज्ञान द्वारा लोकने आह्लादिक गनान्ये।

एवम् विहारं विहारो भगवतः एकवर्त्तारिचत चतुर्मासाः प्रतिपूर्णाः। तद्यथा-एकः प्रथम सोम-
 अस्तिश्रमाये १। एकश्रम्याणनर्णाम् २, द्वौ पृष्ठचम्याणनर्णाम् ४। द्वादश वैश्वानरी वाणिजप्रामनिथा-
 याम् १६। यदुद्देशं रामणनगरं नालन्नामरूपुराशालानिभ्याम् ३०। पट्टमिथिलायाम् ३६। द्वौ मरिलपुरे ३८।
 एक आनम्भिकायां नगर्णाम् ३९। एकः श्रावस्त्यां नगर्णाम् ४०। एको वक्रभूमिनामके अनार्यदेशे आतः ४१।
 उतः नन्दु जनपदविहारं विहारन् भगवान् अपश्चिमं द्विचत्वारिंशत्तमं चतुर्मासे पाषाणपुर्या इस्तिपालनारस्य
 रञ्जुकनानर्णानां नौर्णानां स्थितः ॥५०११४॥

टीका—'तेषु कालेषु तेषु सम्पण' इत्यादि। तस्मिन् काले तस्मिन् समये-वन्दनवाला भगवतः
 भीरीरस्तानिनः कैवलीर्यथि विद्याय प्ररज्यां=दीक्षां प्ररितुम् उत्कृष्टिणः=उत्कृष्टा सती प्रसुसमीये=श्रीवीरस्यामि
 भर्ण्या का दान की दोर से बाहर निकाला। भगवान् ने मेघ की भाँति अमोघ घर्मोपदेश की श्रुततमयी
 पाठा से पूजनी की सिचन किया। इस प्रकार विहार करते हुए भगवान् के एकवर्तीस चतुर्मास पूर्ण हुए।
 ४ इस प्रकार-पला चतुर्मास अस्विक ग्राम में (१), एक चम्पनगरी में (२), दो चतुर्मास पृष्ठचम्या में (४),
 शारह वैश्वानरी नगरी और वाणिस्य ग्राम में (१६), चौदह रामपुर नगर में-नालंदा नामक पाठे में (३०),
 उर मिथिया में (३६), दो मरिलपुर में (३८), एक आचमिका नगरी में (३९) एक श्रावस्तो नगरी में (४०),
 और एक वक्रभूमि नामक अनार्य देश में (४१), हुआ। इस प्रकार भगवान् के एकवर्तीस चौमासे व्यतीत
 हुए। तत्पश्चात् जनपद विहार करते हुए भगवान् अन्तिम सयन्तीसवौ चौमासा करने क लिए पाषाणपुरी में
 इस्तिपान राजा के पुराने सुगोबर (अकावस्थान) में स्थित हुए ॥५०११४॥

अत्रैषीं इवाम् परेष्वा लभ्येते खनपुषी दोरी वदे लदार डाल्य लजयते भेवनी भाइइ अशोवचसु धशोचरेयानी
 धारा वदे पूश्वीने सिचन इय

व्या प्रथमै निरतर विदार करतां, लजयते कोशपटीस चतुर्मास पूशुं ठना तेनु पशुनै-नीथे सुखण ठा:-
 परेष्ठे वाणिस्य अस्थिक नाममां (१), कोश च धाननरीमां (२), दो पृष्ठ च धाननरीमां (४), नार चतुर्मास
 वैश्वानरी नगरी अने वाणिस्य नाममां (१६) कोश चतुर्मास शाल्वुडि नगरीना नालंदा नामना पाथमां (३०), उ
 शोभासा भिविवासा (३६) दो मरिलपुरमां (३८), कोश च आचमिका नगरी (३९), कोश श्रावस्तो नगरीमां (४०), अने
 कोश वक्रभूमि नामका अनार्य देशमां (४१) त्वास्माद् विदार करतां करतां लजयते अन्तिम कोशपटीस चतुर्मास
 पाषाणपुरीमां, इस्तिपान राजा की भूमि शक्यशाण्य (अकावस्थान)मां इयुं (५०११४)

निकटे संप्राप्ता सा च प्रभुम् आदक्षिणप्रदक्षिणम्=अञ्जलिपुट वन्द्धा तं वद्धाञ्जलिपुटं दक्षिणकर्षमूलत आरभ्य ललाटप्रदेशेन वामकर्णांतिकेन चक्राकारं त्रिः परिभ्राम्य ललाटदेशे स्थापनरूपं करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम्=अनुषदं वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत्-हे भदन्त ! संसारभयोद्दिग्ना=भवभयत्रस्ताऽहं देवानुग्रियाणां भवताम् अन्तिके=समीपे प्रव्रजितुं=दीक्षां ग्रहीतुम्-इच्छामि खलु । ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरः तां चन्दनवालां अग्रे=पुरतः कृत्वा अन्याः=चन्दनवालातिरिक्ताः वहीः=अनेकाः उग्रभोग राजन्याऽऽ-मात्यप्रभृतीनाम् कन्याः प्रवाजयति=दीक्षयति । पुनश्च वहवः=अनेके-उग्रभोगादिकुलप्रसूताः-नरा नार्यश्च पञ्चा-ण्व्रतिकं सप्तशिक्षात्रतिकम् एवम्=अनेन प्रकारेण द्वादशविधं=द्वादशप्रकारकं गृह्यधर्मं प्रतिपद्य=स्वीकृत्य श्रमणोपासकाः=श्रावकाः जाताः ।

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में भगवान् महावीर स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई जानकर चन्दनवाला दीक्षा ग्रहण करने के लिए उत्सुक होकर भगवान् के निकट पहुँची । उसने भगवान् को आदक्षिण प्रदक्षिण की-हाथजोड़ कर, जुड़े हुए हाथों को दाहिने कान से आरंभ करके ललाट की तरफ से वायें कान के पास तक चक्राकार तीन बार घुमाकर ललाट-प्रदेश पर स्थापित किया । आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके अग्रे कहे हुए वचन कहे-‘हे भगवन् । संसार के भय से त्रास कौ प्राप्त मैं आप-देवानुग्रिय के समीप दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ । तव श्रमण भगवान् महावीरने चन्दनवाला को आगे करके चन्दनवाला के अतिरिक्त और भी बहुत-सी उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल (क्षत्रियकुल) की तथा अमात्य आदि की कन्याओं को दीक्षा प्रदान की । तत्पश्चात् उग्रकुल, भोगकुल आदि कुलों में जन्में हुए अनेक नर-नारियोंने पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत रूप द्वादश प्रकार के गृहस्थ धर्म को अंगीकार किया और श्रावक-श्राविका बने ।

विशेषार्थ—अथयथुसा ७ स सारनेो दुःपद् अतुलव भणता, यदंनयालाभां तीव्र वैशद्यथी धारा छटी. संसार तरक्षनेो वेग धटवा मांसेथो ! भगवानने आहारदान आभ्य पथी, तेनुं मन भूदन्था तरक्ष रेछेनुं छटुं ते क्षण ते सभये भगवानने डेवक्षान उत्पन्न थयुं ञ्छी, यदंनयालान्ती दीक्षा भाटेनी तादावेदी ञ्गी. अने भगवाननी पासे आची दीक्षानी भागछी करी. भगवाने तेने दीक्षा आपी. यदंनयालानी पाछण, उग्रकुण, लोणकुण आदिनी छेन-दिकरीञ्चो, वडुआरे, माताञ्चो, भौदाञ्चो अने दुमारिञ्चोञ्चो पथु दीक्षा दीधी ञेञ्चो दीक्षा देवा असभय् छता तेञ्चोञ्चो पांथ आणुनत अने सात शिक्षाव्रत, अंभ थार अकारनेो गृहस्थ धर्म अंगीकार करो श्रावक श्राविका थया.

उत्तः लच्छ सः श्रमणो मगवान् महावीरः तीर्थंकर नामगोत्रकर्मसंपणार्थे=पूर्वमन्त्रोपासितस्य गोत्रकर्मको निर्गन्तार्यं भ्रमण-भ्रमणी श्रावक-भाषिकास्व्यं चतुर्विधं=चतुष्पकारकं सङ्घं स्थापयित्वा इन्द्रभूतिभूतिभ्यः= इन्द्रभूत्यादिभ्यो गणपरेभ्यः 'उत्सवो वा विगमो वा द्युवो वा' इति=स्थायकारिकां त्रिपदी=चन्द्रप्रयीं ददाति । एतथा=भ्रमणा त्रिपथा गणपराः=इन्द्रभूत्यादयः द्वादशान् गणिपिकक विचयन्ति । एवम्=इत्यत्र एकादशानां

उत्पन्नात् भ्रमण मगवान् महावीर ने पूर्ववत् तीर्थंकर नामगोत्र कर्म का हय करने के लिए, भ्रमण, भ्रमणी, श्रावक और भाषिका रूप चार प्रकार के संप की स्थापना करके इन्द्रभूति आदि गणपरी को उत्पाद, भय और श्रौष्य की त्रिपदी प्रदान की। अर्थात् गणपरी के समस्त यह प्रकृष्टता करते हैं कि जगत् के समस्त देवत, अश्वेतन, सूर्य, अप्सर, मूल, स्वप्न आदि पदार्थ पर्याय की अपेक्षा उत्पत्तिशील और व्ययशील हैं तथा इष्य की अपेक्षा त्रीष्यशील हैं। प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण अपने पूर्वपर्याय का परिचयाग करता है, उनपर पर्याय को ब्रह्म करता है, फिर भी इष्य से उर्जा का रस्यो रखा है। शीघ्र का मनुष्य-पर्याय की अपेक्षा विनाश होता है, खेव-पर्याय की अपेक्षा उत्पाद होता है, किन्तु आत्मद्रव्य वरी का वही बना रहता है।

इस त्रिपदी को प्राप्त करके इन्द्रभूति आदि गणपरी ने गणिपिक रूप द्वादशीगी-आचार आदि चार भागों की रचना की। अर्थात् गणपरी ऐसे मेधावी, धारणाशक्तिसम्पन्न तथा विग्रह मुद्रि के पनी ये कि मगवान के इस सुव-शास्य को समग्र कर उन्होंने उसे अत्यन्त विस्तृत रूप प्रदान किया और वे चार भगवाने आद्य आर्षी, श्रावक, भाषिक रूप अतुविध सवनी स्थापना करी। देवदत्तान यदां, सर्वं एतज्ज्यो निर्भूज्यं कर्त्तव्यं छत्वां आवी अतुविध सवनी स्थापना करवाणी एतज्ज्यो भजवानने देभ कर्त्तव्यं आवी छेगे ? तेदा अवाकभां जे है, आ स्थापना एतज्ज्योर्त्तुं इत्थंवाभां आवी न छवी। परतु भगवाने, पूर्वभवे ने तीर्थंकर नामगोत्रं उपार्त्तनं छेगुं छेगुं तेभां तेदा इणद्वेषे 'वीध' आवावातु छेगु तेभी आ 'वीध नी स्थापना पूव प्रयोगादि कर्मना छदये कर्त्तव्यं पथी प्रभुज्ये अद्यपर देवोने निपरीतुं जान छेगुं' आ निषी कोदहे तस्य परो जेवां छे-उत्पाद, ०यध, जने प्री०य उत्पन्न कोदहे ईत्पत्ति, ०यध कोदहे नाश जने प्री०य कोदहे उपान्शु-विधत्वा आ निपदी आर्षतां, भगवाने निरु-पथ छेगुं' है अतन्ना समस्त पदाशीनी, जेवा छे कित्तन, अश्वेतन, सूर्य, अप्सर, स्वप्न, दे इष्य विजेशेनी तस्य ज्ञानशक्तिया वया छे छे आ ज्ञानशक्त्याजने, जेन-यास्त्रिष्विध सन्तोभां 'पदाशे' इत्थेवाभां आवे छे, आ पदाशे, कर्त्तव्ये छेभवे ईत्थे पदाशेनी अदवातीअ रहे छे; आगन्ती पदाशे नाश पदमे छे जने नवी उत्पन्न साध छे छत्वां ने इत्थे अश्वित आ पदाशे उत्पन्न जने नाश साध छे, ते इत्थेभां छेत्त पथ्य ऐश्वर्ये वया नाश जने इत्थे

उत्पन्न कोदहे ईत्पत्ति, ०यध कोदहे नाश जने प्री०य कोदहे उपान्शु-विधत्वा आ निपदी आर्षतां, भगवाने निरु-पथ छेगुं' है अतन्ना समस्त पदाशीनी, जेवा छे कित्तन, अश्वेतन, सूर्य, अप्सर, स्वप्न, दे इष्य विजेशेनी तस्य ज्ञानशक्तिया वया छे छे आ ज्ञानशक्त्याजने, जेन-यास्त्रिष्विध सन्तोभां 'पदाशे' इत्थेवाभां आवे छे, आ पदाशे, कर्त्तव्ये छेभवे ईत्थे पदाशेनी अदवातीअ रहे छे; आगन्ती पदाशे नाश पदमे छे जने नवी उत्पन्न साध छे छत्वां ने इत्थे अश्वित आ पदाशे उत्पन्न जने नाश साध छे, ते इत्थेभां छेत्त पथ्य ऐश्वर्ये वया नाश जने इत्थे

गणधरणात्, इन्द्रभूत्यादीनां, नव गणाः जाताः । तद्यथा-सप्तानाम्=इन्द्रभूत्य १, -ग्निभूति २-गङ्गभूति ३-
 वृत्कठ-सुधर्म ५-मण्डिक ६-मौर्याणाम् ७, गणधरणां, परस्परभिन्नगणनया समगणाः जाताः । ७ । अकम्पिता १-
 डचलभ्रात्रो २ ईयोरपि परस्पर समानगणनया एको १ गणो जातः ८ । एवं मैतार्यमभासयोरपि एकाचनया
 एको गणो जातः ९ । एवं नव गणा संभूताः ।

अंगों की रचना करने में समर्थ हो सके । इसका अभिप्राय यह भी निकलता है कि समग्र जैनदर्शन का मूल
 आधार उत्पाद व्यय और ध्रौव्य की त्रिपदी ही है । इस त्रिपदी की विस्तृत और विगढ़ प्रालोचना ही जैन
 दर्शन का हृदय है । जैनदर्शन का समस्त दार्शनिक चिन्तन इसी त्रिपदी की भूमिका पर प्रनिष्ठित है ।

द्रव्यपक्षे टकी रहे छे, भाटे प्रत्येक पदार्थ मौल्य-शील होय छे जेटवे हरेक द्रव्य, उत्पाद, व्यय अने मौल्यपक्षे नहेछु
 छे पदार्थ' पर्यायनी अपेक्षाके, 'उत्पत्ति' शील अने 'व्यय' शील अनाय छे, पर द्रव्य अपेक्षाके, 'धौव्य' शील
 भानवामा आवे छे प्रत्येक पदार्थ, प्रतिक्षेप्य पूर्व पर्यायने। परित्याग करे छे, उत्तर पर्यायने अडण करे छे, छता
 द्रव्य तो न्या होय त्याज्य पड्युं रहे छे. छवने, मनुष्य पर्यायनी अपेक्षाके विनाश गणाय छे, देव-पर्यायनी
 अपेक्षाके, उत्पाद गणाय छे, अने आत्म द्रव्यनी अपेक्षाके, मौल्य अनाय छे. आ त्रिपदीनां प्राप्ति यतान्, गणधर
 देवोनी ज्ञानशक्ति धर्षी वृद्ध यात्री भूण तो तेओ गानी छता. ज्ञानना धर्मछुक छता, अने ज्ञान पिपासु पषु भता !
 पषु तेओनी ज्ञानशक्ति, अवणी आती गयेल छती तेभा भगवानने। योग प्राप्त यतां, ते ज्ञानशक्ति भवणी भनी,
 अने ज्ञानने अशुद्ध प्रमाद ने अवरोधित थये छता, ते त्रिपदी द्वारा, अडार अशोधपक्षे वडेवा लाग्ये, अने
 भगवाननी वडेती वाष्पिने अीलवा लाग्ये. देवहीनी वाष्पिना सूक्ष्मतम भायेने अीलवा, गणधरने। पषु यक्तिमान छेतां
 नथी, छतां सर्व करतां, तेभनी श्रद्धशक्ति धर्षी तीव्र होवाथी ते भोटा प्रमादुभां तेनु अडण करी थंड छे
 आ वाष्पिने, गणधर देवे। अीलता गया, अने तेने द्वादशांग रूप पेटीमां वणतां अथां, आ द्वादशांग रूप पेटीमा,
 'आचार्य' आदि गार अ गोनी रचना करवामां अवी छे गणधर देवे, सुद्धिशान्णी, तीव्र सुद्धिना धर्षी तेभज
 तीव्र आडक शक्तिना धारक होवाथी, भगवानना वाक्ये अने शुद्धने समल्ल, तेनुं अत्यंत विस्तृत रूप तेओशि
 अनाथु आ उपरथी जेवे। अभिप्राय नीकणी आवे छे के, सभय जैनदर्शनने। भूण आधार, उत्पाद-व्यय अने
 ध्रौव्यनी त्रिपदी उपर छे. आ त्रिपदीने विशेष विचार, तेनुं भंथन, अने स्वाध्याय जे जैनदर्शनने। सार छे.
 जैनदर्शननु समस्त चिंतन, आ त्रिपदीनी अभिधा उपरज्य केन्द्रित थयुं' छे.

वरत संख्ये स श्रमणां मगधान् महाधरौ मध्यमपापापुरीतः प्रविनिष्काम्यवि=मतिनिस्सरति, प्रविनिष्काम्य=
 प्रविनिस्तस्य अनेकान्=बहून् मरिचान्=मध्यजीवान् प्रतिषोषयन्=प्रविशुद्धान् कुर्वन् अनपदविहार निररति।
 एष=अनेन प्रकारेण अनेकेषु देशेषु विारन् मगधान् महाधीरो जनान्=मध्यजनानाम् अज्ञानैरन्यम् =अज्ञान-
 रूपदाहियम् अपनीय तान् जनान् ज्ञानादिसम्यधियुवान्=ज्ञानादिसम्यक्विद्वाग्भिः अकरोत्=कृतवान्।

ग्यारह गजधरों के नौ गच्छ हुए। वे इस प्रकार-न्द्रश्रुति, अग्निश्रुति, वायुश्रुति, रूपक, सुपर्मा,
 मन्दिक्त और सौर्यपुत्र इन सात गणधरों की भिन्न-भिन्न वाचकारों होने से सातों के सात गच्छ हुए।
 अकम्पित और अचलधारा की वाचना मिलती थी, अत दोनों का एक ही गच्छ बना। इसी प्रकार मेवार्य
 और पमास की भी एक ही वाचना थी, अत एव उन दोनों का भी एक ही गच्छ हुआ। इसी प्रकार नौ गच्छ हुए।
 तदुपरात पर श्रमण भगवान् महाधीर मध्य पाषाणुरी से विहार किये। विहार कर अनेकानेक मध्य
 जीवों को प्रतिषोष पदान करते हुए अत्यद्-विहार विचरने लगे। अनेक देशों में विचरते हुए भगवान्
 महाधीरने मध्य जनों की अज्ञान रूपी दृष्टिवा को दूर करके उन्हें ज्ञानादि की सम्पत्ति से समृद्ध बनाया।
 जैसे आकाश में प्रकाशित होनेवाला सूर्य अन्धकार का विनाश करके जगत् के जीवों को हर्षित करता है,
 उसी प्रकार भगवान् ने मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को दूर करके संसार के पाणियों को ज्ञानव्रित किया।
 तथा मयूरूप में पड़े हुए जनों को ज्ञान रूपी रस्सी से उधारा। अर्थात् आर्यभ-परिग्रह में आसक्त विच

अर्थात् आर्यभ-परिग्रह में आसक्त विच
 वाचयाने दीपे सात अग्ध कथा, अङ्कित जने अन्धकारात्, आ वेठनी सरणी वाचना छेवाधी आ वेठने अङ्क
 आङ्गि अग्ध श्रेष्ठी जेवीर इति शैतारं जने प्रभास, आ वेठनी सरणी वाचना छेवाधी आ वेठने अङ्क-न-पशे
 अङ्क श्रेष्ठी आ प्रयावे नव अग्ध कथा, अत्रवान् पाषाणुरीश्रेष्ठी विहार करी, देशे देशभं विचरवा वाञ्छा अत्रवानना
 उपरप्रभावे, अन्धकारेणो शिवाये तेन कथा वाञ्छे, तेजो स आरना वापधी युक्त कथा स आरनी हाजी अक्षतश्रमांधी
 पूटी, शीतल अंबरी तणे आरवा वाञ्छा, अन्धकार इर कथा वाञ्छे, अचरुपी कथाश्रेष्ठी अनेशन
 आटे अकार नीकणी, अत्रवाननी वाञ्छीरुप अ आरवात तेजोके पान करुं आरवा जने परिश्रम के स आरतु मूल
 छ जेअ अत्रवानकारा निजनेक वाञ्छी अरुतु आ आरवा जने परिश्रम, सब प्रकाशा इवैशन मूल छ, तेम
 अजी कथा अवी छेवाके, तेमो स अतर ल्याज श्रेष्ठी, अने ने स अतर ल्याजी स कथा नके, तेजो, तेजु परिभाषु करी,
 अन्धकारत भावे रहेवा वाञ्छा, अन्धकारान् अज्ञान जने अग्निश्रुत वाञ्छीरुप अचरु कथा, कथा छेवा शिकना पवित्रे।

यथा-अम्बरे=आकाशे प्रकाशमानः=देदीप्यमाना भानुः=सूर्यः अन्धकारम् अपनीय जगद् हर्षयति=आनन्दयति,
 तथा=तेन प्रकारेण जगद्भानुः=स्वकीयकेवलज्ञानरश्मिना जगत्प्रकाशकत्वेन जगत्सूर्यो भगवान् मिथ्यात्वान्धकारम्
 अपनीय=दूरीकृत्य जगत् अहर्षयत्=आनन्दितवान् । तथा-भवकूपपतितान् जनान् ज्ञानरज्ज्वा=ज्ञानरूपया रज्ज्वा
 वहिरुद्वरत्=वहिरुद्धृतवान्, आरम्भपरिश्रमप्रसक्तचित्तान् जनान् ज्ञानप्रदानेन मोक्षमार्गागामिनः कृतवानित्यर्थः ।
 तथा-भगवान्-जलधर इव=मेघ इव अमोघधर्मदेशनामृतधारया=अवन्-यथर्मोपदेशरूपामृतवर्षणेन पृथिवीं असिञ्चत् ।
 अय भावः-यथा-मेघो ग्रीष्मतापत्तां पृथिवीं स्व जलधारयाऽऽर्द्रीकृत्य सस्यसम्पत्तिवह्युलां करोति, तथैव भगवान्
 धर्मोपदेशरूपजलवर्षणेन पृथिवीं=भव्यहृदयभूमिं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपसस्यसम्पत्तियुतामकरोदिति ।

एवम्=पूर्वोक्तेन प्रकारेण-तीर्थङ्करपरिपाट्या दीक्षादिनादारभ्य अनवरतविहारं विहरतः=निरवच्छिन्नविहारं
 कुर्वतो भगवतः एकत्वारिंशत् चातुर्मासाः प्रतिपूर्णाः=व्यतीताः । तद्यथा-एकः प्रथमश्चातुर्मासोऽस्थिरक्रामे=

वाले जीवों को ज्ञानप्रदान करके मोक्षमार्गामी बनाया । तथा-भगवान् ने मेघ के समान अमोघ (सफल)
 धर्म-देशना की सुधा-धारा प्रवाहित करके महीतल का सिंचन किया । अभिप्राय यह है कि जैसे मेघ गर्मी के
 ताप से संतप्त पृथ्वी को अपनी जलधारा से सींचकर धान्य-सम्पत्ति की बहुलता से युक्त कर देता है, उसी
 प्रकार भगवान् ने धर्मोपदेश रूपी जल की वर्षा करके भव्यजीवों की हृदय-भूमि को ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी
 धान्य-सम्पत्ति से युक्त कर दिया ।

इस प्रकार तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार दीक्षा के दिन से लेकर निरन्तर विहार करते हुए
 भगवान् के एकतालीस चौमासे व्यतीत हो गये । वे इस प्रकार हुए-एक पहला चौमासा अस्थिरक ग्राम में ? ,

भन्था. लगवान्ती वाष्ठी निर्भण अने निर्दोष इती, तेथी ते वाष्ठीञ्चे धशा एवोने साथा राडे स्थिर कथां. लगवाननी
 वाष्ठीनुं श्रवण्, जेठ मासना धगधगता ईनाणामा अकणाञ्जेला एवोने जेम ठुं भरदनुं पाष्ठी भणता शांति प्रसरे
 छे, तेम संसार ताथथी तपेला एवोने ठंउकवाणुं भन्थु. अने तेञ्जा पण्ण, आगेकदम भरवा लाग्था. जेम आप्पूट मेध
 धाराथी, पृथ्वी, धन धान्य सयत्ति वडे नाथी उठे छे, तेम लगवाननी दिव्यवाष्ठी वडे, लोडोभां उत्साधु अने आनंठ
 उभारवा लाग्थे. अने लोडोे साथा ज्ञान अने साथा थारित्रना आराधक भन्था.

तीर्थंकरोनी पर परा अनुसार, लगवानना चौमासानी गण्ठनी, वीक्षाना दिवसथी शरु थाय छे, या प्रभाणे
 गण्ठतां, प्रखुना ज्येकनादीस थातुभांम थाय छे. या सधणा थातुभसिा भूण पाठना अतुवढोभां गताववाभां आग्था

अस्थिरान्नि ग्रामे मातः १, एकधम्मननपर्याय २, द्वाै चाहुमाँसो पृष्ठम्भाननपर्याय ४, द्वादश चाहुमाँसा वेमाथी नगरीषण्णिकग्रामनिधायाम् १६, तथा-चतुर्दश चाहुमाँसा रामगुहानगरेऽनगण्यहाननगरनिन्यां नाम्बन्दानामरूपुरालान्वा- निभायाम् ३०, तथा-तद् चाहुमाँसा मिथिलायाम् ३६, तथा-द्वाै चाहुमाँसो मरिचपुरे ३८, एकधातुमाँस आयन्मि क्वाणी नगपर्याय ३९, एकः श्रावस्थ्याम् ४०, तथा-एकधातुमाँसो वलभूमिननमके अनार्यदेने जातः ४०, पञ्चम- अनेन मन्त्राणेण मगवतः एकचत्वारिंशत्सम्पत्काः चाहुमाँसाः प्रतिपूर्णाः=समाप्ताः। ततः खलु जनपदचिह्नारं विहारं मगवान् अपथिमिम्=अन्तिमं द्विचत्वारिंशत्तमं चाहुमाँस पापापुर्यां इत्थिपालरामस्य जोगार्थाः=पुरातन्यां रज्जुकुन्नामायां=कश्यपगण्युरे 'जुंगीपर' इति मस्तिदे स्थितः।म् ०११४।

मूलम्—वेणं काळेणं तेप्य समणेषं समणे मगवं महावीरे आसप नियन्निव्वाणतिरिं अणुइविय मगम पेमाशुतागरचस्स अस्स "मम निव्वाय ददुण केयव्वाणुप्यपिपरिकरो मा मत्तउ" सि यदु गोपमत्तामि दव सम्मामाएय पडिबोइणहं आसन्नगाममि दिवसे पेसीअ।

तेप्य समणे मतत्रे महावीरे वीसं वासाइ अगार वासमगमे वमिय, साइरेगार दुवानससासाइ उउमत्तय परिषाय, देव्याइ वीसं वासाइ केवल्लिपरियाए एवं वायलीसं वासाइ सामण्यपरियाए वसिय, वायणरि वासाइ सन्नाउयं पाव्वाणा लीणे वेयणिक्खा उयनामगुणरुम्मे इमीसे ओत्तप्पिणीए दूतममुत्तमाए समाए पद्ववीएक्काए वीरिं वासहिं अद्वनपेहिं य मासेहिं सेसहिं पावाए वयरीए इयिवायस्स रप्पो रज्जुपसावाए जुग्याए वस्स दुववाणीस इमस्स वासावात्तस्स जेसे चटव्हे मासे सवमे पवले कृषियवदुळे, तस्स ण कृषिय वदुत्तस एक चम्मानगरीं में २, दो चौमासे पृष्ठम्भामें ४, वार देवानी नगरी और गणिनग्राममें १६, चौदह राश्रष्टह नगर के नाम्बन्दा नामक उपानगरमें ३०, छह चौमासे मिथिला नगरीमें ३६ दो मरिचपुरमें ३८, एक आळंभिका नगरीमें ३९, एक धावस्ती नगरीमें ४०, और एक वसभूमि नामक अनार्य देउमें ४१, इस प्रकार मगवाच के एकव्वाणीस चतुर्मास वीत गये। तत्रप्रातः जगपद् विहार करते हुए मगवान् अन्तिम पयामीसका चौमासा करने के लिए पावापुरी में इत्थिपाल राजा के पुरानी जुंगीपर में स्थित हुए।म् ०११४।

७ पुंवा लुध स्ववे शोभासा कवाधी ते वन्ते वस्ती देवनी सधनी सीभाकोने आवरी देवामं आची कीतो आथी धरमा भउथी, काववाननी बाळीने। अपुल्लेकाण भिणवी यडवा इत्त। उवणु अरेरे इ जेवादीसियु आउभाध पावपुरीभांर के ल्वां सधनी स्थास्व, त्रिपरीच भवान विवेहे यडु केतु, तेज गामभं यडु अही कात्राने ते वन्ते पावापुरीभां यल्ल इरना बीस्वथल नामना शब्दनी इव्वालाव्वाभां (अत्रातस्थानभां शोभासु डु) (म०११४)

पन्नरसीपकदेणं जा सा चरसा रयणी, तीए अदरचीए एगे अवीए छहेणं मत्तेणं अपणएणं सपळियं कनिसण्णे दस अञ्जयणाइं पावफलविवागाइं, दस अञ्जयणाइ पुण्णफलविवागाइं कहित्ता, छत्तीसं च अपुहुवागरणाइं वागारित्ता एवं छपण्णं अञ्जयणाइं कहित्ता पहाणं नाम मरुदेवञ्जयणं विभावेमाणे कालगए विइंक्ते समुज्जाए । छिन्न-जाइ जरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगढे परिणिव्बुडे सव्वदुक्खप्यहीणे जाए । तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदे नासं दोच्चे संवच्छरे पीइवद्धणे मासे नंदिवद्धणे पक्खे, अग्गिवेस्से उवसमित्ति अवर नामे दिवसे, देवा-गंदा निरति त्ति अवरनामा रयणी, अच्चे लवे, मुहुत्ते पाण्ण, सिद्धे ओवे, नामे करणे, सव्वट्टसिद्धि मुहुत्ते साई नक्खत्ते चंदेण सद्धि जोगसुवागए चावि होत्था ।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालमए तं रयणिं च णं बह्दि देवेहि देवीहि य ओवयमाणेहि य उपयमाणेहि य देवुज्जेए देवसण्णिवाए देवकहकहे उप्पिजलगभूए यावि होत्था ॥सू० ११५॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः आसन्नां निजनिर्वाणितथिमनुभूय मम प्रेमानुरागंरक्तस्यास्य “मम निर्वाणं दृष्ट्वा केवलज्ञानोत्पत्तिप्रतिबन्धो मा भवतु” इति कृत्वा गौतमस्त्रामिन देवशर्मब्राह्मणप्रतिबोधनार्थमासन्नश्रामे दिवसे प्रैपयत् ।

स खलु श्रमणो भगवान् महावीरत्विशद् वर्षाणि अगारवासमध्ये उपित्वा सातिरेकाणि द्वादशवर्षाणि छद्मस्थपर्याये, देशानानि त्रिशद् वर्षाणि केवलपर्याये, एवं द्विचत्वारिंशद् वर्षाणि श्रामण्यपर्याये उपित्वा

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीरने अपने निर्वाण का दिन समीप जानकर ‘मेरे प्रेम में अनुरक्त इन्द्रभूति के मेरा निर्वाण देखकर केवल ज्ञान की उत्पत्ति में विघ्न न हो, ऐसा विचार कर गौतम स्वामी को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए पास के एक ग्राम में, दिन में भेज दिया ।

वह श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष गृहवास में रहे । कुछ समय अधिक वारह वर्ष तक छद्मस्थ-पर्याय में रहे, तथा कुछ कम तीस वर्ष केवली पर्याय में विचरे । इस प्रकार त्रयालीस वर्ष श्रमण-पर्याय में

सूणने। अर्थ—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि। ते क्षण अने ते समये भगवान् महावीरे योताने। निवोथुद्धणं नल्लु आन्धे। अथुी ‘धन्द्भ्रूत्तने भारा उपर अथागप्रेम छे, अने तेने दीधि, तेनुं उवणसान अवदेशाधर्धं जश’ ओम विचारी गौतम स्वामीने ते दिवसे सांन्हे देवशर्मा ब्राह्मणने प्रतिबोध करवा भेजदी हीध। आ देवशर्मा ब्राह्मण, नल्लकना गाममां रछेतो हुते। अने ते भोक्षपथिक्क तेमज्ज सत्यने अल्लु करवावाणो। जल्लुतो हुते। श्रमणु भगवान् महावीर तीस वर्ष गृहस्थावासमां रह्या। आर वर्षथी कुंछं अथिक्क-अथीत् आर वर्ष साडा छ मास छद्मस्थ-पर्यायमां रह्या। तीस वर्षमां

शासताविवर्षाणि सर्वयुक्तं पालयित्वा हीनो वेदनीयायुक्तनामगोत्रकर्मणि अस्या अनसर्पिण्यादुप्यमसुपमायां
 समायां वदुष्यतिकान्तायां शिवु वर्षेणु अर्द्धनवमेणु च मासेषु, पापायां नगर्षा इस्तिपालस्य रामो रज्जुकडाखायां
 भीर्णायां तस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य वर्षायासस्य यः स चतुर्थो मासः सप्तमः पक्षः कार्तिकशुभुलः, तस्य खलु
 कार्तिकशुभुलस्य पञ्चदशीपक्षे या सा परमा रमणी, तस्या अर्धरात्रौ एकोऽद्वितीयः पल्लेन मकेनापानकेन
 संपत्यङ्गिण्य्या दग् अर्ययनानि पापफलशिपाकानि दुष्कारणयनानि पुष्यफलविपाकानि करयित्वा पदत्रिस्रधा
 पृष्टव्याकारणानि व्याकृत्य एवं पट्टपञ्चाशदर्ययनानि कथयित्वा प्रधानं नाम मरुदेव्याप्ययन विमावयन् कालगतः
 व्यतिकान्तः समुपातः छिन्ननातिनरामरुचकथनः सिद्धो बुद्धो मुक्तोऽन्वकृतः परिनिर्हृतः सर्वदु समरीनो जातः ।

रौ और यहरर वर्षे की समग्र आयु होगी । तत्पश्चात् वेदनीय आयुक्त, नाम और गोत्र कर्म के सीप्य
 होने पर, इस अन्तर्निर्णी फाल के दुष्यम मुपम आरे का अधिक माग बीज जाने पर, तीन वर्ष और
 सावेकाठ मास श्रेय करने पर, पावापुरी में राजा इस्तिपाल के जीर्ण जुगीघर में, उस बयाकीसवें चौमासे के
 चौथे मास, सात में पक्ष-कार्तिक कृष्णपक्ष की अमावास्या की अन्तिम प्राची रात्रि में, एक अद्वितीय (मकेले)
 निर्मल गृहमक की तपस्या करके पर्यकासन से विराजमान हुए । इस अध्ययन पाप के फल-विपाक के और
 इस अध्ययन पुष्य के फल-विपाक के बहकर तथा छरीस बिना पूछे प्रभो का उत्तर देकर-इस प्रकार
 छयन अध्ययन करना कर, प्रपान नामक मरुदेव के अध्ययन का प्ररूपण करते हुए फालघर्म हो मात हुए,
 संसार से निरूप हुए, पुनरागमन-रहित ऊर्ध्वगति-कर गये, जन्म जरा और मरण के बन्धन से रहित होगये ।

शीर्षं चोक्तं देवहीनोवर्षां विषयं. आवी रीते वेतावीथ वर्षं साधुपथोवर्षां रखा अने समग्र रीते अतिर वर्षं
 आयुष्यं पूर्यं ह्युं त्वास्याह वेदनीय, आयुष्य, नाम अने अन्तर्कर्मं कीदृश रतां, अन्वसर्पिणी मज्जा दुष्यमसुपमा
 आशानो वशा अथ आयु अन्तीत रतां तसु वर्षं अने सादा आह आस आधी रहेतां, पावापुरीभां, इस्नीयाह राजनी
 बुनी हरशयण-शायणानाम्, वे तावीसमां शोभासाभां अने अतुमोषना सातमा पञ्चवारिव्याम, आरवक वर
 अभावाश्वा (अुष्यतां आशे वरी अमास-वीवाणी)नी छेकी अर्धरात्रिके, जोडा निर्यत वेतां तपश्चरसु
 इरीने, अर्ध-पवादी आसनवाणीने अत्रयान विरजन्त्या इम विषय नामना सूरतना इह अन्वयतेना अने सुप
 विषयक सुतना इह अन्वयतेननु प्रवचन अभां आह, तथा अणुपुण्येक छन्द्या प्रशयेन छत्तरो आच्या पञ्च,
 अणु अन्वयतेननु इरमान अभां आह 'प्रधान नामना मरुदेवना अन्वयतेननु प्रवचन आहतु अंत तेवाम्,
 अत्रयान शानधर्मं आरन्धा. शानधर्मं पाभवां ससाश्वी निवृत्त यथा; पुनरागमन रहित जन्मा. छिन्नं अति

तस्मिन्काले तस्मिन् समये चन्द्रो नाम द्वितीयः संवत्सरः, प्रीतिवर्धनो मासः, नन्दिवर्धनवेश्यः उप-
शमेत्यपर नामा दिवसः देवानन्दा निरतीत्यपरनाम्नी रजनी अर्चो लवः सुहूर्चः प्राणः, सिद्धः स्तोकः नागः-
करणं, स्वार्थसिद्धो सुहूर्चः स्वातीनक्षत्रं चन्द्रेण सार्धं योगसुपागतं चापि अभवत् ।

यस्यां रजन्यां च खलु श्रमणो भगवान् महावीरः कालगतस्तस्यां रजन्यां च खलु बहुषु देवेषु देवीषु
च अवपत्सु च उत्पत्सु च देवोद्द्योतः देवसंनिपातः देवकलकलः उत्पञ्जलकभूतथाप्यभवत् ॥मृ० ११५॥

टीका—‘तेणं कालेणं तेणं समएणं’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः,
सिद्ध हुए, बुद्ध हुए, सुक्त हुए, परम शान्ति को प्राप्त हुए और समस्त दुःखो से रहित हुए ।

उस काल और उस समय में चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर था, प्रीतिवर्धन मास था, नन्दिवर्धन पक्ष
था । अग्निवेश्य जिसका दूसरा नाम उपशम है, दिन था । देवानन्दा, अपर नाम निरति नामक रात्रि थी ।
अर्ध नामक लव था, सुहूर्च नामक प्राण था, सिद्ध नामक स्तोक था, नाग नामक करण था, सार्थसिद्ध
सुहूर्च था और स्वाती नक्षत्र चन्द्रमा के साथ योग को प्राप्त था ।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ, उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के
नीचे आने और उपर जाने के कारण देव-प्रकाश हुआ, देवों का कल-कल हुआ देवों की बहुत बड़ी
भीड़ लगी ॥मृ० ११५॥

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर ने अपने निर्वाण के दिन समोप

करी गया. जन्म जरा अने मरणना अधनशी रहित अर्ध सिद्ध, सुक्त, परिनिर्धृत, अने सर्वदुःखाना
अंतकारी तथा, परमशान्ति ने पाभी समस्त दुःखेथी रहित गन्था. ते काण अने ते सभये ‘अद्र’ नामनुं थीणुं’
वरस आलवु छुं: तेमा प्रीतिवर्धन भास छुं: अने नद्विवर्धन नामनुं पथपाडियु छुं: ‘अग्निवेश्य’ अथवा
‘उपशम’ नामने द्विस छुं: देवानदा अथवा ‘निरति’ नामनी रात्री छुं: ‘अर्ध’ नामने लव छुं: ‘सुहूर्त’
नामने प्राण छुं: ‘सिद्ध’ नामनुं स्तोक छुं: ‘नाग’ नामनुं करण छुं: ‘सार्थसिद्ध’ नामनुं सुहूर्त छुं: अने
स्वाति नक्षत्रने अद्रसा साथे योग वरती रह्यो छुं: ते रात्रिअे श्रमणु भागवान महावीर निर्वाणु पाग्था, ते रात्रीअि
धया देवदेवाअेना आवागमनने दीधि देव-प्रकाश थवा पाग्थे छुं: ।

आ उपरात देवाने भेगे। नग्थे छुं: देवाने उबकटाटनी साथे धषी बीड पणु नग्थी छुं: । (सू० ११५)
विशेषार्थ—भागवान महावीरि पोताने: अतकाल लणुकमां प्रवर्तते। न्नेथे-अेटद्वे देह छुटवाने वथत आवी

एतदवसर्पिणी सम्बन्धिन्यां दुष्पमसृपमायां समायां बहुव्यतिक्रान्तायासु=अधिकांशेन व्यतीतायां, तस्या पुनः त्रिषु वर्षेषु अर्द्धेनवमेषु=सार्धौष्टासु मासेषु शेषेषु=अवशिष्टेषु सप्त, पापायां नगर्गो हस्तिपालस्य=तदाख्यस्य राज्ञः जीर्णयां=पुराण्यां रज्जुकशालायां तस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य वर्षावासस्य=वर्षपूर्तिनिवासस्य-चातुर्मासस्य यः स चतुर्थो मासः, सप्तमः पक्षः-श्रावणकृष्णपक्षादयं सप्तमः पक्षः कार्तिक बहुलः=कार्तिककृष्णपक्षः, तस्य खलु कार्तिकबहुलस्य=कार्तिककृष्णपक्षस्य पञ्चदशीपक्षे=अमात्रास्यातिथौ या सा चरमा=अन्तिमा रजनी=रात्रिः, तस्याः रजन्या अर्धरात्रे=रात्रेर्द्धभागे एकः-एकाकी अद्वितीयः-अपरसृक्तिगामिजनरहितः, अपानकेन जलपानरहितेन पठेन भक्तेन-दिनद्वयतपोरूपेण युक्तः संपत्यङ्कनिषण्णः=पद्मासनोपविष्टः दश अध्ययनानि पापफलत्रिपाकानि=

नाम श्रौर गोत्र नामक चार अघातिक कर्मों का क्षय हो जाने पर इसी अवसरपिणी काल के दुष्पम-सुपम नामक चौथे आरे का अधिक भाग जीत जाने पर और सिर्फ तीन वर्ष तथा सप्तेष्ट्राठ महीने शेर रहने पर पात्रपुरी में हस्तिपाल राजाकी पुरानी शुल्कशाला में वयालीसवें चौमासे के चौथे मास और सातवें पक्ष में कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में और कार्तिक कृष्णपक्ष की अमावस्या तिथि में, अन्तिम रात्रि के अर्ध भाग में अर्थात् आधी रात के समय में अकेले-दूसरे मोक्षगामी जीव के साथ के विना ही जल-पान रहित बेले की तपस्या के साथ पद्मासन से विराजमान हुए। उस समय त्रिपाकवृत्र के प्रथम स्कन्ध नाम से प्रसिद्ध पाप का

गोत्र कर्म रहेता होय छे. देह छूटतां आ क्योने। पणु सहतर नाथ थर्छ न्य छे अने एव निराकार अवस्था प्रकट करी सिद्ध थाय छे.

लगवानना अंतिमकाण वधते असर्पिण्यकाण आवते। आमां पणु दुग्धम सुषमा नामना थोथा आशने। लगलग धूरे समय व्यतीत थयो। इते ओटले थोथा आराना इक्षत वषु वर्षं अने साडाव्याड भडिना व शाडी रक्षा इता आ समये लगवान पावापुरीमा इता. त्याने राण हुस्तिपाद इते। तेनी गणुथाणां पणु लगवाने जेताबीससुं यातुर्मास क्युं इतुं. आ यतुर्मासने थोथा भडिने। आधी रक्षी इते। तेम व यतुर्मासवुं सातसुं पथवाडियु व्यतीत भध रणुं इतुं. आ मास कारतक भडिनाने इते, जेने आपणु आसो मास तरीडे गणुीके छीय्जे.

कार्तिक वध (शुभरातीमां आसो वध) अभामने द्विवसे अधं रात्रिना पाछदा पछेरे लगवान भोक्ष पधार्था, लगव नने। देह छूटती वधते लगवान ज्येकदा व भोक्षगामी इता. ते समये जगतने। के। पणु एव सिद्ध थयो व न इते। अंतिम समये लगवाने थोवीडारना त्यागइप छुठ आदरेद इते। तपश्केशु साथे पद्मासन वाणी स्थिर

विपाकस्य प्रथमकर्मत्वेन प्रसिद्धानि दुःखविपाकनामकानि दशसत्यकान्यभ्ययनानि, तथा दशअभ्ययनानि
 पुण्यफलविपाकानि=विपाकस्य द्वितीयधृतकर्मत्वेन प्रसिद्धानि सुखविपाकनामकानि दशाभ्ययनानि कथयित्वा,
 च=तुनः पदप्रतिशब्द=पदप्रतिशब्दद्वयनात्मकानि अष्टव्याकरणानि=अष्ट विधेय उक्तानि उच्यन्ते इत्यन्तानां प्रसिद्धानि
 व्याख्या=उक्तानां एतन्=अनेन प्रकारेण पदप्रत्याशब्दभ्ययनानि कथयित्वा प्रधानात्मकं मन्वेद्यभ्ययनम् विभावयन्=
 निरूपयन् काव्यगतः=काव्यमयमात्रः, काव्यस्य विभवस्यैव कालप्रवृत्तः, व्यक्तिकान्तः=सत्साराद् व्यविगतः, समुद्यतः=
 अधुनराहणोक्तं गतः। छिन्नमातिजराभरणन्यनः=उन्मूलितमातिजराभरणकारणकर्मा, सिद्धः=साधितपरमार्थः,
 सुदः=शतवर्षायाः, सुकः=सकलकर्मरूपापवादाद्युक्तः, अन्तः=दूरीकृतसर्वदुःखः, परिनिर्मुक्तः=सर्वसन्त्यापा-
 नात् परमशान्तिमाप्ताः, तथा च कीदृशो जात इति दर्शयति—सर्वदुःखमहीणः=यहीणशरीरमानससर्वदुःखः
 नातः अमत्त ।

फलविपाक दर्शनेनाद्ये इतः दुःखविपाक नामक प्रथमयो को तथा विपाकस्य के द्वितीय अभ्ययन के नाम से
 प्रसिद्ध, पुण्य का फल वतमानेनाद्ये दस सुखविपाक नामक अभ्ययनों को कर कर और उत्तराभ्ययन के नाम से
 प्रसिद्ध छोटीत अभ्ययन रूप अष्टव्याकरणों को अर्थात् पूछे बिना ही किये गये व्याकरणों को कह कर
 और इस प्रकार सब छप्यन करमा कर प्रथम नामक मन्वेद्य अभ्ययन का प्रस्थान करते हुए
 कालभर्म को प्राप्त हुए। अर्थात् काव्यस्यैव और मन्वेद्यस्यैव से मुक्त हुए, पुनरागमन रहित गति को प्राप्त
 हुए, जन्म मरा और मरण के बन्धन से मुक्त हुए, परमार्थ को साधकर सिद्ध हुए, तर्वाय को जानकर
 सुद हुए और समस्त कर्मों के समुद्र से मुक्त हुए, उनके समस्त दुःख दूर हो गये। किसी भी प्रकार का
 संताप न रहने से परम शान्ति को-निर्वाण को-प्राप्त हुए, और इस कारण समस्त शारीरिक और मानसिक
 दुःखों से रहित हो गये ।

भाषा भन, वचनना येने विराल्ना इत्ता, शुभ्त ध्यानना योधा पाये आइके यह पांथ लघुअक्षर जेटहे छ-इ-उ-
 क्त-ए' आ पांथ आक्षेपेना उच्यन्तेषाम् जेटहे। वअत पक्षर थाथ जेटहे। वअत ते थाये रकी येथ रहेथा वेहनीय,
 आमु नाथ, येन आ आर हथेनिना कथ हरी येथक पथाये
 ये वअते जन्मान तपस्या काये पथाशन बाणी विद्या इत्ता ते अमये जन्माननी वाधीनि। उवटयेय प्रवाद
 नीकपये ज्ते। इत्ते जेथ वादस्या भासने। छेके। वरथाथ पदु'यक्तिणी धियभार परे छे तेम जन्माननी आ वाधी
 छेवती इत्ते। तेथे जेटहा शोरे। वाधी वाप आपवा आडी इत्ता ते अक्' शब्दादिह पुत्रथे। अथ छपये वहेत्ता
 यना ने वाधी इये जेहवाड् स्थव मुनेधी ज्वांन आरहेत नीगणव म इया।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये भगवतो-निर्वाणकालावसरे चन्द्रो नामद्वितीयः संवत्सर आसीत्, तथा प्रीतिवर्द्धनो नाम मासः, नन्दिवर्द्धनो नाम पक्षः, उपशमेत्यपरनामा अग्निवेश्यो नाम द्विवसः, निरतीत्यपरनाम्नी देवानन्दा नाम रजनी=रात्रिः, अर्चो नाम लवः, मुहूर्चो नाम प्राणः, सिद्धो नाम स्तोकः, नागो नामकरणं, स्वार्थसिद्धो नाम मुहूर्चः, स्वाती नक्षत्रं चन्द्रेण साई योगं=संवन्धम् उपागतं चापि अभवत् ।

यस्यां रजन्यां=रात्रीं च खलु श्रमणौ भगवान् महावीरः, कालगतः-कालं कृतवान् तस्यां रजन्यां च खलु बहुषु देवेषु देवीषु च अवपतत्सु=अध्यागच्छत्सु उत्पतत्सु=ऊर्ध्वं गच्छत्सु च देवोद्द्योतः=देवमहाशः, देवसंनिपातः=देवसङ्गमः, देवकलकलः=देवनादः उत्पिञ्जलकभूतः=संवायथापि अभवत् । 'बहुहिं देवेहिं' इत्यादिषु सप्तम्यर्थे तुलीया ॥सू-११५॥

मूलम्—तएणं से गौयमसामी ममणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणं मुणिय वज्जाहए विव खणं मोणमोलंविण णड्ढो जाओ । तओ पच्छा मोहवसंगओ सो विलवइ-ओ ! सो ! भदंत महावीर ! हा ! हा ! हा !

उस काल और उस समय में अर्थात् भगवान् के निर्वाण के अवसर पर चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर था। प्रीतिवर्द्धन नामक मास, नन्दिवर्द्धन नामक पक्ष, उपशम जिसका दूसरा नाम है ऐसा अग्निवेश्य नामक दिवस था। देवानन्दा, जिसका दूसरा नाम निरति है, रात्रि थी। अर्ध नामक लव, मुहूर्त्त नामक प्राण, सिद्ध नामक स्तोक, नाग नामक करण, स्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त्त था और स्वाती नक्षत्र के साथ संवाय को प्राप्त था।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ, उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के नीचे जाने और ऊपर जाने से देवप्रकाश हुआ, देवों का संगम हुआ, देवों का कलकल नाद हुआ और देवों की बहुत बड़ी भीड़ भी हुई ॥सू०११५॥

आ वपते भगवानना प्रवयनमा विपाक सूदनो प्रथम शुतस्केधे नेने दु भविपाक तशीके योणपवाभां आवे छे, तेम न विप कसुदनो थल्लि शुतस्केधे नेमा पुइयना सुणइप इणो। वणुव्यां छे ते विपाकसूय वाणीभां अ वपुं' आ उथरात वणुपुछेला जेवा छत्रीस अध्थयनवाणु उत्तराध्थयनसूय तेमना सुथ दाश नीङ्गातुं' छुं', तेम न छापन अंक्कनो पणु प्रवयनमा जणुता इता आ अध्थयनेभां 'मरुदेव'नु' अध्थयन आतपुं' इतुं' ते इरमथान भगवाननेा हेइ छटी गथे अने अणर-अमर अविनाशी अने जैतन्य स्वइप जेवा पदने भगवाननेा आत्मा पाग्थे। ते वपते कथा कथा योगो, नक्षत्रो, सुइतेो, मास, दिन विगरे वरती रथां इता। तेनुं' प्यान भू' पाठमां अकित करवाभां आण्युं' छे (सू०११५)

पीर ! एष किं कथं भगवत्या, नै चरणपद्भुक्तानां म दूरे वेसिय मोचलं गए । किमयं तुम्हं हृत्प्रेम गहिय
 अचिद्विस्त, किं देवाणुष्पियाण निम्नान्यपिमाग अयत्विस्तं, से नं मं दूरे पेसीय । जह दीणसेवगं म सएण
 सदि अनहस्त वो किं मोचस्तनयं संकिण्य अनवित्तं ? महापुरिसा उ सेवगं विणा स्वयंयि न विद्वंति,
 मरुतेण सा नीरं करं विसरिया । इमा पत्रिणी विपरिया जाया । सह भयणं ताव दूरे चिद्वट परं भंतस्सए
 ममं विदि ओउपि दूरे पक्खिनीय । को अवरारो मए इओ व एवं इयं । भद्रुया को ममं गोयम गोपयेसि
 कसिय संबोहिस्सह, कमरं एण पुच्छिस्सामि, को मे वियथायं एणं समाहिस्सह । सोए मिच्छंययारो पसरिस्सह,
 तं कोणं भक्काहिस्सह । एवं निलयमाणे गोयमसामी मणंसि चिंठीय-‘सब, जं वीयरागा रागररिया चेव
 इवति । नस्स नाम चेव वीयरागो से कंसि रागं इओजा ! एवं सुविय ओहिं पउअह । ओहिणा भय
 कुराणियं मोहकम्मिय वीयरागो वारमयकवं नियावराहं जाणिय तं स्वामिय पक्कायावं करेइ अणुविंठेइ य-
 को मयं, अं करस ? एगो एव अप्पा आगच्छइ गच्छइ य, न कोवि तेण सदि आगच्छइ गच्छइ य ।

“ एगो इ नत्ति मे कोह, नाहमन्तस्स इस्स वि ।
 एव मय्यणमणसा, अदीमिणुजासए ” ॥ १ ॥ इवाइ ।

वयणेव एपच भासना माविपस्स गोयमसामिस्स कथियसुक्कादिबयाए दिव्यारोदयसमयमि चेव लोया-
 लोयाभाण्यसमत्य निक्कावं कसियं पडियुणं भन्वाइय निरासणं अर्थच भणुअर केवलरनाणंदसणं समुपपणं ।
 तथा मत्थयाइयाणमंतरओहिसियथियाणवासीहि देवदेवीविंठेहि सयसयाइसिदिहेहि आगंणुण केवलमहिमा कया ।
 तेणुक्कम्मि अमदावंदो संगामो । महापुरिस्ताणं सच्चामि वेढा वियाइरा एव इवति । वहाहि—

“ आंकारो वि बोइस्स, एगो वि युक्कमविओ ।
 विसाओ केवलस्सासी, विचं गोयमसामिओ ॥ १ ॥

नै त्यल्लि व नं समणे मगं मदादीरे काल्हाए, सा रयणी ववेहिं उअजेविया । तय्यमिय सा रयणी
 मोए दीयानियपियसिद्धा जाया । नयमहई नरखेच्छई कासी कोसकगा अह्वारस वि गणरायाणो सत्ता
 गारअरं पोसोववासादुगं कट्ठि । बीए दिवसे कथिय सुवपडिबयाए गोयमसामिस्स केवलमहिमा देवेहिं
 कया, तेणं तं दिवसं युण्णवत्तिारंमदिवसणेण पसिदं मायं । भगवओ जेठुभाउबा नैविदवणेण मगं
 मोइ वगं योवा सोमसापरे निमक्खिण्ण वउत्तं इयं । सुदंसयाए भाणीए तं भासासिय नियगिरे आणाविय
 पउअस्स पारगां कसिय ने. ॥ माउवीयपि पसिदं पणा ॥ प्र० १ ॥ ६ ॥

छाया—तवः खलु स गौतमस्वामी श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य निर्वाणं श्रुत्वा वज्राहत इव क्षण मौनवलम्ब्य स्वब्धो जातः। ततः प्रश्नाद् मोहवशज्ञतः स विलपति—भो भो भदन्त ! महावीर ! हा ! हा ! वीर ! एतत् किं कृतं भगवता ? यत् चरणपुष्पासकं माम् दूरे प्रेष्य मोक्षं गतः, किमहं त्वां हस्तेन गृहीत्वा अस्थास्यम्, किं देवानुप्रियाणां निर्वाणविभागे प्रार्थयिष्यम्, येन मां दूरे प्रेष्यः यदि दीनसेवकं मां स्वकेन सार्द्धंनेष्यः, तदा किं मोक्षनगरं सङ्कीर्णमभविष्यत् ? महापुरुषास्तु सेवकं त्रिना क्षणमपि न तिष्ठन्ति, भदन्तेन सा नीतिः कथं विस्मृता ? इयं प्रवृत्ति विपरीता जाता। सहनयनं तावद् दूरे तिष्ठतु, परमन्तसमये मां दृष्टि-तोऽपि दूरे प्राक्षिपः, कोऽपराधो मया कृतः ?। यद् एवं कृतम्। अधुना को मां गौतम गौतमेति कथयित्वा सम्बोधयिष्यति, कमहं प्रश्न प्रश्यासि, को मे हृदयगत प्रश्न समाश्रयस्यति। लोके मिथ्याग्रन्थकारः प्रसरिष्यति,

मूल का अर्थ—‘तएणं से’ इत्यादि। उसके बाद गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ सुन कर, क्षण भर मौन रह कर मुन्न हो गये, जैसे वज्र का आघात लगा हो। उसके बाद मोह के वशीभूत होकर वह विलाप करने लगे—हे भगवन् ! महावीर ! हा हा ! वीर ! यह क्या किया आपने ? मुझ चरण—सेवक को दूर भेज कर आप मोक्ष चले गये ! मैं क्या आप को हाथ से पकड़ कर बैठ जाता ? क्या देवानुप्रिय के मोक्ष में हिस्सा बँटाने की मांग करता, जिससे मुझे दूर भेज दिया ? अगर इस दीन सेवक को भी साथ लेते जाते तो मोक्षनगर सँकड़ा ही जाता—वहाँ जगह नहीं मिलती ? महापुरुष सेवक के बिना क्षणभर भी नहीं रहते; आपने यह नीति कैसे बिसार दी ? यह तो उल्टी ही बात हुई ! अरे साथ ले जाना तो दूर रहा, मगर अन्तिम समय में मुझे नजरो से भी ओझल फेंक दिया ! ऐसा क्या अपराध किया था मैंने जो यह किया ? आह, अब ‘गोयमा, गोयमा, कह कर कौन मुझे संवोधन करेगा ? मैं किससे

भूणने। अर्थ—‘तएणं से’ इत्यादि. त्थारमाह गौतमस्वामी भगवान् महावीरसुं निर्वाणु सांखणी धडीबर शतकार थर्छ गया तेभने वण् ञेवे। आधात वाग्थे। त्थारपथी मोक्षवथ थर्छ विवाय करवा भंउथा. विदाप करतां करता भोलवा लाग्था के डे भगवान् ! आपे शु क्थुं ? आपे तभारा वरखुसेवकने तरछाडी मोक्ष पधारी गया ? शु डे तभारे। क्षथ पकडी भेसी ज्वानो हुतो ? शुं मोक्षमा भाग पडाववानो हुतो ? नेथी तभोओ भने हर मोक्षली आग्थे। शु तभे भने साथे लर्छ भत तो त्थां जग्थानो तोटो पडत ? भक्षपुइय सेवक विना धडी यणु रडी शकता नथी ! आपे क्छ नीतिनु पादान क्थुं ? आ तो उलटी वान् भनी ! साथे देवानु तो हर रह्छ, पण् अन्तिम सभये तभे नजरथी हर क्थो ! में आवो। क्थो अपराध क्थो हुतो ? ‘अरे भने गोयमा ! गोयमा ! क्छी

तं कः त्वत्तु अपाकारिष्यति ? । एवं विसृज्य गौतमस्वामी मनस्यधित्वयत्-सत्यं, यद् वीतरागाः—नारगराशिवा एव भवन्ति, यस्य नामैव वीतरागः स इस्मिन् रागं कुर्यात् । एवं ज्ञात्वा अवधिं प्रयुञ्जे । अवधिना भक्त्युप पाठिनं मोहकञ्चित् वीतरागोपात्मन्मर्षं निनापराधं ज्ञात्वा सामयित्वा पद्माचापं करोति अन्वधित्वयति च—को मम ? अहं कस्य ? एक एव आत्मा भाग्यच्छति गच्छति च, न कोऽपि तेन सर्वत्र भाग्यच्छति गच्छति च ।

“एकोऽहं नास्ति मे कोऽपि नारमन्यस्य कस्यापि ।

एवमात्मानं मनसा भ्रवीमनुजासयेत्” ॥ १ ॥

प्रश्न—क्यों? कौन मेरे हृदयगत प्रश्न का समाधान करेगा? लोक में निष्पत्य का जो सम्बन्धकार फैलेगा, कौन उसे दूर करेगा? इस प्रकार त्रिकल्प करते-करते गौतमस्वामी ने मन में विचार किया—सच है, वीर राग राग-रहित ही होते हैं। जिसका नाम ही वीतराग है, वह किस पर राग करेगा? यह जानकर गौतम स्वामी ने भवविज्ञान का प्रयोग किया। भवविज्ञान से भक्त्युप में गिरानेवाला, मोहयुक्त और वीतराग को उबहाना देना स्व अपना अपराध जान कर और तप्या कर पद्माचाप किया और विचार किया।

“एगो हं नस्थि मे क्रोधो, नाहमन्नस्त कस्तस्यि ।

एवमपणमजसा, भ्रवीमणमुजासए” ॥१॥इति ।

“मेरा कौन और मैं किसका? प्रकृसा ही आत्मा आत्मा है और जाता है। न कोई उस के साथ आता है न जाता है। मैं भकृसा हूँ, मेरा कोई नहीं है और न मैं ही किसी अन्य का हूँ। इस प्रकार मन से

होखु जोबावो ?’ तु होते प्रभो पूछीया ? आरी यहाउ समाधान होखु करये ? अत्रतना भिआत्त्व रूप अयकारने होखु इर करये ? का प्रभावो विद्याप करतं नौतमस्वामीजे विचार भयो हे जे आनु छि । वीतराग तेरा राजप्रदित अ सोम ! जे राजप्रदित अवा छि तेर वीतराग भवेवाच । आवा वीतरागी केना उपर राग करे ? आनु समजवा नौतम स्वामीजे अवधिज्ञानतेरा उपरोक्त भूखेने ।

भवविज्ञानशी जेता अकुपु हे कयप्रश्नं कइ सेवनारी भोक्तवानी वाणी विावी वीतरागने उपेक्षा हेता भवान् अपराध थाव छे । आधी तेजिजे अदेव अपराधनी आधी आधीने पक्षीचाप कस्या वाज्य पक्षीचाप आजे विचारो उरुशब्को हे—

“एगो हं नस्थि मे क्रोधो, नारमन्नस्त कस्तस्यि ।

एवमपणमजसा, भ्रवीमणमुजासए” ॥ १ ॥ इति ।

हे होख, आइ होखु हे होने । आत्मा जेहोका अय छे अने जोडहो आवे छ । तेनी आइ होखु अउ अउ नथी तेम अ आनउ पखु नथी । हे जोडहो अ छ । आइ होखु नथी अने हे पखु होधने नकरी । अउ आशरे भनथी अधीप यई आत्मा उपर शोचन अकारनाइ भवु जोडहो

इत्यादियचनेन एकत्वभावनाभावितस्य गौतमस्वामिनः कार्तिकशुक्लप्रतिपदि दिनकरोदयसमये एव लोकोलाकाऽऽलोकनसमर्थं निर्माणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णम् अब्याहृतं निराकरणम् अनन्तम् अनुत्तरं केवलविरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् । तदा भवनपतिव्यन्तरज्यौतिषिकविमानत्रासिभिः देवदेवीवृन्दैः स्व-स्व-ऋद्धि-समृद्धिभिः आगत्य केवलमहिमा कृतः । त्रैलोक्ये अमन्दानन्दः संजातः । महापुरुषाणां सर्वा अपि चेष्टाः हितकर्य एव भवन्ति । तथाहि—

“अहङ्कारोऽपि बोधाय, रागोऽपि गुरुभक्तयेः ।

त्रिपादः केवलायासीत्, चित्रं गौतमस्वामिनः” ॥ १ ॥

अपने अदीन=उदार आत्मा का अनुशासन करना चाहिए । इत्यादि वचन से एकत्वभावना से भावित गौतम-स्वामी को कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् के दिन, सूर्योदय के समय ही लोक और अलोक के अवलोकन में समर्थ, निर्वाण का कारण, सब पदार्थों को साक्षात्कार करने वाला, प्रतिपूर्ण अब्याहृत, निरावरण, अनन्त, और अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया । उस समय भवनपति व्यन्तर, ज्यौतिषिक और विमानत्रासी देवी और देवियों के समूह ने अपनी-अपनी ऋद्धि-समृद्धि के साथ आकर केवलज्ञान की महिमा की तीनों लोकों में अमन्द आनन्द हो गया । महापुरुषों की सभी चेष्टाएँ हितकर ही होती हैं । कदा भी है—

“अहंकारो वि बोहस्स, रागो वि गुरुभत्तिओ ।

विसाओ केवलस्सासी, चित्तं गोयम सामिणो” ॥१॥ इति ।

अर्थात्—आश्चर्य है कि गौतमस्वामी का अहंकार बोध-प्राप्ति का कारण बन गया, राग गुरुभक्ति का

आ प्रभाणुं ओकत्व भावनाशी भावित थर्ध गौतम स्वामोओ डारतक सुह ओकभना दिवसे सुयोह्य वधते डेवण-ज्ञान प्राप्तं कथुं. आ डेवणज्ञान डोडालोडने जेवावाणुं निर्वाणना डारणुत्तर, स्वपरप्रकाशक, प्रतिपूर्ण, अव्याहृत, निरावरण, अनन्त, अनुत्तर अने श्रेष्ठ डोय छे डेवणज्ञान साथे डेवणदर्शन पणुं उत्पन्न थयुं. ते समये लवन-पति, व्यन्तर, ज्यौतिषिक अने विमानत्रासी देवदेवीओने सभूड पोतपोतानी रिद्धि-समृद्धि साथे उत्तरी आओ. अने डेवणज्ञानने उत्सव उज्यो. तणुं डोडकं अपूर्व आनंद व्यापी रह्यो. मडापुरुषोने। सर्वव्यवहार डितकर जे डोय छे. डणुं छे ४—

“अहंकारो वि बोहिस्स; रागो वि गुरुभत्तिओ ।

विसाओ केवलस्सासी, चित्तं गोयमसामिणो” ॥ १ ॥

अर्थात्—आश्चर्य छे डे गौतम स्वामीने अहंकार, बोध प्राप्तिनुं डारणुं अनी गथुं. राग गुरुभक्तिनुं डारणुं

यस्यो रजनीयां च लख्म श्रमणो मगनाय् मगधीरः कालगतः सा रजनी देवैर्बुरूपोदिता, तत्प्रसूति सा रजनी लोके दीपात्रचिह्ना इति प्रसिद्धा जाता। नवग्रहकी-नवलेखकी-काशी-कोकिलका अष्टादश्यादि गणराजाः स्मारापारकं पोषकोपनासादिकमूर्धन्। द्वितीये दिवसे कार्तिकशुद्धप्रतिपदि गौतमस्वामिनः केवलस्वामिना देवः कृतः। तेन स दिवसो नूतनवर्षारम्भसन्वयेन प्रसिद्धो जातः। मगवतो ह्येष्टघाता नद्विषयनेन मगवन्ते मोसगतं शुक्ता शोकसागरे निमग्नेन चतुर्थे कृतम्। सुदुर्जनया मगिन्या तमावाप्त्य निरुपरे आनाय्य चतुर्थस्य पारणकं कारितम्, तेन सा कार्तिकशुद्धद्वितीया भ्रातृद्वितीयेति प्रसिद्धिं प्राप्ता। ॥सू० ११६॥

कारण वना-और शोक केवलज्ञान का कारण हो गया।

निस रात्रि में श्रमण मगवान् मुक्त रूप, उस रात्रि में देवी ने स्वयं प्रकाश किया। सभी से यह रात्रि लोक में 'दीपावली' के नाम से प्रसिद्ध हुई। काशी देश के नौ महकरी और कोकिल देश के नौ लेखकी इस प्रकार अकारहों गगराजाओंने संसार से पार करनेवाले दो-दो पोषकोपवास किये। दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला प्रतिपद् को देवी ने गौतमस्वामी के केवलज्ञान की महीमा की। इस कारण वह दिन नूतन वर्षारम्भ का दिन प्रसिद्ध हुआ। मगवान् को मोस गया सुन कर शोक-सागर में डूबे हुए मगवान् के ह्येष्ट घाता नन्दि वर्षने ने उपवास किया। सुदुर्जना हरिन ने उनको सन्तवना देकर और अपने पर पर लाकर उपवास का पारणक कराया। इस कारण कार्तिक शुक्ला द्वितीया 'मार्गि दुन' के नाम से प्रसिद्ध हुई। ॥सू० ११६॥

कई परम्परा योद्धे अने देवद शान्त्युद्द मगधे भुज्

ने अन्तिके श्रमण अगवान् मगधीर अशुद्ध भवा ते रात्रीले देवाले श्रमण प्रकाश भावशी अने तेवी ७ ते सभी योद्धेयं 'दिवानी तरीहे प्रसिद्धि पायी

शशी देयना भवति अतिना नव सुगुटभंभ शकाले अने देयद देयना देवअति अतिना नव अने मुक्त अकार देयना शकालेले संसार पार कथावाजा अन्तिके पोषको उपवास कथा कृता शशी देयना शकाले 'भरिच्छि' तरीहे अने देयद देयना शकाले देवअति तरीहे अणणपाय छे

शीने दिवसे मगधे मुक्त कोकभना दिवसे देवाले गौतमस्वामिना देवकसानगे भवति अने, तेवी ते 'नूतन वर्षारम्भ' तरीहे अणणपाय छे

अगवानने शोक पथाशी अशी शोककृत कथेया अगवानना ह्येष्ट घाता नदीवर्षने उपवास कथे। तेमानी सुदुर्जना अन्तिके नद्विषयने अंतवना आपी तेमने धिताने पर पाण्डु कशांयु तेवी काष्ठशी ७ तरीहे प्रख्यात छे (सू० ११६)

टीका—'तए णं से गोयमसामी' इत्यादि । ततः खलु सः गौतमस्वामी श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य निर्वाणं=मोक्षं श्रुत्वा वज्राऽऽहत इव=बज्रताडितवत् क्षणं=क्षणपर्यन्त, मौनं अवलम्ब्य=आश्रित्य स्तब्धः= कुण्ठितचेष्टः जातः, ततः पश्चात्-तदनु मोहवशद्गतः=जातमोहः स गौतमस्वामी विलपति=विलापं करोति- भो भो भदन्त ! महावीर ! हा ! हा ! वीर ! एतत् किं कृतम् भगवता ? चरणपुष्पासकं=स्वचरणसेवकं माम् दूरे प्रेष्य मोक्षं=निर्वाणं गतः । किम् अहं त्वां हस्तेन गृहीत्वा अस्थायम्=स्थितोऽभिव्यम् ? किं-देवानुभ्रिययाणां निर्वाणविभागं प्रार्थयिष्यम्=अयाचिष्ये ? येन हेतुना मां दूरे प्रेषयः=प्रेषितवान् । यदि दीनसेवकम् मां स्वेन सार्द्धम्=अनेन्यः, तदा-तर्हि किं मोक्षनगरं=मुक्तिपुरं, सङ्कीर्णं=निरवकाशम् अभिविष्यत् ? । महापुरुषास्तु सेवकं विना क्षणमपि न तिष्ठन्ति, भदन्तेन सा=सेवकसहनयनी नीतिः=परिपाटी कथं=केन प्रकारेण विस्मृता= विस्मरणपथं नीता ? इयम्=एषा प्रवृत्तिः विपरीता=विपर्यस्ता जाता । सहनयनं तु तावत् दूरं तिष्ठतु, परं=किन्तु अन्तमयमे=निर्वाणकाले, मां दृष्टितोऽपि=नेत्रतोऽपि दूरे प्राक्षिपः=प्रक्षिप्तवान् । कः अपराधः मया कृतः ?

टीका का अर्थ—तव गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ सुन कर, मानों वज्र से आहत हुए हों, इस प्रकार क्षणभर मौन रह कर सुन्न ही गये ! तत्पश्चात् मोह के वश ही कर वह विलाप करने लगे, हे भगवन् ! महावीर ! हा ! हा ! वीर ! आपने यह क्या किया ? मुझ चरणसेवक को दूर भेज दिया और आप स्वयं मोक्ष चल दिये ! क्या मैं आप को हाथ से पकड़ कर बैठ जाता ? क्या आप के मोक्ष में हिस्सा माँग लेता ? फिर क्यों मुझे दूर भेज दिया ? अगर मुझ गरीब सेवक को अपने साथ लेते जाते तो क्या मोक्ष-नगर में जगह न मिलती ? महापुरुष सेवक के बिना क्षण भर भी नहीं रहते, भदन्त ने यह परिपाटी कैसे खुला दी ? यह ता उल्टी ही बात हो गई ! खैर, साथ ले जाना तो दूर रहा, मुझे आँवों से भी ओझल फूँक दिया ! क्या अपराध किया था मैंने, जिससे आपने ऐसा किया ? अब आप

टीकते। अर्थ—ज्यादे भगवान भडावीर निर्वाणु याभ्या ते साक्षणीने गौतमस्वामीने ज्येष्ठे वज्रपात अथे डोय तेयो आधात दाभ्ये, आ प्रभाष्टे क्षणुवार मौन रहीने स्मभून थर्छ गया त्यारथाह मोक्षेने वश थधने ते विहाय करवा दाभ्या—'हे, हे, भगवान ! भडावीर ! अरे रे ! वीर ! आपे आ शुं कर्छुं ? अरष्ठ सेवक जेवा भने हर भेकडीने आप मोक्षे सिधाभ्या ! शुं हुं आपनेो डाय पकडी जेसी जवानो डतो ? शुं आपना मोक्षमा भाग भागत ? तो भने शा भाटे हर भेकडी हीधी ? जे भने-गसीभ सेवकने आपनी साथे लध गया डोत तो शुं मोक्ष-नगरमां ज्यथा न भगत ? भडायुरुष सेवक विना जेक क्षणु रहेता नथी, आपे आ परिपाटी (नियम) डेम भडावी हीधी ? आ तो जवणी ज वात जनी गध ! जेर, साथे लध जवानुं तो हरररछु पणु भने आंजेो साभेधी

यत्=यस्यात् अपराधात् एवम्=त्यं कृतम् । अधुना=सप्तमि देवानुप्रियाण्याम् असाधे को मां गौतम गौतमेति कथयित्वा सम्बोधयित्वति । कं ननम् अहं प्रभं प्रस्थापि ? को जनो मे=मम हृदयगतं=मनोजबस्थितं प्रभं समापस्यति ? लोके मिथ्यान्यकारः=मिथ्याख्यान्वकारः, प्रसरित्व्यति=विस्तीर्णो भवित्यति, स=मिथ्यान्यकारः, को जनः अपाकरित्व्यति=दूरीकरित्व्यति ? एवम्=इत्यम्, विलपन=विलापं कुर्वन् गौतमस्वामी मनसि=इदि अचि न्ययत्=सत्य=यथार्थं, यत्=वीतरागाः, रागरहित्वा=रागरहित्वा एव भवत्यि यस्य नौमेव वीतरागः सः कस्मिन् रागं कुर्यात् ? अयि तु न कस्मिमापि । एवम्=इत्यम्, ज्ञाना अवधिम्=अवधिज्ञानं प्रयुङ्क्ते । अवधिना=अवधि ज्ञानोपयोगेन मयङ्कृपातिने=संसारस्फुटपातनशीलं मोहकसिच=मोहयुतं वीतरागोपलब्धमरूपम्=भीमशरीरस्वामिनं प्रति उपात्मरूपम्-उपात्ममक्षणं निनापरापं ज्ञाना सामर्थित्वा पभाचापम् कर्तवति । अतुचिन्तयति व-को जनो ममास्ति ? अहं च कस्यास्मि ? अस्मिन् संसारे न कोऽपि ममास्ति, न चाह कस्यचिद्स्मीत्यर्थः ।

देवानुप्रिय के असाध में कौन 'गोयसा, गोयसा' कह कर मुझे संबोधन करेगा ? किससे मैं प्रभ प्रयुँगा ? कौन मेरे मन के प्रभ का समाधान करेगा ? लोक में मिथ्यात्व का अंधकाररूप फैल जायगा, अथ कौन उसे दूर करेगा ? इस प्रकार विलाप करते हुए गौतमस्वामी ने मन में विचार किया-सत्य है; वीतराग, राग से वंचित होवे हैं । जिसका नाम ही वीतराग हो, वह किस पर राग रखेगा ? किसी पर भी नहीं । ऐसा जान कर गौतमस्वामी ने अवधिज्ञान का उपयोग स्थाया । अवधिज्ञान के उपयोग से उन्हें माकूम हुआ कि यह मगधान को उपालम्ब देना मेरा अपराध है । यह अपराध सब कपी कूट में गिराने वाला और मोहवन्धित है ! यह जान कर उन्होंने अपने अपराध के लिए पभाचाप किया और विचार किया कि-

पक्ष अक्षय भयो ? मे ज्येदा भयो अ पराध भयो कतो हे जेमी आपु आभ ठभुं ? इवे आपु वेवानुप्रियना असाध-वयं केषु जेवमा जेवमा जेवमा' इहाने मने सुविधानं कश्चो ? हेने हं प्रभो प्रधीया ? हेवु मारा भनना प्रक्षेदु सुआधानं कश्चो ? दोधमं मिथ्यात्तुपी अंधकार हेबाये. इवे हेवु तेने इर कश्चो ?

आ प्रथमके विलाप कर्त्तव्यं श्रौतमन्वाधीनि भनगं विचार भयो हे सत्य छे वीतराग रात्र विनाना ज्येव छे नेतु नाम अ वीतराग छे ते हेना पर रात्र राजे ? हेरुना पर पवु नही । ज्येव अमछने श्रौतमन्वाधीनि अवधि जानने उपवेश भयो. अवधिज्ञानना उपवेशी तेभने बाणु हे आ प्रथमके अगवानने कथे आपवे ते भाशे अपराध छे आ अपराध अवश्य हुवाभं यान्नार अने शोचनित छे ज्येव अछने तेभके धिवाना अपराध आटे पथ्यात्पय भयो अने विचार भयो हे सत्तारभां माइ हेवु छे ? अने हं हेनेना छे । ज्येदह हे माइ हेरु नही

यतः आत्मा एक एव=सजातीयद्वितीयरहित-एव परलोकात् आगच्छति च=पुनः एकाकी एव लोके गच्छति ।
न कोऽपि तेन-आत्मना सार्द्धं=सह, आगच्छति गच्छति च । तदुक्तम्-‘एगोह’ इत्यादि ।

एकः=अद्वितीयः अहमस्मि, कोऽपि मे=मम नास्ति । अहं च अन्यस्य कस्यापि नास्मि । एवम्=इत्थम्
मनसा=चित्तेन अदीनम्=उदारम् आत्मानम् अनुशासयेत् ॥१॥

इत्यादिवचनेन एकत्वभावनाभावितस्य गौतमस्वामिनः कर्तिकथुरुक्तप्रतिपदि दिनकरोदयसमये=सूर्योदय-
समकाले एव लोकालोकाऽऽलोकनसमर्थं=लोकालोकदर्शनक्षमं निर्वाणं=मोक्षकारणतया तत्स्वरूपं कृत्स्नं सर्वपदार्थ-
साक्षात्कारितया सर्वस्वरूपम् प्रतिपूर्णं=वैकल्यरहितवाऽविकल्पम्, अव्याहृतम्=व्याघातवर्जितं निरावरणम्=
आवरणरहितम्, अनन्तम्=अन्तरहितम्, अनुत्तरम्=सर्वश्रेष्ठं केवलज्ञानदर्शनं=केवलज्ञानं-केवलदर्शनं च समुत्पन्नं=
संसार में मेरा कौन है ? और मैं किस का हूँ, क्यों कि यह आत्मा बिना किसी दूसरे आत्मा के साथ-अकेला ही
परलोक से आता है और अकेला ही परलोक में जाता है । न कोई आत्मा के साथ आना है, न साथ जाता
है । कहा भी है—

‘मैं अकेला हूँ-अद्वितीय हूँ । मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूँ । इस प्रकार मन से अपने
दैन्यरहित-उदार आत्मा का अनुशासन करे !’

इस प्रकार एकत्वभावना से प्रभावित हुए गौतम स्वामी को कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को, ठीक सूर्योदय के
समय ही, लोक और अलोक को जानने-देखने में समर्थ, मोक्ष के कारणभूत, समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष
करने वाले, अविकल्प-सम्पूर्ण, सब प्रकार की रूकावटों से रहित, सब प्रकार के आवरणों से रहित, सब प्रका-
रकी द्रव्य क्षेत्र काल भाव संबंधी परिधियों से रहित तथा शाश्वतस्थायी और सर्वोत्तम केवलज्ञान और

अने हुं’ अर्थने नथी, कारणु ई आत्मा भीज्ज डेअर्छ डेअर्छ पणु आत्माना साथ विना कोडवो न परवोडभांथी आवे छे
अने कोडवो न परवोडभां नय छे. आत्माना साथे डेअर्छ आवतुं पणु नथी अने नतुं पणु नथी. कुंछु पणु छे-

“हुं’ कोडवो छ-अद्वितीय छु भाइं’ डेअर्छ नथी अने हुं’ अर्थने नथी. आ प्रभाणु मनथी पोताना दैन्यरहित-
उदार आत्मानु अनुशासन करे.”

आ प्रभाणु कोडन वावनाथी प्रभावित थयेल गौतम स्वामीने डार्ड सुह कोडमे अराथर सूर्योदयने सभये न
लोड अने आडोडने नणुवा-हेणवाने सभर्थ मोक्षना डारखुलूत, सभस्त पदाथीने प्रत्यक्ष करनार, अविकल्प-संपूर्ण,
सधगी नतनी आडभिदीयो विनानु, सधगा प्रकारना आवन्थो विनानु, सधगा प्रकारनी द्रव्य, क्षेत्र, अण अने

अने हुं’ अर्थने नथी, कारणु ई आत्मा भीज्ज डेअर्छ डेअर्छ पणु आत्माना साथ विना कोडवो न परवोडभांथी आवे छे
अने कोडवो न परवोडभां नय छे. आत्माना साथे डेअर्छ आवतुं पणु नथी अने नतुं पणु नथी. कुंछु पणु छे-

“हुं’ कोडवो छ-अद्वितीय छु भाइं’ डेअर्छ नथी अने हुं’ अर्थने नथी. आ प्रभाणु मनथी पोताना दैन्यरहित-
उदार आत्मानु अनुशासन करे.”

आ प्रभाणु कोडन वावनाथी प्रभावित थयेल गौतम स्वामीने डार्ड सुह कोडमे अराथर सूर्योदयने सभये न
लोड अने आडोडने नणुवा-हेणवाने सभर्थ मोक्षना डारखुलूत, सभस्त पदाथीने प्रत्यक्ष करनार, अविकल्प-संपूर्ण,
सधगी नतनी आडभिदीयो विनानु, सधगा प्रकारना आवन्थो विनानु, सधगा प्रकारनी द्रव्य, क्षेत्र, अण अने

अने हुं’ अर्थने नथी, कारणु ई आत्मा भीज्ज डेअर्छ डेअर्छ पणु आत्माना साथ विना कोडवो न परवोडभांथी आवे छे
अने कोडवो न परवोडभां नय छे. आत्माना साथे डेअर्छ आवतुं पणु नथी अने नतुं पणु नथी. कुंछु पणु छे-

“हुं’ कोडवो छ-अद्वितीय छु भाइं’ डेअर्छ नथी अने हुं’ अर्थने नथी. आ प्रभाणु मनथी पोताना दैन्यरहित-
उदार आत्मानु अनुशासन करे.”

जावयु। तदा=यस्मिन् समये मन्वन्तपतिव्यन्तरयोर्विपिकविमानवासिभिः देवदेवीहृदयैः=देवदेवीसमूहे स्व-स्व-
 ऋदि-समुद्दिभिः, भागवत्य=गौतमस्वामिपार्ष्ण समागत्य केवलमरिमा=केवलमहोत्सवः कृतः। तदा त्रैलोक्ये=
 विपु लोकेषु भगवानन्दः=भगवान् प्रमोदः संगातः। महापुरुषाणां=महात्मनां सर्वा अपि घेष्टाः=क्रिया विशक्याः=
 मोक्षरूपयणकारिण्य एव मचन्ति। तथाहि-

गौतमस्वामिनः अष्टाङ्करोऽपि=विद्यमानदोऽपि गोषाय=सम्यक्प्रमाणये आसीत्=अभूत्, तथा-तस्य रा.गोऽपि
 पुरुमकित=दुरुमकये, आसीत्, विपाद्रोऽपि=मगत्रशिररजनितः खेदोऽपि केवलमाय=केवलज्ञानमाप्तये आसीत्,।
 इत्येवं गौतमस्वामिनः सर्वं चरिं=विश्रम्य=व्यामर्षकारकम् आसीत्। इति।

केवल दर्शन उत्पन्न हो गया। भगवान् गौतम सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये।
 उस समय मन्वन्तपति, व्यन्तर, त्र्योर्विपिक और विमानवासी-चारों निकायों के देवों और देवियों ने
 अपनी-अपनी ऋदि-समुद्दि के साथ गौतमस्वामी के पास आकर फेवलज्ञान का महोत्सव मनाया। उस
 समय तीनों लोकों में खूब आनन्द ही आनन्द हो गया। महापुरुषों की सभी क्रियाएँ शिवकारिणी ही होती हैं।
 देखिए न, गौतम स्वामी को अपनी विषा का अहकार हुआ तो उससे उन्हें सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। अर्थात्
 अहकार से भेरित होकर वे भगवान् को परान्वित करने बड़े को सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। इसी प्रकार उनका
 राग मात्र पुरुमकित का कारण बना। भगवान् के वियोग से उत्पन्न हुआ खेद केवलज्ञान की प्राप्ति का
 कारण हो गया। इस प्रकार गौतमस्वामी का समग्र चरित्र व्यामर्षजनक है-यतोस्ता है।

भाव स ज धी पतिरिन्धे (श्रीमत्) विनाय तथा शायत-स्थायी अने अर्धोत्तम देवगदान अने देवगदहन उत्पत्त
 यत्तु अत्रयान गौतम सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी यत्तु अत्रा ते अभये भवनपति अत्रा, त्र्योर्विपिक अने विमानवासी
 चारै निगमोना देवा अने देवोनाञ्जे पितृपोत्तानी ऋदि-समुद्दिनी चारै भौतम स्वामी पासे आवीने देवगदानेना
 भवेत्प्रसव उत्पन्धे, ते अभये त्रये दौक्षभा आनद आनद उत्पन्न अये।

महापुरुषोनी अपणी रियाञ्जे शिवमरी क्रोम छे बुजोने, गौतम स्वामीने पोत्तानी विषायु व्यङ्गिमान यत्तु
 तो तेथी तेभने सम्यक्त्व प्राप्त यत्तु अर्द्धदे/ठे अत्राक्षरी प्रेशमने तेञ्जे भगवानने पराश्रित हस्था उपश्रमा तो
 सम्यक्त्व परम्भा अत्र प्रभावे तेभने। शत्रुभाव शत्रुमित्रित्तु भास्यु जन्धे। अत्रयानय विरुद्धी उत्पन्न यथेव जेह
 देवगदाननी प्राप्तितु भास्यु जन्धे आ प्रभावे गौतम स्वामीने आशु वरिण व्यामर्षजनक-अनेनाशु छे ने शत्रे

यस्यां रजन्यां=रात्रौ च खलु श्रमणो भगवान् महावीरः कालगतः=कालधर्मं प्राप्तः सा रजनी देवीः
 उद्धोतिता=दिव्यज्योतिषा प्रकाशिता तत्प्रभृति तदादि सा रजनी लोके 'दीपावलि' इति नाम्ना प्रसिद्धा जाता ।
 नवमल्लकी-नवलेच्छकी-काशी-कोसलकाः=मल्लकीजातीयाः काशीदेशस्य नव गणराजाः लेच्छकीजातीयाः
 कोसलदेशस्य नव गणराजा इत्येवं अष्टादशपि गणराजाः संसारपारकरं-भवसमाप्तिकारि षोडशोपवासद्विकं-पोषणं
 पोषः=धर्मपुष्टिः-तं धत्ते=वृह्णातीतिपोषः, स चासावुपवासश्चेति, यद्वा-पोषधर्मः=प्रागुक्तव्युत्पत्तिकम् अष्टम्यादि-
 पर्वदिनजातं तत्रोपवासः-उप=आहारत्यागमुपेत्य वासः=निवसनं-पोषोपवासः, तस्य द्विकं=द्वयम्-चतुर्दश्यासमा-
 वास्यायां च षोडशोपवासम् अक्षुर्वन्=कृतवन्तः । द्वितीये दिवसे=दिने कार्तिकशुद्धप्रतिपदि गौतमस्वामिनः
 केवलमहिमा=केवलज्ञानमहोत्सवो देवैः कृतः । तेन हेतुना स दिवसः=कार्तिकशुद्धप्रतिपदि नूतनवर्षारम्भ-
 दिवसत्वेन प्रसिद्धो जातः । भगवतः-श्रीवीरस्वामिनः ज्येष्ठप्रात्रा नन्दिवर्धनेन भगवन्तं=श्रीवीरस्वामिनं प्रोक्षन्तं=

जिस रात्रि में श्रवण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, वह रात्रि देवों ने दिव्य प्रकारामय
 बना दी थी, तभी से वह रात्रि 'दीपावलि' इस नाम से प्रसिद्ध हुई । मल्लकी-जाति के काशी देश के
 नौ गणराजाओं ने तथा लेच्छकी जाति के नौ गणराजाओं ने, इस प्रकार अठारहों गण-
 राजाओं ने संसार जन्ममरण का अन्त करने वाले दो-दो षोडशोपवास किये । षोष अर्थात् धर्म की पुष्टि
 करने वाला उपवास षोडशोपवास कहलाता है । अथवा धर्म का पोषण करने वाला, अष्टमी आदि पर्व-दिनों में
 किया जाने वाला, आहार आदि का त्याग करके जो धर्मध्यानपूर्वक निवास किया जाता है, वह षोडशोप-
 वास कहलाता है । दूसरे दिन अर्थात् कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को देवों ने गौतम स्वामी के केवलज्ञान का
 महोत्सव मनाया था इस कारण वह दिन-कार्तिक शुक्ला प्रतिपद् नवीन वर्ष के आरंभ का दिन कहलाया ।

श्रमण भगवान् महावीर अणधर्म प्राप्त्या, ते रात्रिने देवोऽपि दिव्य प्रकाशश्री प्रकाशित इती नाथी इती त्भारथी
 ते रात्रि 'दीपावलि'ना आ नामथी प्रसिद्ध थर्ध. मल्लकी जातिना अशी देशना नव गणराजोऽप्ये तथा लेच्छकी
 (लेच्छवी) जातिना कोसल देशना नव गणराजोऽप्ये, आ रीते अठारे गणराजोऽप्ये संसार जन्ममरणेना अन्त
 दावनार ये ये षोडशोपवास कर्था. षोषध अेटडे कु धर्मनी पुष्टि करनार उपवास षोडशोपवास कडेवाय छ.
 अथवा धर्मवुं षोषणु करनार, आठम आदि पर्व दिने कराता, आहार आदिने त्याग करीने ले धर्मध्यान पूर्वक
 निवास कराय छ, ते षोडशोपवास कडेवाय छ. थीने दिवसे अेटडे कार्तिक शुही अेटडे देवोऽपि गौतम स्वामीना
 देवणज्ञानेना महोत्सव उज्जये इतो. ते अारणे ते दिवसे-कार्तिक शुही अेटडे नूतन वर्षेना प्रथम दिवस कडेवाये.

मोक्षमात्र भुत्वा श्लोकसागरे=श्रीश्रीस्वामिमहाविद्योगजनिवशोकसमुद्रे निमग्नेन सत्ता वसुधै=वसुधैवकुतुब कृतम् ।
 सुदुर्लभा=सुदुर्लभानामन्या नन्दिकर्षनस्य भगिन्या ए=नन्दिकर्षनम् आवास्प=पर्यवचननाऽऽभामित कृत्वा
 निजगुरो=स्वमन्त्रे भानास्य वसुधैस्य=वसुधैवकुतुबसः पारणक कारितम् तेन=सा कविकुरुबुद्धितीया 'मातृ
 द्वितीया' इति=अनन नाम्ना प्रसिद्धि=प्रख्यातिं प्राप्ता ॥श्र०११६॥

भगवदौ परिवारवर्णना

मूमम्—तेषु काष्ठेषु तेषु सम्पूर्णं समस्तस्य भगवस्यो महावीरस्य इदमुद्गुणनिर्णय (१४००) चउरस
 सारस्साहृणं उच्छिन्ना साहस्यपया इत्या। चदणवालायमिर्षय (३६००) छसीससमणीसाःस्तौले उच्छिन्ना
 समणीसंपया। संभयोक्वशिष्पमिर्षय (१५९००) एगुणसद्विहरस्सम्भरियाणं एगमयसहरसममयीवासगण
 उच्छिन्ना समथावासमसपया। मुक्सा रेवयमिर्षय (३१८००) अद्धारस्स सारस्सम्भरियाण विसयसरससयम्यो-
 वासियाणं उच्छिन्ना समगोवासियसपया। भजियाणं विगसकासाणं सन्वस्तरसन्निवारिणं विगन्सेव अचित्त
 वापाभाणाणं विसयाण चउरअणुभीज उच्छिन्ना चउरअणुविसपया। अरसयपत्ताणं वेरससयाण ओरिना
 बीण उच्छिन्ना ओरिनायिसंरया। उप्पम्बरनाणदंमणपाण सपसयाणं कूचन्नाणीणं उच्छिन्ना केवलनाणिसंपया।
 अवेयाणं देविदिपणस्य सचसयाण वेउवीमं उच्छिन्ना वेउवियसंपया। आम्भजेसु वीयेसु दोसु य सपुसेसु
 पञ्चचणाणं सभिसिधियाण मणोगए मावे जाणमाणण पंचसयाणं चिउळ्मरिण उच्छिन्ना चिउळ्मसंपया।
 सवेचमणुयापुराणं परिसाए वाए अयतानियाणं चउरसयाणं शरिणं उच्छिन्ना यासपया इत्या। सिद्धाय जार
 सचदुसल्लयहीणाणं सचसयाणं अतेवासीण उच्छिन्ना सपया, एवं वेव चउरमसयाण भजियाण्मिद्धान उच्छिन्ना
 संपया, एव सञ्जा एगवीसइसया सिद्धसंपयाण अणुसरोवसाइयाणं उच्छिन्ना अणुसरोवसाइयासंपया इत्या।
 दुषिा य भंदावभूमि इत्या, उज्जहा-उगंगवभूमि य परियायंगवभूमि य ॥श्र०११७॥

भगवान् महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिकर्षणने, भगवान् को मोक्ष प्राप्त हुआ मुन कू, श्लोक के सागर में
 निमग्न होकर उपवास किया था। तब नन्दिकर्षण श्री शरिण सुदरणा ने उन्हें सान्त्वना दे कर और अपने
 घर में भाकर उपवास का पाशाना कराया। इस कारण कर्षिक शुक द्वितीया 'मार्द-द्वज' के नाम से
 विख्यात हो गई ॥श्र०११६॥

भगवान् महावीर ने। शरिण नन्दिकर्षण, भगवाने शोक प्राप्त होये ते अश्रुणीन, श्रुतना आश्रमां श्रुतिन उपवास
 होये इति त्वरे नन्दिवदन्ती जेन सुश्रुनाञ्जे तेभने आन्तना छ्दिने अने योच्छता रेर आधीने उपवासउ पावसु
 इश-उञ्जे आ शरिजे शरि के शरी नीअ 'आउ अश्रु'ने नाशे भग्माद अश्रुसु-११६॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य इन्द्रभूतिप्रभृतीनां चतुर्दशसहस्र-
 साधूनामुत्कृष्टा साधुसम्पदा जाता। चन्द्रमवालाप्रभृतीनां षट्त्रिंशच्छ्रमणीसाहस्रीणामुत्कृष्टा श्रमणोसम्पदा,
 शङ्खुष्कलिप्रभृतीनामेकोनषष्टिसहस्राभ्यधिकानामेकशतसहस्रश्रमणोपासकानामुत्कृष्टा श्रमणोपासकसम्पदा, सुलसा-
 रेवतीप्रभृतीनामष्टशसहस्राभ्यधिकानां त्रिशतसहस्रश्रमणोपासिकानामुत्कृष्टा श्रमणोपासिकसम्पदा, अजिनानां
 जिनसंकाशानां मर्वाक्षरसंनिपातिना जिनस्येवावितथ व्याकुर्वतां त्रिशतानां चतुर्दशपूर्विणामुत्कृष्टा चतुर्दशपूर्वि-
 सम्पदा, अतिशयप्राप्तानां त्रयोदशतानाम् अबधिज्ञानिना उत्कृष्टा अबधिज्ञानिसम्पदा, उत्पन्नवरज्ञानदर्शनधराणां
 सप्तशतानां केवलज्ञानिना उत्कृष्टा केवलज्ञानिसम्पदा, अदेवानां देवर्दिप्राप्ताना सप्तशतानां वैक्रियिणां उत्कृष्टा

भगवान् के परिवार का वर्णन

मूल का अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर की
 इन्द्रभूति आदि चौदह हजार साधुओं की उत्कृष्ट साधु-संपदा था। चन्दनवाला आदि छत्तीस हजार साधियों की
 उत्कृष्ट साधो संपदा थी। शंख, पुष्कलि आदि एक लाख उनसठ हजार श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावकसम्पदा
 थी। सुलसा रेवती आदि तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्राविका-सम्पदा थी। जिन नहीं
 परन्तु जिन के समान, सर्वाक्षरगन्धिपाती और जिन की भौति ही सत्य प्ररूपणा करनेवाले चौदह पूर्वधारकों की
 उत्कृष्ट तीनसौ चौदह उत्कृष्ट पूर्वधारी-सम्पदा थी। अतिशय को प्राप्त तेरहसौ अबधिज्ञानियों की अबधि-
 ज्ञानी-सम्पदा थी। सातसौ उत्पन्न-र ज्ञानदर्शन को धारण करनेवाले केवलियों की केवली-सम्पदा थी।
 देव न होने पर भी देव-कुट्टि को प्राप्त सातसौ वैक्रियलब्धि के धारकों की वैक्रियिक-सम्पदा थी। अर्हार्ह

लगवानना परिवारनु वर्णन

भूणो अर्थ—‘तेणं कालेण’ इत्यादि ते काल ते समये श्रमणु लगवान भडावीर ने, धन्डभूलि विगेरे योद
 छ्णर साधुओनी उत्कृण्ट साधुसंपदा इती. यहनभाणा विगेरे छत्रीश छ्णर सार्धोओनी उत्कृण्ट संपदा इती.
 श थ, पुण्यक्षलि विगेरे ओक्ष दाण ओगणुसाठ छ्णर श्रावडोनी श्रावक संपदा इती सुलसा देवती विगेरे तणु दाण
 अडार छ्णर श्राविकओनी स पदा तेभने इती. छ्ण नडि पणु छ्ण समान, सर्वाक्षरसन्निपाती अथात् सर्वश्रुतना
 न्णुनार अने नेनी वृत्ति सत्य अरुपणुा करवावागी, ओवा योद पूर्वधारडोनी, तणुसो उत्कृण्ट योद पूर्वधारी स पदा इती.
 अतिशयनी प्राप्तिवाणा तेरसो अबधिज्ञानीओनी—अबधिज्ञानी संपदा इती. सतसो उत्पन्न वरज्ञान दर्शनने धारणु करवा-
 वाणा ईवणजानीओनी ईवणी स पदा इती. देव नडि पणुा देवकुट्टिने प्राप्त सातसो अनिओनी वित्थस संपदा इती.

श्रेयस्करिण्यसम्पदा, अर्धवर्तौपेय द्वीपेयु इत्येव समुद्रयोः पर्याप्तकानां सच्छिद्वपत्रेन्द्रियार्था मनोगतान् भगवान् जानतां पञ्चवर्तानां विपुलमतीनां उत्कृष्टा विपुलमविसम्पदा, सर्वेयमदुनासुरार्यां परिपदि वाये अपरान्जितानां चतुश्चतानां वादिनां उत्कृष्टा वादिसंपदा जाता। सिद्धानां याचत्-सर्वदुःखप्रहीणानां सप्तशतानामन्वेषासिनां उत्कृष्टा संपदा, एषमेव शतदशवतानामार्यिकासिद्धानाम् उत्कृष्टा संपदा, एष सर्वा एकाश्चिद्वतिः श्रुतानि सिद्धसंपदा भासीत्। गतिरुन्म्याणानां स्थितिरुन्म्याणानामागमिप्यद्भ्राजामष्टवतानामनुशरोपपत्तिकानामुत्कृष्टा अनुशरोपपत्तिकस्तम्पदाऽऽसीत्। द्विषिषा चान्तकृतधूमिरासीत्, तद्यथा-युगान्तकृतधूमिम पर्यायान्तकृतधूमिश्च ॥सू० ११७॥

टीका—'तेभं काशेभं तेम समरणं' इत्यादि। तस्मिन् काले तस्मिन् समये भ्रमणस्य भगवतो महावीरस्य इन्द्रधुवि-पशुवीनाम्-इन्द्रधुस्यपीनां चतुर्दशसहस्र १४०० साधूनाम् उत्कृष्टा साधुसम्पदा-साधुसम्पारिणीत्।

द्वीपों और समुद्रों के पर्याप्त संज्ञी श्रेयस्करिण्य सभियों के मनोगत भावों को जाननेवाले पर्याप्त विपुलमति श्रानि योंकी विपुलमति-सम्पदा थी। देवों, मनुष्यों और असुरों सहित परिपद् में, पद-विषाद में, परानित न होनेवाले-चारसौ शदियों की उत्कृष्ट वादी-सम्पदा थी। सिद्धों याचत् समस्त दुःखों से रहित सातसौ सिद्धों की उत्कृष्ट सिद्ध-सम्पदा भी। इसी प्रकार चौदहसौ आर्यिका सिद्धों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। इस तरह दोनों का मिलाकर इकस सौ सिद्धों की सम्पदा थी। गतिरुन्म्याण, स्थितिरुन्म्याण और माचीमद अष्ट सौ अनुशरोपपत्तिकों (अनुशर विमान में उत्पन्न होने वाली) की उत्कृष्ट अनुशरोपपत्तिक सम्पदा थी। वो प्रकार की अनुशरधूमि थी। नैस-युगान्तकृतधूमि और पर्यायान्तकृतधूमि ॥सू० ११७॥

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में भ्रमण भगवान् महावीर की इन्द्रधुवि आदि चौदह हजार साधुओं की उत्कृष्ट साधु-सम्पदा थी; अर्थात् भगवान् के चौदह हजार साधु थे। पन्दनवाला आदि छत्तीस अर्धीप अने छे समुद्र पर्यन्तना पशोसधर्ज्ञी पशोसधर्ज्ञी एवोना भनोभत लायेने अनुवावाणा पशोसे विपुलमति गान्धीजोनी विपुलमति-सम्पदा कर्ती, देवो, मनुष्यो अने असुरो सहितनी परिषदभं वाह-विवाहभं परानित न पवावाणा आरसे वादीजोनी उत्कृष्ट वादीम पदा कर्ती सिद्धो याचत् समस्त दुःखोनी रहित भावसे सिद्धोनी उत्कृष्ट सिद्ध-संपदा कर्ती, आ प्रशारे बोधसे आदिशा-सिद्धोनी उत्कृष्ट स पदा कर्ती, आ प्रभासे अने भणी जोषवीशसे सिद्धोनी स पदा कर्ती, अतिरुन्म्याण स्थितिरुन्म्याण अने लानीक, आरसे अनुशरोपपत्तिको अनुशर विमानभं अनुवावाणी उत्कृष्ट संपदा कर्ती, छे प्रधानी अनुशरधूमि कर्ती, (१) युगान्तकृतधूमि, (२) पर्यायान्तकृतधूमि विमानभं अनुवावाणी निशेषधर्ज्ञे-ते शान अने ते सभसे अमलु लजवान महावीरु, शासन जोरु छे अनुशरधूमि उत्कृष्ट संपदा कर्ती, आशवानना अलकानेना कर्ता देव आशवानरभवी अश्वानी केकर पुत्रो स धु पशोम यानी पदा कर्ता।

चन्दनवालाप्रभृतीनां=चन्दनवालादीनां-पट्टत्रिशच्छ्रमणीसाहस्रीणां=षट्त्रिंशत्सहस्रपरिमितसाध्वीनाम् उत्कृष्टा श्रमणी-सम्पदा-साध्वीरूपसम्पत्तिरासीत् । शक्रपुष्कलिप्रभृतीनां-शङ्खः शतकारनामा, पुष्कली च श्रमणोपासकौ तत्प्रभृतीनां=तदादीनाम् एकोनपष्टिसहस्राभ्यधिकानाम्=एकोनषष्टिसहस्रोत्तरकाणाम् एकशतसहस्रश्रमणोपासकानाम्=एकोनषष्टिसहस्राधिकै एकलक्षसंख्यकश्रावकाणाम् १५९००० उत्कृष्टा श्रमणोपासकसम्पदा-श्रावकरूपसम्पत्तिः जाता । तथा-मुलसा रेवती प्रभृतीनाम्-अष्टादशसहस्राभ्यधिकानाम्=अष्टादशसहस्रोत्तरकाणां, त्रिंशत्सहस्रश्रमणोपासिकानां=अष्टादशसहस्राधिक लक्षत्रयसंख्यकश्राविकाणाम् उत्कृष्टश्रमणोपासिकासम्पदा श्रानिकासम्पत्तिः जाता । तथा-अजिनानाम्=अस-

हजार साध्वियों की उत्कृष्ट साध्वी-संपदा थी, अर्थात् छत्तीस हजार साध्वियां थीं । शंख, शतक-श्रपरनाम-वाले तथा पुष्कलि वगैरह एक लाख उनसठ हजार (१५९०००) श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावक-सम्पदा थी । मुलसा रेवती (रेवती यह भगवानको औपथ दान देने वाली थी ।) आदि तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्राविका सम्पदा थी । जिन अर्थात् सर्वज्ञ न होने पर भी सर्वज्ञ और सर्वाक्षर-सन्निपाती अर्थात्

द्वानो होते। तेमना प्रबन्धननी प्रथम भूमिका वैराग्य हूती. आ प्रबन्धनो कोटला अथा निदोष हुता अने शीतल वहेना के योग्य लोवोनुं वल्लु आ तरक धर्ध रहुं इहुं ने संसारतापभाथी उगरवानो भागं लगवाननी निदोष अने निर्भण वाणी छे, ओम समष्ट धणु आत्मार्थी अने मोक्षार्थी लोवोको साधुव्रतो अंगीकार कर्थां.

पुरुषो उपरात निर्भण अने सरण हूदयनी भडेनो पणु स्वच्छार निमित्ते भगवान पासे हीक्षित थधने लगवाननी आश्रुतमथ वाणीनुं पान करवा लागी. आ वाणी हिलने इ'उंके आपनारी होवाथी आत्मरस भभवा लाग्यो. तेना प्रतापे स्त्री-समुदाये भक्षव्रतो अंगीकार कर्था, नेननी संख्या छत्रीस हज्जरनी हूती, पुरुषो कर्तां स्त्रीओना हूदयो धर्मथी वधादे रगाय छे, तेथी तेमनी संख्या पुरुषो कर्तां वधती गर्ध. तेमनामां सौथी मोटा अने अत्रेसरपहे अंहनथाणा हूती.

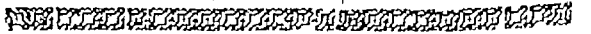
नेको साधुपणुं देवाने अशक्त निवडया तेकोको अर व्रत धारणु कर्थां, कोटले संसारमां रही पापलीक्षि अनी सर्व प्रकारना व्यापादेा तथा लोग अने उपलोगनी वस्तुओनुं परिभाषु करी धार्मिक क्रियाको कर्था करता. नीतिपूर्वक धन प्राप्त करी. निष्पायी लुवन विनाववाता प्रयासो तेको करता. आगे वर्गं धणु। मोटा हुतो अने तेनी संख्या कोक दाभ कोगणुसाह हज्जरनी थर्ध आ वर्गने 'श्रावक वर्गं' कहेवामां आंव्यो, ने लगवानना प्रयेला सिद्धांतो अनुसार यादी तेमना अनुयायीको गणुता हुता. तेकोमां शंभ नेनुं थणीनुं नाम थतक इहुं ते अने पुंश्रलि विगेरे सुभ्य हुता. संसारमां रहेतो स्त्रीवर्गं पणु लगवानना प्रयेला आर व्रतोने अंगीकार करी लुवन

यज्ञानां निजसङ्क्रान्तानां=निजदुःखानाम् सर्वांशरसनिपातिनां सर्वे च ते अक्षरसन्निधाताः=अक्षरसयोगाः-सर्वांशरससि
 गताः, वे सन्ति यथा ते तथा-निद्रितसकृत्वाद्भ्या इत्यर्थः, तेषाम्, पुनः क्रीडितवानाम् ! निजस्येष=निजवत्-
 मन्त्रिय=यथार्थं, न्याङ्कर्तव्य=मन्त्रनिर्णयं कुर्वतां शिशवानां=सर्वप्रयत्नस्यकानां चतुर्दशसंस्त्यकपूर्वपरिणाम् उत्कृष्टा
 चतुर्दशसंस्त्यकानाम्। तथा-अतिशयमाप्तानाम्=ममावस्थाभिनाम् शयोदशशतानां=शिशवोपिकैःसप्तसप्तस्यकानाम्
 अचिन्तानाम्=अचिन्तानवताम् उत्कृष्टा अचिन्तानिसम्पदा-अचिन्तानसम्पदभूमिनिरूपयस्यपि च, तथा-उत्पन्नवत्
 ज्ञानदर्शनपरिणामम् उत्पन्न-समुत्पन्नं यद्वरं ज्ञानं दर्शनं च सर्वमुपचरार्णां सप्तशतानां=सप्तशतसपर्यकानां केवल-
 ज्ञानिनाम् उत्कृष्टा कवचज्ञानिसम्पदा, तथा अद्वयानां=देवमिन्नानामपि वेदविद्विमानां सप्तशतानां=सप्तशतसंस्त्यकानां
 वैद्विषिणां=वैद्विषयश्चिन्मतां उत्कृष्टा वैद्विषयसम्पदा, तथा-भर्तृवृत्तयेषु द्वीपेषु=जम्बूद्वीप-वातकीलण्ड पुष्क-
 सम्पले श्रुत क प्राणा, तथा यथार्थं अर्थात् सर्वत्र जैसा उत्तर देने वाले चौदह पूर्वधारियां की तीन सौ उत्कृष्ट
 चतुर्दशपूर्ववारी सम्पदा यी। अचिन्तान को धारण करानेवाले ममावस्थाली तरह सौ भूमियों की उत्कृष्ट अवधि
 ज्ञानी सम्पदा यी। उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शन को प्राप्त करने वाले सात सौ फेवल्लज्ञानियों की उत्कृष्ट
 कवची-सम्पदा यी। शत्रु न होने पर भी श्रेष्ठ-श्रद्धि अर्थात् वैद्विषयज्ञान को धारण करने वाले सात सौ भूमियों की
 उत्कृष्ट सम्पदा यी। जम्बूद्वीप, वातकीलण्डद्वीप और पुष्करार्थद्वीप-इस तरह अर्थात् द्वीपों के तथा लक्षण

विद्यार्थी, ते भाविना बर्तनी सज्या पक्ष त्रयुवाप्य अक्षरं दृश्यन्ती कृती, तेमा अभ्यपथे सुवसा देवी अने
 ईश्वरी देवी कृतं। ऐश्वर्येणैवाभवानने औपपद्युं शान आशु कृतं

किम नहि पशु किम शरिण्या कोटहे शर्वस नहि पशु सर्वसं समान नेटु साम कटु, 'सर्वाक्षरस्यसिधाती' कोटहे
 स पूर्यं श्रुतज्ञानमा वात्त, अने यथार्थ-कोटहे उपरं समान उत्तरं आप्त्वावाणा कोरं पूरुं ज्ञान धारण करवावाणा
 शोभ पूर्वाभ्यांकोटी त्रयुवोनी सज्या कृत्ये। आ श्रुतज्ञानीकोटी उपदेश सर्वं न देवे च छि आवा श्रुतज्ञानीको
 'श्रुतज्ञानीको' वरीके ज्ञानप्राप्त छि कारण हे नेम देवकीकोने इववसान प्रत्यक्ष ऐवम छि तेम आ श्रुतदेवकीकोने
 इववसान पर्यक्ष ऐव छि। देवकीकोना नेटुछुं च तेको अनुमान प्रभावकी च आवी सहे छि अने कही सहे छि अप्त्वा
 'देवकीको' आभाव-भयनेवकीको उपेवाम श्रुतदेवकीकोने देवकीको बन्ध प्रत्यक्ष अने पर्यक्ष नेटुछो च इरक्ष ऐव छि

प्रत्यक्ष पापी सहे तेमा किपुं य उपेवप्राप्त अने अचिन्तानमा धारण जेवा श्रुतिज्ञानी सज्या तेरसे। नेटवी
 कृत्ये उत्पन्न यवत्त ज्ञान अने दर्शनमा धारण जेवा ज्ञानके इववज्ञानीको प्रभु पश्ये कृता देव नहि पशु देव नेटवी
 विव्यस्यजिनामा धारण जेवा वैद्विषयश्चिन्तनामा धारण करवावाणा अपतसे वैद्विज्ञानो स च प्रभु पश्ये कृत्ये। च श्रुतीय,



राद्रूपेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोः पर्याप्तकानां सञ्ज्ञपञ्चन्द्रियाणां मनोगतान्=हृदयस्थितान् भावान्=अभिप्रायान्
 जानानां पञ्चशतानां=पञ्चशतसंख्यकानां विपुलमतीनाम् उत्कृष्टा विपुलमत्तिसम्पदा, तथा=सदेवमनुजामुरारायाम्=
 देवमनुज्यामुरसहितार्यां, परिपदि=सभाया, वादे=शास्त्रार्थविचारे अपराजितानाम्=अपरास्तानां चतुशतानां=चतुशत-
 संख्यकानां वादिनाम् उत्कृष्टा वादिसम्पदा जाता। तथा=सिद्धानां 'यावत्'-पदेन बुद्धानां, मुक्तानां, परिनिर्वृत्तानाम्,
 इत्येषा संग्रहः, सर्वदुःखप्रहीणानां=प्रहीणसर्वदुःखानां सप्तशतानां=सप्तशतसंख्यकानाम्=अन्तेवासिनां=शिष्याणाम्
 उत्कृष्टा संपदा, एवमेव=अनेन प्रकारेणैव चतुर्दशशतानां=चतुर्दशशतसंख्यानाम् आर्यिकासिद्धानाम्=सिद्धिप्राप्तानां

समुद्र और कालोदधिसमुद्र,-इन दो समुद्रों के प्रयाप्त संगी पंचेन्द्रिय जीवों के मन के भावों पर्यायों को जानने
 वाले पाँच सौ विपुलमत्ति-मनःपर्ययज्ञान के धारक विपुलमतियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। देवों, मनुज्यों और
 असुरों से सहित सभा में शास्त्रार्थ के विचार में पराजित न होने वाले चार सौ वादियोंकी उत्कृष्ट वादी-
 सम्पदाथी। सिद्ध, और 'यावत्'-पद से-बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत तथा सब दुःखों का अन्त करने वाले सातसौ
 सिद्धों की उत्कृष्ट संपदा थी। इसी प्रकार चौदहसौ सिद्धि को प्राप्त साधिव्यों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

धातुश्री अं'उ' अने अर्ध' पुकशरार्ध' द्वीप, ज्येवा अही द्वीपे तथा लवण्य समुद्र अने कालोदधि समुद्र ज्येवा जे समुद्रोभां
 रहेल तन्नाम पथाप्ति प्राप्त करेव सज्ञाछेनेना मनोगत लावे अने वारंवार इरती मननी अवरस्थाने जणुवावाणा
 विपुलमत्ति मनःपर्याय ज्ञानना धरवावाणा विपुलमत्तिज्येवानी स'भ्या पाथसेा नेटवी इती. हेव-मनुष्य अने
 असुरो मर्द्धितनी सभाभा यास्वार्थ' करवाभा कदापि पथु परशुत्त न थाय तेवा वाहीज्योनी स'भ्या यारसेोनी इती.

उपर जणुवेला मनःपर्ययज्ञानना धारकेभा जे विभागेो होय छे. (१) ऋजुमत्ति मनःपर्ययज्ञानवाणा.
 (२) विपुलमत्ति मनःपर्ययज्ञानने धारण्य करवावाणा. तेभा विपुलमत्ति ज्ञान ऋजुमत्तिज्ञान करता रूक्षमलावेने तथा
 मनभा यता परिवर्तनेने जणुी शडे छे ऋजुमत्तिभाणानी स'भ्या हर्थाववाभा आवी नथी. ऋजुमत्तिज्ञान धराववा-
 वाणा आरभाज्यो द्रव्य अने लान मननी सपाटीज्ये तरता लावे-विथारोने जणुी शडे छे. त्यारे विपुलमत्तिवाणा
 मनना अतर्गतभां जे विथार उपस्थित थता होय तेने विशिष्टपण्ये जणुी शडे छे.

अर्द्धि' वाहीज्योनी वात करी ते वाहीज्यो ज्येकतिक वाह करीने पोताना संप्रदायने स्थिर करवाभां प्रथर अने
 प्रणल स्ता नेम अर्द्धि' कहेवु' नथी, पथु अनेकांत दध्थि वातने सिद्ध करवावाणा आ वाहीज्यो इता. सिद्धयावत्
 ज्येदवे सिद्ध पुद्ध मुक्त परिनिर्वृत अने सर्व दु'ज्योना अंत करनार ज्येवा सातसेा सिद्धोनी स'भ्या इती. आ पुरुष
 सिद्धो उपरात ओ-सिद्धो पथु इता, जेमने 'आर्यिकज्यो'ना नामथी ज्येणथवाभां आवे छे. आ सिद्ध आर्यिक-

आर्षिकार्यां सम्पद्य, एतद्ब्रह्मणेन प्रकारेण भयवतः सर्वां एकत्रिंशति' इत्यादि एकत्रिंशतिवृत्तपरिमित सिद्धसम्पत्त्या
 आसीत्। तथा-गतिरुन्मत्तानाम् अन्तरमये शोभनगणितमाम्-मोक्ष्यमाणानाम्, स्थितिक्रम्याणामानाम्-देवलोके
 त्रयस्त्रिंशत्सप्तारोपमस्विति प्राप्यमानानाम्, आगमिष्यद्ब्रह्माणाम्-मदित्यङ्गवे मनुव्यत्वं मायमोक्षरूपमत्र प्राप्स्यमाना
 नाम् अष्टशतानाम्-अष्टशत्संख्यकानाम् अनुचरोपपाठिकानाम् उत्कृष्टा अनुचरोपपाठिकसम्पदा आसीत्। तथा-
 द्विषिचन्द्रिमकारा च अन्तकृतधूमि -आसीत्, तद्यथा-युगान्तकृतधूमिः १ पर्यायान्तकृतधूमिश्च २ तत्र-युगान्त
 कृतधूमिः-युगान्ति-काष्ठमानचिरोपाः, धानि च क्रमवर्तिनि, उत्सायवर्तिन्, तत्सायवर्तिन् ये क्रमवर्तिनो युवद्विव्यपमश्रित्यादिस्थाः
 इस तरह सब विषय कर इकीस सौ सिद्धों की उत्कृष्ट सिद्ध-सम्पदा थी। अगले अन्तर मव में मुक्ति
 पान वाले; देवलोके में शरीर सागरोपम की स्थिति प्राप्त करने वाले तथा जो अगले मव में मनुव्य होकर
 मोक्षस्व मद्र को प्राप्त करेंगे ऐसे आठ सौ अनुचरोपपाठिकों (अनुचरोपपाठिकों) की उत्कृष्ट
 अनुचरोपपाठिक सम्पदा थी।

तथा-श्री मकार की अन्तकृत धूमि यी-(१) युगान्तकृतधूमि और पर्यायान्तकृतधूमि। काल की एक
 प्रकार की स्रवण को युग करते हैं। युगक्रम से होते हैं। इस समानता के कारण एक, द्विव्य, मश्रित्य
 आदि के क्रम से होने वाले पुरुष भी युग करवाते हैं। उन युगों से प्रमित मोक्षगणियों के काल को
 युगान्तकृतधूमि करते हैं। आशय यह है कि सगान्तर मराधीर के तीर्थ में, मगवाच मराधीर के त्रिवाण से
 आरंभ करके जन्मस्वामी के निर्वाण पर्यन्त का काल युगान्तकृतधूमि है। इस के पश्चात् मोक्ष गमन का विच्छेद

दोनों संभ्रान्तों अर्थात् शोभ्ये सुधी अशोभ्ये कते। तथा श्री-पुरुष सिद्धो गणो ज्येष्ठीभ्यो दत्त। अथ भवमां
 लभयान्ती अर्थात् आशुष्यामां विवर्ती वया दत्त, तेजोमां दृष्टव्यां एवा आवता भवमां देवलोकां त्रिवीथ्यं साश्रो-
 पमत् आशुष्यं दत्त देवस्यै देवस्यं कृते ने त्वाश्रयति अथ अनुभवेन श्री शोभनी प्राप्ति करो, अथ अनुचर
 विभावनां देवस्यं क्वावयाणोनी अथमा आशुष्ये नेटवी सुवी

वे प्रकृत 'अवतुत धूमि' शब्दोंवां आवी से (१) युगान्तकृत धूमि, (२) पर्यायान्तकृत धूमि का शोभनी
 ज्येष्ठ प्रकृति कहते 'धूम' शब्द से शोभना पुरुष अथवा श्रितिके वाश्रय पाश्रवां आशुष्य से आव्य ज्येष्ठ शोभ
 जाने युग शब्द से आव्य शोभने पुरुष शम शोभ से शशुष्य से तेनी पुरुष शमशुष्य अथवा श्रित, से युगमां
 शोभयन्ती अर्थात् ज्येष्ठ शुरु, श्रित्य, प्रश्रित्य, निश्रितनी अतुष्टम अथवा ज्येष्ठ शोभनी ज्येष्ठ शोभने ज्येष्ठ शोभने
 शम शमशुष्ये तथा शशुष्ये शोभने युग शमशुष्ये शोभने युग शमशुष्ये शोभने युग शमशुष्ये शोभने युग शमशुष्ये शोभने

પુરુષાસ્તેડપિ યુગાનિ, તૈઃ પ્રમિતા અન્તકૃતાનાં=નિર્વાળગામિનાં શ્રુમિઃ=કાલઃ મગત્તો મહાવીરસ્વામિનસ્તીર્થે તન્નિર્વાળાદારશ્ય જમ્બૂસ્વામિનો નિર્વાળાવધિકો નિર્વાળગામિના કાલ इत्यर्थः । ततः परं निर्वाणगमनमुच्छिन्नम् । द्वितीया-पर्यायान्तकृतश્રુमिः-पर्यायः=મગત્તઃ કેવલિત્વપર્યાયઃ તસ્મિન્-સતિ અન્તો મગ્ગાન્તઃ કૃતો ચૈસ્તેપાં શ્રુમિઃ-શ્રુક્તિમાર્ગશ્રુમિકા, સા પર્યાયાન્તકૃતશ્રુમિઃ-મમવન્મહાવીરસ્ય કેવલજ્ઞાનોત્પ્સ્યન્તરં વર્ષવૃષ્ટયાનન્તરપ્રાર-
બ્ધશ્રુક્તિમાર્ગશ્રુમિરિતિ મત્તઃ । इति श्रुमिद्वयम् ॥सू०११७॥

હો ગયા । શુક્તિમાર્ગ કી શ્રુમિ પર્યાયાન્તકૃતશ્રુમિ કહ્લાતી હૈ । મગગાન્ કી કેવલી-પર્યાય કો યદ્દા ‘પર્યાય’ કહ્વા હૈ । વહ પર્યાય હોને પર જિન્દોને મવ કા અન્ત કિયા-મોક્ષ પાયા, ઉનકી શ્રુમિ પર્યાયાન્તકૃતશ્રુમિ કહ્લાતી હૈ । બાત્પર્થ્ય વહ કિ મગગાન્ મહાવીર કી કેવલી-પર્યાય ઉત્પન્ન હોને કે અન્તર, વાર વર્ષ વાદ પ્રારંભ હુઈ મોક્ષમાર્ગ કી શ્રુમિ પર્યાયાન્તકૃતશ્રુમિ હૈ । यह दौ श्रुमियाँ थीं ॥सू०११७॥

કેમથી થવાવાળી વ્યક્તિઓ ‘યુગપ્રધાનપુરુષ’ તરીકે કહેવાય છે. આવા યુગપ્રધાન પુરુષોની પણ શ્રુમિકાઓ હોય છે. આ શ્રુમિકાઓ પાકતા આવા યુગપ્રધાન પુરુષો પણ બંધ થઇ જાય છે, તેથી આવા સર્વોત્તમ પુરુષોની શ્રુમિકા અદૃશ્ય થયેલી મનાય છે. આની શ્રુમિકાને ‘યુગાન્તકૃત શ્રુમિકા’ કહેવાય છે.

કહેવાતું તાત્પર્ય એમ છે કે લગવાન મહાવીરના શાસનમાં મગવાન મહાવીરના નિવાલુધી આરંભ કરી જ’ણુ સ્વામીના નિર્વાણ પર્યન્તના કાળને ‘યુગાન્તકાળ’ કહે છે ને આ યુગાન્તકાળ ને શ્રુમિકાએ વસ્તી રહ્યો હતો તે શ્રુમિકા ‘યુગાન્તકૃત શ્રુમિકા’ તરીકે ઓળખાય છે. જ’ણુસ્વામી પછી મોક્ષપર્યાય બંધ થઈ ગઈ છે એમ યાઓકૃત વચન છે એટલે જ’ણુસ્વામી નેવા છેલ્લા મહાન યુગપુરુષ ને શ્રુમિકાએ ઘટ ગયા તે મોક્ષશ્રુમિકા હવે બંધ થઈ ગઈ છે તેથી તે શ્રુમિકા ‘યુગાન્તકૃત શ્રુમિકા’ તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. મોક્ષશ્રુમિકાની પહેલાં ટેવલી પર્થોયની શ્રુમિકા હોય છે. મોક્ષપર્યાયશ્રુમિકા નેને ‘યુગાન્તકૃત શ્રુમિકા કહે છે’ તે તેા બંધ થઇ ગઇ ! ત્યારપછીની ટેવલી પર્થોયની શ્રુમિકાની વાત કરીએ.

સુક્તિ-માર્ગ સહાયકારક શ્રુમિકાને પર્થોયાન્તકૃત શ્રુમિકા કહે છે. લગવાનની ટેવલી પર્થોયને અહિં ‘પર્થોય’ કહેવામાં આવી છે. આ પર્થોય ઉત્પન્ન થતા નેમણે ભવનો અંતકર્થો મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરી તેવા ટેવલગાનપ્રાપ્ત છવોની શ્રુમિકા ‘પર્થોયાન્તકૃત શ્રુમિકા’ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે લગવાન મહાવીરની ટેવલી પર્થોય થયાં. પછીના આર વર્ષ બાદ ‘પર્થોયાન્તકૃત શ્રુમિકા’ શરૂ થઈ. આ ‘પર્થોયાન્તકૃત શ્રુમિકા’ને ‘મોક્ષમાર્ગની ઉત્તર શ્રુમિકા’ કહે છે. (સૂ.૧૧૭)

मूलम्—'तेषु कालेषु तेषु समयेषु समामस्तु मगवतो महावीरस्तु पृथग्भिः सिरिद्युष्टम् तामी अवेसि ॥धृ०११८॥
 छाया—वस्मिन् काले वस्मिन् समये भ्रमणस्य मगवतो महावीरस्य पदे श्री सुधर्मस्वामी-आसीत् ॥धृ०११८॥
 टीका—'तेषु कालेषु तेषु समयेषु' इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये भ्रमणस्य मगवतो
 महावीरस्य पदे श्रीसुधर्मस्वामी आसित् । श्रीगौतमस्वामिनः केषुलिवात्पृथग्यत्नात्मावेन श्रीसुधर्मस्वामिन
 पदं पदे स्थापना । यतः आगमे—'युतं मे आयुष्मन् । तेन मगवता पदमास्थातम् । पत्रमुक्तम् । यदि केचस्मिन्
 पदे स्थापनाऽमवित्यपदा केचस्मिन् सर्वसाक्षात्कारात् कुतश्चिदपि भाव्यचिरिहात् मगवता पदमास्थातमेवं मे
 शुभमिति नारुणपिप्यत् । अतः केचस्मी पदे न स्वाप्यसे । इति ॥धृ०११८॥

मूल का अर्थ—'तेषु कालेषु' इत्यादि । उस काल और उस समय में भ्रमण मगवान् महावीर के पाद
 पर श्रीसुधर्मस्वामी थे ॥धृ०११८॥

टीका का अर्थ—उस काल और उस समय में भ्रमण मगवान् महावीर के पाद पर श्री सुधर्मस्वामी थे ।
 श्री गौतम स्वामी केचस्मी हो चुके थे, अतः पाद पर नहीं बैठे; इस कारण सुधर्मस्वामी स्वामी पाद पर प्रतिष्ठित
 किये गये । इस का कारण यह है—आमम में 'मे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उन मगवान ने ऐसा कहा है'
 ऐसा उठे ल है । अगर पाद पर केचस्मी को स्थापना होती तो केचस्मी सर्वश्री-सर्वशु होते हैं, उन्हें किसी से
 कुछ घुतने की आवश्यकता नहीं होती, वो फिर यह ऐसा न करते कि—'मगवान ने ऐसा कहा है, मैंने
 सुना है।' यह पद केचस्मी पाद पर प्रतिष्ठित नहीं किये जाते ॥धृ०११८॥

भूतं अने दीक्षाने अर्थ—'तेषु कालेषु' इत्यादि । ते काल अने ते समये भ्रमण मगवान महावीरना निवस्यु मग
 तेभनी पदे सुधर्मस्वामी निरात्मना ज्ञेयं याचोक्तं हयन छे सुधर्मस्वामी इत्यां पठेद्ये कस्य श्रोतम स्वामीना
 इतो, अथु छे तेजो दीक्षायां नदीक्षु कना तेम ए देवकी पदु कना, त्यारे सुधर्मस्वामी 'देवकी' पदु न कता,
 तेम ए दीक्षा अने पदमा पदु श्रोतम स्वामी इत्यां नाथ कया तो श्रोतम स्वामिनि अरुते सुधर्मस्वामी पाद,
 एवम निरास्तुत बना ते इम वन्तु ?

तेना प्रसूतवर्षां याचोक्तं ज्ञेयं अने छे इ 'हे अयुष्मन् ! मे अयुष्मन् छे इ ते भ्रमणाने ज्ञेयं अस्तु छे'
 देवकी पद एवम जेते तो देवकी सर्वत्र अने सर्वश्री' अथ छे, अने तेने कार्यना प्रवचनाने उच्छेष इत्यादी
 आचरकता ऐहेती नसी पादे स्थित इत्येव अस्मिन् भ्रमणानता प्रवचनाने उच्छेष न इरे तो अत्रवानथ सासनाने एव
 अर्थ अरे श्रोतम स्वामी पदे न निरात्मना (सू०११८)

मूलम्—कोष्ठागसंनिवेशे धम्मिच्छविप्पस्स भदिहाभज्जाए जाओ सुहम्मसामी चल्हसविज्जापारगो फण्णासचारसंते पव्वइओ। तीसं वासाइं मिखिक्खमाण्णामिस्स अंतिए निवसिय भगवओ निव्वाणाणंतं वारस-वरिसाइं छउमत्थपरियाग पाउणित्ता जम्मओ वाणइवरिसंते गोयमसामिनिव्वाणाणंतं केवल्लाणं पाविय अट्टवरिसाइं केवल्लिपरियागे ठिच्चा एणसयवरिसाइं सव्वाउयं पालइत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणा-णंतं वीसइवरिसेसु वीइक्केत्थेज्जु जंबूसामिणं नियपेढे ठाविय शिवं गए ॥सू०११९॥

छाया—कोष्ठाक्सनिवेशे धम्मिच्छविप्पस्य भदिहा भार्यायां जातः। सुधर्मस्वामी चतुर्दशविधापारागः पञ्चाशद्वर्षान्ते प्रव्रजितः। त्रिंशद्वर्षाणि श्रीवर्द्धमानस्वामिनोऽन्तिके न्युष्य भगवतो निर्वाणानन्तरं द्वादशवर्षाणि छद्मस्थपर्यायं पालयित्वा जन्मतो द्विनवतिवर्षान्ते गौतमस्वामिनिर्वाणानन्तरं केवल्लज्ञानं प्राप्याष्टवर्षाणि केवल्लि-पर्याये स्थित्वा एकशतवर्षाणि सर्वयुष्कं पालयित्वा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य निर्वाणानन्तरं त्रिंशतिवर्षेषु वयतिक्रान्तेषु जम्बूस्वामिन निजपेढे स्थापयित्वा शिवं गतः ॥सू०११९॥

सुधर्मा स्वामी का परिचय

मूल का अर्थ—‘कोष्ठागसंनिवेशे’ इत्यादि। सुधर्मास्वामी कोष्ठाक सन्निवेश में धम्मिल ब्राह्मण की महिला भार्या के उद्गरे से जन्मे। चउदह विधाओ के पारगामी थे। पचासवें वर्ष के अन्त में दूरीक्षित हुए। तीस वर्ष तक श्री वर्द्धमान स्वामी के समीप रह कर, भगवान् के निर्वाण के पश्चात् वारह वर्ष तक छद्मस्थ ब्रवस्था में रहे। जन्म से लेकर वानवे वर्ष के अन्त में गौतमस्वामी के निर्वाण के अनन्तर केवल्लज्ञान प्राप्त करके, आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रह कर, एक सौ वर्ष की समग्र आयु भोग कर, भगवान्

सुधर्मा स्वामीना परिचय

भूणो अर्थ—‘कोष्ठाग सन्निवेशे’ इत्यादि. सुधर्मा स्वामी केवल्लक नामना सन्निवेशमां धम्मिब्बद अण्णथुनी अदिदा नामनी भाथानी कुक्षिओ उत्पन्न थथा इता. ओइ विधाओमां पारंगत इता. तेओनी उंभर पथासमे वर्षे पडोथी त्थारे तेओ हीक्षित थथा इता. तीस वर्ष सुधी वर्द्धमानस्वामीनी समीपमां रखा इता. अण्णथानना निर्वाणु आइ आर वर्ष सुधी छद्मस्थ अवस्थामां इता ओट्टे आणुमा वर्षना अंतमां तेमने डेवल्लज्ञाननी प्राप्ति थथ. आ डेवल-ज्ञान गौतमस्वामीना निर्वाणु आइ थथुं इतु. तेओ आठ वर्ष सुधी डेवली अवस्थामा रखा. थधुं भणी ओइसो

टीका—'दोष्टागतसन्निवेश' इत्यादि। कोष्ठगतसन्निवेश=कोष्ठाक नामके ग्रामे, घम्मिलविपस्य=घम्मिमला
 मध्यभागस्य मणिलामार्ग्यां गतः=उत्पन्नः सुधर्मस्वामी चतुर्दशविधापारगः=वेदचतुष्टयं, ऋग्यजुःसामाग्यरथ्य-
 शिक्षा-इत्यन्याकरण-निरुक्त-न्यौक्ति-छन्दोरूप-बेदाश्चतुर्व-मीमांसा-न्याय-धर्मशास्त्रपुराणानि चेति चतुर्दश-
 विधापारगतः, पञ्चाद्वर्षादे प्रसन्नितः=दीक्षां युहीतवान्। तत्र त्रिंशद् वर्षाणि-यावत् धर्मवर्षमानस्त्वामिनः
 अन्तिके=समीपे 'पुण्य=निवासं कृत्वा भगवतः=धीवीरस्त्वामिनो, निर्वाणानन्तरं=मोक्षमाप्पनन्तरं द्वास्त्रवर्षाणि
 छपस्यर्षाणं पालयित्वा, नन्तरं=उत्पत्तिकामात् द्वात्रिंशत् वर्षाणं गौतमस्वामिनिर्वाणानन्तरं केवलज्ञानं माप्य,
 अष्टवर्षाणि केवलवर्षाणि स्थित्वा एकशतवर्षाणि सर्वापुष्कं=सकलमायुः पालयित्वा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य
 महावीरक निर्वाणके षाड् वीस वर्षे वीर जाने पर जन्मस्वामी को अपने पाट पर स्थापित करते
 मोक्ष गप ॥मू०१९॥

टीका का अर्थ—कोष्ठाक नामक ग्राम में, घम्मिल नामक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी भरिला पी।
 सुधर्मस्वामी उसी के उदर से उत्पन्न हुए। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद में शिक्षा, कल्प,
 ब्याकरण, निरुक्त, न्यौक्ति और छन्द-इन छह वेदों में तथा मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण इन
 सब चतुर्दश विधाओं में पारंगत थे। पचासवें वर्ष के अन्त में उन्होंने दीक्षा शरीकार की। उसके बाद
 वीस वर्ष तक धर्ममानस्वामी के समीप निवास करके, भगवान वीर स्वामी के निर्वाण के पञ्चाद
 वारह वर्ष तक छपस्य-वर्षाणं में रह कर, मन्म से शान्ते (९२) वर्ष के अन्त में, गौतमस्वामी के मोक्ष
 जाने के बाद केवलज्ञान प्राप्त करके, आठ वर्ष तक केवली-वर्षाणं में स्थिर रह कर, एकसौ वर्ष की

वयस्य आशुभ पक्ष करी तेजे। मोक्ष पधामं. तेजे। भगवान महावीरना निर्वाणु ग्वाह वीय वष पूश। यये मोक्ष
 गया क्या मोक्ष पधामो पछेबा। तेजे।ने व भूस्वामीने शीत्तानी पाटे स्थपित भयो क्वा. (सं० ११८)

टीकाने अर्थ—दोष्ठाक नामका सन्निवेशमें प्रसिद्ध नामने जोष्ठ ब्राह्मण रहेते। क्ता तेनी पत्नीजि नाम
 भरिला क्द सुधर्मो स्वामी तेने शेटे व म पाम्थ्य क्वा. तेजे। मग्देह आभवेह, यजुर्वेद अने अथर्ववेदभां
 नियुक्त क्वा. शिमा-इत्य-न्याय-विश्व-न्यौक्ति-निष्ठा-न्यौक्ति-अने छड् जोषा वेदना क्जे अजोभां पारजत क्वा. भीमांसा
 न्याय धर्मशास्त्र अने पुराण विद्वेरे लयी भली मोह विद्याजोभां प्रवीण क्वा. प्रभुने। योग तेभने पञ्चासमा वर्षे
 भास भये। नीरव वषे सुधी तेमके भगवानने। समाजम भये। त्वाए पछी सधुयधरोभां पक्का आनल वधी आशुभा

निर्वाणानन्तरं विशतिवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु निजपट्टे=जम्बूस्वामिनं स्थापयित्वा शिवं=मोक्षं गतः ॥सू०११९॥

जंबूस्वामिपरिचयो

मूलम्—रायगिहे णयरे उसभदत्तस्स सेट्ठिणो धारिणीए अंगजाओ पंचमदेवलोगाओ चुओ जंबू नाम पुत्तो होत्था। सो य सोलसवरिसीओ सिरीसुहम्मसामिसमीवे धम्मं सोच्चा पडिबुद्धो पडिवन्नसीलसम्मत्तो अम्मापिऊणं द्ढागहेण अट्टकन्नाओ परिणीअ। त्रिवाहरचीए सो ससिणेहाहि-ताहि पेसंसमिय वाणीहिं न वामोहिओ। सो य परोपरं कहापडिक्काहिं ता अट्टवि इत्थीओ पडिवोहीअ। तीए रत्तीए चौरियट्टं गिहे पविट्ठं नवनवह अब्भहिंएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुड पभवाभिहं चोरंपि पडिवोहीअ। तओ पच्छा उइयंमि दिणयरे पंचसयचोरभज्जट्टग-तज्जणगजणणीहिसद्धिं समय पचसयसचवीसइमो होऊणं णवणवईओ क्कणगकोडीओ परिच्चज्जा सुहम्मसामिसमीवे पवइओ। से ण सिरिजबूसामी सोलसवरिसाइ गिहत्थत्ते, वीस वासाइ छाउमत्थे, चोया-लीसं वासाइं केवल्लिपज्जाए, एवमसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता पमवं अणगारं नियपट्टे ठाविय सिरिचीर निव्वाणाओ चउसट्ठित्ते वरिसे सिद्धिं गए।

सिरि जंबूसामी जाव मोक्खंगओ नासो ताव एव भरहे वासे दसठणा भविंसु, तं जहा-मणपज्जवणणं १, परमोहिणणं २, पुलागलद्धी ३, आहारगसरीरं ४, खवगसेणी ५, उवसमसेणी ६, जिगकप्पो ७, संजमत्तिगं ८, केवल्लणणं ९, मिञ्झणा १० य त्ति। मोक्खं गए उ तस्सिं एया ठाणा बुच्चिण्णा।

भवंति एत्थ दुवे संगहणी गाहाओ—

वारसवरिसोहिं गोयसु, सिद्धो वीराउ वीसहिं सुहम्मो।
चउसट्टीए जंबू, बुच्चिण्णा तत्थ दस ठाणा ॥१॥

मण १, परमोहि २, पुलाए ३, आहारग ४, खवग ५, उवसमे ६, कप्पे ७।
संजमत्तिग ८, केवल ९, सिञ्झणा १०, य जंबुम्मि बुच्चिण्णा ॥२॥ इइ ॥सू०१२०॥

समस्त आयु भोग कर, श्रमण भगवान् महावीर के मोक्षगमन के पश्चात् वीस वर्ष व्यतीत होने पर जंबू स्वामी को अपने पाट पर स्थापित करके मोक्ष पधारे ॥सू०११९॥

वर्षे डेवल्लज्ञाननी आसि डरी आठ वर्षं सुधी डेवली अवस्था मा स्थित रली सोसुं (१००) वर्षं पूइं इथी आठ जोट्टे लगवान मोक्षे गया पथी वीस वर्षं पूराथये मोक्षमार्गं खुट्ठेो रळे ने लगवाननी दाक्षणागी दोडोने सतत सालणवा भये ते धारादाथी ज'थूसवामी नेवा उत्तम अने योअ्य पुरुधने पाटे स्थिर इथी. (सू०११९)

छाया—रानद्युरे नगरे ऋपमदक्षस्य श्रेष्ठिनो वारिण्या अङ्गजातः पञ्चमवेषलोकाच्युतो जंबूनामपुत्र आसीत् । स च षोडशवर्षीयः श्रीसुर्यमस्वामिसमीपे वसन् भ्रुत्वा प्रविष्टुः प्रतिपन्नश्रीलसम्यक्तः अम्बापिप्रोहोहाप्रोषोषाष्टकन्याः पश्यन् । विवाहारात्रौ सस्नेहाभिस्तामिः प्रेमसंयुक्ताम्भीर्भिलम्पामोरितः । स च परस्परं कृया प्रतिक्रियामिस्ता अद्यापि स्त्रियः प्रत्यबोधयत् । तस्यां रात्रौ चौर्यार्थं दुरे मषिष्ट नवनन्यप्ययिक्रतुर्मिबोरसतैः परिवृतं प्रम धामिर्षं चौरमपि प्रत्यबोधयत् । ततः पश्चात् उदिते दिनकरे पञ्चशतचोर—मार्पाष्टक—तज्जनकजननी—निजजनक-

जन्तुस्वामी का परिचय

मूल का अर्थ—‘रायगिहो’ इत्यादि । राजसूदनगर में ऋपमदक्ष श्रेष्ठी की वारिणी नामक भार्या की मूल से उत्पन्न, पञ्चम देवदोक से आये हुए जंपू नामक पुत्र थे । सोलह वर्षकी उम्र में सुधर्मास्वामी के समीप वसं सुनकर प्रविबोध पाया । शीलव्रत और सम्यक्चर धारण किया । माता-पिता के प्रबल आग्रह से आठ कन्याओं के साथ विवाह किया । मुहागरात में वह स्नेहवती पत्नियों की प्रेमपूर्ण वाणी से मोहित न हुए । उन्होंने ने परस्पर कृपाओं के उत्तर में कृपाएँ करकर आठों पत्नीओं को प्रतिबोधित किया । उसी रात्रि में चोरी करने के लिए घर में द्रुसे हुए चारसौ नित्यानवे (४९९) चोरों सहित प्रमथ नामक चोर को भी प्रतिबोधित किया । उसके बाद दिन उगने पर पांचसौ चोरों, आठों पत्नीओं, पत्नीओं के माता-पिताओं

जन्तुस्वामीने परिचय

भूतनेा नक्षत्रं—‘रायगिहो’ इत्यादि शब्दयुक्ती नक्षत्रीमां नक्षत्रवत्तु यैतने धारिणी नामनी आधां इत्यादि तेने जन्तु नामनेा खिन्न पुत्र इतो, ते पावभा देवदोकधी ज्वाल्ये इतो. सोल वषर्नी उमरे तेखे सुधर्मास्वामीनी पासे धर्म सांभल्ये. आ सासजी तेने प्रतिबोध कये प्रतिबोध कर्ता तेभखे शीलमत जग्गीकार क्युं ने साथे साथे सम्भरवने पण धारण क्ये। माता-पिताना प्रलव जालकधी तेभखे ज्वाल क-वाजे साथेन पाबिभक्ष्य क्युं प्रथम कन्तीने पण ते ज्वावी स्नेहाद जने सुदर पत्नीना प्रेमभी शोचित न कथा तेभखे ज्वाभ शत प्रभोत्तरी क ज्वाडे अस्त्रिने देशज्जनी भावना अश्रुत करी.

ज्वा वजते तेभना धरमां ज्वासे नवाण्ण किरां धाजव कथा ज्वा किरातेना उपरी प्रलव नामने। योरो ज्वाइ इतो, तेने पण जन्तुजे कोष ज्वापी वैशज्जधान ज्वा-ये। त्वास्याइ वीजे दिवसे धांजसे ज्वाइ, ज्वाइ योतानी पत्नीजि।

जननीभिः सार्धं स्वयं पञ्चशतसप्तविंशतितमो भूत्वा नवनवति कनककोटीःपरित्यज्य सुधर्मस्वामीसमीपे प्रव्रजितः । स खलु षोडशवर्षाणि गृहस्थत्वे, त्रिंशद्वर्षाणि छात्रस्थये, चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि केवलपर्याये, एवमत्रीति-वर्षाणि सर्वायुष्कं पालयित्वा प्रभवमन्तगारं निजपट्टे स्थापयित्वा श्रीवीरनिर्वाणाच्चतुष्षष्टितमे वर्षे सिद्धिं गतः ।

श्रीजंबूस्वामि मोक्षं गते वर्षे दशस्थानानि व्युच्छिन्नानि, तद्यथा-मनःपर्यवज्ञानम् १, परमा-वधिज्ञानम् २, पुलाकलब्धिः ३, आहारकशरीरम् ४, क्षपकश्रेणिः ५, उपशमश्रेणिः ६, जिनकल्पः ७, संयम-त्रिकम् ८, केवलज्ञानम् ९, सिद्धि १०, इति । मोक्षं गते तु तस्मिन् एतानि स्थानानि व्युच्छिन्नानि ।

तथा अपने माता-पिता के साथ, स्वयं पाँचसो सत्चाईसवें होकर निन्म्यानवें करोड सौनैयों का त्याग करके सुधर्मास्वामी के समीप संयम धारण किया । वह सोलह वर्ष गृहस्थावस्था में, बीस वर्ष छात्रस्थावस्था में, चत्वारसीस वर्ष केवली-पर्याय में रह कर और कुल अस्सी वर्ष की आयु पाल कर प्रभव अन्तगार को अपने पाट पर स्थापित करके श्रीवीरनिर्वाण से चौसठवें वर्ष में सिद्धि को प्राप्त हुए ।

श्री जंबूस्वामी के मोक्ष जाने पर इस भरतक्षेत्र में दस स्थानों का विच्छेद हो गया । वह इस प्रकार हैं—(१) मनःपर्यवज्ञान, (२) परमावधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि, (४) आहारक शरीर, (५) क्षपकश्रेणी, (६) उपशम-श्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) तीन चारित्र, (९) केवलज्ञान, (१०) मोक्ष । उनके मोक्ष जाने के बाद यह दस स्थान विच्छिन्न हुए ।

तेमना भानपिताओ तथा पोताना मातपिता साथे ओम कुल मणी जंभू शिभे पांथसे सत्तावीश जेठे दीक्षा अण्डे करी दीक्षा देता पडेलां पोतानी पासे नवाणु करेड सौनैआ हुता, तेना पणु परित्याग कथे. आ धनतेना त्याग करी सुधर्मा स्वामी पासे आवी सर्वजणुओ अणुगार धर्मने अपनाओथे.

जंभूस्वामी सोण वर्ष गृहस्थाश्रममा, बीस वर्ष छात्रस्थ अवस्थामा ने आदीस वर्ष डेवली अवस्थामां रखा हुता. कुल ओसी वर्षनुं आयुष्य पूरं करी प्रभवअणुगारने पोतानी पाटे स्थित करी निर्वाणु पधायो. वीर निर्वाणु आह योसकसें वर्षं तेओ सुकृत्पहने पाग्था ने तेमनी वाणीनुं स्थान प्रभव नामना अणुगारने सोंपायु. जंभूस्वामी मोक्ष पधारतां हथ स्थानेना विच्छेद थयो. जे नीथे प्रभाणु छे-(१) मनः पर्यवज्ञान, (२) परम अवधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि, (४) आहारक शरीर, (५) क्षपकश्रेणी, (६) उपशमश्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) अणु चारित्र, (९) डेवदाज्ञान, (१०) मोक्ष.

मत्तोऽत्र द्वे संप्रसंगीनाये—

श्राद्धवर्षेषु गौतमः सिद्धो वीरायुर्विंशतौ सुप्रमां ।

चक्षुष्णपृष्ठां नैव्या, व्युच्छिन्नानि तत्र दक्षस्यानानि ॥१॥

मनः १, परमावधि २, पुलाक ३, आशारक ४, सप्तको ५, पञ्चमाः ६, इत्य ७ ।

संयमत्रिक ८, कैवर्क ९, सिद्धि १० म अर्था व्युच्छिन्नानि ॥२॥ ॥मृ०१२०॥

यहाँ दो संप्रसंगीनायाएँ हैं—

भारतवर्षिसेहि गोययु, सिद्धो विराठ वीसह सुहम्मो ।

चउसठ्ठीए मंयू, बुच्छिन्ना तस्य दस ठाणा ॥१॥

मण १, परमोहि २, पुलाक ३, आशाराक ४, सप्तको ५, उवसमे ६, कल्पे ७ ।

संयमत्रिग ८, कैवल्य ९, सिद्धिणा १० प अंयुम्मि बुच्छिन्ना ॥२॥ इति ।

श्रीवीर निर्वाण से चार वर्ष बीतने पर गौतम, वीस वर्ष बीतने पर सुप्रमां और चौसठ वर्ष बीतने पर नंपूस्वामी का निर्वाण हुआ । उसके पश्चात् दक्षस्यात विच्छिन्न हो गये ॥१॥

नंपूस्वामी के बाद विच्छिन्न दक्ष स्यात पर हैं—(१) मनःपर्यवधान, (२) परमावधिमान, (३) पुलाक, (४) आशारक द्वारी, (५) सप्तकोष्ठी, (६) उपयमभेगी, (७) मिनकत्व, (८) वीन संयम, (९) कैवर्कमान, (१०) मुक्ति ॥२॥ ॥मृ०१२०॥

इय स्थाने आद्ये जटावती ये आधात्रे अर्द्धि वल्की देवभ्यां आवी छे—

भारत वर्षिसेहि गोययु सिद्धो वीराठ वीसह सुहम्मो ।

चउसठ्ठीए मंयू बुच्छिन्ना तस्य दसठ्ठाणा ॥१॥

मण परमोहि पुलाक, आशाराक, सप्तको, उवसमे, कल्पे ।

संयमत्रिग कैवल्य सिद्धिणा प नंपूम्मि बुच्छिन्ना ॥२॥ इति ।

अर्थात्—श्रीवीर निर्वाणो भवति १० वर्षे गौतम, २० वर्षे वीर, ३० वर्षे वीरतां सुप्रमां अने आधात्रे अर्द्धि वल्की देवभ्यां आवी छे ।

नियोज्य ययु ते वली नीचे अर्द्धिदेवा इय स्थाने । येषु वरु वीरतां सुप्रमां अने आधात्रे अर्द्धि वल्की देवभ्यां आवी छे ।

अत्र स्वामी आद्ये जटावती (१) मनःपर्यवधान, (२) परमावधिमान, (३) पुलाक, (४) आशारक द्वारी, (५) सप्तकोष्ठी, (६) उपयमभेगी, (७) मिनकत्व, (८) वीन संयम, (९) कैवर्कमान, (१०) मुक्ति (मृ०१२०)

टीका -- 'रायगिहे णयरे' इत्यादि । राजगृहे नगरे ऋषभदत्तस्य=ऋषभदत्तनामकस्य श्रे नः धारिण्याः
 अङ्गनातः देवलोकादिपञ्चमब्रह्मदेवलोकात् च्युतः जंबूनामपुत्रः जंबूनामकपुत्रः आसीत् । स च षोडशवर्षीयः=
 षोडशवर्षवयस्कः सन् श्रीशुभर्मस्वामिसमीपे धर्मं श्रुत्वा प्रतिबुद्धः=बोधप्राप्तः, प्रतिपन्नशीलसम्यक्त्वः=स्वीकृत-
 शीलसम्यक्त्वः अस्मा-पित्रोः=मातापित्रोः दृढाग्रहेण=अत्यन्तानुरोधेन अष्ट=अष्टसंख्याः कन्याः पर्यणयत्=
 परिणीतवान् । विवाहरात्री स-जंबूकुमारः सस्नेहाभिः=स्नेहवतीभिः ताभिः-अष्टाभिः कन्याभिः प्रेमसंप्लुत-
 वाणीभिः=साष्टुरावावाभिः न व्यामोहिताः=न मोहं गतः । स च परस्परम्=अन्योऽन्यं क्रयाप्रतिक्रयाभिः=उत्तर-
 प्रत्युत्तरैः ताः=न्यरिणीताः अष्टापि स्त्रियः प्रत्यवोधयत्-प्रतिबोधितवान् । तस्यां=विवाहसम्बन्धिन्यां रात्रौ
 नीर्यांशुं गृहे=स्वभवनने प्रविष्टं नवनवत्यभ्यधिकैश्चतुर्भिः चोरशतैः परिकृतं=परिवेष्टितं युक्तमित्यर्थः, प्रभवामिधं=

टीका का अर्थ--राजगृह नगर में ऋषभदत्त सेठ की धारिणी नामक पत्नी के उदर=अङ्गनात ब्रह्म
 नामक पाँचवें देवलोका से द्यवत्तर आयें हुए जंबू नामक पुत्र थे । सोलह वर्षकी उम्र में उन्होंने सुधर्मा
 स्वामी से धर्म का उपदेश सुना और प्रतिबोध प्राप्त किया । प्रतिबोध पाकर शील और सम्यक्त्व अंगीकार
 किया । माता-पिता के तीव्र अनुरोध से आठ कन्याओं के साथ विवाह किया । मगर विवाह की रात्रि-
 सुहागरात में वह जंबूकुमार अनुरागवती उन आठों कन्याओं की प्रणय-परिपूर्ण वाणी से मोहित न हुए ।
 उनके साथ जंबूकुमार की आपस में कथाएँ-प्रतिकथाएँ हुईं । आठों रसगिरिने जंबूकुमार को अपनी और
 आकृष्ट करने के लिए अनेक कथाएँ कहीं । उनके उत्तर में जंबूकुमारने भी कथा कही । इस प्रकार
 उत्तर-प्रत्युत्तर होने पर आठों नवविवाहिता पत्नीयों को भी प्रतिबोध प्राप्त हुआ ।

उसी-विवाह की रात्रि में चारसौ विन्ययनवें चोरों को साथ लेकर प्रभव नामक प्रसिद्ध चोर चोरी

टीकाने अर्थ--राजगृह नगरमां ऋषभदत्त सेठने धारिणी नामकी पत्नीना उदरे जन्म पायेद. प्रहस नामना
 पाथमा देवलोकाभाथी आवेक्ष जंबू नामनो पुत्र इते। सोल वर्षनी उमरे तेथे सुधर्मास्वामी पासे धर्मनो उपदेश
 सांभल्ये अने प्रतिबोध पाभ्ये। प्रतिबोध पासीने शील अने सम्यक्त्व अंगीकार क्युं. माता-पिताना आग्रहथी
 तेथे आठ कन्याओ साथे लग्न कयो. पल्लु विवाहनी रात्रे-सुहागरात्रिये ते जंबूकुमार ते आठ अनुरागवाणी कन्या-
 ओनी प्रणय-परिपूर्ण वाणीथी मोहित थये नई। तेमनी साथे जंबूकुमारनी आपसमां कथाओ-प्रतिकथाओ थध.
 आठ रमणीओ जंबूकुमारने येतानी तरङ्ग आकर्षवाने माटे अनेक कथाओ कडी. तेमना उत्तरमां जंबूकुमार
 पल्लु कथा कडी. या प्रभाणे उत्तर-प्रत्युत्तर थतां आठ नवेदा पत्नीओ पल्लु प्रतिबोध पाभी.

जेज विवाहनी रात्रे चारसो नवायुं (४६६) चोरने साथे लगने प्रभव नामनो प्रख्यात चोर चोरी करवाने

प्रमत्तनामकं चौराणि मत्स्यरोषयत्=वृत्तिबोधितवान् । तत्र 'प्रमत्त'=उदरान्तरं उदिते दिनकरे=दूर्ये पञ्चभूतचौर-
 मापौष्टक-उखनक-जननी निमग्ननक्तननीभिः साधे सर स्वयम् आत्मना पञ्चभूतसप्तविंशतिवतमो यूरुत्वा नव
 नवतिं हनकरोटीः= सुवर्णमुद्राकोटीः परित्यज्य-विश्राय धुमप्रसामिसमीपे प्रयतिताः=त्रीणां गृहीतवान् । स
 मंभूयिः तस्य पोटश्चर्याणि यावत् शूरस्यत्वे विंशतिं वर्षाणि छात्रस्ये=छात्रस्यपपाय, षट्सप्तवारिंशत्तवर्षाणि
 केचल्पिषांये एवम्=इत्यम् अशीति वर्षाणि सर्वायुक्तं पालयित्वा ममत्तम् भनगारं, निजपट्टे=स्वपट्टे स्थापयित्वा
 श्रीबीरनिर्वाणत्=धीमतावीरत्वाभि-भोसगमनकालादारभ्य षट्सप्तपट्टितमे वर्षे सिद्धिं गतः ।

श्री मंत्रुत्वामी यावत्काकपयन्तं मोक्ष गतो नासीत्, तावदेव मरते वर्षे=वस्यमायानि दशस्थानानि
 आसन् उपया-मनपर्यवहानम् १, परमारविज्ञानम् २, पुनाककल्पि ३, आशाकडरीरम् ४, सप्तकथेणि ५, उप-
 कराने के सिय मंत्रुदुमार के घर में घुसे । उन्हें भी उन्होंने मतिवोधित किया ।

तत्पश्चात् ययौव्य इति पर पौचली चौरों के साथ आठों पत्नीयों के साथ, पत्नीयों के माता-पिता
 के साथ और अपने माता-पिता के साथ, आप स्वयं पौचली सवारिसेवे होकर दूरे की निन्यानबे कोटि
 स्वर्णमुद्राओं की तथा अपने घरकी अष्ट संपत्ति को त्याग कर सुपुर्मास्वामी के पास प्रयमित हो गये ।

मंत्रुत्वामी सोलह वर्ष तक शूरवास में रहे, बीस वर्ष तक छात्रस्यपर्याय में रहे, वचानीस वर्ष तक
 केचनी-पर्याय में रहे । इस प्रकार अस्सी वर्ष की समस्त आयु मोग कर ममत्त अगार को अपने पाट पर
 प्रतिष्ठित करके श्रीमहावीर मगवान् के निर्बलकाल से बीसठे वर्ष में मोक्ष गये ।

अब तक मंत्रुत्वामी मोक्ष नहीं गये थे तब तक मरतक्षेत्र में आगे करे दस स्थान थे । पया—
 आठे ७ मंत्रुधरान्तर परभ्य पुरेशे तेभने पक्ष तेषु प्रतिबोधित इति । त्वारणाइ सुरेशस्य बत्वां पंचस्ये शैशानी साधे
 अठे पत्नीकोनी साधे, पत्नीकोनी माता-पितानी साधे अने पितानां माता-पितानी साधे अने दुष्ट पंचस्ये
 सच्यवीर्यानां ते योते इहेन (हरिबावर)नी नवषु इशेइ सुवर्ण मुद्राकोटीना अने पितानी अष्ट संपत्तिना त्याग
 इतिने सुधर्मा स्थायीनी पक्षे दीक्षित यथा

७ मंत्रुधरानी शैव्य वर्ष सुधी सारभ्यं इवाम्, वीस वर्ष सुधी छात्रस्थानरक्षामां इवाम्, सु भागीश (७४) वर्ष
 सुधी देवनी-पक्षोमर्था इवाम् आ प्रभासि कोटी (८०) वर्षं तु दुष्ट आमुष्य शैव्यनी, प्रलय आमुष्य-धरने पितानी
 पाट पर प्रतिष्ठित इतिने श्री महावीर सजवान्मा निवोक्ष्य अगच्छी योऽवगम वने भासे सिधा-न्ना-न्नां सुधी ७२-
 स्वामी शैव्य परभ्य न कृता, त्वां सुधी शरत् शैव्यमां आजग कहेइ इस स्थान कृता-

शमश्रेणि ६, जिनकल्प ७, संयमत्रिकम्=परिहारविशुद्धसूक्ष्मसंपराय-यथाख्यातचारित्र्यम्-इति चारित्रत्रयम् ८, केवलज्ञानम् ९, सिद्धिः १०-इति । मोक्षं गते तु तस्मिन् एतानि दशस्थानानि व्युच्छिन्नानि ।

भारतोऽत्र द्वे स्रग्दृष्टीगाये-चारस वरसंहिं' इत्यादि । वीराद्=वीरनिर्वाणाद् द्वादशवर्षेषु व्यतीतेषु गौतमः सिद्धः त्रिंशत् वर्षेषु व्यतीतेषु सुधर्मा मोक्षं गतः । तथा-चतुष्षष्टौ वर्षेषु व्यतीतु जंबूस्वामी मोक्षं गतः । तत्र=तस्मिन् जंबूस्वामिनि मोक्षं गते दशस्थानानि व्युच्छिन्नानि=विच्छेदं प्राप्नोति । तानि दशस्थानानि=मनः=मनःपर्यवज्ञानम् १. परमावधिज्ञानम् २ पुलाकः=पुलाकलब्धिः ३, आहारकः=आहारकलब्धिः ४, क्षपकः=क्षपकश्रेणिः ५, उपशमः=उपशमश्रेणिः ६, कलः=जिनकल्पः ७, संयमत्रिकम् ८, केवलम्=केवलज्ञानम् ९, सिद्धिः=मोक्षश्चात दशस्थानानि जंबू=जंबूस्वामिनि मोक्षं गते व्युच्छिन्नानीति ॥सू-१२०॥

(१) मनःपर्यवज्ञान, (२) परमावधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि, (४) आहारक शरीर, (५) क्षपकश्रेणी, (६) उपशमश्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) तीन चारित्र-परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात, (९) केवलज्ञान और (१०) मोक्ष । जंबूस्वामी के मोक्ष पथारने पर यह दस स्थान विच्छिन्न ही गये ।

इस त्रिपय में दो स्रग्दृष्टीगाथाएँ हैं—

वीर-निर्वाण से बारह वर्ष वीतने पर गौतम सिद्ध हुए, बीस वर्ष वीतने पर सुधर्मास्वामी मोक्ष पथारे तथा चौसठ वर्ष वीतने पर जंबूस्वामी मोक्ष पथारे । जंबूस्वामी के मोक्ष जाने पर दसस्थान अर्थात् दस बातें विच्छिन्न हो गईं । वह दसस्थान यह हैं-१ मनःपर्यवज्ञान, २ परमावधिज्ञान, ३ पुलाक-पुलाकलब्धि, ४ आहारकलब्धि, ५ क्षपकश्रेणी, ६ उपशमश्रेणी, ७ जिनकल्प, ८ तीन चारित्र, ९ केवलज्ञान और १० मोक्ष । जंबूस्वामी के मुक्त होने पर यह दस स्थान विच्छिन्न हुए ॥सू०१२०॥

(१) मन पर्यवज्ञान (२) परमावधिज्ञान (३) पुलाक-लब्धि (४) आहारक-शरीर (५) क्षपक-श्रेणी (६) उपशम-श्रेणी (७) जिन-कल्प (८) त्रय चारित्र परिकार-विशुद्धि, सूक्ष्म-संपराय अने यथाभ्यात (९) डेवणज्ञान मोक्ष तेमना निर्वाण आठ अे दस स्थान विच्छिद पाग्था. ते विधे अे संश्रद्धी गाथाअे । छ.

वीर-निर्वाणने आर वर्ष पत्सार थता गौतम सिद्ध अन्था, बीस वर्ष वीतता सुधर्मास्वामी मोक्ष गथा तथा त्र्यासठ वर्ष वीततां अंभूस्वामी मोक्ष गथा. अंभूस्वामी मोक्षे अतां नीयेना दस स्थान विच्छिन्न थर्ध गथां. ते दस स्थान आ छे-(१) मन-पर्यवधिज्ञान (२) परमावधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि, (४) आहारक-लब्धि, (५) क्षपकश्रेणी, (६) उपशम श्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) त्रय चारित्र, (९) डेवणज्ञान अने (१०) मोक्ष. अंभूस्वामी मोक्षे अतां आ दस स्थान विच्छिन्न थथां (सू०१२०)

मूल्म्—सिरेर्नसामिम्मि माकल गए ढप्ये सिरिपमवतामी उवात्रिसीय । तउप्यचीवेचय—

विद्यायस्समीवे जयपुरामिहाण नयर आसि । तत्य त्रिंशो जामणरवर् होत्या । तस्स पुचदुगं भासि-
एगो वेदुपमयामिहाणो, अउरो ऋगिहपमयामिहाणो । तस्य जेहपमचो केणचि कारणेणं कुब्धो जयपुरनयराओ
निरसरीय विद्यायस्स विसमत्येळे भण्णिबं गामं वासिषा तत्य निवसीम । सो य चोरिय—कुट्टणाइगरि-
रियविप्पि ओल्मीअ ।

एगया तेण आकणियं न-रायगिरे नयरे जंबु नामगो उसमद्वसेद्धिपुओ म्हुं सेद्धिक्कण्णाओ परि
णीम । दाये सेण सवुररिओ पक्कयइ कोट्टि परिमियाओ सुक्कण्णुआओ लब्धाभासि । एव सोभा सो पमचो
चोरो गवपचइ अदिपरि चउरि चोरसपरि गरिबुडो रायगिरे नयरे जंबुकुमारस्स गिरे चोरियुडु पविद्धो । तत्य
सो ओसास्सीए विज्जाए सन्वे जणे निरिए ऋरीअ । भावसंजयम्मि जंबुकुमारम्मि सा विज्जा निष्कळा
जाया । सो जागामणो वेच विद्धीअ । तप्यभावेण तस्स म्हुंदि मज्जा जागामणीओ वेच ठिया । तओ
सो पमचो चोरो चोरोहिं सदि ताओ सुक्कण्णुआओ गरिय वल्लिउमारद्धो । तया जंबुकुमारो नमुकारसंतप्य-
भावेण वेमि गां थंमीअ । नियगं यमियं ददूण पमचो विग्गिओ किंकायव्यविपूढो य जाओ । तस्स परिस्सि
ठिइ ददूण जंबुकुमारो हसीम । तस्स हासि सोबा पमचो तं ऋीअ-महाभागा । जं मम इय ओसाङ्गी विज्जा
अमोधा अस्सि । सा चि दुयमि निष्कळा जाया । तए जुण अम्यानं गई चावि यमिया । अओ तुव को वि
निसिद्धो पुरिसो पढिमासि । हुम ममोवरि किं चिक्का यमणि विज्जा मम देरि । अरं च तुब्भं ओसाचणि
विज्जा इल्लामि । तस्स इम यय्यं सोभा जंबुकुमारो ऋषीम । इमाओ सोयविज्जाओ दुग्गइकारणाओ संति ।
तुब्भं विज्जाए म्हुंम्मि पमाचो न जाआ । तुब्भान गई ज मए यमिया, एस्य न कावि विज्जा कारणं ।
अय पुरावो नमुकारमवत्स अत्थि । एव ऋरिय जंबुकुमारो तस्स चारिषपम्मं उवादिस्सीम । उं सोया
पमपाईरं चोरानं न्मीसि वेरमं सगाय । तओ चीए दिक्खे एपरिचोरो जंबुकुमारो तेरि पमवाइयहिं चोरोहिं
सद्धिं सुहम्मसायिसमीय पब्बइओ ।

जइसामिम्मि मोकलं गए ढप्ये पमवतामी उवाविसीअ । सो उ जंगमक्कप्पकइलोव मज्जनीवाणं
मनोरइ पूरेयाओ सुयणाणमइस्सकिंत्तकिंत्तणेहिं मिच्छभतिमिरपडंमं विणासेतो मक्कइययक्कमइइ वियासेतो
सुरम्मसाभिपरिओसियं चउग्गिइसयवादिंयं देसणामिणं अहिंसिचिय उवत्सम-विषेण-वरयणाइपुक्केहिं पुप्फियं
अयच्छणज्जेरिं कम्मियं च कुक्कतो विहरइ । एवं विहरमाणो सो कालमासे काळ किंवा सग गभो । तओ
बुओ सो महाविदेहें सिंसे सवुण्णजिय सासओ सिद्धो मविस्सइ ॥सू०१२१॥

छाया—श्री जवूस्वामिनि मोक्षं गते तत्पट्टे श्री प्रभवस्वामी उपाविशत् । तदुत्पत्तिश्चैवम्—
 विन्ध्याचलसमीपे जयपुराभिधानं नगरमासीत् । तत्र विन्ध्यो नाम नरपतिरभवत् । तस्य पुत्रद्वयमासीत् ।
 एको ज्येष्ठप्रभवाभिधानोऽपरः कनिष्ठप्रभवभिधानः । तत्र ज्येष्ठप्रभवः केनापि कारणेन क्रुद्धो जयपुरनगराद्
 निस्सृत्य विन्ध्याचलस्य विपमस्थले अभिनवं ग्रामं वासयित्वा तत्र न्यवसत् । स च चौर्य-छुण्टनादि गर्हित
 वृत्तिम् अवाल्भवत् ।

एकदा तेन आकर्णित यद् राजगृहे नगरे जंबूनामकः ऋषभदत्तश्चेष्टिपुत्रः अष्ट्रेष्टिकन्या पर्यणयत् ।
 दाये तेन श्वशुरेभ्यो नवनवतिकोटिपरिमिताः सुवर्णमुद्रा लब्धा इति । एवं श्रुत्वा स प्रभवश्चौरो नवनवस्यधिकैः

मूल का अर्थ—‘सिरिजंबूसामिमि’ इत्यादि-जवूस्वामी के मोक्ष पधारने पर श्री प्रभवस्वामी
 उनके पाट पर बैठे । उनकी उत्पत्ति इस प्रकार है-विन्ध्य पर्वत के पास जयपुर नामकनगर था । वहाँ
 विन्ध्य नामक राजा था । उसके दो पुत्र थे-एक ज्वेष्ठप्रभव कहलाता था, और दूसरा कनिष्ठ (छोट्टा)
 प्रभव कहलाता था । उनमें से ज्येष्ठप्रभव किसीकारणसे क्रोधित होकर जयपुरनगर से निकल कर विन्ध्याचल
 के एक विपम स्थान में एक नया गाँव बसाकर वहीं रहने लगे । उन्होंने चोरी एवं छुटपाट आदि निन्दित
 आजीविकाका अवलम्बन लिया ।

एकवार उन्होंने सुना कि राजगृहनगर में जंबू नामक ऋषभदत्त सेठ के पुत्रका आठ सेठों की कन्याओं के
 साथ विवाह हुआ है । उन्हें अपने श्वसुरों से निन्त्यानवैकरोड स्वर्ण-मुद्राएँ दहेज में मिली हैं । यह सुनकर प्रभव

भूलनेा अर्थ—‘सिरिजंबूसामिमि’ धत्यादि जंबूस्वामी मोक्ष पधारतां, प्रभवस्वामी तेभनी पाटे विरान्त्या
 तेभनी उत्पत्ति केवी रीते छे ते ब्रह्मावे छे. विन्ध्य पर्वतनी पासे जयपुर नासे नगर हतुं. त्यां विन्ध्यक नामे राज
 हतो. तेने जे पुत्रो हुता. तेभांना जोक ज्येष्ठप्रभव कहेवाता, अने थोळ कनिष्ठप्रभव कहेवाता. कोधिपथु कारथु
 वशात् शुस्से थर्धने ज्येष्ठप्रभावे जयपुर नगरथी अह्दार नीकणी विन्ध्याचल पहाडना जोक विषम स्थानभां जोक ननुं
 गाम वसावई, ते त्या रह्यो त्यां तेणु चोरी उकु अने धाड आदि वडे आल्लविका कस्वा मांडी. जोक वार तेणु
 सांभण्यु के, राजगृह नगरीभा ऋषभदत्त नामनेा शेठ छे. तेने जोक पुत्र छे, जेजुं नाम जंबूकुमार छे.
 तेजुं लग्न आठ सर्वश्रेष्ठ कुमारीक्यो साथे थयेत छे. आ आठ कुमारीक्यो धणुा धनाढ्य पिताज्योनी पुत्रीज्यो
 छे. तेज्यो नव्वाणुं करेड सोानाभडारे हायजभां लावेत छे. आ उपशंत दर-हाणीनामेा तेा केड आशे-तारेा
 नथी ! जेजुं अढणक द्रव्य तेज्यो पोताना पियशेथी लावी छे.

जंबूकुमारो नमस्कारमन्त्रप्रमाण गतिष् अस् भयत् । निजगतिं स्वस्मिन्नां दृष्टा प्रमत्तो त्रिस्मिताः । किं कल्पयतिपुत्रश्च जातः । तस्यदृष्टीं स्थितिं दृष्ट्वा जंबूकुमारोऽसद्वत् । तस्य हास मुस्ता प्रमत्तमकथयत्-यथा माग । प्रमयस्य भवत्स्वापिनी विद्या ज्ञानोपा बन्ति । साऽपि स्वयि निष्कला जाता । त्वया पुनरस्माकं गतिं प्रापि स्वस्मिता । अतस्त्वं कोऽपि विशिष्टः पुरुषः प्रतिभासि । त्वं प्रमोषिणि कृपां कृत्वा स्वस्मिनीं शिष्यां चोर अपने साची ४९९ चोरो के साथ, राजपुत्रानगर में आकार चोरी करनेके लिए जंबूकुमार के घर में घुसे ।

उन्होंने भवत्स्वापिनी विद्या स चोरो के सब लोगों को निद्रार्थिन कर दिया । मगर जंबूकुमार तो माघ-साधु हो चुके थे । अतः उन पर भवत्स्वापिनी विद्या का असर नहीं हुआ, वह जगते रहे । उनके प्रमाण से उनकी आठों शार्याये भी जागती ही रही । तत्पश्चात् प्रमथ चोर अपने साची चोरो के साथ उन सब स्वर्ण-मुद्राओं (सौनेयों) को बटोर (फूट्टा) कर बलने को उद्यत हुए । तब जंबूकुमारने नमस्कारमंत्र के प्रमाण से उनकी गति स्तम्भित कर दी । अपनीगति स्तम्भित (अवच्छेद) हुए देस प्रमथ चकित रह गया और उन्हें वृष न पडा कि भय क्या करना चाहिए ।

उनकी यह दृष्टा देलकर जंबूकुमार को हँसी आ गई । उनकी हँसी सुनकर प्रमथ ने उनसे कहा- महाभाग ! मेरी यह भवत्स्वापिनी विद्या अमोघ (दृष्टा न होमेवाली) है; पान्तु उसका भी भाग पर असर नहीं हुआ । आपने हमारी गति भी स्तम्भित कर दी है । इसस प्रतीत होता है कि आप कोई विशिष्ट पुरुष है ।

जागु सांख्यी, प्रकथनकार शैताना आश्रो नन्वाषु और आश्रयिज्ञा साधै शक्युकीनश्रीमां ज्ञानी पडोन्व्यो शोनी कथवाना परिशदाकी, ते अच्युत्प्रभारना वरुभा प्रवेश्ये। तेद्ये अयस्वापिनी विद्यानी -असि हरी कृती तेभी वरना अर्ध आश्रयिने निद्रापीन हरी नाप्या परतु अच्युत्प्रभार, भाव साधु अर्ध मुद्रया कृता तेभी तेनी उषर भा विद्यानी अन्तर न अर्ध तेभी तेजो व्यजता रम्य। तेना अत्रवाशी तेभनी ज्ञान् आश्रयिज्ञा अषु अश्रीक एही त्थारथाइ प्रकाय और वभाभ सोना भक्षिशो श्रेणी हरी अंश्रयिज्ञां भापी शैताना आश्रयिज्ञा साधै स्वाना यवा तेभाश अशे। ते वप्रते ते अच्युत्प्रभार नअश्रभर अतना प्रभाव बडे, तेने उद्यो स्थिर हरी दीप्ति, ज्येवा उद्यो शक्यो शक्यो दीप्ति ते त्थाकी कथरी पक्ष शशेयी नकि । प्रकथ स्तम्भित बत्वा, ते अश्रयिज्ञा पात्रये, ने तेने अर्ध सुल यही नकी। तेनी ज्ञानी दृष्टा ज्येध, अश्रयिज्ञा अश्रयिज्ञा तेभनु कास्व ज्येध ते ज्येवी दृश्ये हे के आभवात ! आशी अश्रयिज्ञापिनी विद्या नक्षामी यर्धअर्ध ! ते विद्याके आश्रयिज्ञा अन्तर हरी नकी परतु उद्येदु कु स्तम्भित अर्ध अशे । आको अश्रयिज्ञा छे हे, अश्रय हेअि अश्रयुत अश्रय

मद्य देहि । अहं च तुभ्यम् अस्वामिनीं विद्या इदमि । तस्येदं वचनं श्रुत्वा जंबूकुमारोऽकथयत्—इमा लौकिक-विद्या दुर्गतिकारणाः सन्ति । तत्र विद्याया मयि प्रभावो न जातः, युष्माकं गतिश्च मया स्तम्भिता, अत्र न कापि विद्याकारणम् । अयं प्रभावो नमस्कारमन्त्रस्यास्ति । एवं कथयित्वा जंबूकुमारस्तस्मै चारित्रधर्ममुपा-दिशत् । तं श्रुत्वा प्रभवादीनां चौराणां मनसि वैराग्यं सजातम् । ततो द्वितीये दिवसे जंबूकुमारः तैः प्रभवा-दिभिश्चौरैः सह सुधर्मस्वामिसमीपे प्रव्रजितः ।

जंबूस्वामिनि मोक्षं गते तत्पट्टे प्रभवस्वामी उपादिशत् । स तु जङ्गमकल्पवृक्ष इव भव्यजीवानां मनोरथं पुरयन् श्रुतज्ञानसहस्रकिरणकिरणैर्मिथ्यात्वतिमिरपटलं विनाशयन् भव्यहृदयरुमलानि विकासयन् सुधर्मस्वामि

आप कृपा करके स्तंभनी विद्या मुझे दीजिए—सिखा दीजिए, और मैं आप को अस्वामिनी विद्या सिखा देता हूँ । प्रभव के यह वचन सुनकर जंबूकुमारने कहा—यह लौकिक विद्याएँ अधोगति का कारण हैं । तुम्हारी विद्या का सुझावर प्रभाव नहीं हुआ और मैंने तुम्हारी गति अवरुद्ध करदी इसमें कोई विद्या कारण नहीं है । यह तो नमस्कार मंत्र का प्रभाव है । इस प्रकार कहकर जंबूकुमार ने प्रभव को चारित्र धर्मका उपदेश दिया । वह उपदेश सुनकर प्रभव आदि सभी चौरों के मन में विरक्ति उत्पन्न हुई । तत्पश्चात् दूसरे दिन जंबूकुमार उन प्रभव आदि चौरों के साथ सुधर्मास्वामी के समीप दीक्षित हुए । जंबूस्वामी जब मोक्ष पथार गये तो प्रभवस्वामी उनके पाट पर विराजमान हुए । वे चलते—फिरते कल्पवृक्ष के समान भव्य जीवों के मनोरथों को पूर्ण करते हुए श्रुतज्ञान रूपी सूर्य की किरणों से मिथ्यात्व रूपी-अन्धकार के पटल का विनाश करते हुए, भव्य दागे। छ। । आप भडेरमानी करी मने ते 'स्तंभनी' विद्या आये। तेना अहदामा हुं आपने भारी 'अवस्थापिनी' विद्या शीथली रह !

प्रभवदुं आलु कथन साक्षणी ज'भूकुमार योदथा. 'आ लौकिक विद्याओ अघोगतिनुं कारण छे. तारी विधाने प्रलाव मारी उपर पडये। नहीं अने मारी विद्याओ तारी पर असर पाडी ! आमां डोह अलौकिकता नथी, पणु नमस्कार मंत्रने। प्रलाव छ ! आलुं कडी ज'भूकुमारि, प्रलवने यारित्र धर्मने। उपदेश आये। आ उपदेश साक्षणी, प्रलव आदि संव' योरोना मनमां विरति लाव उत्पन्न थये। थिने हिवसे ज'भूकुमार साथे, आ पांयसे। योरोओ सुधर्म-स्वामी पासे दीक्षा अलु छरी ज'भूस्वामीनी सुक्तिआह, प्रलव स्वामी तेमनी पाटे आया तेओ। कल्प-वृक्ष सामान लव्य एवोना मनोरथो। पूरा करवा दाया। श्रुतज्ञानइपी डिरथो। वडे, मिथ्यात्वइपी अंधकारने। नाश

पारंपारिकी पदार्थसंग्रहादिकां देशनाशुदेनाभिषिच्य उपश्रम-निवेक-विरमणादि पुण्यैः पुण्यिताम् आत्मकृत्याणाम्
 फलैः फलिषां च कुर्वन् विहरति । एवं चिरान् स कालमासे काल कृत्वा स्वर्गं गतः । ततश्च्युत स महा
 चिदेवै श्रेष्ठं समुत्पद्य शश्वतः सिद्धो भविष्यति ॥सू० १२१॥

टीका—'तिरि जंबूसामिन्मि' इत्यादि । व्याख्या सुगमा ॥सू० १२१॥

उपसंहार

मन्त्रम्—सम्पति घनकारः घनमिदं कल्पयुक्तयेन प्रकल्पन् कल्पप्रदर्शनपूर्वकम् उपसंहारति—

नपसारमत्रो भूमि मास्मान् च मावणा ।

सम्पत् वीजप्रकलाप, जलं जिस्सक्रिया इयं ॥ १

शुद्धो नदनम्ये च, कुत्ती ठण्णग सीसई ।

स्फुल्लो वीरमयो जस्स, ताहाओ गणहारिको ॥ २

चतस्सयो पसाहाओ, सामायारी द्दुजानि य ।

पुष्पावसि य तिर्वा, वारसंगी सुगणओ ॥ ३

जीवों क इदय-कमल को विकसित करते हुए, घुघर्मास्वामो द्वारा पोषित पशुविष सेपक्षी वाटिका को प्रथमे
 उपदेशायुत से सींचते हुए, उपश्रम, विवक और विरमण आदि पुण्यों से पुण्यित करते हुए और आत्मकृत्याण
 रूप फलों से फलवान् पनाते हुए विचरते सगे । इस प्रकार विचरते हुए प्रभवस्वामी काल-मास में काल
 करके बर्षाव ययासमय देर त्यागकर देवलोक में पयारे । देवलोक से चष फर ये महाचिदेव सेव में
 तत्पश्च होकर सिद्ध होंगे ॥ सू० १२१ ॥

टीका का अर्थ— इस सूत्र की व्याख्या सरल है ॥ सू० १२१ ॥

१२१ वाक्य लम्ब श्रुतेना हृदय-कमलेना विकस्य कृता कृता, सुधर्मस्वामी द्वारा पोषिते कर्तुविधि सव
 र्ण्ये वादीयु योताना उपदेशे अभ्युदास, धिक्चन कृतां उपश्रम, विवेक ज्ञाने विश्रमण आदि उपपेक्षी पुण्यित
 कृतां ज्ञाने कल्पप्रकलापवृत्त श्लेषो इतिव जनतां विस्तरवा वाक्य
 आ प्रथमे विकसतां कथ उपश्रमे शब्द कही तेजो स्वर्गमां अद्य, स्वर्गकी भवनी महाचिदेव सेवनां उपश्रम
 यते, ने त्वांशो कर्मक्षय कर्षी, सिद्ध अतिने पाभये, (सू० १२१)

टीकानो अर्थ—स्यष्ट छे (सू० १२१)

फलं मोक्त्वो निरावाहा-णंतावस्वयि सुहं रसो ।
 वीरस भवरुक्वोऽमू, कप्पसुत्तस्सख्वगो ॥ ४
 भव्वंसंक्पक्पहु-कप्पो चिंतिय दायगो ।
 सेवियो विणया णिच्चं देइ सिद्धिमणुत्तरम् ॥ ५

॥ इय कप्पसुत्तं संपूर्णं ॥

छाया—नयसारभवो भूमि, रालवालं च भावनाः ।
 सम्यसत्तं वीजमाख्यातं, जलं निश्शङ्कितादिकम् ॥ १
 अङ्कुरो नन्दजनं च वृत्तिः स्थानक विरातिः ।
 वृक्षो वीरभवो यस्य शाखा गणधारिणः ॥ २
 चतुस्संघः प्रशाखाः सामाचार्यो दलानि च ।
 पुष्पावलि च त्रिपदी द्वादशश्री सुगन्धकः ॥ ३

उपसंहार

अब सूत्रकार इस कल्पसूत्र को कल्पवृक्ष के समान निरूपित करते हुए और फल वतलाते हुए उपसंहार करते हैं—भगवान् महावीर का कल्पसूत्ररूप यह भव-वृक्ष है । नयसार का भव इसकी भूमि है । भावनार्थे इसकी क्यारी हैं । समकित वीज है । निःशंकित आदि जल है ॥ १ ॥ नन्दका जन्म अंकुर है । वीस स्था-नक वाड है । महावीर का भव वृक्ष है, जिसकी शाखाएँ गणधर हैं ॥ २ ॥ चतुर्विधसंघ प्रशाखाएँ (टहनियाँ) हैं । समाचारियाँ पत्ते हैं । वारह अंग सौरभ-सुगंध है ॥ ३ ॥ मोक्ष इसका फल है । अव्यावाध,

उपसंहार—

भूणनेो अर्थ—हुवे सूत्रकार आ कल्पसूत्रने कल्पवृक्ष समान निरूपित करी तेनुं इव भतावे छे. कल्पसूत्ररूप भगवान महावीरनुं आ लव-वृक्ष छे ! नयसारनेो लव, आ लव-वृक्षनी भूमि छे. लावनाओ, ते लववृक्षनी क्यारी छे. आ वृक्षमा समकित तेनुं थीज छे; अने निःशंकित आदि पाखी छे. ॥ १ ॥ नन्देनेो जन्म अंकुर छे. वीस स्थानकेो ओ महावीरना लववृक्षनी वाड छे. महावीरनेो लव वृक्ष छे, ने गणधरनेो तेनी शाखाओ छे. ॥ २ ॥

फलं मोक्षो निराशाया नन्वासापि सुखं तस ।
 वीरस्य भवदुःखोऽसौ, कल्पयन्नुत्सवकः ॥ ४
 मन्वसतुल्यकल्पदुः-कल्पधित्वित्तवायकः ।
 सेविता विनयान्नित्यं ददाति-सिद्धिमनुषराम् ॥ ५

॥ इति कल्पयन् संपूर्णम् ॥

इतिभी विश्विल्याह-जगद्धम-परिदवाचक-पञ्चदशमापाकलित मस्तिवकला

पालापह-मविदुद्गणपतेरुत्प्रन्यनिर्माणकवादिमानमरैक-भीशाहृष्टप्रयति-
 कात्रापुरानमवच 'जैनशास्त्राचार्य' पदयुपित-कोत्रापुराराजगुरु
 बामप्रयाचारि-जैनान्चार्य-जैनपर्मविशाकर-युज्यधी-यासीकाह-

यातिविरचित-भीहृत्यमवच्य संपूर्णम् ॥

टीका--'गणसारमत्तो' इत्यादि । यथाहसोत्पियोग्यां सुधर्मि प्रथम निरीत्य आकवाले विषय
 रसाभारिसवत्पत्र पीनानि तपोप्यते । पुनस्तानि मछेन सिष्यते, तदनु तानि वीषानि अहुररथेन भायते ।
 वदसार्थं मुचिय कल्पते । एवं प्रयत्नेन तानि वीषानि सपत्रशास्त्राप्रशासासमन्वित्शालित्वेन भायते । एत्र
 वृक्षेषु सरसानि गुरभीणि पुष्पाणि फलानि च सन्ति । तेषुव भगवतो वीरस्य कल्पयन्स्वरूपकोऽसौ भवदुःखो-
 भनन्तु, अपय, सुख इसका तस है । इस प्रकार यह कल्पयन् वीर भगवान् का भवदुःख-रूप है ॥४॥ यह कल्प
 यन् मन्व जीवों का मनोरथ सफल करने के लिए कल्पदुःख के समान है । अमोघ प्रदान करनेवाला है
 चित्तपूर्वक निरप सेवन किया हुआ यह मूत्र सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्रदान करता है ॥५॥

॥ कल्पयन् संपूर्णम् ॥

वदुर्विष स च याभाभाधी इडेकी प्रथाभाओ छे उभाथारीओ तेना पांडेओ छे निरुडी तेनु इव छे वार
 अज (हाइथान्डी) वृक्षनी सौरज सुत्रध छे ॥३॥ मोक्ष ते वृक्षत र्दण छे अन्धाभाषपसु अन तता, जने अक्षय
 सुभ, ते वृक्षतेा रक्ष छे आ प्रकाशे कभस्येन, वीर जभवाननु भवदुःखरुष छे ॥४॥
 आ कल्पयन् मन्व लोवीना भनोवैश। स्र्दण कस्वावाणु कल्पयन् छे अशीन् प्रदान कस्वावाणु छे विनय
 पूर्वक तेनु नित्य सेवन करवां आ मूत्र सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त करवां छे ॥५॥

ऽस्ति । अस्य वृक्षस्य भूमिः—उत्पत्तिस्थानं नयसारभवः । भावनाः=आनन्दस्याशरणार्थम् । जलं=सेचनजलस्थानीयं निरक्षरकृतादिकं=निश्शक्तिताद्युक्तं । अत्यन्तविधिसम्यक्त्वा-
 अस्य बीजं सम्यक्त्वम् आख्यात=कथितम् । जलं=सेचनजलस्थानीयं निरक्षरकृतादिकं=निश्शक्तिताद्युक्तं । अत्यन्तविधिसम्यक्त्वा-
 चारूपं बोध्यम् । नन्दजननमपञ्चविंशतितमो भवोऽस्य वृक्षस्य अङ्कुरः । अस्य वृत्तिः स्थानकविंशतिः=विंशति-
 स्थानकानि । एवंरूपो वीरभवः=महावीरजनमरूपो वृक्षोऽस्ति । अस्य वृक्षस्य शाखाः गणधारिणः=गणधरा गौतमादयः
 सन्ति, प्रशाखाः चतुस्सङ्घः=चतुर्विधः सङ्घः सन्ति, अस्य दलानि=पत्राणि सामार्चयः=साञ्चाचाररूपादशआवश्य-
 कादि सामार्चयश्च सन्ति । अस्य पुष्पावल्लि त्रिपदी=उत्पादव्ययध्रौव्यरूपा त्रिजेया । त्रिपदीरूपायाः पुष्पावल्याः
 सुगन्धकः=सुगन्धो द्वादशश्री विद्यते । फलं चास्य मोक्षः । तस्य रसो निरावाधानन्ताक्षयि=अव्याहृतम् अनन्तं

टीका का अर्थ—सब से पहले वृक्ष की उत्पत्ति के योग्य अच्छी भूमि देखभाल कर क्यारी बनाकर, आम्र आदि
 रसदार फलों के बीज वहाँ बोये जाते हैं । फिर उन्हें जल से सींचे जाते हैं । तत्पश्चात् वे बीज श्रंखुररूप से उगते
 हैं । उनकी रक्षा के लिए वाड़ लगाई जाती है । इस प्रकार के प्रयत्न से वे बीज पत्तों, शाखाओं प्रशाखाओं
 (टहनियों) से युक्त वृक्षों के रूप में परिणत होजाते हैं । उनवृक्षों में सरस और सुगंधित पुष्प और फल लगते
 हैं । इसी प्रकार यह कल्पसूत्र भगवान के भव-वृक्ष के समान है । इसकी भूमि-उत्पत्तिस्थान नयसार
 का भव है । अनित्य, अशरण आदि वारह भावनाएँ इसकी क्यारी हैं । इसका बीज समाकृत कहा गया है ।
 निःशक्ति आदि सम्यक्त्व के आठ आचार इसे सींचने के लिये जल के समान हैं । बीस स्थानक इसकी
 वाड़ है । ऐसा यह वीर-भव वृक्ष के समान है । गौतम आदि गणधर इस वृक्ष की शाखाएँ हैं । चतुर्विध
 संघ प्रशाखाएँ—शाखाओं की शाखाएँ हैं आवश्यक आदि साधु-आचार रूप दस प्रकार की समाचारियों
 इसके पत्ते हैं । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप त्रिपदी इसकी पुष्पावली है । द्वादशांगी इसका सौरभ है । मोक्ष
 इसका फल है । अव्यावाय, अनन्त असीम और अक्षय सुख इसका रस है ।

टीकाना अर्थ—सौधी पहले वृक्षनी उत्पत्तिने योग्य सारी जमीन जोधने क्यारी बनावनि आत्र आदि
 रसदार फलोंनां भीज त्हां भाववाभां आवे छे । पछी तेने पाष्ठी पावाभां आवे छे । त्पारणाद ते भीज अङ्कुर इये
 उगे छे । तेना रक्षथु भाटे वाड बनावाय छे । आ प्रभारना प्रयत्नोत्थी ते भीज पान, उणिथे, अने प्रशाखाञ्जे
 (टहनिये) वाणां वृक्ष इये परिशुभे छे । ते वृक्षोने सरस अने सुगंधिदार फूले अने इणो आवे छे ।

अथ प्रमाञ्जे आ कल्पसूत्र भगवाननां भव-वृक्ष जेवुं छे । तेनी भूमि-उत्पत्ति स्थान नयसारने भव छे । अनित्य
 अशरथु आदि आर भावनाञ्जे तेनी क्यारी छे । सामञ्जित तेजुं भीज उडेवायुं छे । निःशक्ति आदि सम्यक्त्वना आठ
 आचार तेने सिचवना जण जेवां छे । बीस स्थानक तेनी वाड छे । जोवो आ वीर भव वृक्षना जेवो छे ।

सपरिहितं च मुत्स्य मस्ति । एवं प्रकारकोटसौ कल्पयुग्मस्वरूपको वीरस्य मन्वसो विशेषः । मन्वसकल्पकल्प
 दुःकृत्यः-अभ्यासो मोक्षार्थिनां या संकल्पः-अथयसाय-अभिलाषस्तत्पूरणे कल्पयुक्त्वान्-मन्वसहसतुल्याः, अतएव-
 चिन्तितदायकः अस्ती कल्पयुग्मस्वरूपो वीरमन्वसो विनयात्-सर्वितयं नित्यं सेवित-पठन-पाठन-भयण-श्रावण-
 मननादिक्रमणा आराधनया आराधितः सन् अजुषरा-सर्वोक्त्या सिद्धिं ददातीति ॥ १ । २ । ३ । ४ ॥ ५ ॥

एतिथी नैताचार्यं नैनपर्मदिवारकर पूर्यथी पासीलाजनीमहाराज प्रयानञ्चिव्य-प्रिय-
 व्याख्यानिसंस्कृत-याकुल-नैनागमनिष्ठात-यं मुनिथी कनैयालासमी महाराज

विरचिता श्रीकल्पयुग्मस्य कल्पमञ्जरी व्याख्या सम्पूर्णा ॥
 ॥ शुभं भूयात् ॥ अस्तु ॥

कल्पयुग्मरूप वीर का यह मन्वस है ऐसा समझना चाहिए । यह कल्पयुग्म मुमुक्षु जीवोंकी अभिलाषा
 एवं करने में कन्वस के समान है, अतएव सभी अभिष्ट पदार्थों का दाता है । विनयपूर्वक इत्सका नित्य पठन
 पाठन भयण श्रावण मन्त आदिक्रम आराधना करने से यह सर्वोक्त सिद्धि प्रदान करता है ॥ १-५ ॥
 प्रियव्याख्यानी, संस्कृत-याकुलबेषा, नैनागमनिष्ठात पूर्यथी पासीलाजनी म के प्रधान शिष्य
 पण्डित मुनिथी कनैयालाजनी म द्वारा रचित श्री कल्पयुग्म की कल्पमञ्जरी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥

॥ शुभं भूयात् ॥ अस्तु ॥

नैताचार्य अजुषर का पुकनी व्याख्या है अतुर्विध सब प्रयाणाजो-याजाज्योनी याजाज्यो छि आत्मक
 आदि साधु-आचार्य इत्य प्रशस्ती साभाकारिणे तेना धान छि इत्यादि, अथ, प्रोक्तत्रय त्रिष्वी तेनी पुण्यावर्धी छि
 दासदांश्री तेनी सुख छि योक्ष तंनु इण छि मन्वाव्यथ, अनत-अस्तीम जने, अक्षय सुभ तेना इत्य छि
 का आराधना का इत्यस्य इत्यत्र कनवान भक्तोचितं कवचस्य सयञ्जु ज्योति ज्यो अथस्य सुसुप्तु लोवोनी
 अनिवाया पूर्व इत्याभां इत्यपुक्ष समान छे तेसी सधन ज्योतिष पद्यो देनाइ छे, विनयपूर्वक अ भेदां तेनु
 धान प्यान, कवचु आचरु, अनत आदि इष आराधना इत्याधी ते यवो-कृष्ट सिद्धि ज्यो छे ॥ १-५ ॥

प्रियव्याख्यानी, संस्कृत याकुलवेसा, नैनागमनिष्ठात पूर्यथ श्री वासीलाजल भक्तानन्ना मुत्स्य शिष्य
 पण्डित मुनिथी कनैयालाजल द्वारा रचित श्री कल्पयुग्म की कल्पमञ्जरी व्याख्या सम्पूर्ण हुई
 ॥ शुभं भूयात् ॥ अस्तु ॥

तवाण नामाणि	संख्या	तवदिवसा	पारणा दिवसा
१ छम्मासियं	१	१८०	१
२ पंचदिवसुणं छम्मासियं	१	१७५	१
३ चउमासियं	९	१०८०	९
४ तिसासियं	२	१८०	२
५ अड्डच्चिसासियं	२	१५०	२
६ दुमासियं	६	३६०	६
७ अद्धेगमासियं	२	९०	२
८ एगमासियं	१२	३६०	१२
९ अड्डमासियं	७२	१०८०	७२
१० अट्टमत्तं	१२	३६	१२
११ छट्टमत्तं	२२९	४५८	२२९
१२ भद्दपडिमा	१	२	१
१३ महाभद्दपडिमा	१	४	१
१४ सब्बओभद्दपडिमा	१	१०	१
योगफलम्	३१५	४१६५	३५१

ग्यारह वर्ष छ मास पचीस दिन की तपस्या हुई, और ग्यारह मास इकीस दिन पारणा के हुए ।

